कल्याण
मत्स्यपुराणाङ्क

॥ श्रीहरिः ॥

# 'कल्याण'के ग्राहकों और प्रेमी पाठकोंसे नम्र निवेदन

१—'कल्याण'के ५८ वें वर्ष ( सन् १९८४ ई० ) का विशेषाङ्क 'मत्स्यपुराणाङ्क' पाठकोंकी सेवामें प्रस्तुत है। इसमें ४३८ पृष्ठोंमें पाठ्यसामग्री और ६ पृष्ठोंमें सूची आदि हैं। कई बहुरंगे चित्र भी यथास्थान दिये गये हैं।

२—जिन ग्राहक महानुभावोंके मनीआर्डर आ गये हैं, उनको विशेषाङ्क फरवरीके अङ्कके साथ रजिस्ट्रीद्वारा भेजा जा रहा है। जिनके रुपये नहीं प्राप्त हुए हैं, उनको विशेषाङ्क बचनेपर ही ग्राहक संख्याके क्रमानुसार २७.०० ( सत्ताईस ) रुपयेकी वी० पी० भेजी जा सकती है। रजिस्ट्रीकी अपेक्षा वी० पी० द्वारा विशेषाङ्क भेजनेमें डाकखर्च अधिक लगता है, अतः ग्राहक महानुभावोंसे विनम्र अनुरोध है कि वे वी० पी०की प्रतीक्षा न करके वार्षिक मूल्य कृपया मनीआर्डरद्वारा ही भेजें। 'कल्याण'का वार्षिक शुल्क २४,०० ( चौबीस ) रुपये मात्र है, जो विशेषाङ्कका ही मूल्य है।

३—ग्राहक-संख्या या 'पुराना ग्राहक' न लिखनेसे आपका नाम नये ग्राहकोंमें लिखा जायगा, जिससे आपकी सेवामें 'मत्स्यपुराणाङ्क' नयी ग्राहक-संख्याके क्रमसे पहुँचेगा और पुरानी ग्राहक-संख्याके क्रमसे इसकी वी० पी० भी जा सकती है। ऐसा भी हो सकता है कि उधरसे आप मनीआर्डरद्वारा रुपये भेजें और उनके यहाँ पहुँचनेके पहले ही इधरसे वी० पी० भी चली जाय। ऐसी स्थितिमें आपसे प्रार्थना है कि आप वी० पी० लौटायें नहीं, कृपया प्रयत्न करके किन्हीं अन्य सज्जनको नया ग्राहक बनाकर उन्हींको वी० पी० से गये 'कल्याण'के अङ्क दे दें और उनका नाम-पता साफ-साफ लिखकर हमारे कार्यालयको भेजनेका अनुग्रह करें। आपके इस कृपापूर्ण सहयोगसे आपका 'कल्याण' व्यर्थ डाक-व्ययकी हानिसे बच जायगा और आप 'कल्याण'के पावन प्रचारमें सहायक बनेंगे।

४—विशेषाङ्क—'मत्स्यपुराणाङ्क' फरवरीवाले दूसरे अङ्कके साथ ग्राहकोंके पास रजिस्टर्ड-पोस्टसे भेजा जा रहा है। शीघ्रता और तत्परता रहनेपर भी सभी ग्राहकोंको इन्हें भेजनेमें लगभग ६-७ सप्ताह तो लग ही जाते हैं। ग्राहक महानुभावोंकी सेवामें विशेषाङ्क ग्राहक-संख्याके क्रमानुसार ही भेजनेकी प्रक्रिया है, अतः कुछ ग्राहकोंको विलम्बसे ये दोनों अङ्क मिलेंगे। कृपालु ग्राहक परिस्थिति समझकर हमें क्षमा करेंगे।

५—आपके 'विशेषाङ्क'के लिफाफे ( या रैपर ) पर आपकी जो ग्राहक-संख्या लिखी गयी है, उसे आप खूब सावधानीसे नोट कर लें। रजिस्ट्री या वी० पी० नम्बर भी नोट कर लेना चाहिये, जिससे आवश्यकता पड़नेपर उसके उल्लेखसहित पत्र-व्यवहार किया जा सके। इस कार्यसे हमारे कार्यालयको सुविधा और कार्यवाहीमें शीघ्रता होती है।

६—'कल्याण'—व्यवस्था-विभाग एवं गीताप्रेस-पुस्तक-विक्रय-विभागको अलग-अलग समझकर सम्बन्धित पत्र, पार्सल, पैकेट, रजिस्ट्री, मनीआर्डर, बीमा आदि पृथक्-पृथक् पतोंपर भेजने चाहिये। पतेकी जगह केवल 'गोरखपुर' ही न लिखकर 'पत्रालय—गीताप्रेस, गोरखपुर, पिन—२७३००५ ( उ० प्र० )' भी लिखना चाहिये।

७—'कल्याण'—सम्पादन-विभागको भेजे जानेवाले पत्रादि 'सम्पादक-कल्याण, पत्रालय—गीताप्रेस, गोरखपुर, पिन—२७३००५ ( उ० प्र० )' एवं 'साधक-संघ' तथा 'नाम-जप-विभाग' को भेजे जानेवाले पत्रादिपर अभिप्रेत विभागका नाम लिखकर 'द्वारा कल्याण-कार्यालय, पत्रालय—गीताप्रेस, गोरखपुर, पिन—२७३००५ ( उ० प्र० )' लिखना चाहिये। पता स्पष्ट और पूर्ण रहनेसे पत्रादि यथास्थान शीघ्र पहुँचते हैं और कार्यमें शीघ्रता होती है।

व्यवस्थापक—कल्याण-कार्यालय, पत्रालय—गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५ ( उ० प्र० )

# श्रीगीता-रामायण-प्रचार-संघ

श्रीमद्भगवद्गीता और श्रीरामचरितमानस विश्व-साहित्यके अमूल्य ग्रन्थरत्न हैं। इनके पठन-पाठन एवं मननसे मनुष्य लोक-परलोकमें—दोनोंमें अपना परम मङ्गल कर सकता है। इनके स्वाध्यायमें वर्ण, आश्रम, जाति, अवस्था आदि कोई बाधक नहीं है। आजके समयमें इन दिव्य ग्रन्थोंके पाठ और प्रचारकी अत्यधिक आवश्यकता है, अतः धर्मप्राण जनताको इन कल्याणमय ग्रन्थोंमें प्रतिपादित सिद्धान्तों एवं विचारोंसे अधिकाधिक लाभ पहुँचानेके सदुद्देश्यसे 'गीता-रामायण-प्रचार-संघ'की स्थापना की गयी है। इसके सदस्योंकी संख्या इस समय लगभग पैंतालीस हजार है। इसमें श्रीगीताके छः प्रकारके और श्रीरामचरितमानसके तीन प्रकारके सदस्य बनाये गये हैं। इसके अतिरिक्त उपासना-विभागके अन्तर्गत नित्य इष्टदेवके नामका जप, ध्यान और मूर्तिकी पूजा अथवा मानसिक पूजा करनेवाले सदस्योंकी श्रेणी भी है। इन सभीको श्रीमद्भगवद्गीता एवं श्रीरामचरितमानसके नियमित अध्ययन एवं उपासनाकी सत्प्रेरणा दी जाती है। सदस्यताका कोई शुल्क नहीं है। इच्छुक सज्जन परिचय-पुस्तिका निःशुल्क मँगाकर पूरी जानकारी प्राप्त करनेकी कृपा करें एवं श्रीगीताजी और श्रीरामचरितमानसके प्रचार-यज्ञमें सम्मिलित होकर अपने जीवनका कल्याण-पथ उज्ज्वल करें।

पत्र-व्यवहारका पता—मन्त्री, श्रीगीता-रामायण-प्रचार-संघ, पत्रालय—स्वर्गाश्रम (ऋषिकेश), जनपद—पौड़ी गढ़वाल (उ० प्र०)

# साधक-संघ

मानव-जीवनकी सर्वतोमुखी सफलता आत्मविकासपर ही अवलम्बित है। आत्मविकासके लिये जीवनमें सत्यता, सरलता, निष्कपटता, सदाचार, भगवत्-परायणता इत्यादि दैवी गुणोंका संग्रह और असत्य, क्रोध, लोभ, मोह, द्वेष, हिंसा आदि आसुरी लक्षणोंका त्याग ही एकमात्र श्रेष्ठ उपाय है। मनुष्यमात्रको इस सत्यसे अवगत करानेके पावन उद्देश्यसे लगभग ३६ वर्ष पूर्व साधक-संघकी स्थापना की गयी। सदस्यताका शुल्क नहीं है। सभी कल्याणकामी स्त्री-पुरुषोंको इसका सदस्य बनना चाहिये। सदस्योंके लिये ग्रहण करनेके १२ और त्याग करनेके १६ नियम हैं। प्रत्येक सदस्यको एक 'साधक-दैनन्दिनी' एवं एक 'आवेदन-पत्र' भेजा जाता है, जिन्हें सदस्य बननेके इच्छुक भाई-बहनोंको मात्र ४५ पैसेके डाक-टिकट या मनीआर्डर अग्रिम भेजकर मँगवा लेना चाहिये। साधक उस दैनन्दिनीमें प्रतिदिन अपने नियम-पालनका विवरण लिखते हैं। विशेष जानकारीके लिये कृपया निःशुल्क नियमावली मँगाइये।

पता—संयोजक—साधक-संघ, द्वारा—'कल्याण-कार्यालय', पत्रालय—गीताप्रेस, जनपद—गोरखपुर—२७३००५ (उ० प्र०)

# श्रीगीता-रामायणकी परीक्षाएँ

श्रीमद्भगवद्गीता एवं श्रीरामचरितमानस मङ्गलमय एवं दिव्यतम जीवनग्रन्थ हैं। इनमें मानवमात्रको अपनी समस्याओंका समाधान मिल जाता है और जीवनमें अपूर्व सुख-शान्तिका अनुभव होता है। प्रायः सम्पूर्ण विश्वमें इन अमूल्य ग्रन्थोंका समादर है और करोड़ों मनुष्योंने इनके अनुवादोंको भी पढ़कर अवर्णनीय लाभ उठाया है। इन ग्रन्थोंके प्रचारके द्वारा लोकमानसको अधिकाधिक उजागर करनेकी दृष्टिसे श्रीमद्भगवद्गीता और श्रीरामचरितमानसकी परीक्षाओंका प्रबन्ध किया गया है। दोनों ग्रन्थोंकी परीक्षाओंमें बैठनेवाले लगभग पंद्रह हजार परीक्षार्थियोंके लिये ४०० (चार सौ) परीक्षा-केन्द्रोंकी व्यवस्था है। नियमावली मँगानेके लिये कृपया निम्नलिखित पतेपर कार्ड भेजें—

व्यवस्थापक—श्रीगीता-रामायण-परीक्षा-समिति, पत्रालय—स्वर्गाश्रम (ऋषिकेश), जनपद—पौड़ी गढ़वाल (उ० प्र०)

*

# मत्स्यमहापुराणाङ्ककी विषय-सूची

## चित्र-सूची

### ( बहुरंगे चित्र )



### ( रेखा-चित्र )



### ( फरवरीके अङ्ककी विषय-सूची )



### ( दूसरे अङ्ककी चित्र-सूची )

भगवान् कूर्म

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

# कल्याण

वेदानुद्धरते जगन्निवहते भूगोलमुद्बिभ्रते दैत्यं दारयते बलिं छलयते क्षत्रक्षयं कुर्वते ।
पौलस्त्यं जयते हलं कलयते कारुण्यमातन्वते म्लेच्छान् मूर्च्छयते दशाकृतिकृते कृष्णाय तुभ्यं नमः ॥

वर्ष ५८ } गोरखपुर, सौर माघ, श्रीकृष्ण-संवत् ५२०९, जनवरी १९८४ ई० { संख्या १
पूर्ण संख्या ६८६

## लीलामत्स्यको नमस्कार

प्रलयपयसि धातुः सुप्तशक्तेर्मुखेभ्यः श्रुतिगणमपनीतं प्रत्युपादत्त हत्वा ।
दितिजमकथयद् यो ब्रह्म सत्यव्रतानां तमहमखिलहेतुं जिह्ममीनं नतोऽस्मि ॥

(श्रीमद्भा० ८ । २४ । ६१)

'प्रलयकालीन समुद्रमें जब ब्रह्माजी सो गये थे, उनकी सृष्टिशक्ति लुप्त हो चुकी थी, उस समय उनके मुखसे निकली हुई श्रुतियोंको चुराकर हयग्रीव दैत्य पातालमे चला गया था । भगवान्ने उसे मारकर वे श्रुतियाँ ब्रह्माजीको लौटा दीं एवं सत्यव्रत (वैवस्वत मनु) तथा सप्तर्षियोंको मत्स्यपुराणरूपी वेदका उपदेश किया । समस्त जगत्के परम कारणभूत उन लीलामत्स्य भगवान्को मैं नमस्कार करता हूँ ।'

स्व हकीम बृजमोहन [illegible]साद की

# वेदों एवं पुराणोंमें भगवान् मत्स्यका संस्तवन

**ॐ एकशृङ्गाय विद्महे महा ( माया ) मत्स्याय धीमहि तन्नो विष्णुः प्रचोदयात् ।**

हम एक ( विशाल ) शृङ्गधारी मायासे महामत्स्यका विग्रह ( शरीर ) धारण करनेवाले विष्णुका ध्यान करते हैं । वे हमारी बुद्धिको ( सन्मार्गकी ओर ) प्रेरित करें ।

**देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । प्रतिगृह्णाम्यग्नेष्ट्वास्येन प्राश्नामि ।**

( शुक्लयजु० १ ११ )

मै आप सूर्यादिसहित विश्वको उत्पन्न करनेवाले ( मत्स्यभगवान् )को दोनो हाथ जोड़कर प्रणाम करता तथा नैवेद्यादि हव्य अर्पण करता हूँ । ( शतपथब्राह्मण प्रथमकाण्डमें इसी मन्त्रकी व्याख्यामें—'मनवे प्रातः मत्स्यः प्राणी प्रपेदे ।'' तस्य शृङ्गे नावः' पाशम्''''मनुरेवैकः परिशिष्ये ।''''आदिमें प्रथम बार पूरी मत्स्यावतारकी कथा कहीं आयी है । )

मत्स्यः पुनातु जगदोंकृतकुञ्चितास्यो ब्रह्माद्वयप्रणयपीवरमध्यभागः ।
क्रीडन्नसौ जलधिर्वीचिभिरेव नेतिनेत्यादरादविश्राणितपुच्छकल्पः ॥

( सदुक्तिदुर्गामृत अवन्तिकृष्णस्य )

ओंकार रूपमें, छोटे संकुचितवदन स्थूलमध्यभागवाले नेति-नेति ( अर्थात् हम ब्रह्म ऐसे नहीं; वैसे नहीं ) के भावसे इधर-उधर पूछ छटकाये अद्वय ब्रह्मस्वरूप मत्स्य भगवान् संसारको पवित्र करें ।

देव्याः श्रुतेर्दनुजदुर्णयदूषिताया भूयः समुद्गमविधावलम्बभूमिः ।
एकार्णवीभवदशेषपयोधिमध्यद्वीपं वपुर्जयति मीनतनोर्मुरारेः ॥

( सदुक्तिदुर्गा उमापतिधरस्य )

हयग्रीव नामक दैत्यकी दुर्नीतिसे पातालमें जाकर भगवती श्रुति दूषित हो गयीं थीं । उन्हे पुनः ब्रह्मसम्बन्धके आधारभूत होने तथा तभी समुद्रोंके एकत्र होनेके मूलकारण मूलद्वीपसे बने हुए मीन शरीरधारी श्रीभगवान्‌की जय हो ।

**दिश्याद् वः शकुलाकृतिः स भगवान्नैःश्रेयसीं सम्पदं यस्य स्फूर्जत्तुच्छपुच्छशिखरप्रेङ्खोलनक्रीडनैः ।**
**विष्वग्वार्धिसमुच्छलज्जलभरैर्मन्दाकिनीसंगतैर्गङ्गासागरसंगमप्रणयिनी जाता विहायःस्थली ॥**

( शार्ङ्गधर पद्धतौ १२३ )

जिनके क्रीडाविलासके समय तुच्छ पूँछके अन्तिम भागको चलानेसे गङ्गासहित समुद्रोंका जल एकत्र हो आकाशतक पहुँच कर रमणीय प्रेमस्थल बन गया, वे भगवान् मत्स्य आपको मुक्तिरूपी सम्पत्ति प्रदान करें ।

**पान्तु त्रीणि जगन्ति पार्श्वकषणप्रक्षुण्णदिङ्मण्डलेनैकाब्धिस्तिमितोदरः स भगवान् क्रीडाझषः केशवः ।**
**त्वङ्गन्निष्ठुरपृष्ठरोमखचितब्रह्माण्डभाण्डावधेर्यस्योत्फालकुतूहलेनेन कणिकामङ्गेषु जीर्णायितम् ॥**

( स्मृतितत्त्वौभट्ट रघुनन्दनस्य )

जिनके पार्श्वकेघर्षणसे दिङ्मण्डल क्षुब्ध हो रहे थे, समुद्र एकमें मिल गये थे, जिनकी लीलामयी उछालसे पीठके रोमोंद्वारा ब्रह्माण्ड चिह्नित हो रहे थे, वे बीजमूर्ति लीलामय मत्स्यरूपधारी केशव तीनों लोकोंकी रक्षा करें ।

## मत्स्यपुराण

( जगद्गुरु शंकराचार्य दक्षिणाम्नाय शृङ्गेरी शारदापीठाधीश्वर अनन्तश्रीविभूषित श्रीअभिनवविद्यातीर्थजी महाराजका आशीर्वाद )

मत्स्यपुराण अठारह पुराणोंमे एक है। **'सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च। वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्'** इस प्रमाण-वचनके अनुसार सभी पुराणोंमें सर्गवर्णनादि पाँच विषय होते हैं। मत्स्यपुराणमें भी ये विषय वर्णित हैं। साथही मनुष्यकी मनः-कामनाएँ पूर्ण करनेवाले अनेक प्रकारके व्रतोंका भी विशद वर्णन है। इसके पढ़नेसे अपने पूर्वजोंके पवित्र जीवनपद्धतिकी जानकारी होगी। 'कल्याण'पत्र तथा गीताप्रेसद्वारा सदा ही पवित्र ग्रन्थोंका प्रकाशन होता आया है। हम भगवान्‌से प्रार्थना करते है कि पुराने विशेषाङ्कोंके समान मत्स्यपुराणाङ्क भी धार्मिक जनोंके करपल्लवोंमें विराजकर अपनी जनकल्याणरूप लक्ष्यसिद्धि प्राप्त करे।

## मत्स्यपुराणकी दिव्यता

( लेखक—पूर्वाम्नाय पुरीपीठाधीश्वर जगद्गुरु शङ्कराचार्य अनन्तश्रीविभूषित श्रीनिरञ्जनदेवजी तीर्थजी महाराजके शुभाशीर्वाद )

मत्स्यपुराण महामत्स्यद्वारा राजा सत्यव्रत वैवस्वत मनु एवं सप्तर्षियोंको कथित अत्यन्त दिव्य एवं लोकोत्तर पुराण है। इसे सभी शैव, वैष्णव, शाक्त, सौर गाणपत्यादि सम्प्रदायोंके लोग समान आदरसे देखते हैं; क्योंकि इसमे लगभग आधे भागमे शिवमहिमा और शेषमे विष्णु, शक्ति, गणपति, सूर्यादिकी भी महामहिमा है। सभी मन्दिर एवं प्रतिमाके निर्माण-प्रतिष्ठादिके लिये यही ग्रन्थ मूलप्रतिरूपमें मान्य है। इसके व्रत-दानादिके प्रकरण भी बड़े महत्त्वके हैं। ऐसे दिव्य एवं प्रामाणिक ग्रन्थका अर्थसहित प्रकाशन, विशेषकर ऐसे समयमे जब कि संस्कृत साहित्यकी उपेक्षा भी हो रही है, सभी प्रकार अभिनन्दनीय है। भगवान् जगन्नाथ सबका कल्याण करें।

## मत्स्यपुराण

( पश्चिमाम्नाय श्रीद्वारकाशारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य अनन्तश्रीविभूषित स्वामी श्रीस्वरूपानन्दसरस्वतीजी महाराजका आशीर्वचन )

सुप्रसिद्ध धार्मिक पत्र 'कल्याण'का विशेषाङ्क मत्स्यपुराणाङ्क प्रकाशित हो रहा है, यह आनन्दकी बात है। भारतीय संस्कृतिमें पुराणोंकी बड़ी अद्भुत महिमा है। कहा गया है कि योग-जप-तप आदिसे भी शुभ ज्ञानकी प्राप्ति न हो तो मनुष्यको श्रद्धासे पुराणोंका श्रवण करना चाहिये। इससे दिव्य ज्ञान एवं भगवत्प्राप्तिपूर्वक मोक्षतक सहजमें ही सिद्ध हो जाता है। हम विशेषाङ्ककी सफलताके लिये मङ्गलाशंसा करते हुए भगवान् श्रीद्वारकाधीश श्रीचन्द्र-मौलीश्वरसे प्रार्थना करते हैं।

## धर्म-सदाचारका मूलस्रोत—मत्स्यपुराण

( तमिलनाडुक्षेत्रस्थ काञ्चीकामकोटिपीठाधिपति जगद्गुरु शङ्कराचार्य श्रीजयेन्द्रसरस्वतीजी महाराजका शुभाशीर्वाद )

प्रायः आजकल पुराणोंमें लोगोंकी श्रद्धा कम हो गयी है। यह प्रवृत्ति कैसे सुधरे—इसके लिये बड़ी चिन्ता होती है। पुराणानुशीलनसे परम लाभ है। इसके लिये जनताको 'कल्याण' पढ़ना चाहिये, क्योंकि यह पत्र पुराणों एवं इतिहासोंको एक कर यथासम्भव अपने विशेषाङ्कके रूपमें लोगोंकी सेवामें उपस्थित करनेमें सफल हुआ है। इससे हमें बड़ी प्रसन्नता होती है और हमारा उसके लिये परम आशीर्वाद है। हर्षकी बात है कि 'कल्याण'के इस प्रयाससे जनताकी अभिरुचि पुराणोंमें बढ़ेगी और वेदतत्त्वार्थका प्रकाश होगा।

# पुरुषार्थ-सिद्धिमें सहायक पुराण

( ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके पावन विचार )

जिस प्रकार त्रैवर्णिकोंके लिये वेदोंका स्वाध्याय नित्य करनेकी विधि है, उसी प्रकार पुराणोंका श्रवण भी सबको नित्य करना चाहिये—'**पुराणं शृणुयान्नित्यम्**' ( पद्म० स्वर्ग० ६२ । ५८ ) । पुराणोंमें अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष—चारों पुरुषार्थोंका बहुत ही सुन्दर निरूपण हुआ है तथा चारोंका एक-दूसरेके साथ क्या सम्बन्ध है—इसे भी भलीभाँति समझाया गया है । श्रीमद्भागवतमें कहा गया है—

**धर्मस्य ह्यापवर्ग्यस्य नार्थोऽर्थायोपकल्पते ।**
**नार्थस्य धर्मैकान्तस्य कामो लाभाय हि स्मृतः ॥**
**कामस्य नेन्द्रियप्रीतिर्लाभो जीवेत यावता ।**
**जीवस्य तत्त्वजिज्ञासा नार्थो यश्चेह कर्मभिः ॥**

( १ । २ । ९-१० )

'धर्म तो अपवर्ग-( मोक्ष या भगवत्प्राप्ति- ) का साधक है । धन प्राप्त कर लेना ही उसका प्रयोजन नहीं है । धनका भी अन्तिम साध्य है धर्म, न कि भोगोंका संग्रह । यदि धनसे लौकिक भोगकी ही प्राप्ति हुई तो यह लाभकी बात नहीं मानी जा सकती । भोग-संग्रहका भी प्रयोजन सदा इन्द्रियोंको तृप्त करते रहना ही नहीं है, अपितु जितनेसे जीवन-निर्वाह हो सके, उतना ही आवश्यक है । जीवके जीवनका भी मुख्य प्रयोजन भगवत्तत्त्वको जाननेकी सच्ची अभिलाषा ही है, न कि यज्ञादि कर्मोंद्वारा प्राप्त होनेवाले स्वर्गादि सुखोंकी प्राप्ति ।'

यह तत्त्व-जिज्ञासा पुराणोंके श्रवणसे भलीभाँति जगायी जा सकती है । इतना ही नहीं, सारे साधनोंका फल है—भगवान्‌की प्रसन्नता प्राप्त करना । यह भगवत्प्रीति भी पुराणोंके श्रवणसे सहजमें ही प्राप्त की जा सकती है । पद्मपुराणमें लिखा है—

**तस्माद् यदि हरेः प्रीतेरुत्पादे धीयते मतिः ।**
**श्रोतव्यमनिशं पुम्भिः पुराणं कृष्णरूपिणः ॥**

( स्वर्ग० ६२ । ६२ )

'इसलिये यदि भगवान्‌को प्रसन्न करनेमें अपनी बुद्धिको लगाना हो तो सभी मनुष्योंको निरन्तर श्रीकृष्ण-रूपधारी भगवान्‌के स्वरूपभूत पुराणोंका श्रवण करना चाहिये ।' इसीलिये पुराणोंका हमारे यहाँ इतना आदर रहा है ।

वेदोंकी भाँति पुराण भी हमारे यहाँ अनादि माने गये हैं, उनका रचयिता कोई नहीं है । सृष्टिकर्ता ब्रह्माजी भी उनका स्मरण ही करते हैं । पद्मपुराणमें लिखा है—

**पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम् ।**

( पद्म० सृष्टि० १ । ४५ )

इनका विस्तार सौ करोड़ ( एक अरब ) श्लोकोंका माना गया है—'**शतकोटिप्रविस्तरम्**' । उसी प्रसङ्गमें यह भी कहा गया है कि समयके परिवर्तनसे जब मनुष्योंकी आयु कम हो जाती है तथा इतने बड़े पुराणोंका श्रवण और पठन एक जीवनमें उनके लिये असम्भव हो जाता है, तब पुराणोंका संक्षेप करनेके लिये स्वयं सर्वव्यापी हिरण्यगर्भ भगवान् ही प्रत्येक द्वापरयुगमें व्यासरूपसे अवतीर्ण होते हैं और उन्हें अठारह भागोंमें बाँटकर चार लाख श्लोकोंमें सीमित कर देते हैं । पुराणोंका यह संक्षिप्त संस्करण ही भूलोकमें प्रकाशित होता है । कहते हैं कि स्वर्गादि लोकोंमें आज भी एक अरब श्लोकोंका विस्तृत पुराण विद्यमान है—

**कालेनाग्रहणं दृष्ट्वा पुराणस्य तथा विभुः ।**
**व्यासरूपस्तदा ब्रह्मा संग्रहार्थं युगे युगे ॥**
**चतुर्लक्षप्रमाणेन द्वापरे द्वापरे जगौ ।**
**तदाष्टादशधा कृत्वा भूलोकेऽस्मिन् प्रकाशितम् ॥**
**अद्यापि देवलोकेषु शतकोटिप्रविस्तरम् ।**

( पद्म० सृष्टि० १ । ५१-५३ )

इस प्रकार भगवान् वेदव्यास भी पुराणोंके रचयिता नहीं, अपितु संक्षेपक अथवा संग्राहक ही सिद्ध होते

हैं। इसीलिये पुराणोंको 'पञ्चम वेद' कहा गया है—'इतिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदम्' (छान्दोग्योपनिषद् ७।१।२)। उपर्युक्त उपनिषद्वाक्यके अनुसार यद्यपि इतिहास-पुराण दोनोंको ही 'पञ्चम वेद' की गौरवपूर्ण उपाधि दी गयी है, फिर भी वाल्मीकीय रामायण और महाभारत, जिनकी इतिहास संज्ञा है, क्रमशः महर्षि वाल्मीकि तथा वेदव्यासद्वारा प्रणीत होनेके कारण पुराणोंकी अपेक्षा अर्वाचीन ही हैं। इस प्रकार पुराणोंकी पुराणता—सर्वापेक्षया प्राचीनता सुतरां सिद्ध हो जाती है। इसलिये हमारे यहाँ वेदोंके बाद पुराणोंका ही सबसे अधिक सम्मान है, अपितु कहीं-कहीं तो उन्हें वेदोंसे भी अधिक गौरव दिया गया है। पद्मपुराणमें तो लिखा है कि—

**यो विद्याच्चतुरो वेदान् साङ्गोपनिषदो द्विजः।**
**पुराणं च विजानाति यः स तस्माद् विचक्षणः॥**
(सृष्टि० २।५०-५१)

'जो ब्राह्मण अङ्गों एवं उपनिषदोंसहित चारों वेदोंका ज्ञान रखता है, उससे भी बड़ा विद्वान् वह है, जो पुराणोंका विशेष ज्ञाता है।'

यहाँ श्रद्धालुओंके मनमें स्वाभाविक ही यह शङ्का हो सकती है कि उपर्युक्त श्लोकोंमें वेदोंकी अपेक्षा भी पुराणोंके ज्ञानको श्रेष्ठ क्यों बतलाया है। इस शङ्काका दो प्रकारसे समाधान किया जा सकता है। पहली बात तो यह है कि उपर्युक्त श्लोकके 'विद्यात्' और 'विजानाति'—इन दो क्रियापदोंपर विचार करनेसे यह शङ्का निर्मूल हो जाती है। बात यह है कि ऊपरके वचनमें वेदोंके सामान्य ज्ञानकी अपेक्षा पुराणोंमें विशिष्ट ज्ञानका वैशिष्ट्य बताया गया है, न कि वेदोंके सामान्य ज्ञानकी अपेक्षा पुराणोंके सामान्य ज्ञानका अथवा वेदोंके विशिष्ट ज्ञानकी अपेक्षा पुराणोंके विशिष्ट ज्ञानका। पुराणोंमें जो कुछ है, वह वेदोंका ही तो विस्तार—विशदीकरण है। ऐसी दशामें पुराणोंका विशिष्ट ज्ञान वेदोंका ही विशिष्ट ज्ञान है और वेदोंका विशिष्ट ज्ञान वेदोंके सामान्य ज्ञानसे ऊँचा होना ही चाहिये। दूसरी बात यह है कि जो बात वेदोंमें सूत्ररूपसे कही गयी है, वही पुराणोंमें विस्तारसे वर्णित है। उदाहरणके लिये परम तत्त्वके निर्गुण-निराकार रूपका तो वेदों-(उपनिषदों-) में विशद वर्णन मिलता है, परंतु सगुण-साकार-तत्त्वका बहुत ही संक्षेपसे कहीं-कहीं वर्णन मिलता है। ऐसी दशामें जहाँ पुराणोंके विशिष्ट ज्ञाताको सगुण-निर्गुण दोनों तत्त्वोंका विशिष्ट ज्ञान होगा, वेदोंके सामान्य ज्ञाताको प्रायः निर्गुण-निराकारका ही सामान्य ज्ञान होगा। इस प्रकार उपर्युक्त श्लोककी संगति भलीभाँति बैठ जाती है और पुराणोंकी जो महिमा शास्त्रोंमें वर्णित है, वह अच्छी तरह समझमें आ जाती है।

[पुराणोंमें भी मत्स्यपुराणका विशिष्ट स्थान है। इसके अध्ययनसे पुरुषार्थ-सिद्धिके विविध उपाय ज्ञात होते हैं, जिनके अनुष्ठानसे मनुष्य अपना कल्याण कर सकता है।]

# मत्स्यजयन्ती और मत्स्यद्वादशीका परिचय

पुराणोंके अनुसार चैत्र शुक्ला तृतीयाको कृतमाला नदीके जलसे प्रकट होकर मत्स्य भगवान् राजा सत्यव्रतके हाथमें आये, अतः यह उनकी जयन्ती-तिथि है। मार्गशीर्ष शुक्ला द्वादशीको मत्स्यद्वादशी कहते हैं। यह उनको विशेष अर्चाकी तिथि है। इन दोनों दिनोंमें शास्त्रोक्त विधिके अनुसार उपवास रहकर तथा भगवान्‌की प्रतिमा बनाकर षोडशोपचार अर्चन, पूजन और दानादि द्वारा मत्स्य भगवान् की विशेष आराधना करनी चाहिये।

# मत्स्यपुराण-महिमा

( पूज्यपाद श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी )

पुराणोमे जगत्की आरम्भावस्था—सृष्टि-क्रियासे लेकर प्रलयतकका विवरण प्राप्त होता है। पुराण कहते हैं पुरानी वस्तुको। पुराणोंका नाम तो वेदोंमें भी है, अत. पुराण वेदोंके ही सदृश हैं। वेद दुरूह हैं। उनका ज्ञान सभीको नहीं हो सकता। पुराण अत्यन्त सरल हैं। इसे सभी वर्ग एव आश्रमके लोग पढ सकते हैं, सुन सकते हैं, समझ सकते हैं। अतः पुराण सर्वोपयोगी हैं।

वस्तुतः पुराणोमे सब कुछ है। इतना बड़ा साहित्य संसारकी किसी भाषामें नहीं है। पुराण शतकोटि ( अगणित ) श्लोक-प्रविस्तर हैं। ब्रह्माजीने सभी शास्त्रोंसे पहले पुराणोकी ही रचना की। ये सब शास्त्रोंसे उत्तम हैं, इनके अध्ययनसे सभी प्रकारका ज्ञान हो सकता है। पुराण, महापुराण, उपपुराण, क्षुद्रपुराण—इस प्रकार पुराणोंके अनेक भेद हैं। इस प्रकारके ५५ पुराण तो अभीतक उपलब्ध हो चुके हैं। प्रमुख पुराण १८ हैं।

पुराणोकी महत्ता उनके श्रद्धापूर्वक श्रवण-मनन और निदिध्यासनसे ही समझमें आती है। वामनपुराण, गरुडपुराण, कूर्मपुराण आदि पुराण छोटे हैं। स्कन्द, पद्म, श्रीमद्भागवत, बृहन्नारदीय, शिव, विष्णु और वाराह—ये बडे पुराण हैं, इनकी श्लोक-संख्या १७ हजारसे ८१ हजारतक है। मत्स्यपुराणकी श्लोक-संख्या चौदह हजार है। यह तामस ( शैव ) पुराण है। पद्मपुराणमें बताया गया है कि सृष्टिके प्रारम्भमे जब हयग्रीवनामक असुर समस्त शास्त्रोको चुराकर पातालमें चला गया, तब भगवान्ने मत्स्यावतार धारणकर वेदोंका उद्धार किया और एक नौकाको खींचते हुए महाराज मनुको पुराणकी कथा सुनायी। वही मत्स्यपुराण हुआ।*

वैसे तो मत्स्यपुराण बहुत बड़ा रहा होगा, किंतु भगवान् वेदव्यासजीने उसका संक्षेप कर १४ सहस्र श्लोकोका स्वरूप निर्धारित किया।

यह सम्पूर्ण पुराण २९१ अध्यायोमें वर्णित है। बहुत-सी कथाएँ जो अन्य पुराणोंमें संक्षिप्त हैं, वे इसमें विस्तारसे वर्णित हैं। पहले ही अध्यायमें मत्स्यावतारकी कथा है और इसके बाद मनु महाराजका मत्स्यभगवान्से संवाद है। पुनः ६ अध्यायोमें सृष्टिकी उत्पत्ति है तथा इसके बाद पृथ्वी दोहन और चार अध्यायोमें सूर्यवंश और पितृ-वंशका वर्णन है। फिर ७ अध्यायोमें श्राद्धोंका वर्णन है। २२ अध्यायोमें चन्द्रवंशके राजाओंका वर्णन तथा दो अध्यायोमें श्रीकृष्ण-चरित है। ३ अध्यायोमें ययातिके अन्य पुत्रोका वर्णन है। फिर अग्निवंश, कर्मभोग और पुराणोकी संख्या वर्णित है। ४८ अध्यायोमें विविध व्रतों, दान, ग्रहशान्ति आदिका वर्णन है। एक अध्यायमें स्नानका महत्त्व बताकर फिर तीर्थोंका माहात्म्य बताया गया है। १० अध्यायोमें तीर्थराज प्रयागका विस्तारसे वर्णन है। इतने विस्तारसे प्रयागराजका वर्णन अन्य पुराणोंमें नहीं है। १६ अध्यायोमें भूगोल-खगोल, भारतवर्षके द्वीप, नदी, ग्रह, नक्षत्र, ज्योतिश्चक्र सूर्यरथादिका वर्णन है। फिर १२ अध्यायोमें मयद्वारा त्रिपुर-रचना तथा शिवजीद्वारा उनके विध्वंसका वर्णन, फिर अमावास्या और पितृ-महत्त्व बताकर ४ अध्यायोमें युगोंका तथा मन्वन्तरोंका वर्णन, तदनन्तर १५ अध्यायोमें तारकासुरकी कथा विस्तारसे वर्णित है। फिर तीन अध्यायोमें नृसिंह-चरित्र है। तदनन्तर चतुर्युगगति, यज्ञावतार वर्णन और मार्कण्डेय मुनिकी कथाएँ, कालनेमि, अन्धक तथा शंकरजीकी कथाएँ हैं। काशी-

---

* अङ्गानि चतुरो वेदान् पुराणन्यायविस्तरम्। असुरेणाखिलं शास्त्रमपहृत्यात्मसात्कृतम्॥
मत्स्यरूपेणाजहार कल्पादावुदकार्णवे। अशेषमेतदब्रवीदुदकान्तर्गतो विभुः॥ ( पद्मपुराण)

माहात्म्य, नर्मदा-माहात्म्य है। फिर ऋषियोंके नाम-गोत्र तथा वंशवर्णन है तथा धेनुदान, मृगचर्मदान एवं वृषोत्सर्गका वर्णन है। तदनन्तर ७ अध्यायोमें सती-सावित्रीकी कथा और १३ अध्यायोमें राजधर्मोंका विस्तारसे वर्णन है। पुनः शान्ति-विधान, यात्राकाल, अङ्गोंके स्फुरणका फल, स्वप्नोंका फल, यात्राके शकुनोंका फल आदिका वर्णन है। वामनावतार, फिर वाराहावतारकी कथा तथा समुद्र-मन्थनका वर्णन एवं प्रासाद-गृह-निर्माण-सम्बन्धी वास्तुविद्याका विधान है। फिर १२ अध्यायोमें देवमन्दिरोंका निर्माण, देव-प्रतिष्ठा आदिका वर्णन और कलियुगमें होनेवाले राजाओंका कथन है। तदनन्तर १६ अध्यायोमें षोडश महादानोंका वर्णन करके एक अध्यायमें कल्पोंका वर्णन किया गया है। पुराणके अन्तमें इसके श्रवण-पठनका माहात्म्य बताते हुए कहा है—यह पुराण परम पवित्र है, आयुको बढ़ानेवाला है। यह कीर्तिकी वृद्धि करनेवाला है। यह पवित्र है, कल्याण करनेवाला है, महापापोंका भी नाश करनेवाला तथा शुभ है। इस पुराणके एक श्लोकके एक पादको भी जो कोई पढ़ता है, वह भी पापोंसे विमुक्त हो जाता है। वह श्रीमन्नारायणके पदको प्राप्त कर लेता है। वह कामदेवके सदृश सुन्दर हो जाता है तथा दिव्य सुखोंका भोग करता है।*

मत्स्यादि पुराणोंमें बड़ी ही सुन्दर सरस सुखद शिक्षाप्रद कथाएँ हैं। उनके पठनसे मनोरञ्जनके साथ-ही-साथ धार्मिक शिक्षा भी प्राप्त होती है।

---

# सनातन संस्कृतिका मूर्तरूप पुराण

( नित्यलीलालीन परमश्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार )

भारतीय संस्कृत-साहित्य-सागर अनन्त रत्नराशिसे पूर्ण है। उन रत्नोंमें पुराणका स्थान अत्यन्त महत्त्वका है। पुराण अध्यात्मशास्त्र है, पुराण दर्शनशास्त्र है, पुराण धर्मशास्त्र है, पुराण नीतिशास्त्र है, पुराण तन्त्र-मन्त्र-शास्त्र है, पुराण कलाशास्त्र है, पुराण इतिहास है, पुराण जीवनी-कोष है, पुराण सनातन आर्य-संस्कृतिका स्वरूप है और पुराण वेदकी सरस और सरलतम व्याख्या है। पुराणमें तीर्थ-रहस्य और तीर्थमाहात्म्य है, पुराणमें तीर्थोंका इतिहास और उनकी विस्तृत सूची है, पुराणमें परलोक-विज्ञान, प्रेत-विज्ञान, जन्मान्तर और लोकान्तर-रहस्य, कर्म-रहस्य तथा कर्म-फलनिरूपण, नक्षत्र-विज्ञान, रत्नविज्ञान, आयुर्वेद और शकुनशास्त्र आदि-आदि इतने महत्त्वपूर्ण और उपादेय विषय हैं कि जिनकी पूरी जानकारीके साथ व्याख्या करना तो बहुत दूरकी बात है, बिना पढ़े पूरी सूची बना पाना भी प्रायः असम्भव है। ऐसे महत्त्वपूर्ण विषयोंपर इतनी गम्भीर गवेषणा तथा सफल अनुसंधान करके उनका रहस्य सरल भाषामें खोल देना पुराणोंका ही काम है। पुराणोंको आधुनिक माननेवाले और बतलानेवाले विद्वान् केवल बाहरी प्रमाणोंपर ही ध्यान देते हैं, पुराणोंके अन्तस्तलमें प्रवेश करके उन्होंने उनको नहीं देखा। यथार्थतः उन्होंने पुराणोंकी ज्ञानपरम्परापर भी दृष्टिपात नहीं किया। वस्तुतः पुराणोंमें जो कहीं-कहीं कुछ न्यूनाधिकता—उसमें विदेशी तथा विधर्मियोंके आक्रमण-अत्याचारसे ग्रन्थोंकी दुर्दशा—हुई उससे उसके बहुत-से अंश आज उपलब्ध नहीं हैं। फिर भी इससे पुराणोंकी मूल महत्ता तथा प्राचीनतामें कोई बाधा नहीं आती।

---

* एतत् पवित्रमायुष्यमेतत् कीर्तिविवर्धनम्। एतत् पवित्रं कल्याणं महापापहरं शुभम्॥
अस्मात् पुराणादपि पादमेकं पठेत्तु यः सोऽपि विमुक्तपापः। नारायणाख्यं पदमेति नूनं अनङ्गवद्दिव्यसुखानि भुङ्क्ते॥
( मत्स्यपु० २९० । २९-३० )

## एक ही परमतत्त्व

पुराणोंमें भक्ति एवं ज्ञानकी बातें भरी हैं। सत्-चित्-आनन्दरूप परमात्मा एवं परात्पर ब्रह्म एक हैं, ब्रह्म सर्वदा सर्वथा पूर्ण, सर्वग, सर्वगत, सर्वज्ञ, अनन्त, विभु है, वह सर्वातीत है, सर्वरूप है। सम्पूर्ण देशकालातीत है, सम्पूर्ण देश-कालमय है। वह नित्य निराकार, नित्य निर्गुण है, वह नित्य साकार, नित्य सगुण है। अवश्य ही उसकी आकृति पाञ्चभौतिक नहीं और उसके गुण त्रिगुणजनित नहीं हैं। वह ब्रह्म स्वरूपतः नित्य एकमात्र होते हुए ही स्वरूपतः ही अनादिकालसे विविध स्वरूपसम्पन्न, विविध शक्तिसम्पन्न एवं विविध शक्ति-प्रकाश-प्रक्रिया-सम्पन्न है। नित्य एक होते हुए ही उसकी नित्य विभिन्न पृथक् सत्ता है। उन्हीं पृथक् रूपोंके नाम शिव, विष्णु, शक्ति, राम, कृष्ण, वामन, कूर्म, गणेश आदि हैं। वह एक ही अनादिकालसे इन विविध रूपोंमें अभिव्यक्त है। ये सभी स्वरूप नित्य शाश्वत आनन्दमय ब्रह्मरूप ही हैं।

**सर्वे नित्याः शाश्वताश्च देहास्तस्य परात्मनः।**
**हानोपादानरहिता नैव प्रकृतिजाः क्वचित्॥**
**परमानन्दसंदोहा ज्ञानमात्राश्च सर्वतः।**
**सर्वे सर्वगुणैः पूर्णाः सर्वदोषविवर्जिताः॥**

'परात्पर ब्रह्मके वे सभी रूप नित्य शाश्वत परमात्म-स्वरूप हैं। उनके देह जन्म-मरणसे रहित होकर स्वरूपभूत हैं, वे प्रकृतिजनित कदापि नहीं हैं। वे परमानन्दसन्दोह हैं, सर्वतोभावेन ज्ञानैकस्वरूप हैं, वे सभी समस्त भगवद्गुणोंसे परिपूर्ण हैं एवं सभी दोषोंसे (माया-प्रपञ्चसे) सर्वथा रहित हैं।'

ब्रह्म, परमात्मा और भगवान् एक ही अद्वय परम सत्य तत्त्वके लीलानुरूप तीन नाम हैं। इस परम तत्त्व भगवान्के भ्रूकुटिविलासके लीलामात्रसे सृष्टिका निर्माण और संहार हो सकता है। ये भगवान् निर्गुण (प्राकृत गुणोंसे रहित), सर्वेश्वर, प्रकृतिसे परे और परमात्मा हैं। ये सब जीवोंसे निर्लिप्त हैं और उनमें लिप्त भी हैं। ये (भौतिक रूपसे रहित) निराकार और (स्वस्वरूपमें स्थित) साकार, सर्वव्यापी और स्वेच्छामय हैं। 'योगिगण' इन्हे 'सनातन परब्रह्म' कहते हैं और रात-दिन इन सर्वमङ्गलमय सत्यस्वरूप परमात्माका ध्यान करते रहते हैं। ये स्वतन्त्र तथा समस्त कारणोंके भी कारण हैं। प्रलयके समय सर्वबीज-स्वरूपा प्रकृति इनमें लीन रहती है और सृष्टिके समय प्रकट होकर क्रियाशीला हो जाती है। यह प्रकृति भगवान्की निज अभिन्ना शक्ति है और लीलानुसार अप्रकट या प्रकटरूपमें इनमें वैसे ही सदा-सर्वदा रहती है—जैसे अग्निमें उसकी दाहिका शक्ति रहती है। इस शक्तिके साथ किस प्रकारकी सृष्टि कैसे होती है—इस विषयका सुविशद विवरण पुराण प्रस्तुत करते हैं। इसके सिवाय पुराण धर्मके विविध रूपोंको सामने रखकर जीवनकी साधनाको संबल देते हैं। पुराणोंकी बडी महिमा है।

पुराणोंके द्वारा युगोनरु धर्मका प्रचार होता आया है। भगवत्तत्त्वके प्रकाशन, तथा विविध आख्यानों, उपाख्यानोके सिवा धर्मकी विशद व्याख्या पुराणोका प्रमुख उद्देश्य है। आज उनके प्रचारके अभावमें धर्मकी स्थिति डावाँडोल हो उठी है। धर्म-भावनाके अभावमें देशका वास्तव स्वरूप बिगडता जा रहा है। अपना देश धर्मप्राण देश है। अत पुराणोंके प्रचारके द्वारा धर्मस्थापनका कार्य बडे महत्त्वका होगा। सभीको सचेष्ट होकर इसपर प्रयत्नशील होना चाहिये। पुराण हमारी संस्कृति और जीवन-तत्त्वोके सुधारक अनमोल ग्रन्थ है। इनका प्रचार, श्रवण, पठन-पाठन अत्यन्त उपयोगी एवं आवश्यक कर्तव्य है।

# पुराणोंकी उपयोगिता

( परम श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज )

वेदोंकी जो मुख्य-मुख्य बातें हैं, उन्हींको पुराणोंमें कथाओंद्वारा बताया गया है, जिससे वेदोंकी गहरी बातें भी सुगमतासे मनुष्योंकी समझमें आ जायँ। मनुष्योंके कल्याणके लिये जितनी उपासनाएँ हैं, साधन हैं, उन सबका वर्णन स्पष्टतया पुराणोंमे आता है। समय, अध्ययन ( शिक्षा ), विचार, भाव आदिके बदल जानेसे आज पुराणोंकी सब बातें हमारी समझमें नहीं आ रही हैं। फिर भी यदि हम आस्तिकभावसे पुराणोंका अध्ययन करें और उसके अनुसार अपना जीवन बनायें तो व्यवहार और परमार्थकी विचित्र विचित्र बातें हमारी समझमें आ सकती हैं। अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंका वर्णन पुराणोंमें आता है; अतः पुराणोंसे प्रत्येक मनुष्य लाभ उठा सकता है।

पुराणोंमे यह 'मत्स्यपुराण' है। इसमें बहुत उपयोगी सामग्रियाँ वर्णित हैं। हमें ऐसे ग्रन्थोंको पढना चाहिये और अपने-अपने घरोंमें संग्रहरूपसे रखना चाहिये; क्योंकि आगेका समय बड़ा भयंकर आ रहा है, जिसमें इन ग्रन्थोंका संरक्षण होना कठिन प्रतीत हो रहा है। अभी तो हमें भगवत्कृपासे मत्स्यपुराण आदि ग्रन्थ पढने एवं देखनेको मिल रहे हैं। इसलिये इन ग्रन्थोंसे अधिक-से-अधिक लाभ उठा लेना चाहिये।

# मत्स्यपुराणका संक्षिप्त परिचय

( ले०—पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा )

मत्स्यपुराण सभी पुरुषार्थप्रद है। ( म० पु० २९१।१ ) आश्वलायन श्रौतसूत्रके अनुसार अश्वमेधयज्ञके पारिप्लवमें प्रति ८वें दिन इसका पाठ होता था—**'अष्टमेऽहनि मत्स्यः ···सामन्दः···। मत्स्याः पुञ्जिष्ठाः, पुराणविद्या वेदः सोऽयमिति पुराणमाचक्षीत।'** ( आश्व० २।४।७।८ ) और वर्षभरमें इसकी दस आवृत्तियाँ होती थीं। फिर इसके बाद प्रति तीसरे दिन **'वेदानां सामवेदोऽस्मि'**से प्रसिद्ध सामवेदकी आवृत्ति होती थी। इसीलिये इसे वेदके समान ही अनादि एवं आदरणीय कहा गया है—**पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्। अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः॥** ( मत्स्य० ३।३[1] )

कहते हैं—पुराणसंहिता मुख्यतः इसीका नाम है[2]—**'पुराणसंहिता चेयं'** ( भाग० ८।२४।५४-५५ )। यद्यपि महाभारतमें किसी पुराणका नाम नहीं आया, पर उस ( ६।१८७।५७-५८ )में इसका नाम स्पष्टरूपसे आया है—

**इत्येतन्मात्स्यकं नाम पुराणं परिकीर्तितम्।**

भाषाकी मनोरमता एवं निरूपणशैलीमे यह काव्यों, उपन्यासोंसे भी श्रेष्ठ है। इसकी कार्तवीर्य सहस्रार्जुन-चरित्र आदिकी पदावली अनेक शब्दालंकारोंको आत्मसात् कर सरस प्राञ्जल भाषा और साहित्यका परमोत्कृष्ट अद्भुत आदर्शरूप प्रस्तुत करती है[3]। इसीलिये कालिदासके रघुवंश, विक्रमोर्वशीय, शाकुन्तल, मालविकाग्नि-मित्रका तथा अन्य कवियोंका भी यह मुख्य उपजीव्य रहा है।[4] ज्यौतिष वर्णनमें यह सूर्यसिद्धान्त, सिद्धान्तशिरोमणि आदिको मात करता है। इसका दान-प्रकरण[5] अ० ८२-९२, २०५—

१—यह श्लोक मत्स्यपु० ३।३-४, ५३।३, वायुपुराण १।६०, शिवपुराण वायवी० १।३१-३२, ब्रह्माण्डपु० १।१००, मार्कण्डेयपु० ४५।२०, ब्रह्म० १६१।२७, पद्मपु० १।१।५४ आदि बीसों स्थलोंपर प्राप्त होता है। पुर्- अग्रगमने ( ६।४५ ) धातु तथा 'पुरा ह्यनति' वायु० १।२०३ से भी यही सिद्ध है। २—विष्णुपु० १।१।२६मे वह भी इस नामसे निर्दिष्ट है। ३—It is a Composition of considerable interest' ( Wills Visnu ) ४—इसमे शकुन्तलाना० का०अ० ४५—४७मे उर्वशी-पुरूरवाका अ० १२—१४, ११५—१८मे, तथा रघुवंश ३।१५के चन्द्रकला-पानका मूल इसी अङ्कके पृ० ११५ पर देखना चाहिये। अमरुशतक २ पर त्रिपुरवृत्तका प्रभाव है। ५—'बल्लालसेनके दानसागर तथा लक्ष्मीधरके सभी निबन्धोंमें सभी पुराणोंसे अधिक इसी मत्स्यपुराणके प्रायः साढ़े छः सौ ( ६४७ ) दानसम्बन्धी श्लोक संगृहीत हैं।

६ षोडश महादान, कल्पलतादानादि २७४–८९, दानसागर, अपरार्क, हेमाद्रि, दानकल्पतरु, दान-चन्द्रिका, दानमयूख आदि सैकड़ों दान-निबन्धोंमें तथा अध्याय ५४–८१ अ० ९५–१०१ सभी व्रतराज, व्रतरत्न, कल्पद्रुम आदि व्रतनिबन्धों तथा पद्मपुराणमें उद्धृत हैं। इसी प्रकार इसका श्राद्धप्रकरण अ० १४, हेमाद्रि, स्मृतिचन्द्रिकादि श्राद्धनिबंधों, प्रयाग-नर्मदादि-माहात्म्यके (अ० १०२–१२) तीर्थप्रकरण—तीर्थकल्पतरु, तीर्थप्रकाश, तीर्थाङ्क आदिमें, अ० १९५–२०२ तकके गोत्रप्रवरके अध्याय 'गोत्रप्रवर-निबन्धकदम्ब'में तथा इसके राजनीतिप्रकरण २१५–२४० तकके २५ अध्याय, राजनीतिरत्नाकर, राजनीति-प्रकाश, सिद्धान्त वर्ष ११में संगृहीत है। इस पुराणके प्रारम्भमें प्राप्त मत्स्यावतारँवर्णन, प्रलय-जलप्लावन, नौसंतरण आदिकी कथा सभी धर्मग्रन्थों ( जेंद, बाईबिल ओल्डटै-स्टामेंट, कुरान आदि ) में मिलती हैं। कच-देवयानी, सावित्री आदिकी त्रिपुरवध, पार्वती-परिणय, पुरूरवा-वृत्त विभूतिद्वादशी आदिव्रतोंकी कथाएँ सुन्दर हैं।

**मत्स्यपुराणके मार्मिक उपदेश**—मत्स्यपुराणके नीति सम्बन्धी सभी श्लोक विष्णुशर्माने पञ्चतन्त्रमे, नारायणने हितोपदेश ३। ५५आदिमे सोमदेवादिने,'नीतिवाक्यामृत' आदिमें तथा शार्ङ्गधर, वल्लभदेवादिने अपनी पद्धतियोंमें भी संगृहीत किये हैं। ययाति अपने पुत्र पूरुसे मधुर भाषण करने और कटुवाणीसे दूर रहनेका उपदेश देते हुए कहते हैं—'कटुवचनरूप बाणसे आहत होकर मनुष्य रात-दिन शोक और चिन्तामें डूबा रहता है। अतः विद्वान् पुरुष ऐसी वाणीका कभी प्रयोग न करे—( श्लोक पृष्ठ १२७ पर इसी अङ्कमें देखें। ) ये श्लोक शुक्रनीति १। ३६९–७०, कामन्दक ३। ३।३२, विशेषकर महाभारत १। ८६। ८-१३, उद्योगपर्व ३४। ७४-८२, अनुशासन १०४। २५-३२ तथा पूर्वोक्त सभी सुभाषितोंमें भी संगृहीत हैं। मुख्य पङ्क्ति है—**'यैराहतः शोचति रात्र्यहानि।' तान् पण्डितो नावसृजेत् परेभ्यः।'** सबके प्रति दया-प्रेमका व्यवहार, दान, मृदुभाषणसे बढ़कर तीनों लोकोंको वशमें करनेवाला कोई उपाय नहीं है। ( देखिये पृ० १२७ पर श्लोक १२-१३ और उनका अर्थ। ) उपासनाद्वारा सूर्यसे आरोग्य, अग्निसे धन, शिवसे ज्ञान और भगवान् जनार्दनसे मोक्ष प्राप्त करे—( ६८। ४१७) मत्स्यपुराणके अ० २०४की पितृगाथामें कहा गया है कि बड़ा अच्छा होता कि हमारे कुलमें कोई ऐसा व्यक्ति उत्पन्न होता, जो सर्वात्मना भगवान् श्रीहरिकी शरणमें जाता—**'अपि स्यात् संकुलेऽस्माकं सवभावेन यो हरिम्। प्रयायाच्छरणं विष्णुं देवेशं मधुसूदनम्।** ( १६ ) सावित्र्युपाख्यान ( २०८।१३ )[१०] में सावित्री—भले-बुरे सभी लोगोंकी गति साधु संतोंको ही बतलाती है—**साधूनां वाप्यसाधूनां संत एव सदा गतिः।** (२११। २)

आचार्य ब्रह्माकी, पिता प्रजापतिकी, माता पृथ्वीकी, और भाई स्वयं अपनी ही मूर्ति है। (२११। २१)। माता-पिताके उपकारों, क्लेशोंका बदला चुकाना कभी सम्भव नहीं ( २२ )। इसमें एक स्थानपर गजेन्द्रमोक्षके पठनश्रवणसे दुःस्वप्न-दोष नष्ट होनेकी भी बात कही गयी है (२४२।५६)। इसके अतिरिक्त कृत्यकल्पतरु खण्ड ३, नियत-कालकाण्ड आदिके पृ० ४५२–५४ आदिमें मत्स्यपुराणके नामसे गोसेवा-वृषोत्सर्ग आदिके ३७ ऐसे श्लोक भी उद्धृत हैं, जो आजके संस्करणमें उपलब्ध नहीं हैं। इससे इस पुराणके पूर्वके कलेवरके कुछ और बड़े होनेकी भी सम्भावना दीखती है।

---

६–भगवान्के अतिरिक्त मत्स्य अर्थमें मत्स्य भी बहुतेरे हैं।–( क ) ऋग्वेदके एक आचार्य, ( ख ) मत्स्यद्वीप, ( ग ) एक नदी मत्स्यपुराण ( २२।४९ ), ( घ ) भारतका—अलवरके पासका 'मत्स्यदेश' जिसे सूचित करते पा० ४।१।१७० मे ( मत्स्य )के स्थानपर 'मत्स' हो गया है ( ङ )मत्स्य शिला, तथा ( च० ) उपरिचरवसुके पुत्र राजा विराट आदि। ८–आरोग्यं भास्करादिच्छेद्धनमिच्छेद्धुताशनात्। ईश्वराज्ज्ञानमिच्छेच्च मोक्षमिच्छेज्जनार्दनात्॥ १०–यह आख्यान महाभारत, ३१० तथा विष्णुधर्मोत्तर पुराणखण्ड २ के ३६-४३ अध्यायोंमें भी प्रायः इसी प्रकार प्राप्त होता है।

श्रीमत्स्यावतार

ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः

श्रीमद्वेदव्यासप्रणीत

# मत्स्यमहापुराण

## पहला अध्याय

### मङ्गलाचरण, शौनक आदि मुनियोंका सूतजीसे पुराणविषयक प्रश्न, सूतद्वारा मत्स्यपुराणका वर्णनारम्भ, भगवान् विष्णुका मत्स्यरूपसे सूर्य-नन्दन मनुको मोहित करना, तत्पश्चात् उन्हें आगामी प्रलयकालकी सूचना देना

प्रचण्डताण्डवाटोपे प्रक्षिप्ता येन दिग्गजाः। भवन्तु विघ्नभङ्गाय भवस्य चरणाम्बुजाः॥ १॥

पातालादुत्पतिष्णोर्मकरवसतयो यस्य पुच्छाभिवाता-
दूर्ध्वं ब्रह्माण्डखण्डव्यतिकरविहितव्यत्ययेनापतन्ति।
विष्णोर्मत्स्यावतारे सकलवसुमतीमण्डलं व्यश्नुवाना-
स्तस्यास्योदीरितानां ध्वनिरपहरतादश्रियं वः श्रुतीनाम्॥ २॥*

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्। देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत्॥ ३॥
अजोऽपि यः क्रियायोगान्नारायण इति स्मृतः। त्रिगुणाय त्रिवेदाय नमस्तस्मै स्वयम्भुवे॥ ४॥

प्रचण्ड वेगसे प्रवृत्त हुए ताण्डव नृत्यके आवेशमें जिनके द्वारा दिग्गजगण दूर फेंक दिये जाते हैं, उन भगवान् शंकरके चरणकमल ( हम सभीके ) विघ्नोंका विनाश करें। मत्स्यावतारके समय पाताललोकसे ऊपरको उछलते हुए जिन भगवान् विष्णुकी पूँछके आघातसे समुद्र ऊपरको उछल पड़ते हैं तथा ब्रह्माण्ड-खण्डोंके सम्पर्कसे उत्पन्न हुई अस्त-व्यस्तताके कारण सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डलको व्याप्त करके पुनः नीचे गिरते हैं, उन भगवान्‌के मुखसे उच्चरित हुई श्रुतियोंकी ध्वनि आपलोगोंके अमङ्गलका विनाश करे। नारायण, नरश्रेष्ठ नर तथा सरस्वतीदेवीको नमस्कार कर तत्पश्चात् जय† (महाभारत, पुराण आदि )का पाठ करना चाहिये। जो अजन्मा होनेपर भी क्रियाके सम्पर्कसे 'नारायण' नामसे स्मरण किये जाते हैं, त्रिगुण ( सत्त्व, रजस्, तमस् ) रूप हैं एवं त्रिवेद ( ऋक्, यजुः, साम ) जिनका स्वरूप हैं, उन स्वयम्भू भगवान्‌को नमस्कार है॥ १-४॥

---

* ग्रन्थकारके दो मङ्गल-श्लोकोंमें शिव-विष्णुकी वन्दनासे ग्रन्थकी गम्भीरता एवं शिव-विष्णु-उभयपरकता सिद्ध होती है। ४। २८ आदिमें भी शिवसे ही सृष्टि निर्दिष्ट है।

† महाभारतकी नीलकण्ठी व्याख्या एवं भविष्यपुराण १। ४। ८६—८८के—'अष्टादश पुराणानि रामस्य चरितं तथा। विष्णुधर्मादयो धर्माः शिवधर्माश्च भारत॥ कार्ष्णं वेदं पञ्चमं च यन्महाभारतं विदुः।···जयेति नाम चैतेषां प्रवदन्ति मनीषिणः॥'—इस वचनके अनुसार रामायण, महाभारत तथा सभी पुराण, विष्णुधर्म, शिवधर्म आदि 'जय' कहे जाते हैं।

सूतमेकाग्रमासीनं नैमिषारण्यवासिनः। मुनयो दीर्घसत्रान्ते पप्रच्छुर्दीर्घसंहिताम्॥ ५॥
प्रवृत्तासु पुराणीषु धर्म्यासु ललितासु च। कथासु शौनकाद्यास्तु अभिनन्द्य मुहुर्मुहुः॥ ६॥
कथितानि पुराणानि यान्यस्माकं त्वयानघ। तान्येवामृतकल्पानि श्रोतुमिच्छामहे पुनः॥ ७॥
कथं ससर्ज भगवाँल्लोकनाथश्चराचरम्। कस्माच्च भगवान् विष्णुर्मत्स्यरूपत्वमाश्रितः॥ ८॥
भैरवत्वं भवस्यापि पुरारित्वं च केन हि। कस्य हेतोः कपालित्वं जगाम वृषभध्वजः॥ ९॥
सर्वमेतत् समाचक्ष्व सूत विस्तरशः क्रमात्। त्वद्वाक्येनामृतस्येव न तृप्तिरिह जायते॥ १०॥

एक बार दीर्घकालिक यज्ञकी समाप्तिके अवसरपर नैमिषारण्यनिवासी शौनक आदि मुनियोंने एकाग्रचित्तसे बैठे हुए सूतजीका बारंबार अभिनन्दन करके उनसे पुराणसम्बन्धिनी धार्मिक एवं सुन्दर कथाओंके प्रसङ्गमें इस दीर्घसंहिता ( अर्थात् मत्स्यपुराण )के विषयमें इस प्रकारकी जिज्ञासा प्रकट की—'निष्पाप सूतजी ! आपने हमलोगोंके प्रति जिन पुराणोंका वर्णन किया है, उन्हीं अमृत-तुल्य पुराणोंको पुनः श्रवण करनेकी हमलोगोंकी अभिलाषा है। मुने! पद्मयोनि ब्रह्माजीने कैसे इस चराचर विश्वकी सृष्टि की तथा उन भगवान् विष्णुने किस कारण मत्स्यका रूप धारण किया था? साथ ही शंकरजीको भी भैरवत्व एवं पुरारित्व पदवी किस निमित्तसे प्राप्त हुई? तथा वे वृषभध्वज कपाल-मालाधारी कैसे हो गये? सूतजी! इन सबका क्रमशः विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये; क्योंकि इस विषयमें आपके अमृत-सदृश वचनोंसे मुझलोगोंको तृप्ति नहीं हो रही है॥ ५-१०॥

सूत उवाच

पुण्यं पवित्रमायुष्यमिदानीं शृणुत द्विजाः। मात्स्यं पुराणमखिलं यज्जगाद गदाधरः॥ ११॥
पुरा राजा मनुर्नाम चीर्णवान् विपुलं तपः। पुत्रे राज्यं समारोप्य क्षमावान् रविनन्दनः॥ १२॥
मलयस्यैकदेशे तु सर्वात्मगुणसंयुतः। समदुःखसुखो वीरः प्राप्तवान् योगमुत्तमम्॥ १३॥
बभूव वरदश्चास्य वर्षायुतशते गते। वरं वृणीष्व प्रोवाच प्रीतः स कमलासनः॥ १४॥
एवमुक्तोऽब्रवीद् राजा प्रणम्य स पितामहम्। एकमेवाहमिच्छामि त्वत्तो वरमनुत्तमम्॥ १५॥
भूतग्रामस्य सर्वस्य स्थावरस्य चरस्य च। भवेयं रक्षणायालं प्रलये समुपस्थिते॥ १६॥
एवमस्त्विति विश्वात्मा तत्रैवान्तरधीयत। पुष्पवृष्टिः सुमहती खात् पपात सुरार्पिता॥ १७॥

सूतजी कहते हैं—द्विजवरो ! पूर्वकालमें भगवान् गदाधरने जिस मत्स्यपुराणका वर्णन किया था, इस समय उसीका विवरण ( आपलोग ) सुनें। यह पुण्यप्रद, परम पवित्र और आयुवर्धक है। प्राचीनकालमें सूर्यपुत्र महाराज ( वैवस्वत ) मनुने*, जो क्षमाशील, सम्पूर्ण आत्म-गुणोंसे सम्पन्न, सुख-दुःखको समान समझनेवाले एवं उत्कृष्ट वीर थे, पुत्रको राज्य-भार सौंप कर मलयाचलके एक भागमें जाकर घोर तपका अनुष्ठान किया था। वहाँ उन्हें उत्तम योगकी प्राप्ति हुई। इस प्रकार उनके तप करते हुए करोड़ों वर्ष व्यतीत होनेपर कमलासन ब्रह्मा प्रसन्न होकर वरदाता-रूपमें प्रकट हुए और राजासे बोले—'वर माँगो !' इस प्रकार प्रेरित किये जानेपर वे महाराज मनु पितामह ब्रह्माको प्रणाम करके बोले—'भगवन् ! मैं आपसे केवल एक सर्वश्रेष्ठ वर माँगना चाहता हूँ। ( वह यह है कि ) प्रलयके उपस्थित होनेपर मैं सम्पूर्ण स्थावर-जङ्गमरूप जीवसमूहकी रक्षा करनेमें समर्थ हो

* भागवतादिके अनुसार ये सत्यव्रत राजा हैं, जो आगे वैवस्वत मनु हुए हैं।

※

सकूँ।' तब विश्वात्मा ब्रह्मा 'एवमस्तु—ऐसा ही हो' कहकर वहीं अन्तर्धान हो गये। उस समय आकाशसे देवताओंद्वारा की गयी महती पुष्पवृष्टि होने लगी ॥ ११—१७ ॥

कदाचिदाश्रमे तस्य कुर्वतः पितृतर्पणम्। पपात पाण्योरुपरि शफरी जलसंयुता ॥ १८ ॥
दृष्ट्वा तच्छफरीरूपं स दयालुर्महीपतिः। रक्षणायाकरोद् यत्नं स तस्मिन् करकोदरे ॥ १९ ॥
अहोरात्रेण चैकेन षोडशाङ्गुलविस्तृतः। सोऽभवन्मत्स्यरूपेण पाहि पाहीति चाब्रवीत् ॥ २० ॥
स तमादाय मणिके प्राक्षिपज्जलचारिणम्। तत्रापि चैकरात्रेण हस्तत्रयमवर्धत ॥ २१ ॥
पुनः प्राहार्तनादेन सहस्रकिरणात्मजम्। स मत्स्यः पाहि पाहीति त्वामहं शरणं गतः ॥ २२ ॥
ततः स कूपे तं मत्स्यं प्राहिणोद् रविनन्दनः। यदा न माति तत्रापि कूपे मत्स्यः सरोवरे ॥ २३ ॥
क्षिप्तोऽसौ पृथुतामागात् पुनर्योजनसम्मिताम्। तत्राप्याह पुनर्दीनः पाहि पाहि नृपोत्तम ॥ २४ ॥
ततः स मनुना क्षिप्तो गङ्गायामप्यवर्धत। यदा तदा समुद्रे तं प्राक्षिपन्मेदिनीपतिः ॥ २५ ॥
यदा समुद्रमखिलं व्याप्यासौ समुपस्थितः। तदा प्राह मनुर्भीतः कोऽपि त्वमसुरेश्वरः ॥ २६ ॥
अथवा वासुदेवस्त्वमन्य ईदृक् कथं भवेत्। योजनायुतविंशत्या कस्य तुल्यं भवेद् वपुः ॥ २७ ॥
ज्ञातस्त्वं मत्स्यरूपेण मां खेदयसि केशव। हृषीकेश जगन्नाथ जगद्धाम नमोऽस्तु ते ॥ २८ ॥
एवमुक्तः स भगवान् मत्स्यरूपी जनार्दनः। साधु साध्विति चोवाच सम्यग्ज्ञातस्त्वयानघ ॥ २९ ॥
अचिरेणैव कालेन मेदिनी मेदिनीपते। भविष्यति जले मग्ना सशैलवनकानना ॥ ३० ॥
नौरियं सर्वदेवानां निकायेन विनिर्मिता। महाजीवनिकायस्य रक्षणार्थं महीपते ॥ ३१ ॥
स्वेदाण्डजोद्भिदो ये वै ये च जीवा जरायुजाः। अस्यां निधाय सर्वांस्ताननाथान् पाहि सुव्रत ॥ ३२ ॥
युगान्तवाताभिहता यदा भवति नौर्नृप। शृङ्गेऽस्मिन् मम राजेन्द्र तदेमां संयमिष्यसि ॥ ३३ ॥
ततो लयान्ते सर्वस्य स्थावरस्य चरस्य च। प्रजापतिस्त्वं भविता जगतः पृथिवीपते ॥ ३४ ॥
एवं कृतयुगस्यादौ सर्वज्ञो धृतिमान् नृपः। मन्वन्तराधिपश्चापि देवपूज्यो भविष्यसि ॥ ३५ ॥

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे आदिसर्गे मनुमत्स्यसंवादे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥*

एक समयकी बात है, आश्रममें पितृ-तर्पण करते हुए महाराज मनुकी हथेलीपर जलके साथ ही एक मछली आ गिरी। उस मछलीके रूपको देखकर वे नरेश दयार्द्र हो गये तथा उसे उस कमण्डलुमें डालकर उसकी रक्षाका प्रयत्न करने लगे। एक ही दिन-रातमें वह (वहाँ) मत्स्यरूपसे सोलह अङ्गुल बडा हो गया और 'रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये' यों कहने लगा। तब राजाने उस जलचारी जीवको मिट्टीके एक बडे घडेमें डाल दिया। वहाँ भी वह एक (ही) रातमें तीन हाथ बढ गया। पुनः उस मत्स्यने सूर्यपुत्र मनुसे आर्तवाणीमें कहा—'राजन्! मै आपकी शरणमें हूँ; मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये।' तदनन्तर उन सूर्य-नन्दन ( वैवस्वत मनु )ने उस मत्स्यको कुएँमें रख दिया, परंतु जब वह मत्स्य उस कुएँमें भी न अँट सका, तब राजाने उसे सरोवरमें डाल दिया। वहाँ वह पुनः एक योजन बड़े आकारका हो गया और दीन होकर कहने लगा—'नृपश्रेष्ठ! मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये।' तत्पश्चात् मनुने उसे गङ्गामें छोड़ दिया। जब उसने वहाँ और भी विशाल रूप धारण कर लिया, तब भूपालने उसे समुद्रमे डाल दिया। जब उस मत्स्यने सम्पूर्ण समुद्रको आच्छादित कर लिया, तब मनुने भयभीत होकर उससे पूछा—'आप कोई असुरराज तो नहीं हैं? अथवा वासुदेव भगवान् हैं, अन्यथा दूसरा कोई ऐसा कैसे हो सकता है? भला, इस प्रकार कई करोड़ योजनोंके समान विस्तारवाला शरीर किसका हो सकता है? केशव! मुझे ज्ञात हो गया कि 'आप मत्स्यका रूप धारण करके मुझे खिन्न कर रहे हैं। हृषीकेश! आप जगदीश्वर एवं जगत्के निवासस्थान हैं, आपको नमस्कार है।'

तब मत्स्य-रूपधारी वे भगवान् जनार्दन यों कहे जानेपर बोले—'निष्पाप ! ठीक है, ठीक है, तुमने मुझे भलीभाँति पहचान लिया है । भूपाल ! थोड़े ही समयमें पर्वत, वन और काननोंके सहित यह पृथ्वी जलमें निमग्न हो जायगी । इस कारण पृथ्वीपते ! सम्पूर्ण जीव-समूहोंकी रक्षा करनेके लिये समस्त देवगणोद्वारा इस नौकाका निर्माण किया गया है । सुव्रत ! जितने स्वेदज, अण्डज और उद्भिज्ज जीव हैं तथा जितने जरायुज जीव हैं, उन सभी अनाथोंको इस नौकामें चढ़ाकर तुम उन सबकी रक्षा करना । राजन् ! जब युगान्तकी वायुसे आहत होकर यह नौका डगमगाने लगेगी, उस समय राजेन्द्र ! तुम उसे मेरे इस सींगमें बाँध देना । तदनन्तर पृथ्वीपते ! प्रलयकी समाप्तिमें तुम जगत्के समग्र स्थावर-जङ्गम प्राणियोंके प्रजापति होओगे । इस प्रकार कृतयुगके प्रारम्भमें सर्वज्ञ एवं धैर्यशाली नरेशके रूपमें तुम मन्वन्तरके भी अधिपति होओगे, उस समय देवगण तुम्हारी पूजा करेंगे ॥ १८–३५ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके मनु-विष्णु-संवादमें प्रथम अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १ ॥

## दूसरा अध्याय

### मनुका मत्स्यभगवान्से युगान्तविषयक प्रश्न, मत्स्यका प्रलयके स्वरूपका वर्णन करके अन्तर्धान हो जाना, प्रलयकाल उपस्थित होनेपर मनुका जीवोंको नौकापर चढ़ाकर उसे महामत्स्यके सींगमें शेषनागकी रस्सीसे बाँधना एवं उनसे सृष्टि आदिके विषयमें विविध प्रश्न करना और मत्स्यभगवान्का उत्तर देना

सूत उवाच

एवमुक्तो मनुस्तेन पप्रच्छ मधुसूदनम् । भगवन् कियद्भिर्वर्षैर्भविष्यत्यन्तरक्षयः ॥ १ ॥
सत्त्वानि च कथं नाथ रक्षिष्ये मधुसूदन । त्वया सह पुनर्योगः कथं वा भविता मम ॥ २ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! भगवान् मत्स्यद्वारा इस प्रकार कहे जानेपर मनुने उन मधुसूदनसे प्रश्न किया—'भगवन् ! यह युगान्त-प्रलय कितने वर्षों बाद आयेगा ? नाथ ! मैं सम्पूर्ण जीवोंकी रक्षा किस प्रकार कर सकूँगा ? तथा मधुसूदन ! आपके साथ मेरा पुनः सम्मिलन कैसे हो सकेगा ?' ॥ १–२ ॥

मत्स्य उवाच

अद्यप्रभृत्यनावृष्टिर्भविष्यति महीतले । यावद् वर्षशतं साग्रं दुर्भिक्षमशुभावहम् ॥ ३ ॥
ततोऽल्पसत्त्वक्षयदा रश्मयः सप्त दारुणाः । सप्तसप्तेर्भविष्यन्ति प्रतप्ताङ्गारवर्षिणः ॥ ४ ॥
और्वानलोऽपि विकृतिं गमिष्यति युगक्षये ।
विषाग्निश्चापि पातालात् संकर्षणमुखाच्च्युतः । भवस्यापि ललाटोत्थतृतीयनयनानलः ॥ ५ ॥
त्रिजगन्निर्दहन् क्षोभं समेष्यति महामुने । एवं दग्धा मही सर्वा यदा स्याद् भस्मसंनिभा ॥ ६ ॥
आकाशमूष्मणा तप्तं भविष्यति परंतप । ततः सदेवनक्षत्रं जगद् यास्यति संक्षयम् ॥ ७ ॥
संवर्तो भीमनादश्च द्रोणश्चण्डो बलाहकः । विद्युत्पताकः शोणस्तु सप्तैते लयवारिदाः ॥ ८ ॥
अग्निप्रस्वेदसम्भूताः प्लावयिष्यन्ति मेदिनीम् । समुद्राः क्षोभमागत्य चैकत्वेन व्यवस्थिताः ॥ ९ ॥
एतदेकार्णवं सर्वं करिष्यन्ति जगत्त्रयम् । वेदनावमिमां गृह्य सत्त्वबीजानि सर्वशः ॥ १० ॥
आरोप्य रज्जुयोगेन मत्प्रदत्तेन सुव्रत । संयम्य नावं मच्छृङ्गे मत्प्रभावाभिरक्षितः ॥ ११ ॥
एकः स्थास्यसि देवेषु दग्धेष्वपि परंतप । सोमसूर्यावहं ब्रह्मा चतुर्लोकसमन्वितः ॥ १२ ॥

नर्मदा च नदी पुण्या मार्कण्डेयो महानृषिः। भवो वेदाः पुराणानि विद्याभिः सर्वतोवृतम् ॥ १३ ॥
त्वया सार्धमिदं विश्वं स्थास्यत्यन्तरसंक्षये। एवमेकार्णवे जाते चाक्षुषान्तरसंक्षये ॥ १४ ॥
वेदान् प्रवर्तयिष्यामि त्वत्सर्गादौ महीपते। एवमुक्त्वा स भगवांस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ १५ ॥
मनुरप्यास्थितो योगं वासुदेवप्रसादजम्। अभ्यसन् यावदाभूतसम्प्लवं पूर्वसूचितम् ॥ १६ ॥

मत्स्यभगवान् कहने लगे—'महामुने ! आजसे लेकर सौ वर्षतक इस भूतलपर वृष्टि नहीं होगी, जिसके फलस्वरूप परम अमाङ्गलिक एवं अत्यन्त भयंकर दुर्भिक्ष आ पड़ेगा। तदनन्तर युगान्त प्रलयके उपस्थित होनेपर तपे हुए अंगारकी वर्षा करनेवाली सूर्यकी सात भयंकर किरणे छोटे-मोटे जीवोंका संहार करनेमें प्रवृत्त हो जायँगी। बडवानल भी अत्यन्त भयानक रूप धारण कर लेगा। पाताललोकसे ऊपर उठकर संकर्षणके मुखसे निकली हुई विषाग्नि तथा भगवान् रुद्रके ललाटसे उत्पन्न तीसरे नेत्रकी अग्नि भी तीनों लोकोंको भस्म करती हुई भभक उठेगी। परंतप ! इस प्रकार जब सारी पृथ्वी जलकर राखकी ढेर बन जायगी और गगन-मण्डल ऊष्मासे संतप्त हो उठेगा, तब देवताओ और नक्षत्रोंसहित सारा जगत् नष्ट हो जायगा। उस समय संवर्त, भीमनाद, द्रोण, चण्ड, बलाहक, विद्युत्पताक और शोण नामक जो ये सात प्रलयकारक मेघ हैं, ये सभी अग्निके प्रस्वेदसे उत्पन्न हुए जलकी घोर वृष्टि करके सारी पृथ्वीको आप्लावित कर देंगे। तब सातों समुद्र क्षुब्ध होकर एकमेक हो जायँगे और इन तीनों लोकोंको पूर्णरूपसे एकार्णवके आकारमें परिणत कर देंगे। सुव्रत ! उस समय तुम इस वेदरूपी नौकाको ग्रहण करके इसपर समस्त जीवों और बीजोंको लाद देना तथा मेरे द्वारा प्रदान की गयी रस्सीके बन्धनसे इस नावको मेरे सींगमें बाँध देना। परंतप ! ( ऐसे भीषण कालमें जब कि ) सारा देव-समूह जलकर भस्म हो जायगा तो भी मेरे प्रभावसे सुरक्षित होनेके कारण एकमात्र तुम्हीं अवशेष रह जाओगे। इस आन्तर-प्रलयमें सोम, सूर्य, मै, चारों लोकोंसहित ब्रह्मा, पुण्यतोया नर्मदा नदी, महर्षि मार्कण्डेय, शंकर, चारों वेद, विद्याओंद्वारा सब ओरसे घिरे हुए पुराण और तुम्हारे साथ यह ( नौका-स्थित ) विश्व—ये ही बचेंगे। महीपते ! चाक्षुष-मन्वन्तरके प्रलयकालमें जब इसी प्रकार सारी पृथ्वी एकार्णवमें निमग्न हो जायगी और तुम्हारेद्वारा सृष्टिका प्रारम्भ होगा, तब मै वेदोंका ( पुनः ) प्रवर्तन करूँगा।' ऐसा कहकर भगवान् मत्स्य वहीं अन्तर्धान हो गये तथा मनु भी वहीं स्थित रहकर भगवान् वासुदेवकी कृपासे प्राप्त हुए योगका तबतक अभ्यास करते रहे, जबतक पूर्वसूचित प्रलयका समय उपस्थित न हुआ ॥ ३–१६ ॥

काले यथोक्ते स जाते वासुदेवमुखोद्गते। शृङ्गी प्रादुर्बभूवाथ मत्स्यरूपी जनार्दनः ॥ १७ ॥
भुजङ्गो रज्जुरूपेण मनोः पार्श्वमुपागमत्। भूतान् सर्वान् समाकृष्य योगेनारोप्य धर्मवित् ॥ १८ ॥
भुजङ्गरज्ज्वा मत्स्यस्य शृङ्गे नावमयोजयत्। उपर्युपस्थितस्तस्याः प्रणिपत्य जनार्दनम् ॥ १९ ॥
आभूतसम्प्लवे तस्मिन्नतीते योगशायिना।
पृष्टेन मनुना प्रोक्तं पुराणं मत्स्यरूपिणा। तदिदानीं प्रवक्ष्यामि शृणुध्वमृषिसत्तमा ॥ २० ॥
यद् भवद्भिः पुरा पृष्टः सृष्ट्यादिकमहं द्विजाः। तदेवैकार्णवे तस्मिन् मनुः पप्रच्छ केशवम् ॥ २१ ॥

तदनन्तर भगवान् वासुदेवके मुखसे कहे गये पूर्वोक्त प्रलयकालके उपस्थित होनेपर भगवान् जनार्दन एक सींगवाले मत्स्यके रूपमें प्रादुर्भूत हुए। उसी समय एक सर्प भी रज्जु-रूपसे बहता हुआ मनुके पार्श्वभागमें आ पहुँचा। तब धर्मज्ञ मनुने अपने योगबलसे समस्त जीवोंको खींचकर नौकापर लाद लिया और उसे सर्परूपी रस्सीसे मत्स्यके सींगमें बाँध दिया। तत्पश्चात् भगवान् जनार्दनको प्रणाम करके वे स्वयं भी उस नौकापर बैठ

गये। श्रेष्ठ ऋषियो! इस प्रकार उस अतीत प्रलयके अवसरपर योगाभ्यासी मनुद्वारा पूछे जानेपर मत्स्यरूपी भगवान्‌ने जिस पुराणका वर्णन किया था, उसीका मै इस समय आपलोगोंके समक्ष प्रवचन करूँगा, सावधान होकर श्रवण कीजिये। द्विजवरो! पहले आपलोगोने मुझसे जिस सृष्टि आदिके विषयमें प्रश्न किया है, उन्हीं विषयोंको उस एकार्णवके समय मनुने श्री भगवान् केशवसे पूछा था ॥ १७–२१ ॥

मनुरुवाच

उत्पत्तिं प्रलयं चैव वंशान् मन्वन्तराणि च। वंश्यानुचरितं चैव भुवनस्य च विस्तरम् ॥ २२ ॥
दानधर्मविधिं चैव श्राद्धकल्पं च शाश्वतम्। वर्णाश्रमविभागं च तथेष्टापूर्तसंज्ञितम् ॥ २३ ॥
देवतानां प्रतिष्ठादि यच्चान्यद् विद्यते भुवि। तत्सर्वं विस्तरेण त्वं धर्मं व्याख्यातुमर्हसि ॥ २४ ॥

**मनुने पूछा**—भगवन्! सृष्टिकी उत्पत्ति और उसका संहार, मानव-वंश, मन्वन्तर, मानव-वंशमें उत्पन्न हुए लोगोंके चरित्र, भुवनका विस्तार, दान और धर्मकी विधि, सनातन श्राद्धकल्प, वर्ण और आश्रमका विभाग, इष्टापूर्त ( वापी, कूप, तड़ाग आदि ) के निर्माणकी विधि और देवताओंकी प्रतिष्ठा आदि तथा और भी जो कोई धार्मिक विषय भूतलपर विद्यमान हैं, उन सभीका आप मुझसे विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये ॥ २२–२४ ॥

मत्स्य उवाच

महाप्रलयकालान्त एतदासीत् तमोमयम्। प्रसुप्तमिव चातर्क्यमप्रज्ञातमलक्षणम् ॥ २५ ॥
अविज्ञेयमविज्ञातं जगत् स्थास्नु चरिष्णु च। ततः स्वयम्भूरव्यक्तः प्रभवः पुण्यकर्मणाम् ॥ २६ ॥
व्यञ्जयन्नेतदखिलं प्रादुरासीत् तमोनुदः।
योऽतीन्द्रियः परो व्यक्तादणुर्ज्यायान् सनातनः। नारायण इति ख्यातः स एकः स्वयमुद्बभौ ॥ २७ ॥
यः शरीरादभिध्याय सिसृक्षुर्विविधं जगत्। अप एव ससर्जादौ तासु बीजमवासृजत् ॥ २८ ॥
तदेवाण्डं समभवद्धेमरूप्यमयं महत्। संवत्सरसहस्रेण सूर्यायुतसमप्रभम् ॥ २९ ॥
प्रविश्यान्तर्महातेजाः स्वयमेवात्मसम्भवः। प्रभावादपि तद्व्याप्त्या विष्णुत्वमगमत् पुनः ॥ ३० ॥
तदन्तर्भगवानेष सूर्यः समभवत् पुरा। आदित्यश्चादिभूतत्वाद् ब्रह्मा ब्रह्म पठन्नभूत् ॥ ३१ ॥
दिवं भूमिं समकरोत् तदण्डशकलद्वयम्। स चाकरोद्दिशः सर्वा मध्ये व्योम च शाश्वतम् ॥ ३२ ॥
जरायुर्मेरुमुख्याश्च शैलास्तस्याभवंस्तदा। यदुल्बं तदभून्मेघस्तडित्सङ्घातमण्डलम् ॥ ३३ ॥
नद्योऽण्डनाम्नः सम्भूताः पितरो मनवस्तथा।
सप्त येऽमी समुद्राश्च तेऽपि चान्तर्जलोद्भवाः। लवणेक्षुसुराद्याश्च नानारत्नसमन्विताः ॥ ३४ ॥
स सिसृक्षुरभूद् देवः प्रजापतिररिंदम। तत्तेजसश्च तत्रैष मार्तण्डः समजायत ॥ ३५ ॥
मृतेऽण्डे जायते यस्मान्मार्तण्डस्तेन संस्मृतः।
रजोगुणमयं यत्तद्रूपं तस्य महात्मनः। चतुर्मुखः स भगवानभूल्लोकपितामहः ॥ ३६ ॥
येन सृष्टं जगत् सर्वं सदेवासुरमानुषम्। तमवेहि रजोरूपं महत्सत्त्वमुदाहृतम् ॥ ३७ ॥

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे आदिसर्गे मनुमत्स्यसंवादवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥*

**मत्स्यभगवान् कहने लगे**—महाप्रलयके समयका अवसान होनेपर यह सारा स्थावर-जङ्गमरूप जगत् सोये हुएकी भाँति अन्धकारसे आच्छन्न था। न तो इसके विषयमें कोई कल्पना ही की जा सकती थी, न कोई वस्तु जानी ही जा सकती थी, न किसी वस्तुका कोई चिह्न ही अवशेष था। सभी वस्तुएँ विस्मृत हो चुकी थीं। कोई ज्ञातव्य वस्तु रह ही नहीं गयी थी। तदनन्तर जो पुण्यकर्मोंके उत्पत्ति-स्थान तथा निराकार हैं, वे स्वयंभू भगवान् इस समस्त जगत्‌को प्रकट करनेके अभिप्रायसे अन्धकारका भेदन करके प्रादुर्भूत हुए। उस समय जो इन्द्रियोसे परे, परात्पर, सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म, महान्‌से भी महान्, अविनाशी और नारायण नामसे विख्यात हैं, वे

स्वयं अकेले ही आविर्भूत हुए। उन्होंने अपने शरीरसे अनेक प्रकारके जगत्‌की सृष्टि करनेकी इच्छासे (पूर्वसृष्टिका) भलीभाँति ध्यान करके प्रथमतः जलकी ही रचना की और उसमें (अपने वीर्यस्वरूप) बीजका निक्षेप किया। वही बीज एक हजार वर्ष व्यतीत होनेपर सुवर्ण एवं रजतमय अण्डेके रूपमें परिणत हो गया, उसकी कान्ति दस सहस्र सूर्योंके सदृश थी। तत्पश्चात् महातेजस्वी स्वयम्भू स्वयं ही उस अण्डेके भीतर प्रविष्ट हो गये तथा अपने प्रभावसे एवं उस अण्डेमें सर्वत्र व्याप्त होनेके कारण वे पुनः विष्णु-भावको प्राप्त हो गये। तदनन्तर उस अण्डेके भीतर सर्वप्रथम ये भगवान् सूर्य उत्पन्न हुए, जो आदिसे प्रकट होनेके कारण 'आदित्य' और वेदोंका पाठ करनेसे 'ब्रह्मा' नामसे विख्यात हुए। उन्होंने ही उस अण्डेको दो भागोंमें विभक्त कर स्वर्गलोक और भूतलकी रचना की तथा उन दोनोंके मध्यमें सम्पूर्ण दिशाओं और अविनाशी आकाशका निर्माण किया। उस समय उस अण्डेके जरायु-भागसे मेरु आदि सातों पर्वत प्रकट हुए और जो उल्व (गर्भाशय) था, वह विद्युत्समूहसहित मेघमण्डलके रूपमें परिणत हुआ तथा उसी अण्डेसे नदियाँ, पितृगण और मनुसमुदाय उत्पन्न हुए। नाना रत्नोंसे परिपूर्ण जो ये लवण, इक्षु, सुरा आदि सातों समुद्र हैं, वे भी उस अण्डेके अन्तःस्थित जलसे प्रकट हुए। शत्रुदमन! जब उन प्रजापति देवको सृष्टि रचनेकी इच्छा हुई, तब वहीं उनके तेजसे ये मार्तण्ड (सूर्य) प्रादुर्भूत हुए। चूँकि ये अण्डेके मृत हो जानेके पश्चात् उत्पन्न हुए थे, इसलिये 'मार्तण्ड' नामसे प्रसिद्ध हुए। उन महात्माका जो रजोगुणमय रूप था, वह लोकपितामह चतुर्मुख भगवान् ब्रह्माके रूपमें प्रकट हुआ। जिन्होंने देवता, असुर और मानवसहित समस्त जगत्‌की रचना की, उन्हें तुम रजोगुणरूप सुप्रसिद्ध महान् सत्त्व समझो ॥ २५-३७ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें मनुमत्स्यसंवादवर्णन नामक दूसरा अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २ ॥

# तीसरा अध्याय

## मनुका मत्स्यभगवान्से ब्रह्माके चतुर्मुख होने तथा लोकोंकी सृष्टि करनेके विषयमें प्रश्न एवं मत्स्यभगवान्‌द्वारा उत्तररूपमें ब्रह्मासे वेद, सरस्वती, पाँचवें मुख और मनु आदिकी उत्पत्तिका कथन

मनुरुवाच

चतुर्मुखत्वमगमत् कस्माल्लोकपितामहः। कथं तु लोकानसृजद् ब्रह्मा ब्रह्मविदां वरः ॥ १ ॥

मनुने पूछा—भगवन्! ब्रह्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ लोकपितामह ब्रह्मा चतुर्मुख कैसे हुए तथा उन्होंने (सभी) लोकोंकी रचना किस प्रकार की? ॥ १ ॥

मत्स्य उवाच

तपश्चचार प्रथमममराणां पितामहः। आविर्भूतास्ततो वेदाः साङ्गोपाङ्गपदक्रमाः ॥ २ ॥
पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्। नित्यं शब्दमयं पुण्यं शतकोटिप्रविस्तरम् ॥ ३ ॥
अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिःसृताः। मीमांसान्यायविद्याश्च प्रमाणाष्टकसंयुताः ॥ ४ ॥
वेदाभ्यासरतस्यास्य प्रजाकामस्य मानसाः। मनसः पूर्वसृष्टा वै जाता यत् तेन मानसाः ॥ ५ ॥
मरीचिरभवत् पूर्वं ततोऽत्रिर्भगवानृषिः। अङ्गिराश्चाभवत् पश्चात् पुलस्त्यस्तदनन्तरम् ॥ ६ ॥
ततः पुलहनामा वै ततः क्रतुरजायत। प्रचेताश्च ततः पुत्रो वसिष्ठश्चाभवत् पुनः ॥ ७ ॥
पुत्रो भृगुरभूत् तद्वन्नारदोऽप्यचिरादभूत्। दशेमान् मानसान् ब्रह्मा मुनीन् पुत्रानजीजनत् ॥ ८ ॥
शारीरानथ वक्ष्यामि मातृहीनान् प्रजापतेः। अङ्गुष्ठाद् दक्षिणाद् दक्षः प्रजापतिरजायत ॥ ९ ॥

धर्मः स्तनान्तादभवद्धृदयात् कुसुमायुधः। भ्रूमध्यादभवत् क्रोधो लोभश्चाधरसम्भवः ॥ १० ॥
बुद्धेर्मोहः समभवदहंकारादभून्मदः। प्रमोदश्चाभवत् कण्ठान्मृत्युर्लोचननो नृप ॥ ११ ॥
भरतः करमध्यात्तु ब्रह्मसूनुरभूत्ततः।
एते नव सुता राजन् कन्या च दशमी पुनः। अङ्गजा इति विख्याता दशमी ब्रह्मणः सुता ॥ १२ ॥

मत्स्यभगवान् कहने लगे—राजर्षे ! देवताओंके पितामह ब्रह्माने पहले बड़ा ही कठोर तप किया था, जिसके प्रभावसे अङ्ग ( शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष और छन्द ), उपाङ्ग ( पुराण, न्याय, मीमांसा और धर्मशास्त्र ), पद ( वैदिक मन्त्रोंका पद-पाठ निर्धारित करना ) और क्रम ( वेद-पाठकी एक विशेष प्रणाली )-सहित वेदोंका प्रादुर्भाव हुआ । सम्पूर्ण शास्त्रोंकी उत्पत्तिके पूर्व ब्रह्माने उस पुराणका स्मरण किया, जो अविनाशी, शब्दमय, पुण्यशाली एवं सौ करोड़ श्लोकोंमें विस्तृत है । तदनन्तर ब्रह्माके मुखोंसे वेद, आठ प्रमाणों* सहित मीमांसा और न्यायशास्त्रका आविर्भाव हुआ । तत्पश्चात् वेदाभ्यासमें निरत रहनेवाले ब्रह्माने पुत्र उत्पन्न करनेकी कामनासे युक्त होकर पूर्व निर्धारित दस मानस पुत्रोंको उत्पन्न किया । मानसिक संकल्पसे उत्पन्न होनेके कारण वे सभी मानस पुत्रके नामसे प्रख्यात हुए । उन पुत्रोंमें सर्वप्रथम मरीचि, तदनन्तर ऐश्वर्यशाली महर्षि अत्रि हुए । पुनः अङ्गिरा और उनके बाद पुलस्त्य हुए । तदनन्तर पुलह और तत्पश्चात् क्रतु उत्पन्न हुए । उसके बाद प्रचेता नामक पुत्र हुए । पुनः वसिष्ठजीका जन्म हुआ । तत्पश्चात् भृगु पुत्ररूपमें उत्पन्न हुए तथा शीघ्र ही नारदका भी आविर्भाव हुआ । इन्हीं दस पुत्रोंको ब्रह्माने अपने मनसे उत्पन्न किया, जो सभी मुनि-रूपसे विख्यात हुए । राजन् ! अब मैं ब्रह्माके शरीरसे उत्पन्न हुए मातृ-विहीन पुत्रोंका वर्णन करता हूँ । प्रजापति ब्रह्माके दाहिने अँगूठेसे दक्ष प्रजापति प्रकट हुए । उनके स्तनान्तभागसे धर्म और हृदयसे कुसुमायुध ( कामदेव)का जन्म हुआ । भ्रूमध्यसे क्रोध और होंठसे लोभकी उत्पत्ति हुई । बुद्धिसे मोहका तथा अहंकारसे मदका जन्म हुआ । कण्ठसे प्रमोद और नेत्रोंसे मृत्युकी उत्पत्ति हुई । तत्पश्चात् हथेलीसे ब्रह्मपुत्र भरत † प्रकट हुए । राजन् ! ये नौ पुत्र ब्रह्माके शरीरसे प्रकट हुए हैं । ब्रह्माकी दसवीं संतान (एक) कन्या है, जो अङ्गजा नामसे विख्यात हुई ॥ २—१२ ॥

मनुरुवाच

बुद्धेर्मोहः समभवदिति यत् परिकीर्तितम्। अहंकारः स्मृतः क्रोधो बुद्धिर्नाम किमुच्यते ॥ १३ ॥

मनुने पूछा—भगवन् ! आपने जो यह बतलाया कि बुद्धिसे मोहकी उत्पत्ति हुई और ( इसी प्रसङ्गमें ) अहंकार, क्रोध एवं बुद्धिका भी नाम लिया, सो ये सब क्या हैं ? ( इनपर प्रकाश डालिये ) ॥ १३ ॥

मत्स्य उवाच

सत्त्वं रजस्तमश्चैव गुणत्रयमुदाहृतम्। साम्यावस्थितिरेतेषां प्रकृतिः परिकीर्तिता ॥ १४ ॥
केचित् प्रधानमित्याहुरव्यक्तमपरे जगुः। एतदेव प्रजासृष्टिं करोति विकरोति च ॥ १५ ॥
गुणेभ्यः क्षोभमाणेभ्यस्त्रयो देवा विजज्ञिरे। एका मूर्तिस्त्रयो देवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ १६ ॥
सविकारात् प्रधानात्तु महत्तत्त्वं प्रजायते। महानिति यतः ख्यातिर्लोकानां जायते सदा ॥ १७ ॥
अहंकारश्च महतो जायते मानवर्धनः।

* पौराणिकोंके आठ प्रमाण ये हैं—प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द ( आप्तवचन ), अनुपलब्धि, अर्थापत्ति, ऐतिह्य और स्वभाव । ( सर्वदर्शनसंग्रह )

† भारतमें भरत नामके कई प्रसिद्ध व्यक्ति हुए हैं । ये भरतमुनि हैं, जो 'नाट्यवेद' या 'भरतनाट्यम्'के प्रवर्तक माने जाते हैं ।

इन्द्रियाणि ततः पञ्च वक्ष्ये बुद्धिवशानि तु । प्रादुर्भवन्ति चान्यानि तथा कर्मवशानि तु ॥ १८ ॥
श्रोत्रं त्वक् चक्षुषी जिह्वा नासिका च यथाक्रमम् । पायूपस्थं हस्तपादं वाक् चेतीन्द्रियसंग्रहः ॥ १९ ॥
शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धश्च पञ्चमः । उत्सर्गानन्दनादानगत्यालापाश्च तत्क्रियाः ॥ २० ॥
मन एकादशं तेषां कर्मबुद्धिगुणान्वितम् । इन्द्रियावयवाः सूक्ष्मास्तस्य मूर्तिं मनीषिणः ॥ २१ ॥
श्रयन्ति यस्मात् तन्मात्राः शरीरं तेन संस्मृतम् । शरीरयोगाज्जीवोऽपि शरीरी गद्यते बुधैः ॥ २२ ॥
मनः सृष्टिं विकुरुते चोद्यमानं सिसृक्षया । आकाशं शब्दतन्मात्रादभूच्छब्दगुणात्मकम् ॥ २३ ॥
आकाशविकृतेर्वायुः शब्दस्पर्शगुणोऽभवत् । वायोश्च स्पर्शतन्मात्रात्तेजश्चाविरभूत्ततः ॥ २४ ॥
त्रिगुणं तद्विकारेण तच्छब्दस्पर्शरूपवत् । तेजोविकारादभवद् वारि राजंश्चतुर्गुणम् ॥ २५ ॥
रसतन्मात्रसम्भूतं प्रायो रसगुणात्मकम् । भूमिस्तु गन्धतन्मात्राद्भूत् पञ्चगुणान्विता ॥ २६ ॥
प्रायो गन्धगुणा सा तु बुद्धिरेषा गरीयसी । एभिः सम्पादितं भुङ्क्ते पुरुषः पञ्चविंशकः ॥ २७ ॥
ईश्वरेच्छावशः सोऽपि जीवात्मा कथ्यते बुधैः । एवं षड्विंशकं प्रोक्तं शरीरमिह मानवैः ॥ २८ ॥
सांख्यं संख्यात्मकत्वाच्च कपिलादिभिरुच्यते । एतत्तत्त्वात्मकं कृत्वा जगद् वेधा अजीजनत् ॥ २९ ॥

**मत्स्यभगवान् कहने लगे**—राजर्षे ! सत्त्व, रजस् और तमस्—जो ये तीनों गुण बतलाये गये हैं, इनकी साम्यावस्थाको प्रकृति कहा जाता है। कुछ लोग इसे प्रधान कहते हैं। दूसरे लोग इसे अव्यक्त नामसे भी निर्देश करते है। यही प्रकृति प्रजाकी सृष्टि करती है और ( यही सृष्टिको ) बिगाड़ती भी है। इन्हीं तीनो गुणोके क्षुब्ध होनेपर इनसे तीन देवता उत्पन्न होते हैं। इन ( तीनो देवो )की मूर्ति तो एक ही है, परंतु वह ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर—इन तीन देवताओंके रूपमें विभक्त हो जाती है। तदनन्तर प्रधानके विकृत होनेपर उससे महत्तत्त्वकी उत्पत्ति होती है, जिससे लोकोंके मध्यमें उसकी सदा 'महान्' रूपसे ख्याति होती है। उस महत्तत्त्वसे मानको बढ़ानेवाला अहंकार प्रकट होता है। उस अहंकारसे दस इन्द्रियाँ आविर्भूत होती हैं, जिनमें पाँच बुद्धि (ज्ञान )के वशीभूत रहती हैं और दूसरी पाँच कर्मके अधीन रहती हैं। इस इन्द्रिय-समुदायमें क्रमशः श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, जिह्वा और नासिका—ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं तथा पायु (गुदा), उपस्थ (मूत्रेन्द्रिय), हस्त, पाद और वाणी—ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं। इन दसों इन्द्रियोंके क्रमशः शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, उत्सर्ग ( मल एवं अपानवायु आदिका त्याग ), आनन्दन ( आनन्दप्रदान ), आदान ( ग्रहण करना ), गमन और आलाप—ये दस कार्य हैं। इन दसो इन्द्रियोंके अतिरिक्त मननामक ग्यारहवीं इन्द्रिय है, जिसमें कर्मेन्द्रियो और ज्ञानेन्द्रियोंके समस्त गुण वर्तमान हैं। इन इन्द्रियोके जो सूक्ष्म अवयव उस मनीषीके शरीरका आश्रय लेते हैं, वे तन्मात्र कहलाते हैं और जिसके सम्पर्कसे तन्मात्रकी उत्पत्ति होती है, उसे शरीर कहा जाता है। उस शरीरका सम्बन्ध होनेके कारण विद्वान्लोग जीवको भी 'शरीरी' कहते हैं। जब सृष्टि करनेकी इच्छासे मनको प्रेरित किया जाता है, तब वही सृष्टिकी रचना करता है। उस समय शब्दतन्मात्रसे शब्दरूप गुणवाला आकाश प्रकट होता है। इसी आकाशके विकृत होनेपर वायुकी उत्पत्ति होती है, जो शब्द और स्पर्श—दो गुणोंवाली है। तत्पश्चात् वायु और स्पर्शतन्मात्रसे तेजका आविर्भाव होता है, जो शब्द, स्पर्श और रूपनामक तीन विकारोसे युक्त होनेके कारण त्रिगुणात्मक हुआ। राजन् ! इस त्रिगुणात्मक तेजमें विकार उत्पन्न होनेसे चार गुणोंवाले जलका प्राकट्य होता है, जो रस-तन्मात्रसे उद्भूत होनेके कारण प्रायः रसगुणप्रधान ही होता है। तत्पश्चात् पाँच गुणोसे सम्पन्न पृथ्वीका प्रादुर्भाव होता है। वह प्रायः गन्ध-गुणसे ही युक्त रहती है। यही (इन सबका यथार्थ ज्ञान रखना ही) श्रेष्ठ बुद्धि है। इन्हीं चौबीस ( पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच महाभूत,

पाँच तन्मात्र, एक मन, एक बुद्धि, एक अव्यक्त, अहंकार) तत्त्वोंद्वारा सम्पादित सुख-दुःखात्मक कर्मका पचीसवाँ पुरुषनामक तत्त्व भोग करता है। वह भी ईश्वरकी इच्छाके वशीभूत रहता है, इसीलिये विद्वान्लोग उसे जीवात्मा कहते हैं। इस प्रकार इस मानव-योनिमें यह शरीर छब्बीस तत्त्वोंसे संयुक्त बतलाया जाता है। कपिल आदि महर्षियोंने संख्यात्मक होनेके कारण इसे 'सांख्य' (ज्ञान) नामसे अभिहित किया है तथा इन्हीं तत्त्वोंका आश्रय लेकर ब्रह्माने जगत्‌की रचना की है॥ १४—२९॥

सावित्री लोकसृष्ट्यर्थं हृदि कृत्वा समास्थितः। ततः संजपतस्तस्य भित्त्वा देहमकल्मषम्॥ ३०॥
स्त्रीरूपमर्धमकरोदर्धं पुरुषरूपवत्। शतरूपा च सा ख्याता सावित्री च निगद्यते॥ ३१॥
सरस्वत्यथ गायत्री ब्रह्माणी च परंतप। ततः स्वदेहसम्भूतामात्मजामित्यकल्पयत्॥ ३२॥
दृष्ट्वा तां व्यथितस्तावत् कामबाणार्दितो विभुः। अहो रूपमहो रूपमिति चाह प्रजापतिः॥ ३३॥
ततो वसिष्ठप्रमुखा भगिनीमिति चुक्रुशुः। ब्रह्मा न किंचिद् ददृशे तन्मुखालोकनादृते॥ ३४॥
अहो रूपमहो रूपमिति प्राह पुनः पुनः। ततः प्रणामनम्रां तां पुनरेवाभ्यलोकयत्॥ ३५॥
अथ प्रदक्षिणं चक्रे सा पितुर्वरवर्णिनी। पुत्रेभ्यो लज्जितस्यास्य तद्रूपालोकनेच्छया॥ ३६॥
आविर्भूतं ततो वक्त्रं दक्षिणं पाण्डुगण्डवत्। विस्मयस्फुरदोष्ठं च पाश्चात्यमुदगात्ततः॥ ३७॥
चतुर्थमभवत् पश्चाद् वामं कामशरातुरम्। ततोऽन्यदभवत्तस्य कामातुरतया तथा॥ ३८॥
उत्पतन्त्यास्तदाकाश आलोकनकुतूहलात्। सृष्ट्यर्थं यत् कृतं तेन तपः परमदारुणम्॥ ३९॥
तत् सर्वं नाशमगमत् स्वसुतोपगमेच्छया।
तेनोर्ध्वं वक्त्रमभवत् पञ्चमं तस्य धीमतः। आविर्भवज्जटाभिश्च तद् वक्त्रं चावृणोत् प्रभुः॥ ४०॥

जब ब्रह्माने जगत्‌की सृष्टि करनेकी इच्छासे हृदयमें सावित्रीका ध्यान करके तपश्चरण प्रारम्भ किया। उस समय जप करते हुए उनका निष्पाप शरीर दो भागोंमें विभक्त हो गया। उनमें आधा भाग स्त्रीरूप और आधा पुरुषरूप हो गया। परंतप! वह स्त्री सरस्वती, 'शतरूपा' नामसे विख्यात हुई। वही सावित्री, गायत्री और ब्रह्माणी भी कही जाती है। इस प्रकार ब्रह्माने अपने शरीरसे उत्पन्न होनेवाली सावित्रीको अपनी पुत्रीके रूपमें स्वीकार किया, परंतु तत्काल ही उस सावित्रीको देखकर वे सर्वश्रेष्ठ प्रजापति ब्रह्मा मुग्ध हो उठे और यों कहने लगे—'कैसा मनोहर रूप है! कैसा सौन्दर्यशाली रूप है!' ब्रह्माको सावित्रीके मुखकी ओर अवलोकन करनेके अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं दीखता था। वे बारंबार यही कह रहे थे—'कैसा अद्भुत रूप है! कैसी अनोखी सुन्दरता है!' तत्पश्चात् जब सावित्री झुककर उन्हें प्रणाम करने लगी, तब ब्रह्मा पुनः उसे देखने लगे। तदनन्तर सुन्दरी सावित्रीने अपने पिता ब्रह्माकी प्रदक्षिणा की। इसी समय सावित्रीके रूपका अवलोकन करनेकी इच्छा होनेके कारण ब्रह्माके मुखके दाहिने पार्श्वमें पीले गण्डस्थलोंवाला (एक दूसरा) नूतन मुख प्रकट हो गया! पुनः विस्मय-युक्त एवं फड़कते हुए होंठोंवाला दूसरा (तीसरा) मुख पीछेकी ओर उद्भूत हुआ तथा उनकी बायीं ओर कामदेवके बाणोंसे व्यथित-से दीखनेवाले एक अन्य (चौथे) मुखका आविर्भाव हुआ। सावित्रीकी ओर बार-बार अवलोकन करनेके कारण ब्रह्माद्वारा सृष्टि-रचनाके लिये जो अत्यन्त उग्र तप किया गया था, उसका सारा फल नष्ट हो गया तथा उसी पापके परिणामस्वरूप बुद्धिमान् ब्रह्माके मुखके ऊपर एक पाँचवाँ मुख आविर्भूत हुआ, जो जटाओंसे व्याप्त था। ऐश्वर्यशाली ब्रह्माने उस मुखको भी वरण (स्वीकार) कर लिया॥ ३०—४०॥

ततस्तानब्रवीद् ब्रह्मा पुत्रानात्मसमुद्भवान्। प्रजाः सृजध्वमभितः सदेवासुरमानुषीः ॥ ४१ ॥
एवमुक्तास्ततः सर्वे ससृजुर्विविधाः प्रजाः। गतेषु तेषु सृष्ट्यर्थं प्रणामावनतामिमाम् ॥ ४२ ॥
उपयेमे स विश्वात्मा शतरूपामनिन्दिताम्।
सम्बभूव तया सार्धमतिकामातुरो विभुः। सलज्जां चकमे देवः कमलोदरमन्दिरे ॥ ४३ ॥
यावदब्दशतं दिव्यं यथान्यः प्राकृतो जनः। ततः कालेन महता तस्याः पुत्रोऽभवन्मनुः ॥ ४४ ॥
स्वायम्भुव इति ख्यातः स विराडिति नः श्रुतम्। तद्रूपगुणसामान्यादधिपूरुष उच्यते ॥ ४५ ॥
वैराजा यत्र ते जाता बहवः शंसितव्रताः। स्वायम्भुवा महाभागाः सप्त सप्त तथापरे ॥ ४६ ॥
स्वारोचिषाद्याः सर्वे ते ब्रह्मतुल्यस्वरूपिणः। औत्तमिप्रमुखास्तद्वद् येषां त्वं सप्तमोऽधुना ॥ ४७ ॥

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे आदिसर्गे मुखोत्पत्तिर्नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥*

तदनन्तर ब्रह्माने अपने उन मरीचि आदि मानस पुत्रोंको आज्ञा दी कि तुमलोग भूतलपर चारों ओर देवता, असुर और मानवरूप प्रजाओंकी सृष्टि करो। पिताद्वारा इस प्रकार कहे जानेपर उन पुत्रोंने अनेकों प्रकारकी प्रजाओंकी रचना की। सृष्टि-कार्यके लिये अपने उन पुत्रोंके चले जानेपर विश्वात्मा ब्रह्माने प्रणाम करनेके लिये चरणोंमें पड़ी हुई उस अनिन्दिता शतरूपा*का पाणिग्रहण किया। तदनन्तर अधिक समय व्यतीत होनेके उपरान्त शतरूपाके गर्भसे मनु नामका पुत्र उत्पन्न हुआ, जो स्वायम्भुव नामसे विख्यात हुआ। उसे विराट् भी कहा जाता है तथा अपने पिता ब्रह्माके रूप और गुणकी समानताके कारण उसे लोग अधिपुरुष भी कहते हैं—ऐसा हमने सुना है। उस ब्रह्म-वंशमें सात-सातके विभागसे जो बहुत-से महाभाग्यशाली एवं नियमोंका पालन करनेवाले स्वारोचिष आदि तथा उसी प्रकार औत्तमि आदि स्वायम्भुव मनु हुए हैं, वे सभी ब्रह्माके समान ही स्वरूपवाले थे। उन्हींमें इस समय तुम सातवें मनु हो ॥ ४१—४७ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमे मुखोत्पत्तिनामक तीसरा अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३ ॥

# चौथा अध्याय

## पुत्रीकी ओर बार-बार अवलोकन करनेसे ब्रह्मा दोषी क्यों नहीं हुए—एतद्विषयक मनुका प्रश्न, मत्स्यभगवान्‌का उत्तर तथा इसी प्रसङ्गमें आदि सृष्टिका वर्णन

मनुरुवाच

अहो कष्टतरं चैतदङ्गजागमनं विभो। कथं न दोषमगमत् कर्मणानेन पद्मभूः ॥ १ ॥
परस्परं च सम्बन्धः सगोत्राणामभूत् कथम्। वैवाहिकस्तत्सुतानां छिन्धि मे संशयं विभो ॥ २ ॥

**मनुने पूछा**—सर्वव्यापी भगवन्! अहो! पुत्रीकी ओर बार-बार अवलोकन तो अत्यन्त कष्टका विषय है, परंतु ऐसा कर्म करनेपर भी कमलयोनि ब्रह्मा दोषभागी क्यों नहीं हुए? तथा उनके सगोत्र पुत्रोंका परस्पर वैवाहिक सम्बन्ध कैसे हुआ? विभो! मेरे इस संशयको दूर कीजिये ॥ १-२ ॥

* इसमे तथा अगले अध्यायमे शतरूपाका वर्णन है। शतरूपाका यहाँ अर्थ शतेन्द्रिया माया ( मत्स्यपुराण ४। २४ ) या मूल प्रकृति है। क्योंकि इसे तथा हरिवंश १। २। १ को छोड़ अन्यत्र सर्वत्र शतरूपा स्वायम्भुव मनुकी पत्नी कही गयी है। यहाँ ४। ३३ में उनकी पत्नी 'अनन्ती' कही गयी है।

मत्स्य उवाच

दिव्येयमादिसृष्टिस्तु रजोगुणसमुद्भवा । अतीन्द्रियेन्द्रिया तद्वदतीन्द्रियशरीरिका ॥ ३ ॥
दिव्यतेजोमयी भूप दिव्यज्ञानसमुद्भवा । न मर्त्यैरभितः शक्या वक्तुं वै मांसचक्षुभिः ॥ ४ ॥
यथा भुजङ्गाः सर्पाणामाकाशं विश्वपक्षिणाम् । विदन्ति मार्गं दिव्यानां दिव्या एव न मानवाः ॥ ५ ॥
कार्याकार्ये न देवानां शुभाशुभफलप्रदे । यस्मात्तस्मान्न राजेन्द्र तद्विचारो नृणां शुभः ॥ ६ ॥
अन्यच्च सर्ववेदानामधिष्ठाता चतुर्मुखः । गायत्री ब्रह्मणस्तद्वदङ्गभूता निगद्यते ॥ ७ ॥
अमूर्तं मूर्तिमद् वापि मिथुनं तत् प्रचक्षते ।
विरिञ्चिर्यत्र भगवांस्तत्र देवी सरस्वती । भारती यत्र यत्रैव तत्र तत्र प्रजापतिः ॥ ८ ॥
यथाऽऽतपो न रहितश्छायया दृश्यते क्वचित् । गायत्री ब्रह्मणः पार्श्वं तथैव न विमुञ्चति ॥ ९ ॥
वेदराशिः स्मृतो ब्रह्मा सावित्री तदधिष्ठिता । तस्मान्न कश्चिद् दोषः स्यात् सावित्रीगमने विभोः ॥ १० ॥
तथापि लज्जावनतः प्रजापतिरभूत् पुरा । स्वसुतोपगमाद् ब्रह्मा शशाप कुसुमायुधम् ॥ ११ ॥
यस्मान्ममापि भवता मनः संक्षोभितं शरैः । तस्मात्त्वद्देहमचिराद् रुद्रो भस्मीकरिष्यति ॥ १२ ॥
ततः प्रसादयामास कामदेवश्चतुर्मुखम् । न मामकारणे शप्तुं त्वमिहार्हसि मानद ॥ १३ ॥
अहमेवंविधः सृष्टस्त्वयैव चतुरानन । इन्द्रियक्षोभजनकः सर्वेषामेव देहिनाम् ॥ १४ ॥
स्त्रीपुंसोरविचारेण मया सर्वत्र सर्वदा । क्षोभ्यं मनः प्रयत्नेन त्वयैवोक्तं पुरा विभो ॥ १५ ॥
तस्मादनपराधोऽहं त्वया शप्तस्तथा विभो । कुरु प्रसादं भगवन् स्वशरीराप्तये पुनः ॥ १६ ॥

**मत्स्यभगवान् कहने लगे**—राजन् ! रजोगुणसे उत्पन्न हुई यह शतरूपारूपी* आदिसृष्टि दिव्य है। जिस प्रकार इस ( मूल प्रकृति )की इन्द्रियाँ इन्द्रियोंके विषयोंसे अतीत हैं, उसी प्रकार इस ( शतरूपा, सहस्र-रूपा नारी )का शरीर भी इन्द्रियातीत है। यह दिव्य तेजसे सम्पन्न एवं दिव्य ज्ञानसे समुद्भूत है, अतः मांस-पिण्डरूप नेत्रधारी मानवोंद्वारा इसका भलीभाँति वर्णन नहीं किया जा सकता। जैसे सर्पोंके मार्गको सर्प तथा सम्पूर्ण पक्षियोंके मार्गको आकाशचारी पक्षी ही जान सकते हैं, वैसे ही (शतरूपा आदि) दिव्य जीवोंके ( अचिन्त्य ) मार्गको दिव्य जीव ही समझ सकते हैं, मानव कदापि नहीं जान सकते। राजेन्द्र ! चूँकि देवताओंके कार्य ( करनेयोग्य अर्थात् उचित ) तथा अकार्य ( न करनेयोग्य अर्थात् अनुचित ) शुभ एवं अशुभ फल देनेवाले नहीं होते, इसलिये उनके विषयमें विचार करना मानवोंके लिये श्रेयस्कर नहीं है।* दूसरा कारण यह है कि जिस प्रकार ब्रह्मा सारे वेदोंके अधिष्ठाता हैं, उसी प्रकार ( शतरूपा-रूपी ) गायत्री ब्रह्माके अङ्गसे उत्पन्न हुई बतलायी जाती हैं। इसलिये यह मिथुनरूप ( जोड़ा ) अमूर्त ( अव्यक्त ) या मूर्तिमान् ( व्यक्त ) दोनों ही रूपोंमें कहा जाता है। यहाँतक कि जहाँ-जहाँ भगवान् ब्रह्मा हैं, वहाँ-वहाँ ( गायत्रीरूपी ) सरस्वती देवी भी हैं और जहाँ-जहाँ सरस्वती देवी हैं, वहीं-वहीं ब्रह्मा भी हैं। जिस प्रकार धूप ( सूर्य ) छायासे विलग होकर कहीं भी दिखायी नहीं पड़ते, उसी प्रकार गायत्री भी ब्रह्माके सामीप्यको नहीं छोड़ती है। यद्यपि ब्रह्मा वेदसमूहरूप हैं और सावित्री ( या सरस्वती ) उनकी अधिष्ठात्री देवी हैं, इसलिये ब्रह्माको सावित्रीपर कुदृष्टि डालनेसे कोई दोष नहीं लगा, तथापि उस समय अपने उस कुकर्मसे प्रजापति ब्रह्मा लज्जासे अभिभूत हो गये और कामदेवको शाप देते हुए यों बोले—'चूँकि तुमने अपने बाणोंद्वारा मेरे भी मनको भलीभाँति क्षुब्ध कर दिया है, इसलिये भगवान् रुद्र शीघ्र ही तुम्हारे शरीरको भस्म कर डालेंगे।' तदनन्तर कामदेवने बड़ी अनुनय-विनयसे ब्रह्माको प्रसन्न किया। वह बोला—'मानद ! इस विषयमें आपका मुझे निष्कारण ही शाप देना उचित नहीं है।

* इसीलिये 'न देवचरितं चरेत्', 'अचिन्त्याः खलु ये भावा न तांस्तर्केण योजयेत्' की चेतावनी—उपदेश प्रसिद्ध है।

चतुरानन ! आपने ही तो मुझे इस प्रकार सम्पूर्ण देह-धारियोंकी इन्द्रियोंको क्षुब्ध करनेके लिये पैदा किया है। विभो ! आपने ही पहले मुझे ऐसी आज्ञा दी है कि स्त्री-पुरुषका कोई विचार न करके तुम प्रयत्नपूर्वक सर्वत्र सर्वदा उनके मनको क्षुब्ध किया करो। इसलिये विभो ! मै निरपराध हूँ, तथापि आपने मुझे वैसा शाप दे डाला है; अतः भगवन् ! मुझपर कृपा कीजिये, जिससे मै पुनः अपने पूर्वशरीरको प्राप्त कर सकूँ' ॥ ३—१६ ॥

ब्रह्मोवाच

**वैवस्वतेऽन्तरे प्राप्ते यादवान्वयसम्भवः। रामो नाम यदा मर्त्यो मत्सत्त्वबलमाश्रितः ॥ १७ ॥**
**अवतीर्यासुरध्वंसी द्वारकामधिवत्स्यति। तद्भ्रातुस्तत्समस्य त्वं तदा पुत्रत्वमेष्यसि ॥ १८ ॥**
**एवं शरीरमासाद्य भुक्त्वा भोगानशेषतः। ततो भरतवंशान्ते भूत्वा वत्सनृपात्मजः ॥ १९ ॥**
**विद्याधराधिपत्यं च यावदाभूतसम्प्लवम्। सुखानि धर्मतः प्राप्य मत्समीपं गमिष्यसि ॥ २० ॥**
**एवं शापप्रसादाभ्यामुपेतः कुसुमायुधः। शोकप्रमोदाभियुतो जगाम स यथागतम् ॥ २१ ॥**

ब्रह्माने कहा—कामदेव ! वैवस्वत-मन्वन्तरके प्राप्त होनेपर असुरोंके विनाशक श्रीराम जब मेरे बल-पराक्रमसे सम्पन्न होकर मानव-रूपमें यदुवंशमें ( बलरामरूपसे ) अवतीर्ण होंगे और द्वारकाको अपना निवासस्थान बनायेंगे, उस समय तुम उन्हींके समान बल-पराक्रमशाली उनके भ्राता ( श्रीकृष्ण ) के पुत्ररूपमें उत्पन्न होगे। इस प्रकार शरीरको प्राप्तकर ( द्वारकामें ) सम्पूर्ण भोगोंका भोग करनेके उपरान्त तुम भरत-वंशमें महाराज वत्सके पुत्र होगे। तत्पश्चात् विद्याधरोंके अधिपति होकर महाप्रलय-पर्यन्त धर्मपूर्वक सुखोंका उपभोग करके मेरे समीप वापस आ जाओगे। इस प्रकार शाप और कृपासे संयुक्त कामदेव शोक और आनन्दसे अभिभूत होकर जैसे आया था, वैसे ही चला गया ॥ १७—२१ ॥

मनुरुवाच

**कोऽसौ यदुरिति प्रोक्तो यद्वंशे कामसम्भवः। कथं च दग्धो रुद्रेण किमर्थं कुसुमायुधः ॥ २२ ॥**
**भरतस्यान्वये कस्य का च सृष्टिः पुराभवत्। एतत् सर्वं समाचक्ष्व मूलतः संशयो हि मे ॥ २३ ॥**

मनुने पूछा—भगवन् ! आपने जिनके वंशमें कामदेवकी उत्पत्ति बतलायी है, वे यदु कौन हैं ? भगवान् रुद्रने कामदेवको किसलिये और कैसे जलाया तथा भरतवंशमें पहले किसकी और कौन-सी सृष्टि हुई थी ? ( इन बातोंको सुनकर ) मेरे मनमें महान् संदेह उत्पन्न हो गया है; अतः आप प्रारम्भसे ही इन सबका वर्णन कीजिये ॥ २२—२३ ॥

मत्स्य उवाच

**या सा देहार्धसम्भूता गायत्री ब्रह्मवादिनी। जननी या मनोर्देवी शतरूपा शतेन्द्रिया ॥ २४ ॥**
**रतिर्मनस्तपोबुद्धिर्महान्दिक्सम्भ्रमस्तथा। ततः स शतरूपायां सप्तापत्यान्यजीजनत् ॥ २५ ॥**
**ये मरीच्यादयः पुत्रा मानसास्तस्य धीमतः। तेषामयमभूल्लोकः सर्वज्ञानात्मकः पुरा ॥ २६ ॥**
**ततोऽसृजद् वामदेवं त्रिशूलवरधारिणम्। सनत्कुमारं च विभुं पूर्वेषामपि पूर्वजम् ॥ २७ ॥**
**वामदेवस्तु भगवानसृजन्मुखतो द्विजान्। राजन्यानसृजद् बाह्वोर्विट्छूद्रानूरुपादयोः ॥ २८ ॥**
**विद्युतोऽशनिमेघांश्च रोहितेन्द्रधनूंषि च। छन्दांसि च ससर्जादौ पर्जन्यं च ततः परम् ॥ २९ ॥**
**ततः साध्यगणानीशस्त्रिनेत्रानसृजत् पुनः। कोटीश्चतुराशीतिर्जरामरणवर्जिताः ॥ ३० ॥**
**वामोऽसृजन्मर्त्यास्तान् ब्रह्मणा विनिवारितः। नैवंविधा भवेत् सृष्टिर्जरामरणवर्जिता ॥ ३१ ॥**
**शुभाशुभात्मिका या तु सैव सृष्टिः प्रशस्यते। एवं स्थितः स तेनादौ सृष्टेः स्थाणुरतोऽभवत् ॥ ३२ ॥**

मत्स्यभगवान् कहने लगे—राजन् ! ब्रह्माके शरीरके आधे भागसे जो ब्रह्मवादिनी गायत्री उत्पन्न हुई थी और जो मनुकी माता थी तथा जिसे शतरूपा और शतेन्द्रिया नामसे भी जाना जाता था, उसी शत-रूपाके गर्भसे ब्रह्माजीने रति, मन, तप, बुद्धि, महान्, दिक् तथा सम्भ्रम—इन सात संतानोको जन्म दिया।

तथा उन बुद्धिमान् ब्रह्माके पहले जो मरीचि आदि दस मानस-पुत्र हुए थे, उन्हींके द्वारा इस सम्पूर्ण ज्ञानात्मक संसारकी रचना हुई। तदनन्तर ब्रह्माने श्रेष्ठ त्रिशूलधारी वामदेवकी और पुनः पूर्वजोंके भी पूर्वज शक्तिशाली सनत्कुमारकी रचना की। भगवान् वामदेव (शिव)ने अपने मुखसे ब्राह्मणोंकी, बाहुओंसे क्षत्रियोंकी, ऊरुओंसे वैश्योंकी और पैरोंसे शूद्रोंकी उत्पत्ति की। तदुपरान्त उन्होंने क्रमशः बिजली, वज्र, मेघ, रंग-बिरंगा इन्द्रधनुष और छन्दकी रचना की। उसके बाद मेघकी सृष्टि की। तत्पश्चात् उन शक्तिशाली वामदेवने जरा-मरणरहित एवं त्रिनेत्रधारी चौरासी करोड़ साध्यगणोंको उत्पन्न किया। चूँकि वामदेवने उन्हें जरा-मरणरहित रचा था, इसलिये ब्रह्माने उन्हें सृष्टि रचनेसे मना कर दिया (और कहा कि) इस प्रकार जरा-मरणसे विवर्जित सृष्टि नहीं होती, अपितु जो सृष्टि शुभ और अशुभसे युक्त होती है, वही प्रशंसनीय है। ब्रह्माके ऐसा कहनेपर वामदेव सृष्टि-कार्यसे निवृत्त होकर स्थाणुकी भाँति स्थित हो गये ॥ २४—३२ ॥

स्वायम्भुवो मनुर्धीमांस्तपस्तप्त्वा सुदुश्चरम्। पत्नीमवाप रूपाढ्यामनन्तीं नाम नामतः ॥ ३३ ॥
प्रियव्रतोत्तानपादौ मनुस्तस्यामजीजनत्। धर्मस्य कन्या चतुरा सूनृता नाम भामिनी ॥ ३४ ॥
उत्तानपादात्तनयान् प्राप मन्थरगामिनी। अपस्यतिमपस्यन्तं कीर्तिमन्तं ध्रुवं तथा ॥ ३५ ॥
उत्तानपादोऽजनयत् सूनृतायां प्रजापतिः। ध्रुवो वर्षसहस्राणि त्रीणि कृत्वा तपः पुरा ॥ ३६ ॥
दिव्यमाप ततः स्थानमचलं ब्रह्मणो वरात्। तमेव पुरतः कृत्वा ध्रुवं सप्तर्षयः स्थिताः ॥ ३७ ॥
धन्या नाम मनोः कन्या ध्रुवाच्छिष्टमजीजनत्। अग्निकन्या तु सुच्छाया शिष्टात्सा सुषुवे सुतान् ॥ ३८ ॥
कृपं रिपुंजयं वृत्तं वृकं च वृकतेजसम्। चक्षुषं ब्रह्मदौहित्र्यां वीरिण्यां स रिपुञ्जयः ॥ ३९ ॥
वीरणस्यात्मजायां तु चक्षुर्मनुमजीजनत्। मनुर्वै राजकन्यायां नड्वलायां स चाक्षुषः ॥ ४० ॥
जनयामास तनयान् दश शूरानकल्मषान्। ऊरुः पूरुः शतद्युम्नस्तपस्वी सत्यवाग्घविः ॥ ४१ ॥
अग्निष्टुदतिरात्रश्च सुद्युम्नश्चापराजितः। अभिमन्युस्तु दशमो नड्वलायामजायत ॥ ४२ ॥
ऊरोरजनयन् पुत्रान् षडाग्नेयी तु सुप्रभान्। अग्निं सुमनसं ख्यातिं क्रतुमङ्गिरसं गयम् ॥ ४३ ॥
पितृकन्या सुनीथा तु वेनमङ्गादजीजनत्।
वेनमन्यायिनं विप्रा ममन्थुस्तत्करादभूत्। पृथुर्नाम महातेजाः स पुत्रौ द्वावजीजनत् ॥ ४४ ॥
अन्तर्धानस्तु मारीचं शिखण्डिन्यामजीजनत्।

(अब मैथुनी सृष्टिका वर्णन करते हैं—) परम बुद्धिमान् स्वायम्भुव मनुने कठोर तपस्या करके अनन्ती नामवाली एक सुन्दरी कन्याको पत्नीरूपमें प्राप्त किया। मनुने उसके गर्भसे प्रियव्रत और उत्तानपाद नामके दो पुत्र उत्पन्न किये। पुनः धर्मकी कन्या सूनृताने, जो परम सुन्दरी, मन्थरगतिसे चलनेवाली और चतुर थी, उत्तान-पादके सम्पर्कसे पुत्रोंको प्राप्त किया। उस समय प्रजापति उत्तानपादने सूनृताके गर्भसे अपस्यति, अपस्यन्त, कीर्तिमान् तथा ध्रुव (इन चार पुत्रों)* को उत्पन्न किया। उनमें ध्रुवने पूर्वकालमें तीन सहस्र वर्षोतक तप करके ब्रह्माके वरदानसे दिव्य एवं अटल स्थानको प्राप्त किया। आज भी उन्हीं ध्रुवको आगे करके सप्तर्षिमण्डल स्थित है। उन्हीं ध्रुवके संयोगसे मनुकी कन्या धन्याने शिष्टको जन्म दिया। शिष्टके सम्पर्कसे अग्नि-कन्या सुच्छायाने कृप, रिपुंजय, वृत्त, वृक, वृकतेजस् और चक्षुष् नामक पुत्रोंको पैदा किया। उनमें रिपुंजयने ब्रह्माकी दौहित्री एवं वीरणकी कन्या वारिणीके गर्भसे चाक्षुष मनुको उत्पन्न किया। चाक्षुष मनुने राजपुत्री नड्वलाके गर्भसे ऊरु, पूरु, तपस्वी शतद्युम्न, सत्यवाक्, हवि, अग्निष्टुत्, अतिरात्र, सुद्युम्न, अपराजित, और दसवाँ अभिमन्यु—इन दस निष्पाप एवं शूरवीर

* यहीं कल्पभेद-व्यवस्था है। अन्यत्र उत्तानपादके ध्रुव और उत्तम ये दो ही पुत्र कहे गये हैं और सूनृताका नाम भी सुनीति आया है।

पुत्रोको पैदा किया। आग्नेयीने ऊरुके संयोगसे अग्नि, सुमनस्, ख्याति, क्रतु, अङ्गिरस् और गय—इन छः परम कान्तिमान् पुत्रोको जन्म दिया। पितरोकी कन्या सुनीथाने अङ्गके सम्पर्कसे वेनको उत्पन्न किया। ( वेन अत्यन्त अन्यायी था। जब वह विप्रशापसे मृत्युको प्राप्त हो गया, तब ) ब्राह्मणोने उस अन्यायी वेनके हाथका मन्थन किया। उससे महातेजस्वी पृथु नामका पुत्र प्रकट हुआ। उनके ( अन्तर्धान और हविर्धान नामक ) दो पुत्र उत्पन्न हुए। उनमें अन्तर्धानने शिखण्डिनीके गर्भसे मारीच नामक पुत्र पैदा किया ॥ ३३—४४½ ॥

**हविर्धानात् षडाग्नेयी धिषणाजनयत् सुतान्। प्राचीनबर्हिषं साङ्गं यमं शुक्रं बलं शुभम्॥ ४५॥**
**प्राचीनबर्हिर्भगवान् महानासीत् प्रजापतिः। हविर्धानाः प्रजास्तेन बहवः सम्प्रवर्तिताः॥ ४६॥**
**सवर्णायां तु सामुद्रयां दशाधत्त सुतान् प्रभुः। सर्वे प्रचेतसो नाम धनुर्वेदस्य पारगाः॥ ४७॥**
**तत्तपोरक्षिता वृक्षा बभुर्लोके समन्ततः। देवादेशाच्च तानग्निरदहद् रविनन्दन॥ ४८॥**
**सोमकन्याभवत् पत्नी मारीषा नाम विश्रुता। तेभ्यस्तु दक्षमेकं सा पुत्रमग्र्यमजीजनत्॥ ४९॥**
**दक्षादनन्तरं वृक्षानौषधानि च सर्वशः। अजीजनत् सोमकन्या नदीं चन्द्रवतीं तथा॥ ५०॥**
**सोमांशस्य च तस्यापि दक्षस्याशीतिकोटयः। तासां तु विस्तरं वक्ष्ये लोके यः सुप्रतिष्ठितः॥ ५१॥**
**द्विपदश्चाभवन् केचित् केचिद् बहुपदा नराः। वलीमुखाः शङ्कुकर्णाः कर्णप्रावरणास्तथा॥ ५२॥**
**अश्वऋक्षमुखाः केचित् केचित् सिंहाननास्तथा। श्वसूकरमुखाः केचित् केचिदुष्ट्रमुखास्तथा॥ ५३॥**
**जनयामास धर्मात्मा म्लेच्छान् सर्वाननेकशः। स सृष्ट्वा मनसा दक्षः स्त्रियः पश्चादजीजनत्॥ ५४॥**
**ददौ स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश।**
**सप्तविंशति सोमाय ददौ नक्षत्रसंज्ञिताः। देवासुरमनुष्यादि ताभ्यः सर्वमभूज्जगत्॥ ५५॥**

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे आदिसर्गे चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥*

अग्नि-कन्या धिषणाने हविर्धानके संयोगसे प्राचीनबर्हिष्, साङ्ग, यम, शुक्र, बल और शुभ—इन छः पुत्रोको जन्म दिया। इनमें महान् ऐश्वर्यशाली प्राचीनबर्हि प्रजापति थे। उन्होने हविर्धान नामसे विख्यात बहुत-सी प्रजाओंका विस्तार किया तथा समुद्र-कन्या सवर्णाके गर्भसे दस पुत्रोंको जन्म दिया। वे सभी धनुर्वेदके पारगामी विद्वान् थे तथा प्रचेता नामसे विख्यात हुए। रविनन्दन! इन्हीं प्रचेताओके तपसे सुरक्षित रहकर वृक्ष-जगत्में चारो ओर शोभा पा रहे थे, परतु इन्द्रदेवके आदेशसे अग्निने उन्हे जलाकर भस्म कर दिया। तत्पश्चात् चन्द्रमाकी कन्या, जो मारिषा नामसे विख्यात थी, उन प्रचेताओकी पत्नी हुई। उसने उनके संयोगसे एक दक्ष नामक श्रेष्ठ पुत्रको जन्म दिया। दक्षकी उत्पत्तिके पश्चात् उस सोमकन्याने समस्त वृक्षो और ओषधियोको तथा चन्द्रवती नामकी नदीको उत्पन्न किया। चन्द्रमाके अंशसे उत्पन्न हुए उस दक्ष प्रजापतिकी अस्सी करोड संतानें हुईं, जो इस समय लोकमें सर्वत्र फैली हुई हैं और जिनका विस्तार मै आगे वर्णन करूँगा। उनमेंसे किन्हींके दो पैर थे तो किन्हींके अनेको पैर थे। किन्हींके मुख टेढे-मेढे थे तो किन्हींके कान खूँटे-जैसे थे तथा किन्हींके कान ( बालोसे ) आच्छादित थे। किन्हींके मुख घोड़े और रीछके सदृश थे तथा कोई सिंहके समान मुखवाले थे। कुछ लोग कुत्ते और सूअरके सदृश मुखवाले थे तो किन्हींका मुख ऊँटके समान था। इस प्रकार धर्मात्मा दक्षने अपने मनसे अनेकों प्रकारके सभी म्लेच्छोकी सृष्टि की, तत्पश्चात् स्त्रियोको उत्पन्न किया। उनमेंसे उन्होने दस धर्मको, तेरह कश्यपको तथा नक्षत्र नामवाली सत्ताईस स्त्रियोंको चन्द्रमाको प्रदान किया। उन्हीं कन्याओसे देवता, असुर और मानव आदिसे परिपूर्ण यह सारा जगत् प्रादुर्भूत हुआ है॥ ४५—५५॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके आदिसर्गमें चौथा अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ४॥

# पाँचवाँ अध्याय

## दक्ष-कन्याओंकी उत्पत्ति, कुमार कार्त्तिकेयका जन्म तथा दक्ष-कन्याओंद्वारा देव-योनियोंका प्रादुर्भाव

ऋषय ऊचुः

देवानां दानवानां च गन्धर्वोरगरक्षसाम्। उत्पत्तिं विस्तरेणैव सूत ब्रूहि यथातथम्॥ १॥

(शौनक आदि) ऋषियोंने पूछा—सूतजी! देवता, दानव, गन्धर्व, नाग और राक्षस—इन सबकी उत्पत्ति कैसे हुई? इसका यथार्थरूपसे विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये॥ १॥

सूत उवाच

संकल्पाद् दर्शनात् स्पर्शात् पूर्वेषां सृष्टिरुच्यते। दक्षात् प्राचेतसादूर्ध्वं सृष्टिर्मैथुनसम्भवा॥ २॥
प्रजाः सृजेति व्यादिष्टः पूर्वं दक्षः स्वयम्भुवा। यथा ससर्ज चैवादौ तथैव शृणुत द्विजाः॥ ३॥
यदा तु सृजतस्तस्य देवर्षिगणपन्नगान्।
न वृद्धिमगमल्लोकस्तदा मैथुनयोगतः। दक्षः पुत्रसहस्राणि पाञ्चजन्यामजीजनत्॥ ४॥
तांस्तु दृष्ट्वा महाभागः सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः। नारदः प्राह हर्यश्वान् दक्षपुत्रान् समागतान्॥ ५॥
भुवः प्रमाणं सर्वत्र ज्ञात्वोर्ध्वमध एव च। ततः सृष्टिं विशेषेण कुरुध्वमृषिसत्तमाः॥ ६॥
ते तु तद्वचनं श्रुत्वा प्रयाताः सर्वतो दिशम्। अद्यापि न निवर्तन्ते समुद्रादिव सिन्धवः॥ ७॥
हर्यश्वेषु प्रणष्टेषु पुनर्दक्षः प्रजापतिः। वीरिण्यामेव पुत्राणां सहस्रमसृजत् प्रभुः॥ ८॥
शबला नाम ते विप्राः समेताः सृष्टिहेतवः। नारदोऽनुगतान् प्राह पुनस्तान् पूर्ववत् स तान्॥ ९॥
भुवः प्रमाणं सर्वत्र ज्ञात्वा भ्रातॄनथो पुनः। आगत्य चाथ सृष्टिं च करिष्यथ विशेषतः॥ १०॥
तेऽपि तेनैव मार्गेण जग्मुर्भ्रातृपथा तदा॥
ततः प्रभृति न भ्रातुः कनीयान् मार्गमिच्छति। अन्विष्यन् दुःखमाप्नोति तेन तत् परिवर्जयेत्॥ ११॥

**सूतजी कहते हैं**—द्विजवरो! प्रचेता-पुत्र दक्षसे पूर्व उत्पन्न हुए लोगोंकी सृष्टि संकल्प, दर्शन और स्पर्शमात्रसे हुई है, ऐसा कहा जाता है; किंतु दक्षके पश्चात् स्त्री-पुरुषके संयोगद्वारा सृष्टि प्रचलित हुई है। पूर्वकालमें जब ब्रह्माने दक्षको आज्ञा दी कि तुम प्रजाओंकी सृष्टि करो, तब दक्षने पहले-पहल जैसी सृष्टि-रचना की, उसे (मै) उसी प्रकार (वर्णन करता हूँ, आपलोग) श्रवण करे। जब (संकल्प, दर्शन और स्पर्शद्वारा) देव, ऋषि और नागोंकी सृष्टि करनेपर जीव-लोकका विस्तार नहीं हुआ, तब दक्षने पाञ्चजनीके गर्भसे एक हजार पुत्रोंको पैदा किया, जो 'हर्यश्व' नामसे विख्यात हुए। उन हर्यश्वनामक दक्ष-पुत्रोंको नाना प्रकारके जीवोंकी सृष्टि करनेके लिये उत्सुक देखकर महाभाग नारदने निकट आये हुए उन लोगोंसे कहा—'श्रेष्ठ ऋषियो! पहले आपलोग सर्वत्र घूमकर पृथ्वीके विस्तार तथा उसके ऊपर और नीचेके भागको जान लें, तब विशेषरूपसे सृष्टि-रचना कीजिये।' नारदजीकी बात सुनकर वे लोग विभिन्न दिशाओंकी ओर चले गये और आजतक भी वे उसी प्रकार नहीं लौटे, जैसे नदियाँ समुद्रमें मिलकर पुनः वापस नहीं आतीं। इस प्रकार हर्यश्व नामक पुत्रोंके नष्ट हो जानेपर प्रभावशाली प्रजापति दक्षने वीरिणीके गर्भसे पुनः एक हजार पुत्रोंको उत्पन्न किया, जो शबल नामसे प्रसिद्ध हुए। जब ये द्विजवर सृष्टि-रचनाके लिये एकत्र होकर नारदजीके निकट पहुँचे, तब उन्होने उन अनुगतोंसे भी पुनः वही पूर्ववत् बात कही—'ऋषियो! आपलोग पहले सब ओर घूमकर पृथ्वीके विस्तारको समझिये और अपने भाइयोंका पता लगाकर लौटिये, तत्पश्चात् विशेषरूपसे सृष्टि-रचना कीजिये।' तब जिस मार्गसे भाई लोग गये थे, उसी मार्गसे वे लोग भी चले

उसी मार्गसे चले गये ( और पुनः वापस नहीं आये )। तभीसे छोटा भाई बड़े भाईको ढूँढने नहीं जाता। यदि जाता है तो वह दुःखभागी होता है। इसलिये ऐसा कार्य नहीं करना चाहिये ॥ २-११ ॥*

ततस्तेषु विनष्टेषु षष्टिं कन्या· प्रजापतिः। वीरिण्यां जनयामास दक्षः प्राचेतसस्तथा ॥ १२ ॥
प्रादात् स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश। सप्तविंशति सोमाय चतस्रोऽरिष्टनेमये ॥ १३ ॥
द्वे चैव भृगुपुत्राय द्वे कृशाश्वाय धीमते। द्वे चैवाङ्गिरसे तद्वत्तासां नामानि विस्तरात् ॥ १४ ॥
शृणुध्वं देवमातॄणां प्रजाविस्तरमादितः। मरुत्वती वसुर्यामी लम्बा भानुररुंधती ॥ १५ ॥
संकल्पा च मुहूर्ता च साध्या विश्वा च भामिनी। धर्मपत्न्यः समाख्यातास्तासां पुत्रान् निबोधत ॥ १६ ॥
विश्वेदेवास्तु विश्वायाः साध्या साध्यानजीजनत्। मरुत्वत्यां मरुत्वन्तो वसोस्तु वसवस्तथा ॥ १७ ॥
भानोस्तु भानवस्तद्वन्मुहूर्तायां मुहूर्तकाः। लम्बायां घोषनामानो नागवीथी तु यामिजा ॥ १८ ॥
पृथिवीतलसम्भूतमरुंधत्यामजायत। संकल्पायास्तु संकल्पो वसुसृष्टिं निबोधत ॥ १९ ॥
ज्योतिष्मन्तस्तु ये देवा व्यापकाः सर्वतो दिशम्। वसवस्ते समाख्यातास्तेषां सर्गं निबोधत ॥ २० ॥
आपो ध्रुवश्च सोमश्च धरश्चैवानिलोऽनलः। प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवोऽष्टौ प्रकीर्तिताः ॥ २१ ॥
आपस्य पुत्राश्चत्वारः शान्तो वै दण्ड एव च। शाम्बोऽथ मणिवक्त्रश्च यज्ञरक्षाधिकारिणः ॥ २२ ॥
ध्रुवस्य कालः पुत्रस्तु वर्चाः सोमादजायत। द्रविणो हव्यवाहश्च धरपुत्रावुभौ स्मृतौ ॥ २३ ॥
कल्याणिन्यां ततः प्राणो रमणः शिशिरोऽपि च। मनोहरा धरात् पुत्रानवापाथ हरेः सुता ॥ २४ ॥
शिवा मनोजवं पुत्रमविज्ञातगतिं तथा। अवाप चानलात् पुत्रावग्निप्रायगुणौ पुनः ॥ २५ ॥
अग्निपुत्रः कुमारस्तु शरस्तम्बे व्यजायत। तस्य शाखो विशाखश्च नैगमेयश्च पृष्ठजाः ॥ २६ ॥
अपत्यं कृत्तिकानां तु कार्त्तिकेयस्ततः स्मृतः।
प्रत्यूषस्य ऋषेः पुत्रो विभुर्नाम्नाथ देवलः। विश्वकर्मा प्रभासस्य पुत्रः शिल्पी प्रजापतिः ॥ २७ ॥
प्रासादभवनोद्यानप्रतिमाभूषणादिषु। तडागारामकूपेषु स्मृतः सोऽमरवर्धकिः ॥ २८ ॥

तदनन्तर उन पुत्रोंके भी विनष्ट हो जानेपर प्रचेता-नन्दन प्रजापति दक्षने वीरिणीके गर्भसे साठ कन्याएँ उत्पन्न कीं। उनमेंसे दक्षने दस धर्मको, तेरह कश्यपको, सत्ताईस चन्द्रमाको, चार अरिष्टनेमिको, दो भृगुनन्दन शुक्रको, दो बुद्धिमान् कृशाश्वको और दो कन्याएँ अङ्गिराको प्रदान कर दीं। अब आपलोग इन देवमाताओंके नाम तथा जिस प्रकार इनकी संतानोंका विस्तार हुआ, वह सब आदिसे ही विस्तारपूर्वक सुनिये। इनमेंसे मरुत्वती, वसु, यामी, लम्बा, भानु, अरुंधती, संकल्पा, मुहूर्ता, साध्या और सुन्दरी विश्वा—ये दस धर्मकी पत्नियाँ बतलायी गयी हैं। अब इनके पुत्रोंके भी नाम सुनिये—विश्वाने ( दस ) विश्वेदेवोंको, साध्याने ( बारह ) साध्योंको, मरुत्वतीने ( उनचास ) मरुतोंको, वसुने आठ वसुओंको, भानुने ( बारह ) सूर्योंको, मुहूर्ताने मुहूर्तकको, लम्बाने घोषको, यामीने नागवीथीको और संकल्पाने संकल्पको जन्म दिया। अरुंधतीके गर्भसे भूतलपर होनेवाले समस्त जीव-जन्तुओंकी उत्पत्ति हुई। अब वसुओंकी सृष्टिके विषयमें सुनिये—ये जो प्रभाशाली देवता सम्पूर्ण दिशाओंमें व्याप्त हैं, वे सभी 'वसु' नामसे विख्यात हैं। अब इनके सृष्टि-विस्तारका वर्णन सुनिये। आप, ध्रुव, सोम, धर, अनिल, अनल, प्रत्यूष और प्रभास—ये आठ वसु कहे गये हैं। इनमें आप नामक वसुके शान्त, दण्ड, शाम्ब और मणिवक्त्र नामक चार पुत्र हुए, जो सब-के-सब यज्ञ-रक्षाके अधिकारी हैं। ( शेष वसुओंमें ) ध्रुवका पुत्र काल हुआ। सोमसे वर्चाकी उत्पत्ति हुई। धरके कल्याणिनीके गर्भसे द्रविण और हव्यवाह नामके दो

* विष्णुपुराण १। १५। १०१, ब्रह्म० २। ८०, वायु० ६५ आदिमें ऐसा ही है, पर भागवत० ६। ५में कुछ इसके विपरीत भी सम्मति है।

पुत्र बतलाये जाते हैं तथा हरिकी कन्या मनोहराने उन्हीं धरके संयोगसे प्राण, रमण और शिशिर नामक तीन पुत्र प्राप्त किये। शिवाने अनलसे मनोजव तथा अविज्ञातगति नामक दो पुत्रोंको प्राप्त किया, जो प्रायः अग्निके सदृश ही गुणवाले थे। अग्निपुत्र कुमार ( कार्त्तिकेय ) सरकंडेके झुरमुटमें पैदा हुए थे। इनके अनुज शाख, विशाख और नैगमेय नामसे प्रसिद्ध हैं। कृत्तिकाकी संतति होनेके कारण ये कार्त्तिकेय नामसे भी विख्यात हैं। प्रत्यूष वसुके विभु तथा देवल* नामके दो पुत्र हुए, जो आगे चलकर महान् ऋषि हुए। प्रभासका पुत्र विश्वकर्मा हुआ, जो शिल्पक्रियामें निपुण और प्रजापति हुआ। वह प्रासाद ( अट्टालिका ) भवन, उद्यान, प्रतिमा, आभूषण, वापी, सरोवर, बगीचा और कुआँ आदिके निर्माणकार्यमें देवताओंके बढ़ईरूपसे विख्यात हुआ ॥ १२—२८ ॥

अजैकपादहिर्बुध्न्यो विरूपाक्षोऽथ रैवतः। हरश्च बहुरूपश्च त्र्यम्बकश्च सुरेश्वरः ॥ २९ ॥
सावित्रश्च जयन्तश्च पिनाकी चापराजितः। एते रुद्राः समाख्याता एकादश गणेश्वराः ॥ ३० ॥
एतेषां मानसानां तु त्रिशूलवरधारिणाम्। कोट्यश्चतुराशीतिस्तत्पुत्राश्चाक्षया मताः ॥ ३१ ॥
दिक्षु सर्वासु ये रक्षां प्रकुर्वन्ति गणेश्वराः। पुत्रपौत्रसुताश्चैते सुरभीगर्भसम्भवाः ॥ ३२ ॥

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे आदिसर्गे वसुरुद्रान्वयो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥*

अजैकपाद्, अहिर्बुध्न्य, विरूपाक्ष, रैवत, हर, बहुरूप, सुरराज त्र्यम्बक, सावित्र, जयन्त, पिनाकी और अपराजित—ये एकादश रुद्र गणेश्वर नामसे प्रख्यात हैं। श्रेष्ठ त्रिशूल धारण करनेवाले इन ब्रह्माके मानस पुत्ररूप गणेश्वरोंके चौरासी करोड़ पुत्र उत्पन्न हुए, जो सब-के-सब अक्षय माने गये हैं। सुरभीके गर्भसे उद्भूत ये एकादश रुद्रोंके पुत्र-पौत्र आदि, जो गणेश्वर कहे जाते हैं, सभी दिशाओंमें ( चराचर जगत्की ) रक्षा करते हैं ॥२९—३२॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके आदिसर्गमें वसुओं और रुद्रोंके वंशका वर्णन नामक पाँचवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ५ ॥

## छठा अध्याय

### कश्यप-वंशका विस्तृत वर्णन

सूत उवाच

कश्यपस्य प्रवक्ष्यामि पत्नीभ्यः पुत्रपौत्रकान्। अदितिर्दितिर्दनुश्चैव अरिष्टा सुरसा तथा ॥ १ ॥
सुरभिर्विनता तद्वत्ताम्रा क्रोधवशा इरा। कद्रूर्विश्वा मुनिस्तद्वत्तासां पुत्रान् निबोधत ॥ २ ॥
तुषिता नाम ये देवाश्चाक्षुषस्यान्तरे मनोः। वैवस्वतेऽन्तरे चैते ह्यादित्या द्वादश स्मृताः ॥ ३ ॥
इन्द्रो धाता भगस्त्वष्टा मित्रोऽथ वरुणो यमः। विवस्वान् सविता पूषा अंशुमान् विष्णुरेव च ॥ ४ ॥
एते सहस्रकिरणा आदित्या द्वादश स्मृताः। मारीचात् कश्यपादाप पुत्रानदितिरुत्तमान् ॥ ५ ॥
कृशाश्वस्य ऋषेः पुत्रा देवप्रहरणाः स्मृताः। एते देवगणा विप्राः प्रतिमन्वन्तरेषु च ॥ ६ ॥
उत्पद्यन्ते प्रलीयन्ते कल्पे कल्पे तथैव च। दितिः पुत्रद्वयं लेभे कश्यपादिति नः श्रुतम् ॥ ७ ॥
हिरण्यकशिपुं चैव हिरण्याक्षं तथैव च। हिरण्यकशिपोस्तद्वज्जातं पुत्रचतुष्टयम् ॥ ८ ॥
प्रह्लादश्चानुह्लादश्च संह्लादो ह्लाद एव च। प्रह्लादपुत्र आयुष्मान् शिबिर्बाष्कल एव च ॥ ९ ॥
विरोचनश्चतुर्थश्च स बलिं पुत्रमाप्तवान्। बलेः पुत्रशतं त्वासीद् बाणज्येष्ठं ततो द्विजाः ॥ १० ॥
धृतराष्ट्रस्तथा सूर्यश्चन्द्रश्चन्द्रांशुतापनः। निकुम्भनाभो गुर्वक्षः कुक्षिभीमो विभीषणः ॥ ११ ॥
एवमाद्यास्तु बहवो बाणज्येष्ठा गुणाधिकाः। बाणः सहस्रबाहुश्च सर्वास्त्रगणसंयुतः ॥ १२ ॥
तपसा तोषितो यस्य पुरे वसति शूलभृत्। महाकालत्वमगमत् साम्यं यश्च पिनाकिनः ॥ १३ ॥

* असित और एकपर्णाके पुत्र महर्षि देवल, जो 'देवलस्मृति'के रचयिता हैं, इनसे भिन्न हैं।

हिरण्याक्षस्य पुत्रोऽभूदुलूकः शकुनिस्तथा। भूतसंतापनश्चैव महानाभस्तथैव च ॥ १४ ॥
एतेभ्यः पुत्रपौत्राणां कोटयः सप्तसप्ततिः। महाबला महाकाया नानारूपा महौजसः ॥ १५ ॥

**सूतजी कहते हैं**—( शौनकादि ऋषियो! ) अब मैं कश्यपकी पत्नियोंसे उत्पन्न हुए पुत्र-पौत्रोंका वर्णन करता हूँ। अदिति, दिति, दनु, अरिष्टा, सुरसा, सुरभि, विनता, ताम्रा, क्रोधवशा, इरा, कद्रू, विश्वा और मुनि—ये तेरह कश्यपकी पत्नियाँ थीं। अब इनके पुत्रोंका वर्णन सुनिये। चाक्षुष मनुके कार्यकालमें जो तुषित नामके देवगण थे, वे ही वैवस्वत मन्वन्तरमें द्वादश आदित्यके नामसे प्रख्यात हुए। इनके नाम हैं—इन्द्र, धाता, भग, त्वष्टा, मित्र, वरुण, यम, विवस्वान्, सविता, पूषा, अंशुमान् और विष्णु। ये सभी सहस्र किरणोंसे सम्पन्न हैं और द्वादश आदित्य कहे जाते है। अदितिने मरीचि-नन्दन कश्यपके संयोगसे इन श्रेष्ठ पुत्रोंको प्राप्त किया था। महर्षि कृशाश्वके पुत्र देवप्रहरण नामसे विख्यात हुए। द्विजवरो! ये देवगण प्रत्येक मन्वन्तर तथा प्रत्येक कल्पमें उत्पन्न और विलीन होते रहते हैं। हमने सुना है कि दितिने महर्षि कश्यपके सम्पर्कसे हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष नामक दो पुत्रोंको प्राप्त किया था। हिरण्यकशिपुके उसीके समान पराक्रमी प्रह्लाद, अनुह्लाद, संह्लाद और ह्लादनामक चार पुत्र उत्पन्न हुए। उनमेंसे प्रह्लादके चार पुत्र हुए—आयुष्मान्, शिबि, बाष्कल और चौथा विरोचन। उस विरोचनने बलिको पुत्ररूपमें प्राप्त किया। विप्रवरो! बलिके सौ पुत्र उत्पन्न हुए, जिनमें बाण ज्येष्ठ था। इसके अतिरिक्त धृतराष्ट्र, सूर्य, चन्द्र, चन्द्रांशुतापन, निकुम्भनाभ, गुर्वक्ष, कुक्षिभीम, विभीषण तथा इसी प्रकारके और भी बहुत-से पुत्र थे, जो बाणसे छोटे, परंतु सभी श्रेष्ठ गुणोंसे सम्पन्न थे। उनमें बाणके सहस्र भुजाएँ थीं और वह समस्त अस्त्रसमूहोंका ज्ञाता था। उसकी तपस्यासे संतुष्ट होकर त्रिशूलधारी भगवान् शंकर उसके नगरमें निवास करते थे। उसने ( अपनी तपस्याके प्रभावसे ) पिनाकधारी शंकरजीकी समतावाले महाकाल-पदको प्राप्त कर लिया था। ( दितिके द्वितीय पुत्र ) हिरण्याक्षके उलूक, शकुनि, भूतसंतापन और महानाभनामक पुत्र हुए। इनसे उत्पन्न हुए पुत्र-पौत्रोंकी संख्या सतहत्तर करोड़ थी। वे सभी महान् बलशाली, विशाल शरीरवाले, नाना प्रकारका रूप धारण करनेमें समर्थ और महान् ओजस्वी थे ॥ १—१५ ॥

दनुः पुत्रशतं लेभे कश्यपाद् बलदर्पितम्। विप्रचित्तिः प्रधानोऽभूद् येषां मध्ये महाबलः ॥ १६ ॥
द्विमूर्धा शकुनिश्चैव तथा शङ्कुशिरोधरः। अयोमुखः शम्बरश्च कपिशो वामनस्तथा ॥ १७ ॥
मारीचिर्मघवांश्चैव इरागर्भशिरास्तथा। विद्रावणश्च केतुश्च केतुवीर्यः शतह्रदः ॥ १८ ॥
इन्द्रजित् सप्तजिच्चैव वज्रनाभस्तथैव च। एकचक्रो महाबाहुर्वज्राक्षस्तारकस्तथा ॥ १९ ॥
असिलोमा पुलोमा च बिन्दुर्बाणो महासुरः। स्वर्भानुर्वृषपर्वा च एवमाद्या दनोः सुताः ॥ २० ॥
स्वर्भानोस्तु प्रभा कन्या शची चैव पुलोमजा। उपदानवी मयस्यासीत्तथा मन्दोदरी कुहूः ॥ २१ ॥
शर्मिष्ठा सुन्दरी चैव चन्द्रा च वृषपर्वणः। पुलोमा कालका चैव वैश्वानरसुते हि ते ॥ २२ ॥
बह्वपत्ये महासत्त्वे मारीचस्य परिग्रहे। तयोः षष्टिसहस्राणि दानवानामभूत् पुरा ॥ २३ ॥
पौलोमान् कालकेयांश्च मारीचोऽजनयत् पुरा। अवध्या येऽमराणां वै हिरण्यपुरवासिनः ॥ २४ ॥
चतुर्मुखाल्लब्धवरास्ते हता विजयेन तु। विप्रचित्तिः सैंहिकेयान् सिंहिकायामजीजनत् ॥ २५ ॥
हिरण्यकशिपोर्ये वै भागिनेयास्त्रयोदश। व्यंसः कल्पश्च राजेन्द्र नलो वातापिरेव च ॥ २६ ॥
इल्वलो नमुचिश्चैव श्वसृपश्चाजनस्तथा। नरकः कालनाभश्च सरमाणस्तथैव च ॥ २७ ॥
कालवीर्यश्च विख्यातो दनुवंशविवर्धनाः। संह्लादस्य तु दैत्यस्य निवातकवचाः स्मृताः ॥ २८ ॥
अवध्याः सर्वदेवानां गन्धर्वोरगरक्षसाम्। ये हता भर्गमाश्रित्य त्वर्जुनेन रणाजिरे ॥ २९ ॥

षट् कन्या जनयामास ताम्रा मारीचबीजतः । शुकी श्येनी च भासी च सुग्रीवी गृध्रिका शुचिः ॥ ३० ॥
शुकी शुकानुलूकांश्च जनयामास धर्मतः । श्येनी श्येनांस्तथा भासी कुररानप्यजीजनत् ॥ ३१ ॥
गृध्री गृध्रान् कपोतांश्च पारावतविहङ्गमान् । हंससारसक्रौञ्चांश्च प्लवाञ्छुचिरजीजनत् ॥ ३२ ॥
अजाश्वमेषोष्ट्रखरान् सुग्रीवी चाप्यजीजनत् । एष ताम्रान्वयः प्रोक्तो विनतायां निबोधत ॥ ३३ ॥

इसी प्रकार दनुने भी कश्यपके संयोगसे सौ बलशाली पुत्रोंको प्राप्त किया, जिनमें महाबली विप्रचित्ति प्रधान था। इसके अतिरिक्त द्विमूर्धा, शकुनि, शंकुशिरोधर, अयोमुख, शम्बर, कपिश, वामन, मारीचि, मेघवान्, इरागर्भशिरा, विद्रावण, केतु, केतुवीर्य, शतह्रद, इन्द्रजित्, सप्तजित्, वज्रनाभ, एकचक्र, महाबाहु, वज्राक्ष, तारक, असिलोमा, पुलोमा, बिन्दु, महासुर बाण, स्वर्भानु और वृषपर्वा—ये तथा इसी प्रकारके और भी दनुके पुत्र थे। इनमें स्वर्भानुकी प्रभा, पुलोमाकी शची, मयकी उपदानवी, मन्दोदरी और कुहू, वृषपर्वाकी शर्मिष्ठा, सुन्दरी और चन्द्रा तथा वैश्वानरकी पुलोमा और कालका नामकी कन्याएँ थीं। इनमें महान् बलशालिनी एवं बहुत-सी संतानोंवाली पुलोमा और कालका मरीचि-पुत्र कश्यपकी पत्नियाँ थीं। इन दोनोंसे पूर्वकालमें साठ हजार दानवोंकी उत्पत्ति हुई थी। पूर्वकालमें मरीचिनन्दन कश्यपने (इन्हीं पुलोमा और कालकाके गर्भसे) पौलोम और कालकेय संज्ञक दानवोंको पैदा किया था, जो हिरण्यपुरमें निवास करते थे तथा ब्रह्मासे वरदान प्राप्त होनेके कारण वे देवताओंके लिये भी अवध्य थे; परंतु विजय ( अर्जुन )ने उनका संहार कर डाला। विप्रचित्तिने सिंहिकाके गर्भसे सैंहिकेय-संज्ञक पुत्रोंको जन्म दिया, जिनकी संख्या तेरह थी। ये हिरण्यकशिपुके भानजे थे। उनके नाम ये हैं—व्यंस, कल्प, राजेन्द्र, नल, वातापि, इल्वल, नमुचि, स्वसृप, अजन, नरक, कालनाभ, सरमाण तथा प्रसिद्ध कालवीर्य। ये सभी दनु-वंशको बढ़ानेवाले थे। दैत्य संह्लादके पुत्र निवातकवचके नामसे विख्यात हुए। वे सम्पूर्ण देवताओं, गन्धर्वों, नागों और राक्षसोंद्वारा अवध्य थे; किंतु अर्जुनने शिवजीका आश्रय ग्रहण करके रणभूमिमें उन्हें यमलोकका पथिक बना दिया। ताम्राने कश्यपसे शुकी, श्येनी, भासी, सुग्रीवी, गृध्रिका और शुचिनामक छः कन्याओंको जन्म दिया। इनमें शुकीने धर्मके संयोगसे शुक और उल्लुओंको उत्पन्न किया। श्येनीसे श्येन ( बाज ) तथा भासीसे कुरर ( चकवा )की उत्पत्ति हुई। गृध्रीने गीधों, पंडुकियों और कबूतरोंको पैदा किया। शुचिके गर्भसे हंस, सारस, क्रौंच और प्लव ( कारण्डव या विशेष जलपक्षी ) प्रादुर्भूत हुए। सुग्रीवीने बकरा, घोड़ा, भेंड़ा, ऊँट और गधोंको जन्म दिया। इस प्रकार यह ताम्राके वंशका वर्णन किया, अब विनताकी वंश-परम्पराके विषयमें सुनिये ॥१६–३३॥

गरुडः पततां नाथो अरुणश्च पतत्त्रिणाम् । सौदामिनी तथा कन्या येयं नभसि विश्रुता ॥ ३४ ॥
सम्पातिश्च जटायुश्च अरुणस्य सुतावुभौ । सम्पातिपुत्रो बभ्रुश्च शीघ्रगश्चापि विश्रुतः ॥ ३५ ॥
जटायुषः कर्णिकारः शतगामी च विश्रुतौ । सारसो रज्जुवालश्च भेरुण्डश्चापि तत्सुताः ॥ ३६ ॥
तेषामनन्तमभवत् पक्षिणां पुत्रपौत्रकम् । सुरसायाः सहस्रं तु सर्पाणामभवत् पुरा ॥ ३७ ॥
सहस्रशिरसां कद्रूः सहस्रं चापि सुव्रत । प्रधानास्तेषु विख्याताः षड्विंशतिररिंदम ॥ ३८ ॥
शेषवासुकिकर्कोटशङ्खैरावतकम्बलाः । धनंजयमहानीलपद्माश्वतरतक्षकाः ॥ ३९ ॥

* वाल्मी० रामा० १ । १ । २० आदि, भागवत० १ । ६ । ३१, ३ । १२ । ३२, ४ । १ । १३, ९ । १ । १०, विष्णुपुराण १ । १५ । १३१, २१ । ८, मत्स्य० ३ । ६, ४ । २६, ११५ । ९, वायु० ५० । १६८, ५२ । २५, १०१ । ३५, ४९, ब्रह्माण्ड० २ । ३२ । ९६, २ । २१ । ४३-४४ आदिके अनुसार मरीचि ऋषिके एकमात्र पुत्र कश्यप ही हैं। किसी-किसी पुराणमे उनका एक दूसरा पुत्र 'पौर्णमास' भी निर्दिष्ट है।

एलापत्रमहापद्मधृतराष्ट्रबलाहकाः । शङ्खपालमहाशङ्खपुष्पदंष्ट्रशुभाननाः ॥ ४० ॥
शङ्कुरोमा च बहुलो वामनः पाणिनस्तथा । कपिलो दुर्मुखश्चापि पतञ्जलिरिति स्मृताः ॥ ४१ ॥
एषामनन्तमभवत् सर्वेषां पुत्रपौत्रकम् । प्रायशो यत् पुरा दग्धं जनमेजयमन्दिरे ॥ ४२ ॥
रक्षोगणं क्रोधवशा स्वनामानमजीजनत् । दंष्ट्रिणां नियुतं तेषां भीमसेनाद्‌गात् क्षयम् ॥ ४३ ॥
रुद्राणां च गणं तद्वद् गोमहिष्यो वराङ्गनाः । सुरभिर्जनयामास कश्यपात् संयतव्रता ॥ ४४ ॥
मुनिर्मुनीनां च गणं गणमप्सरसां तथा । तथा किन्नरगन्धर्वानरिष्टाजनयद् बहून् ॥ ४५ ॥
तृणवृक्षलतागुल्ममिरा सर्वमजीजनत् । विश्वा तु यक्षरक्षांसि जनयामास कोटिशः ॥ ४६ ॥
तत एकोनपञ्चाशन्मरुतः कश्यपाद् दितिः । जनयामास धर्मज्ञान् सर्वानमरवल्लभान् ॥ ४७ ॥

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे आदिसर्गे कश्यपान्वयो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥*

( विनताके दो पुत्र ) गरुड़ और अरुण आकाशचारी छोटे-बड़े समस्त पक्षियोंके स्वामी हैं । ( उसकी तीसरी संतान ) सौदामिनी नामकी कन्या है, जो गगन-मण्डलमें विख्यात है । अरुणके सम्पाति और जटायु नामके दो पुत्र हुए । उनमें सम्पातिके पुत्र बभ्रु और शीघ्रग नामसे विख्यात हुए । जटायुके दो पुत्र कर्णिकार और शतगामी नामसे प्रसिद्ध हुए । इनके अतिरिक्त जटायुके सारस, रज्जुबाल और भेरुण्डनामक पुत्र भी थे । इन पक्षियोंके पुत्र-पौत्रोंकी संख्या अनन्त है । सुव्रत ! सुरसा तथा कद्रूके गर्भसे सहस्र फणोंवाले एक-एक हजार सर्पोंकी उत्पत्ति हुई । परंतप ! उनमें छब्बीस प्रधान हैं । उनके नाम ये हैं—शेष, वासुकि, कर्कोटक, शङ्ख, ऐरावत, कम्बल, धनंजय, महानील, पद्म, अश्वतर, तक्षक, एलापत्र, महापद्म, धृतराष्ट्र, बलाहक, शंखपाल, महाशंख, पुष्पदंष्ट्र, शुभानन, शंकुरोमा, बहुल, वामन, पाणिन, कपिल, दुर्मुख और पतञ्जलि । इन सभी सर्पोंके पुत्र-पौत्रोंकी संख्या अगणित थी, परंतु प्राचीनकालमें जनमेजयके सर्पयज्ञमें ( इनमेंसे ) प्रायः अधिकांश जला दिये गये । क्रोधवशाने अपने ही नामवाले ( क्रोधवश-नामक ) दंष्ट्रधारी एक लाख राक्षसोंको जन्म दिया, जो भीमसेनद्वारा नष्ट कर दिये गये । संयत व्रतवाली सुरभिने महर्षि कश्यपके संयोगसे रुद्रगणों तथा सुन्दर अङ्गोंवाली गायों और भैंसोंको उत्पन्न किया । मुनिने मुनि-समुदाय तथा अप्सरा-समूहको पैदा किया, उसी प्रकार अरिष्टाने बहुत-से किन्नर और गन्धर्वोंको जन्म दिया । इरासे समस्त तृण, वृक्ष, लता और झाड़ी आदिकी उत्पत्ति हुई । इसी प्रकार विश्वाने करोड़ो यक्षों और राक्षसोंको पैदा किया तथा दितिने कश्यपके सम्पर्कसे उनचास मरुतोंको उत्पन्न किया, जो सभी धर्मज्ञ और देवप्रिय थे ॥ ३४—४७ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके आदिसर्गमें कश्यप-वंश-वर्णन नामक छठा अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ६ ॥

# सातवाँ अध्याय

## मरुतोंकी उत्पत्तिके प्रसङ्गमें दितिकी तपस्या, मदनद्वादशी-व्रतका वर्णन, कश्यपद्वारा दितिको वरदान, गर्भिणी स्त्रियोंके लिये नियम तथा मरुतोंकी उत्पत्ति

ऋषय ऊचुः

दितेः पुत्राः कथं जाता मरुतो देववल्लभाः । देवैर्जग्मुश्च सापत्नैः कस्मात्ते सख्यमुत्तमम् ॥ १ ॥

**ऋषियोंने पूछा—**सूतजी ! ( दैत्योंकी जननी ) दितिके पुत्र उनचास मरुत देवताओंके प्रिय कैसे बन गये ? तथा अपने सौतेले भाई देवताओंके साथ उनकी प्रगाढ़ मैत्री कैसे हो गयी ? ॥ १ ॥

सूत उवाच

पुरा देवासुरे युद्धे हतेषु हरिणा सुरैः। पुत्रपौत्रेषु शोकार्ता गत्वा भूर्लोकमुत्तमम् ॥ २ ॥
स्यमन्तपञ्चके क्षेत्रे सरस्वत्यास्तटे शुभे। भर्तुराराधनपरा तप उग्रं चचार ह ॥ ३ ॥
तदा दितिर्दैत्यमाता ऋषिरूपेण सुव्रत। फलाहारा तपस्तेपे कृच्छ्रं चान्द्रायणादिकम् ॥ ४ ॥
यावद् वर्षशतं साग्रं जराशोकसमाकुला। ततः सा तपसा तप्ता वसिष्ठादीनपृच्छत ॥ ५ ॥
कथयन्तु भवन्तो मे पुत्रशोकविनाशनम्। व्रतं सौभाग्यफलदमिह लोके परत्र च ॥ ६ ॥
ऊचुर्वसिष्ठप्रमुखा मदनद्वादशीव्रतम्। यस्याः प्रभावादभवत् सुतशोकविवर्जिता ॥ ७ ॥

सूतजी कहते हैं—सुव्रत मुनियो ! प्राचीनकालकी बात है, देवासुर-संग्राममें भगवान् विष्णु तथा देवगणोंद्वारा अपने पुत्र-पौत्रोंका संहार हो जानेपर दैत्यमाता दिति शोकसे विह्वल हो गयी। वह उत्तम भूलोकमें जाकर स्यमन्तपञ्चक-क्षेत्रमें सरस्वतीके मङ्गलमय तटपर अपने पतिदेव महर्षि कश्यपकी आराधनामें तत्पर रहती हुई घोर तपमें निरत हो गयी। उस समय उसने ऋषियोंके समान फलाहार-पर निर्भर रहकर कृच्छ्रचान्द्रायण आदि व्रतोंका पालन किया। इस प्रकार बुढ़ापा और शोकसे अत्यन्त आकुल हुई दिति सौ वर्षोंतक उस कठोर तपका अनुष्ठान करती रही। तदनन्तर उस तपस्यासे संतप्त हुई दितिने वसिष्ठ आदि महर्षियोंसे पूछा—'ऋषियो ! आपलोग मुझे ऐसा व्रत बतलाइये, जो पुत्र-शोकका विनाशक तथा इहलोक एवं परलोकमें सौभाग्यरूपी फलका प्रदाता हो।' तब वसिष्ठ आदि ऋषियोंने उसे मदनद्वादशी-व्रतका विधान बतलाया, जिसके प्रभावसे वह पुत्रशोकसे उन्मुक्त हो गयी ॥ २—७ ॥

ऋषय ऊचुः

श्रोतुमिच्छामहे सूत मदनद्वादशीव्रतम्। सुतानेकोनपञ्चाशद् येन लेभे दितिः पुनः ॥ ८ ॥

ऋषियोंने पूछा—सूतजी ! जिसका अनुष्ठान करनेसे दितिको पुनः उनचास पुत्रोंकी प्राप्ति हुई, उस मदन-द्वादशीव्रतके विषयमें हमलोग भी सुनना चाहते हैं ॥ ८ ॥

सूत उवाच

यद् वसिष्ठादिभिः पूर्वं दितेः कथितमुत्तमम्। विस्तरेण तदेवेदं मत्सकाशान्निबोधत ॥ ९ ॥
चैत्रे मासि सिते पक्षे द्वादश्यां नियतव्रतः। स्थापयेदव्रणं कुम्भं सिततण्डुलपूरितम् ॥ १० ॥
नानाफलयुतं तद्वदिक्षुखण्डसमन्वितम्। सितवस्त्रयुगच्छन्नं सितचन्दनचर्चितम् ॥ ११ ॥
नानाभक्ष्यसमोपेतं सहिरण्यं तु शक्तितः। ताम्रपात्रं गुडोपेतं तस्योपरि निवेशयेत् ॥ १२ ॥
तस्मादुपरि कामं तु कदलीदलसंस्थितम्। कुर्याच्छर्करयोपेतां रतिं तस्य च वामतः ॥ १३ ॥
गन्धं धूपं ततो दद्याद् गीतं वाद्यं च कारयेत्। तदभावे कथां कुर्यात् कामकेशवयोर्नरः ॥ १४ ॥
कामनाम्नो हरेरर्चां स्नापयेद् गन्धवारिणा। शुक्लपुष्पाक्षततिलैरर्चयेन्मधुसूदनम् ॥ १५ ॥
कामाय पादौ सम्पूज्य जङ्घे सौभाग्यदाय च। ऊरू स्मरायेति पुनर्मन्मथायेति वै कटिम् ॥ १६ ॥
स्वच्छोदरायेत्युदरमनङ्गायेत्युरो हरेः। मुखं पद्ममुखायेति बाहू पञ्चशराय वै ॥ १७ ॥
नमः सर्वात्मने मौलिमर्चयेदिति केशवम्। ततः प्रभाते तं कुम्भं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥ १८ ॥
ब्राह्मणान् भोजयेद् भक्त्या स्वयं च लवणादृते। भुक्त्वा तु दक्षिणां दद्यादिमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥ १९ ॥
प्रीयतामत्र भगवान् काmरूपी जनार्दनः। हृदये सर्वभूतानां य आनन्दोऽभिधीयते ॥ २० ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! पूर्वकालमें वसिष्ठ आदि महर्षियोंने दितिके प्रति जिस उत्तम मदनद्वादशी-व्रतका वर्णन किया था, उसीको आपलोग मुझसे विस्तार-पूर्वक सुनिये। व्रतधारीको चाहिये कि वह चैत्र मासमें

शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिको श्वेत चावलोंसे परिपूर्ण एवं छिद्ररहित एक घट स्थापित करे। उसपर श्वेत चन्दनका अनुलेप लगा हो तथा वह श्वेत वस्त्रके दो टुकड़ोंसे आच्छादित हो। उसके निकट विभिन्न प्रकारके ऋतुफल और गन्नेके टुकडे रखे जायँ। वह विविध प्रकारकी खाद्य सामग्रीसे युक्त हो तथा उसमें यथाशक्ति सुवर्ण-खण्ड भी डाला जाय। तत्पश्चात् उसके ऊपर गुड़से भरा हुआ ताँबेका पात्र स्थापित करना चाहिये। उसके ऊपर केलेके पत्तेपर काम तथा उसके वाम भागमें शक्करसमन्वित रतिकी स्थापना करे। फिर गन्ध, धूप आदि उपचारोंसे उनकी पूजा करे और गीत, वाद्य आदिका भी प्रबन्ध करे। ( अर्थाभावके कारण ) गीत-वाद्य आदिका प्रबन्ध न हो सकनेपर मनुष्यको कामदेव और भगवान् विष्णुकी कथाका आयोजन करना चाहिये। पुनः कामदेव नामक भगवान् विष्णुकी अर्चना करते समय उन्हें सुगन्धित जलसे स्नान कराना चाहिये। श्वेत पुष्प, अक्षत और तिलोंद्वारा उन मधुसूदनकी विधिवत् पूजा करे। उस समय उन 'विष्णुके पैरोंमें कामदेव, जङ्घाओंमें सौभाग्यदाता, ऊरुओंमें स्मर, कटिभागमें मन्मथ, उदरमें स्वच्छोदर, वक्षःस्थलमें अनङ्ग, मुखमें पद्ममुख, बाहुओंमें पञ्चशर और मस्तकमें सर्वात्माको नमस्कार है'—यों कहकर भगवान् केशवका साङ्गोपाङ्ग पूजन करे। तदनन्तर प्रातःकाल वह घट ब्राह्मणको दान कर दे। पुनः भक्तिपूर्वक ब्राह्मणोंको भोजन कराकर स्वयं भी नमकरहित भोजन करे और ब्राह्मणोंको दक्षिणा देकर इस मन्त्रका उच्चारण करे—'जो सम्पूर्ण प्राणियोंके हृदयमें स्थित रहकर आनन्द नामसे कहे जाते हैं, वे कामरूपी भगवान् जनार्दन मेरे इस अनुष्ठानसे प्रसन्न हों।' ॥ ९—२० ॥

**अनेन विधिना सर्वं मासि मासि व्रतं चरेत्। उपवासी त्रयादश्यामर्चयेद् विष्णुमव्ययम् ॥ २१ ॥**
**फलमेकं च सम्प्राश्य द्वादश्यां भूतले स्वपेत्। ततस्त्रयोदशे मासि घृतधेनुसमन्विताम् ॥ २२ ॥**
**शय्यां दद्यादनङ्गाय सर्वोपस्करसंयुताम्। काञ्चनं कामदेवं च शुक्लां गां च पयस्विनीम् ॥ २३ ॥**
**वासोभिर्द्विजदाम्पत्यं पूज्यं शक्त्या विभूषणैः। शय्यागन्धादिकं दद्यात् प्रीयतामित्युदीरयेत् ॥ २४ ॥**
**होमः शुक्लतिलैः कार्यः कामनामानि कीर्तयेत्। गव्येन हविषा तद्वत् पायसेन च धर्मवित् ॥ २५ ॥**
**विप्रेभ्यो भोजनं दद्याद् वित्तशाठ्यं विवर्जयेत्। इक्षुदण्डानथो दद्यात् पुष्पमालाश्च शक्तितः ॥ २६ ॥**
**यः कुर्याद् विधिनानेन मदनद्वादशीमिमाम्। स सर्वपापनिर्मुक्तः प्राप्नोति हरिसाम्यताम् ॥ २७ ॥**
**इह लोके वरान् पुत्रान् सौभाग्यफलमश्नुते। यः स्मरः संस्मृतो विष्णुरानन्दात्मा महेश्वरः ॥ २८ ॥**
**सुखार्थी कामरूपेण स्मरेदङ्गजमीश्वरम्। एतच्छ्रुत्वा चकारासौ दितिः सर्वमशेषतः ॥ २९ ॥**

इसी विधिसे प्रत्येक मासमें मदनद्वादशीव्रतका अनुष्ठान करना चाहिये। व्रतीको चाहिये कि वह द्वादशीके दिन एक फल खाकर भूतलपर शयन करे और त्रयोदशीके दिन अविनाशी भगवान् विष्णुका पूजन करे। तेरहवाँ महीना आनेपर घृतधेनु-सहित एवं समस्त सामग्रियोंसे सम्पन्न शय्या, कामदेवकी स्वर्ण-निर्मित प्रतिमा और श्वेत रंगकी दुधारू गौ अनङ्ग-( कामदेव ) को समर्पित करे ( अर्थात् अनङ्गके उद्देश्यसे ब्राह्मणको दान दे )। उस समय शक्तिके अनुसार वस्त्र एवं आभूषण आदिद्वारा सपत्नीक ब्राह्मणकी पूजा करके उन्हें शय्या और सुगन्ध आदि प्रदान करते हुए ऐसा कहना चाहिये कि 'आप प्रसन्न हों।' तत्पश्चात् उस धर्मज्ञ व्रतीको गोदुग्धसे बनी हुई हवि, खीर और श्वेत तिलोंसे कामदेवके नामोंका कीर्तन करते हुए हवन करना चाहिये। पुनः कृपणता छोड़कर ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये और उन्हे यथाशक्ति गन्ना और पुष्पमाला प्रदानकर संतुष्ट करना चाहिये। जो इस विधिके अनुसार इस मदनद्वादशी-व्रतका अनुष्ठान करता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त होकर भगवान् विष्णुकी समताको प्राप्त हो जाता है तथा इस लोकमें श्रेष्ठ

पुत्रोंको प्राप्तकर सौभाग्य-फलका उपभोग करता है। जो स्मर, आनन्दात्मा, विष्णु और महेश्वरनामसे कहे गये हैं, उन्हीं अङ्गज भगवान् विष्णुका सुखार्थीको स्मरण करना चाहिये। यह सुनकर दितिने सारा कार्य यथावत्-रूपसे सम्पन्न किया ( अर्थात मदनद्वादशीव्रतका अनुष्ठान किया ) ॥ २१–२९ ॥

कश्यपो व्रतमाहात्म्यादागत्य परया मुदा। चकार कर्कशां भूयो रूपयौवनशालिनीम् ॥ ३० ॥
वरेणच्छन्दयामास सा तु वव्रे ततो वरम्। पुत्रं शक्रवधार्थाय समर्थममितौजसम् ॥ ३१ ॥
वरयामि महात्मानं सर्वामरनिषूदनम्। उवाच कश्यपो वाक्यमिन्द्रहन्तारमूर्जितम् ॥ ३२ ॥
प्रदास्याम्यहमेवेह किंत्वेतत् क्रियतां शुभे। आपस्तम्बः करोत्विष्टिं पुत्रीयामद्य सुव्रते ॥ ३३ ॥
विधास्यामि ततो गर्भमिन्द्रशत्रुनिषूदनम्। आपस्तम्बस्ततश्चक्रे पुत्रेष्टिं द्रविणाधिकाम् ॥ ३४ ॥
इन्द्रशत्रुर्भवस्वेति जुहाव च सविस्तरम्। देवा मुमुदिरे दैत्या विमुखाः स्युश्च दानवाः ॥ ३५ ॥

दितिके उस व्रतानुष्ठानके प्रभावसे प्रभावित होकर महर्षि कश्यप उसके निकट पधारे और परम प्रसन्नता-पूर्वक उन्होंने उसे पुनः रूप-यौवनसे सम्पन्न नवयुवती बना दिया तथा वर माँगनेको कहा। तब वर माँगनेके लिये उद्यत हुई दितिने कहा—'पतिदेव! मैं आपसे एक ऐसे पुत्रका वरदान चाहती हूँ, जो इन्द्रका वध करनेमें समर्थ, अमित पराक्रमी, महान् आत्मबलसे सम्पन्न और समस्त देवताओंका विनाशक हो।' यह सुनकर महर्षि कश्यपने उससे ऐसी बात कही—'शुभे! मैं तुम्हें अत्यन्त ऊर्जस्वी एवं इन्द्रका वध करनेवाला पुत्र प्रदान करूँगा, किंतु इस विषयमें तुम यह काम करो कि आपस्तम्ब ऋषिसे प्रार्थना करके उनके द्वारा आज ही पुत्रेष्टि-यज्ञका अनुष्ठान कराओ। सुव्रते! यज्ञकी समाप्ति होनेपर मैं ( तुम्हारे उदरमें ) इन्द्ररूपी शत्रुके विनाशक पुत्रका गर्भाधान करूँगा।' तत्पश्चात् महर्षि आपस्तम्बने उस अत्यन्त खर्चीले पुत्रेष्टि-यज्ञका अनुष्ठान किया। उस समय उन्होंने 'इन्द्रशत्रुर्भवस्व—इन्द्रका शत्रु उत्पन्न हो'—इस मन्त्रसे विस्तारपूर्वक अग्निमें आहुति दी। ( इस यज्ञसे देवताओंको रुष्ट होना चाहता था, परंतु ), वे यह जानकर प्रसन्न हुए कि दैत्यों और दानवोंको इस यज्ञफलसे विमुख होना पड़ेगा ॥ ३०–३५ ॥

दित्यां गर्भमथाधत्त कश्यपः प्राह तां पुनः। त्वया यत्नो विधातव्यो ह्यस्मिन् गर्भे वरानने ॥ ३६ ॥
संवत्सरशतं त्वेकमस्मिन्नेव तपोवने। संध्यायां नैव भोक्तव्यं गर्भिण्या वरवर्णिनि ॥ ३७ ॥
न स्थातव्यं न गन्तव्यं वृक्षमूलेषु सर्वदा। नोपस्करेषूपविशेन्मुसलोलूखलादिषु ॥ ३८ ॥
जले च नावगाहेत शून्यागारं च वर्जयेत्। वल्मीकायां न तिष्ठेत न चोद्विग्नमना भवेत् ॥ ३९ ॥
विलिखेन्न नखैर्भूमिं नाङ्गारेण न भस्मना। न शयालुः सदा तिष्ठेद् व्यायामं च विवर्जयेत् ॥ ४० ॥
न तुषाङ्गारभस्मास्थिकपालेषु समाविशेत्। वर्जयेत् कलहं लोकैर्गात्रभङ्गं तथैव च ॥ ४१ ॥
न मुक्तकेशा तिष्ठेत नाशुचिः स्यात् कदाचन। न शयीतोत्तरशिरा न चापरशिराः क्वचित् ॥ ४२ ॥
न वस्त्रहीना नोद्विग्ना न चार्द्रचरणा सती। नामङ्गल्यां वदेद् वाचं न च हास्याधिका भवेत् ॥ ४३ ॥
कुर्यात्तु गुरुशुश्रूषां नित्यं माङ्गल्यतत्परा। सर्वौषधीभिः कोष्णेन वारिणा स्नानमाचरेत् ॥ ४४ ॥
कृतरक्षा सुभूषा च वास्तुपूजनतत्परा। तिष्ठेत् प्रसन्नवदना भर्तुः प्रियहिते रता ॥ ४५ ॥
दानशीला तृतीयायां पार्वण्यं नक्तमाचरेत्। इतिवृत्ता भवेन्नारी विशेषेण तु गर्भिणी ॥ ४६ ॥
यस्तु तस्या भवेत् पुत्रः शीलायुर्वृद्धिसंयुतः। अन्यथा गर्भपतनमवाप्नोति न संशयः ॥ ४७ ॥
तस्मात्त्वमनया वृत्त्या गर्भेऽस्मिन् यत्नमाचर। स्वस्त्यस्तु ते गमिष्यामि तथेत्युक्तस्तया पुनः ॥ ४८ ॥
पश्यतां सर्वभूतानां तत्रैवान्तरधीयत। ततः सा कश्यपोक्तेन विधिना समतिष्ठत ॥ ४९ ॥

( यज्ञकी समाप्तिके बाद ) कश्यपने दितिके उदरमें गर्भाधान किया और पुनः उससे कहा—'वरानने ! एक सौ वर्षोंतक तुम्हे इसी तपोवनमें रहना है और इस गर्भकी रक्षाके लिये प्रयत्न करना है । वरवर्णिनि ! गर्भिणी स्त्रीको संध्या-कालमें भोजन नहीं करना चाहिये । उसे न तो कभी वृक्षके मूलपर बैठना चाहिये, न उसके निकट ही जाना चाहिये । वह घरकी सामग्री मूसल, ओखली आदिपर न बैठे, जलमें घुसकर स्नान न करे, सुनसान घरमें न जाय, बिमवटपर न बैठे, मनको उद्विग्न न करे, नखसे, लुआठीसे अथवा राखसे पृथ्वीपर रेखा न खींचे, सदा नींदमें अलसायी हुई न रहे, कठिन परिश्रमका काम न करे, भूसी, लुआठी, भस्म, हड्डी और खोपड़ीपर न बैठे, लोगोंके साथ वाद-विवाद न करे और शरीरको तोडे-मरोड़े नहीं । वह बाल खोलकर न बैठे, कभी अपवित्र न रहे, उत्तर दिशामें सिरहाना करके एवं कहीं भी नीचे सिर करके न सोये, न नंगी होकर, न उद्विग्न-चित्त होकर एवं न भीगे चरणोसे ही कभी शयन करे, अमङ्गलसूचक वाणी न बोले, अधिक जोरसे हँसे नहीं, नित्य माङ्गलिक कार्योंमें तत्पर रहकर गुरुजनोंकी सेवा करे और ( आयुर्वेदद्वारा गर्भिणीके स्वास्थ्यके लिये उपयुक्त बतलायी गयी ) सम्पूर्ण ओषधियोंसे युक्त गुनगुने गरम जलसे स्नान करे । वह अपनी रक्षाका ध्यान रखे, स्वच्छ वेष-भूषासे युक्त रहे, वास्तु-पूजनमें तत्पर रहे, प्रसन्न-मुखी होकर सदा पतिके हितमें संलग्न रहे, तृतीया तिथिको दान करे, पर्व-सम्बन्धी व्रत एवं नक्तव्रतका पालन करे । जो गर्भिणी स्त्री विशेषरूपसे इन नियमोंका पालन करती है, उसका उस गर्भसे जो पुत्र उत्पन्न होता है, वह शीलवान् एवं दीर्घायु होता है । इन नियमोंका पालन न करनेपर निस्संदेह गर्भपातकी आशङ्का बनी रहती है । प्रिये ! इसलिये तुम इन नियमोंका पालन करके इस गर्भकी रक्षाका प्रयत्न करो । तुम्हारा कल्याण हो, अब मै जा रहा हूँ ।' दितिके द्वारा पतिकी आज्ञा स्वीकार कर लेनेपर महर्षि कश्यप वहीं सभी जीवोंके देखते-देखते अन्तर्धान हो गये । तब दिति महर्षि कश्यपद्वारा बताये गये नियमोका पालन करती हुई समय व्यतीत करने लगी ॥ ३६—४९ ॥

अथ भीतस्तथेन्द्रोऽपि दितेः पार्श्वमुपागतः । विहाय देवसदनं तच्छुश्रूषुरवस्थितः ॥ ५० ॥
दितिच्छिद्रान्तरप्रेप्सुरभवत् पाकशासनः । विनीतोऽभवदव्यग्रः प्रशान्तवदनो बहिः ॥ ५१ ॥
अजानन् किल तत्कार्यमात्मनः शुभमाचरन् । ततो वर्षशतान्ते सा न्यूने तु दिवसैस्त्रिभिः ॥ ५२ ॥
मेने कृतार्थमात्मानं प्रीत्या विस्मितमानसा । अकृत्वा पादयोः शौचं प्रसुप्ता मुक्तमूर्धजा ॥ ५३ ॥
निद्राभरसमाक्रान्ता दिवापरशिराः क्वचित् । ततस्तदन्तरं लब्ध्वा प्रविष्टस्तु शचीपतिः ॥ ५४ ॥
वज्रेण सप्तधा चक्रे तं गर्भं त्रिदशाधिपः । ततः सप्तैव ते जाताः कुमाराः सूर्यवर्चसः ॥ ५५ ॥
रुदन्तः सप्त ते बाला निषिद्धा गिरिदारिणा । भूयोऽपि रुदतश्चैतानेकैकं सप्तधा हरिः ॥ ५६ ॥
चिच्छेद वृत्रहन्ता वै पुनस्तदुदरे स्थितः । एवमेकोनपञ्चाशद् भूत्वा ते रुरुदुर्भृशम् ॥ ५७ ॥
इन्द्रो निवारयामास मा रोदिष्टः पुनः पुनः । ततः स चिन्तयामास किमेतदिति वृत्रहा ॥ ५८ ॥
धर्मस्य कस्य माहात्म्यात् पुनः सञ्जीवितास्त्वमी । विदित्वा ध्यानयोगेन मदनद्वादशीफलम् ॥ ५९ ॥
नूनमेतत् परिणतमधुना कृष्णपूजनात् । वज्रेणापि हताः सन्तो न विनाशमवाप्नुयुः ॥ ६० ॥
एकोऽप्यनेकतामाप यस्मादुदरगोऽप्यलम् । अवध्या नूनमेते वै तस्माद् देवा भवन्त्विति ॥ ६१ ॥
यस्मान्मा रुदतेत्युक्ता रुदन्तो गर्भसंस्थिताः । मरुतो नाम ते नाम्ना भवन्तु मखभागिनः ॥ ६२ ॥
ततः प्रसाद्य देवेशः क्षमस्वेति दितिं पुनः । अर्थशास्त्रं समास्थाय मयैतद् दुष्कृतं कृतम् ॥ ६३ ॥
कृत्वा मरुद्गणं देवैः समानममराधिपः । दितिं विमानमारोप्य ससुतामनयद् दिवम् ॥ ६४ ॥
यज्ञभागभुजो जाता मरुतस्ते ततो द्विजाः । न जग्मुरैक्यमसुरैरतस्ते सुरवल्लभाः ॥ ६५ ॥

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे आदिसर्गे मरुदुत्पत्तौ मदनद्वादशीव्रतं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥*

( इस कार्यकलापकी सूचना पानेपर ) इन्द्र भयभीत हो उठे और तुरंत देवलोकको छोड़कर दितिके निकट आ पहुँचे। वे दितिकी सेवा करनेकी इच्छासे उसके समीप ही रहने लगे। इन्द्र सदा दितिके छिद्रान्वेषणमें ही लगे रहे। ऊपरसे तो वे विनम्र, प्रशान्त और प्रसन्न मुखवाले दीखते थे, परंतु भीतरसे वे दितिके कार्योंकी कुछ परवाह न करके सदा अपने ही हित-साधनमें दत्तचित्त रहते थे। इस प्रकार सौ वर्षोंकी समाप्तिमें जब तीन दिन शेष रह गये, तब दिति प्रसन्नता-पूर्वक अपनेको सफलमनोरथ मानने लगी। उस समय आश्चर्यसे युक्त मनवाली दिति नींदके आलस्यसे आक्रान्त होकर पैरोंको विना धोये बाल खोलकर सिरको नीचे किये कहीं दिनमें ही सो गयी। तब दितिकी उस त्रुटिको पाकर शचीके प्राणपति देवराज इन्द्र उसके उदरमें प्रवेश कर गये और अपने वज्रसे उस गर्भके सात टुकड़े कर दिये। उन टुकड़ोंसे सूर्यके समान तेजस्वी सात शिशु उत्पन्न हो गये। वे रोने लगे। रोते हुए उन सातों शिशुओंको इन्द्रने मना किया, ( परंतु जब वे चुप नहीं हुए, तब ) इन्द्रने पुनः उन रोते हुए शिशुओंमें प्रत्येकके सात-सात टुकडे कर दिये। उस समय भी इन्द्र दितिके उदरमें ही स्थित थे। इस प्रकार वे टुकडे उनचास शिशुओंके रूपमें परिवर्तित होकर जोर-जोरसे रुदन करने लगे। इन्द्र उन्हे बारंबार मना करते हुए कह रहे थे कि 'मत रोओ।' ( परंतु वे जब चुप नहीं हुए, तब ) इन्द्रने मनमें विचार किया कि इसका क्या रहस्य है? किस धर्मके माहात्म्यसे ये सभी ( मेरे वज्रद्वारा काटे जानेपर भी ) पुनः जीवित हैं? तत्पश्चात् ध्यान-योगके द्वारा इन्द्रको ज्ञात हो गया कि यह मदनद्वादशी-व्रतका फल है। अवश्य ही श्रीकृष्णके पूजनके प्रभावसे इस समय यह घटना घटी है, जो वज्रद्वारा मारे जानेपर भी ये शिशु विनाशको नहीं प्राप्त हुए। इसी कारण उदरमें स्थित रहते हुए एकसे अनेक ( उनचास ) हो गये। इसलिये अवश्य ही ये अवध्य हैं और ( मेरी इच्छा है कि ये ) देवता हो जायँ। चूँकि गर्भमें स्थित रहकर रोते हुए इनको मैंने 'मा रुदत'—मत रोओ—ऐसा कहा है, इसलिये ये 'मरुत्' नामसे प्रसिद्ध होंगे और इन्हें भी यज्ञोंमें भाग मिलेगा। ऐसा कहकर इन्द्र दितिके उदरसे बाहर निकल आये और दितिको प्रसन्न करके उससे क्षमा-याचना करने लगे—'देवि! अर्थशास्त्रका आश्रय लेकर मैंने यह दुष्कर्म कर डाला है, मुझे क्षमा करो।' इस प्रकार देवराजने मरुद्गणको देवताओंके समान बनाया और पुत्रोसमेत दितिको विमानमें बैठाकर वे अपने साथ स्वर्गलोकको ले गये। विप्रवरो! इसी कारण मरुद्गण यज्ञोंमें भाग पानेके अधिकारी हुए। उन्होंने असुरोंके साथ एकता नहीं की; इसीलिये वे देवताओंके प्रेमपात्र हो गये॥ ५०—६५॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके आदिसर्गमें मरुद्गणकी उत्पत्तिके प्रसङ्गमे मदनद्वादशी-व्रत-वर्णन नामक सातवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ७॥

---

# आठवाँ अध्याय

## प्रत्येक सर्गके अधिपतियोंका अभिषेचन तथा पृथुका राज्याभिषेक

ऋषय ऊचुः

**आदिसर्गश्च यः सूत कथितो विस्तरेण तु। प्रतिसर्गे च ये येषामधिपास्तान् वदस्व नः॥ १॥**

**ऋषियोंने पूछा—**सूतजी! आपने हमलोगोंके प्रति जिस आदिसर्ग और प्रतिसर्गका विस्तारपूर्वक वर्णन किया है, उन सर्गोंमें जो जिस वर्गके अधिपति हुए, उनके विषयमें अब हमें बतलाइये॥ १॥

सूत उवाच

यदाभिषिक्तः सकलाधिराज्ये पृथुर्धरित्र्यामधिपो बभूव ।
तदौषधीनामधिपं चकार यज्ञव्रतानां तपसां च चन्द्रम् ॥ २ ॥
नक्षत्रताराद्विजवृक्षगुल्मलतावितानस्य च रुक्मगर्भः ।
अपामधीशं वरुणं धनानां राज्ञां प्रभुं वैश्रवणं च तद्वत् ॥ ३ ॥
विष्णुं रवीणामधिपं वसूनामग्निं च लोकाधिपतिश्चकार ।
प्रजापतीनामधिपं च दक्षं चकार शक्रं मरुतामधीशम् ॥ ४ ॥
दैत्याधिपानामथ दानवानां प्रह्लादमीशं च यमं पितृणाम् ।
पिशाचरक्षःपशुभूतयक्षवेतालराजं त्वथ शूलपाणिम् ॥ ५ ॥
प्रालेयशैलं च पतिं गिरीणामीशं समुद्रं ससरिन्नदानाम् ।
गन्धर्वविद्याधरकिन्नराणामीशं पुनश्चित्ररथं चकार ॥ ६ ॥
नागाधिपं वासुकिमुग्रवीर्यं सर्पाधिपं तक्षकमादिदेश ।
दिशां गजानामधिपं चकार गजेन्द्रमैरावत*नामधेयम् ॥ ७ ॥
सुपर्णमीशं पततामथाश्वराजानमुच्चैःश्रवसं चकार ।
सिंहं मृगाणां वृषभं गवां च प्लक्षं पुनः सर्ववनस्पतीनाम् ॥ ८ ॥
पितामहः पूर्वमथाभ्यषिञ्चच्चैतान् पुनः सर्वदिशाधिनाथान् ।
पूर्वेण दिक्पालमथाभ्यषिञ्चन्नाम्ना सुधर्माणमरातिकेतुम् ॥ ९ ॥
ततोऽधिपं दक्षिणतश्चकार सर्वेश्वरं शङ्खपदाभिधानम् ।
सुकेतुमन्तं दिशि पश्चिमायां चकार पश्चाद् भुवनाण्डगर्भः ॥ १० ॥
हिरण्यरोमाणमुदग्दिगीशं प्रजापतिर्देवसुतं चकार ।
अद्यापि कुर्वन्ति दिशामधीशाः शत्रून् दहन्तस्तु भुवोऽभिरक्षाम् ॥ ११ ॥
चतुर्भिरेभिः पृथुनामधेयो नृपोऽभिषिक्तः प्रथमं पृथिव्याम् ।
गतेऽन्तरे चाक्षुषनामधेये वैवस्वताख्ये च पुनः प्रवृत्ते ।
प्रजापतिः सोऽस्य चराचरस्य बभूव सूर्यान्वयवंशचिह्नः ॥ १२ ॥

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽधिपत्याभिषेचनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥*

**सूतजी कहते हैं**—ऋषियो ! जब महाराज पृथु समस्त भूमण्डलके अधिनायक-पदपर अभिषिक्त होकर सबके अधिपति हुए, उस समय उन हिरण्यगर्भ ब्रह्माने चन्द्रमाको ओषधि, यज्ञ, व्रत, तप, नक्षत्र, तारा, द्विज, वृक्ष, गुल्म और लतासमूहका अध्यक्ष बनाया । उन्होंने वरुणको जलका, कुबेरको धन और राजाओंका,† विष्णुको आदित्योंका, अग्निको वसुओंका अधिपति बनाया । दक्षको प्रजापतियोंका, इन्द्रको मरुतोंका, प्रह्लादको दैत्यों और दानवोंका, यमराजको पितरोंका, शूलपाणि शिवको पिशाच, राक्षस, पशु, भूत, यक्ष और वेतालोंका, हिमालयको पर्वतोंका, समुद्रको छोटी-बड़ी नदियोंका, चित्ररथको गन्धर्व, विद्याधर और किन्नरोंका, प्रबल पराक्रमी वासुकिको नागोंका, तक्षकको सर्पोंका, ऐरावत नामक गजेन्द्रको दिग्गजोंका, गरुड़को पक्षियोंका, उच्चैःश्रवाको घोड़ोंका, सिंहको वन्य जीवोंका, वृषभको गौओंका और पाकड़को समस्त वनस्पतियोंका अधिनायक नियुक्त किया । फिर ब्रह्माने सर्गारम्भके समय सम्पूर्ण दिशाओंके अधिनायकोंको भी अभिषिक्त किया ।

* पाठान्तर० ऐरावण । † इसीलिये वेदादिमें कुबेरको 'राजाधिराज वैश्रवण' कहा गया है ।

उन्होंने शत्रुओंके संहारक सुधर्माको पूर्व दिशाके दिक्पालपदपर स्थापित किया। इसके बाद सर्वेश्वर शङ्खपदको दक्षिण दिशाका स्वामी बनाया। सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको अपनेमें अन्तर्भूत करनेवाले ब्रह्माने सुकेतुमान्को पश्चिम दिशाका अध्यक्ष बनाया। प्रजापति ब्रह्माने देवपुत्र हिरण्यरोमाको उत्तर दिशाका स्वामित्व प्रदान किया। ये दिक्पालगण आज भी शत्रुओंको संतप्त करते हुए पृथ्वीकी सब ओरसे रक्षा करते हैं। इन्हीं चारों दिक्पालोंद्वारा पहले-पहल भूतलपर पृथु नामके नरेश अभिषिक्त हुए थे। चाक्षुष-मन्वन्तरकी समाप्तिके बाद पुनः वैवस्वत-मन्वन्तरके प्रारम्भ होनेपर सूर्यवंशके चिह्नस्वरूप ये राजा पृथु इस चराचर जगतके प्रजापति हुए थे ॥ २-१२ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके आदिसर्गमे आधिपत्याभिषेचन नामक आठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ८ ॥

# नवाँ अध्याय

## मन्वन्तरोंके चौदह देवताओं और सप्तर्षियोंका विवरण

सूत उवाच

**एवं श्रुत्वा मनुः प्राह पुनरेव जनार्दनम्। पूर्वेषां चरितं ब्रूहि मनूनां मधुसूदन ॥ १ ॥**

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! इस प्रकार सृष्टि-सम्बन्धी वर्णन सुनकर मनुने भगवान् जनार्दनसे पुनः निवेदन किया—'मधुसूदन ! अब पूर्वमें उत्पन्न हुए मनुओंके चरित्रका वर्णन कीजिये ॥ १ ॥

मत्स्य उवाच

**मन्वन्तराणि राजेन्द्र मनूनां चरितं च यत्। प्रमाणं चैव कालस्य तां सृष्टिं च समासतः ॥ २ ॥**
**एकचित्तः प्रशान्तात्मा शृणु मार्तण्डनन्दन। यामा नाम पुरा देवा आसन् स्वायम्भुवान्तरे ॥ ३ ॥**
**सप्तैव ऋषयः पूर्वं ये मरीच्यादयः स्मृताः। आग्नीध्रश्चाग्निबाहुश्च सहः सवन एव च ॥ ४ ॥**
**ज्योतिष्मान् द्युतिमान् हव्यो मेधा मेधातिथिर्वसुः। स्वायम्भुवस्यास्य मनोर्दशैते वंशवर्धनाः ॥ ५ ॥**
**प्रतिसर्गमिमे कृत्वा जग्मुर्यत् परमं पदम्। एतत् स्वायम्भुवं प्रोक्तं स्वारोचिषमतः परम् ॥ ६ ॥**
**स्वारोचिषस्य तनयाश्चत्वारो देववर्चसः। नभोनभस्यप्रसृतिभानवः कीर्तिवर्धनाः ॥ ७ ॥**
**दत्तो निश्च्यवनः स्तम्बः प्राणः कश्यप एव च। और्वो बृहस्पतिश्चैव सप्तैते ऋषयः स्मृताः ॥ ८ ॥**
**देवाश्च तुषिता नाम स्मृताः स्वारोचिषेऽन्तरे। हस्तीन्द्रः सुकृतो मूर्तिरापो ज्योतिरयः स्मयः ॥ ९ ॥**
**वसिष्ठस्य सुताः सप्त ये प्रजापतयः स्मृताः। द्वितीयमेतन् कथितं मन्वन्तरमतः परम् ॥ १० ॥**
**औत्तमीयं प्रवक्ष्यामि तथा मन्वन्तरं शुभम्। मनुर्नामौत्तमिर्यत्र दश पुत्रानजीजनत् ॥ ११ ॥**
**ईष ऊर्जश्च तर्जश्च शुचिः शुक्रस्तथैव च। मधुश्च माधवश्चैव नभस्योऽथ नभास्तथा ॥ १२ ॥**
**सहः कनीयानेतेषामुदारः कीर्तिवर्धनः। भावनास्तत्र देवाः स्युरूर्जाः सप्तर्षयः स्मृताः ॥ १३ ॥**
**कौकुरुण्डिश्च दाल्भ्यश्च शङ्खः प्रवहणः शिवः। सितश्च सस्मितश्चैव सप्तैते योगवर्धनाः ॥ १४ ॥**

मत्स्यभगवान् कहने लगे—राजेन्द्र ! अब मैं मन्वन्तरोंको, मनुओंके सम्पूर्ण चरित्रको, उनमें प्रत्येकके शासनकालको और उनके समयकी सृष्टिके वृत्तान्तको संक्षेपमें वर्णन कर रहा हूँ; तुम उसे एकाग्रचित्त एवं प्रशान्त मनसे श्रवण करो। मार्तण्डनन्दन ! प्राचीनकालमें स्वायम्भुव-मन्वन्तरमें याम नामक देवगण थे। मरीचि ( अत्रि ) आदि मुनि ही सप्तर्षि थे। इन स्वायम्भुव मनुके आग्नीध्र, अग्निबाहु, सह, सवन, ज्योतिष्मान्, द्युतिमान्, हव्य, मेधा, मेधातिथि और वसु नामके दस पुत्र थे, जिनसे वंशका विस्तार हुआ।

ये सभी प्रतिसर्गकी रचना करके परमपदको प्राप्त हुए। यह स्वायम्भुव-मन्वन्तरका वर्णन हुआ। अब इसके पश्चात् स्वारोचिष मनुका वृत्तान्त सुनो। स्वारोचिष मनुके नभ, नभस्य, प्रसृति और भानु—ये चार पुत्र थे, जो सभी देवताओंके सदृश वर्चस्वी और कीर्तिका विस्तार करनेवाले थे। इस मन्वन्तरमें दत्त, निश्च्यवन, स्तम्ब, प्राण, कश्यप, और्व और बृहस्पति—ये सप्तर्षि बतलाये गये हैं। इस स्वारोचिष-मन्वन्तरमें होनेवाले देवगण तुषित नामसे प्रसिद्ध हैं तथा महर्षि वसिष्ठके हस्तीन्द्र, सुकृत, मूर्ति, आप, ज्योति, अय और स्मय नामक सात पुत्र प्रजापति कहे गये हैं। यह द्वितीय मन्वन्तरका वर्णन हुआ। इसके अनन्तर औत्तमि नामक ( तीसरे ) शुभकारक मन्वन्तरका वर्णन कर रहा हूँ। इस मन्वन्तरमें औत्तमि नामक मनु हुए थे, जिन्होंने दस पुत्रोंको जन्म दिया। उनके नाम हैं—ईष, ऊर्ज, तर्ज, शुचि, शुक्र, मधु, माधव, नभस्य, नभस् तथा सह। इनमें सबसे कनिष्ठ सह परम उदार एवं कीर्तिका विस्तारक था। इस मन्वन्तरमें भावना नामक देवगण हुए तथा कौकुरुण्डि, दाल्भ्य, शङ्ख, प्रवहण, शिव, सित और सम्मित—ये सप्तर्षि कहलाये। ये सातों अत्यन्त ऊर्जस्वी और योगके प्रवर्धक थे॥ २-१४॥

**मन्वन्तरं चतुर्थं तु तामसं नाम विश्रुतम्। कविः पृथुस्तथैवाग्निरकपिः कपिरेव च॥ १५॥**
**तथैव जल्पधीमानौ मुनयः सप्त तामसे। साध्या देवगणा यत्र कथितास्तामसेऽन्तरे॥ १६॥**
**अकल्मषस्तथा धन्वी तपोमूलस्तपोधनः। तपोरतिस्तपस्यश्च तपोद्युतिपरंतपौ॥ १७॥**
**तपोभोगी तपोयोगी धर्माचाररताः सदा। तामसस्य सुताः सर्वे दश वंशविवर्धनाः॥ १८॥**
**पञ्चमस्य मनोस्तद्वद् रैवतस्यान्तरं शृणु। देवबाहुः सुबाहुश्च पर्जन्यः सोमपो मुनिः॥ १९॥**
**हिरण्यरोमा सप्ताश्वः सप्तैते ऋषयः स्मृताः। देवाश्चामूर्तरजसस्तथा प्रकृतयः शुभाः॥ २०॥**
**अरुणस्तत्त्वदर्शी च वित्तवान् हव्यपः कपिः। युक्तो निरुत्सुकः सत्त्वो निर्मोहोऽथ प्रकाशकः॥ २१॥**
**धर्मवीर्यबलोपेता दशैते रैवतात्मजाः। भृगुः सुधामा विरजाः सहिष्णुर्नाद एव च॥ २२॥**
**विवस्वानतिनामा च षष्ठे सप्तर्षयोऽपरे। चाक्षुषस्यान्तरे देवा लेखा नाम परिश्रुताः॥ २३॥**
**ऋभवोऽथ ऋभाद्याश्च वारिमूला दिवौकसः। चाक्षुषस्यान्तरे प्रोक्ता देवानां पञ्चयोनयः॥ २४॥**
**रुरुप्रभृतयस्तद्वच्चाक्षुषस्य सुता दश। प्रोक्ताः स्वायम्भुवे वंशे ये मया पूर्वमेव तु॥ २५॥**
**अन्तरं चाक्षुषं चैतन्मया ते परिकीर्तितम्। सप्तमं तत् प्रवक्ष्यामि यद् वैवस्वतमुच्यते॥ २६॥**
**अत्रिश्चैव वसिष्ठश्च कश्यपो गौतमस्तथा। भरद्वाजस्तथा योगी विश्वामित्रः प्रतापवान्॥ २७॥**
**जमदग्निश्च सप्तैते साम्प्रतं ये महर्षयः। कृत्वा धर्मव्यवस्थानं प्रयान्ति परमं पदम्॥ २८॥**
**साध्या विश्वे च रुद्राश्च मरुतो वसवोऽश्विनौ। आदित्याश्च सुरास्तद्वत् सप्त देवगणाः स्मृताः॥ २९॥**
**इक्ष्वाकुप्रमुखाश्चास्य दश पुत्राः स्मृता भुवि। मन्वन्तरेषु सर्वेषु सप्त सप्त महर्षयः॥ ३०॥**
**कृत्वा धर्मव्यवस्थानं प्रयान्ति परमं पदम्।**

चौथा मन्वन्तर तामस नामसे विख्यात है। इस तामस-मन्वन्तरमें कवि, पृथु, अग्नि, अकपि, कपि, जल्प और धीमान्—ये सात मुनि हुए तथा देवगण साध्य नामसे कहे गये। तामस मनुके अकल्मष, धन्वी, तपोमूल, तपोधन, तपोरति, तपस्य, तपोद्युति, परंतप, तपोभोगी और तपोयोगी नामक दस पुत्र थे। ये सभी सदा सदाचारमें निरत रहनेवाले एवं वंशविस्तारक थे। अब पाँचवें रैवत-मन्वन्तरका वृत्तान्त सुनो। इस मन्वन्तरमें देवबाहु, सुबाहु, पर्जन्य, सोमप, मुनि, हिरण्यरोमा और सप्ताश्व—ये सतर्षि बतलाये गये हैं। देवगण अमूर्तरजा नामसे विख्यात थे और ( सभी छः ) प्रकृतियाँ (प्रजाएँ) सत्कर्ममें निरत रहती थीं। अरुण, तत्त्वदर्शी, वित्तवान्, हव्यप, कपि, युक्त, निरुत्सुक, सत्त्व, निर्मोह और प्रकाशक—ये दस रैवत मनुके पुत्र थे, जो सभी धर्म, पराक्रम और बलसे सम्पन्न थे। इसके पश्चात् छठे चाक्षुष-मन्वन्तरमें भृगु, सुधामा, विरजा, सहिष्णु, नाद,

विवस्वान् और अतिनामा—ये सप्तर्षि थे तथा देवगण लेखानामसे प्रख्यात थे। इसी प्रकार उस मन्वन्तरमें लेखा, ऋभव, ऋभाद्य, वारिमूल और दिवौकस नामसे देवताओंकी पाँच योनियाँ बतलायी गयी हैं। पहले स्वायम्भुव मनुके वंश-वर्णनमें मैने जैसा तुमसे कहा है, (कि स्वायम्भुव मनुके दस पुत्र थे) वैसे ही चाक्षुष मनुके भी रुरु आदि दस पुत्र थे। इस प्रकार मैंने तुम्हे चाक्षुष-मन्वन्तरका परिचय दे दिया। अब उस सातवें मन्वन्तरका वर्णन करता हूँ, जो (वर्तमानमें) वैवस्वत नामसे विख्यात है। इस मन्वन्तरमें अत्रि, वसिष्ठ, कश्यप, गौतम, योगी भरद्वाज, प्रतापी विश्वामित्र और जमदग्नि—ये सात महर्षि इस समय भी वर्तमान हैं। ये सप्तर्षि धर्मकी व्यवस्था करके अन्तमें परम पदको प्राप्त करते हैं। वैवस्वत-मन्वन्तरमें साध्य, विश्वेदेव, रुद्र, मरुत, वसु, अश्विनीकुमार और आदित्य—ये सात देवगण कहे जाते है। वैवस्वत मनुके भी इक्ष्वाकु आदि दस पुत्र हुए, जो भूमण्डलमें प्रसिद्ध हैं। इस प्रकार सभी मन्वन्तरोंमें सात-सात महर्षि होते हैं, जो धर्मकी व्यवस्था करके अन्तमें परमपदको चले जाते है ॥ १५–३०३ ॥

सावर्ण्यस्य प्रवक्ष्यामि मनोर्भावि तथान्तरम् ॥ ३१ ॥
अश्वत्थामा शरद्वांश्च कौशिको गालवस्तथा। शतानन्दः काश्यपश्च रामश्च ऋषयः स्मृताः ॥ ३२ ॥
धृतिर्वरीयान् यवसः सुवर्णो वृष्टिरेव च। चरिष्णुरीड्यः सुमतिर्वसुः शुक्रश्च वीर्यवान् ॥ ३३ ॥
भविष्या दश सावर्णेर्मनोः पुत्राः प्रकीर्तिताः। रौच्यादयस्तथान्येऽपि मनवः सम्प्रकीर्तिताः ॥ ३४ ॥
रुचेः प्रजापतेः पुत्रो रौच्यो नाम भविष्यति। मनुर्भूतिसुतस्तद्वद् भौत्यो नाम भविष्यति ॥ ३५ ॥
ततस्तु मेरुसावर्णिर्ब्रह्मसूनुर्मनुः स्मृतः। ऋतश्च ऋतधामा च विष्वक्सेनो मनुस्तथा ॥ ३६ ॥
अतीतानागताश्चैते मनवः परिकीर्तिताः। षडूनं युगसाहस्रमेभिर्व्याप्तं नराधिप ॥ ३७ ॥
स्वे स्वेऽन्तरे सर्वमिदमुत्पाद्य सचराचरम्। कल्पक्षये विनिर्वृत्ते मुच्यन्ते ब्रह्मणा सह ॥ ३८ ॥
एते युगसहस्रान्ते विनश्यन्ति पुनः पुनः। ब्रह्माद्या विष्णुसायुज्यं याता यास्यन्ति वै द्विजाः ॥ ३९ ॥

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे मन्वन्तरानुकीर्तनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥*

राजर्षे! अब मै भावी सावर्णि-मन्वन्तरका वर्णन कर रहा हूँ। इस मन्वन्तरमें अश्वत्थामा, शरद्वान्, कौशिक, गालव, शतानन्द, काश्यप और राम (परशुराम)—ये सात ऋषि बतलाये गये हैं। सावर्णि मनुके धृति, वरीयान्, यवस, सुवर्ण, वृष्टि, चरिष्णु, ईड्य, सुमति, वसु और पराक्रमी शुक्र—ये दस पुत्र होंगे, ऐसा कहा गया है। इसी प्रकार भविष्यमें होनेवाले रौच्य आदि अन्यान्य मन्वन्तरोका भी वर्णन किया गया है। उस समय प्रजापति रुचिका पुत्र रौच्य मनुके नामसे विख्यात होगा तथा उसी तरह भूतिका पुत्र भौत्य मनुके नामसे पुकारा जायगा। उसके बाद ब्रह्माके पुत्र मेरुसावर्णि मनु नामसे प्रसिद्ध होगे। इनके अतिरिक्त ऋत, ऋतधामा* और विष्वक्सेन नामक तीन मनु और उत्पन्न होंगे। नरेश्वर! इस प्रकार मैंने तुम्हें अतीत तथा भविष्यमें होनेवाले मनुओंका वृत्तान्त बतला दिया। यह भूमण्डल नौ सौ चौरानवे (९९४) (प्रायः एक सहस्र) युगोंतक इन मनुओंसे व्याप्त रहता है (अर्थात् इन १४ मनुओंमें प्रत्येक मनुका कार्यकाल ७१ दिव्य (चतुर्) युगोंतक रहता है)। इस प्रकार वे सभी अपने-अपने कार्यकालमें इस सम्पूर्ण चराचर जगत्को उत्पन्न करके कल्पान्तके समय ब्रह्माके साथ मुक्त हो जाते हैं। द्विजवरो! इस तरह ये सभी मनु एक सहस्र युगके अन्तमें बारंबार उत्पन्न होकर विनष्ट होते रहते हैं और ब्रह्मा आदि देवगण विष्णु-सायुज्यको प्राप्त हो जाते हैं तथा भविष्यमें भी इसी प्रकार प्राप्त करते रहेंगे ॥ ३१–३९ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके आदिसर्गमें मन्वन्तरानुकीर्तन नामक नवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ९ ॥

---

* पद्मादिपुराणोंमें ये ऋतु और वीतधामा नामसे निर्दिष्ट हैं।

# दसवाँ अध्याय

## महाराज पृथुका चरित्र और पृथ्वी-दोहनका वृत्तान्त

ऋषय ऊचुः

बहुभिर्धरणी भुक्ता भूपालैः श्रूयते पुरा । पार्थिवाः पृथिवीयोगात् पृथिवी कस्य योगतः ॥ १ ॥
किमर्थं च कृता संज्ञा भूमेः किं पारिभाषिकी । गौरितीयं च विख्याता सूत कस्माद् ब्रवीहि नः ॥ २ ॥

ऋषियोंने पूछा—सूतजी ! सुना जाता है कि पूर्वकालमें बहुत-से भूपाल इस पृथ्वीका उपभोग कर चुके हैं । पृथ्वीके सम्बन्धसे ही वे 'पार्थिव' या पृथ्वीपति कहे गये हैं, परंतु भूमिका 'पृथ्वी' यह पारिभाषिक नाम किस सम्बन्धसे तथा किस कारण पड़ा एवं यह 'गौ' नामसे क्यों विख्यात हुई ? इनका रहस्य हमें बतलाइये ॥ १-२ ॥

सूत उवाच

वंशे स्वायम्भुवस्यासीदङ्गो नाम प्रजापतिः । मृत्योस्तु दुहिता तेन परिणीता सुदुर्मुखा ॥ ३ ॥
सुनीथा नाम तस्यास्तु वेनो नाम सुतः पुरा । अधर्मनिरतश्चासीद् बलवान् वसुधाधिपः ॥ ४ ॥
लोकेऽप्यधर्मकृज्जातः परभार्यापहारकः । धर्माचारस्य सिद्ध्यर्थं जगतोऽथ महर्षिभिः ॥ ५ ॥
अनुनीतोऽपि न ददावनुज्ञां स यदा ततः । शापेन मारयित्वैनमराजकभयार्दिताः ॥ ६ ॥
ममन्थुर्ब्राह्मणास्तस्य बलाद् देहमकल्मषाः । तत्कायान्मथ्यमानात्तु निपेतुर्म्लेच्छजातयः ॥ ७ ॥
शरीरे मातुरंशेन कृष्णाञ्जनसमप्रभाः । पितुरंशस्य चांशेन धार्मिको धर्मचारिणः ॥ ८ ॥
उत्पन्नो दक्षिणाद्धस्तात् सधनुः सशरो गदी । दिव्यतेजोमयवपुः सरत्नकवचाङ्गदः ॥ ९ ॥
पृथोरेवाभवद् यत्नात् ततः पृथुरजायत । स विप्रैरभिषिक्तोऽपि तपः कृत्वा सुदारुणम् ॥ १० ॥
विष्णोर्वरेण सर्वस्य प्रभुत्वमगमत् पुनः । निःस्वाध्यायवषट्कारं निर्धर्मं वीक्ष्य भूतलम् ॥ ११ ॥
दग्धुमेवोद्यतः कोपाच्छरेणामितविक्रमः । ततो गोरूपमास्थाय भूः पलायितुमुद्यता ॥ १२ ॥
पृष्ठतोऽनुगतस्तस्याः पृथुर्दीप्तशरासनः । ततः स्थित्वैकदेशे तु किं करोमीति चाब्रवीत् ॥ १३ ॥
पृथुरप्यवदद् वाक्यमीप्सितं देहि सुव्रते । सर्वस्य जगतः शीघ्रं स्थावरस्य चरस्य च ॥ १४ ॥
तथैव साब्रवीद् भूमिर्दुदोह स नराधिपः । स्वके पाणौ पृथुर्वत्सं कृत्वा स्वायम्भुवं मनुम् ॥ १५ ॥
तदन्नमभवच्छुद्धं प्रजा जीवन्ति येन वै ।

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! प्राचीनकालमें स्वायम्भुव मनुके वंशमें अङ्ग नामक एक प्रजापति हुए थे । उन्होंने मृत्युकी कन्या सुनीथाके साथ विवाह किया । सुनीथाका मुख बड़ा कुरूप था । उसके गर्भसे वेन नामक एक महाबली पुत्र उत्पन्न हुआ, जो आगे चलकर चक्रवर्ती सम्राट् हुआ; किंतु वह सदा अधर्ममें ही निरत रहता था । परायी स्त्रियोंका अपहरण उसका नित्यका काम था । इस प्रकार वह लोकमें भी अधर्मका ही प्रचार करने लगा । तब महर्षियोंने जागतिक धर्माचरणकी सिद्धिके लिये उससे ( बड़ी ) अनुनय-विनय की, परंतु अन्तःकरण अशुद्ध होनेके कारण जब उसने उनकी बात न मानी ( प्रजाको अभय नहीं किया ), तब महर्षियोंने उसे शाप देकर मार डाला । तत्पश्चात् ( शासकहीन राज्यमें ) अराजकताके भयसे भीत होकर उन निष्पाप ब्राह्मणोंने बलपूर्वक वेनके शरीरका मन्थन किया । मन्थन करनेपर उसके शरीरसे शरीरस्थित माताके अंशसे म्लेच्छ जातियाँ प्रकट हुईं, जिनका रंग काले अञ्जनका-सा था । ( फिर ) उसके शरीरस्थित धर्मपरायण पिता( अङ्ग )के अंशभूत दाहिने हाथसे एक धार्मिक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका शरीर दिव्य तेजसे सम्पन्न था । वह रत्नजटित कवच और बाजूबंदसे विभूषित था, उसके हाथोंमें धनुष-बाण और गदा शोभा पा रहे थे । महान् प्रयत्नसे मथे जानेपर वह वेनकी पृथु ( मोटी ) भुजासे प्रकट हुआ था, अतः पृथु नामसे प्रसिद्ध हुआ ।

यद्यपि ब्राह्मणोंने उसे ( पिताके राज्यपर ) अभिषिक्त कर दिया था, तथापि उसने परम दारुण तपस्या करके विष्णु भगवान्‌को प्रसन्न किया और उनके वरदानके प्रभावसे ( चराचर लोकको जीतकर ) पुनः स्वयं भी समस्त भूमण्डलकी अध्यक्षता प्राप्त की। तदनन्तर अमित पराक्रमी पृथु भूतलको स्वाध्याय, वषट्कार और धर्मसे विहीन देखकर क्रुद्ध हो उठे और धनुषपर बाण चढ़ाकर उसे भस्म कर देनेके लिये उद्यत हो गये। यह देखकर भूमि ( भयभीत होकर ) गौका रूप धारणकर भाग चली। इधर प्रचण्ड धनुर्धर पृथु भी उसके पीछे दौड़ पड़े। ( इस प्रकार पृथुको पीछा करते देख वह गौरूपा भूमि हताश होकर ) एक स्थानपर खड़ी हो गयी और बोली—'( नाथ ! आपकी प्रसन्नताके लिये ) मैं क्या करूँ ?' तब पृथुने ऐसी बात कही—'सुव्रते ! तुम शीघ्र ही इस सम्पूर्ण चराचर जगत्‌को मनोवाञ्छित वस्तुएँ प्रदान करो।' यह सुनकर पृथ्वी बोली—'अच्छा, ऐसा ही होगा।' ( इस प्रकार पृथ्वीकी अनुमति जानकर ) उन नरेश्वर पृथुने स्वायम्भुव मनुको बछड़ा बनाकर अपनी हथेलीमें गौरूपा पृथ्वीका दोहन किया। वह दुहा हुआ पदार्थ शुद्ध अन्न हुआ, जिससे प्रजाका जीवन-निर्वाह होता है ॥ ३–१५½ ॥

ततस्तु ऋषिभिर्दुग्धा वत्सः सोमस्तदाभवत् ॥ १६ ॥
दोग्धा बृहस्पतिरभूत् पात्रं वेदस्तपो रसः। देवैश्च वसुधा दुग्धा दोग्धा मित्रस्तदाभवत् ॥ १७ ॥
इन्द्रो वत्सः समभवत् क्षीरमूर्जस्करं बलम्। देवानां काञ्चनं पात्रं पितॄणां राजतं तथा ॥ १८ ॥
अन्तकश्चाभवद् दोग्धा यमो वत्सः स्वधा रसः। अलाबुपात्रं नागानां तक्षको वत्सकोऽभवत् ॥ १९ ॥
विषं क्षीरं ततो दोग्धा धृतराष्ट्रोऽभवत् पुनः। असुरैरपि दुग्धेयमायसे शक्रपीडिनीम् ॥ २० ॥
पात्रे मायामभूद् वत्सः प्राह्लादिस्तु विरोचनः। दोग्धा द्विमूर्धा तत्रासीन्माया येन प्रवर्तिता ॥ २१ ॥
यक्षैश्च वसुधा दुग्धा पुरान्तर्धानमीप्सुभिः। कृत्वा वैश्रवणं वत्समामपात्रे महीपते ॥ २२ ॥
प्रेतरक्षोगणैर्दुग्धा धारारुधिरमुल्बणम्। रौप्यनाभोऽभवद् दोग्धा सुमाली वत्स एव तु ॥ २३ ॥
गन्धर्वैश्च पुरा दुग्धा वसुधा साप्सरोगणैः। वत्सं चैत्ररथं कृत्वा गन्धान् पद्मदले तथा ॥ २४ ॥
दोग्धा वररुचिर्नाम नाट्यवेदस्य पारगः। गिरिभिर्वसुधा दुग्धा रत्नानि विविधानि च ॥ २५ ॥
औषधानि च दिव्यानि दोग्धा मेरुर्महाचलः। वत्सोऽभूद्धिमवांस्तत्र पात्रं शैलमयं पुनः ॥ २६ ॥
वृक्षैश्च वसुधा दुग्धा क्षीरं छिन्नप्ररोहणम्। पालाशपात्रे दोग्धा तु शालः पुष्पलताकुलः ॥ २७ ॥
प्लक्षोऽभवत्ततो वत्सः सर्ववृक्षघनाधिपः। एवमन्यैश्च वसुधा तदा दुग्धा यथेप्सितम् ॥ २८ ॥

( फिर क्या था ? अब तो दोहनकी शृङ्खला ही चल पड़ी ) पुनः ऋषियोंने भी उस पृथ्वीको दुहा। उस समय चन्द्रमा बछड़ा, दुहनेवाले महर्षि बृहस्पति, पात्र वेद और दुहा गया पदार्थ तप हुआ। देवताओंने भी पृथ्वीका दोहन किया। उस समय दुहनेवाले मित्र ( देवता ), इन्द्र बछड़ा तथा क्षीर ( दुहा गया रस ) ऊर्जस्वी बल हुआ। उस दोहनमें देवताओंका पात्र स्वर्णमय था। अन्तकने भी पृथ्वीका दोहन किया, उसमें यमराज बछड़ा बने और स्वधा रस था। पितरोंका पात्र रजतमय था। नागोंके दोहनमें नागराज धृतराष्ट्र दुहनेवाले, नागराज तक्षक बछड़ा, पात्र तुम्बी और क्षीर—दुहा हुआ पदार्थ—विष था। असुरोंद्वारा भी इस पृथ्वीका दोहन किया गया था। उन्होंने लौहमय पात्रमें इन्द्रको पीड़ित करनेवाली मायाको दुहा। उस कार्यमें प्रह्लाद-पुत्र विरोचन बछड़ा और मायाका प्रवर्तक द्विमूर्धा दुहनेवाला था। महीपते ! यक्षोंको अन्तर्धान-विद्याकी अभिलाषा थी, अतः उन्होंने कुबेरको बछड़ा बनाकर कच्चे पात्रमें पृथ्वीका दोहन किया था। प्रेतों और राक्षसोंने पृथ्वीसे भयंकर रुधिरकी धाराका दोहन किया। उसमें रौप्यनाभ नामक प्रेत दुहनेवाला

और सुमाली नामक प्रेत बछड़ा बना था। अप्सराओंके साथ गन्धर्वोंने भी पूर्वकालमें चैत्ररथको बछड़ा बनाकर कमलके पत्तेमें पृथ्वीसे सुगन्धोंका दोहन किया था; उस कार्यमें नाट्य-वेदका पारगामी विद्वान् वररुचि नामक गन्धर्व दुहनेवाला था। पर्वतोंने पृथ्वीसे अनेक प्रकारके रत्नों और दिव्य ओषधियोंका दोहन किया। उसमें महाचल सुमेरु दुहनेवाला, हिमवान् बछड़ा और पात्र शैलमय था। वृक्षोंने पृथ्वीसे पलाश-पत्रके पात्रमें (टहनी आदिके) कटनेके बाद पुनः उगनेवाला दूध दुहा। उस समय पुष्प और लताओंसे लदा हुआ शालवृक्ष दुहनेवाला था और समृद्धिशाली एवं सर्ववृक्षमय पाकड़का वृक्ष बछड़ा बना था। इसी प्रकार अन्यान्य वर्गके प्राणियोंने भी उस समय अपने-अपने इच्छानुसार पृथ्वीका दोहन किया था ॥ १६—२८ ॥

**आयुर्धनानि सौख्यं च पृथौ राज्यं प्रशासति। न दरिद्रस्तदा कश्चिन्न रोगी न च पापकृत् ॥ २९ ॥**
**नोपसर्गभयं किंचित् पृथौ राजनि शासति। नित्यं प्रमुदिता लोका दुःखशोकविवर्जिताः ॥ ३० ॥**
**धनुष्कोट्या च शैलेन्द्रानुत्सार्य स महाबलः। भुवस्तलं समं चक्रे लोकानां हितकाम्यया ॥ ३१ ॥**
**न पुरग्रामदुर्गाणि न चायुधधरा नराः। क्षयातिशयदुःखं च नार्थशास्त्रस्य चादरः ॥ ३२ ॥**
**धर्मैकवासना लोकाः पृथौ राज्यं प्रशासति। कथितानि च पात्राणि यत् क्षीरं च मया तव ॥ ३३ ॥**
**येषां यत्र रुचिस्तत्तद् देयं तेभ्यो विजानता। यज्ञश्राद्धेषु सर्वेषु मया तुभ्यं निवेदितम् ॥ ३४ ॥**
**दुहितृत्वं गता यस्मात् पृथोर्धर्मवतो मही। तदानुरागयोगाच्च पृथिवी विश्रुता बुधैः ॥ ३५ ॥**

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे वैन्याभिवर्णनो नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥*

महाराज पृथुके राज्यमें प्रजा दीर्घायु, धन-धान्य एवं सुख-समृद्धिसे सम्पन्न थी। उस समय न कोई दरिद्र था, न रोगी और न कोई पाप-कर्म ही करता था। महाराज पृथुके शासनकालमें किसी उपसर्ग (आधिदैविक एवं आधिभौतिक उपद्रव)का भय नहीं था। लोग दुःख-शोकसे रहित होकर सदा सुखमय जीवन-यापन करते थे। उन महाबली पृथुने प्रजाओंकी हितकामनासे प्रेरित होकर अपने धनुषकी कोटिसे बड़े-बड़े पर्वतोंको उखाड़कर पृथ्वीके धरातलको समतल कर दिया था। पृथुके राज्य-कालमें न तो पुर, ग्राम और दुर्ग थे, न मनुष्य अस्त्र-शस्त्र धारण करते थे। (उस समय आत्मरक्षाके लिये इनकी कोई आवश्यकता न थी।) रोगोंका सर्वथा अभाव था। क्षय-विनाश एवं सातिशयता—परस्परकी विषमताका दुःख* उन्हें नहीं देखना पड़ता था। प्रजाओंमें अर्थशास्त्रके प्रति आदर नहीं था, अर्थात् लोभका चिह्नमात्र भी नहीं था। उनमें एकमात्र धर्मकी ही वासना थी। ऋषियो! इस प्रकार मैंने आपसे पृथ्वीके दोहनपात्रोंका तथा जैसा-जैसा दूध दुहा गया था, उसका भी वर्णन किया। उनमें जिस वर्णके प्राणियोंकी जिस पदार्थकी प्राप्तिकी रुचि हो, उसे वही पदार्थ यज्ञों और श्राद्धोंमें अर्पित करना चाहिये। इस प्रकार यह पृथ्वी-दोहनका प्रसङ्ग मैंने तुम्हें सुना दिया। यतः पृथ्वी धर्मात्मा पृथुकी कन्या बन चुकी थी, अतः पृथुके अतिशय अनुरागके कारण विद्वानोंद्वारा (यह) 'पृथ्वी' नामसे कही जाने लगी ॥ २९—३५ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें वैन्याभिवर्णन नामक दसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १० ॥

---

* इसे विस्तारसे समझनेके लिये योगवासिष्ठ १। १। ३०—४० देखना चाहिये।

# ग्यारहवाँ अध्याय

## सूर्यवंश और चन्द्रवंशका वर्णन तथा इलाका वृत्तान्त

ऋषय ऊचुः

आदित्यवंशमखिलं वद सूत यथाक्रमम् । सोमवंशं च तत्त्वज्ञ यथावद् वक्तुमर्हसि ॥ १ ॥

ऋषियोंने पूछा—तत्त्वज्ञ सूतजी ! अब आप हम लोगोंसे सम्पूर्ण सूर्यवंश तथा चन्द्रवंशका क्रमशः यथार्थ-रूपसे वर्णन कीजिये ॥ १ ॥

सूत उवाच

विवस्वान् कश्यपात् पूर्वमदित्यामभवत् सुतः । तस्य पत्नीत्रयं तद्वत् संज्ञा राज्ञी प्रभा तथा ॥ २ ॥
रेवतस्य सुता राज्ञी रैवतं सुषुवे सुतम् । प्रभा प्रभातं सुषुवे त्वाष्ट्री संज्ञा तथा मनुम् ॥ ३ ॥
यमश्च यमुना चैव यमलौ तु बभूवतुः । ततस्तेजोमयं रूपमसहन्ती विवस्वतः ॥ ४ ॥
नारीमुत्पादयामास स्वशरीरादनिन्दिताम् । त्वाष्ट्री स्वरूपरूपेण नाम्ना छायेति भामिनी ॥ ५ ॥
पुरतः संस्थितां दृष्ट्वा संज्ञा तां प्रत्यभाषत । छाये त्वं भज भर्तारमस्मदीयं वरानने ॥ ६ ॥
अपत्यानि मदीयानि मातृस्नेहेन पालय । तथेत्युक्त्वा च सा देवमगात् कामाय सुव्रता ॥ ७ ॥
कामयामास देवोऽपि संज्ञेयमिति चादरात् । जनयामास तस्यां तु पुत्रं च मनुरूपिणम् ॥ ८ ॥
सवर्णत्वाच्च सावर्णिर्मनोर्वैवस्वतस्य च । ततः शनिं च तपतीं विष्टिं चैव क्रमेण तु ॥ ९ ॥
छायायां जनयामास संज्ञेयमिति भास्करः । छाया स्वपुत्रेऽभ्यधिकं स्नेहं चक्रे मनौ तथा ॥ १० ॥
पूर्वो मनुस्तु चक्षाम न यमः क्रोधमूर्छितः । संतर्जयामास तदा पादमुद्यम्य दक्षिणम् ॥ ११ ॥
शशाप च यमं छाया भक्षितः कृमिसंयुतः । पादोऽयमेको भविता पूयशोणितविस्रवः ॥ १२ ॥
निवेदयामास पितुर्यमः शापादमर्षितः । निष्कारणमहं शप्तो मात्रा देव सकोपया ॥ १३ ॥
बालभावान्मया किंचिदुद्यतश्चरणः सकृत् । मनुना वार्यमाणापि मम शापमदाद् विभो ॥ १४ ॥
प्रायो न माता सास्माकं शापेनाहं यतो हतः । देवोऽप्याह यमं भूयः किं करोमि महामते ॥ १५ ॥
मौर्ख्यात् कस्य न दुःखं स्यादथवा कर्मसंततिः । अनिवार्या भवस्यापि का कथान्येषु जन्तुषु ॥ १६ ॥
कृकवाकुर्मया दत्तो यः कृमीन् भक्षयिष्यति । क्लेदं च रुधिरं चैव वत्सायमपनेष्यति ॥ १७ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! पूर्वकालमें महर्षि कश्यपसे अदितिको विवस्वान् ( सूर्य ) पुत्ररूपमें उत्पन्न हुए थे । उनकी संज्ञा, राज्ञी तथा प्रभा नामकी तीन पत्नियाँ थीं । इनमें रेवतकी कन्या राज्ञीने रैवत नामक पुत्रको तथा प्रभाने प्रभात नामक पुत्रको उत्पन्न किया । संज्ञा त्वाष्ट्र ( विश्वकर्मा )की पुत्री थी । उसने वैवस्वत मनु और यम नामक दो पुत्र एवं यमुना नामकी एक कन्याको उत्पन्न किया । इनमें यम और यमुना जुड़वें पैदा हुए थे ।* कुछ समयके पश्चात् जब सुन्दरी त्वाष्ट्री ( संज्ञा ) विवस्वान्के तेजोमय रूपको सहन न कर सकी, तब उसने अपने शरीरसे अपने ही रूपके समान एक अनिन्द्यसुन्दरी नारीको उत्पन्न किया । वह 'छाया' नामसे प्रसिद्ध हुई । उस छायाको अपने सामने खड़ी देखकर संज्ञाने उससे कहा—'वरानने छाये ! तुम हमारे पतिदेवकी सेवा करना, साथ ही मेरी संतानोंका माताके समान स्नेहसे पालन-पोषण करना ।' तब 'बहुत अच्छा, ऐसा ही होगा'—कहकर वह सुव्रता पतिकी सेवाभावनासे विवस्वान्‌देवके निकट गयी । इधर विवस्वान्‌देव भी 'यह संज्ञा ही है'—ऐसा समझकर छायाके साथ आदरपूर्वक पूर्ववत् व्यवहार करते रहे ।

* इसका मूल ऋक् १० । १७ । १-२ में 'त्वष्टा दुहित्रे·····यमस्य माता·····कृत्वी सवर्णा' आदिमें है ।

यथासमय उन्होंने उसके गर्भसे मनुके समान रूपवाले एक पुत्रको उत्पन्न किया। ये वैवस्वत मनुके सवर्ण (रूप-रंगवाला) होनेके कारण 'सावर्णि' नामसे प्रसिद्ध हुए। तदुपरान्त सूर्यने 'यह संज्ञा ही है'—ऐसा मानकर छायाके गर्भसे क्रमशः एक शनि नामका पुत्र और तपती एवं विष्टि नामकी दो कन्याओंको भी उत्पन्न किया। छाया अपने पुत्र मनुके प्रति अन्य संतानोंसे अधिक स्नेह रखती थी। उसके इस व्यवहारको संज्ञा-नन्दन मनु तो सहन कर लेते थे, परंतु यम (एक दिन सहन न होनेके कारण) क्रुद्ध हो उठे और अपने दाहिने पैरको उठाकर छायाको मारनेकी धमकी देने लगे। तब छायाने यमको शाप देते हुए कहा—'तुम्हारे इस एक पैरको कीड़े काट खायेंगे और इससे पीब एवं रुधिर टपकता रहेगा।' इस शापको सुनकर अमर्षसे भरे हुए यम पिताके पास जाकर निवेदन करते हुए बोले—'देव! क्रुद्ध हुई माताने मुझे अकारण ही शाप दे दिया है। विभो! बालचापल्यके कारण मैंने एक बार अपना दाहिना पैर कुछ ऊपर उठा दिया था, (इस तुच्छ अपराधपर) भाई मनुके मना करनेपर भी उसने मुझे ऐसा शाप दे दिया है। चूंकि इसने हमपर शापद्वारा प्रहार किया है, इसलिये यह हमलोगोंकी माता नहीं प्रतीत होती (अपितु बनावटी माता है)।' यह सुनकर विवस्वान्‌देवने पुनः यमसे कहा—'महाबुद्धे! मै क्या करूँ? अपनी मूर्खताके कारण किसको दुःख नहीं भोगना पड़ता। अथवा (जन्मान्तरीय शुभाशुभ) कर्मपरम्पराका फलभोग अनिवार्य है। यह नियम तो शिवजीपर भी लागू है, फिर अन्य प्राणियोंके लिये तो कहना ही क्या है। इसलिये बेटा! मै तुम्हे यह एक मुर्गा (या मोर) दे रहा हूँ, जो पैरमें पड़े हुए कीड़ोंको खा जायगा और उससे निकलते हुए मज्जा (पीब) एवं खूनको भी दूर कर देगा'॥ २—१७॥

एवमुक्तस्तपस्तेपे यमस्तीव्रं महायशाः। गोकर्णतीर्थे वैराग्यात् फलपत्रानिलाशनः॥ १८॥
आराधयन् महादेवं यावद् वर्षायुतायुतम्। वरं प्रादान्महादेवः संतुष्टः शूलभृत् तदा॥ १९॥
वव्रे स लोकपालत्वं पितृलोके नृपालयम्। धर्माधर्मात्मकस्यापि जगतस्तु परीक्षणम्॥ २०॥
एवं स लोकपालत्वमगमच्छूलपाणिनः। पितॄणां चाधिपत्यं च धर्माधर्मस्य चानघ॥ २१॥
विवस्वानथ तज्ज्ञात्वा संज्ञायाः कर्मचेष्टितम्। त्वष्टुः समीपमगमदाचचक्षे च रोषवान्॥ २२॥
तमुवाच ततस्त्वष्टा सान्त्वपूर्वं द्विजोत्तमाः। तवासहन्ती भगवन् महस्तीव्रं तमोनुदम्॥ २३॥
वडवारूपमास्थाय मत्सकाशमिहागता। निवारिता मया सा तु त्वया चैव दिवाकर॥ २४॥
यस्मादविज्ञाततया मत्सकाशमिहागता। तस्मान्मदीयं भवनं प्रवेष्टुं न त्वमर्हसि॥ २५॥
एवमुक्ता जगामाथ मरुदेशमनिन्दिता। वडवारूपमास्थाय भूतले सम्प्रतिष्ठिता॥ २६॥
तस्मात् प्रसादं कुरु मे यद्यनुग्रहभागहम्। अपनेष्यामि ते तेजो यन्त्रे कृत्वा दिवाकर॥ २७॥
रूपं तव करिष्यामि लोकानन्दकरं प्रभो। तथेत्युक्तः स रविणा भ्रमौ कृत्वा दिवाकरम्॥ २८॥
पृथक् चकार तत्तेजश्चक्रं विष्णोरकल्पयत्। त्रिशूलं चापि रुद्रस्य वज्रमिन्द्रस्य चाधिकम्॥ २९॥
दैत्यदानवसंहर्तुः सहस्रकिरणात्मकम्। रूपं चाप्रतिमं चक्रे त्वष्टा पद्भ्यामृते महत्॥ ३०॥
न शशाकाथ तद् द्रष्टुं पादरूपं रवेः पुनः। अर्चास्वपि ततः पादौ न कश्चित् कारयेत् क्वचित्॥ ३१॥
यः करोति स पापिष्ठां गतिमाप्नोति निन्दिताम्। कुष्ठरोगमवाप्नोति लोकेऽस्मिन् दुःखसंयुतः॥ ३२॥
तस्माच्च धर्मकामार्थी चित्रेष्वायतनेषु च। न क्वचित् कारयेत् पादौ देवदेवस्य धीमतः॥ ३३॥

पिताद्वारा इस प्रकार कहे जानेपर महायशस्वी यमके मनमें विराग उत्पन्न हो गया। वे गोकर्णतीर्थमें जाकर फल, पत्ता और वायुका आहार करते हुए कठोर तपस्यामें संलग्न हो गये। इस प्रकार वे बीस हजार

वर्षोंतक महादेवजीकी आराधना करते रहे। कुछ समयके पश्चात् त्रिशूलधारी महादेव उनकी तपस्यासे संतुष्ट होकर प्रकट हुए। तब यमने उनसे वररूपमें लोकपालत्व, पितरोंका आधिपत्य और जगत्के धर्म-अधर्मका निर्णायक-पद प्राप्त करनेकी इच्छा व्यक्त की। महादेवजीने उन्हें सभी वरदान दे दिये। निष्पाप शौनक! इस प्रकार यमको शूलपाणि भगवान् शंकरसे लोकपालत्व, पितरोंका आधिपत्य और धर्माधर्मके निर्णायक-पदकी प्राप्ति हुई है। इधर विवस्वान् संज्ञाकी उस कर्मचेष्टाको जानकर त्वष्टा ( विश्वकर्मा )-के निकट गये और क्रुद्ध होकर उनसे सारा वृत्तान्त कह सुनाये। द्विजवरो! तब त्वष्टाने सांत्वना-पूर्वक विवस्वान्से कहा—'भगवन्! अन्धकारका विनाश करनेवाले आपके प्रचण्ड तेजको न सहन करनेके कारण संज्ञा घोड़ीका रूप धारण करके यहाँ मेरे समीप अवश्य आयी थी, परंतु दिवाकर! मैंने उसे यह कहते हुए (घरमें घुसनेसे) मना कर दिया—'चूँकि तू अपने पतिदेवकी जानकारीके बिना छिपकर यहाँ मेरे पास आयी है, इसलिये मेरे भवनमें प्रवेश नहीं कर सकती।' इस प्रकार मेरे निषेध करनेपर आपके और मेरे—दोनों स्थानोंसे निराश होकर वह अनिन्दिता संज्ञा मरुदेशको चली गयी और वहाँ उसी घोड़ी-रूपसे ही भूतलपर स्थित है। इसलिये दिवाकर! यदि मैं आपका अनुग्रह-भाजन हूँ तो आप मुझपर प्रसन्न हो जाइये ( और मेरी एक प्रार्थना स्वीकार कीजिये )। प्रभो! मैं आपके इस असह्य तेजको ( खरादनेवाले ) यन्त्रपर चढ़ाकर कुछ कम कर दूँगा। इस प्रकार आपके रूपको लोगोंके लिये आनन्ददायक बना दूँगा।' सूर्यद्वारा उनकी प्रार्थना स्वीकार कर लिये जानेपर त्वष्टाने सूर्यको अपने ( खराद ) यन्त्रपर बैठाकर उनके कुछ तेजको छाँटकर अलग कर दिया। उस छाँटे हुए तेजसे उन्होंने विष्णुके सुदर्शनचक्रका, भगवान् रुद्रके त्रिशूलका और दैत्यों एवं दानवोंका संहार करनेवाले इन्द्रके वज्रका निर्माण किया। इस प्रकार त्वष्टाने पैरोंके अतिरिक्त सूर्यके सहस्र किरणोंवाले रूपको अनुपम सौन्दर्यशाली बना दिया। उस समय वे सूर्यके पैरोंके तेजको देखनेमें समर्थ न हो सके ( इसलिये वह तेज ज्यों-का-त्यों बना ही रह गया )। अतः अर्चा-विग्रहोंमें भी कोई सूर्यके चरणोंका निर्माण नहीं ( करता- ) कराता। यदि कोई वैसा करता है तो उसे ( मरनेपर ) अत्यन्त निन्दित पापिष्ठ गति प्राप्त होती है तथा इस लोकमें वह दुःख भोगता हुआ कुष्ठरोगी हो जाता है। इसलिये धर्मात्मा मनुष्यको चित्रों एवं मन्दिरोंमें कहीं भी बुद्धिमान् देवदेवेश्वर सूर्यके पैरोंको नहीं ( बनाना- ) बनवाना चाहिये ॥ १८—३३ ॥

ततः स भगवान् गत्वा भूर्लोकममराधिपः। कामयामास कामार्तो मुख एव दिवाकरः ॥ ३४ ॥
अश्वरूपेण महता तेजसा च समावृतः। संज्ञा च मनसा क्षोभमगमद् भयविह्वला ॥ ३५ ॥
नासापुटाभ्यामुत्सृष्टं परोऽयमिति शङ्कया। तद्रेतसस्ततो जातावश्विनाविति निश्चितम् ॥ ३६ ॥
दस्रौ सुतत्वात् संजातौ नासत्यौ नासिकाग्रतः।
ज्ञात्वा चिराच्च तं देवं संतोषमगमत् परम्। विमानेनागमत् स्वर्गं पत्या सह मुदान्विता ॥ ३७ ॥
सावर्णोऽपि मनुर्मेरावद्याप्यास्ते तपोधनः। शनिस्तपोबलादाप ग्रहसाम्यं ततः पुनः ॥ ३८ ॥
यमुना तपती चैव पुनर्नद्यौ बभूवतुः। विष्टिर्घोरात्मिका तद्वत् कालत्वेन व्यवस्थिता ॥ ३९ ॥
मनोर्वैवस्वतस्यासन् दश पुत्रा महाबलाः। इलस्तु प्रथमस्तेषां पुत्रेष्ट्यां समजायत ॥ ४० ॥
इक्ष्वाकुः कुशनाभश्च अरिष्टो धृष्ट एव च।
नरिष्यन्तः करूषश्च शर्यातिश्च महाबलः। पृषध्रश्चाथ नाभागः सर्वे ते दिव्यमानुषाः ॥ ४१ ॥
अभिषिच्य मनुः पुत्रमिलं ज्येष्ठं स धार्मिकः। जगाम तपसे भूयः स महेन्द्रवनालयम् ॥ ४२ ॥

अथ दिग्जयसिद्ध्यर्थमिलः प्रायान्महीमिमाम्। भ्रमन् द्वीपानि सर्वाणि क्ष्माभृतः सम्प्रधर्षयन्॥ ४३॥
जगामोपवनं शम्भोरश्वाकृष्टः प्रतापवान्। कल्पद्रुमलताकीर्णं नाम्ना शरवणं महत्॥ ४४॥
रमते यत्र देवेशः शम्भुः सोमार्धशेखरः। उमया समयस्तत्र पुरा शरवणे कृतः॥ ४५॥
पुंनाम सत्त्वं यत्किञ्चिदागमिष्यति ते वने। स्त्रीत्वमेष्यति तत् सर्वं दशयोजनमण्डले॥ ४६॥
अज्ञातसमयो राजा इलः शरवणे पुरा। स्त्रीत्वमाप विशन्नेव वडवात्वं हयस्तदा॥ ४७॥
पुरुषत्वं हृतं सर्वं स्त्रीरूपे विस्मितो नृपः।

त्वष्टाद्वारा संज्ञाका पता बतला दिये जानेपर वे देवेश्वर भगवान् सूर्य भूलोकमें जा पहुँचे। वहाँ उनके द्वारा संज्ञासे अश्विनीकुमारोंकी उत्पत्ति हुई—यह एकदम तथ्य बात है। संज्ञाकी नासिकाके अग्रभागसे उत्पन्न होनेके कारण वे दोनों नासत्य और दस्र नामसे भी विख्यात हुए। कुछ दिनोंके पश्चात् अश्वरूपधारी सूर्यदेवको पहचानकर त्वाष्ट्री ( संज्ञा ) परम संतुष्ट हुई और हर्षपूर्ण चित्तसे पतिके साथ विमानपर बैठकर स्वर्गलोक (आकाश) को चली गयी। ( छायाकी संतानोंमें ) तपोधन सावर्णि मनु आज भी सुमेरुगिरिपर विराजमान हैं। शनिने अपनी तपस्याके प्रभावसे ग्रहोंकी समता प्राप्त की। बहुत दिनोंके बाद यमुना और तपती—ये दोनो कन्याएँ नदीरूपमें परिणत हो गयीं। उसी प्रकार भयंकर रूपवाली तीसरी कन्या विष्टि ( भद्रा ) काल ( करण ) रूपमें अवस्थित हुई। वैवस्वत मनुके दस महाबली पुत्र उत्पन्न हुए थे। उनमें इल ज्येष्ठ थे, जो पुत्रेष्टि-यज्ञके फलस्वरूप पैदा हुए थे। शेष नौ पुत्रोंके नाम हैं—इक्ष्वाकु, कुशनाभ, अरिष्ट, धृष्ट, नरिष्यन्त, करूष, शर्याति, पृषध्र और नाभाग। ये सब-के-सब महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न एवं दिव्य पुरुष थे। वृद्धावस्था आनेपर परम धर्मात्मा महाराज मनु अपने ज्येष्ठ पुत्र इलको राज्यपर अभिषिक्त करके स्वयं तपस्या करनेके लिये महेन्द्रपर्वतके वनमें चले गये। तदनन्तर नये भूपाल इल दिग्विजय करनेकी इच्छासे इस पृथ्वीपर विचरण करने लगे। वे भूपालोंको पराजित करते हुए सभी द्वीपोंमें घूम रहे थे। इसी बीच प्रतापी इल घोड़ा दौड़ाते हुए शिवजीके उपवनके निकट जा पहुँचे। यह महान् उपवन कल्पद्रुम और लताओंसे भरा हुआ 'शरवण' नामसे प्रसिद्ध था। उस उपवनमें चन्द्रार्धको ललाटमें धारण करनेवाले देवेश्वर शम्भु उमाके साथ क्रीड़ा करते हैं। उन्होने इस शरवणके विषयमें पहले ही उमाके साथ यह समय ( शर्त ) निर्धारित कर दिया था कि 'तुम्हारे इस दस योजन विस्तारवाले वनमें जो कोई भी पुरुषवाचक जीव प्रवेश करेगा, वह स्त्रीत्वको प्राप्त हो जायगा।' राजा इलको पहलेसे इस 'समय' ( शर्त )के विषयमें जानकारी नहीं थी, अतः वे स्वच्छन्दगतिसे शरवणमें प्रविष्ट हुए। प्रवेश करते ही वे स्त्रीत्वको प्राप्त हो गये। उसी समय वह घोडा भी घोड़ीके रूपमें परिवर्तित हो गया। इलके शरीरसे सारा पुरुषत्व नष्ट हो गया। इस प्रकार स्त्री-रूप हो जानेपर राजाको परम विस्मय हुआ॥ ३४—४७½॥

इलेति साभवन्नारी पीनोन्नतघनस्तनी॥ ४८॥
उन्नतश्रोणिजघना पद्मपत्रायतेक्षणा। पूर्णेन्दुवदना तन्वी विलासोल्लासितेक्षणा॥ ४९॥
मूलोन्नतायतभुजा नीलकुञ्चितमूर्धजा। तनुलोमा सुदशना मृदुगम्भीरभाषिणी॥ ५०॥
श्यामगौरेण वर्णेन हंसवारणगामिनी। कार्मुकभ्रूयुगोपेता तनुताम्रनखाङ्कुरा॥ ५१॥
भ्रमन्ती च वने तस्मिंश्चिन्तयामास भामिनी। को मे पिताथवा भ्राता का मे माता भवेदिह॥ ५२॥
कस्य भर्तुरहं दत्ता कियद् वत्स्यामि भूतले। चिन्तयन्तीति ददृशे सोमपुत्रेण साङ्गना॥ ५३॥

इलारूपसमाक्षिप्तमनसा वरवर्णिनीम् । बुधस्तदाप्तये यत्नमकरोत् कामपीडितः ॥ ५४ ॥
विशिष्टाकारवान् दण्डी सकमण्डलुपुस्तकः । वेणुदण्डकृतावेशः पवित्रकखनित्रकः ॥ ५५ ॥
द्विजरूपः शिखी ब्रह्म निगदन् कर्णकुण्डलः । वटुभिश्चान्वितो युक्तैः समित्पुष्पकुशोदकैः ॥ ५६ ॥
किलान्विषन् वने तस्मिन्नाजुहाव स तामिलाम् । वहिर्वनस्यान्तरितः किल पादपमण्डले ॥ ५७ ॥
ससम्भ्रममकस्मात् तां सोपालम्भमिवावदत् । त्यक्त्वाग्निहोत्रशुश्रूषां क्व गता मन्दिरान्मम ॥ ५८ ॥
इयं विहारवेला ते ह्यतिक्रामति साम्प्रतम् । एह्येहि पृथुसुश्रोणि सम्भ्रान्ता केन हेतुना ॥ ५९ ॥
इयं सायंतनी वेला विहारस्येह वर्तते । कृत्वोपलेपनं पुष्पैरलङ्कुरु गृहं मम ॥ ६० ॥
सा त्वब्रवीद् विस्मृताहं सर्वमेतत् तपोधन । आत्मानं त्वां च भर्तारं कुलं च वद मेऽनघ ॥ ६१ ॥
बुधः प्रोवाच तां तन्वीमिला त्वं वरवर्णिनि । अहं च कामुको नाम बहुविद्यो बुधः स्मृतः ॥ ६२ ॥
तेजस्विनः कुले जातः पिता मे ब्राह्मणाधिपः । इति सा तस्य वचनात् प्रविष्टा बुधमन्दिरम् ॥ ६३ ॥
रत्नस्तम्भसमायुक्तं दिव्यमायाविनिर्मितम् । इला कृतार्थमात्मानं मेने तद्भवनस्थिता ॥ ६४ ॥
अहो वृत्तमहो रूपमहो धनमहो कुलम् । मम चास्य च मे भर्तुरहो लावण्यमुत्तमम् ॥ ६५ ॥
रेमे च सा तेन सममतिकालमिला ततः । सर्वभोगमये गेहे यथेन्द्रभवने तथा ॥ ६६ ॥

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे इला-बुधसङ्गमो नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥*

वह नारी इला नामसे प्रख्यात हुई । उसका रूप बड़ा सुन्दर था । उसके नेत्र कमलदलके समान बड़े-बड़े थे । उसके मुखकी कान्ति पूर्णिमाके चन्द्रमाके सदृश थी । उसका शरीर हल्का था । उसके नेत्र चकित-से दीख रहे थे । उसके बाहुमूल उन्नत और भुजाएँ लम्बी थीं तथा बाल नीले एवं घुँघराले थे । उसके शरीरके रोएँ सूक्ष्म और दाँत अत्यन्त मनोहर थे । वह मृदु और गम्भीर स्वरसे बोलनेवाली थी । उसके शरीरका रंग श्याम-गौरमिश्रित था । वह हंस और हस्तीकी-सी चालसे चल रही थी । उसकी दोनों भौंहें धनुषके आकारके सदृश थीं । वह छोटे एवं ताँबेके समान लाल नखाङ्कुरोंसे विभूषित थी । इस प्रकार वह सुन्दरी 'नारी' उस वनमें भ्रमण करती हुई सोचने लगी कि 'इस घोर वनमें कौन मेरा पिता अथवा भाई है तथा कौन मेरी माता है । मैं किस पतिके हाथमें समर्पित की गयी हूँ अर्थात् कौन मेरा पति है ! इस भूतलपर मुझे कितने दिनोंतक रहना पड़ेगा !' इस प्रकार वह चिन्तन कर ही रही थी कि इसी बीच सोम-पुत्र बुधने उसे देख लिया और वे उसे प्राप्त करनेके लिये प्रयत्न करने लगे । उस समय बुधने एक विशिष्ट वेष-भूषावाले दण्डीका रूप धारण कर लिया । उनके हाथोंमें कमण्डलु और पुस्तक शोभा पा रहे थे । उन्होंने बाँसके डंडेमें अनेकों पवित्र वस्तुओंको बाँध रखा था । वे ब्रह्मचारी-वेषमें लम्बी-मोटी शिखा धारण किये हुए थे । समिधा, पुष्प, कुश और जल लिये हुए वटुकोंके साथ वे वेदका पाठ कर रहे थे । वे अपनेको ऐसा प्रकट कर रहे थे मानो उस वनमें किसी वस्तुकी खोज कर रहे हों । इस प्रकार उस वनके बहिर्भागमें वृक्षसमूहोंके झुरमुटमें बैठकर वे उस इलाको बुलाने लगे । इलाके निकट आनेपर वे अकस्मात् चकपकाये हुएकी भाँति उलाहना देते हुए उससे बोले—'सुन्दरि ! अग्निहोत्र आदि सेवा-शुश्रूषाका परित्याग करके तुम मेरे घरसे कहाँ चली आयी हो ?' यह सुनकर इलाने कहा—'तपोधन ! मैं अपनेको, आपको, पतिको और कुलको—इन सभीको भूल गयी हूँ, अतः निष्पाप ! आप अपने और मेरे कुलका परिचय दीजिये ।' इलाके इस प्रकार पूछनेपर बुधने उस

सुन्दरीसे कहा—'वरवर्णिनि ! तुम इला हो और मै बहुत-सी विद्याओंका ज्ञाता बुध नामसे प्रसिद्ध हूँ । मैं तेजस्वी कुलमें उत्पन्न हुआ हूँ और मेरे पिता ब्राह्मणोंके अधिपति हैं।' बुधके इस कथनपर विश्वास करके इला बुधके उस भवनमें प्रविष्ट हुई, जिसमें रत्नोंके खम्भे लगे थे तथा जिसका निर्माण दिव्य मायाके द्वारा हुआ था । उस भवनमें पहुँचकर इला अपनेको कृतार्थ मानने लगी । ( वह कहने लगी—) 'कैसा सुन्दर चरित्र है । कैसा अद्भुत रूप है ! कितना प्रचुर धन है ! कैसा ऊँचा कुल है तथा मेरा और मेरे पतिदेवका कैसा अनुपम सौन्दर्य है !' तदनन्तर वह इला बुधके साथ बहुत समयतक उस सम्पूर्ण भोग-सामग्रियोंसे सम्पन्न घरमें उसी प्रकार सुखसे रहने लगी, जैसे इन्द्रभवनमें हो ॥ ४८–६६ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमे इला-बुध-सम्बन्ध नामक ग्यारहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ११ ॥

# बारहवाँ अध्याय

## इलाका वृत्तान्त तथा इक्ष्वाकु-वंशका वर्णन

सूत उवाच

अथान्विषन्तो राजानं भ्रातरस्तस्य मानवाः । इक्ष्वाकुप्रमुखा जग्मुस्तदा शरवणान्तिकम् ॥ १ ॥
ततस्ते ददृशुः सर्वे वडवामग्रतः स्थिताम् । रत्नपर्याणकिरणदीप्तकायामनुत्तमाम् ॥ २ ॥
पर्याणप्रत्यभिज्ञानात् सर्वे विस्मयमागताः । अयं चन्द्रप्रभो नाम वाजी तस्य महात्मनः ॥ ३ ॥
अगमद् वडवारूपमुत्तमं केन हेतुना । ततस्तु मैत्रावरुणिं पप्रच्छुस्ते पुरोधसम् ॥ ४ ॥
किमित्येतदभूच्चित्रं वद योगविदां वर । वसिष्ठश्चाब्रवीत् सर्वं दृष्ट्वा तद् ध्यानचक्षुषा ॥ ५ ॥
समयः शम्भुदयिताकृतः शरवणे पुरा । यः पुमान् प्रविशेदत्र स नारीत्वमवाप्स्यति ॥ ६ ॥
अयमश्वोऽपि नारीत्वमगाद् राज्ञा सहैव तु । पुनः पुरुषतामेति यथासौ धनदोपमः ॥ ७ ॥
तथैव यत्नः कर्त्तव्यश्चाराध्यैव पिनाकिनम् । ततस्ते मानवा जग्मुर्यत्र देवो महेश्वरः ॥ ८ ॥
तुष्टुवुर्विविधैः स्तोत्रैः पार्वतीपरमेश्वरौ । तावूचतुरलङ्घ्योऽयं समयः किंतु साम्प्रतम् ॥ ९ ॥
इक्ष्वाकोरश्वमेधेन यत् फल स्यात् तदावयोः । दत्त्वा किम्पुरुषो वीरः स भविष्यत्यसंशयम् ॥ १० ॥
तथेत्युक्तास्ततस्ते तु जग्मुर्वैवस्वतात्मजाः । इक्ष्वाकोश्चाश्वमेधेन चेलः किम्पुरुषोऽभवत् ॥ ११ ॥
मासमेकं पुमान् वीरः स्त्री च मासमभूत् पुनः । बुधस्य भवने तिष्ठन्निलो गर्भधरोऽभवत् ॥ १२ ॥
अजीजनत् पुत्रमेकमनेकगुणसंयुतम् । बुधश्चोत्पाद्य तं पुत्रं स्वर्लोकमगमत् ततः ॥ १३ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! ( बहुत दिनोंतक राजा इलके राजधानी न लैटनेपर सशङ्कित होकर ) उनके छोटे भाई मनु-पुत्र इक्ष्वाकु आदि राजा इल (सुद्युम्न)-का अन्वेषण करते हुए उसी शरवणके निकट जा पहुँचे । वहाँ उन सभीने मार्गके अग्रभागमें खड़ी हुई एक अनुपम घोड़ीको देखा, जिसका शरीर रत्ननिर्मित जीनकी किरणोंसे उद्दीप्त हो रहा था । तत्पश्चात् जीनको पहचान-कर वे सभी बन्धु आश्चर्यचकित हो गये ( और परस्पर कहने लगे—) 'अरे ! यह तो हमारे भाई महात्मा राजा इलका चन्द्रप्रभ नामक घोड़ा है ! किस कारण यह सुन्दर घोड़ीके रूपमें परिणत हो गया !' तब वे सभी लौटकर अपने कुल-पुरोहित महर्षि वसिष्ठके पास जाकर पूछने लगे—'योगवेत्ताओंमें श्रेष्ठ महर्षे ! ऐसी आश्चर्य-जनक घटना क्यों घटित हुई ? इसका रहस्य हमें बतलाइये।' तब महर्षि वसिष्ठ ध्यानदृष्टिद्वारा सारा वृत्तान्त जानकर इक्ष्वाकु आदिसे बोले—'राजपुत्रो ! पूर्वकालमें शम्भु-पत्नी उमाने इस शरवणके विषयमें ऐसा समय ( शर्त ) निर्धारित कर रखा है कि 'जो पुरुष इस

शरवणमें प्रवेश करेगा, वह स्त्री-रूपमें परिवर्तित हो जायगा।' इसी कारण राजा इलके साथ-ही-साथ यह घोड़ा भी स्त्रीत्वको प्राप्त हो गया है। अब जिस प्रकार राजा इल कुबेरकी भाँति पुनः पुरुषत्वको प्राप्त कर सकें, तुमलोगोंको पिनाकधारी शंकरकी आराधना करके वैसा ही प्रयत्न करना चाहिये।" महर्षि वसिष्ठकी आज्ञा पाकर वे सभी मनु-पुत्र वहाँ गये, जहाँ देवाधिदेव महेश्वर विराजमान थे। वहाँ उन्होंने विभिन्न स्तोत्रोंद्वारा पार्वती और परमेश्वरका स्तवन किया। ( उस स्तवनसे प्रसन्न होकर ) पार्वती और परमेश्वरने कहा—'राजकुमारो! यद्यपि मेरे इस नियम ( शर्त ) का उल्लङ्घन नहीं किया जा सकता, तथापि इस समय उसके निवारणके लिये मैं एक उपाय बतला रहा हूँ। यदि इक्ष्वाकुद्वारा किये गये अश्वमेध-यज्ञका जो कुछ फल हो, वह सारा-का-सारा हम दोनोंको समर्पित कर दिया जाय तो राजा इल निःसंदेह किम्पुरुष ( किन्नर ) हो जायँगे।' यह सुनकर 'बहुत अच्छा, ऐसा ही होगा'—यों कहकर वैवस्वत मनुके वे सभी पुत्र राजधानीको लौट आये। घर आकर इक्ष्वाकुने अश्वमेधयज्ञका अनुष्ठान किया और उसका पुण्य-फल पार्वती-परमेश्वरको अर्पित कर दिया जिसके परिणामस्वरूप इल किम्पुरुष हो गये। वहाँ वे वीरवर एक मास पुरुषरूपमें रहकर पुनः एक मास स्त्री हो जाते थे। बुधके भवनमें स्त्रीरूपमें रहते समय इलने गर्भ धारण कर लिया था। उस गर्भसे अनेक गुणोंसे सम्पन्न एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उस पुत्रको उत्पन्नकर बुध भूलोकसे पुनः स्वर्गलोकको चले गये॥ १—१३॥

इलस्य नाम्ना तद् वर्षमिलावृतमभूत्तदा। सोमार्कवंशयोरादाविलोऽभून्मनुनन्दनः॥ १४॥
एवं पुरूरवाः पुंसोरभवद् वंशवर्धनः। इक्ष्वाकुरर्कवंशस्य तथैवोक्तस्तपोधनाः॥ १५॥
इलः किम्पुरुषत्वे च सुद्युम्न इति चोच्यते। पुनः पुत्रत्रयमभूत् सुद्युम्नस्यापराजितम्॥ १६॥
उत्कलो वै गयस्तद्वद्धरिताश्वश्च वीर्यवान्। उत्कलस्योत्कला नाम गयस्य तु गया मता॥ १७॥
हरिताश्वस्य दिक्पूर्वा विश्रुता कुरुभिः सह। प्रतिष्ठानेऽभिषिच्याथ स पुरूरवसं सुतम्॥ १८॥
जगामेलावृतं भोक्तुं वर्षं दिव्यफलाशनम्। इक्ष्वाकुर्ज्येष्ठदायादो मध्यदेशमवाप्तवान्॥ १९॥
नरिष्यन्तस्य पुत्रोऽभूच्छुचो नाम महाबलः। नाभागस्याम्बरीषस्तु धृष्टस्य च सुतत्रयम्॥ २०॥
धृतकेतुश्चित्रनाथो रणधृष्टश्च वीर्यवान्। आनर्तो नाम शर्यातिः सुकन्या चैव दारिका॥ २१॥
आनर्तस्याभवत् पुत्रो रोचमानः प्रतापवान्। आनर्तो नाम देशोऽभून्नगरी च कुशस्थली॥ २२॥
रोचमानस्य पुत्रोऽभूद् रेवो रैवत एव च। ककुद्मी चापरं नाम ज्येष्ठः पुत्रशतस्य च॥ २३॥
रेवती तस्य सा कन्या भार्या रामस्य विश्रुता। करूषस्य तु कारूषा बहवः प्रथिता भुवि॥ २४॥
पृषध्रो गोवधाच्छूद्रो गुरुशापादजायत।

तभीसे इलके नामपर उस वर्षका नाम इलावृत पड़ गया। इस प्रकार चन्द्रवंश और सूर्यवंशके आदिमें सर्वप्रथम मनु-नन्दन इल ही राजा हुए थे। तपोधन ऋषियो! जैसे इलकी पुरुषावस्थामें उत्पन्न हुए राजा पुरूरवा चन्द्रवंशकी वृद्धि करनेवाले थे, वैसे ही महाराज इक्ष्वाकु सूर्य-वंशके विस्तारक कहे गये हैं। किम्पुरुष-योनिमें रहते समय इल सुद्युम्न नामसे कहे जाते थे। उन सुद्युम्नके पुनः उत्कल, गय और पराक्रमी हरिताश्व नामक तीन अपराजेय पुत्र उत्पन्न हुए थे। इलने ( अपने इन चारो पुत्रोंमेंसे ) उत्कलको उत्कल ( उड़ीसा ), गयको गयाप्रदेश और हरिताश्वको कुरुप्रदेशकी सीमावर्तिनी पूर्व दिशाका प्रदेश ( राज्य ) समर्पित किया। तत्पश्चात् अपने ज्येष्ठ पुत्र पुरूरवाका प्रतिष्ठानपुरमें अभिषेक करके वे स्वयं दिव्य फलाहारका उपभोग करनेके लिये इलावृतवर्षमें चले गये। ( सुद्युम्नके बाद ) मनुके ज्येष्ठ पुत्र इक्ष्वाकु मध्यदेशके अधिकारी हुए। ( मनुके अन्य पुत्रोंमें ) नरिष्यन्तके शुच नामक महाबली पुत्र हुआ। नाभागके अम्बरीष और

धृष्टके धृष्टकेतु, चित्रनाथ और रणधृष्ट नामक तीन पराक्रमी पुत्र हुए। शर्यातिके आनर्त नामक एक पुत्र तथा सुकन्या नाम्नी एक पुत्री हुई। आनर्तके रोचमान नामका एक प्रतापी पुत्र हुआ। आनर्तद्वारा शासित देशका नाम आनर्त ( गुजरात ) पड़ा और कुशस्थली ( द्वारका ) नगरी उसकी राजधानी हुई। रोचमानका पुत्र रेव हुआ, जो रैवत और ककुद्मी नामसे भी पुकारा जाता था। वह रोचमानके सौ पुत्रोंमें ज्येष्ठ था। उसके रेवती नामकी एक कन्या उत्पन्न हुई, जो बलरामजीकी भार्यारूपसे विख्यात है। करूषके बहुत-से पुत्र थे, जो भूतलपर कारूष नामसे विख्यात हुए। पृषध्र गौकी हत्या कर देनेके कारण गुरुके शापसे शूद्र हो गया॥ १४—२४½॥

इक्ष्वाकुवंशं वक्ष्यामि शृणुध्वमृषिसत्तमाः॥ २५॥
इक्ष्वाकोः पुत्रतामाप विकुक्षिर्नाम देवराट्। ज्येष्ठः पुत्रशतस्यासीद् दश पञ्च च तत्सुताः॥ २६॥
मेरोरुत्तरतस्ते तु जाताः पार्थिवसत्तमाः। चतुर्दशोत्तरं चान्यच्छतमस्य तथाभवत्॥ २७॥
मेरोर्दक्षिणतो ये वै राजानः सम्प्रकीर्तिताः। ज्येष्ठः ककुत्स्थो नाम्नाभूत्तत्सुतस्तु सुयोधनः॥ २८॥
तस्य पुत्रः पृथुर्नाम विश्वगश्च पृथोः सुतः। इन्दुस्तस्य च पुत्रोऽभूद् युवनाश्वस्ततोऽभवत्॥ २९॥
श्रावस्तश्च महातेजा वत्सकस्तत्सुतोऽभवत्। निर्मिता येन श्रावस्ती गौडदेशे द्विजोत्तमाः॥ ३०॥
श्रावस्ताद् बृहदश्वोऽभूत् कुवलाश्वस्ततोऽभवत्। धुन्धुमारत्वमगमद् धुन्धुनाम्ना हतः पुरा॥ ३१॥
तस्य पुत्रास्त्रयो जाता दृढाश्वो दण्ड एव च। कपिलाश्वश्च विख्यातो धौन्धुमारिः प्रतापवान्॥ ३२॥
दृढाश्वस्य प्रमोदश्च हर्यश्वस्तस्य चात्मजः। हर्यश्वस्य निकुम्भोऽभूत् संहताश्वस्ततोऽभवत्॥ ३३॥
अकृताश्वो रणाश्वश्च संहताश्वसुतावुभौ। युवनाश्वो रणाश्वस्य मान्धाता च ततोऽभवत्॥ ३४॥
मान्धातुः पुरुकुत्सोऽभूद् धर्मसेनश्च पार्थिवः। मुचुकुन्दश्च विख्यातः शत्रुजिच्च प्रतापवान्॥ ३५॥
पुरुकुत्सस्य पुत्रोऽभूद् वसुदो नर्मदापतिः। सम्भूतिस्तस्य पुत्रोऽभूत् त्रिधन्वा च ततोऽभवत्॥ ३६॥
त्रिधन्वनः सुतो जातस्त्रय्यारुण इति स्मृतः। तस्मात् सत्यव्रतो नाम तस्मात् सत्यरथः स्मृतः॥ ३७॥
तस्य पुत्रो हरिश्चन्द्रो हरिश्चन्द्राच्च रोहितः। रोहिताच्च वृको जातो वृकाद् बाहुरजायत॥ ३८॥
सगरस्तस्य पुत्रोऽभूद् राजा परमधार्मिकः। द्वे भार्ये सगरस्यापि प्रभा भानुमती तथा॥ ३९॥
ताभ्यामाराधितः पूर्वमौर्वोऽग्निः पुत्रकाम्यया। और्वस्तुष्टस्तयोः प्रादाद् यथेष्टं वरमुत्तमम्॥ ४०॥
एका षष्टिसहस्राणि सुतमेकं तथापरा। गृह्णातु वंशकर्तारं प्रभागृह्णाद् बहूंस्तदा॥ ४१॥
एकं भानुमती पुत्रमगृह्णादसमञ्जसम्। ततः षष्टिसहस्राणि सुषुवे यादवी प्रभा॥ ४२॥
खनन्तः पृथिवीं दग्धा विष्णुना येऽश्वमार्गणे।

श्रेष्ठ ऋषियो! अब मैं इक्ष्वाकु-वंशका वर्णन करने जा रहा हूँ, आपलोग ध्यानपूर्वक सुनिये। देवराज विकुक्षि इक्ष्वाकुके पुत्ररूपमें उत्पन्न हुए। वे इक्ष्वाकुके सौ पुत्रोंमें ज्येष्ठ थे। उन ( विकुक्षि )के पंद्रह पुत्र थे, जो सुमेरुगिरिकी उत्तर दिशामें श्रेष्ठ राजा हुए। विकुक्षिके एक सौ चौदह पुत्र और हुए थे, जो सुमेरुगिरिकी दक्षिण दिशाके शासक कहे गये हैं। विकुक्षिका ज्येष्ठ पुत्र ककुत्स्थ नामसे विख्यात था। उसका पुत्र सुयोधन हुआ। सुयोधनका पुत्र पृथु, पृथुका पुत्र विश्वग, विश्वगका पुत्र इन्दु और इन्दुका पुत्र युवनाश्व हुआ। युवनाश्वका पुत्र श्रावस्त हुआ, जिसे वत्सक भी कहा जाता था। द्विजवरो! उसीने गौडदेशमें श्रावस्ती ( सहेठ-महेठ ) नामकी नगरी बसायी थी। श्रावस्तसे बृहदश्व और उससे कुवलाश्वका जन्म हुआ, जो पूर्वकालमें धुन्धुद्वारा मारे जानेके कारण धुन्धुमार नामसे विख्यात था। धुन्धुमारके दृढाश्व, दण्ड और कपिलाश्व नामक तीन पुत्र हुए थे, जिनमें प्रतापी कपिलाश्व धौन्धुमारि नामसे भी प्रसिद्ध था। दृढाश्वका पुत्र प्रमोद और उसका पुत्र हर्यश्व हुआ। हर्यश्वका पुत्र निकुम्भ तथा उससे संहताश्वका जन्म हुआ। संहताश्वके अकृताश्व और रणाश्व नामक दो पुत्र हुए।

उनमें रणाश्वका पुत्र युवनाश्व हुआ तथा उससे मान्धाताकी उत्पत्ति हुई। मान्धाताके पुरुकुत्स, राजा धर्मसेन और शत्रुओंको पराजित करनेवाले सुप्रसिद्ध प्रतापी मुचुकुन्द—ये तीन पुत्र हुए। इनमें पुरुकुत्सका पुत्र नर्मदापति वसुद हुआ। उसका पुत्र सम्भूति हुआ और सम्भूतिसे त्रिधन्वाका जन्म हुआ। त्रिधन्वासे उत्पन्न हुआ पुत्र त्र्य्यारुण नामसे प्रसिद्ध हुआ। उससे सत्यव्रत और सत्यव्रतसे सत्यरथका जन्म हुआ। सत्यरथसे हरिश्चन्द्र, हरिश्चन्द्रसे रोहित, रोहितसे वृक और वृकसे बाहुकी उत्पत्ति हुई। बाहुके पुत्र राजा सगर हुए, जो परम धर्मात्मा थे। उन सगरके प्रभा और भानुमती नामवाली दो पत्नियाँ थीं। उन दोनोंने पूर्वकालमें पुत्रकी कामनासे और्वाग्निकी आराधना की थी। उनकी आराधनासे संतुष्ट होकर उन्हें यथेष्ट उत्तम वर प्रदान करते हुए और्वने कहा—'तुम दोनोंमेंसे एकको साठ हजार पुत्र होंगे और दूसरीको केवल एक वंशप्रवर्तक पुत्र होगा। (तुम दोनोंमें जिसकी जैसी इच्छा हो, वह वैसा वरदान ग्रहण करे।)' तब प्रभाने साठ हजार पुत्रोंको स्वीकार किया और भानुमतीने एक ही पुत्र माँगा। कुछ दिनोंके पश्चात् भानुमतीने असमञ्जसको पैदा किया तथा यदुवंशकी कन्या प्रभाने साठ हजार पुत्रोंको जन्म दिया, जो अश्वमेध-यज्ञके अश्वकी खोजमें जिस समय पृथ्वीको खोद रहे थे, उसी समय उन्हें विष्णु ( भगवदवतार कपिल ) ने जलाकर भस्म कर दिया ॥२५–४२½॥

असमञ्जसस्तु तनयो योऽशुमान् नाम विश्रुतः ॥ ४३ ॥

तस्य पुत्रो दिलीपस्तु दिलीपात्तु भगीरथः। येन भागीरथी गङ्गा तपः कृत्वावतारिता ॥ ४४ ॥
भगीरथस्य तनयो नाभाग इति विश्रुतः।नाभागस्याम्बरीषोऽभूत् सिन्धुद्वीपस्ततोऽभवत्॥ ४५ ॥
तस्यायुतायुः पुत्रोऽभूद् ऋतुपर्णस्ततोऽभवत्। तस्य कल्माषपादस्तु सर्वकर्मा ततः स्मृतः ॥ ४६ ॥
तस्यानरण्यः पुत्रोऽभून्निघ्नस्तस्य सुतोऽभवत्। निघ्नपुत्रावुभौ जातावनमित्ररघू नृपौ ॥ ४७ ॥
अनमित्रो वनमगाद् भविता स कृते नृपः। रघोरभूद् दिलीपस्तु दिलीपादजकस्तथा ॥ ४८ ॥
दीर्घबाहुरजाज्जातश्चाजपालस्ततो नृपः। तस्माद् दशरथो जातस्तस्य पुत्रचतुष्टयम् ॥ ४९ ॥
नारायणात्मकाः सर्वे रामस्तेष्वग्रजोऽभवत्। रावणान्तकरस्तद्वद् रघूणां वंशवर्धनः ॥ ५० ॥
वाल्मीकिस्तस्य चरितं चक्रे भार्गवसत्तमः। तस्य पुत्रौ कुशलवाविक्ष्वाकुकुलवर्धनौ ॥ ५१ ॥
अतिथिस्तु कुशाज्जज्ञे निषधस्तस्य चात्मजः। नलस्तु नैषधस्तस्मान्नभास्तस्मादजायत ॥ ५२ ॥
नभसः पुण्डरीकोऽभूत् क्षेमधन्वा ततः स्मृतः। तस्य पुत्रोऽभवद् वीरो देवानीकः प्रतापवान् ॥ ५३ ॥
अहीनगुस्तस्य सुतः सहस्राश्वस्ततः परः। ततश्चन्द्रावलोकस्तु तारापीडस्ततोऽभवत् ॥ ५४ ॥
तस्यात्मजश्चन्द्रगिरिर्भानुश्चन्द्रस्ततोऽभवत्। श्रुतायुरभवत्तस्माद् भारते यो निपातितः ॥ ५५ ॥
नलौ द्वावेव विख्यातौ वंशे कश्यपसम्भवे। वीरसेनसुतस्तद्वन्नैषधश्च नराधिपः ॥ ५६ ॥
एते वैवस्वते वंशे राजानो भूरिदक्षिणाः। इक्ष्वाकुवंशप्रभवाः प्राधान्येन प्रकीर्तिताः ॥ ५७ ॥

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सूर्यवंशानुकीर्तनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥*

असमञ्जसका पुत्र अंशुमान् नामसे विख्यात हुआ। उसके पुत्र दिलीप और दिलीपसे भगीरथ हुए, जो तपस्या करके भागीरथी गङ्गाको स्वर्गसे भूतलपर ले आये। भगीरथके पुत्र नाभाग नामसे प्रसिद्ध हुए। नाभागके पुत्र अम्बरीष और उनसे सिन्धुद्वीपका जन्म हुआ। सिन्धुद्वीपका पुत्र अयुतायु हुआ तथा उससे ऋतुपर्णकी उत्पत्ति हुई। ऋतुपर्णका पुत्र कल्माषपाद और उससे सर्वकर्मा पैदा हुआ। उसका पुत्र अनरण्य और अनरण्यका पुत्र निघ्न हुआ। निघ्नके अनमित्र और राजा रघु नामके दो पुत्र हुए, जिनमें अनमित्र वनमें चला गया, जो कृतयुगमें राजा होगा। रघुसे दिलीप तथा दिलीपसे अज हुए। अजसे दीर्घबाहु और उससे

राजा अजपाल हुए। अजपालसे दशरथ पैदा हुए, जिनके चार पुत्र थे। वे सब-के-सब नारायणके अंशसे प्रादुर्भूत हुए थे। उनमें श्रीराम सबसे ज्येष्ठ थे, जो रावणका अन्त करनेवाले तथा रघुवंशके प्रवर्धक थे। भृगुवंशप्रवर महर्षि वाल्मीकिने श्रीरामके चरित्रका ( रामायणरूपमें विस्तारपूर्वक ) वर्णन किया है। श्रीरामके कुश और लव नामक दो पुत्र हुए, जो इक्ष्वाकु-कुलके विस्तारक थे। कुशसे अतिथि और उससे निषधका जन्म हुआ। निषधका पुत्र नल हुआ और उससे नभकी उत्पत्ति हुई। नभसे पुण्डरीकका तथा उससे क्षेमधन्वाका जन्म हुआ। क्षेमधन्वाका पुत्र प्रतापी वीरवर देवानीक हुआ। उसका पुत्र अहीनगु तथा उससे सहस्राश्वका जन्म हुआ। सहस्राश्वसे चन्द्रावलोक और उससे तारापीडकी उत्पत्ति हुई। तारापीडसे चन्द्रागिरि और उससे भानुचन्द्र पैदा हुआ। भानुचन्द्रका पुत्र श्रुतायु हुआ, जो महाभारत-युद्धमें मारा गया था। महर्षि कश्यपद्वारा उत्पन्न हुए इस वंशमें नल नामसे दो राजा विख्यात हुए हैं, उनमें एक वीरसेनका पुत्र तथा दूसरा राजा निषधका पुत्र था। इस प्रकार वैवस्वतवंशीय महाराज इक्ष्वाकुके वंशमें उत्पन्न होनेवाले ये सभी राजा अतिशय दानशील थे। मैंने इनका मुख्यरूपसे वर्णन कर दिया ॥ ४३—५७ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें सूर्यवंशानुकीर्तन नामक बारहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १२ ॥

# तेरहवाँ अध्याय

## पितृ-वंश-वर्णन तथा सतीके वृत्तान्त-प्रसङ्गमें देवीके एक सौ आठ नामोंका विवरण

मनुरुवाच

**भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि पितॄणां वंशमुत्तमम्। रवेश्च श्राद्धदेवत्वं सोमस्य च विशेषतः ॥ १ ॥**

मनुने पूछा—भगवन्! अब मै पितरोंके उत्तम वंशका वर्णन सुनना चाहता हूँ। उसमें भी विशेषरूपसे यह जाननेकी अभिलाषा है कि सूर्य और चन्द्रमा श्राद्धके देवता कैसे हो गये ? ॥ १ ॥

मत्स्य उवाच

**हन्त ते कथयिष्यामि पितॄणां वंशमुत्तमम्। स्वर्गे पितृगणा सप्त त्रयस्तेषाममूर्त्तयः ॥ २ ॥**
**मूर्तिमन्तोऽथ चत्वारः सर्वेषाममितौजसः। अमूर्त्तयः पितृगणा वैराजस्य प्रजापतेः ॥ ३ ॥**
**यजन्ति यान् देवगणा वैराजा इति विश्रुताः। ये चैते योगविभ्रष्टाः प्राप्य लोकान् सनातनान्॥ ४ ॥**
**पुनर्ब्रह्मदिनान्ते तु जायन्ते ब्रह्मवादिनः। सम्प्राप्य तां स्मृतिं भूयो योगं सांख्यमनुत्तमम्॥ ५ ॥**
**सिद्धिं प्रयान्ति योगेन पुनरावृत्तिदुर्लभाम्। योगिनामेव देयानि तस्माच्छ्राद्धानि दातृभिः ॥ ६ ॥**
**एतेषां मानसी कन्या पत्नी हिमवतो मता।**
**मैनाकस्तस्य दायादः क्रौञ्चस्तस्याग्रजोऽभवत्। क्रौञ्चद्वीपः स्मृतो येन चतुर्थो घृतसंवृतः ॥ ७ ॥**
**मेना च सुषुवे तिस्रः कन्या योगवतीस्ततः। उमैकपर्णा पर्णा च तीव्रव्रतपरायणाः ॥ ८ ॥**
**रुद्रस्यैका सितस्यैका जैगीषव्यस्य चापरा। दत्ता हिमवता बालाः सर्वा लोके तपोऽधिकाः॥ ९ ॥**

मत्स्यभगवान् कहने लगे—राजर्षे! बड़े आनन्दकी बात है, अब मै तुमसे पितरोंके श्रेष्ठ वंशका वर्णन कर रहा हूँ; सुनो। स्वर्गमें पितरोंके सात गण हैं। उनमें तीन मूर्तिरहित और चार मूर्तिमान् हैं। वे सब-के-सब अमित तेजस्वी हैं। अमूर्त पितृगण वैराजनामक प्रजापतिकी संतान हैं, इसीलिये वैराज नामसे प्रसिद्ध हैं। देवगण उनकी पूजा करते हैं। ये सभी सनातन लोकोंको प्राप्त करनेके पश्चात् योगमार्गसे च्युत हो जाते हैं तथा ब्रह्माके दिनके अन्तमें पुनः

ब्रह्मवादीरूपमें उत्पन्न होते हैं। उस समय ये पूर्वजन्मकी स्मृति हो जानेसे पुनः सर्वोत्तम सांख्ययोगका आश्रय लेकर योगाभ्यासद्वारा आवागमनके चक्रसे मुक्त करनेवाली सिद्धि प्राप्त कर लेते हैं। इस कारण दाताओंद्वारा योगियोंको ही श्राद्धीय वस्तुएँ प्रदान करनी चाहिये। इन उपर्युक्त पितरोंकी मानसी कन्या मेना हिमवान्की पत्नी मानी गयी है। मैनाक उसका पुत्र है। क्रौञ्च उससे भी पहले पैदा हुआ था। इसी क्रौञ्चके नामपर घृतसे परिवेष्टित चतुर्थ द्वीप क्रौञ्चद्वीप नामसे विख्यात है। तत्पश्चात् मेनाने उमा, एकपर्णा और अपर्णा नामकी तीन कन्याओंको जन्म दिया, जो सब-की-सब योगाभ्यासमें निरत, कठोर व्रतमें तत्पर तथा लोकमें सर्वश्रेष्ठ तपस्विनी थीं। हिमवान्ने इनमेंसे एक कन्या रुद्रको, एक सितको तथा एक जैगीषव्यको प्रदान कर दी ॥ २—९ ॥

ऋषय ऊचुः

**कस्माद् दाक्षायणी पूर्वं ददाहात्मानमात्मना। हिमवद्दुहिता तद्वत् कथं जाता महीतले ॥ १० ॥**
**संहरन्ती किमुक्तासौ सुता वा ब्रह्मसूनुना। दक्षेण लोकजननी सूत विस्तरतो वद ॥ ११ ॥**

**ऋषियोंने पूछा**—सूतजी! पूर्वकालमें दक्ष-पुत्री सतीने अपने शरीरको अपने-आप ही क्यों जला डाला? तथा पुनः उसी प्रकारका शरीर धारणकर वे भूतलपर हिमवान्की कन्याके रूपमें कैसे प्रकट हुईं? उस समय ब्रह्माके पुत्र दक्षने लोकजननी सतीको, जो उन्हींकी पुत्री थीं, कौन-सी ऐसी बात कह दी थी, जिससे वे स्वयं ही जल मरीं? ये सभी बातें हमें विस्तारपूर्वक बतलाइये ॥ १०-११ ॥

सूत उवाच

**दक्षस्य यज्ञे वितते प्रभूतवरदक्षिणे। समाहूतेषु देवेषु प्रोवाच पितरं सती ॥ १२ ॥**
**किमर्थं तात भर्ता मे यज्ञेऽस्मिन्नाभिमन्त्रितः। अयोग्य इति तामाह दक्षो यज्ञेषु शूलभृत् ॥ १३ ॥**
**उपसंहारकृद् रुद्रस्तेनामङ्गलभागयम्। चुकोपाथ सती देहं त्यक्ष्यामीति त्वदुद्भवम् ॥ १४ ॥**
**दशानां त्वं च भविता पितॄणामेकपुत्रकः। क्षत्रियत्वेऽश्वमेधे च रुद्रात् त्वं नाशमेष्यसि ॥ १५ ॥**
**इत्युक्त्वा योगमास्थाय स्वदेहोद्भवतेजसा। निर्दहन्ती तदात्मानं सदेवासुरकिन्नरैः ॥ १६ ॥**
**किं किमेतदिति प्रोक्ता गन्धर्वगणगुह्यकैः। उपगम्याब्रवीद् दक्षः प्रणिपत्याथ दुःखितः ॥ १७ ॥**
**त्वमस्य जगतो माता जगत्सौभाग्यदेवता। दुहितृत्वं गता देवि ममानुग्रहकाम्यया ॥ १८ ॥**
**न त्वया रहितं किंचिद् ब्रह्माण्डे सचराचरम्। प्रसादं कुरु धर्मज्ञे न मां त्यक्तुमिहार्हसि ॥ १९ ॥**
**प्राह देवी यदारब्धं तत् कार्यं मे न संशयः। किंत्ववश्यं त्वया मर्त्ये हतयज्ञेन शूलिना ॥ २० ॥**
**प्रसादे लोकसृष्ट्यर्थं तपः कार्यं समान्तिके। प्रजापतिस्त्वं भविता दशानामङ्गजोऽप्यलम् ॥ २१ ॥**
**मदंशेनाङ्गनाषष्टिर्भविष्यन्त्यङ्गजास्तव। मत्संनिधौ तपः कुर्वन् प्राप्स्यसे योगमुत्तमम् ॥ २२ ॥**
**एवमुक्तोऽब्रवीद् दक्षः केषु केषु मयानघे। तीर्थेषु च त्वं द्रष्टव्या स्तोतव्या कैश्च नामभिः ॥ २३ ॥**

**सूतजी कहते हैं**—ऋषियो! प्राचीनकालमें दक्षने एक विशाल यज्ञका अनुष्ठान किया था; उसमें प्रचुर धनराशि दक्षिणाके रूपमें बाँटी गयी थी तथा सभी देवता (अपना-अपना भाग ग्रहण करनेके लिये) आमन्त्रित किये गये थे। (परंतु द्वेषवश शिवजीको निमन्त्रण नहीं भेजा गया था। तब वहाँ अपने पतिका भाग न देखकर) सतीने पिता दक्षसे पूछा—'पिताजी! अपने इस विशाल यज्ञमें आपने मेरे पतिदेवको क्यो नहीं आमन्त्रित किया?' तब दक्षने सतीसे कहा—'बेटी! तुम्हारा पति त्रिशूल धारण कर रुद्ररूपसे जगत्का उपसंहार करता है, जिससे वह अमङ्गल-भागी है, इस कारण वह यज्ञोंमें भाग पानेके लिये अयोग्य है।' यह सुनकर सती क्रोधसे तमतमा उठीं और बोलीं—'तात! अब मैं तुम्हारे पापी शरीरसे उत्पन्न हुए अपनी देहका परित्याग

कर दूँगी। तुम दस पितरोंके एकमात्र पुत्र होगे और क्षत्रिय-योनिमें जन्म लेनेपर अश्वमेध-यज्ञके अवसरपर रुद्रद्वारा तुम्हारा विनाश हो जायगा।' ऐसा कहकर सतीने योगबलका आश्रय लिया और स्वतः शरीरसे प्रकट हुए तेजसे अपने शरीरको जलाना प्रारम्भ कर दिया। तब देवता, असुर और किन्नरोंके साथ गन्धर्व एवं गुह्यकगण 'अरे! यह क्या हो रहा है! यह क्या हो रहा है!' इस प्रकार हो-हल्ला मचाने लगे। यह देखकर दक्ष भी दुःखी हो सतीके निकट गये और प्रणाम करके बोले—'देवि! तुम इस जगत्की जननी तथा जगत्को सौभाग्य प्रदान करनेवाली देवता हो। तुम मुझपर अनुग्रह करनेकी कामनासे ही मेरी पुत्री होकर अवतीर्ण हुई हो। धर्मज्ञे! इस निखिल ब्रह्माण्डमें—समस्त चराचर वस्तुओंमें कुछ भी तुमसे रहित नहीं है अर्थात् सबमें तुम्हारी सत्ता व्याप्त है। मुझपर कृपा करो। इस अवसरपर तुम्हे मेरा परित्याग नहीं करना चाहिये।' (दक्षके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर) देवीने कहा—'दक्ष! मैंने जिस कार्यका आरम्भ कर दिया है, उसे तो निःसंदेह अवश्य ही पूर्ण करूँगी, किंतु त्रिशूलधारी शिवजी-द्वारा यज्ञ-विध्वंस हो जानेपर उनको प्रसन्न करनेके लिये तुम मृत्युलोकमें लोक-सृष्टिकी इच्छासे मेरे निकट तपस्या करना। उसके प्रभावसे तुम प्रचेता नामके दस पिताओंके एकमात्र पुत्र होनेपर भी प्रजापति हो जाओगे। उस समय मेरे अंशसे तुम्हे साठ कन्याएँ उत्पन्न होंगी तथा मेरे समीप तपस्या करते हुए तुम्हे उत्तम योगकी प्राप्ति हो जायगी।' ऐसा कहे जानेपर दक्षने पूछा—'पाप-रहिता देवि! इस कार्यके निमित्त मुझे किन-किन तीर्थस्थानोंमें जाकर तुम्हारा दर्शन करना चाहिये तथा किन-किन नामोद्वारा तुम्हारा स्तवन करना चाहिये'॥ १२—२३॥

देव्युवाच

सर्वदा सर्वभूतेषु द्रष्टव्या सर्वतो भुवि। सर्वलोकेषु यत् किंचिद् रहितं न मया विना॥ २४॥
तथापि येषु स्थानेषु द्रष्टव्या सिद्धिमीप्सुभिः। स्मर्तव्या भूतिकामैर्वा तानि वक्ष्यामि तत्त्वतः॥ २५॥
वाराणस्यां विशालाक्षी नैमिषे लिङ्गधारिणी। प्रयागे ललिता देवी कामाक्षी गन्धमादने॥ २६॥
मानसे कुमुदा नाम विश्वकाया तथाम्बरे॥ २७॥
गोमन्ते गोमती नाम मन्दरे कामचारिणी। मदोत्कटा चैत्ररथे जयन्ती हस्तिनापुरे॥ २८॥
कान्यकुब्जे तथा गौरी रम्भा मलयपर्वते। एकाम्रके कीर्तिमती विश्वा विश्वेश्वरे विदुः॥ २९॥
पुष्करे पुरुहूतेति केदारे मार्गदायिनी। नन्दा हिमवतः पृष्ठे गोकर्णे भद्रकर्णिका॥ ३०॥
स्थाण्वीश्वरे भवानी तु बिल्वके बिल्वपत्रिका। श्रीशैले माधवी नाम भद्रा भद्रेश्वरे तथा॥ ३१॥
जया वराहशैले तु कमला कमलालये। रुद्रकोट्यां च रुद्राणी काली कालंजरे गिरौ॥ ३२॥
महालिङ्गे तु कपिला मर्कोटे मुकुटेश्वरी। शालग्रामे महादेवी शिवलिङ्गे जलप्रिया॥ ३३॥
मायापुर्यां कुमारी तु संताने ललिता तथा। उत्पलाक्षी सहस्राक्षे कमलाक्षे महोत्पला॥ ३४॥
गङ्गायां मङ्गला नाम विमला पुरुषोत्तमे। विपाशायाममोघाक्षी पाटला पुण्ड्रवर्धने॥ ३५॥
नारायणी सुपार्श्वे तु त्रिकूटे भद्रसुन्दरी। विपुले विपुला नाम कल्याणी मलयाचले॥ ३६॥
कोटवी कोटितीर्थे तु सुगन्धा माधवे वने। गोदाश्रमे त्रिसंध्या तु गङ्गाद्वारे रतिप्रिया॥ ३७॥
शिवकुण्डे शिवानन्दा नन्दिनी देविकातटे। रुक्मिणी द्वारवत्यां तु राधा वृन्दावने वने॥ ३८॥

देवीने कहा—दक्ष! यद्यपि भूतलपर समस्त प्राणियोंमें सब ओर सर्वदा मेरा ही दर्शन करना चाहिये; क्योंकि सम्पूर्ण लोकोंमें जो कुछ पदार्थ है, वह सब मुझसे रहित नहीं है, अर्थात् सभी पदार्थोंमें मेरी सत्ता विद्यमान है, तथापि सिद्धिकी कामनावाले अथवा ऐश्वर्याभिलाषी जनोद्वारा जिन-जिन तीर्थस्थानोंमें मेरा दर्शन और स्मरण करना चाहिये, उनका मै यथार्थरूपसे वर्णन कर रही हूँ। मै वाराणसीमें विशालाक्षी, नैमिषारण्यमें लिङ्गधारिणी,

प्रयागमें ललितादेवी, गन्धमादन पर्वतपर कामाक्षी, मानसरोवरतीर्थमें कुमुदा, अम्बरमें विश्वकाया, गोमन्त ( गोआ ) में गोमती, मन्दराचलपर कामचारिणी, चैत्ररथ-वनमें मदोत्कटा, हस्तिनापुरमें जयन्ती, कान्यकुब्जमें गौरी, मलयपर्वतपर रम्भा, एकाम्रक (भुवनेश्वर)तीर्थमें कीर्तिमती, विश्वेश्वरमें विश्वा, पुष्करमें पुरुहूता, केदारतीर्थमें मार्गदायिनी, हिमवान्‌के पृष्ठभागमें नन्दा, गोकर्णतीर्थमें भद्रकर्णिका, स्थानेश्वर( थानेश्वर )में भवानी, बिल्वतीर्थमें बिल्वपत्रिका, श्रीशैलपर माधवी, भद्रेश्वरतीर्थमें भद्रा, वराहशैलपर जया, कमलालयतीर्थमें कमला, रुद्रकोटिमें रुद्राणी, कालञ्जर-गिरिपर काली, महालिङ्गतीर्थमें कपिला, मर्कोटमें मुकुटेश्वरी, शालग्रामतीर्थमें महादेवी, शिवलिङ्गमें जलप्रिया, मायापुरी (ऋषिकेश)में कुमारी, संतानतीर्थमें ललिता, सहस्राक्षतीर्थमें उत्पलाक्षी, कमलाक्षतीर्थमें महोत्पला, गङ्गामें मङ्गला, पुरुषोत्तम तीर्थ ( जगन्नाथपुरी )में विमला, विपाशामें अमोघाक्षी, पुण्ड्रवर्धनमें पाटला, सुपार्श्वतीर्थमें नारायणी, त्रिकूटमें भद्रसुन्दरी, विपुलमें विपुला, मलयाचलपर कल्याणी, कोटितीर्थमें कोटवी, माधव-वनमें सुगन्धा, गोदाश्रममें त्रिसंध्या, गङ्गाद्वार ( हरिद्वार )में रतिप्रिया, शिवकुण्डतीर्थमें शिवानन्दा, देविका (पंजाबकी देगनदी) के तटपर नन्दिनी, द्वारकापुरीमें रुक्मिणी और वृन्दावनमें राधा हूँ ॥ २४—३८ ॥

देवकी मथुरायां तु पाताले परमेश्वरी । चित्रकूटे तथा सीता विन्ध्ये विन्ध्याधिवासिनी ॥ ३९ ॥
सह्याद्रावेकवीरा तु हरिश्चन्द्रे तु चन्द्रिका । रमणा रामतीर्थे तु यमुनायां मृगावती ॥ ४० ॥
करवीरे महालक्ष्मीरुमादेवी विनायके । अरोगा वैद्यनाथे तु महाकाले महेश्वरी ॥ ४१ ॥
अभयेत्युष्णतीर्थेषु चामृता विन्ध्यकन्दरे । माण्डव्ये माण्डवी नाम स्वाहा माहेश्वरे पुरे ॥ ४२ ॥
छागलाण्डे प्रचण्डा तु चण्डिका मकरन्दके । सोमेश्वरे वरारोहा प्रभासे पुष्करावती ॥ ४३ ॥
देवमाता सरस्वत्यां पारावारतटे मता । महालये महाभागा पयोष्ण्यां पिङ्गलेश्वरी ॥ ४४ ॥
सिंहिका कृतशौचे तु कार्त्तिकेये यशस्करी । उत्पलावर्तके लोला सुभद्रा शोणसंगमे ॥ ४५ ॥
माता सिद्धपुरे लक्ष्मीरङ्गना भरताश्रमे । जालंधरे विश्वमुखी तारा किष्किन्धपर्वते ॥ ४६ ॥
देवदारुवने पुष्टिर्मेधा काश्मीरमण्डले । भीमा देवी हिमाद्रौ तु पुष्टिर्विश्वेश्वरे तथा ॥ ४७ ॥
कपालमोचने शुद्धिर्माता कायावरोहणे । शङ्खोद्धारे ध्वनिर्नाम धृतिः पिण्डारके तथा ॥ ४८ ॥
काला तु चन्द्रभागायामच्छोदे शिवकारिणी । वेणायाममृता नाम बदर्यामुर्वशी तथा ॥ ४९ ॥
औषधी चोत्तरकुरौ कुशद्वीपे कुशोदका । मन्मथा हेमकूटे तु मुकुटे सत्यवादिनी ॥ ५० ॥
अश्वत्थे वन्दनीया तु निधिर्वैश्रवणालये । गायत्री वेदवदने पार्वती शिवसंनिधौ ॥ ५१ ॥
देवलोके तथेन्द्राणी ब्रह्मास्येषु सरस्वती । सूर्यबिम्बे प्रभा नाम मातॄणां वैष्णवी मता ॥ ५२ ॥
अरुंधती सतीनां तु रामासु च तिलोत्तमा । चित्ते ब्रह्मकला नाम शक्तिः सर्वशरीरिणाम् ॥ ५३ ॥

मैं मथुरापुरीमें देवकी, पातालमें परमेश्वरी, चित्रकूटमें सीता, विन्ध्यपर्वतपर विन्ध्याधिवासिनी, सह्याद्रिपर एकवीरा, हरिश्चन्द्रतीर्थमें चन्द्रिका, रामतीर्थमें रमणा, यमुनामें मृगावती, करवीर ( कोल्हापुर )में महालक्ष्मी, विनायकतीर्थमें उमादेवी, वैद्यनाथमें अरोगा, महाकालमें महेश्वरी, उष्णतीर्थमें अभया, विन्ध्यकन्दरमें अमृता, माण्डव्यतीर्थमें माण्डवी, माहेश्वरपुरमें स्वाहा, छागलाण्डमें प्रचण्डा, मकरन्दकमें चण्डिका, सोमेश्वरतीर्थमें वरारोहा, प्रभासमें पुष्करावती, सरस्वतीमें देवमाता, समुद्रतटवर्ती महालयतीर्थमें महाभागा, पयोष्णी ( पैनगङ्गा )में पिङ्गलेश्वरी, कृतशौचतीर्थमें सिंहिका, कार्त्तिकेयमें यशस्करी, उत्पलावर्तकमें लोला, शोणसंगममें सुभद्रा, सिद्धपुरमें लक्ष्मी माता, भरताश्रममें अङ्गना, जालन्धरपर्वतपर विश्वमुखी, किष्किन्धापर्वतपर तारा, देवदारुवनमें पुष्टि, काश्मीरमण्डलमें मेधा, हिमगिरिपर भीमादेवी, विश्वेश्वरमें पुष्टि, कपालमोचनमें शुद्धि,

कायावरोहण ( कारावन, गुजरात )में माता, शङ्खोद्धारमें ध्वनि, पिण्डारक क्षेत्रमें धृति, चन्द्रभागा ( चनाव)में काला, अच्छोदमें शिवकारिणी, वेणामें अमृता, बदरीतीर्थमें उर्वशी, उत्तरकुरुमें औषधी, कुशद्वीपमें कुशोदका, हेमकूटपर्वतपर मन्मथा, मुकुटमें सत्यवादिनी, अश्वत्थतीर्थमें वन्दनीया, वैश्रवणालयमें निधि, वेदवदनमें गायत्री, शिव-सन्निधिमें पार्वती, देवलोकमें इन्द्राणी, ब्रह्माके मुखोंमें सरस्वती, सूर्य-बिम्बमें प्रभा, माताओंमें वैष्णवी, सतियोंमें अरुन्धती, सुन्दरी स्त्रियोंमें तिलोत्तमा, चित्तमें ब्रह्मकला और अखिल शरीरधारियोंमें शक्ति-नामसे निवास करती हूँ ।* ॥ ३९–५३ ॥

एतदुद्देशतः प्रोक्तं नामाष्टशतमुत्तमम् । अष्टोत्तरं च तीर्थानां शतमेतदुदाहृतम् ॥ ५४ ॥
यः स्मरेच्छृणुयाद् वापि सर्वपापैः प्रमुच्यते । एषु तीर्थेषु यः कृत्वा स्नानं पश्यति मां नरः ॥ ५५ ॥
सर्वपापविनिर्मुक्तः कल्पं शिवपुरे वसेत् । यस्तु मत्परमं कालं करोत्येतेषु मानवः ॥ ५६ ॥
स भित्त्वा ब्रह्मसदनं पदमभ्येति शांकरम् । नाम्नामष्टशतं यस्तु श्रावयेच्छिवसन्निधौ ॥ ५७ ॥
तृतीयायामथाष्टम्यां बहुपुत्रो भवेन्नरः । गोदाने श्राद्धदाने वा अहन्यहनि वा बुधः ॥ ५८ ॥
देवार्चनविधौ विद्वान् पठन् ब्रह्माधिगच्छति । एवं वदन्ती सा तत्र ददाहात्मानमात्मना ॥ ५९ ॥
स्वायम्भुवोऽपि कालेन दक्षः प्राचेतसोऽभवत् । पार्वती साभवद् देवी शिवदेहार्धधारिणी ॥ ६० ॥
मेनागर्भसमुत्पन्ना भुक्तिमुक्तिफलप्रदा । अरुन्धती जपन्त्येतत् प्राप योगमनुत्तमम् ॥ ६१ ॥
पुरूरवाश्च राजर्षिर्लोके ह्यजेयतामगात् । ययातिः पुत्रलाभं च धनलाभं च भार्गवः ॥ ६२ ॥
तथान्ये देवदैत्याश्च ब्राह्मणाः क्षत्रियास्तथा । वैश्याः शूद्राश्च बहवः सिद्धिमीयुर्यथेप्सिताम् ॥ ६३ ॥
यत्रैतल्लिखितं तिष्ठेत् पूज्यते देवसंनिधौ । न तत्र शोको दौर्गत्यं कदाचिदपि जायते ॥ ६४ ॥

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे पितृवंशान्वये गौरीनामाष्टोत्तरशतकथनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥*

इस प्रकार मैंने अपने एक सौ आठ श्रेष्ठ नामोंका वर्णन कर दिया। इसीके साथ एक सौ आठ तीर्थोंका भी नामोल्लेख हो गया। जो मनुष्य मेरे इन नामोंका स्मरण करेगा अथवा दूसरेके मुखसे श्रवणमात्र कर लेगा, वह अपने निखिल पापोंसे मुक्त हो जायगा। इसी प्रकार जो मनुष्य इन उपर्युक्त तीर्थोंमें स्नान करके मेरा दर्शन करेगा, वह समस्त पापोंसे मुक्त होकर कल्पपर्यन्त शिवपुरमें निवास करेगा तथा जो मानव इन तीर्थोंमें मेरे इस परम अन्तिम समयका स्मरण करेगा, वह ब्रह्माण्ड-का भेदन करके शङ्करजीके परम पद ( शिवलोक )को प्राप्त हो जायगा। जो मनुष्य तृतीया अथवा अष्टमी तिथिके दिन शिवजीके संनिकट जाकर मेरे इन एक सौ आठ नामोंका पाठ करके उन्हे सुनायेगा, वह बहुत-से पुत्रोंवाला हो जायगा। जो विद्वान् गोदान, श्राद्धदान अथवा प्रतिदिन देवार्चनके समय इन नामोंका पाठ करेगा, वह परब्रह्म-पदको प्राप्त हो जायगा। इस प्रकार-की बातें कहती हुई सतीने दक्षके उस यज्ञमण्डपमें अपने-आप ही अपने शरीरको जलाकर भस्म कर दिया। पुनः यथोक्त समय आनेपर ब्रह्माके पुत्र दक्ष प्रचेताओंके पुत्ररूपमें उत्पन्न हुए तथा सतीदेवी शिवजीके अर्धाङ्गमें विराजमान होनेवाली पार्वतीरूपसे मेनाके गर्भसे प्रादुर्भूत हुई, जो भुक्ति ( भोग ) और मुक्ति-रूप फल प्रदान करनेवाली हैं। इन्हीं पूर्वोक्त एक सौ आठ नामोंका जप करनेसे अरुन्धतीने सर्वोत्तम योग-सिद्धि प्राप्त की, राजर्षि पुरूरवा लोकमें अजेय हो गये, ययातिने पुत्र-लाभ किया और भृगुनन्दनको धन-सम्पत्ति-की प्राप्ति हुई। इसी प्रकार अन्यान्य बहुत-से देवता, दैत्य, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंने भी ( इन नामों-

* यह शक्तिपीठ-वर्णन पद्म, देवीभागवत एवं स्कन्दादि अन्य ४ पुराणोंमें भी यों ही है। इनकी पाठशुद्धि तथा स्थानोंके परिचयपर डी० सी० सरकार तथा नरपति ... शोधप्रबन्ध श्रेष्ठ हैं।

के जपसे ) मनोवाञ्छित सिद्धियाँ प्राप्त कीं। जहाँ यह नामावली लिखकर रखी रहती है अथवा किसी देवताके संनिकट रखकर इसकी पूजा होती है, वहाँ कभी शोक और दुर्गतिका प्रवेश नहीं होता ॥ ५४-६४ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें पितरोंके वंश-वर्णन-प्रसङ्गमें गौरीनामाष्टोत्तरशतकथन नामक तेरहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १३ ॥

# चौदहवाँ अध्याय

## अच्छोदाका पितृलोकसे पतन तथा उसकी प्रार्थनापर पितरोंद्वारा उसका पुनरुद्धार

सूत उवाच

लोकाः सोमपथा नाम यत्र मारीचनन्दनाः। वर्तन्ते देवपितरो देवा यान् भावयन्त्यलम् ॥ १ ॥
अग्निष्वात्ता इति ख्याता यज्वानो यत्र संस्थिताः। अच्छोदा नाम तेषां तु मानसी कन्यका नदी ॥ २ ॥
अच्छोदं नाम च सरः पितृभिर्निर्मितं पुरा। अच्छोदा तु तपश्चक्रे दिव्यं वर्षसहस्रकम् ॥ ३ ॥
आजग्मुः पितरस्तुष्टाः किल दातुं च तां वरम्। दिव्यरूपधराः सव दिव्यमाल्यानुलेपनाः ॥ ४ ॥
सर्वे युवानो बलिनः कुसुमायुधसंनिभाः। तन्मध्येऽमावसुं नाम पितरं वीक्ष्य साङ्गना ॥ ५ ॥
वव्रे वरार्थिनी सङ्गं कुसुमायुधपीडिता। योगाद् भ्रष्टा तु सा तेन व्यभिचारेण भामिनी ॥ ६ ॥
धरां तु नास्पृशत् पूर्वं पपाताथ भुवस्तले। तिथावमावसुर्यस्यामिच्छां चक्रे न तां प्रति ॥ ७ ॥
धैर्येण तस्य सा लोकैरमावास्येति विश्रुता। पितृणां वल्लभा तस्मात्तस्यामक्षयकारकम् ॥ ८ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! मरीचिके वंशज देवताओंके पितृगण जहाँ निवास करते हैं, वे लोक सोमपथके नामसे विख्यात हैं। देवतालोग उन पितरोंका ध्यान किया करते हैं। वे यज्ञपरायण पितृगण अग्निष्वात्त नामसे प्रसिद्ध हैं। जहाँ वे रहते हैं, वहीं अच्छोदा* नामकी एक नदी प्रवाहित होती है, जो उन्हीं पितरोंकी मानसी कन्या है। प्राचीनकालमें पितरोंने वहीं एक अच्छोद नामक सरोवरका भी निर्माण किया था। पूर्वकालमें अच्छोदाने एक सहस्र दिव्य वर्षोंतक घोर तपस्या की। उसकी तपस्यासे संतुष्ट होकर पितृगण उसे वर प्रदान करनेके लिये उसके समीप पधारे। वे सब-के-सब पितर दिव्य रूपधारी थे। उनके शरीरपर दिव्य सुगन्धका अनुलेप लगा हुआ था तथा गलेमें दिव्य पुष्प-माला लटक रही थी। वे सभी नवयुवक, बलसम्पन्न एवं कामदेवके सदृश सौन्दर्यशाली थे। उन पितरोंमें अमावसु नामक पितरको देखकर वरकी अभिलाषावाली सुन्दरी अच्छोदा व्यग्र हो उठी और उनके साथ रहनेकी याचना करने लगी। इस मानसिक कदाचारके कारण सुन्दरी अच्छोदा योगसे भ्रष्ट हो गयी और ( उसके परिणामस्वरूप वह स्वर्ग-लोकसे ) भूतलपर गिर पड़ी। उसने पहले कभी पृथ्वीका स्पर्श नहीं किया था। जिस तिथिको अमावसुने अच्छोदाके साथ निवास करनेकी अनिच्छा प्रकट की, वह तिथि उनके धैर्यके प्रभावसे लोगोंद्वारा अमावस्या नामसे प्रसिद्ध हुई। इसी कारण यह तिथि पितरोंको परम प्रिय है। इस तिथिमें किया हुआ श्राद्धादि कार्य अक्षय फलदायक होता है ॥ १-८ ॥

* इस अध्यायके अन्तमें वर्णित अच्छोद सरोवर और अच्छोदा नदी—दोनों कश्मीरमें हैं तथा परम प्रसिद्ध हैं। सरोवरको आजकल वहाँके लोग 'अच्छावल' कहते हैं।

अच्छोदाधोमुखी दीना लज्जिता तपसः क्षयात्। सा पितॄन् प्रार्थयामास पुरे चात्मप्रसिद्धये ॥ ९ ॥
विलप्यमाना पितृभिरिदमुक्ता तपस्विनी। भविष्यमर्थमालोक्य देवकार्यं च ते तदा ॥ १० ॥
इदमूचुर्महाभागाः प्रसादशुभया गिरा। दिवि दिव्यशरीरेण यत्किंचित् क्रियते बुधैः ॥ ११ ॥
तेनैव तत्कर्मफलं भुज्यते वरवर्णिनि। सद्यः फलन्ति कर्माणि देवत्वे प्रेत्य मानुषे ॥ १२ ॥
तस्मात् त्वं पुत्रि तपसः प्राप्स्यसे प्रेत्य तत्फलम्। अष्टाविंशे भविन्नी त्वं द्वापरे मत्स्ययोनिजा ॥ १३ ॥
व्यतिक्रमात् पितृणां त्वं कष्टं कुलमवाप्स्यसि। तस्माद् राज्ञो वसोः कन्या त्वमवश्यं भविष्यसि ॥ १४ ॥
कन्या भूत्वा च लोकान् स्वान् पुनराप्स्यसि दुर्लभान्। पराशरस्य वीर्येण पुत्रमेकमवाप्स्यसि ॥ १५ ॥
द्वीपे तु बदरीप्राये बादरायणमच्युतम्। स वेदमेकं बहुधा विभजिष्यति ते सुतः ॥ १६ ॥
पौरवस्यात्मजौ द्वौ तु समुद्रांशस्य शंतनोः। विचित्रवीर्यस्तनयस्तथा चित्राङ्गदो नृपः ॥ १७ ॥
इमावुत्पाद्य तनयौ क्षेत्रजावस्य धीमतः। प्रौष्ठपद्यष्टकारूपा पितृलोके भविष्यसि ॥ १८ ॥
नाम्ना सत्यवती लोके पितृलोके तथाष्टका। आयुरारोग्यदा नित्यं सर्वकामफलप्रदा ॥ १९ ॥
भविष्यसि परे काले नदीत्वं च गमिष्यसि। पुण्यतोया सरिच्छ्रेष्ठा लोके ह्यच्छोदनामिका ॥ २० ॥
इत्युक्त्वा स गणस्तेषां तत्रैवान्तरधीयत। साप्यवाप च तत् सर्वं फलं यदुदितं पुरा ॥ २१ ॥

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे पितृवंशानुकीर्तनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥*

इस प्रकार ( बहुकालार्जित ) तपस्याके नष्ट हो जानेसे अच्छोदा लज्जित हो गयी। वह अत्यन्त दीन होकर नीचे मुख किये हुए देव-पुरमें पुनः अपनी प्रसिद्धिके लिये पितरोंसे प्रार्थना करने लगी। तब रोती हुई उस तपस्विनीको पितरोंने सान्त्वना दी। वे महाभाग पितर भावी देव-कार्यका विचार कर प्रसन्नता एवं मङ्गलसे परिपूर्ण वाणीद्वारा उससे इस प्रकार बोले—'वरवर्णिनि! बुद्धिमान् लोग स्वर्गलोकमें दिव्य शरीरद्वारा जो कुछ शुभाशुभ कर्म करते हैं, वे उसी शरीरसे उन कर्मोंके फलका उपभोग करते हैं; क्योंकि देव-योनिमें कर्म तुरंत फलदायक हो जाते हैं। उसके विपरीत मानव-योनिमें मृत्युके पश्चात् ( जन्मान्तरमें ) कर्मफल भोगना पड़ता है। इसलिये पुत्रि! तुम मृत्युके पश्चात् जन्मान्तरमें अपनी तपस्याका पूर्ण फल प्राप्त करोगी। अट्ठाईसवें द्वापरमें तुम मत्स्य-योनिमें उत्पन्न होओगी। पितृकुलका व्यतिक्रमण करनेके कारण तुम्हें उस कष्ट-दायक योनिकी प्राप्ति होगी। पुनः उस योनिसे मुक्त होकर तुम राजा ( उपरिचर ) वसुकी कन्या होओगी। कन्या होनेपर तुम अपने दुर्लभ लोकोंको अवश्य प्राप्त करोगी। उस कन्यावस्थामें तुम्हें बदरी ( बेर )के वृक्षोंसे व्याप्त द्वीपमें महर्षि पराशरसे एक ऐसे पुत्रकी प्राप्ति होगी, जो बादरायण नामसे प्रसिद्ध होगा और कभी अपने कर्मसे च्युत न होनेवाले नारायणका अवतार होगा। तुम्हारा वह पुत्र एक ही वेदको अनेक ( चार ) भागोंमें विभक्त करेगा। तदनन्तर समुद्रके अंशसे उत्पन्न हुए पुरुवंशी राजा शंतनुके संयोगसे तुम्हें विचित्रवीर्य एवं महाराज चित्राङ्गदनामक दो पुत्र प्राप्त होंगे। बुद्धिमान् विचित्रवीर्यके दो क्षेत्रज धृतराष्ट्र और पाण्डु पुत्रोंको उत्पन्न कराकर तुम प्रौष्ठपदी ( भाद्रपदकी पूर्णिमा और पौषकृष्णाष्टमी आदि )में अष्टकारूपसे पितृ-लोकमें जन्म ग्रहण करोगी। इस प्रकार मनुष्य-लोकमें सत्यवती और पितृलोकमें आयु एवं आरोग्य प्रदान करनेवाली तथा नित्य सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फलोंकी प्रदात्री अष्टका नामसे तुम्हारी ख्याति होगी। कालान्तरमें तुम मनुष्यलोकमें नदियोमे श्रेष्ठ पुण्यसलिला अच्छोदा नामसे नदी-रूपमें जन्म धारण करोगी।' ऐसा कहकर पितरोंका वह समुदाय वहीं अन्तर्हित हो गया तथा अच्छोदाको अपने उन समस्त कर्मफलोंकी प्राप्ति हुई, जो पहले कहे जा चुके हैं ॥ ९—२१ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमे पितृवंशानुकीर्तन नामक चौदहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १४ ॥

# पंद्रहवाँ अध्याय

## पितृ-वंशका वर्णन, पीवरीका वृत्तान्त तथा श्राद्ध-विधिका कथन

सूत उवाच

विभ्राजा नाम चान्ये तु दिवि सन्ति सुवर्चसः। लोका बर्हिषदो यत्र पितरः सन्ति सुव्रताः ॥ १ ॥
यत्र बर्हिणयुक्तानि विमानानि सहस्रशः। सङ्कल्प्या बर्हिषो यत्र तिष्ठन्ति फलदायिनः ॥ २ ॥
यत्राभ्युदयशालासु मोदन्ते श्राद्धदायिनः। यांश्च देवासुरगणा गन्धर्वाप्सरसां गणाः ॥ ३ ॥
यक्षरक्षोगणाश्चैव यजन्ति दिवि देवताः। पुलस्त्यपुत्राः शतशस्तपोयोगसमन्विताः ॥ ४ ॥
महात्मानो महाभागा भक्तानामभयप्रदाः। एतेषां पीवरी कन्या मानसी दिवि विश्रुता ॥ ५ ॥
योगिनी योगमाता च तपश्चक्रे सुदारुणम्। प्रसन्नो भगवांस्तस्या वरं वव्रे तु सा हरेः ॥ ६ ॥
योगवन्तं सुरूपं च भर्तारं विजितेन्द्रियम्। देहि देव प्रसन्नस्त्वं पतिं मे वदतां वरम् ॥ ७ ॥
उवाच देवो भविता व्यासपुत्रो यदा शुकः। भविता तस्य भार्या त्वं योगाचार्यस्य सुव्रते ॥ ८ ॥
भविष्यति च ते कन्या कृत्वी नाम च योगिनी। पाञ्चालाधिपतेर्देया मानुषस्य त्वया तदा ॥ ९ ॥
जननी ब्रह्मदत्तस्य योगसिद्धा च गौः स्मृता। कृष्णो गौरः प्रभुः शम्भुर्भविष्यन्ति च ते सुताः ॥ १० ॥
महात्मानो महाभागा गमिष्यन्ति परं पदम्। तानुत्पाद्य पुनर्योगात् स्ववशा मोक्षमेष्यसि ॥ ११ ॥
सुमूर्तिमन्तः पितरो वसिष्ठस्य सुताः स्मृताः। नाम्ना तु मानसाः सर्वे सर्वे ते धर्ममूर्तयः ॥ १२ ॥
ज्योतिर्भासिषु लोकेषु ये वसन्ति दिवः परम्। विराजमानाः क्रीडन्ति यत्र ते श्राद्धदायिनः ॥ १३ ॥
सर्वकामसमृद्धेषु विमानेष्वपि पादजाः। किं पुनः श्राद्धदा विप्रा भक्तिमन्तः क्रियान्विताः ॥ १४ ॥
गौर्नाम कन्या येषां तु मानसी दिवि राजते। शुक्रस्य दयिता पत्नी साध्यानां कीर्तिवर्धिनी ॥ १५ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! स्वर्गमें विभ्राज नामक अन्य तेजस्वी लोक भी हैं, जहाँ परम श्रेष्ठ उत्तम व्रतपरायण बर्हिषद् नामक पितर निवास करते हैं। जहाँ मयूरोंसे युक्त हजारों विमान विद्यमान रहते हैं। जहाँ संकल्पके लिये प्रयुक्त हुए बर्हि (कुश) फल देनेके लिये उन्मुख होकर उपस्थित रहते हैं एवं जहाँकी अभ्युदयशालाओंमें पितरोंको श्राद्ध प्रदान करनेवाले लोग आनन्द मनाते रहते हैं। देवताओं और असुरोंके गण, गन्धर्वों और अप्सराओंके समूह तथा यक्षों और राक्षसोंके समुदाय स्वर्गमें उन पितरोंके निमित्त यज्ञका विधान करते रहते हैं। महर्षि पुलस्त्यके सैकड़ों पुत्र, जो तपस्या और योगसे परिपूर्ण, महान् आत्मबलसे सम्पन्न, महान् भाग्यशाली एवं अपने भक्तोंको अभय प्रदान करनेवाले हैं, वहाँ निवास करते हैं। इन पितरोंकी एक मानसी कन्या थी, जो पीवरी नामसे विख्यात थी। उस योगिनी एवं योगमाता पीवरीने अत्यन्त कठोर तप किया। उसकी तपस्यासे भगवान् विष्णु प्रसन्न हो गये (और उसके समक्ष प्रकट हुए)। तब पीवरीने श्रीहरिसे यह वरदान माँगा—'देव! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मुझे योगाभ्यासी, अत्यन्त सौन्दर्यशाली, जितेन्द्रिय, वक्ताओंमें श्रेष्ठ एवं पालन-पोषण करनेवाला पति प्रदान कीजिये।' यह सुनकर भगवान् विष्णुने कहा—'सुव्रते! जब महर्षि व्यासके पुत्र शुक जन्म धारण करेंगे, उस समय तुम उन योगाचार्यकी पत्नी होओगी। उनके संयोगसे तुम्हें एक योगाभ्यास-परायणा कृत्वी नामकी कन्या उत्पन्न होगी। तब तुम उसे मानव-योनिमें उत्पन्न हुए पञ्चाल-नरेश (नीप मतान्तरसे अणुह)को समर्पित कर देना। तुम्हारी वह योगसिद्धा कन्या (कृत्वी) ब्रह्मदत्तकी माता होकर 'गो' नामसे भी प्रसिद्ध होगी। तदनन्तर कृष्ण, गौर, प्रभु और शम्भु नामक तुम्हारे चार पुत्र होंगे, जो महान् आत्मबलसे सम्पन्न एवं महान् भाग्यशाली होंगे और

अन्तमें परमपदको प्राप्त करेंगे। उन पुत्रोंको पैदा करनेके पश्चात् तुम पुनः अपने योगबलसे वर प्राप्त करोगी और अन्तमें मोक्ष प्राप्त कर लोगी।'* महर्षि वसिष्ठके पुत्ररूप ( सुकाली नामक ) पितर, जो सब-के-सब मानस नामसे विख्यात हैं, अत्यन्त सुन्दर स्वरूपवाले तथा धर्मकी मूर्ति हैं। वे सभी स्वर्गलोकसे परे ज्योतिर्भासी लोकोंमें निवास करते हैं। जहाँ श्राद्धकर्ता शूद्र भी सम्पूर्ण कामनाओंकी पूर्ति करनेवाले विमानोंमें विराजमान होकर क्रीडा करते रहते हैं, वहाँ क्रियानिष्ठ एवं भक्तिमान् श्राद्धदाता ब्राह्मणोंकी तो बात ही क्या है। इन पितरोंकी 'गौ' नामकी मानसी कन्या स्वर्गलोकमें विराजमान है, जो शुक्रकी प्रिय पत्नी और साध्योंकी कीर्तिका विस्तार करनेवाली है॥ १–१५॥

मरीचिगर्भा नाम्ना तु लोका मार्तण्डमण्डले। पितरो यत्र तिष्ठन्ति हविष्मन्तोऽङ्गिरःसुताः॥ १६॥
तीर्थश्राद्धप्रदा यान्ति ये च क्षत्रियसत्तमाः। राज्ञां तु पितरस्ते वै स्वर्गमोक्षफलप्रदाः॥ १७॥
एतेषां मानसी कन्या यशोदा लोकविश्रुता। पत्नी ह्यंशुमतः श्रेष्ठा स्नुषा पञ्चजनस्य च॥ १८॥
जनन्यथ दिलीपस्य भगीरथपितामही। लोकाः कामदुघा नाम कामभोगफलप्रदाः॥ १९॥
सुस्वधा नाम पितरो यत्र तिष्ठन्ति सुव्रताः। आज्यपा नाम लोकेषु कर्दमस्य प्रजापतेः॥ २०॥
पुलहाङ्गजदायादा वैश्यास्तान् भावयन्ति च। यत्र श्राद्धकृतः सर्वे पश्यन्ति युगपद्गताः॥ २१॥
मातृभ्रातृपितृस्वसृसखिसम्बन्धिबान्धवान्। अपि जन्मायुतैर्दृष्टाननुभूतान् सहस्रशः॥ २२॥
एतेषां मानसी कन्या विरजा नाम विश्रुता। या पत्नी नहुषस्यासीद् ययातेर्जननी तथा॥ २३॥
एकाष्टकाभवत् पश्चाद् ब्रह्मलोके गता सती। त्रय एते गणाः प्रोक्ताश्चतुर्थं तु वदाम्यतः॥ २४॥
लोकास्तु मानसा नाम ब्रह्माण्डोपरि संस्थिताः। येषां तु मानसी कन्या नर्मदा नाम विश्रुता॥ २५॥
सोमपा नाम पितरो यत्र तिष्ठन्ति शाश्वताः। धर्ममूर्तिधराः सर्वे परतो ब्रह्मणः स्मृताः॥ २६॥
उत्पन्नाः स्वधया ते तु ब्रह्मत्वं प्राप्य योगिनः। कृत्वा सृष्ट्यादिकं सर्वं मानसे साम्प्रतं स्थिताः॥ २७॥
नर्मदा नाम तेषां तु कन्या तोयवहा सरित्। भूतानि या पावयति दक्षिणापथगामिनी॥ २८॥
तेभ्यः सर्वे तु मनवः प्रजाः सर्गेषु निर्मिताः। ज्ञात्वा श्राद्धानि कुर्वन्ति धर्माभावेऽपि सर्वदा॥ २९॥
तेभ्य एव पुनः प्राप्तुं प्रसादाद् योगसंततिम्। पितॄणामादिसर्गे तु श्राद्धमेव विनिर्मितम्॥ ३०॥

इसी प्रकार सूर्यमण्डलमें मरीचिगर्भ नामसे प्रसिद्ध अन्य लोक भी हैं, जहाँ अङ्गिराके पुत्र हविष्मान् नामक पितरके रूपमें निवास करते हैं। ये राजाओं (क्षत्रियों)के पितर हैं, जो स्वर्ग एवं मोक्षरूप फलके प्रदाता हैं। जो श्रेष्ठ क्षत्रिय तीर्थोंमें श्राद्ध प्रदान करते हैं, वे इन लोकोंमें जाते हैं। इन पितरोंकी एक यशोदा नामकी लोक-प्रसिद्ध मानसी कन्या थी, जो पञ्चजनकी श्रेष्ठ पुत्रवधू, अंशुमान्‌की पत्नी, (महाराज) दिलीपकी माता और भगीरथकी पितामही थी।† अभीष्ट कामनाओं एवं भोगोंका फल प्रदान करनेवाले कामदुघ नामक अन्य पितृलोक भी हैं, जहाँ उत्तम व्रतपरायण सुस्वधा नामवाले पितर निवास करते हैं। वे ही पितर प्रजापति कर्दमके

* शुकदेवजीका यह वृत्त ठीक इसी प्रकार वायुपुराण ७३। २६–३१; ७०। ८५-८६; पद्मपुराण १। ९। ३०–४०; हरिवंश १। १८। ५०–५३ आदिमें भी प्राप्त होता है। पर मत्स्यपुराणमें 'कृत्वी'का 'गौ' नाम देखकर शङ्का होती है; क्योंकि १५वें श्लोकमें तुरंत 'गौ' को शुकदेवकी दूसरी पत्नी कहा है। पर शङ्का ठीक नहीं, क्योंकि एक ही नाम कइयोंके होते हैं। पुराणोंमें वायुपुराण अध्याय ९। ३। १४ आदिमें 'यति' राजाकी स्त्री तथा वाल्मीकिरामायण ७। ६०।, महाभारतआदिमें पुलस्त्य पत्नीका भी नाम 'गौ' आता है।

† यह विवरण वायुपुराण ७२, ब्रह्माण्ड ३। १०, हरिवंश १। ६, ब्रह्मपुराण ३४, पद्म० १। ९, लिङ्गपुराण १। ६ में भी है। यहाँ सूर्यवंशी दिलीप प्रथम इष्ट हैं। पुराणानुसार सूर्यवंशमें दो दिलीप हुए हैं। एकके पुत्र थे भगीरथ और दूसरेके रघुवंशप्रसिद्ध रघु हुए हैं।

लोकोंमें आज्यप नामसे प्रख्यात हैं। महर्षि पुलहके अंशसे उत्पन्न हुए वैश्यगण उनकी भावना ( पूजा ) करते हैं। श्राद्धकर्ता सभी वैश्यगण इन लोकोंमें पहुँचकर दस हजार जन्मान्तरोंमें देखे और अनुभव किये हुए भी अपने हजारों माता, भाई, पिता, बहन, मित्र, सम्बन्धी और बान्धवोंको एक साथ देखते हैं। इन पितरोंकी मानसी कन्या विरजा नामसे विख्यात थी, जो राजा नहुषकी पत्नी और ययातिकी माता थी। बादमें वह पतिपरायणा विरजा ब्रह्मलोकको चली गयी और वहाँ एकाष्टका नामसे प्रसिद्ध हुई। इस प्रकार मैंने तीन पितृ-गणोंका वर्णन कर दिया। अब इसके बाद चौथे गणका वर्णन कर रहा हूँ। ब्रह्माण्डके ऊपर मानस नामक लोक विद्यमान हैं, उनमें अविनाशी 'सोमप' नामक पितर निवास करते हैं ( ये ब्राह्मणोंके पितर हैं )। उनकी मानसी कन्या नर्मदा नामसे प्रसिद्ध है। वे सभी पितर धर्मकी-सी मूर्ति धारण करनेवाले तथा ब्रह्मासे भी परे बतलाये गये हैं। स्वधासे उनकी उत्पत्ति हुई है। वे सभी योगाभ्यासी पितर ब्रह्मत्वको प्राप्त करके सृष्टि आदि समस्त कार्योंसे निवृत्त हो इस समय मानस लोकमें विद्यमान हैं। उनकी वह नर्मदा नाम्नी कन्या (भारतके) दक्षिणापथमें आकर जल प्रवाहित करनेवाली नदी हुई है, जो समस्त प्राणियोंको पवित्र कर रही है। इन्हीं पितरोंकी परम्परासे मनुगण ( अपने-अपने कार्यकालमें ) सृष्टिके प्रारम्भमें प्रजाओंका निर्माण करते हैं। इस रहस्यको जानकर लोग धर्मका अभाव हो जानेपर भी सर्वदा श्राद्ध करते रहते हैं। इन्हीं पितरोंकी कृपासे पुनः इन्हींके द्वारा योग-परम्पराको प्राप्त करनेके लिये सृष्टिके प्रारम्भमें पितरोंके लिये श्राद्धका ही निर्माण किया गया था ॥ १६–३० ॥

सर्वेषां राजतं पात्रमथवा रजतान्वितम्। दत्तं स्वधा पुरोधाय पितॄन् प्रीणाति सर्वदा ॥ ३१ ॥
अग्नीषोमयमानां तु कार्यमाप्यायनं बुधः। अग्न्यभावेऽपि विप्रस्य पाणावपि जलेऽथवा ॥ ३२ ॥
अजाकर्णेऽश्वकर्णे वा गोष्ठे वा सलिलान्तिके। पितॄणामम्बरं स्थानं दक्षिणा दिक् प्रशस्यते ॥ ३३ ॥
प्राचीनावीतमुदकं तिलाः सव्याङ्गमेव च। दर्भा मांसं च पाठीनं गोक्षीरं मधुरा रसाः ॥ ३४ ॥
खड्गलोहामिषमधुकुशश्यामाकशालयः। यवनीवारमुद्गेक्षुशुक्लपुष्पघृतानि च ॥ ३५ ॥
वल्लभानि प्रशस्तानि पितॄणामिह सर्वदा। द्वेष्याणि सम्प्रवक्ष्यामि श्राद्धे वर्ज्यानि यानि तु ॥ ३६ ॥
मसूरशणनिष्पावराजमाषकुसुम्भिकाः। पद्मबिल्वार्कधत्तूरपारिभद्राटरूषकाः ॥ ३७ ॥
न देयाः पितृकार्येषु पयश्चाजाविकं तथा। कोद्रवोदारचणकाः कपित्थं मधुकातसी ॥ ३८ ॥
एतान्यपि न देयानि पितृभ्यः प्रियमिच्छता। पितॄन् प्रीणाति यो भक्त्या ते पुनः प्रीणयन्ति तम् ॥ ३९ ॥
यच्छन्ति पितरः पुष्टिं स्वर्गारोग्यं प्रजाफलम्। देवकार्यादपि पुनः पितृकार्यं विशिष्यते ॥ ४० ॥
देवतानां च पितरः पूर्वमाप्यायनं स्मृतम्। शीघ्रप्रसादास्त्वक्रोधा निःसङ्गाः स्थिरसौहृदाः ॥ ४१ ॥
शान्तात्मानः शौचपराः सततं प्रियवादिनः। भक्तानुरक्ताः सुखदाः पितरः पूर्वदेवताः ॥ ४२ ॥
हविष्मतामाधिपत्ये श्राद्धदेवः स्मृतो रविः।
एतद् वः सर्वमाख्यातं पितृवंशानुकीर्तनम्। पुण्यं पवित्रमायुष्यं कीर्तनीयं सदा नृभिः ॥ ४३ ॥

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे पितृवंशानुकीर्तनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥*

इन सभी पितरोंके निमित्त चाँदीका अथवा चाँदीमिश्रित अन्य धातुका भी पात्र आदि स्वधाका उच्चारण करके ( ब्राह्मणको ) दान कर दिया जाय तो वह सर्वदा पितरोंको प्रसन्न कर देता है। विद्वान् ( श्राद्धकर्ता )को चाहिये कि ( श्राद्धकालमें प्रथमतः ) अग्नि, सोम और यमका तर्पण करके उन्हें तृप्त करे (और पितरोंके उद्देश्यसे दिया गया अन्न आदि अग्निमें छोड़ दे )। अग्निके अभावमें ब्राह्मणके हाथपर, जलमें, अजाकर्णपर, अश्वकर्णपर, गोशालामें अथवा जलके निकट डाल दे। पितरोंका स्थान आकाश बतलाया

जाता है । उनके लिये दक्षिण दिशा विशेषरूपसे प्रशस्त मानी गयी है । प्राचीनावीत ( अपसव्य ) होकर दिया गया जल, तिल, सव्याङ्ग ( शरीरका दाहिना भाग ), डाभ, फलका गूदा, गो-दुग्ध, मधुर रस, खड्ग, लोह, मधु, कुश, सावाँ, अगहनीका चावल, यव, तिन्नीका चावल, मूँग, गन्ना, श्वेत पुष्प और घृत—ये पदार्थ पितरोंके लिये सर्वदा प्रिय और प्रशस्त कहे गये हैं । अब जो श्राद्धकार्यमें वर्जित तथा पितरोंके लिये अप्रिय हैं, उन पदार्थोंका वर्णन कर रहा हूँ—मसूर, शण ( पेटुआका बीज ), सेम, काला उड़द, कुसुमका पुष्प, कमल, वेल या बिल्वपत्र, मदार, धतूरा, पारिभद्र ( नीम, देवदारुका पुष्प या पत्ता ), अड़ूसेका फूल तथा भेड़ और बकरीका दूध । इन्हें पितृ-कार्योंमें नहीं देना चाहिये । पितरोंसे कल्याणप्राप्तिकी इच्छावाले पुरुषको श्राद्धकार्यमें कोदो, उदार ( गुग्गुलके वृक्षका पुष्प अथवा पत्ता ), चना, कैथ, महुआ और अलसी ( तीसी )—इन पदार्थोंका भी उपयोग नहीं करना चाहिये । जो भक्तिपूर्वक ( श्राद्धादिद्वारा ) पितरोंको प्रसन्न करता है, उसे पितर भी बदलेमें हर्षित कर देते हैं । वे पितृगण प्रसन्न होकर समृद्धि, स्वर्ग, आरोग्य और संतानरूपी फल प्रदान करते हैं । इसीलिये देवकार्यसे भी बढ़कर पितृकार्यकी विशेषता मानी जाती है तथा देवताओंसे पूर्व ही पितरोंके तर्पणकी विधि बतलायी गयी है । ये पितर शीघ्र ही कृपा करनेवाले, क्रोधरहित, शस्त्रविहीन, दृढ़ मैत्रीयुक्त, शान्तात्मा, पवित्रतापरायण, सदा प्रियवादी, भक्तोंके प्रति अनुरक्त और सुखदायक ( गृहस्थोंके ) प्रथम देवता हैं । हविष्यान्नका भक्षण करनेवाले इन पितरोंके अधिनायक-पदपर श्राद्धके देवतारूपमें सूर्य अधिष्ठित माने गये हैं । इस प्रकार यह पितृ-वंशका वर्णन मैंने तुमलोगोंको पूर्णरूपसे बतला दिया । यह पुण्य-प्रदाता, परम पवित्र और आयुकी वृद्धि करनेवाला है, मनुष्योंको सदा इसका पठन-पाठन करना चाहिये ॥ ३१—४३ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें पितृवंशानुकीर्तन नामक पंद्रहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १५ ॥

# सोलहवाँ अध्याय

## श्राद्धोंके विविध भेद, उनके करनेका समय तथा श्राद्धमें निमन्त्रित करनेयोग्य ब्राह्मणके लक्षण

सूत उवाच

**श्रुत्वैतत् सर्वमखिलं मनुः पप्रच्छ केशवम् । श्राद्धे कालं च विविधं श्राद्धभेदं तथैव च ॥ १ ॥**
**श्राद्धेषु भोजनीया ये ये च वर्ज्या द्विजातयः । कस्मिन् वासरभागे वा पितृभ्यः श्राद्धमाचरेत् ॥ २ ॥**
**कस्मिन् दत्तं कथं याति श्राद्धं तु मधुसूदन । विधिना केन कर्तव्यं कथं प्रीणाति तत् पितॄन् ॥ ३ ॥**

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! यह सारा वृत्तान्त पूर्णरूपसे सुनकर मनुने मत्स्यभगवान्‌से पूछा—'मधुसूदन ! श्राद्धके लिये कौन-सा काल उत्तम है ? श्राद्धके विभिन्न भेद कौन-से हैं ? श्राद्धोंमें कैसे ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये ? तथा कैसे ब्राह्मण वर्जित हैं ? दिनके किस भागमें पितरोंके लिये श्राद्ध करना उचित है ? कैसे पात्रको श्राद्धीय वस्तु प्रदान करनी चाहिये ? तथा उसका फल पितरोंको कैसे प्राप्त होता है ? श्राद्ध किस विधिसे करना उपयुक्त है ? तथा वह श्राद्ध किस प्रकार पितरोंको प्रसन्न करता है ( ये सारी बातें मुझे बतलानेकी कृपा करें ) ॥ १—३ ॥

मत्स्य उवाच

कुर्यादहरहः श्राद्धमन्नाद्येनोदकेन वा। पयोमूलफलैर्वापि पितृभ्यः प्रीतिमावहन्॥ ४॥
नित्यं नैमित्तिकं काम्यं त्रिविधं श्राद्धमुच्यते। नित्यं तावत् प्रवक्ष्यामि अर्घ्यावाहनवर्जितम्॥ ५॥
अदैवं तद् विजानीयात् पार्वणं पर्वसु स्मृतम्। पार्वणं त्रिविधं प्रोक्तं शृणु तावन्महीपते॥ ६॥
पार्वणे ये नियोज्यास्तु ताञ्शृणुष्व नराधिप। पञ्चाग्निः स्नातकश्चैव त्रिसुपर्णः षडङ्गवित्॥ ७॥
श्रोत्रियः श्रोत्रियसुतो विधिवाक्यविशारदः। सर्वज्ञो वेदविन्मन्त्री ज्ञातवंशः कुलान्वितः॥ ८॥
पुराणवेत्ता धर्मज्ञः स्वाध्यायजपतत्परः। शिवभक्तः पितृपरः सूर्यभक्तोऽथ वैष्णवः॥ ९॥
ब्रह्मण्यो योगविच्छान्तो विजितात्मा च शीलवान्। भोजयेच्चापि दौहित्रं यत्नतः स्वसुहृद् गुरून्॥ १०॥
विट्पतिं मातुलं बन्धुमृत्विगाचार्यसोमपान्। यश्च व्याकुरुते वाक्यं यश्च मीमांसतेऽध्वरम्॥ ११॥
सामस्वरविधिज्ञश्च पङ्क्तिपावनपावनः। सामगो ब्रह्मचारी च वेदयुक्तोऽथ ब्रह्मवित्॥ १२॥
यत्र ते भुञ्जते श्राद्धे तदेव परमार्थवत्। एते भोज्याः प्रयत्नेन वर्जनीयान् निबोध मे॥ १३॥
पतितोऽभिशस्तः क्लीबः पिशुनव्यङ्गरोगिणः। कुनखी श्यावदन्तश्च कुण्डगोलाश्वपालकाः॥ १४॥
परिवित्तिर्नियुक्तात्मा प्रमत्तोन्मत्तदारुणाः। वैडालो बकवृत्तिश्च दम्भी देवलकादयः॥ १५॥
कृतघ्नान् नास्तिकांस्तद्वन्म्लेच्छदेशनिवासिनः। त्रिशङ्कुर्बर्बरद्राववीतद्रविडकोङ्कणान्॥ १६॥
वर्जयेल्लिङ्गिनः सर्वाञ्श्राद्धकाले विशेषतः। पूर्वेद्युरपरेद्युर्वा विनीतात्मा निमन्त्रयेत्॥ १७॥
निमन्त्रितान् हि पितर उपतिष्ठन्ति तान् द्विजान्। वायुभूतानुगच्छन्ति तथासीनानुपासते॥ १८॥

मत्स्यभगवान् कहने लगे—राजर्षे! प्रतिदिन पितरोंके प्रति श्रद्धा रखते हुए अन्न आदिसे या केवल जलसे अथवा दूध या फल-मूलसे भी श्राद्धकर्म करना चाहिये। श्राद्ध नित्य, नैमित्तिक और काम्यरूपसे तीन प्रकारका बतलाया गया है। इनमें मैं पहले नित्य-श्राद्धका वर्णन कर रहा हूँ, जो अर्घ्य और आवाहनसे रहित होता है। इसे 'अदैव' मानना चाहिये। पर्वोंपर सम्पन्न होनेवाले (त्रिपुरुष) श्राद्धको 'पार्वण' कहते हैं। महीपते! यह पार्वण श्राद्ध तीन प्रकारका बतलाया जाता है, उन्हें सुनो। नरेश्वर! पार्वण श्राद्धमें जिन्हें नियुक्त करना चाहिये, उन्हें बतलाता हूँ, सुनो। जो पञ्चाग्नि विद्याका ज्ञाता अथवा गार्हपत्य आदि पाँच अग्नियोंका उपासक, स्नातक, त्रिसुपर्ण (ऋग्वेदके एक अंशका अध्येता*), वेदके छहों अङ्गोंका ज्ञाता, श्रोत्रिय, श्रोत्रियका पुत्र, धर्मशास्त्रोंका पारगामी विद्वान्, सर्वज्ञ, वेदवेत्ता, उचित मन्त्रणा करनेवाला, जाने हुए वंशमें उत्पन्न, कुलीन, पुराणोंका ज्ञाता, धर्मज्ञ, स्वाध्याय एवं जपमें तत्पर रहनेवाला, शिवभक्त, पितृपरायण, सूर्यभक्त, वैष्णव, ब्राह्मणभक्त, योगवेत्ता, शान्त, आत्माको वशीभूत कर लेनेवाला एवं शीलवान् हो (ऐसे ब्राह्मणको श्राद्धकर्ममें नियुक्त करना चाहिये)। (अब इस पुनीत श्राद्धमें जिन्हें भोजन कराना चाहिये, उनके विषयमें बतला रहा हूँ, सुनो।) पुत्रीका पुत्र (नाती), अपना मित्र, गुरु (अथवा गुरुजन), कुलपति (आचार्य), मामा, भाई-बन्धु, ऋत्विक्, आचार्य (विद्यागुरु) और सोमपायी—इन्हें प्रयत्नपूर्वक बुलाकर श्राद्धमें भोजन कराना चाहिये। साथ ही जो विधि-वाक्योंके व्याख्याता, यज्ञके मीमांसक, सामवेदके स्वर और (उसके उच्चारणकी) विधिके ज्ञाता, पङ्क्तिपावनोंमें† भी परम पवित्र, सामवेदके पारगामी विद्वान्, ब्रह्मचारी, वेदज्ञ और ब्रह्मज्ञानी हैं—ये सभी श्राद्धमें चेष्टापूर्वक भोजन कराने योग्य हैं। ऐसे ब्राह्मण जिस श्राद्धमें भोजन करते हैं, वही श्राद्ध परमार्थसम्पन्न

* ऋग्वेद १०। ११४ की ३-५ ऋचाएँ 'त्रिसुपर्ण' संज्ञक हैं। उसके विशेषज्ञको भी 'त्रिसुपर्ण' कहा जाता है। यहाँ वही इष्ट है।

† विद्या, तप आदिसे विशिष्ट ब्राह्मण, जिनसे श्राद्धमें नियन्त्रित ब्राह्मणोंकी पङ्क्ति पवित्र हो जाती है।

माना जाता है। अब जो ब्राह्मण श्राद्धमें वर्जित हैं, उन्हे मै बतला रहा हूँ, सुनो। पतित (जो अपने वर्णाश्रम-धर्मसे च्युत हो गया हो), अभिशस्त (कलङ्कित, बदनाम), नपुंसक, चुगलखोर, विकृत अङ्गोंवाला, रोगी, बुरे नखोंवाला, काले दाँतोंसे युक्त, कुण्ड (सधवाका जारज पुत्र), गोलक (विधवाका जारज पुत्र), कुत्तोंका पालक, परिवित्ति*, नौकर अथवा जिसका मन किसी अन्य श्राद्धमें लगा हो, पागल, उन्मादी, क्रूर, बिडाल एवं बगुलेकी तरह चोरीसे जीविकोपार्जन करनेवाला, दम्भी तथा मन्दिरमें 'देव-पूजा करके वेतनभोगी (पुजारी)—ये सभी श्राद्धभोजमें निषिद्ध माने गये हैं। इसी प्रकार कृतघ्न (किये हुए उपकारको न माननेवाला), नास्तिक (परलोकपर विश्वास न करनेवाला), त्रिशङ्कु (कीकटसे दक्षिण और महानदीसे उत्तरका भाग), बर्बर (भारतकी पश्चिम सीमापरका प्रदेश), द्राव, वीत, द्रविड और कोंकण आदि देशोंके निवासी तथा संन्यासी—इन सभीका विशेषरूपसे श्राद्धकार्यमें परित्याग कर देना चाहिये। श्राद्ध-दिवसके एक या दो दिन पहले ही श्राद्धकर्ता विनीतभावसे ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करे; क्योंकि पितरलोग आकर उन निमन्त्रित ब्राह्मणोंके निकट उपस्थित होते हैं। वे वायुरूप होकर उन ब्राह्मणोंके पीछे-पीछे चलते हैं तथा उनके बैठ जानेपर पितर भी उन्हींके समीप बैठ जाते हैं ॥ ४—१८ ॥

दक्षिणं जानुमालभ्य त्वं मया तु निमन्त्रितः। एवं निमन्त्र्य नियमं श्रावयेत् पितृबान्धवान् ॥ १९ ॥
अक्रोधनैः शौचपरैः सततं ब्रह्मचारिभिः। भवितव्यं भवद्भिश्च मया च श्राद्धकारिणा ॥ २० ॥
पितृयज्ञं विनिर्वर्त्य तर्पणाख्यं तु योऽग्निमान्। पिण्डान्वाहार्यकं कुर्याच्छ्राद्धमिन्दुक्षये सदा ॥ २१ ॥
गोमयेनोपलिप्ते तु दक्षिणप्रवणे स्थले। श्राद्धं समाचरेद् भक्त्या गोष्ठे वा जलसंनिधौ ॥ २२ ॥
अग्निमान् निर्वपेत् पित्र्यं चरुं च समसुष्टिभिः। पितृभ्यो निर्वपामीति सर्वं दक्षिणतो न्यसेत् ॥ २३ ॥
अभिघार्य ततः कुर्यान्निर्वापत्रयमग्रतः। तेऽपि तस्यायताः कार्याश्चतुरङ्गुलविस्तृताः ॥ २४ ॥
दर्वीत्रयं तु कुर्वीत खादिरं रजतान्वितम्। रत्निमात्रं परिश्लक्ष्णं हस्ताकाराग्रमुत्तमम् ॥ २५ ॥
उदपात्रं च कांस्यं च मेक्षणं च समित् कुशान्। तिलाः पात्राणि सद्वासो गन्धधूपानुलेपनम् ॥ २६ ॥
आहरेदपसव्यं तु सर्वं दक्षिणतः शनैः। एवमासाद्य तत् सर्वं भवनस्याग्रतो भुवि ॥ २७ ॥
गोमयेनोपलिप्तायां गोमूत्रेण तु मण्डलम्। अक्षताभिः सपुष्पाभिस्तदभ्यर्च्यापसव्यवत् ॥ २८ ॥
विप्राणां क्षालयेत् पादावभिनन्द्य पुनः पुनः। आसनेषूपक्लृप्तेषु दर्भवत्सु विधानवत् ॥ २९ ॥
उपस्पृष्टोदकान् विप्रानुपवेश्यानुमन्त्रयेत्।

उस समय श्राद्धकर्ता ब्राह्मणके दाहिने घुटनेको स्पर्शकर (उससे) इस प्रकार प्रार्थना करे—'मैं आपको निमन्त्रित कर रहा हूँ।' इस प्रकार निमन्त्रण देकर अपने पिताके भाई-बन्धुओंको श्राद्ध-नियम बतलाते हुए यों कहे—'(मैं अमुक दिन पितृ-श्राद्ध करूँगा, अतः उस दिन) आपलोगोंको निरन्तर क्रोधरहित, शौचाचार-परायण तथा ब्रह्मचर्य-व्रतमें स्थित रहना चाहिये। मुझ श्राद्धकर्ताद्वारा भी इन नियमोंका पालन किया जायगा।' इस प्रकार पितृ-यज्ञसे निवृत्त होकर तर्पण-कर्म करना चाहिये। श्राद्धकर्ताको 'पिण्डान्वाहार्यक' नामक श्राद्ध सदा अमावास्या तिथिमें करना चाहिये। गोशालामें या किसी जलाशयके निकट दक्षिण दिशाकी ओर ढालू स्थानको गोबरसे लीपकर वहीं भक्तिपूर्वक श्राद्धकर्म करना चाहिये। श्राद्धकर्ता पितरोंके निमित्त बनी हुई चरुको समसंख्यक (२, ४, ६) मुट्ठियोंद्वारा 'मैं पितरोंको चरु प्रदान कर रहा हूँ'—यों कहकर पितरोंको चरु प्रदान करे और शेष सबको अपनी दाहिनी ओर रख ले। तत्पश्चात् अग्निमें घीकी धारा छोड़कर चरुको तीन भागोंमें विभक्त करके आगेकी ओर रखे। उन भागोंको भी चार अङ्गुलके विस्तारका

* बड़े भाईके अविवाहित रहते हुए जो छोटा भाई अपना विवाह कर लेता है, उसे 'परिवित्ति' कहा जाता है।

लम्बा बना देना चाहिये । पुनः तीन दर्वी ( करछुलें, जिनसे हवनीय पदार्थ अग्निमें छोड़ जाते हैं ) रखनी चाहिये, जो खैर या चाँदीमिश्रित अन्य धातुकी बनी हो, जिनका परिमाण मुट्ठी बँधे हुए हाथके बराबर हो, जो अत्यन्त चिकनी, उत्तम एवं हथेलीकी-सी बनी हुई सुडौल हो । इसी प्रकार अपसव्य होकर ( जनेऊको बाँयें कंधेसे दाहिने कंधेपर रखकर ) पीतलका जलपात्र, मेक्षण ( प्रणीतापात्र ), समिधा, कुश, तिल, अन्यान्य पात्र, शुद्ध नवीन वस्त्र, गन्ध, धूप, चन्दन आदिको लाकर सबको धीरेसे अपनी दाहिनी ओर रख ले । इस प्रकार सभी आवश्यक सामग्रियोंको एकत्र करके घरके दरवाजेपर गोबरसे लिपी हुई भूमिपर अपसव्य होकर गोमूत्रसे मण्डलकी रचना करे और पुष्पसहित अक्षतोंद्वारा उसकी भी पूजा करे । तत्पश्चात् बारंबार ब्राह्मणोंका अभिनन्दन करते हुए उनका पाद-प्रक्षालन करे । पुनः उन ब्राह्मणोंको कुशनिर्मित आसनोंपर बैठाकर विधिपूर्वक उन्हें आचमन या जलपान करावे । तदनन्तर उनसे श्राद्धके लिये सम्मति ले ॥ १९—२९½ ॥

द्वौ दैवे पितृकृत्ये त्रीनेकैकमुभयत्र च ॥ ३० ॥
भोजयेदीश्वरोऽपीह न कुर्याद् विस्तरं बुधः । दैवपूर्वं नियोज्याथ विप्रानर्घ्यादिना बुधः ॥ ३१ ॥
अग्नौ कुर्यादनुज्ञातो विप्रैर्विप्रो यथाविधि । स्वगृह्योक्तविधानेन कांस्ये कृत्वा चरुं ततः ॥ ३२ ॥
अग्नीषोमयमानां तु कुर्यादाप्यायनं बुधः । दक्षिणाग्नौ प्रणीते वा य एकाग्निर्द्विजोत्तमः ॥ ३३ ॥
यज्ञोपवीती निर्वर्त्य ततः पर्युक्षणादिकम् । प्राचीनावीतिना कार्यमतः सर्वं विजानता ॥ ३४ ॥
षट् च तस्माद्धविःशेषात् पिण्डान् कृत्वा ततोदकम् । दद्यादुदकपात्रैस्तु सतिलं सव्यपाणिना ॥ ३५ ॥
जान्वाच्य सव्यं यत्नेन दर्भयुक्तो विमत्सरः । विधाय लेखां यत्नेन निर्वापेष्ववनेजनम् ॥ ३६ ॥
दक्षिणाभिमुखः कुर्यात् करे दर्वीं निधाय वै । निधाय पिण्डमेकैकं सर्वदर्भेष्वनुक्रमात् ॥ ३७ ॥
निनयेदथ दर्भेषु नामगोत्रानुकीर्तनैः । तेषु दर्भेषु तं हस्तं विमृज्याल्लेपभागिनाम् ॥ ३८ ॥
तथैव च ततः कुर्यात् पुनः प्रत्यवनेजनम् । षडृतून् नमस्कृत्य गन्धधूपार्हणादिभिः ॥ ३९ ॥
एवमावाह्य तत् सर्वं वेदमन्त्रैर्यथोदितैः । एकाग्नेरेक एव स्यान्निर्वापो दर्विका तथा ॥ ४० ॥
ततः कृत्वान्तरे दद्यात् पत्नीभ्योऽन्नं कुशेषु सः । तद्वत् पिण्डादिके कुर्यादावाहनविसर्जनम् ॥ ४१ ॥
ततो गृहीत्वा पिण्डेभ्यो मात्राः सर्वाः क्रमेण तु । तानेव विप्रान् प्रथमं प्राशयेद् यत्नतो नरः ॥ ४२ ॥

बुद्धिमान् पुरुषको देवकार्यमें दो एवं पितृकार्यमें तीन अथवा दोनों कार्योंमें एक-एक ही ब्राह्मणको भोजन कराना चाहिये । धन-सम्पत्तिसे सम्पन्न होनेपर भी पार्वण श्राद्धमें विस्तार करना उचित नहीं है । पहले विश्वेदेवको अर्घ्य आदि समर्पित करके तत्पश्चात् ब्राह्मणोंकी अर्घ्य आदि द्वारा पूजा करे । पुनः श्राद्धकर्ता ब्राह्मणको चाहिये कि वह उन ब्राह्मणोंकी आज्ञा लेकर चरुको काँसेके बर्तनमें रखकर अपने गृह्योक्तके विधानानुसार विधिपूर्वक अग्निमें हवन करे, फिर बुद्धिमान् पुरुषको अग्नि, सोम और यमका तर्पण करना चाहिये । इस प्रकार एक अग्निका उपासक यज्ञोपवीतधारी श्रेष्ठ ब्राह्मण 'दक्षिण' नामक अग्निके प्रज्वलित हो जानेपर श्राद्धकर्म सम्पन्न करे । तदनन्तर पर्युक्षण आदिसे निवृत्त होकर उपर्युक्त सारी विधियोंको समझ ले और प्राचीनावीती ( अपसव्य ) होकर सारा कार्य सम्पन्न करे । फिर उस बचे हुए हविसे छः पिण्ड बनाकर उनपर बायें हाथसे अपने जलपात्रद्वारा तिलसहित जल गिराये और ईर्ष्या-द्वेषरहित होकर हाथमें कुश लेकर बायाँ घुटना मोड़कर प्रयत्नपूर्वक ( वेदीपर ) रेखा बनाये ( एवं रेखाओंपर कुश बिछाये । ) तथा दक्षिण दिशाकी ओर मुख करके पिण्ड रखनेके लिये बिछाये गये कुशोंपर अवनेजन ( श्राद्ध-वेदीपर बिछे हुए कुशोंपर जल सींचनेका संस्कार ) करे । फिर हाथमें करछुल

लेकर तथा क्रमशः एक-एक पिण्ड उठाकर पितरोंके गोत्र एवं नामोंका उच्चारण करके उन सभी बिछाये गये कुशोंपर एक-एक करके रख दे और लेपभागी पितरोंकी तृप्तिके लिये उन कुशोंके मूलभागमें अपने उस हाथको पोंछ दे। तत्पश्चात् पुनः पूर्ववत् उन पिण्डोंपर प्रत्यवनेजन जल छोड़े। तदुपरान्त गन्ध, धूप आदि पूजन-सामग्रियोंद्वारा उन छहों पितरोंका पूजन करके उन्हें नमस्कार करे और फिर यथोक्त वेद-मन्त्रोंद्वारा उनका आवाहन करे। एकाग्निक ब्राह्मणके लिये एक ही निर्वाप और एक ही करछुलका विधान है। यह सब सम्पन्न कर लेनेके पश्चात् श्राद्धकर्ता कुशोंपर पितरोंकी पत्नियोंके लिये अन्न प्रदान करे और पिण्डोंपर आवाहन एवं विसर्जन आदि क्रिया पूर्ववत् करे। तत्पश्चात् श्राद्धकर्ता उन सभी पिण्डोंमेंसे थोड़ा-थोड़ा अंश लेकर उन्हें सर्वप्रथम प्रयत्नपूर्वक उन निमन्त्रित ब्राह्मणोंको खिलावे ॥ ३०—४२ ॥

यस्मादन्नादृता मात्रा भक्षयन्ति द्विजातयः। अन्वाहार्यकमित्युक्तं तस्मात् तच्चन्द्रसंक्षये ॥ ४३ ॥
पूर्वं दत्त्वा तु तद्धस्ते सपवित्रं तिलोदकम्। तत्पिण्डाग्रं प्रयच्छेत स्वधैषामस्त्विति ब्रुवन् ॥ ४४ ॥
वर्णयन् भोजयेदन्नं मिष्टं पूतं च सर्वदा। वर्जयेत् क्रोधपरतां स्मरन् नारायणं हरिम् ॥ ४५ ॥
तृप्तान् ज्ञात्वा ततः कुर्याद् विकिरन् सार्ववर्णिकम्। सोदकं चान्नमुद्धृत्य सलिलं प्रक्षिपेद् भुवि ॥ ४६ ॥
आचान्तेषु पुनर्दद्याज्जलपुष्पाक्षतोदकम्। स्वस्तिवाचनकं सर्वं पिण्डोपरि समाहरेत् ॥ ४७ ॥
देवाद्यन्तं प्रकुर्वीत श्राद्धनाशोऽन्यथा भवेत्। विसृज्य ब्राह्मणांस्तद्वत् तेषां कृत्वा प्रदक्षिणम् ॥ ४८ ॥
दक्षिणां दिशमाकाङ्क्षन् पितॄन् याचेत मानवः। दातारो नोऽभिवर्धन्तां वेदाः संततिरेव च ॥ ४९ ॥
श्रद्धा च नो मा व्यगमद् बहु देयं च नोऽस्त्विति। अन्नं च नो बहु भवेदतिथींश्च लभेमहि ॥ ५० ॥
याचितारश्च नः सन्तु मा च याचिष्म कंचन। एतदस्त्विति तत्प्रोक्तमन्वाहार्यं तु पार्वणम् ॥ ५१ ॥
यथेन्दुसंक्षये तद्वदन्यत्रापि निगद्यते। पिण्डांस्तु गोऽजविप्रेभ्यो दद्यादग्नौ जलेऽपि वा ॥ ५२ ॥
विप्राग्रतो वा विकिरेद् वयोभिरभिवाशयेत्। पत्नी तु मध्यमं पिण्डं प्राशयेद् विनयान्विता ॥ ५३ ॥
आधत्त पितरो गर्भमत्र संतानवर्धनम्। तावदुच्छेषणं तिष्ठेद् यावद् विप्रा विसर्जिताः ॥ ५४ ॥
वैश्वदेवं ततः कुर्यान्निवृत्ते पितृकर्मणि। इष्टैः सह ततः शान्तो भुञ्जीत पितृसेवितम् ॥ ५५ ॥

चूँकि पिण्डान्नसे निकाले गये अंशको अमावास्याके दिन ब्राह्मणलोग खाते हैं, इसीलिये इस श्राद्धको 'अन्वाहार्यक' कहा जाता है। श्राद्धकर्ता पहले पवित्रकसहित तिल और जलको उस ब्राह्मणके हाथमें देकर तत्पश्चात् पिण्डांशको समर्पित करे ओर 'यह हमारे पितरोंके लिये स्वधा हो' यों कहते हुए भोजन कराये। उस ब्राह्मणको चाहिये कि वह क्रोधका परित्याग करके भगवान् नारायणका स्मरण करते हुए 'यह बहुत मीठा है,' 'यह परम पवित्र है'—यों कहते हुए भोजन करे। उन ब्राह्मणोंको तृप्त जानकर तत्पश्चात् सभी वर्णोंके लिये विकिराकी क्रिया करनी चाहिये। उस समय जलसहित अन्न लेकर पृथ्वीपर जल गिरा दे। पुनः उन ब्राह्मणोंके आचमन कर लेनेपर जल, पुष्प, अक्षत आदि सभी सामग्री स्वस्तिवाचनपूर्वक पिण्डोंके ऊपर डाल दे। फिर इस श्राद्धफलको भगवान्‌को अर्पित कर दे, अन्यथा श्राद्ध नष्ट हो जाता है। इसी प्रकार उन ब्राह्मणोंको प्रदक्षिणा करके उन्हें विदा करे। उस समय श्राद्धकर्ता दक्षिण दिशाकी ओर मुख करके पितरोंसे अभिलाषा-पूर्तिके निमित्त याचना करते हुए यों कहे—'पितृगण! हमारे दाताओं, वेदों ( वेदज्ञान ) और संतानोंकी वृद्धि हो, हमारी श्रद्धा कभी न घटे, देनेके लिये हमारे पास प्रचुर सम्पत्ति हो, हमारे अधिक-से-अधिक अन्न उत्पन्न हों, हमारे घरपर अतिथियोंका जमघट लगा रहे। हमसे माँगनेवाले बहुत हों, परंतु हम किसीसे याचना न करें।' उस समय ब्राह्मणलोग कहें—'ऐसा ही हो।' इस प्रकार अन्वाहार्यक नामक पार्वण श्राद्ध जिस प्रकार अमावास्या तिथिको बतलाया गया है, उसी प्रकार अन्य तिथियोंमें भी किया जा सकता है। श्राद्ध-समाप्तिके

पश्चात् उन पिण्डोंको गौ, बकरी या ब्राह्मणको दे दे अथवा अग्नि या जलमें भी डाल दे अथवा ब्राह्मणके सामने ही पक्षियोंके लिये छींट दे। उनमें मझले पिण्डको ( श्राद्धकर्ताकी ) पत्नी 'पितृगण मेरे उदरमें संतानकी वृद्धि करनेवाले गर्भकी स्थापना करायें' यों याचना करती हुई विनयपूर्वक स्वयं खा जाय। यह पिण्ड तबतक उच्छिष्ट बना रहता है, जबतक ब्राह्मण विदा नहीं कर दिये जाते। इस प्रकार पितृकर्मके समाप्त हो जानेपर वैश्वदेव-का पूजन करना चाहिये। तत्पश्चात् अपने इष्ट-मित्रोंसहित शान्तिपूर्वक उस पितृसेवित अन्नका स्वयं भोजन करना चाहिये ॥ ४३–५५ ॥

पुनर्भोजनमध्वानं यानमायासमैथुनम्। श्राद्धकृच्छ्राद्धभुक्चैव सर्वमेतद् विवर्जयेत् ॥ ५६ ॥
स्वाध्यायं कलहं चैव दिवास्वप्नं च सर्वदा। अनेन विधिना श्राद्धं त्रिरब्दस्येह निर्वपेत् ॥ ५७ ॥
कन्याकुम्भवृषस्थेऽर्के कृष्णपक्षेषु सर्वदा।
यत्र यत्र प्रदातव्यं सपिण्डीकरणात् परम्। तत्रानेन विधानेन देयमग्निमता सदा ॥ ५८ ॥

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽग्निमच्छ्राद्धे श्राद्धकल्पो नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥*

श्राद्धकर्ता और श्राद्धभोक्ता—दोनोंको श्राद्धमें भोजन करनेके पश्चात् पुनः भोजन करना, मार्गगमन, सवारीपर चढ़ना, परिश्रमका काम करना, मैथुन, स्वाध्याय, कलह और दिनमें शयन—इन सबका उस दिन परित्याग कर देना चाहिये। इस प्रकार उपर्युक्त विधिसे जमुहाई आदि न लेकर श्राद्ध-कार्य सम्पन्न करना चाहिये। सपिण्डीकरणके पश्चात् कन्या, कुम्भ और वृष राशिपर सूर्यके स्थित रहनेपर कृष्णपक्षमें जहाँ-जहाँ पिण्ड-दान करे, वहाँ-वहाँ अग्निहोत्री श्राद्धकर्ताको सदा इसी विधिसे पिण्डदान करना चाहिये ॥ ५६–५८ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें अग्निमच्छ्राद्धविषयक श्राद्धकल्प नामक सोलहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १६ ॥

## सत्रहवाँ अध्याय

### साधारण एवं आभ्युदयिक श्राद्धकी विधिका विवरण

सूत उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि विष्णुना यदुदीरितम्। श्राद्धं साधारणं नाम भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥ १ ॥
अयने विषुवे युग्मे सामान्ये चार्कसंक्रमे। अमावास्याष्टकाकृष्णपक्षे पञ्चदशीषु च ॥ २ ॥
आर्द्रामघारोहिणीषु द्रव्यब्राह्मणसङ्गमे। गजच्छायाव्यतीपाते विष्टिवैधृतिवासरे ॥ ३ ॥
वैशाखस्य तृतीया या नवमी कार्त्तिकस्य च। पञ्चदशी च माघस्य नभस्ये च त्रयोदशी ॥ ४ ॥
युगादयः स्मृता ह्येता दत्तस्याक्षयकारिकाः। तथा मन्वन्तरादौ च देयं श्राद्धं विजानता ॥ ५ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! इसके पश्चात् अब मैं उस साधारण श्राद्धके विषयमें बतला रहा हूँ, जो भोग एवं मोक्षरूपी फल प्रदान करनेवाला है तथा जिसका स्वयं भगवान् विष्णुने वर्णन किया है। सूर्यके उत्तरायण एवं दक्षिणायनके समय, विषुवयोग ( सूर्यके तुला और मेष राशिपर संक्रमण करते समय), कृष्णपक्षकी अष्टका ( मार्गशीर्ष, पौष, फाल्गुन कृष्णपक्षकी सप्तमी, अष्टमी, नवमी—इन तीन तिथियोंका समुदाय ), अमावास्या और पूर्णिमा तिथियोंमें, आर्द्रा, मघा और रोहिणी नक्षत्रोंमें, द्रव्य और ब्राह्मणके मिलनेपर, गजच्छाया, व्यतीपात और वैधृति योगोंमें तथा विष्टि ( भद्रा )करणमें पूर्वोक्त साधारण श्राद्ध किया जाता है। वैशाख मासकी शुक्लतृतीया ( अक्षयतृतीया ), कार्तिक मासकी शुक्लनवमी ( अक्षयनवमी ), माघ मासकी पूर्णिमा और भाद्रपद मासके शुक्लपक्षकी त्रयोदशी—ये युगादि तिथियोंके नामसे प्रसिद्ध हैं। इनमें किया गया श्राद्ध अक्षय फलदायक होता है। इसी प्रकार विद्वान् श्राद्धकर्ताको मन्वन्तरोंकी आदि तिथियोंमें भी श्राद्ध-कर्म करना चाहिये ॥ १–५ ॥

अश्वयुक्छुक्लनवमी द्वादशी कार्त्तिके तथा । तृतीया चैत्रमासस्य तथा भाद्रपदस्य च ॥ ६ ॥
फाल्गुनस्य ह्यमावास्या पौषस्यैकादशी तथा । आषाढस्यापि दशमी माघमासस्य सप्तमी ॥ ७ ॥
श्रावणस्याष्टमी कृष्णा तथाषाढी च पूर्णिमा ।
कार्तिकी फाल्गुनी चैत्री ज्येष्ठपञ्चदशी सिता । मन्वन्तरादयश्चैता दत्तस्याक्षयकारिकाः ॥ ८ ॥
यस्यां मन्वन्तरस्यादौ रथमास्ते दिवाकरः । माघमासस्य सप्तम्यां सा तु स्याद् रथसप्तमी ॥ ९ ॥
पानीयमप्यत्र तिलैर्विमिश्रं दद्यात् पितृभ्यः प्रयतो मनुष्यः ।
श्राद्धं कृतं तेन समाः सहस्रं रहस्यमेतत् पितरो वदन्ति ॥ १० ॥
वैशाख्यामुपरागेषु तथोत्सवमहालये । तीर्थायतनगोष्ठेषु दीपोद्यानगृहेषु च ॥ ११ ॥
विविक्तेषूपलिप्तेषु श्राद्धं देयं विजानता । विप्रान् पूर्वे परे चाह्नि विनीतात्मा निमन्त्रयेत् ॥ १२ ॥
शीलवृत्तगुणोपेतान् वयोरूपसमन्वितान् । द्वौ दैवे त्रींस्तथा पित्र्ये एकैकमुभयत्र वा ॥ १३ ॥
भोजयेत् सुसमृद्धोऽपि न प्रसज्जेत विस्तरे । विश्वान् देवान् यवैः पुष्पैरभ्यर्च्यासनपूर्वकम् ॥ १४ ॥
पूरयेत् पात्रयुग्मं तु स्थाप्य दर्भपवित्रकम् । शं नो देवीत्यपः कुर्याद् यवोऽसीति यवानपि ॥ १५ ॥
गन्धपुष्पैश्च सम्पूज्य वैश्वदेवं प्रति न्यसेत् । विश्वेदेवास इत्याभ्यामावाह्य विकिरेद् यवान् ॥ १६ ॥
गन्धपुष्पैरलङ्कृत्य या दिव्येत्यर्घ्यमुत्सृजेत् । अभ्यर्च्य ताभ्यामुत्सृष्टिं पितृकार्यं समारभेत् ॥ १७ ॥

आश्विनमासकी शुक्लनवमी, कार्तिक-मासकी शुक्लद्वादशी, चैत्रमासकी शुक्लतृतीया, भाद्रपदमासकी शुक्लतृतीया, फाल्गुनमासकी अमावास्या, पौषमासकी शुक्ल-एकादशी, आषाढ-मासकी शुक्लदशमी, माघमासकी शुक्लसप्तमी, श्रावणमासकी कृष्णाष्टमी, आषाढ़मासकी पूर्णिमा तथा कार्तिक, फाल्गुन, चैत्र और ज्येष्ठकी पूर्णिमा—ये चौदह तिथियाँ चौदह मन्वन्तरोंकी आदि तिथियाँ हैं; इनमें किया गया श्राद्ध अक्षय फलकारक होता है। जिस मन्वन्तरकी आदि तिथि माघमासकी शुक्लसप्तमीमें भगवान् सूर्य रथपर आरूढ होते हैं, वह सप्तमी रथसप्तमीके नामसे प्रसिद्ध है। इस तिथिमें यदि मनुष्य प्रयत्नपूर्वक अपने पितरोंको तिलमिश्रित जलमात्र प्रदान करता है अर्थात् तर्पण कर लेता है तो वह सहस्रों वर्षोंतक किये गये श्राद्धके समान फलदायक होता है। इसका रहस्य पितृगण स्वयं बतलाते हैं। विद्वान् श्राद्धकर्ताको चाहिये कि वह वैशाखी पूर्णिमामें, सूर्य एवं चन्द्र-ग्रहणमें, विशेष उत्सवके अवसरपर, पितृपक्षमें,* तीर्थस्थान, देव-मन्दिर एवं गोशालामें, दीपगृह और वाटिकामें एकान्तमें लिपी-पुती हुई भूमिपर श्राद्ध-कार्य सम्पन्न करे। वह श्राद्धके एक या दो दिन पूर्व ही विनम्रभावसे शीलवान्, सदाचारी, गुणी, रूपवान् एवं अधिक अवस्थावाले ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करे। देव-कार्यमें दो और पितृकार्यमें तीन अथवा दोनोंमें एक-एक ही ब्राह्मणको भोजन कराना चाहिये। अतिशय समृद्धिशाली होनेपर भी विस्तारमें नहीं लगना चाहिये। उस समय विश्वेदेवोंको आसन प्रदान करके यव और पुष्पोंद्वारा उनकी अर्चना करे। फिर दो मिट्टीके पात्र (कोसा) रखकर उनमें कुशनिर्मित पवित्रक डाल दे और 'शं नो देवीरभीष्टये०' (वाज० स० ३६।१२) इस मन्त्रको पढ़कर उन्हे जलसे भर दे और 'यवोऽसि०(नारायणोपनि०)' यह मन्त्र उच्चारणकर उनमें यव डाल दे। फिर गन्ध, पुष्प आदिसे पूजा करके उन्हें विश्वेदेवोंके उद्देश्यसे (उनके निकट) रख दे। फिर 'विश्वेदेवास० (शु० यजु० ७।३४)' इत्यादि दो मन्त्रोंद्वारा विश्वेदेवोंका आवाहन करके (वेदीपर) जौ बिखेर दे। तत्पश्चात् गन्ध-पुष्प आदिसे अलंकृत करके 'या दिव्या आपः० (तै० स०)' इस मन्त्रसे उन्हे अर्घ्य प्रदान करे। इस प्रकार उनकी पूजा करके और उनसे निवृत्त होकर पितृ-कार्य आरम्भ करे ॥ ६—१७ ॥

* इस प्रकार श्राद्धके ९६ अवसर प्रसिद्ध हैं और ये ही वचन हेमाद्रि आदिके श्राद्धकाण्डों तथा श्राद्धतत्त्व, श्राद्धविवेक श्राद्धप्रकाश, श्राद्धकल्पलता, पितृदयिता आदि सभी श्राद्ध-निबन्धोंमें प्राप्त होते हैं।

दर्भासनं तु दत्त्वादौ त्रीणि पात्राणि पूरयेत् । सपवित्राणि कृत्वादौ शन्नो देवीत्यपः क्षिपेत् ॥ १८ ॥
तिलोऽसीति तिलान् कुर्याद् गन्धपुष्पादिकं पुनः । पात्रं वनस्पतिमयं तथा पर्णमयं पुनः ॥ १९ ॥
जलजं चाथ कुर्वीत तथा सागरसम्भवम् । सौवर्णं राजतं वापि पितृणां पात्रमुच्यते ॥ २० ॥
रजतस्य कथा वापि दर्शनं दानमेव वा । राजतैर्भाजनैरेषामथवा रजतान्वितैः ॥ २१ ॥
वार्यपि श्रद्धया दत्तमक्षयायोपकल्पते । तथार्घ्यपिण्डभोज्यादौ पितृणां राजतं मतम् ॥ २२ ॥
शिवनेत्रोद्भवं यस्मात् तस्मात् पितृवल्लभम् । अमङ्गलं तद् यत्नेन देवकार्येषु वर्जयेत् ॥ २३ ॥
एव पात्राणि सङ्कल्प्य यथालाभं विमत्सरः । या दिव्येति पितुर्नाम गोत्रैर्दर्भकरो न्यसेत् ॥ २४ ॥
पितॄनावाहयिष्यामि कुर्वित्युक्तस्तु तैः पुनः । उशन्तस्त्वा तथायान्तु ऋग्भ्यामावाहयेत् पितॄन् ॥ २५ ॥
या दिव्येत्यर्घ्यमुत्सृज्य दद्याद् गन्धादिकांस्ततः । हस्तात् तदुदकं पूर्वं दत्त्वा संस्रवमादितः ॥ २६ ॥
पितृपात्रे निधायाथ न्युब्जमुत्तरतो न्यसेत् । पितृभ्यः स्थानमसीति निधाय परिषेचयेत् ॥ २७ ॥
तत्रापि पूर्ववत् कुर्यादग्निकार्यं विमत्सरः । उभाभ्यामपि हस्ताभ्यामाहृत्य परिवेषयेत् ॥ २८ ॥
प्रशान्तचित्तः सततं दर्भपाणिरशेषतः । गुणाढ्यैः सूपशाकैस्तु नानाभक्ष्यैर्विशेषतः ॥ २९ ॥
अन्नं तु सदधिक्षीरं गोघृतं शर्करान्वितम् । मांसं प्रीणाति वै सर्वान् पितृनित्याह केशव ॥ ३० ॥
द्वौ मासौ मत्स्यमांसेन त्रीन् मासान् हारिणेन तु । औरभ्रेणाथ चतुरः शाकुनेनाथ पञ्च वै ॥ ३१ ॥
षण्मास छागमांसेन तृप्यन्ति पितरस्तथा । सप्त पार्षतमांसेन तथाष्टावेणजेन तु ॥ ३२ ॥
दश मासांस्तु तृप्यन्ति वराहमहिषामिषैः । शशकूर्मजमांसेन मासानेकादशैव तु ॥ ३३ ॥
संवत्सरं तु गव्येन पयसा पायसेन च । रौरवेण च तृप्यन्ति मासान् पञ्चदशैव तु ॥ ३४ ॥
वार्ध्रीणसस्य मांसेन तृप्तिर्द्वादशवार्षिकी । कालशाकेन चानन्ता खड्गमांसेन चैव हि ॥ ३५ ॥
यत् किंचिन्मधुसम्मिश्रं गोक्षीरं घृतपायसम् । दत्तमक्षयमित्याहुः पितरः पूर्वदेवताः ॥ ३६ ॥
स्वाध्यायं श्रावयेत् पित्र्यं पुराणान्यखिलानि च । ब्रह्मविष्ण्वर्करुद्राणां स्तवानि विविधानि च ॥ ३७ ॥
इन्द्राग्निसोमसूक्तानि पावनानि स्वशक्तितः । बृहद्रथन्तरं तद्वज्ज्येष्ठसाम सरौद्रिणम् ॥ ३८ ॥
तथैव शान्तिकाध्यायं मधुब्राह्मणमेव च । मण्डलं ब्राह्मणं तद्वत् प्रीतिकारि तु यत् पुनः ॥ ३९ ॥
विप्राणामात्मनश्चैव तत् सर्वं समुदीरयेत् ।

( पितृ-श्राद्धमें ) पहले कुशोंका आसन प्रदान करके तीन अर्घ्यपात्रोंको तैयार करना चाहिये । उनमें प्रथमतः कुशनिर्मित पवित्रक डालकर 'शनो देवी०( शु०यजु० ३६ । १२)—' इस मन्त्रसे उन्हें जलसे भर दे, पुनः 'तिलोऽसि०—' इस मन्त्रसे उनमें तिल डालकर उन्हें (अमन्त्रक ही) गन्ध, पुष्प आदिसे पूरा कर दे । पितरोंके निमित्त प्रयुक्त किये गये ये पात्र काष्ठके या वृक्षके पत्तेके या जल एवं सागरसे उत्पन्न हुए पत्तेके अथवा सुवर्णमय या रजतमय होने चाहिये । ( यदि चाँदीका पात्र देनेकी सामर्थ्य न हो तो ) चाँदीके विषयमें कथनोपकथन, दर्शन अथवा दानसे ही कार्य सम्पन्न हो सकता है । पितरोंके निमित्त यदि चाँदीके बने हुए या चाँदीसे मढ़े हुए पात्रोंद्वारा श्रद्धा-पूर्वक जलमात्र भी प्रदान कर दिया जाय तो वह अक्षय तृप्तिकारक होता है । इसी प्रकार पितरोंके लिये अर्घ्य, पिण्ड और भोजनके पात्र भी चाँदीके ही प्रशस्त माने गये हैं । चूँकि चाँदी शिवजीके नेत्रसे उद्भूत हुई है, इसलिये यह पितरोंको परम प्रिय है; किंतु देवकार्यमें इसे अशुभ माना गया है, इसलिये देवकार्यमें चाँदीको दूर रखना चाहिये । इस प्रकार यथाशक्ति पात्रोंकी व्यवस्था करके मत्सररहित हो कुश हाथमें लेकर 'या दिव्या० (तै० स० )—' इस मन्त्रद्वारा अपने पिताके नाम और गोत्रका उच्चारण करते हुए (उन अर्घ्यपात्रोंको ) रख दे । ( फिर ब्राह्मणोंकी ओर देखकर यों कहे कि ) 'मैं अपने पितरोंका आवाहन करूँगा ।' इसके उत्तरमें

ब्राह्मणलोग कहें—'करो'। ऐसा कहे जानेपर 'उशन्तस्त्वा०—' एवं 'आयान्तु नः०—'इन दोनों ऋचाओंद्वारा पितरोंका आवाहन करे। तत्पश्चात् 'या दिव्या०—'इस मन्त्रसे उन्हें अर्घ्य प्रदान करके गन्ध, पुष्प आदिसे उनकी पूजा करे। फिर पिण्ड-दानसे पूर्व उस जलको हाथमें लेकर उसे पितृ-पात्रमें रखकर वेदीके अग्रभागमें उलटकर रख दे और 'पितृभ्यः स्थानमसि—यह पितरोंके लिये स्थान है'—ऐसा कहकर उसे जलसे सींच दे। इस कार्यमें भी पूर्ववत् सावधानीपूर्वक अग्निकार्य सम्पन्न करे। तदुपरान्त हाथमें कुश लिये हुए प्रशान्त-चित्तसे गुणकारी दाल, शाक आदिसे युक्त, विविध प्रकारके खाद्य पदार्थोंको अपने दोनों हाथोंसे लाकर पूर्णरूपसे परिवेषण करे (परोसे)। पदार्थोंमें दही, दूध और शक्करमिश्रित अन्न तथा गोघृत, गोदुग्ध और खीर आदि जो कुछ पितरोंके निमित्त दिया जाता है, वह अक्षय बतलाया गया है। पितरलोग गृहस्थोंके प्रथम देवता हैं, इसलिये श्राद्धके अवसरपर पितृसम्बन्धी सूक्तोंका स्वाध्याय (पाठ), सम्पूर्ण पुराण, ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य और रुद्रके विभिन्न प्रकारके सूक्त, इन्द्र, अग्नि और सोमके पवित्र सूक्त, बृहद्रथन्तर, रौहिणसहित ज्येष्ठ साम, शान्तिकाध्याय, मधुब्राह्मण और मण्डलब्राह्मण आदि तथा इसी प्रकारके अन्यान्य प्रीतिवर्धक सूक्तों या स्तोत्रोंका स्वयं अथवा ब्राह्मणोंद्वारा पाठ करना-करवाना चाहिये ॥ १८–३९½ ॥

भुक्तवत्सु ततस्तेषु भोजनोपान्तिके नृप ॥ ४० ॥
सार्ववर्णिकमन्नाद्यं सन्नीयाप्लाव्य वारिणा। समुत्सृजेद् भुक्तवतामग्रतो विकिरेद् भुवि ॥ ४१ ॥
अग्निदग्धास्तु ये जीवा येऽप्यदग्धाः कुले मम। भूमौ दत्तेन तृप्यन्तु प्रयान्तु परमां गतिम् ॥ ४२ ॥
येषां न माता न पिता न बन्धुर्न गोत्रशुद्धिर्न तथान्नमस्ति।
तत्तृप्तयेऽन्नं भुवि दत्तमेतत् प्रयान्तु लोकेषु सुखाय तद्वत् ॥ ४३ ॥
असंस्कृतप्रमीतानां त्यक्तानां कुलयोषिताम्। उच्छिष्टभागधेयः स्याद् दर्भे विकिरयोश्च यः ॥ ४४ ॥
तृप्ता ज्ञात्वोदकं दद्यात् सकृद् विप्रकरे तथा। उपलिप्ते महीपृष्ठे गोशकृन्मूत्रवारिणा ॥ ४५ ॥
निधाय दर्भान् विधिवद् दक्षिणाग्रान् प्रयत्नतः। सर्ववर्णेन चान्नेन पिण्डांस्तु पितृयज्ञवत् ॥ ४६ ॥
अवनेजनपूर्वं तु नामगोत्रेण मानवः। गन्धधूपादिकं दद्यात् कृत्वा प्रत्यवनेजनम् ॥ ४७ ॥
जान्वाच्य सव्यं सव्येन पाणिनाथ प्रदक्षिणम्। पित्र्यमानीय तत् कार्यं विधिवद् दर्भपाणिना ॥ ४८ ॥
दीपप्रज्वालनं तद्वत् कुर्यात् पुष्पार्चनं बुधः। अथाचान्तेषु चाचम्य वारि दद्यात् सकृत् सकृत् ॥ ४९ ॥
अथ पुष्पाक्षतान् पश्चादक्षय्योदकमेव च। सतिलं नामगोत्रेण दद्याच्छक्त्या च दक्षिणाम् ॥ ५० ॥
गोभूहिरण्यवासांसि भव्यानि शयनानि च। दद्याद् यदिष्टं विप्राणामात्मनः पितुरेव च ॥ ५१ ॥
वित्तशाठ्येन रहितः पितृभ्यः प्रीतिमावहन्। ततः स्वधावाचनकं विश्वेदेवेषु चोदकम् ॥ ५२ ॥
दत्त्वाशीः प्रतिगृह्णीयाद् विश्वेभ्यः प्राङ्मुखो बुधः। अघोराः पितरः सन्तु सन्त्वित्युक्तः पुनर्द्विजैः ॥ ५३ ॥

राजन्! उन ब्राह्मणोंके भोजन कर चुकनेपर उनके भोजनके संनिकट ही सभी वर्णोंके लिये नियत किये हुए अन्न आदि पदार्थोंको लाकर उन्हें जलसे परिपूर्ण कर भोजन करनेवालोंके समक्ष ही यह कहते हुए पृथ्वीपर बिखेर दे—'मेरे कुलमें (मृत्युके पश्चात्) जिन जीवोंका अग्नि-संस्कार हुआ हो अथवा जिनका अग्नि-संस्कार नहीं भी हुआ हो, वे सभी पृथ्वीपर बिखेरे हुए इस अन्नसे तृप्त हों और परम गतिको प्राप्त हों। जिनकी न माता है, न जिनके पिता या भाई-बन्धु हैं, न तो जिनकी गोत्र-शुद्धि हुई है तथा जिनके पास अन्न भी नहीं है, उनकी तृप्तिके निमित्त मैंने भूतलपर यह अन्न छींट दिया है, अतः वे भी (मेरे पितरोंकी भाँति) सुखभोगके लिये उत्तम लोकोंमें जायँ। इसी प्रकार जो कुलवधुएँ बिना संस्कृत हुए ही मृत्युको प्राप्त हो गयी हैं अथवा जिनका परिवारवालोंने परित्याग कर दिया है, उनके लिये कुश-मूलमें लगा हुआ तथा विकिराका बचा हुआ उच्छिष्ट भाग ही हिस्सा है।' तदनन्तर ब्राह्मणोंको तृप्त जानकर एक बार उनके

हाथोंपर जल डाल दे । फिर गोबर, गोमूत्र और जलसे लिपी हुई भूमिपर कुशोंको विधिपूर्वक दक्षिणाभिमुख बिछा दे । तब श्राद्धकर्ता पिताके नाम और गोत्रका उच्चारण करके पहले ( कुशोंपर ) अवनेजन दे ( पिण्डकी वेदीपर कुशसे जल छिड़के ), फिर पितृ-यज्ञकी भाँति सभी प्रकारके अन्नोंसे बने हुए पिण्डोंको उन कुशोंपर रख दे । पुनः गन्ध, पुष्प आदिसे पिण्ड-पूजा करके उनपर प्रत्यवनेजनका जल छोड़े और बायाँ घुटना टेककर बायें हाथसे प्रदक्षिणा करे; फिर कुश हाथमें लेकर विधिपूर्वक पितृकार्य सम्पन्न करे । बुद्धिमान् श्राद्धकर्ताको पूर्वोक्त विधिके अनुसार दीप जलाना एवं पुष्पोंद्वारा पूजन करना चाहिये । तत्पश्चात् ब्राह्मणोंके आचमन कर लेनेपर स्वयं भी आचमन करके उनके हाथोंपर एक-एक बार जल, पुष्प, अक्षत और तिलसहित अक्षय्योदक डालकर यथाशक्ति उन्हें दक्षिणा दे । पुनः कंजूसी छोड़कर पितरोंको प्रसन्न करते हुए गौ, पृथ्वी, सोना, वस्त्र, सुन्दर शय्याएँ तथा जो वस्तु अपने तथा पिताको अभीष्ट रही हो, वह सब ब्राह्मणोंको दान करना चाहिये । तदुपरान्त स्वधाका उच्चारण करके विद्वान् श्राद्धकर्ता पूर्वाभिमुख हो विश्वेदेवोंको जल प्रदान करके उनसे आशीर्वाद ग्रहण करे । उस समय ब्राह्मणोंसे कहे— 'हमारे पितर सौम्य हों ।' पुनः ब्राह्मण लोग कहें— 'सन्तु—हों' ॥ ४०—५३ ॥

गोत्रं तथा वर्धतां नस्तथेत्युक्तश्च तैः पुनः । दातारो नोऽभिवर्धन्तामिति चैवमुदीरयेत् ॥ ५४ ॥
एताः सत्याशिषः सन्तु सन्त्वित्युक्तश्च तैः पुनः । स्वस्तिवाचनकं कुर्यात् पिण्डानुद्धृत्य भक्तितः ॥ ५५ ॥
उच्छेषणं तु तत् तिष्ठेद् यावद् विप्रा विसर्जिताः । ततो गृहबलिं कुर्यादिति धर्मव्यवस्थितिः ॥ ५६ ॥
उच्छेषणं भूमिगतमजिह्मस्याशठस्य च । दासवर्गस्य तत् पित्र्यं भागधेयं प्रचक्षते ॥ ५७ ॥
पितृभिर्निर्मितं पूर्वमेतदाप्यायनं सदा । अपुत्राणां सपुत्राणां स्त्रीणामपि नराधिप ॥ ५८ ॥
ततस्तानग्रतः स्थित्वा परिगृह्योदपात्रकम् । वाजे वाज इति जपन् कुशाग्रेण विसर्जयेत् ॥ ५९ ॥
बहिः प्रदक्षिणां कुर्यात् पदान्यष्टावनुव्रजन् । बन्धुवर्गेण सहितः पुत्रभार्यासमन्वितः ॥ ६० ॥
निवृत्य प्रणिपत्याथ पर्युक्ष्याग्निं समन्त्रवत् । वैश्वदेवं प्रकुर्वीत नैत्यकं बलिमेव च ॥ ६१ ॥
ततस्तु वैश्वदेवान्ते सभृत्यसुतबान्धवः । भुञ्जीतातिथिसंयुक्तः सर्वं पितृनिषेवितम् ॥ ६२ ॥
एतच्चानुपनीतोऽपि कुर्यात् सर्वेषु पर्वसु । श्राद्धं साधारणं नाम सर्वकामफलप्रदम् ॥ ६३ ॥
भार्याविरहितोऽप्येतत् प्रवासस्थोऽपि भक्तिमान् । शूद्रोऽप्यमन्त्रवत् कुर्यादनेन विधिना बुधः ॥ ६४ ॥
तृतीयमाभ्युदयिकं वृद्धिश्राद्धं तदुच्यते । उत्सवानन्दसम्भारे यज्ञोद्वाहादिमङ्गले ॥ ६५ ॥

(पुनः यजमान कहे ) 'हमारे गोत्रकी वृद्धि हो तथा हमारे दाताओंकी अभिवृद्धि हो ।' यों कहे जानेपर पुनः वे ब्राह्मण कहें—'वैसा ही हो ।' पुनः प्रार्थना करे—'ये आशीर्वाद सत्य हों ।' ब्राह्मणलोग कहें—'सन्तु—(सत्य) हों' । पुनः उन ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराये और पिण्डोंको उठाकर भक्तिपूर्वक गृहबलि करे—यही धर्मकी मर्यादा है । जबतक निमन्त्रित ब्राह्मण विसर्जित किये जाते हैं, तबतक सभी वस्तुएँ उच्छिष्ट रहती हैं । कपटरहित एवं आस्तिक ब्राह्मणोंका जूठन और पितृ-कार्यमें भूमिपर बिखरे हुए अन्न नौकरोंके भाग हैं—ऐसा कहा जाता है । नरेश्वर ! पितरोंद्वारा व्यवस्थित यह तर्पण-रूप कार्य पुत्रहीनों, पुत्रवानों तथा स्त्रियोंके लिये भी है । तदनन्तर ब्राह्मणोंको आगे खड़ा करके जलपात्रको हाथमें लेकर 'वाजे वाजे'—यों कहते हुए कुशोंके अग्रभागसे पितरोंका विसर्जन करे तथा बाहर जाकर पुत्र, स्त्री और भाई-बन्धुओंको साथ लेकर आठ पगतक उन ब्राह्मणोंके पीछे-पीछे चलकर उनकी प्रदक्षिणा करे । वहाँसे लौटकर अग्निको प्रणाम करके मन्त्रोच्चारणपूर्वक उसका पर्युक्षण

करे तथा वैश्वदेव और नित्य बलि प्रदान करे। वैश्वदेवबलि समाप्त कर लेनेके बाद अपने नौकर-चाकर, पुत्र, भाई-बन्धु और अतिथियोंके साथ सभी प्रकारके पितृ-सेवित ( जिन्हें पहले पितरोंको समर्पित किया जा चुका है ) पदार्थोंका भोजन करे। इस सामान्य पार्वण नामक श्राद्धको, जो सभी प्रकारके मनोवाञ्छित फलोंका प्रदाता है, उपनयन-संस्कारसे रहित व्यक्ति भी सभी पर्वोंके अवसरपर कर सकता है। बुद्धिमान् पितृ-भक्त पुरुष पत्नीरहित अवस्थामें तथा परदेशमें स्थित रहनेपर भी इस श्राद्धका विधान कर सकता है। शूद्रको भी पूर्वोक्त विधिके अनुसार मन्त्ररहित ही इस श्राद्धको करनेका अधिकार है। ऋषियो! अब तीसरे प्रकारके पार्वण श्राद्धको, जो आभ्युदयिक वृद्धिश्राद्धके नामसे कहा जाता है, बतला रहा हूँ। यह श्राद्ध किसी उत्सव, हर्ष-संयोग, यज्ञ, विवाह आदिके शुभ अवसरपर किया जाता है ॥ ५४—६५ ॥

**मातरः प्रथमं पूज्याः पितरस्तदनन्तरम्। ततो मातामहा राजन् विश्वेदेवास्तथैव च ॥ ६६ ॥**
**प्रदक्षिणोपचारेण दध्यक्षतफलोदकैः। प्राङ्मुखो निर्वपेत् पिण्डान् दूर्वया च कुशैर्युतान्॥ ६७ ॥**
**सम्पन्नमित्यभ्युदये दद्यादर्घ्यं द्वयोर्द्वयोः। युग्मा द्विजातयः पूज्या वस्त्रकार्तस्वरादिभिः ॥ ६८ ॥**
**तिलार्थस्तु यवैः कार्यो नान्दीशब्दानुपूर्वकः। माङ्गल्यानि च सर्वाणि वाचयेद् द्विजपुङ्गवैः ॥ ६९ ॥**
**एवं शूद्रोऽपि सामान्यवृद्धिश्राद्धेऽपि सर्वदा। नमस्कारेण मन्त्रेण कुर्यादामान्नतः सदा ॥ ७० ॥**
**दानप्रधानः शूद्रः स्यादित्याह भगवान् प्रभुः। दानेन सर्वकामाप्तिरस्य संजायते यतः ॥ ७१ ॥**

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे साधारणाभ्युदयकीर्तनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥*

राजन्! इस श्राद्धमें प्रथमतः माताओंकी पूजा करके तत्पश्चात् पितरोंकी पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर मातामह ( नाना ) और विश्वेदेवोंके पूजनका विधान है। श्राद्धकर्ता पूर्वाभिमुख हो प्रदक्षिणा करके दही, अक्षत, फल और जल आदि सामग्री-समेत दूर्वा और कुशोंसे संयुक्त पिण्डोंको समर्पित करे। इस आभ्युदयिक श्राद्धमें 'सम्पन्नम्' इस मन्त्रका उच्चारण करके दोनो प्रकारके पितरोंको अर्घ्य प्रदान करे। उस समय वस्त्र, सुवर्ण आदि सामग्रियोंसे दो ब्राह्मणोंकी पूजा करनी चाहिये। तिलके स्थानपर 'नान्दी' शब्दके उच्चारणपूर्वक यवसे ही कार्य सम्पन्न करे और श्रेष्ठ विद्वान् ब्राह्मणोंद्वारा सभी प्रकारके माङ्गलिक सूक्तों अथवा स्तोत्रोंका पाठ कराये। इसी प्रकार इस सामान्य वृद्धिश्राद्धमें शूद्र भी सदा-सर्वदा नमस्काररूपी मन्त्रके उच्चारणसे तथा आमान्न-दानसे ( बिना पके हुए कच्चे अन्नके दानसे ) कार्य सम्पन्न कर सकता है। शूद्रको विशेषरूपसे दान-प्रधान ( दानमें तत्पर, दानशील ) होना चाहिये; क्योंकि दानसे उसके सभी मनोरथोंकी पूर्ति हो जाती है—ऐसा सर्वसमर्थ भगवान्‌ने कहा है ॥ ६६—७१ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें साधारणाभ्युदय-श्राद्ध-वर्णन नामक सत्रहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १७ ॥

# अठारहवाँ अध्याय

## एकोद्दिष्ट और सपिण्डीकरण श्राद्धकी विधि

सूत उवाच

**एकोद्दिष्टमतो वक्ष्ये यदुक्तं चक्रपाणिना। मृते पुत्रैर्यथा कार्यमाशौचं च पितर्यपि ॥ १ ॥**

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! इसके उपरान्त अब मै उस 'एकोद्दिष्ट'* श्राद्धकी विधि बतला रहा हूँ, जिसका वर्णन स्वयं भगवान् चक्रपाणि विष्णुने किया है। पिताकी मृत्यु हो जानेपर पुत्रोंको शौचपर्यन्त जैसा कार्य करना चाहिये, उसे सुनिये ॥ १ ॥

* पिता आदि केवल एक व्यक्तिके उद्देश्यसे किये जानेवाला श्राद्ध 'एकोद्दिष्ट' है।

दशाहं शावमाशौचं ब्राह्मणेषु विधीयते । क्षत्रियेषु दश द्वे च पक्षं वैश्येषु चैव हि ॥ २ ॥
शूद्रेषु मासमाशौचं सपिण्डेषु विधीयते । नैशं चाकृतचूडस्य त्रिरात्रं परतः स्मृतम् ॥ ३ ॥
जननेऽप्येवमेव स्यात् सर्ववर्णेषु सर्वदा । तथास्थिसञ्चयनादूर्ध्वमङ्गस्पर्शो विधीयते ॥ ४ ॥
प्रेताय पिण्डदानं तु द्वादशाहं समाचरेत् । पाथेयं तस्य तत् प्रोक्तं यतः प्रीतिकरं महत् ॥ ५ ॥
तस्मात् प्रेतपुरं प्रेतो द्वादशाहं* न नीयते । गृहं पुत्रं कलत्रं च द्वादशाहं प्रपश्यति ॥ ६ ॥
तस्मान्निधेयमाकाशे दशरात्रं पयस्तथा । सर्वदाहोपशान्त्यर्थमध्वश्रमविनाशनम् ॥ ७ ॥
ततः एकादशाहे तु द्विजानेकादशैव तु । क्षत्रादिः सूतकान्ते तु भोजयेदयुजो द्विजान् ॥ ८ ॥
द्वितीयेऽह्नि पुनस्तद्वदेकोद्दिष्टं समाचरेत् । आवाहनाग्नौकरणं दैवहीनं विधानतः ॥ ९ ॥
एकं पवित्रमेकोऽर्घ्य एकः पिण्डो विधीयते । उपतिष्ठतामित्येतद् देयं पश्चात्तिलोदकम् ॥ १० ॥
स्वदितं विकिरेद् ब्रूयाद् विसर्गे चाभिरम्यताम् । शेषं पूर्ववदत्रापि कार्यं वेदविदा पितुः ॥ ११ ॥
अनेन विधिना सर्वमनुमासं समाचरेत् । सूतकान्ताद् द्वितीयेऽह्नि शय्यां दद्याद् विलक्षणाम् ॥ १२ ॥
काञ्चनं पुरुषं तद्वत् फलवस्त्रसमन्वितम् । सम्पूज्य द्विजदाम्पत्यं नानाभरणभूषणैः ॥ १३ ॥
वृषोत्सर्गं प्रकुर्वीत देया च कपिला शुभा । उदकुम्भश्च दातव्यो भक्ष्यभोज्यसमन्वितः ॥ १४ ॥
यावदब्दं नरश्रेष्ठ सतिलोदकपूर्वकम् । ततः संवत्सरे पूर्णे सपिण्डीकरणं भवेत् ॥ १५ ॥
सपिण्डीकरणादूर्ध्वं प्रेतः पार्वणभाग् भवेत् । वृद्धिपूर्वेषु योग्यश्च गृहस्थश्च भवेत्ततः ॥ १६ ॥

ब्राह्मणोंमें दस दिनके अशौचका विधान है । इसी प्रकार क्षत्रियोंमें बारह दिनका, वैश्योंमें पंद्रह दिनका और शूद्रोंमें एक मासका अशौच लगता है । इस अशौचका विधान सगोत्रमें ही किया गया है । जिसका मुण्डन-संस्कार नहीं हुआ हो, ऐसे बच्चेका मरणाशौच एक राततक तथा इससे बड़ी अवस्थावालेका तीन राततक बतलाया गया है । इसी प्रकार जननाशौच भी सर्वदा सभी वर्णोंके लिये होता है । मरणाशौचमें अस्थिसंचयनके ऊपरान्त ( परिवारवालोंका ) अङ्गस्पर्श करनेका विधान है । प्रेतात्माके लिये बारह दिनोंतक पिण्डदान करना चाहिये; क्योंकि वे पिण्ड उस प्रेतके लिये पाथेय ( मार्गका कलेवा ) बतलाये गये हैं, अतः अतिशय सुखदायी होते हैं । इसी कारण वह प्रेतात्मा बारह दिनोंतक प्रेतपुर ( यमपुरी ) को नहीं ले जाया जाता । वह बारह दिनोंतक अपने गृह, पुत्र और पत्नीको देखता रहता है । इसलिये उसके समस्त दाहोंकी शान्ति तथा मार्गकी थकावटका विनाश करनेके निमित्त दस राततक आकाशमें ( पीपलके वृक्षमें बँधा हुआ ) जलघट रखना चाहिये । तत्पश्चात् ग्यारहवें दिन ग्यारह ब्राह्मणोंको भोजन करावे । इसी प्रकार क्षत्रिय आदि अन्य वर्णवालोंको भी अपने-अपने सूतककी समाप्तिपर ( विषम-संख्यक ) ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये । पुनः दूसरे अर्थात् बारहवें दिन पूर्ववत् विधिपूर्वक एकोद्दिष्ट श्राद्धका समारम्भ करे । इसमें आवाहन, अग्निमें पिण्डदान तथा विश्वेदेवोंका पूजन निषिद्ध है । इस श्राद्धमें एक ही पवित्रक, एक ही अर्घ्य और एक ही पिण्डका विधान है । इसके पश्चात् 'उपतिष्ठताम्' इस शब्दका उच्चारण करके तिलसहित जल प्रदान करे और 'स्वदितम्०' इस सम्पूर्ण मन्त्रको बोलकर अन्नको पृथ्वीपर बिखेर दे तथा विसर्जनके समय 'अभिरम्यताम्' ऐसा कहे । इस प्रकार वेदज्ञ पुत्रको अपने पिताका शेष श्राद्ध-कार्य पूर्ववत् करना चाहिये । इसी विधिसे प्रतिमास ( पिताकी मृत्यु-तिथिपर ) सारा कार्य सम्पादित करना चाहिये । सूतक समाप्त होनेके पश्चात् दूसरे दिन काञ्चन-पुरुष ( सोनेकी प्रतिमा ) और फल-वस्त्रसे समन्वित विलक्षण शय्याका दान करना चाहिये । उसी समय अनेकविध वस्त्राभूषणोंसे द्विज-

* कहीं-कहीं 'द्वादशाहेन नीयते' पाठ भी है । वहाँ १२ दिनोंमें यमपुरी या पितृपुर ले जाया जाता है, ऐसा अर्थ समझना चाहिये ।

दम्पतीका पूजन करे । तत्पश्चात् वृषोत्सर्ग ( साँड़ छोड़ने ) का काम सम्पन्न करे । उस समय एक सुन्दर कपिला गौका दान करे । नरश्रेष्ठ ! पुनः अनेक प्रकारके भक्ष्य-भोज्य पदार्थोंसे युक्त एक जलपात्र, जो तिल और जलसे परिपूर्ण हो, दान करे । इस प्रकारके जलपात्रका दान वर्षपर्यन्त करना चाहिये । इस तरह एक वर्ष पूर्ण होनेपर सपिण्डीकरण श्राद्ध किया जाता है । सपिण्डीकरण श्राद्धके पश्चात् प्रेतात्मा पार्वणश्राद्धका भागी हो जाता है तथा पूर्वकथित आभ्युदयिक आदि वृद्धि श्राद्धोंमें भाग पानेके योग्य एवं गृहस्थ हो जाता है ॥ २–१६ ॥

सपिण्डीकरणे श्राद्धे देवपूर्वं नियोजयेत् । पितॄनेवासयेत् तत्र पृथक् प्रेतं विनिर्दिशेत् ॥ १७ ॥
गन्धोदकतिलैर्युक्तं कुर्यात् पात्रचतुष्टयम् । अर्घार्थं पितृपात्रेषु प्रेतपात्रं प्रसेचयेत् ॥ १८ ॥
तद्वत् संकल्प्य चतुरः पिण्डान् पिण्डप्रदस्तथा । ये समाना इति द्वाभ्यामन्त्यं तु विभजेत् तथा ॥ १९ ॥
चतुर्थस्य पुनः कार्यं न कदाचिद्ततो भवेत् । ततः पितृत्वमापन्नः सर्वतस्तुष्टिमागतः ॥ २० ॥
अग्निष्वात्तादिमध्यत्वं प्राप्नोत्यमृतमुत्तमम् । सपिण्डीकरणादूर्ध्वं तस्मै तस्मान्न दीयते ॥ २१ ॥
पितृष्वेव तु दातव्यं तत्पिण्डो येषु संस्थितः । ततः प्रभृति संक्रान्तावुपरागादिपर्वसु ॥ २२ ॥
त्रिपिण्डमाचरेच्छ्राद्धमेकोद्दिष्टे मृतेऽहनि । एकोद्दिष्टं परित्यज्य मृताहे यः समाचरेत् ॥ २३ ॥
सदैव पितृहा स स्यान्मातृभ्रातृविनाशकः । मृताहे पार्वणं कुर्वन्नधोऽधो याति मानवः ॥ २४ ॥
सम्पृक्तेष्वाकुलीभावः प्रेतेषु तु यतो भवेत् । प्रतिसंवत्सरं तस्मादेकोद्दिष्टं समाचरेत् ॥ २५ ॥
यावदब्दं तु यो दद्यादुदकुम्भं विमत्सरः । प्रेतायान्नसमायुक्तं सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥ २६ ॥
आमश्राद्धं यदा कुर्याद् विधिज्ञः श्राद्धदस्तदा । तेनाग्नौकरणं कुर्यात् पिण्डांस्तेनैव निर्वपेत् ॥ २७ ॥
त्रिभिः सपिण्डीकरणे अशेषत्रितये पिता । यदा प्राप्स्यति कालेन तदा मुच्येत बन्धनात् ॥ २८ ॥
मुक्तोऽपि लेपभागित्वं प्राप्नोति कुशमार्जनात् ।
लेपभाजश्चतुर्थाद्याः पित्राद्याः पिण्डभागिनः । पिण्डदः सप्तमस्तेषां सापिण्ड्यं साप्तपौरुषम् ॥ २९ ॥

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सपिण्डीकरणकल्पो नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥*

सपिण्डीकरण श्राद्धमें सर्वप्रथम विश्वेदेवोंको नियुक्त करे । तत्पश्चात् पितरोंको स्थान दे और प्रेतका स्थान उनसे अलग निश्चित करे । फिर अर्घ्य देनेके लिये चन्दन, जल और तिलसे युक्त चार पात्र तैयार करे और प्रेतपात्रके जलसे पितृपात्रोंको सिक्त कर दे । ( अर्थात् प्रेतपात्रके जलको तीन भागोंमें विभक्त करके उन्हे पितृपात्रोंमें डाल दे । ) इसी प्रकार पिण्डदाता चार पिण्डोंका निर्माण करके उन्हें संकल्पपूर्वक ( पितरों और प्रेतके स्थानोंपर पृथक्-पृथक् ) रख दे । फिर 'ये समानाः० ( वाजस० १९ । ४५-४६ )—' इन दो मन्त्रोंद्वारा अन्तके ( चौथे प्रेतके ) पिण्डको ( स्वर्णशलाका या कुशसे ) तीन भागोंमें विभक्त कर दे ( और एक-एक भागको क्रमशः पितरोंके पिण्डोंमें मिला दे ) । इसके पश्चात् उस चौथे पिण्डका कहीं भी कोई उपयोग नहीं रह जाता । इसके बाद वह प्रेतात्मा सब ओरसे संतुष्ट होकर पितृरूपमें परिवर्तित हो जाता है और 'अग्निष्वात्त' आदि देवपितरोंके मध्य उत्तम एवं अविनाशी पद प्राप्त कर लेता है । इसी कारण सपिण्डीकरणके पश्चात् उसे कुछ नहीं दिया जाता । वह प्रेतात्मा जिन पितरोंके बीच स्थित है, उसके पिण्डके तीनो भागोको उन्हीं पितरोंके पिण्डोंमें मिला देना चाहिये । तत्पश्चात् संक्रान्ति अथवा ग्रहण आदि पर्वोंके समय त्रिपिण्ड श्राद्ध ही करना चाहिये । एकोद्दिष्ट श्राद्धको प्रेतात्माकी मृत्युके दिन करनेका विधान है । जो श्राद्धकर्ता पिताकी मृत्यु-तिथिपर एकोद्दिष्ट श्राद्धका परित्याग कर ( केवल ) अन्य श्राद्धोंको करता है, वह सदैव पितृघाती तथा माता और भाईका विनाशक हो जाता है । पिताकी क्षयाहतिथिपर ( एकोद्दिष्ट छोड़कर ) पार्वण श्राद्ध करनेवाला मानव अधम-से-अधम गतिको प्राप्त होता है । चूँकि प्रेतोंसे सम्बन्धित हो जानेसे पितृगण व्याकुल

हो जाते हैं, इसलिये प्रतिवर्ष एकोदिष्ट श्राद्ध करना चाहिये। जो मनुष्य मत्सररहित होकर वर्षपर्यन्त प्रेतके निमित्त अन्न आदि पदार्थोंसे युक्त जलपात्र दान करता रहता है, उसे अश्वमेध-यज्ञका फल प्राप्त होता है। विधियोंका ज्ञाता श्राद्धकर्ता जब आमश्राद्ध ( जिसमें ब्राह्मणोंको भोजन न कराकर कच्चा अन्न दिया जाता है ) करे तो विधिपूर्वक अग्निकरण करे और उसी समय पिण्डदान भी करे। जब पिता सपिण्डीकरण श्राद्धमें अपने पिता, पितामह, प्रपितामहके साथ सम्बन्ध प्राप्त कर लेता है, तब वह बन्धनसे मुक्त हो जाता है। मुक्त होनेपर भी वह कुशाके मार्जनसे लेपभागी हो जाता है। इस प्रकार चतुर्थ और पञ्चमसहित तीन पितर लेपभागी और पिता आदि तीन पिण्डभागी हैं। उनमें पिण्डदाता सातवीं संतान है। इस प्रकार सात पीढ़ीतक सपिण्डता मानी जाती है ॥ १७—२९ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें सपिण्डीकरणनामक अठारहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १८ ॥

---

# उन्नीसवाँ अध्याय

## श्राद्धोंमें पितरोंके लिये प्रदान किये गये हव्य-कव्यकी प्राप्तिका विवरण

ऋषय ऊचुः

**कथं कव्यानि देयानि हव्यानि च जनैरिह। गच्छन्ति पितृलोकस्थान् प्रापकः कोऽत्र गद्यते ॥ १ ॥**
**यदि मर्त्यो द्विजो भुङ्क्ते हूयते यदि वानले। शुभाशुभात्मकैः प्रेतैर्दत्तं तद् भुज्यते कथम् ॥ २ ॥**

**ऋषियोंने पूछा—**सूतजी! मनुष्योंको ( पितरोंके निमित्त ) हव्य और कव्य किस प्रकार देना चाहिये? इस मृत्युलोकमें पितरोंके लिये प्रदान किये गये हव्य-कव्य पितृलोकमें स्थित पितरोके पास कैसे पहुँच जाते हैं? यहाँ उनको पहुँचानेवाला कौन कहा गया है? यदि मृत्युलोकवासी ब्राह्मण उन्हें खा जाता है अथवा अग्निमें उनकी आहुति दे दी जाती है तो अपने कर्मानुसार शुभ एवं अशुभ योनियोंमें गये हुए प्रेतोंद्वारा उस पदार्थका उपभोग कैसे किया जाता है? ॥ १-२ ॥

सूत उवाच

**वसून् वदन्ति च पितॄन् रुद्रांश्चैव पितामहान्। प्रपितामहांस्तथादित्यानित्येवं वैदिकी श्रुतिः ॥ ३ ॥**
**नाम गोत्रं पितॄणां तु प्रापकं हव्यकव्ययोः। श्राद्धस्य मन्त्राः श्रद्धा च उपयोज्यातिभक्तितः ॥ ४ ॥**
**अग्निष्वात्तादयस्तेषामाधिपत्ये व्यवस्थिताः। नामगोत्रकालदेशा भवान्तरगतानपि ॥ ५ ॥**
**प्राणिनः प्रीणयन्त्येते तदाहारत्वमागतान्। देवो यदि पिता जातः शुभकर्मानुयोगतः ॥ ६ ॥**
**तस्यान्नममृतं भूत्वा दिव्यत्वेऽप्यनुगच्छति। दैत्यत्वे भोगरूपेण पशुत्वे च तृणं भवेत् ॥ ७ ॥**
**श्राद्धान्नं वायुरूपेण सर्पत्वेऽप्युपतिष्ठति। पानं भवति यक्षत्वे राक्षसत्वे तथामिषम् ॥ ८ ॥**
**दनुजत्वे तथा माया प्रेतत्वे रुधिरोदकम्। मनुष्यत्वेऽन्नपानानि नानाभोगरसं भवेत् ॥ ९ ॥**
**रतिशक्तिः स्त्रियः कान्ता भोज्यं भोजनशक्तिता। दानशक्तिः सविभवा रूपमारोग्यमेव च ॥ १० ॥**
**श्राद्धपुष्पमिदं प्रोक्तं फलं ब्रह्मसमागमः। आयुः पुत्रान् धनं विद्यां स्वर्गं मोक्षं सुखानि च ॥ ११ ॥**
**राज्यं चैव प्रयच्छन्ति प्रीताः पितृगणा नृणाम्।**
**श्रूयते च पुरा मोक्षं प्राप्ताः कौशिकसूनवः। पञ्चभिर्जन्मसम्बन्धैर्गता विष्णोः परं पदम् ॥ १२ ॥**

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे श्राद्धकल्पे फलानुगमनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥*

*

**सूतजी कहते हैं**—ऋषियो ! पितरोंको वसुगण, पितामहोंको रुद्रगण तथा प्रपितामहोंको आदित्यगण कहा जाता है—ऐसी वैदिकी श्रुति है। पितरोंके नाम और गोत्र ( उनके निमित्त प्रदान किये गये ) हव्य-कव्यको उनके पास पहुँचानेवाले हैं। अतिशय भक्तिपूर्वक उच्चरित श्राद्धके मन्त्र भी कारण हैं एवं श्रद्धाका उपयोग भी हेतु है। अग्निष्वात्त आदि पितरोंके आधिपत्य-पदपर स्थित हैं। उन देव-पितरोंके समक्ष जो खाद्य पदार्थ पितरोंका नाम, गोत्र, काल और देशका उच्चारण करके श्रद्धासे अर्पित किया जाता है, वह पितृगणोंको यदि वे जन्मान्तरमें भी गये हुए हों तो भी उन्हें तृप्त कर देता है। वह उस समय उस योनिके लिये उपयुक्त आहारके रूपमें परिणत हो जाता है। यदि शुभ कर्मोंके प्रभावसे पिता देवयोनिमें उत्पन्न हो गये हैं तो उनके उद्देश्यसे दिया गया अन्न अमृत होकर देवयोनिमें भी उन्हें प्राप्त होता है। वह श्राद्धान्न दैत्ययोनिमें भोगरूपमें और पशुयोनिमें तृणरूपमें बदल जाता है। सर्पयोनिमें वह वायुरूपसे सर्पके निकट पहुँचता है। यक्ष-योनिमें वह पीनेवाला पदार्थ तथा राक्षसयोनिमें मांस हो जाता है। दानवयोनिमें मायारूपमें, प्रेतयोनिमें रुधिर और जलके रूपमें तथा मानवयोनिमें नाना प्रकारके भोग-रसोंसे युक्त अन्न-पानादिके रूपमें परिवर्तित हो जाता है। रमण करनेकी शक्ति, सुन्दरी स्त्रियाँ, भोजन करनेके पदार्थ, भोजन पचानेकी शक्ति, प्रचुर सम्पत्तिके साथ-साथ दान देनेकी निष्ठा, सुन्दर रूप और स्वास्थ्य—ये सभी श्रद्धारूपी वृक्षके पुष्प बतलाये गये हैं और ब्रह्मप्राप्ति उसका फल है। पितृगण प्रसन्न होनेपर मनुष्योंको आयु, अनेक पुत्र, धन, विद्या, स्वर्ग, मोक्ष, सुख और राज्य प्रदान करते हैं। सुना जाता है कि कौशिकके पुत्र पूर्वकालमें ( श्राद्धके प्रभावसे व्याध, मृग, चक्रवाक आदि योनियोंमें ) पाँच बार जन्म लेनेके पश्चात् मुक्त होकर भगवान् विष्णुके परमपद वैकुण्ठलोकको चले गये थे ॥ ३-१२ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके श्राद्धकल्पमें फलानुगमन नामक उन्नीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १९ ॥

# बीसवाँ अध्याय

## महर्षि कौशिकके पुत्रोंका वृत्तान्त तथा पिपीलिकाकी कथा

ऋषय ऊचुः

**कथं कौशिकदायादाः प्राप्तास्ते योगमुत्तमम्। पञ्चभिर्जन्मसम्बन्धैः कथं कर्मक्षयो भवेत् ॥ १ ॥**

**ऋषियोंने पूछा**—सूतजी ! महर्षि कौशिकके* वे पुत्र किस प्रकार उत्तम योगको प्राप्त हुए तथा पाँच ही बार जन्म ग्रहण करनेसे उनके अशुभ कर्मोंका विनाश कैसे हुआ ? ॥ १ ॥

सूत उवाच

**कौशिको नाम धर्मात्मा कुरुक्षेत्रे महानृषिः। नामतः कर्मतस्तस्य सुतान् सप्त निबोधत ॥ २ ॥**
**स्वसृपः क्रोधनो हिंस्रः पिशुनः कविरेव च। वाग्दुष्टः पितृवर्ती च गर्गशिष्यास्तदाभवन् ॥ ३ ॥**
**पितर्युपरते तेषामभूद् दुर्भिक्षमुल्बणम्। अनावृष्टिश्च महती सर्वलोकभयंकरी ॥ ४ ॥**
**गर्गादेशाद् वने दोग्ध्रीं रक्षन्तस्ते तपोधनाः। खादामः कपिलामेतां वयं क्षुत्पीडिता भृशम् ॥ ५ ॥**

* कौशिक नामके प्राचीन समयमें १०–१२ व्यक्ति हुए हैं, जिनमें विश्वामित्र सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं। पर ये उनसे भिन्न हैं। विश्वामित्रका सम्बन्ध बिहारसे लेकर कन्नौजतक रहा है, पर ये कुरुक्षेत्रवासी हैं। यह कथा पद्मपुरा० १। १०, हरिवंश १। २१-२७ आदिमें भी है। और इसका संकेत गरुडपु० १। २१० । २०-२१ आदि बीसों स्थलोंपर है।

इति चिन्तयतां पापं लघुः प्राह तदानुजः । यद्यवश्यमियं वध्या श्राद्धरूपेण योज्यताम् ॥ ६ ॥
श्राद्धे नियोज्यमानेयं पापात् त्रास्यति नो ध्रुवम् । एवं कुर्वित्यनुज्ञातः पितृवर्ती तदाग्रजैः ॥ ७ ॥
चक्रे समाहितः श्राद्धमुपयुज्य च तां पुनः । द्वौ दैवे भ्रातरौ कृत्वा पित्र्ये त्रीनप्यनुक्रमात् ॥ ८ ॥
तथैकमतिथिं कृत्वा श्राद्धदः स्वयमेव तु । चकार मन्त्रवच्छ्राद्धं स्मरन् पितृपरायणः ॥ ९ ॥
विना गवा वत्सकोऽपि गुरवे विनिवेदितः । व्याघ्रेण निहता धेनुर्वत्सोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥ १० ॥
एवं सा भक्षिता धेनुः सप्तभिस्तैस्तपोधनैः । वैदिकं बलमाश्रित्य क्रूरे कर्मणि निर्भयाः ॥ ११ ॥
ततः कालावकृष्टास्ते व्याधा दाशपुरेऽभवन् । जातिस्मरत्वं प्राप्तास्ते पितृभावेन भाविताः ॥ १२ ॥
यत् कृतं क्रूरकर्माणि श्राद्धरूपेण तैस्तदा । तेन ते भवने जाता व्याधानां क्रूरकर्मिणाम् ॥ १३ ॥
पितॄणां चैव माहात्म्याज्जाता जातिस्मरास्तु ते । ते तु वैराग्ययोगेन आस्थायानशनं पुनः ॥ १४ ॥
जातिस्मराः सप्त जाता मृगाः कालञ्जरे गिरौ । नीलकण्ठस्य पुरतः पितृभावानुभाविताः ॥ १५ ॥
तत्रापि ज्ञानवैराग्यात् प्राणानुत्सृज्य धर्मतः । लोकैरवेक्ष्यमाणास्ते तीर्थान्तेऽनशनेन तु ॥ १६ ॥
मानसे चक्रवाकास्ते संजाताः सप्त योगिनः । नामतः कर्मतः सर्वाञ्छृणुध्वं द्विजसत्तमाः ॥ १७ ॥
सुमनाः कुमुदः शुद्धश्छिद्रदर्शी सुनेत्रकः । सुनेत्रश्चांशुमांश्चैव सप्तैते योगपारगाः ॥ १८ ॥
योगभ्रष्टास्त्रयस्तेषां बभ्रमुश्चाल्पचेतनाः । दृष्ट्वा विभ्राजमानं तमुद्याने स्त्रीभिरन्वितम् ॥ १९ ॥
क्रीडन्तं विविधैर्भावैर्महाबलपराक्रमम् । पाञ्चालान्वयसम्भूतं प्रभूतबलवाहनम् ॥ २० ॥
राज्यकामोऽभवच्चैकस्तेषां मध्ये जलौकसाम् । पितृवर्ती च यो विप्रः श्राद्धकृत् पितृवत्सलः ॥ २१ ॥
अपरौ मन्त्रिणौ दृष्ट्वा प्रभूतबलवाहनौ । मन्त्रित्वे चक्रतुश्चेच्छामस्मिन् मर्त्ये द्विजोत्तमाः ॥ २२ ॥
तन्मध्ये ये तु निष्कामास्ते बभूवुर्द्विजोत्तमाः । विभ्राजपुत्रस्त्वेकोऽभूद्ब्रह्मदत्त इति स्मृतः ॥ २३ ॥
मन्त्रिपुत्रौ तथा चोभौ कण्डरीकसुबालकौ । ब्रह्मदत्तोऽभिषिक्तः सन् पुरोहितविपश्चिता ॥ २४ ॥
पाञ्चालराजो विक्रान्तः सर्वशास्त्रविशारदः । योगवित् सर्वजन्तूनां रुतवेत्ताभवत् तदा ॥ २५ ॥
तस्य राज्ञोऽभवद् भार्या देवलस्यात्मजा शुभा । संनतिर्नाम विख्याता कपिला याभवत् पुरा ॥ २६ ॥
पितृकार्ये नियुक्तत्वादभवद् ब्रह्मवादिनी । तया चकार सहितः स राज्यं राजनन्दनः ॥ २७ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! कुरुक्षेत्रमें कौशिक नामक एक धर्मात्मा महर्षि थे । उनके सात पुत्र थे । ( उन पुत्रोंके वृत्तान्त ) नाम एवं कर्मानुसार बतला रहा हूँ, सुनिये । उनके स्वसृप, क्रोधन, हिंस्र, पिशुन, कवि, वाग्दुष्ट और पितृवर्ती—ये नाम थे । पिताकी मृत्युके पश्चात् वे सभी महर्षि गर्गके शिष्य हुए । उस समय समस्त लोकोंको भयभीत करनेवाली महती अनावृष्टि हुई, जिसके कारण भीषण अकाल पड़ गया । इसी बीच वे सभी तपस्वी अपने गुरु गर्गाचार्यकी आज्ञासे उनकी सेवामें लग गये । वहाँ वनमें वे सभी भूखसे अत्यन्त पीडित हो गये । जब क्षुधा-शान्तिका कोई अन्य उपाय न सूझा, तब छोटे भाई पितृवर्तीने श्राद्ध-कर्म करनेकी सम्मति दी । बड़े भाइयोंद्वारा 'अच्छा, ऐसा ही करो'—ऐसी आज्ञा पाकर पितृवर्तीने समाहित-चित्त होकर श्राद्धका उपक्रम आरम्भ किया । उस समय उसने छोटे-बड़ेके क्रमसे दो भाइयोंको देव-कार्यमें, तीनको पितृकार्यमें और एकको अतिथि-रूपमें नियुक्त किया तथा स्वयं श्राद्धकर्ता बन गया । इस प्रकार पितृपरायण पितृवर्तीने पितरोंका स्मरण करते हुए मन्त्रोच्चारणपूर्वक श्राद्धकार्य सम्पन्न किया । कालक्रमानुसार मृत्युके उपरान्त श्राद्धवैगुण्यरूप कर्मदोषसे वे सभी दाशपुर ( मन्दसौर ) नामक नगरमें बहेलिया होकर उत्पन्न हुए, किंतु पितृ-स्नेह ( श्राद्धकृत्य )से भावित होनेके कारण उन्हें पूर्वजन्मके वृत्तान्तोंका स्मरण बना रहा । पूर्वजन्मके कर्मोंके परिणामस्वरूप वे क्रूरकर्मा बहेलियोंके घरमें पैदा तो हुए, परंतु

पितरोंके ही माहात्म्यसे वे सभी जातिस्मर ( पूर्वजन्मके वृत्तान्तोंके ज्ञाता ) बने ही रहे। पुनः श्राद्ध-कर्मके फलसे वैराग्य उत्पन्न हो जानेके कारण उन सभीने अनशन करके अपने-अपने उस शरीरका त्याग कर दिया। तदनन्तर वे सातों कालञ्जर पर्वतपर भगवान् नीलकण्ठके समक्ष मृग-योनिमें उत्पन्न हुए। वहाँ भी पितरोंके स्नेहसे अनुभावित होनेके कारण वे जातिस्मर बने ही रहे। उस योनिमें भी ज्ञान और वैराग्य उत्पन्न हो जानेके कारण उन लोगोंने तीर्थ-स्थानमें अनशन करके लोगोंके देखते-देखते धर्मपूर्वक प्राणोंका उत्सर्ग कर दिया। तत्पश्चात् उन सातों योगाभ्यासी जनोंने मानसरोवरमें चक्रवाककी योनिमें जन्म धारण किया। द्विजवरो! अब आपलोग नाम एवं कर्मानुसार उन सभीका वृत्तान्त श्रवण कीजिये। इस योनिमें उनके नाम हैं—सुमना, कुमुद, शुद्ध, छिद्रदर्शी, सुनेत्रक, सुनेत्र और अंशुमान्। ये सातों योगके पारदर्शी थे। इनमेंसे अल्पबुद्धिवाले तीन तो योगसे भ्रष्ट हो गये और इधर-उधर भ्रमण करने लगे। उसी समय एक पाञ्चालवंशी नरेश, जो महान् बल और पराक्रमसे सम्पन्न था तथा जिसके पास अधिक-से-अधिक सेना और वाहन थे, अपने क्रीडोद्यानमें स्त्रियोंके साथ अनेकविध हाव-भावोंसे क्रीडा कर रहा था। उस शोभाशाली राजाको देखकर उन जलपक्षियोंमेंसे एकको, जो पितृभक्त श्राद्धकर्ता पितृवर्ती नामक ब्राह्मण था, राज्य-प्राप्तिकी आकाङ्क्षा उत्पन्न हो गयी। इसी प्रकार दूसरे दोनोंने राजाके दो मन्त्रियोंको प्रचुर सेना और वाहनोंसे युक्त देखकर इस मृत्युलोकमें मन्त्रि-पद प्राप्त करनेकी इच्छा व्यक्त की। द्विजवरो! उनमें जो चार निष्काम थे, वे सभी श्रेष्ठ ब्राह्मणकुलमें पैदा हुए। उन तीनोंमेंसे पहला राजा विभ्राजके पुत्ररूपमें ब्रह्मदत्त नामसे विख्यात हुआ तथा अन्य दो कण्डरीक और सुबालक नामसे मन्त्रीके पुत्र हुए। (राजा विभ्राज्की मृत्युके उपरान्त ) विद्वान् पुरोहितने ब्रह्मदत्तको राज्यपर अभिषिक्त कर दिया। वह पाञ्चाल-नरेश ब्रह्मदत्त प्रबल पराक्रमी, सभी शास्त्रोंमें प्रवीण, योगज्ञ और सभी जन्तुओंकी बोलीका ज्ञाता था। देवलकी सुन्दरी कन्या, जो संनति नामसे विख्यात थी, राजा ब्रह्मदत्तकी पत्नी हुई। वह ब्रह्मवादिनी थी। उस पत्नीके साथ रहकर राजकुमार ब्रह्मदत्त राज्य-भार सँभालने लगा ॥ २—२७ ॥

कदाचिदुद्यानगतस्तया सह स पार्थिवः। ददर्श कीटमिथुनमनङ्गकलहाकुलम् ॥ २८ ॥
पिपीलिकामनुनयन् परितः कीटकामुकः। पञ्चबाणाभितप्ताङ्गः सगद्गदमुवाच ह ॥ २९ ॥
न त्वया सदृशी लोके कामिनी विद्यते क्वचित्। मध्यक्षामातिजघना बृहद्वक्षोऽभिगामिनी ॥ ३० ॥
सुवर्णवर्णा सुश्रोणी मञ्जूका चारुहासिनी। सुलक्ष्यनेत्ररसना गुडशर्करवत्सला ॥ ३१ ॥
भोक्ष्यसे मयि भुङ्क्ते त्वं स्नासि स्नाते तथा मयि। प्रोषिते सति दीना त्वं क्रुद्धेऽपि भयचञ्चला ॥ ३२ ॥
किमर्थं वद कल्याणि सरोषवदना स्थिता। सा तमाह सकोपा तु किमालपसि मां शठ ॥ ३३ ॥
त्वया मोदकचूर्णं तु मां विहाय विनेष्यता। प्रदत्तं समतिक्रान्ते दिनेऽन्यस्याः समन्मथ ॥ ३४ ॥

एक बार राजा ब्रह्मदत्त अपनी पत्नी संनतिके साथ भ्रमण करनेके लिये उद्यानमें गया। वहाँ उसने काम-कलहसे व्याकुल एक कीट-दम्पति ( चींटा-चींटी ) को देखा। वह कीट, जिसका शरीर कामदेवके बाणोंसे संतप्त हो उठा था, चारों ओरसे चींटीसे अनुनय-विनय करता हुआ गद्गद वाणीमें बोला—'प्रिये! इस जगत्में तुम्हारे समान सुन्दरी स्त्री कहीं कोई भी नहीं है। तुम्हारा कटिप्रदेश पतला और जंघे मोटे हैं। तुम स्तनोंके भारी भारसे झुककर चलनेवाली, स्वर्णके समान गौरवर्णा, सुन्दर कमरवाली, मृदुभाषिणी, मनोहर

१—इसका कहीं अणुह तथा कहीं नीप नाम भी आया है।

हास्यसे युक्त, भलीभाँति लक्ष्यको भेदन करनेवाले नेत्रों और जीभसे समन्वित तथा गुड़ और शक्करकी प्रेमी हो। तुम मेरे भोजन कर लेनेके पश्चात भोजन करती हो तथा मेरे स्नान कर लेनेपर स्नान करती हो। इसी प्रकार मेरे परदेश चले जानेपर तुम दीन हो जाती हो और क्रुद्ध होनेपर भयभीत हो उठती हो। कल्याणि! बतलाओ तो सही, तुम किस कारण क्रोधसे मुँह फुलाये बैठी हो।' तब क्रोधसे भरी हुई चींटी उस कीटसे बोली—'शठ! तुम क्या मुझसे व्यर्थ बकवाद कर रहे हो? अरे धूर्त! अभी कल ही तुमने मेरा परित्याग करके लड्डूका चूर्ण ले जाकर दूसरी चींटीको नहीं दिया है?' ॥ २८–३४ ॥

पिपीलिक उवाच

त्वत्सादृश्यान्मया दत्तमन्यस्यै वरवर्णिनि। तदेकमपराधं मे क्षन्तुमर्हसि भामिनि ॥ ३५ ॥
नैतदेवं करिष्यामि पुनः क्वापीह सुव्रते। स्पृशामि पादौ सत्येन प्रसीद प्रणतस्य मे ॥ ३६ ॥

चींटा बोला—वरवर्णिनि! तुम्हारे सदृश रूप-रंगवाली होनेके कारण मैंने भूलसे दूसरी चींटीको लड्डू दे दिया है, अतः भामिनि! तुम मेरे इस एक अपराधको क्षमा कर दो। सुव्रते! मैं पुनः कभी भी इस प्रकारका कार्य नहीं करूँगा। मैं सत्यकी दुहाई देकर तुम्हारे चरण छूता हूँ, तुम मुझ विनीतपर प्रसन्न हो जाओ ॥ ३५–३६ ॥

सूत उवाच

इति तद्वचनं श्रुत्वा सा प्रसन्नाभवत् ततः। आत्मानमर्पयामास मोहनाय पिपीलिका ॥ ३७ ॥
ब्रह्मदत्तोऽप्यशेषं तं ज्ञात्वा विस्मयमागमत्। सर्वसत्त्वरुतज्ञत्वात् प्रसादाच्चक्रपाणिनः ॥ ३८ ॥

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे श्राद्धकल्पे श्राद्धमाहात्म्ये पिपीलिकावहासो नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥*

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! इस प्रकार उस चींटेका कथन सुनकर वह चींटी प्रसन्न हो गयी। इधर, चक्रपाणि भगवान् विष्णुकी कृपासे समस्त प्राणियोंकी बोलीका ज्ञाता होनेके कारण ब्रह्मदत्त भी उस सारे वृत्तान्तको जानकर विस्मयविमुग्ध हो गये ॥ ३७-३८ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके श्राद्धकल्पके श्राद्धमाहात्म्यमें पिपीलिकावहास नामक बीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २० ॥

## इक्कीसवाँ अध्याय

### ब्रह्मदत्तका वृत्तान्त तथा चार चक्रवाकोंकी गतिका वर्णन

ऋषय ऊचुः

कथं सत्त्वरुतज्ञोऽभूद् ब्रह्मदत्तो धरातले। तच्चाभवत् कस्य कुले चक्रवाकचतुष्टयम् ॥ १ ॥

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! ब्रह्मदत्त इस भूतलपर जन्म लेकर समस्त प्राणियोंकी बोलीके ज्ञाता कैसे हो गये? तथा वे चारों चक्रवाक किसके कुलमें उत्पन्न हुए? ॥ १ ॥

सूत उवाच

तस्मिन्नेव पुरे जातास्ते च चक्राह्वयास्तदा। वृद्धद्विजस्य दायादा विप्रा जातिस्मराः पुरा ॥ २ ॥
धृतिमांस्तत्त्वदर्शी च विद्याचण्डस्तपोत्सुकः। नामतः कर्मतश्चैते सुदरिद्रस्य ते सुताः ॥ ३ ॥
तपसे बुद्धिरभवत् तदा तेषां द्विजन्मनाम्। यास्यामः परमां सिद्धिमित्यूचुस्ते द्विजोत्तमाः ॥ ४ ॥
ततस्तद्वचनं श्रुत्वा सुदरिद्रो महातपाः। उवाच दीनया वाचा किमेतदिति पुत्रकाः ॥ ५ ॥

अधर्म एष इति वः पिता तानभ्यवारयत् । वृद्धं पितरमुत्सृज्य दरिद्रं वनवासिनः ॥ ६ ॥
को नु धर्मोऽत्र भविता मत्त्यागाद् गतिरेव वा । ऊचुस्ते कल्पिता वृत्तिस्तव तात वदस्व तत् ॥ ७ ॥
वित्तमेतत् पुरो राज्ञः स ते दास्यति पुष्कलम् । धनं ग्रामसहस्राणि प्रभाते पठतस्तव ॥ ८ ॥
ये विप्रमुख्याः कुरुजाङ्गलेषु दाशास्तथा दाशपुरे मृगाश्च ।
कालंजरे सप्त च चक्रवाका ये मानसे तेऽत्र वसन्ति सिद्धाः ॥ ९ ॥
इत्युक्त्वा पितरं जग्मुस्ते वनं तपसे पुनः । वृद्धोऽपि राजभवनं जगामात्मार्थसिद्धये ॥ १० ॥

**सूतजी कहते हैं**—ऋषियो ! वे चारों चक्रवाक उसी ब्रह्मदत्तके नगरमें एक वृद्ध ब्राह्मणके पुत्ररूपसे उत्पन्न हुए थे। उस जन्ममें भी वे ब्राह्मण पूर्ववत् जातिस्मर बने रहे। ( उस समय उनके ) धृतिमान्, तत्त्वदर्शी, विद्याचण्ड और तपोत्सुक—ये चार नाम थे। वे कर्मानुसार एक अत्यन्त सुदरिद्र ( उस ब्राह्मणका नाम भी सुदरिद्र था ) ब्राह्मणके पुत्र थे। बचपनमें ही इन ब्राह्मणोंकी बुद्धि तपस्याकी ओर प्रवृत्त हो गयी। तब ये द्विजश्रेष्ठ पितासे प्रार्थना करते हुए बोले—'पिताजी ! हमलोग तपस्या करके परम सिद्धि प्राप्त करना चाहते हैं।' उनके इस कथनको सुनकर महातपस्वी सुदरिद्र दीन वाणीमें बोले—'पुत्रो ! यह कैसी बात कह रहे हो ? मुझ दरिद्र बूढ़े पिताको छोड़कर तुमलोग वनवासी होना चाहते हो, भला मेरा परित्याग कर देनेसे तुमलोगोंको कौन-सा धर्म प्राप्त होगा तथा तुम्हारी क्या गति होगी ? यह तो महान् अधर्म है।' ऐसा कहकर पिताने उन्हें मना कर दिया। यह सुनकर उन पुत्रोंने कहा—'तात ! हमलोगोंने आपके जीविकोपार्जनका प्रबन्ध कर लिया है। इसके अतिरिक्त आपको और क्या चाहिये, सो बतलाइये। यदि आप प्रातःकाल राजा ब्रह्मदत्तके समक्ष जाकर ( आगे बताये जानेवाले श्लोकका ) पाठ कीजियेगा तो वे आपको प्रचुर धन-सम्पत्ति एवं सहस्रों ग्राम प्रदान करेंगे। ( उस श्लोकका अर्थ यों है—) 'जो कुरुक्षेत्रमें श्रेष्ठ ब्राह्मण, दाशपुर ( मंदसौर )में व्याध, कालञ्जर पर्वतपर मृग और मानसरोवरमें सात चक्रवाक थे, वे सिद्ध ( होकर ) यहाँ निवास करते हैं।' पितासे ऐसा कहकर वे सभी तपस्या करनेके लिये वनमें चले गये। इधर वृद्ध सुदरिद्र भी अपनी स्वार्थ-सिद्धिके लिये राजभवनकी ओर चल पड़े ॥ २—१० ॥

अणुहो नाम वैभ्राजः पाञ्चलाधिपतिः पुरा । पुत्रार्थी देवदेवेशं हरिं नारायणं प्रभुम् ॥ ११ ॥
आराधयामास विभुं तीव्रव्रतपरायणः । ततः कालेन महता तुष्टस्तस्य जनार्दनः ॥ १२ ॥
वरं वृणीष्व भद्रं ते हृदयेनेप्सितं नृप । एवमुक्तस्तु देवेन वव्रे स वरमुत्तमम् ॥ १३ ॥
पुत्रं मे देहि देवेश महाबलपराक्रमम् । पारगं सर्वशास्त्राणां धार्मिकं योगिनां परम् ॥ १४ ॥
सर्वसत्त्वरुतज्ञं मे देहि योगिनमात्मजम् । एवमस्त्विति विश्वात्मा तमाह परमेश्वरः ॥ १५ ॥
पश्यतां सर्वदेवानां तत्रैवान्तरधीयत । ततः स तस्य पुत्रोऽभूद् ब्रह्मदत्तः प्रतापवान् ॥ १६ ॥
सर्वसत्त्वानुकम्पी च सर्वसत्त्वबलाधिकः । सर्वसत्त्वरुतज्ञश्च सर्वसत्त्वेश्वरेश्वरः ॥ १७ ॥

( अब ब्रह्मदत्तकी उत्पत्ति-कथा बतलाते हैं—) पूर्वकालमें पञ्चाल देशके एक अणुह नामक नरेश हो गये हैं, जो विभ्राट्के पुत्र थे। वे पुत्र-प्राप्तिकी कामनासे कठोर व्रतमें तत्पर होकर सामर्थ्यशाली एवं सर्वव्यापक देव-देवेश्वर नारायण श्रीहरिकी आराधना करने लगे। तत्पश्चात् अधिक काल व्यतीत होनेपर भगवान् जनार्दन उनकी आराधनासे प्रसन्न हुए ( और उनके समक्ष प्रकट होकर बोले—) 'राजन् ! तुम्हारा कल्याण हो, अब तुम अपना मनोऽभिलषित वरदान माँग लो।' भगवान् विष्णुके ऐसा कहनेपर राजाने उत्तम वरकी याचना करते हुए कहा—'देवेश ! मुझे ऐसा पुत्र

प्रदान कीजिये, जो महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न, सम्पूर्ण शास्त्रोंका पारगामी विद्वान्, धार्मिक, श्रेष्ठ योगी, सम्पूर्ण प्राणियोंकी बोलीका ज्ञाता और योगाभ्यासी हो। भगवन्! मुझे ऐसा ही औरस पुत्र दीजिये।' यह सुनकर विश्वात्मा परमेश्वर राजासे 'ऐसा ही हो'—यों कहकर समस्त देवताओंके देखते-देखते वहीं अन्तर्हित हो गये। तदनन्तर समयानुसार वही प्रतापी ब्रह्मदत्त उस राजा अणुहका पुत्र हुआ, जो आगे चलकर सम्पूर्ण जीवोंपर दयालु, समस्त प्राणियोंमें अमित बलसम्पन्न, सम्पूर्ण प्राणियोंकी भाषाका ज्ञाता और समस्त प्राणियोंके राजाधिराज-सम्राट् हुआ॥ ११—१७॥

अहसत् तेन योगात्मा स पिपीलिकरागतः। यत्र तत्कीटमिथुनं रममाणमवस्थितम्॥ १८॥
ततः सा संनतिर्दृष्ट्वा तं हसन्तं सुविस्मिता। किमप्याशङ्क्य मनसा तमपृच्छन्नरेश्वरम्॥ १९॥

तत्पश्चात् जहाँ वे कीट-दम्पति (चींटे-चींटी) बातें करते हुए स्थित थे, वहाँ पहुँचनेपर चींटेकी कामचेष्टाको देखकर योगात्मा ब्रह्मदत्तको हँसी आ गयी। राजाको हँसते देखकर महारानी संनति आश्चर्यचकित हो उठी और मनमें किसी भावी अनर्थकी आशङ्का करके नरेश्वर ब्रह्मदत्तसे प्रश्न कर बैठी॥ १८—१९॥

संनतिरुवाच

अकस्मादतिहासस्ते किमर्थमभवन्नृप। हास्यहेतुं न जानामि यदकाले कृतं त्वया॥ २०॥

संनतिने पूछा—राजन्! अकस्मात् आपका यह अट्टहास किसलिये हुआ है? असमयमें आपको जो यह हँसी आयी है, इस हास्यका कारण मैं नहीं समझ पा रही हूँ॥ २०॥

सूत उवाच

अवदद् राजपुत्रोऽपि स पिपीलिकभाषितम्। रागवाग्भिः समुत्पन्नमेतद्धास्यं वरानने॥ २१॥
न चान्यत्कारणं किंचिद्धास्यहेतौ शुचिस्मिते। न सामन्यत् तदा देवी प्राहालीकमिदं वचः॥ २२॥
अहमेवाद्य हसिता न जीविष्ये त्वयाधुना। कथं पिपीलिकालापं मर्त्यो वेत्ति विना सुरान्॥ २३॥
तस्मात् त्वयाहमेवेह हसिता किमतः परम्। ततो निरुत्तरो राजा जिज्ञासुस्तत्पुरो हरेः॥ २४॥
आस्थाय नियमं तस्थौ सप्तरात्रमकल्मषः। स्वप्ने प्राह हृषीकेशः प्रभाते पर्यटन् पुरम्॥ २५॥
वृद्धद्विजो यस्तद्वाक्यात् सर्वं ज्ञास्यस्यशेषतः। इत्युक्त्वान्तर्दधे विष्णुः प्रभातेऽथ नृपः पुरात्॥ २६॥
निर्गच्छन्मन्त्रिसहितः सभार्यो वृद्धमग्रतः। गदन्तं विप्रमायान्तं तं वृद्धं संददर्श ह॥ २७॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! तब राजकुमार ब्रह्मदत्तने (महारानी संनतिसे) चींटे-चींटीके उस सारे वार्तालापको सुनाते हुए कहा—'वरानने! इनके प्रेमालापपूर्ण वचनोंको सुननेसे मुझे ऐसी हँसी आ गयी है। शुचिस्मिते! मेरी हँसीके विषयमें कोई अन्य कारण नहीं है।' परंतु रानी संनतिने (राजाके उस कथनपर) विश्वास नहीं किया और कहा—'राजन्! आपका यह कथन सरासर असत्य है। अभी-अभी आपने मेरे ही किसी विषयको लेकर हास्य किया है, अतः अब मैं जीवन धारण नहीं करूँगी। भला, देवताओंके अतिरिक्त मृत्युलोकनिवासी प्राणी चींटे-चींटीके वार्तालापको कैसे जान सकता है! इसलिये यहाँ आपने मेरी ही हँसी उड़ायी है। इसके अतिरिक्त और क्या हो सकता है?' रानीकी बात सुनकर निष्पाप राजा ब्रह्मदत्त कुछ उत्तर न दे सके। फिर इस रहस्यको जाननेकी इच्छासे वे श्रीहरिके समक्ष नियमपूर्वक आराधना करते हुए सात राततक बैठे रहे। अन्तमें भगवान् हृषीकेशने स्वप्नमें राजासे कहा—'राजन्! प्रातःकाल तुम्हारे नगरमें घूमता हुआ एक वृद्ध ब्राह्मण जो कुछ कहेगा, उसके उन वचनोंसे तुम्हें सारा रहस्य ज्ञात हो जायगा।' यों कहकर भगवान् विष्णु अन्तर्धान हो गये। तदनन्तर

प्रातःकाल जब राजा ब्रह्मदत्त अपनी पत्नी और दोनो मन्त्रियोंके साथ नगरसे निकल रहे थे, उसी समय उन्होंने अपने समक्ष आते हुए उस वृद्ध ब्राह्मणको देखा, जो इस प्रकार कह रहा था ॥ २१–२७ ॥

ब्राह्मण उवाच

ये विप्रमुख्याः कुरुजाङ्गलेषु दाशास्तथा दाशपुरे मृगाश्च।
कालंजरे सप्त च चक्रवाका ये मानसे तेऽत्र वसन्ति सिद्धाः ॥ २८ ॥

ब्राह्मण कह रहा था—'जो (पहले) कुरुक्षेत्रमें श्रेष्ठ ब्राह्मणके रूपमे, दाशपुर (मंदसौर)में व्याधके रूपमें, कालञ्जर—पर्वतपर मृग-योनिमें और मानसरोवरमें सात चक्रवाकके रूपमें उत्पन्न हुए थे, वे ही (व्यक्ति अब) सिद्ध (होकर) यहाँ निवास कर रहे हैं' ॥ २८ ॥

सूत उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्ताभ्यां स पपात शुचा ततः। जातिस्मरत्वमगमत् तौ च मन्त्रिवरावुभौ ॥ २९ ॥
कामशास्त्रप्रणेता च बाभ्रव्यस्तु सुबालकः। पाञ्चाल इति लोकेषु विश्रुतः सर्वशास्त्रवित् ॥ ३० ॥
कण्डरीकोऽपि धर्मात्मा वेदशास्त्रप्रवर्तकः। भूत्वा जातिस्मरौ शोकात् पतितावग्रतस्तदा ॥ ३१ ॥
हा वयं योगविभ्रष्टाः कामतः कर्मबन्धनाः। एवं विलप्य बहुशस्त्रयस्ते योगपारगाः ॥ ३२ ॥
विस्मयाच्छ्राद्धमाहात्म्यमभिनन्द्य पुनः पुनः। ततस्तस्मै धनं दत्त्वा प्रभूतग्रामसंयुतम् ॥ ३३ ॥
विसृज्य ब्राह्मणं तं च वृद्धं धनमुदान्वितम्। आत्मीयं नृपतिः पुत्रं नृपलक्षणसंयुतम् ॥ ३४ ॥
विष्वक्सेनाभिधानं तु राजा राज्येऽभ्यषेचयत्। मानसे मिलिताः सर्वे ततस्ते योगिनो वराः ॥ ३५ ॥
ब्रह्मदत्तादयस्तस्मिन् पितृसक्ता विमत्सराः। संनतिश्चाभवद् भ्रष्टा मयैतत् किल दर्शितम् ॥ ३६ ॥
राज्यत्यागफलं सर्वं यदेतदभिलक्ष्यते। तथेति प्राह राजा तु पुनस्तामभिनन्दयन् ॥ ३७ ॥
त्वत्प्रसादादिदं सर्वं मयैतत् प्राप्यते फलम्। ततस्ते योगमास्थाय सर्व एव वनौकसः ॥ ३८ ॥
ब्रह्मरन्ध्रेण परमं पदमापुस्तपोबलात्। एवमायुर्धनं विद्यां स्वर्गं मोक्षं सुखानि च ॥ ३९ ॥
प्रयच्छन्ति सुतान् राज्यं नृणां प्रीताः पितामहाः। य इदं पितृमाहात्म्यं ब्रह्मदत्तस्य च द्विजाः ॥ ४० ॥
द्विजेभ्यः श्रावयेद् यो वा शृणोत्यथ पठेत् तु वा। कल्पकोटिशतं साग्रं ब्रह्मलोके महीयते ॥ ४१ ॥

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे श्राद्धकल्पे पितृमाहात्म्यं नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥*

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! ब्राह्मणकी ऐसी बात सुनकर राजा शोकाकुल हो अपने दोनों मन्त्रियोंके साथ भूतलपर गिर पड़े। उस समय उन्हे जातिस्मरत्व (पूर्वजन्मके वृत्तान्तोंके ज्ञातृत्व)की प्राप्ति हो गयी। उन दोनों श्रेष्ठ मन्त्रियोंमें एक बाभ्रव्य सुबालक कामशास्त्रका प्रणेता और सम्पूर्ण शास्त्रोंका ज्ञाता था। वह संसारमें पाञ्चाल नामसे विख्यात था। दूसरा कण्डरीक भी धर्मात्मा और वेद-शास्त्रका प्रवर्तक था। वे दोनों भी उस समय राजाके अग्रभागमें शोकाविष्ट हो धराशायी हो गये और उन्हें भी जातिस्मरत्वकी प्राप्ति हुई। (उस समय वे विलाप करते हुए कहने लगे—) 'हाय! हमलोग लोलुप हो कर्मबन्धनमें फँसकर योगसे पूर्णतया भ्रष्ट हो गये।' इस तरह अनेकविध विलाप करके वे तीनों योगके पारदर्शी विद्वान् विस्मयाविष्ट हो बारंबार श्राद्धके माहात्म्यका अभिनन्दन करने लगे। तत्पश्चात् राजाने उस ब्राह्मणको अनेक गाँवोंसहित प्रचुर धन-सम्पत्ति प्रदान की। इस प्रकार धनकी प्राप्तिसे हर्षित हुए उस वृद्ध ब्राह्मणको विदाकर राजा

ब्रह्मदत्तने राजलक्षणोंसे युक्त अपने विष्वक्सेन नामक औरस पुत्रको राज्यपर अभिषिक्त कर दिया ( और स्वयं जंगलकी राह ली )। तदनन्तर ब्रह्मदत्त आदि वे सभी श्रेष्ठ योगी मत्सररहित एवं पितृभक्त होकर उस मानसरोवरमें परस्पर आ मिले। संनतिका अमर्ष गल गया और वह राजासे कहने लगी—'राजन्! आप जो यह अभिलाषा कर रहे हैं, वह सब राज्य-त्यागका ही परिणाम है और निश्चय ही मेरेद्वारा घटित हुआ है।' राजाने 'तथेति'—ऐसा ही है कहकर उसकी बातको स्वीकार किया और पुनः उसका अभिनन्दन करते हुए कहा—'यह तुम्हारी ही कृपा है, जो मुझे यह सारा फल प्राप्त हो रहा है।' तदनन्तर वे सभी वनवासी योगका आश्रय लेकर अपने तपोबलके प्रभावसे ब्रह्मरन्ध्रद्वारा प्राणत्याग करके परमपदको प्राप्त हो गये। इस प्रकार प्रसन्न हुए पितामह—पितरलोग मनुष्योंको आयु, धन, विद्या, स्वर्ग, मोक्ष, सुख, पुत्र और राज्य प्रदान करते हैं। द्विजवरो! जो मनुष्य ब्रह्मदत्तके इस पितृमाहात्म्यको ब्राह्मणोंको सुनाता है या स्वयं श्रवण करता है अथवा पढ़ता है, वह सौ करोड़ कल्पोंतक ब्रह्मलोकमें प्रशंसित होता है॥ २९–४१॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके श्राद्धकल्पमें पितृ-माहात्म्य नामक इक्कीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २१॥

# बाईसवाँ अध्याय

## श्राद्धके योग्य समय, स्थान ( तीर्थ ) तथा कुछ विशेष नियमोंका वर्णन

ऋषय ऊचुः

कस्मिन् काले च तच्छ्राद्धमनन्तफलदं भवेत्।
कस्मिन् वासरभागे तु श्राद्धकृच्छ्राद्धमाचरेत्। तीर्थेषु केषु च कृतं श्राद्धं बहुफलं भवेत्॥ १॥

**ऋषियोंने पूछा—**सूतजी! श्राद्धकर्ताको दिनके किस भागमें श्राद्ध करना चाहिये? किस कालमें किया गया वह श्राद्ध अनन्त फलदायक होता है? तथा किन-किन तीर्थोंमें किया गया श्राद्ध अधिक-से-अधिक फल प्रदान करता है?॥ १॥

सूत उवाच

अपराह्णे तु सम्प्राप्ते अभिजिद्रौहिणोदये। यत्किंचिद् दीयते तत्र तदक्षयमुदाहृतम्॥ २॥
तीर्थानि यानि सर्वाणि पितॄणां वल्लभानि च। नामतस्तानि वक्ष्यामि संक्षेपेण द्विजोत्तमाः॥ ३॥
पितृतीर्थं गयानाम सर्वतीर्थवरं शुभम्। यत्रास्ते देवदेवेशः स्वयमेव पितामहः॥ ४॥
तत्रैषा पितृभिर्गीता गाथा भागमभीप्सुभिः॥ ५॥
एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत्। यजेत वाश्वमेधेन नीलं वा वृषमुत्सृजेत्॥ ६॥
तथा वाराणसी पुण्या पितॄणां वल्लभा सदा। यत्राविमुक्तसांनिध्यं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम्॥ ७॥
पितॄणां वल्लभं तद्वत् पुण्यं च विमलेश्वरम्। पितृतीर्थं प्रयागं तु सर्वकामफलप्रदम्॥ ८॥
वटेश्वरस्तु भगवान् माधवेन समन्वितः। योगनिद्राशयस्तद्वत् सदा वसति केशवः॥ ९॥

**सूतजी कहते हैं—**ऋषियो! अपराह्ण-काल ( दिनके तीसरे पहरमें प्राप्त होनेवाले ) अभिजित् मुहूर्तमें तथा रोहिणीके उदयकालमें ( पितरोंके निमित्त ) जो कुछ दिया जाता है, वह अक्षय बतलाया गया है। द्विजवरो! अब जो-जो तीर्थ पितरोंको परम प्रिय हैं, उन सबका नाम-निर्देश-पूर्वक संक्षेपसे वर्णन कर रहा हूँ। गया नामक पितृतीर्थ सभी तीर्थोंमें श्रेष्ठ एवं मङ्गलदायक है, वहाँ देवदेवेश्वर भगवान् पितामह स्वयं ही विराजमान हैं। वहाँ श्राद्धमें भाग पानेकी कामनावाले पितरोंद्वारा यह गाथा गायी गयी है—'मनुष्योंको अनेक पुत्रोंकी अभिलाषा करनी

काशीका मनोरम दृश्य एव श्रीकाशीविश्वनाथ
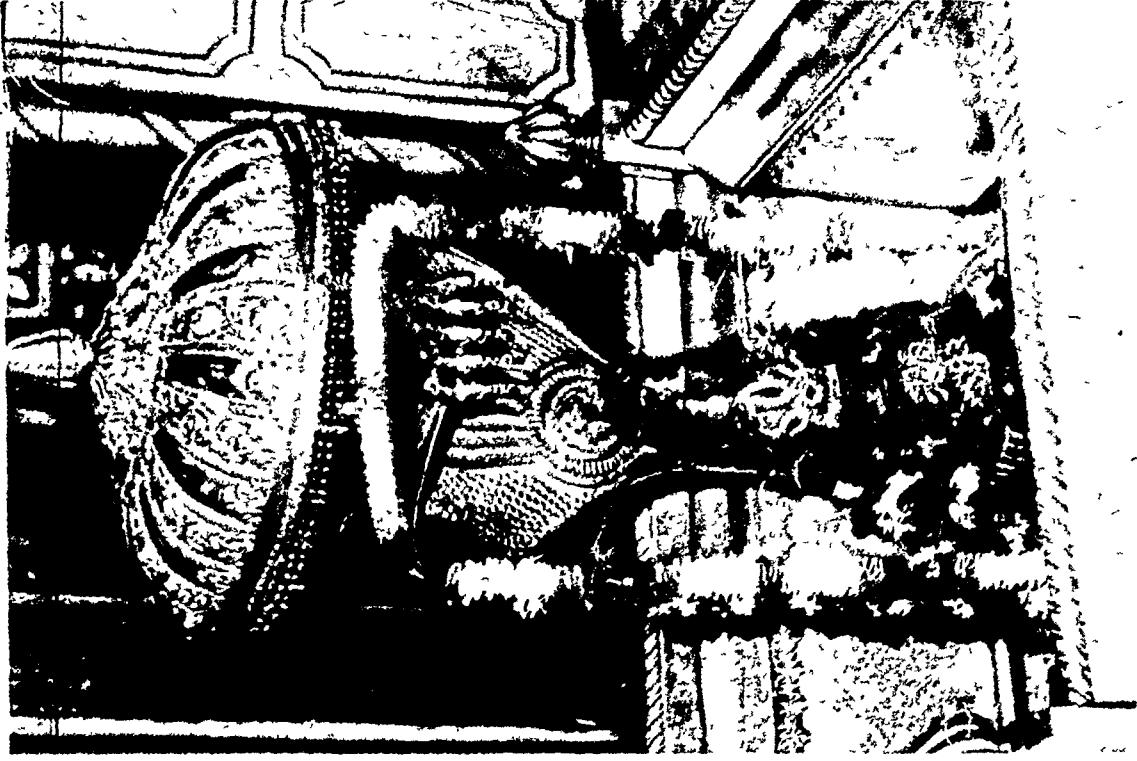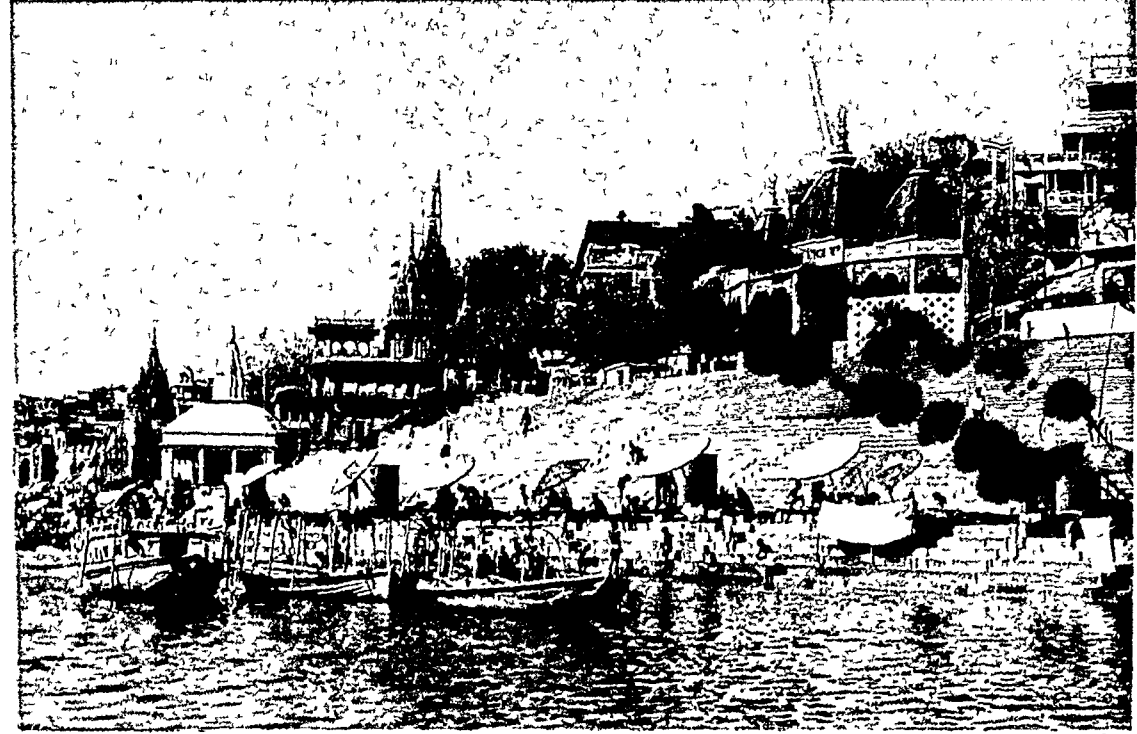
चाहिये; क्योंकि उनमेंसे यदि एक भी पुत्र गयाकी यात्रा करेगा अथवा अश्वमेध-यज्ञका अनुष्ठान कर देगा या नील वृष ( साँड़ ) का उत्सर्ग कर देगा ( तो हमारा उद्धार हो जायगा ) ।' उसी प्रकार पुण्यप्रदा वाराणसी नगरी सदा पितरोंको प्रिय है, जहाँ अविमुक्तके निकट किया गया श्राद्ध भुक्ति ( भोग ) एवं मुक्ति ( मोक्ष ) रूप फल प्रदान करता है । उसी प्रकार पुण्यप्रद विमलेश्वर तीर्थ भी पितरोंके लिये परम प्रिय है । पितृतीर्थ प्रयाग सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फलोंका प्रदाता है । वहाँ माधवसमेत भगवान् वटेश्वर तथा उसी प्रकार योगनिद्रामें शयन करते हुए भगवान् केशव सदा निवास करते हैं ॥ २—९ ॥

**दशाश्वमेधिकं पुण्यं गङ्गाद्वारं तथैव च । नन्दाथ ललिता तद्वत्तीर्थं मायापुरी शुभा ॥ १० ॥**
**तथा मित्रपदं नाम ततः केदारमुत्तमम् । गङ्गासागरमित्याहुः सर्वतीर्थमयं शुभम् ॥ ११ ॥**
**तीर्थं ब्रह्मसरस्तद्वच्छतद्रुसलिले ह्रदे । तीर्थं तु नैमिषं नाम सर्वतीर्थफलप्रदम् ॥ १२ ॥**
**गङ्गोद्भेदस्तु गोमत्यां यत्रोद्भूतः सनातनः । तथा यज्ञवराहस्तु देवदेवश्च शूलभृत् ॥ १३ ॥**
**यत्र तत्काञ्चनं द्वारमष्टादशभुजो हरः । नेमिस्तु हरिचक्रस्य शीर्णा यत्राभवत् पुरा ॥ १४ ॥**
**तदेतन्नैमिशारण्यं सर्वतीर्थनिषेवितम् । देवदेवस्य तत्रापि वाराहस्य तु दर्शनम् ॥ १५ ॥**
**यः प्रयाति स पूतात्मा नारायणपदं व्रजेत् । कृतशौचं महापुण्यं सर्वपापनिषूदनम् ॥ १६ ॥**
**यत्रास्ते नारसिंहस्तु स्वयमेव जनार्दनः । तीर्थमिक्षुमती नाम पितृणां वल्लभं सदा ॥ १७ ॥**
**सङ्गमे यत्र तिष्ठन्ति गङ्गायाः पितरः सदा । कुरुक्षेत्रं महापुण्यं सर्वतीर्थसमन्वितम् ॥ १८ ॥**
**तथा च सरयूः पुण्या सर्वदेवनमस्कृता । इरावती नदी तद्वत् पितृतीर्थाधिवासिनी ॥ १९ ॥**
**यमुना देविका काली चन्द्रभागा दृषद्वती । नदी वेणुमती पुण्या परा वेत्रवती तथा ॥ २० ॥**
**पितृणां वल्लभा ह्येताः श्राद्धे कोटिगुणा मताः । जम्बूमार्गं महापुण्यं यत्र मार्गो हि लक्ष्यते ॥ २१ ॥**
**अद्यापि पितृतीर्थं तत् सर्वकामफलप्रदम् । नीलकुण्डमिति ख्यातं पितृतीर्थं द्विजोत्तमाः ॥ २२ ॥**

पुण्यमय दशाश्वमेधिक तीर्थ, गङ्गाद्वार ( हरिद्वार ), नन्दा, ललिता तथा मङ्गलमयी मायापुरी ( ऋषिकेश ) —ये सभी तीर्थ भी उसी प्रकार पितरोंको प्रिय हैं । मित्रपद ( तीर्थ ) भी श्रेष्ठ हैं । उत्तम केदारतीर्थ और सर्वतीर्थमय एवं मङ्गलप्रद गङ्गासागर तीर्थको भी पितृप्रिय कहा गया है । उसी तरह शतद्रु ( सतलज ) नदीके जलके अन्तर्गत कुण्डमें स्थित ब्रह्मसर तीर्थ भी श्रेष्ठ हैं । नैमिषारण्य सम्पूर्ण तीर्थोंका एकत्र फल प्रदान करनेवाला है । यह पितरोंको ( बहुत ) प्रिय है । यहीं गोमती नदीमें गङ्गाका सनातन स्रोत प्रकट हुआ है । यहाँ त्रिशूलधारी महादेव और सनातन यज्ञवराह विराजते हैं । यहाँ अष्टादश भुजाधारी शंकरकी प्रतिमा है । यहाँका काञ्चनद्वार प्रसिद्ध है । यहाँ पूर्वकालमें भगवान् विष्णुद्वारा दिये गये धर्मचक्रकी नेमि शीर्ण होकर गिरी थी । यह सम्पूर्ण तीर्थोंद्वारा निषेवित नैमिशारण्य नामक तीर्थ है । यहाँ देवाधिदेव भगवान् वाराहका भी दर्शन होता है । जो वहाँकी यात्रा करता है, वह पवित्रात्मा होकर नारायणपदको प्राप्त कर लेता है । इसी प्रकार सम्पूर्ण पापोंका विनाशक एवं महान् पुण्यशाली कृतशौच नामक तीर्थ है, जहाँ भगवान् जनार्दन नृसिंहरूपसे विराजमान रहते हैं । तीर्थभूता इक्षुमती ( काली नदी ) पितरोंको सदा प्रिय है । ( कन्नौजके पास इस इक्षुमतीके साथ ) गङ्गाजीके संगमपर पितरलोग सदा निवास करते हैं । सम्पूर्ण तीर्थोंसे युक्त कुरुक्षेत्र नामक महान् पुण्यप्रद तीर्थ है । इसी प्रकार समस्त देवताओंद्वारा नमस्कृत पुण्यसलिला सरयू, पितृ-तीर्थोंकी

अधिवासिनीरूपा इरावती नदी, यमुना, देविक ( देग ), काली ( कालीसिंध ), चन्द्रभागा ( चनाव ), दृपद्वती ( गग्गर ), पुण्यतोया वेणुमती ( वेण्वा ) नदी तथा सर्वश्रेष्ठा वेत्रवती ( वेतवा )—ये नदियाँ पितरोंको परम प्रिय हैं। इसलिये श्राद्धके विषयमें करोड़ो गुना फलदायिनी मानी गयी हैं। द्विजवरो! जम्बूमार्ग ( भड़ोंच ) नामक तीर्थ महान् पुण्यदायक एवं सम्पूर्ण मनोऽभिलषित फलोंका प्रदाता है, यह पितरोंका प्रिय तीर्थ है। वहाँसे पितृलोक जानेका मार्ग अभी भी दिखायी पड़ता है। नीलकुण्ट तीर्थ भी पितृतीर्थरूपसे विख्यात है॥ १०—२२॥

तथा रुद्रसरः पुण्यं सरो मानसमेव च। मन्दाकिनी तथाच्छोदा विपाशाथ सरस्वती॥ २३॥
पूर्वमित्रपदं तद्वद् वैद्यनाथं महाफलम्। क्षिप्रा नदी महाकालस्तथा कालञ्जरं शुभम्॥ २४॥
वंशोद्भेदं हरोद्भेदं गङ्गोद्भेदं महाफलम्। भद्रेश्वरं विष्णुपदं नर्मदाद्वारमेव च॥ २५॥
गयापिण्डप्रदानेन समान्याहुर्महर्षयः। एतानि पितृतीर्थानि सर्वपापहराणि च॥ २६॥
स्मरणादपि लोकानां किमु श्राद्धकृतां नृणाम्। ओंकारं पितृतीर्थं च कावेरी कपिलोदकम्॥ २७॥
सम्भेदश्चण्डवेगायास्तथैवामरकण्टकम्। कुरुक्षेत्राच्छतगुणं तस्मिन् स्नानादिकं भवेत्॥ २८॥
शुक्रतीर्थं च विख्यातं तीर्थं सोमेश्वरं परम्। सर्वव्याधिहरं पुण्यं शतकोटिफलाधिकम्॥ २९॥
श्राद्धे दाने तथा होमे स्वाध्याये जलसंनिधौ। कायावरोहणं नाम तथा चर्मण्वती नदी॥ ३०॥
गोमती वरुणा तद्वत्तीर्थमौशनसं परम्। भैरवं भृगुतुङ्गं च गौरीतीर्थमनुत्तमम्॥ ३१॥
तीर्थं वैनायकं नाम भद्रेश्वरमतः परम्। तथा पापहरं नाम पुण्याथ तपती नदी॥ ३२॥
मूलतापी पयोष्णी च पयोष्णीसङ्गमस्तथा। महाबोधिः पाटला च नागतीर्थमवन्तिका॥ ३३॥
तथा वेणा नदी पुण्या महाशालं तथैव च। महारुद्रं महालिङ्गं दशार्णा च नदी शुभा॥ ३४॥

इसी प्रकार पुण्यप्रद रुद्रसर, मानससर, मन्दाकिनी, अच्छोदा ( अच्छावत ), विपाशा ( व्यास नदी ), सरस्वती, पूर्वमित्रपद, महान् फलदायक वैद्यनाथ, शिप्रा नदी, महाकाल, मङ्गलमय कालञ्जर, वंशोद्भेद, हरोद्भेद, महान् फलप्रद गङ्गोद्भेद, भद्रेश्वर, विष्णुपद और नर्मदाद्वार—ये सभी पितृप्रिय तीर्थ हैं। इन तीर्थोंमें श्राद्ध करनेसे गया तीर्थमें पिण्ड-प्रदानके तुल्य ही फल प्राप्त होता है—ऐसा महर्षियोंने कहा है। ये सभी पितृतीर्थ जब स्मरण-मात्र कर लेनेसे लोगोंके सम्पूर्ण पापोंको नष्ट करते हैं, तब ( वहाँ जाकर ) श्राद्ध करनेवाले मनुष्योंके पाप-नाशकी तो बात ही क्या है। इसी तरह ओंकार पितृतीर्थ है। कावेरी, कपिलोदका, चण्डवेगा और नर्मदाका संगम तथा अमरकण्टक—इन पितृतीर्थोंमें स्नान आदि करनेसे कुरुक्षेत्रसे सौगुने अधिक फलकी प्राप्ति होती है। शुक्रतीर्थ भी पितृतीर्थरूपसे विख्यात है तथा सर्वोत्तम सोमेश्वरतीर्थ स्नान, श्राद्ध, दान, हवन तथा स्वाध्याय करनेपर समस्त व्याधियोंका विनाशक, पुण्यप्रदाता और सौ करोड़ गुना फलसे भी अधिक फलदायी है। कायावरोहण ( गुजरातका कारावन ) नामक तीर्थ, चर्मण्वती (चम्बल) नदी, गोमती, वरुणा (वरणा), उसी प्रकार औशनस नामक उत्तम तीर्थ, भैरव, ( केदारनाथके पास ) भृगुतुङ्ग, सर्वश्रेष्ठ गौरीतीर्थ, वैनायक नामक तीर्थ, उसके बाद भद्रेश्वरतीर्थ तथा पापहर नामक तीर्थ, पुण्यसलिला तपती नदी, मूलतापी, पयोष्णी तथा पयोष्णी-संगम, महाबोधि, पाटला, नागतीर्थ, अवन्तिका ( उज्जैनी ) तथा पुण्यतोया वेणानदी, महाशाल, महारुद्र, महालिङ्ग, और मङ्गलमयी दशार्णा ( धसान ) नदी तो अत्यन्त ही शुभ है॥ २३—३४॥

शतरुद्रा शताह्वा च तथा विश्वपदं परम् । अङ्गारवाहिका तद्वन्नदौ तौ शोणघर्घरौ ॥ ३५ ॥
कालिका च नदी पुण्या वितस्ता च नदी तथा । एतानि पितृतीर्थानि शस्यन्ते स्नानदानयोः ॥ ३६ ॥
श्राद्धमेतेषु यद् दत्तं तदनन्तफलं स्मृतम् । द्रोणी वाटनदी धारासरित् क्षीरनदी तथा ॥ ३७ ॥
गोकर्णं गजकर्णं च तथा च पुरुषोत्तमः । द्वारका कृष्णतीर्थं च तथार्बुदसरस्वती ॥ ३८ ॥
नदी मणिमती नाम तथा च गिरिकर्णिका । धूतपापं तथा तीर्थं समुद्रो दक्षिणस्तथा ॥ ३९ ॥
एतेषु पितृतीर्थेषु श्राद्धमानन्त्यमश्नुते । तीर्थं मेघंकरं नाम स्वयमेव जनार्दनः ॥ ४० ॥
यत्र शार्ङ्गधरो विष्णुर्मेखलायामवस्थितः । तथा मन्दोदरीतीर्थं तीर्थं चम्पा नदी शुभा ॥ ४१ ॥
तथा सामलनाथश्च महाशालनदी तथा । चक्रवाकं चर्मकोटं तथा जन्मेश्वरं महत् ॥ ४२ ॥
अर्जुनं त्रिपुरं चैव सिद्धेश्वरमतः परम् । श्रीशैलं शांकरं तीर्थं नारसिंहमतः परम् ॥ ४३ ॥
महेन्द्रं च तथा पुण्यमथ श्रीरङ्गसंज्ञितम् । एतेष्वपि सदा श्राद्धमनन्तफलदं स्मृतम् ॥ ४४ ॥
दर्शनादपि चैतानि सद्यः पापहराणि वै । तुङ्गभद्रा नदी पुण्या तथा भीमरथी सरित् ॥ ४५ ॥
भीमेश्वरं कृष्णवेणा कावेरी कुड्मला नदी । नदी गोदावरी नाम त्रिसंध्या तीर्थमुत्तमम् ॥ ४६ ॥
तीर्थं त्रैयम्बकं नाम सर्वतीर्थनमस्कृतम् । यत्रास्ते भगवानीशः स्वयमेव त्रिलोचनः ॥ ४७ ॥
श्राद्धमेतेषु सर्वेषु कोटिकोटिगुणं भवेत् । स्मरणादपि पापानि नश्यन्ति शतधा द्विजाः ॥ ४८ ॥

शतरुद्रा, शताह्वा तथा श्रेष्ठ विश्वपद, अङ्गारवाहिका, उसी प्रकार शोण और घर्घर ( घाघरा ) नामक दो नद, पुण्यजला कालिका नदी तथा वितस्ता ( झेलम ) नदी—ये पितृतीर्थ स्नान और दानके लिये प्रशस्त माने गये हैं । इनमें जो श्राद्ध आदि कर्म किया जाता है, वह अनन्त फलदायक कहा गया है । द्रोणी, वाटनदी, धारानदी, क्षीरनदी, गोकर्ण, गजकर्ण, पुरुषोत्तम-क्षेत्र, द्वारका, कृष्णतीर्थ तथा अर्बुदगिरि (आबू), सरस्वती, मणिमती नदी गिरिकर्णिका, धूतपापतीर्थ तथा दक्षिण समुद्र—इन पितृतीर्थोंमें किया गया श्राद्ध अनन्त फलदायक होता है । इसके पश्चात् मेघंकर नामक तीर्थ ( गुजरातमें ) है, जिसकी मेखलामें शार्ङ्ग-धनुष धारण करनेवाले स्वयं जनार्दन भगवान् विष्णु स्थित हैं । इसी प्रकार मन्दोदरीतीर्थ तथा मङ्गलमयी चम्पा नदी, सामलनाथ, महाशाल नदी, चक्रवाक, चर्मकोट, महान् तीर्थ जन्मेश्वर, अर्जुन, त्रिपुर इसके बाद सिद्धेश्वर, श्रीशैल ( मल्लिकार्जुन ), शाङ्करतीर्थ, इसके पश्चात् नारसिंहतीर्थ, महेन्द्र तथा पुण्यप्रद श्रीरङ्गनामक तीर्थ है । इनमें भी किया गया श्राद्ध सदा अनन्त फलदाता माना गया है तथा ये दर्शनमात्रसे ही तुरंत पापोंको हर लेते हैं । पुण्यसलिला तुङ्गभद्रा नदी तथा भीमरथी नदी, भीमेश्वर, कृष्णवेणा, कावेरी, कुड्मला नदी, गोदावरी नदी, त्रिसंध्यानामक उत्तम तीर्थ तथा समस्त तीर्थोंद्वारा नमस्कृत त्रैयम्बकनामक तीर्थ, जहाँ त्रिनेत्रधारी भगवान् शंकर स्वयं ही निवास करते हैं—इन सभी तीर्थोंमें किया गया श्राद्ध करोड़ों-करोड़ों गुना फलदायक होता है । ब्राह्मणो! इन तीर्थोंका स्मरणमात्र करनेसे पापसमूह सैकड़ों टुकड़ोंमें चूर-चूर होकर नष्ट हो जाते हैं ॥३५–४८॥

श्रीपर्णी ताम्रपर्णी च जयातीर्थमनुत्तमम् । तथा मत्स्यनदी पुण्या शिवधारं तथैव च ॥ ४९ ॥
भद्रतीर्थं च विख्यातं पम्पातीर्थं च शाश्वतम् । पुण्यं रामेश्वरं तद्वदेलापुरमलंपुरम् ॥ ५० ॥
अङ्गारकं च विख्यातमामर्दकमलम्बुषम् । आम्रातकेश्वरं तद्वदेकाम्रकमतः परम् ॥ ५१ ॥
गोवर्धनं हरिश्चन्द्रं कृपुचन्द्रं पृथूदकम् । सहस्राक्षं हिरण्याक्षं तथा च कदली नदी ॥ ५२ ॥
रामाधिवासस्तत्रापि तथा सौमित्रिसङ्गमः । इन्द्रकीलं महानादं तथा च प्रियमेलकम् ॥ ५३ ॥
एतान्यपि सदा श्राद्धे प्रशस्तान्यधिकानि तु । एतेषु सर्वदेवानां सांनिध्यं दृश्यते यतः ॥ ५४ ॥

दानमेतेषु सर्वेषु दत्तं कोटिशताधिकम् । बाहुदा च नदी पुण्या तथा सिद्धवनं शुभम् ॥ ५५ ॥
तीर्थं पाशुपतं नाम नदी पार्वतिका शुभा । श्राद्धमेतेषु सर्वेषु दत्तं कोटिशतोत्तरम् ॥ ५६ ॥
तथैव पितृतीर्थं तु यत्र गोदावरी नदी । युता लिङ्गसहस्रेण सर्वान्तरजलावहा ॥ ५७ ॥
जामदग्न्यस्य तत् तीर्थं क्रमादायातमुत्तमम् । प्रतीकस्य भयाद् भिन्नं यत्र गोदावरी नदी ॥ ५८ ॥
तत् तीर्थं हव्यकव्यानामप्सरोयुगसंज्ञितम् । श्राद्धाग्निकार्यदानेषु तथा कोटिशताधिकम् ॥ ५९ ॥
तथा सहस्रलिङ्गं च राघवेश्वरमुत्तमम् । सेन्द्रफेना नदी पुण्या यत्रेन्द्रः पतितः पुरा ॥ ६० ॥
निहत्य नमुचिं शक्रस्तपसा स्वर्गमाप्तवान् । तत्र दत्तं नरैः श्राद्धमनन्तफलदं भवेत् ॥ ६१ ॥
तीर्थं तु पुष्करं नाम शालग्रामं तथैव च । सोमपानं च विख्यातं यत्र वैश्वानरालयम् ॥ ६२ ॥
तीर्थं सारस्वतं नाम स्वामितीर्थं तथैव च । मलन्दरा नदी पुण्या कौशिकी चन्द्रिका तथा ॥ ६३ ॥
वैदर्भी चाथ वेणा च पयोष्णी प्राङ्मुखा परा । कावेरी चोत्तरा पुण्या तथा जालंधरो गिरिः ॥ ६४ ॥
एतेषु श्राद्धतीर्थेषु श्राद्धमानन्त्यमश्नुते ।

इसी प्रकार श्रीपर्णी, ताम्रपर्णी, सर्वश्रेष्ठ जयातीर्थ, पुण्यतोया मत्स्य नदी, शिवधार, सुप्रसिद्ध भद्रतीर्थ, सनातन पम्पातीर्थ, पुण्यमय रामेश्वर, एलापुर, अलम्पुर, अङ्गारक, प्रख्यात आमर्दक, अलम्बुष, (अलम्बुषा देवीका स्थान) आम्रातकेश्वर एवं एकाम्रक (भुवनेश्वर) हैं। इसके बाद गोवर्धन, हरिश्चन्द्र, कृपुचन्द्र, पृथूदक, सहस्राक्ष, हिरण्याक्ष, कदली नदी, रामाधिवास, उसमें भी सौमित्रिसंगम, इन्द्रकील, महानाद तथा प्रियमेलक—ये सभी श्राद्धमें सदा सर्वाधिक प्रशस्त माने गये हैं। चूँकि इन तीर्थोंमें सम्पूर्ण देवताओंका सांनिध्य देखा जाता है, इसलिये इन सभीमें दिया गया दान सैकड़ो कोटि गुनासे भी अधिक फलदायी होता है। पुण्यजला बाहुदा ( धवला ) नदी, मङ्गलमय सिद्धवन, पाशुपतनामक तीर्थ तथा शुभदायिनी पार्वतिका नदी—इन सभी तीर्थोंमें किया गया श्राद्ध सौ करोड़ गुनासे भी अधिक फलदाता होता है। उसी प्रकार यह भी एक पितृतीर्थ है, जहाँ सहस्रों शिवलिङ्गोंसे युक्त एवं अन्तरमें सभी नदियोंका जल प्रवाहित करनेवाली गोदावरी नदी बहती है। वहींपर जामदग्न्यका वह उत्तम तीर्थ क्रमशः आकर सम्मिलित हुआ है, जो प्रतीकके भयसे पृथक् हो गया था। गोदावरी नदीमें स्थित हव्य-कव्य-भोजी पितरोंका वह परम प्रिय तीर्थ अप्सरोयुग नामसे प्रसिद्ध है। यह भी श्राद्ध, हवन और दान आदि कार्योंमें सैकड़ो कोटि गुनेसे अधिक फल देनेवाला है। तथा सहस्रलिङ्ग, उत्तम राघवेश्वर और पुण्यतोया इन्द्रफेना नदी नामक तीर्थ है, जहाँ पूर्वकालमें इन्द्रका पतन हो गया था तथा पुनः उन्होंने अपने तपोबलसे नमुचिका वध करके स्वर्गलोकको प्राप्त किया था। वहाँ मनुष्योंद्वारा किया गया श्राद्ध अनन्त फलदायक होता है। पुष्कर-नामक तीर्थ, शालग्राम और जहाँ वैश्वानरका निवासस्थान है, वह सुप्रसिद्ध सोमपानतीर्थ, सारस्वततीर्थ, स्वामितीर्थ, मलन्दरा नदी, कौशिकी और चन्द्रिका—ये पुण्यजला नदियाँ हैं। वैदर्भी, वैणा, पूर्वमुख बहनेवाली श्रेष्ठ पयोष्णी, उत्तरमुख बहनेवाली पुण्यसलिला कावेरी तथा जालंधर गिरि—इन श्राद्धसम्बन्धी तीर्थोंमें किया गया श्राद्ध अनन्त फलदायक होता है ॥ ४९—६४½ ॥

लोहदण्डं तथा तीर्थं चित्रकूटस्तथैव च ॥ ६५ ॥
विन्ध्ययोगश्च गङ्गायास्तथा नदीतटं शुभम् । कुब्जाम्रं तु तथा तीर्थमुर्वशीपुलिनं तथा ॥ ६६ ॥
संसारमोचनं तीर्थं तथैव ऋणमोचनम् । एतेषु पितृतीर्थेषु श्राद्धमानन्त्यमश्नुते ॥ ६७ ॥
अट्टहासं तथा तीर्थं गौतमेश्वरमेव च । तथा वसिष्ठं तीर्थं तु हारीतं तु ततः परम् ॥ ६८ ॥
ब्रह्मावर्तं कुशावर्तं हयतीर्थं तथैव च । पिण्डारकं च विख्यातं शङ्खोद्धारं तथैव च ॥ ६९ ॥
घण्टेश्वरं बिल्वकं च नीलपर्वतमेव च । तथा च धरणीतीर्थं रामतीर्थं तथैव च ॥ ७० ॥
अश्वतीर्थं च विख्यातमनन्तं श्राद्धदानयोः ।

उसी प्रकार लोहदण्डतीर्थ, चित्रकूट, विन्ध्ययोग, गङ्गा नदीका मङ्गलमय तट, कुब्जाम्र(ऋषिकेश) तीर्थ, उर्वशी-पुलिन, संसारमोचनतीर्थ तथा ऋणमोचन—इन पितृतीर्थोंमें श्राद्धका फल अनन्त हो जाता है। अट्टहासतीर्थ, गौतमेश्वर, वसिष्ठतीर्थ, उसके बाद हारीततीर्थ, ब्रह्मावर्त, कुशावर्त, हयतीर्थ, ( द्वारकाके पास ) प्रख्यात पिण्डारक, शङ्खोद्धार, घण्टेश्वर, बिल्वक, नीलपर्वत, धरणी-तीर्थ, रामतीर्थ तथा अश्वतीर्थ ( कन्नौज )—ये सब भी श्राद्ध एवं दानके लिये अनन्त फलदायकरूपसे विख्यात हैं॥ ६५–७०½ ॥

तीर्थं वेदशिरो नाम तथैवौघवती नदी॥ ७१॥
तीर्थं वसुप्रदं नामच्छागलाण्डं तथैव च। एतेषु श्राद्धदातारः प्रयान्ति परमं पदम्॥ ७२॥
तथा च बदरीतीर्थं गणतीर्थं तथैव च। जयन्तं विजयं चैव शक्रतीर्थं तथैव च॥ ७३॥
श्रीपतेश्च तथा तीर्थं तीर्थं रैवतकं तथा। तथैव शारदातीर्थं भद्रकालेश्वरं तथा॥ ७४॥
वैकुण्ठतीर्थं च परं भीमेश्वरमथापि वा। एतेषु श्राद्धदातारः प्रयान्ति परमां गतिम्॥ ७५॥
तीर्थं मातृगृहं नाम करवीरपुरं तथा। कुशेशयं च विख्यातं गौरीशिखरमेव च॥ ७६॥
नकुलेशस्य तीर्थं च कर्दमालं तथैव च। दिण्डिपुण्यकरं तद्वत् पुण्डरीकपुरं तथा॥ ७७॥
सप्तगोदावरं तीर्थं सर्वतीर्थेश्वरेश्वरम्। तत्र श्राद्धं प्रदातव्यमनन्तफलमीप्सुभिः॥ ७८॥

वेदशिरनामक तीर्थ, उसी तरह ओघवती नदी, वसुप्रदनामक तीर्थ एवं छागलाण्डतीर्थ—इन तीर्थोंमें श्राद्ध प्रदान करनेवाले लोग परमपदको प्राप्त हो जाते हैं। बदरीतीर्थ, गणतीर्थ, जयन्त, विजय, शक्रतीर्थ, श्रीपतितीर्थ, रैवतकतीर्थ, शारदातीर्थ, भद्रकालेश्वर, वैकुण्ठतीर्थ, श्रेष्ठ भीमेश्वरतीर्थ—इन तीर्थोंमें श्राद्ध करनेवाले लोग परमगतिको प्राप्त हो जाते हैं। मातृगृह नामकतीर्थ, करवीरपुर, कुशेशय, सुप्रसिद्ध गौरी-शिखर, नकुलेशतीर्थ, कर्दमाल, दिण्डिपुण्यकर, उसी तरह पुण्डरीकपुर तथा समस्त तीर्थेश्वरोंका भी अधीश्वर सप्त-गोदावरीतीर्थ—इन तीर्थोंमें अनन्त फल-प्राप्तिके इच्छुकोंका श्राद्ध प्रदान करना चाहिये॥ ७१½–७८॥

एष तूद्देशतः प्रोक्तस्तीर्थानां संग्रहो मया। वागीशोऽपि न शक्नोति विस्तरात् किमु मानुषः॥ ७९॥
सत्यं तीर्थं दया तीर्थं तीर्थमिन्द्रियनिग्रहः। वर्णाश्रमाणां गेहेऽपि तीर्थं तु समुदाहृतम्॥ ८०॥
एतत्तीर्थेषु यच्छ्राद्धं तत् कोटिगुणमिष्यते। यस्मात्तस्मात् प्रयत्नेन तीर्थे श्राद्धं समाचरेत्॥ ८१॥
प्रातःकालो मुहूर्तांस्त्रीन् सङ्गवस्तावदेव तु। मध्याह्नस्त्रिमुहूर्तः स्यादपराह्णस्ततः परम्॥ ८२॥
सायाह्नस्त्रिमुहूर्त्तः स्याच्छ्राद्धं तत्र न कारयेत्। राक्षसी नाम सा वेला गर्हिता सर्वकर्मसु॥ ८३॥
अह्नो मुहूर्ता विख्याता दश पञ्च च सर्वदा। तत्राष्टमो मुहूर्त्तो यः स कालः कुतपः स्मृतः॥ ८४॥
मध्याह्ने सर्वदा यस्मान्मन्दोभवति भास्करः। तस्मादनन्तफलदस्तदारम्भो भविष्यति॥ ८५॥
मध्याह्नः खड्गपात्रं च तथा नेपालकम्बलः। रूप्यं दर्भास्तिला गावो दौहित्रश्चाष्टमः स्मृतः॥ ८६॥
पापं कुत्सितमित्याहुस्तस्य संतापकारिणः। अष्टावेते यतस्तस्मात् कुतपा इति विश्रुताः॥ ८७॥
ऊर्ध्वं मुहूर्त्तात् कुतपाद्यन्मुहूर्तचतुष्टयम्। मुहूर्तपञ्चकं चैतत् स्वधाभवनमिष्यते॥ ८८॥
विष्णोर्देहसमुद्भूताः कुशाः कृष्णास्तिलास्तथा। श्राद्धस्य रक्षणायालमेतत्प्राहुर्दिवौकसः॥ ८९॥
तिलोदकाञ्जलिर्देयो जलस्थैस्तीर्थवासिभिः। सदर्भहस्तेनैकेन श्राद्धमेवं विशिष्यते॥ ९०॥
श्राद्धसाधनकाले तु पाणिनैकेन दीयते। तर्पणं तूभयेनैव विधिरेष सदा स्मृतः॥ ९१॥

इस प्रकार मैंने तीर्थोंके इस संग्रहका संक्षेपमें वर्णन किया, वैसे इनका विस्तृत वर्णन करनेमें तो बृहस्पति भी समर्थ नहीं है, फिर मनुष्यकी तो गणना ही क्या है? सत्यतीर्थ, दयातीर्थ तथा इन्द्रिय-

निग्रहतीर्थ—ये सभी वर्णाश्रमधर्म माननेवालोंके घरमें भी तीर्थरूपसे बतलाये गये हैं। चूँकि इन तीर्थोंमें जो श्राद्ध किया जाता है, वह कोटिगुना फलदायक होता है, अतः प्रयत्नपूर्वक तीर्थोंमें श्राद्ध-कार्य सम्पन्न करना चाहिये। प्रातःकाल तीन मुहूर्ततकका काल संगव कहलाता है। उसके बाद तीन मुहूर्ततकका काल मध्याह्न और उसके बाद उतने ही समयतक अपराह्ण है। फिर तीन मुहूर्ततक सायंकाल होता है, उसमें श्राद्ध नहीं करना चाहिये। सायंकालका समय राक्षसी वेला नामसे प्रसिद्ध है। यह सभी कार्योंमें निन्दित है। एक दिनमें पंद्रह मुहूर्त होते हैं, यह तो सदासे विख्यात है। उनमें जो आठवाँ मुहूर्त है, वह कुतपनामसे प्रसिद्ध है। चूँकि मध्याह्नके समय सूर्य सदा मन्द हो जाते हैं, इसलिये उस समय अनन्त फलदायक उस ( कुतप ) का आरम्भ होता है। मध्याह्नकाल, खड्गपात्र, नेपालकम्बल, चाँदी, कुश, तिल, गौ और आठवाँ दौहित्र ( कन्याका पुत्र )—ये आठों चूँकि पापको, जिसे कुत्सित कहा जाता है, संतप्त करनेवाले हैं, इसलिये 'कुतप' नामसे विख्यात हैं। इस कुतप मुहूर्तके उपरान्त चार मुहूर्त अर्थात् कुल पाँच मुहूर्त स्वधा-वाचनके लिये उत्तम काल है। कुश तथा काला तिल—ये दोनों भगवान् विष्णुके शरीरसे प्रादुर्भूत हुए हैं, अतः ये श्राद्धकी रक्षा करनेमें सर्वसमर्थ हैं—ऐसा देवगण कहते हैं। तीर्थवासियोंको जलमें प्रवेश करके एक हाथमें कुश लेकर तिलसहित जलाञ्जलि देनी चाहिये। ऐसा करनेसे श्राद्धकी विशेषता बढ़ जाती है। श्राद्ध करते समय ( पिण्ड आदि तो ) एक ही हाथसे दिया जाता है, परंतु तर्पण दोनों हाथोंसे किया जाता है—यह विधि सदासे प्रचलित है॥ ७०—९१॥

सूत उवाच

पुण्यं पवित्रमायुष्यं सर्वपापविनाशनम्।<br>
पुरा मत्स्येन कथितं तीर्थश्राद्धानुकीर्तनम्। शृणोति यः पठेद् वापि श्रीमान् संजायते नरः॥ ९२॥<br>
श्राद्धकाले च वक्तव्यं तथा तीर्थनिवासिभिः। सर्वपापोपशान्त्यर्थमलक्ष्मीनाशनं परम्॥ ९३॥<br>
इदं पवित्रं यशसो निधानमिदं महापापहरं च पुंसाम्।<br>
ब्रह्मार्करुद्रैरपि पूजितं च श्राद्धस्य माहात्म्यमुशन्ति तज्ज्ञाः॥ ९४॥

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे श्राद्धकल्पे द्वाविंशोऽध्यायः॥ २२॥*

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! पूर्वकालमें मत्स्य-भगवान्ने इस तीर्थ-श्राद्धका वर्णन किया था। यह पुण्यप्रद, परम पवित्र, आयुवर्धक तथा सम्पूर्ण पापोंका विनाशक है। जो मनुष्य इसे सुनता है अथवा स्वयं इसका पाठ करता है, वह श्रीसम्पन्न हो जाता है। तीर्थ-निवासियोंद्वारा समस्त पापोंकी शान्तिके निमित्त श्राद्धके समय इस परम श्रेष्ठ दरिद्रताविनाशक ( श्राद्ध-माहात्म्यरूप ) प्रसङ्गका पाठ करना चाहिये। यह श्राद्ध-माहात्म्य परम पवित्र, यशका आश्रयस्थान, पुरुषोंके महान्-से-महान् पापोंका विनाशक तथा ब्रह्मा, सूर्य और रुद्रद्वारा भी पूजित ( सम्मानित ) है॥ ९२—९४॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके श्राद्धकल्पमें बाईसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २२॥

# तेईसवाँ अध्याय

## चन्द्रमाकी उत्पत्ति, उनका दक्ष प्रजापतिकी कन्याओंके साथ विवाह, चन्द्रमाद्वारा राजसूय यज्ञका अनुष्ठान, उनकी तारापर आसक्ति, उनका भगवान् शंकरके साथ युद्ध तथा ब्रह्माजीका बीच-बचाव करके युद्ध शान्त करना*

ऋषय ऊचुः

सोमः पितॄणामधिपः कथं शास्त्रविशारद । तद्वंश्या ये च राजानो बभूवुः कीर्तिवर्धनाः ॥ १ ॥

ऋषियोंने पूछा—शास्त्रविशारद सूतजी ! पितरोंके अधिपति चन्द्रमाकी उत्पत्ति कैसे हुई ? आप यह सब हमें बतलाइये तथा चन्द्रवंशमें जो कीर्तिवर्धक राजा हो गये हैं, उनके विषयमें भी हमलोग सुनना चाहते हैं, कृपया वह सब भी विस्तारसे बतलायें ॥ १ ॥

सूत उवाच

आदिष्टो ब्रह्मणा पूर्वमत्रिः सर्गविधौ पुरा । अनुत्तरं नाम तपः सृष्ट्यर्थं तप्तवान् प्रभुः ॥ २ ॥
यदानन्दकरं ब्रह्म जगत्क्लेशविनाशनम् । ब्रह्मविष्णवर्करुद्राणामाभ्यन्तरमतीन्द्रियम् ॥ ३ ॥
शान्तिकृच्छान्तमनसस्तदन्तर्नयने स्थितम् । माहात्म्यात्तपसा विप्राः परमानन्दकारकम् ॥ ४ ॥
यस्मादुमापतिः सार्धमुमया तमधिष्ठितः । तं दृष्ट्वा चाष्टमांशेन तस्मात् सोमोऽभवच्छिशुः ॥ ५ ॥
अधः सुस्राव नेत्राभ्यां धाम तच्चाम्बुसम्भवम् । दीपयद् विश्वमखिलं ज्योत्स्नया सचराचरम् ॥ ६ ॥
तद्दिशो जगृहुर्धाम स्त्रीरूपेण सुतेच्छया । गर्भोऽभूत् त्वदुदरे तासामास्थितोऽब्दशतत्रयम् ॥ ७ ॥
आशास्तं मुमुचुर्गर्भमशक्ता धारणे ततः । समादायाथ तं गर्भमेकीकृत्य चतुर्मुखः ॥ ८ ॥
युवानमकरोद् ब्रह्मा सर्वायुधधरं नरम् । स्यन्दनेऽथ सहस्राश्वे वेदशक्तिमये प्रभुः ॥ ९ ॥
आरोप्य लोकमनयदात्मीयं स पितामहः । तत्र ब्रह्मर्षिभिः प्रोक्तमस्मत् स्वामी भवत्वयम् ॥ १० ॥
पितृभिर्देवगन्धर्वैरोषधीभिस्तथैव च । तुष्टुवुः सोमदेवत्यैर्ब्रह्माद्यैर्मन्त्रसंग्रहैः ॥ ११ ॥
स्तूयमानस्य तस्याभूदधिको धामसम्भवः । तेजोवितानादभवद् भुवि दिव्यौषधीगणः ॥ १२ ॥
तद्दीप्तिरधिका तस्माद् रात्रौ भवति सर्वदा । तेनौषधीशः सोमोऽभूद् द्विजेशश्चापि गद्यते ॥ १३ ॥
वेदधामरसं चापि यदिदं चन्द्रमण्डलम् । क्षीयते वर्धते चैव शुक्ले कृष्णे च सर्वदा ॥ १४ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! पूर्वकालमें ब्रह्माने अपने मानस-पुत्र अत्रिको सृष्टि-रचनाके लिये आज्ञा दी। उन सामर्थ्यशाली महर्षिने सृष्टि-रचनाके निमित्त अनुत्तर† नामक ( भीषण ) तप किया। उस तपके प्रभावसे जगत्के कष्टोंका विनाशक, शान्तिकर्ता, इन्द्रियोंसे परे जो परमानन्द है तथा जो ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य और रुद्रके अन्तःप्रदेशमें निवास करनेवाला है, वही ब्रह्म उन प्रशान्त मनवाले‡ महर्षिके ( मन एवं ) नेत्रोंके भीतर स्थित हो गया। चूँकि उस समय उमासहित उमापति शंकरने भी अत्रिके मन-नेत्रोंको अधियम बनाया था, अतः उन्हे देखकर शिवके या उनके अष्टमांशसे शिशु ( ललाटस्थ चन्द्रके ) रूपमें चन्द्रमा प्रकट हो गये। उस समय महर्षि अत्रिके नेत्रोंसे जलसम्भूत धाम ( तेज ) नीचेकी ओर बह चला। उसने अपने प्रकाशसे अखिल चराचर विश्वको उद्दीप्त कर दिया। दिशाओंने उस तेजको स्त्री-रूपसे धारणकर पुत्र-प्राप्तिकी कामनासे ग्रहण कर लिया। वह उनके उदरमें गर्भरूप होकर तीन सौ वर्षोंतक स्थित रहा। जब दिशाएँ उस गर्भको धारण करनेमें असमर्थ हो गयीं, तब उन्होंने उसका परित्याग कर दिया। तत्पश्चात् चतुर्मुख ब्रह्माने

---

* यह अध्याय पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड, १२ मे भी यों ही है।
† जिसके बाद किसीने वैसा या उससे कोई दूसरा बड़ा तप न किया हो, वह तपस्या ही 'अनुत्तर' तप है।
‡ इसमे 'चन्द्रमा मनसो जातः' ( पुरुषसूक्त १३० ) का उपबृंहण है।

उस गर्भको उठाकर उसे एकत्र कर सर्वायुधधारी तरुण पुरुषके रूपमें परिणत कर दिया तथा वे शक्तिशाली पितामह सहस्र घोड़ोंसे जुते हुए वेदशक्तिमय रथपर उसे बैठाकर अपने लोकको ले गये। वहाँ ( उस पुरुषको देखकर ) ब्रह्मर्षियोंने कहा—'ये हमलोगोंके स्वामी हों।' उसी समय पितर, ब्रह्मादि देवता, गन्धर्व और ओषधियोंने 'सोमदैवत्य'* नामक वैदिक मन्त्रसमूहोंसे उनकी स्तुति की। इस प्रकार स्तुति किये जानेपर चन्द्रमाका तेज और अधिक बढ़ गया। तब उस तेजःसमूहसे भूतलपर दिव्य ओषधियोंका प्रादुर्भाव हुआ। इसी कारण रात्रिमें उन ओषधियोंकी कान्ति सर्वदा अधिक हो जाती है। इसी हेतु चन्द्रमा ओषधीश कहलाये तथा उन्हें द्विजेश भी कहा जाता है। वेदोंके तेजरूप रससे उत्पन्न हुआ जो यह चन्द्रमण्डल है, वह सर्वदा शुक्ल-पक्षमें बढ़ता है और कृष्णपक्षमें क्षीण होता रहता है ॥ २—१४ ॥

विंशतिं च तथा सप्त दक्षः प्राचेतसो ददौ। रूपलावण्यसंयुक्तास्तस्मै कन्याः सुवर्चसः ॥ १५ ॥
ततः समासहस्राणां सहस्राणि दशैव तु। तपश्चचार शीतांशुर्विष्णुध्यानैकतत्परः ॥ १६ ॥
ततस्तुष्टस्तु भगवांस्तस्मै नारायणो हरिः। वरं वृणीष्व प्रोवाच परमात्मा जनार्दनः ॥ १७ ॥
ततो वव्रे वरान् सोमः शक्रलोकं जयाम्यहम्। प्रत्यक्षमेव भोक्तारो भवन्तु मम मन्दिरे ॥ १८ ॥
राजसूये सुरगणा ब्रह्माद्याः सन्तु मे द्विजाः। रक्षःपालः शिवोऽस्माकमास्तां शूलधरो हरः ॥ १९ ॥
तथेत्युक्तः स आजह्रे राजसूयं तु विष्णुना। होतात्रिर्भृगुरध्वर्युरुद्गाताभूच्चतुर्मुखः ॥ २० ॥
ब्रह्मत्वमगमत् तस्य उपद्रष्टा हरिः स्वयम्। सदस्याः सनकाद्यास्तु राजसूयविधौ स्मृताः ॥ २१ ॥
चमसाध्वर्यवस्तत्र विश्वेदेवा दशैव तु। त्रैलोक्यं दक्षिणा तेन ऋत्विग्भ्यः प्रतिपादितम्॥ २२ ॥
ततः समाप्तेऽवभृथे तद्रूपालोकनेच्छवः। कामबाणाभितप्ताङ्ग्यो नव देव्यः सिषेविरे ॥ २३ ॥
लक्ष्मीर्नारायणं त्यक्त्वा सिनीवाली च कर्दमम्। द्युतिर्विभावसुं तद्वत् तुष्टिर्धातारमव्ययम् ॥ २४ ॥
प्रभा प्रभाकरं त्यक्त्वा हविष्मन्तं कुहूः स्वयम्। कीर्तिर्जयन्तं भर्तारं वसुर्मारीचकश्यपम् ॥ २५ ॥
धृतिस्त्यक्त्वा पतिं नन्दिं सोममेवाभजंस्तदा। स्वकीया इव सोमोऽपि कामयामास तास्तदा॥ २६ ॥
एवं कृतापचारस्य तासां भर्तृगणस्तदा। न शशाकापचाराय शापैः शस्त्रादिभिः पुनः ॥ २७ ॥
तथाप्यराजत विधुर्दशधा भावयन् दिशः।
सोमः प्राप्याथ दुष्प्राप्यमैश्वर्यं ऋषिसंस्कृतम्। सप्तलोकैकनाथत्वमवाप तपसा तदा ॥ २८ ॥

तदनन्तर प्रचेता-नन्दन दक्षने चन्द्रमाको अपनी सत्ताईस कन्याएँ-जो रूप-लावण्यसे सम्पन्न तथा परम तेजस्विनी थीं, पत्नीरूपमें प्रदान कीं। तब शीत किरणोंवाले चन्द्रमाने एकमात्र भगवान् विष्णुके ध्यानमें तत्पर होकर १० लाख वर्षोंतक तपस्या की। उससे प्रभावित होकर भगवान् (ऐश्वर्यशाली) जनार्दन ( दुष्टविनाशक ) परमात्मा ( परम आत्मबलसे सम्पन्न ), नारायण ( जलशायी ) हैं, वे श्रीहरि चन्द्रमापर प्रसन्न हो गये और ( उनके समक्ष प्रकट होकर ) बोले—'वर माँगो!' इस प्रकार कहे जानेपर चन्द्रमाने वर माँगते हुए कहा—'भगवन्! मै इन्द्रलोकको जीत लेना चाहता हूँ, जिससे देवतालोग प्रत्यक्षरूपसे मेरे भवनमें आकर अपना-अपना भाग ग्रहण करें। मेरे राजसूय-यज्ञमें ब्रह्मा आदि देवगण ब्राह्मण हों तथा त्रिशूलधारी मङ्गलमय भगवान् शंकर हम सभीके दिव्य रक्षःपाल ( राक्षसोंसे रक्षा करनेवाले या सभी प्रकारके रक्षक )रूपमें उपस्थित रहें।' भगवान् विष्णुके 'तथेति'—'ऐसा ही हो'—यों कहकर स्वीकार कर लेनेपर चन्द्रमाने राजसूय-यज्ञका आयोजन किया। उस यज्ञमें महर्षि अत्रि होता ( ऋग्वेदके पाठक ), भृगु अध्वर्यु ( यजुर्वेदके पाठक ) और चतुर्मुख ब्रह्मा उद्गाता ( सामवेदके गायक ) थे। स्वयं श्रीहरिने उस यज्ञका उपद्रष्टा होकर ब्रह्मा ( अथर्ववेदका पाठक ) का पद ग्रहण किया।

* ऋग्वेदके १।९१ (मुख्यतम), ९। १-११४, १०। ८५ (जिसे विवाहसूक्त भी कहते हैं) आदि सूक्त सोमदैवत्य हैं।

उस राजसूय-यज्ञमें सनक आदि सदस्य और दसो विश्वेदेव चमसाध्वर्यु ( यज्ञमें सोमरस पीनेवाले ) बने— ऐसा सुना जाता है। उस समय चन्द्रमाने ऋत्विजोंको तीनों लोक दक्षिणारूपमें प्रदान कर दिये थे। तत्पश्चात् अवभृथस्नान ( यज्ञान्तमें होनेवाला स्नान ) की समाप्तिपर ( चन्द्रमाके रूपपर मुग्ध होकर ) उनके सौन्दर्यका अवलोकन करनेकी इच्छासे युक्त सिनीवाली आदि नौ देवियाँ उनकी सेवामें उपस्थित हुईं। लक्ष्मी नारायणको, सिनीवाली कर्दमको, द्युति विभावसुको, तुष्टि अविनाशी ब्रह्माको, प्रभा प्रभाकरको, कुहू स्वयं हविष्मान्‌को, कीर्ति जयन्तको, वसु मरीचिनन्दन कश्यपको और धृति अपने पति नन्दिको छोड़कर उस समय चन्द्रमाकी सेवामें नियुक्त हुईं। चन्द्रमा उस समय दसो दिशाओंको उद्भासित करते हुए सुशोभित हो रहे थे तथा उन्होंने समस्त सृष्टिमें संस्कृत एवं दुर्लभ ऐश्वर्यको प्राप्तकर सातों लोकोंका एकच्छत्र आधिपत्य प्राप्त किया'॥ १५—२८॥

कदाचिदुद्यानगतामपश्यदनेकपुष्पाभरणैश्च शोभिताम्।
बृहन्नितम्बस्तनभारखेदात् पुष्पस्य भङ्गेऽप्यतिदुर्बलाङ्गीम्॥ २९॥
भार्यां च तां देवगुरोरनङ्गबाणाभिरामायतचारुनेत्राम्।
तारां स ताराधिपतिः स्मरार्तः केशेषु जग्राह विविक्तभूमौ॥ ३०॥
सापि स्मरार्ता सह तेन रेमे तद्रूपकान्त्या हृतमानसेन।
चिरं विहृत्याथ जगाम तारां विधुर्गृहीत्वा स्वगृहं ततोऽपि॥ ३१॥
न तृप्तिरासीच्च गृहेऽपि तस्य तारानुरक्तस्य सुखागमेषु।
बृहस्पतिस्तद्विरहाग्निदग्धस्तद्ध्याननिष्ठैकमना बभूव॥ ३२॥
शशाक शापं न च दातुमस्मै न मन्त्रशस्त्राग्निविषैरशेषैः।
तस्यापकर्तुं विविधैरुपायैर्नैवाभिचारैरपि वागधीशः॥ ३३॥
स याचयामास ततस्तु दैन्यात् सोमं स्वभार्यार्थमनङ्गतप्तः।
स याच्यमानोऽपि ददौ न तारां बृहस्पतेस्तत्सुखपाशबद्धः॥ ३४॥
महेश्वरेणाथ चतुर्मुखेण साध्यैर्मरुद्भिः सह लोकपालैः।
ददौ यदा तां न कथंचिदिन्दुस्तदा शिवः क्रोधपरो बभूव॥ ३५॥
यो वामदेवः प्रथितः पृथिव्यामनेकरुद्रार्चितपादपद्मः।
ततः सशिष्यो गिरिशः पिनाकी बृहस्पतिस्नेहवशानुबद्धः॥ ३६॥
धनुर्गृहीत्वाजगवं पुरारिर्जगाम भूतेश्वरसिद्धजुष्टः।
युद्धाय सोमेन विशेषदीप्ततृतीयनेत्रानलभीमवक्त्रः॥ ३७॥

इसके कुछ दिन बाद चन्द्रमा एक बार कभी ताराको साथ लेकर अपने घर चले गये। बृहस्पतिके कहनेपर भी उन्होने ताराको उन्हे समर्पित नहीं किया। तत्पश्चात् महेश्वर, ब्रह्मा, साध्यगण तथा लोकपालोंसहित मरुद्गणके समझानेपर भी जब चन्द्रमाने ताराको किसी प्रकार नहीं लौटाया, तब भगवान् शिव, जो भूतलपर वामदेव नामसे विख्यात हैं तथा अनेकों रुद्र जिनके चरणकमलोंकी अर्चना किया करते हैं, क्रुद्ध हो उठे। तदनन्तर त्रिपुरासुरके शत्रु एवं पिनाक धारण करनेवाले भगवान् शंकर बृहस्पतिके प्रति स्नेहके वशीभूत हो शिष्योंके साथ 'आजगव' नामक धनुष लेकर चन्द्रमाके साथ युद्ध करनेके लिये प्रस्थित हुए। उस समय उनका मुख विशेषरूपसे उद्दीप्त हुए तृतीय नेत्रकी अग्निसे बड़ा भयानक दीख रहा था॥ २९—३७॥

सहैव जग्मुश्च गणेशकाद्या विंशच्चतुःषष्टिगणास्त्रयुक्ताः ।
यक्षेश्वरः कोटिशतैरनेकैर्युतोऽन्वगात् स्यन्दनसंस्थितानाम् ॥ ३८ ॥
वेतालयक्षोरगकिंनराणां पद्मेन चैकेन तथार्बुदेन ।
लक्षैस्त्रिभिर्द्वादशभी रथानां सोमोऽप्यगात् तत्र विवृद्धमन्युः ॥ ३९ ॥
नक्षत्रदैत्यासुरसैन्ययुक्तः शनैश्चराङ्गारकवृद्धतेजाः ।
जग्मुर्भयं सप्त तथैव लोकाश्चचाल भूर्द्वीपसमुद्रगर्भा ॥ ४० ॥
स सोममेवाभ्यगमत् पिनाकी गृहीतदीप्तास्त्रविशालवह्निः ।
अथाभवद् भीषणभीमसेनसैन्यद्वयस्यापि महाहवोऽसौ ॥ ४१ ॥
अशेषसत्त्वक्षयकृत्प्रवृद्धस्तीक्ष्णायुधास्त्रज्वलनैकरूपः ।
शस्त्रैरथान्योऽन्यमशेषसैन्यं द्वयोर्जगाम क्षयमुग्रतीक्ष्णैः ॥ ४२ ॥
पतन्ति शस्त्राणि तथोज्ज्वलानि स्वर्भूमिपातालमथो दहन्ति ।
रुद्रः कोपाद् ब्रह्मशीर्षं मुमोच सोमोऽपि सोमास्त्रममोघवीर्यम् ॥ ४३ ॥
तयोर्निपातेन समुद्रभूम्योरथान्तरिक्षस्य च भीतिरासीत् ।
तदस्त्रयुग्मं जगतां क्षयाय प्रवृद्धमालोक्य पितामहोऽपि ॥ ४४ ॥
अन्तः प्रविश्याथ कथं कथंचिन्निवारयामास सुरैः सहैव ।
अकारणं किं क्षयकृज्जनानां सोम त्वयापीत्थमकारि कार्यम् ॥ ४५ ॥
यस्मात् परस्त्रीहरणाय सोम त्वया कृतं युद्धमतीव भीमम् ।
पापग्रहस्त्वं भविता जनेषु शान्तोऽप्यलं नूनमथो सितान्ते ॥
भार्यामिमामर्पय वाक्पतेस्त्वं न चावमानोऽस्ति परस्वहारे ॥ ४६ ॥

उनके साथ भूतेश्वरों और सिद्धोंका समुदाय भी था तथा शस्त्रास्त्रसे सुसज्जित गणेश आदि चौरासी गण भी साथ ही रवाना हुए। उसी प्रकार यक्षराज कुबेरने भी अनेकों शतकोटि सेनाओंके साथ-साथ रथारूढ़ एक पद्म वेताल, एक अरब यक्ष, तीन लाख नाग और बारह लाख किन्नरोंको साथ लेकर शिवजीका अनुसरण किया। उधर चन्द्रमा भी क्रोधाविष्ट हो नक्षत्रों, दैत्यों और असुरोंकी सेनाओंके साथ शनैश्चर और मंगलके सहयोगके कारण उद्दीप्त तेजसे सम्पन्न हो रणभूमिमें आ डटे। उस समाहारको देखकर सातों लोक भयभीत हो उठे तथा द्वीपों एवं समुद्रोंसहित पृथ्वी काँपने लगी। शिवजीने प्रकाशमान एवं विशाल आग्नेयास्त्रको लेकर चन्द्रमापर आक्रमण किया। फिर तो दोनों सेनाओंमें अत्यन्त भीषण युद्ध छिड़ गया। धीरे-धीरे उस युद्धने उग्ररूप धारण कर लिया। उसमें सम्पूर्ण जीवोंका संहार हो रहा था तथा अग्निके समान प्रज्वलित हथियार चमक रहे थे। इस प्रकार एक-दूसरेके प्रति अत्यन्त तीखे शस्त्रोंके प्रहारसे दोनों सेनाएँ समग्ररूपसे नष्ट होने लगीं। उस समय ऐसे जाज्वल्यमान शस्त्रोंकी वर्षा हो रही थी, जो स्वर्गलोक, भूतल और पातालको भस्म कर डालते थे। यह देख रुद्रने क्रुद्ध होकर ब्रह्मशीर्ष नामक अस्त्र चलाया, तब चन्द्रमाने भी अपने अचूक लक्ष्यवाले सोमास्त्रका प्रयोग किया। उन दोनों अस्त्रोंके टकरानेसे समुद्र, भूमि और अन्तरिक्ष आदि सभी भयसे काँप उठे। इस प्रकार उन दोनों अस्त्रोंको जगत्‌का विनाश करनेके लिये बढ़ता हुआ देखकर देवताओंके साथ ब्रह्माने उनके भीतर प्रवेश करके किसी-किसी प्रकारसे उनका निवारण किया (और कहा—) 'सोम! तुमने अकारण ही ऐसा कार्य क्यों किया, यह तो लोगोंका विनाशक है। सोम! चूँकि तुमने दूसरेकी स्त्रीका अपहरण करनेके लिये इतना भयंकर युद्ध किया है, इसलिये शान्त-स्वरूप होनेपर भी तुम

शुक्लपक्षके अन्तमें अर्थात् कृष्णपक्षमें निश्चय ही जनतामें पापग्रहके रूपसे प्रसिद्ध होओगे । तुम बृहस्पतिकी इस भार्याको उन्हें समर्पित कर दो । दूसरेका धन लेकर उसे लौटा देनेमें अपमान नहीं होता' ॥ ३८—४६ ॥

सूत उवाच

तथेति चोवाच हिमांशुमाली युद्धादपाक्रामदतः प्रशान्तः ।
बृहस्पतिः स्वामपगृह्य तारां हृष्टो जगाम स्वगृहं सरुद्रः ॥ ४७ ॥

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशाख्याने सोमापचारो नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥*

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! तब चन्द्रमाने 'तथेति—ऐसा ही हो' यों कहकर ब्रह्माकी आज्ञा स्वीकार कर ली और वे शान्त होकर युद्धसे हट गये । इधर बृहस्पति भी अपनी पत्नी ताराको ग्रहण करके शिवजीके साथ प्रसन्नतापूर्वक अपने घरको चले गये ॥ ४७ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके सोमवंशाख्यानमें सोमापचार नामक तेईसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २३ ॥

# चौबीसवाँ अध्याय

## ताराके गर्भसे बुधकी उत्पत्ति, पुरूरवाका जन्म, पुरूरवा और उर्वशीकी कथा, नहुष-पुत्रोंके वर्णन-प्रसङ्गमें ययातिका वृत्तान्त

सूत उवाच

ततः संवत्सरस्यान्ते द्वादशादित्यसंनिभः । दिव्यपीताम्बरधरो दिव्याभरणभूषितः ॥ १ ॥
तारोदराद् विनिष्क्रान्तः कुमारश्चन्द्रसंनिभः । सर्वार्थशास्त्रविद् धीमान् हस्तिशास्त्रप्रवर्तकः ॥ २ ॥
नाम यद्राजपुत्रीयं विश्रुतं गजवैद्यकम् । राज्ञः सोमस्य पुत्रत्वाद् राजपुत्रो बुधः स्मृतः ॥ ३ ॥
जातमात्रः स तेजांसि सर्वाण्येवाजयद् वली । ब्रह्माद्यास्तत्र चाजग्मुर्देवा देवर्षिभिः सह ॥ ४ ॥
बृहस्पतिगृहे सर्वे जातकर्मोत्सवे तदा । अपृच्छंस्ते सुरास्तारां केन जातः कुमारकः ॥ ५ ॥
ततः सा लज्जिता तेषां न किंचिदवदत् तदा । पुनः पुनस्तदा पृष्टा लज्जयन्ती वराङ्गना ॥ ६ ॥
सोमस्येति चिरादाह ततोऽगृह्णाद् विधुः सुतम् । बुध इत्यकरोन्नाम्ना प्रादाद् राज्यं च भूतले ॥ ७ ॥
अभिषेकं ततः कृत्वा प्रधानमकरोद् विभुः । ग्रहसाम्यं प्रदायाथ ब्रह्मा ब्रह्मर्षिसंयुतः ॥ ८ ॥
पश्यतां सर्वदेवानां तत्रैवान्तरधीयत । इलोदरे च धर्मिष्ठं बुधः पुत्रमजीजनत् ॥ ९ ॥
अश्वमेधशतं साग्रमकरोद् यः स्वतेजसा । पुरूरवा इति ख्यातः सर्वलोकनमस्कृतः ॥ १० ॥
हिमवच्छिखरे रम्ये समाराध्य जनार्दनम् । लोकैश्वर्यमगाद् राजा सप्तद्वीपपतिस्तदा ॥ ११ ॥
केशिप्रभृतयो दैत्याः कोटिशो येन दारिताः । उर्वशी यस्य पत्नीत्वमगमद् रूपमोहिता ॥ १२ ॥
सप्तद्वीपा वसुमती सशैलवनकानना । धर्मेण पालिता तेन सर्वलोकहितैषिणा ॥ १३ ॥
चामरग्राहिणी कीर्तिः सदा चैवाङ्गवाहिका । विष्णोः प्रसादाद् देवेन्द्रो ददावर्धासनं तदा ॥ १४ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! तदनन्तर एक वर्ष व्यतीत होनेपर ताराके उदरसे एक कुमार प्रकट हुआ । वह बारहों सूर्योंके समान तेजस्वी, दिव्य पीताम्बरधारी, दिव्य आभूषणोंसे विभूषित तथा चन्द्रमाके सदृश कान्तिमान् था । वह सम्पूर्ण अर्थशास्त्रका ज्ञाता, उत्कृष्ट बुद्धि-सम्पन्न तथा हस्तिशास्त्र ( हाथीके गुण-दोष तथा चिकित्सा आदि विवेचनापूर्ण शास्त्र )का प्रवर्तक था । वही शास्त्र 'राजपुत्रीय' ( या 'पालकाप्य'* ) नामसे

* यह ग्रन्थ बहुत बड़ा है । अग्निपुराण २८७—९१, बृहत्संहिता ६६, ९३, आकाशभैरवकल्प, शिवतत्त्वरत्नाकर, मानसोल्लास १ । १०००—१४०० आदिमें इसका वर्णन है । वाल्मी० रामा० १ । ६ । २४—३० की तथा रघुवंश ५ । ५० की टीकाओंमें भी इसके कुछ अंश निर्दिष्ट हैं ।

विख्यात है, इसमें गज-चिकित्साका विशद वर्णन है। सोम राजाका पुत्र होनेके कारण वह राजकुमार 'राजपुत्र'* तथा बुधके नामसे प्रसिद्ध हुआ। उस बलवान् राजकुमारने जन्म लेते ही सभी तेजस्वी पदार्थोंको अभिभूत कर दिया। उसके जातकर्म-संस्कारके उत्सवमें ब्रह्मा आदि सभी देवता देवर्षियोंके साथ बृहस्पतिके घर पधारे। चन्द्रमाने उस पुत्रको ग्रहण कर लिया और उसका नाम 'बुध' रखा। तत्पश्चात् सर्वव्यापी ब्रह्माने ब्रह्मर्षियोंके साथ उसे भूतलके राज्यपर अभिषिक्त कर सर्वप्रधान बना दिया और ग्रहोंकी समता प्रदान की। फिर सभी देवताओंके देखते-देखते ब्रह्मा वहीं अन्तर्हित हो गये। बुधने इलाके गर्भसे एक धर्मात्मा पुत्र उत्पन्न किया। वह पुरूरवा नामसे विख्यात हुआ। वह सम्पूर्ण लोगोंद्वारा वन्दित हुआ। उन्होंने अपने प्रभावसे एक सौसे भी अधिक अश्वमेध-यज्ञोंका अनुष्ठान किया। उस राजा पुरूरवाने हिमवान् पर्वतके रमणीय शिखरपर भगवान् विष्णुकी आराधना करके लोकोंका ऐश्वर्य प्राप्त किया तथा वे सातों द्वीपोंके अधिपति हुए। उन्होंने केशि आदि करोड़ों दैत्योंको विदीर्ण कर दिया। उनके रूपपर मुग्ध होकर उर्वशी उनकी पत्नी बन गयी। सम्पूर्ण लोकोंकी हित-कामनासे युक्त पुरूरवाने पर्वत, वन और काननोंसहित सातों द्वीपोंकी पृथ्वीका धर्मपूर्वक पालन किया। कीर्ति तो ( मानो ) सदा उनकी चँवर धारण करनेवाली सेविका थी। भगवान् विष्णुकी कृपासे देवराज इन्द्रने उन्हें अपना अर्धासन प्रदान किया था ॥ १—१४ ॥

धर्मार्थकामान् धर्मेण सममेवाभ्यपालयत्। धर्मार्थकामाः संद्रष्टुमाजग्मुः कौतुकात् पुरा ॥ १५ ॥
जिज्ञासवस्तच्चरितं कथं पश्यति नः समम्। भक्त्या चक्रे ततस्तेषामर्घ्यपाद्यादिकं नृपः ॥ १६ ॥
आसनत्रयमानीय दिव्यं कनकभूषितम्। निवेश्याथाकरोत् पूजामीषद् धर्मेऽधिकां पुनः ॥ १७ ॥
जग्मतुस्तेन कामार्थावतिकोपं नृपं प्रति। अर्थः शापमदात् तस्मै लोभात् त्वं नाशमेष्यसि ॥ १८ ॥
कामोऽप्याह तवोन्मादो भविता गन्धमादने। कुमारवनमाश्रित्य वियोगादुर्वशीभवात् ॥ १९ ॥
धर्मोऽप्याह चिरायुस्त्वं धार्मिकश्च भविष्यसि। सन्ततिस्तव राजेन्द्र यावच्चन्द्रार्कतारकम् ॥ २० ॥
शतशो वृद्धिमायातु न नाशं भुवि यास्यति। इत्युक्त्वान्तर्दधुः सर्वे राजा राज्यं तदन्वभूत् ॥ २१ ॥

पुरूरवा धर्म, अर्थ और कामका समान रूपसे ही पालन करते थे। पूर्वकालमें एक बार धर्म, अर्थ और काम कुतूहलवश यह देखनेके लिये राजाके निकट आये कि यह हमलोगोंको समानरूपसे कैसे देखता है। उनके मनमें राजाके चरित्रको जाननेकी अभिलाषा थी। राजाने उन्हे भक्तिपूर्वक अर्घ्य-पाद्य आदि प्रदान किया। तत्पश्चात् स्वर्णजटित तीन दिव्य आसन लाकर उनपर उन्हें बैठाया और उनकी पूजा की। इसके बाद उन्होंने पुनः धर्मकी थोड़ी अधिक पूजा कर दी। इस कारण अर्थ और काम राजापर अत्यन्त क्रुद्ध हो उठे। अर्थने राजाको शाप देते हुए कहा—'तुम लोभके कारण नष्ट हो जाओगे।' कामने भी कहा—'राजन्! गन्धमादन पर्वतपर स्थित कुमारवनमें तुम्हें उर्वशी-जन्य वियोगसे उन्माद हो जायगा।' धर्मने कहा—'राजेन्द्र! तुम दीर्घायु और धार्मिक होगे। तुम्हारी संतति करोड़ों प्रकारसे वृद्धिको प्राप्त होती रहेगी और जबतक सूर्य, चन्द्रमा तथा तारागणकी सत्ता विद्यमान है, तबतक उनका भूतलपर विनाश नहीं होगा।' यों कहकर वे सभी अन्तर्हित हो गये और राजा राज्यका उपभोग करने लगे ॥ १५—२१ ॥

अहन्यहनि देवेन्द्रं द्रष्टुं याति स राजराट्। कदाचिदारुह्य रथं दक्षिणाम्बरचारिणम् ॥ २२ ॥
सार्धमर्केण सोऽपश्यन्नीयमानामथाम्बरे। केशिना दानवेन्द्रेण चित्रलेखामथोर्वशीम् ॥ २३ ॥

* इन्हींसे 'राजपूत' शब्द भी प्रचलित हुआ।

तं विनिर्जित्य समरे विविधायुधपाणिना । बुधपुत्रेण वायव्यमस्त्रं मुक्त्वा यशोऽर्थिना ॥ २४ ॥
तथा शक्रोऽपि समरे येन चैवं विनिर्जितः । मित्रत्वमगमद् देवैर्ददाविन्द्राय चोर्वशीम् ॥ २५ ॥
ततः प्रभृति मित्रत्वमगमत् पाकशासनः । सर्वलोकातिशायित्वं बलमूर्जो यशः श्रियम् ॥ २६ ॥
प्रादाद् वज्रीति संतुष्टो गेयतां भरतेन च । सा पुरूरवसः प्रीत्या गायन्ती चरितं महत् ॥ २७ ॥
लक्ष्मीस्वयंवरं नाम भरतेन प्रवर्तितम् । मेनकामुर्वशीं रम्भां नृत्यतेति तदादिशत् ॥ २८ ॥
ननर्त सलयं तत्र लक्ष्मीरूपेण चोर्वशी । सा पुरूरवसं दृष्ट्वा नृत्यन्ती कामपीडिता ॥ २९ ॥
विस्मृताभिनयं सर्वं यत् पुरा भरतोदितम् । शशाप भरतः क्रोधाद् वियोगादस्य भूतले ॥ ३० ॥
पञ्चपञ्चाशदब्दानि लता सूक्ष्मा भविष्यसि । पुरूरवाः पिशाचत्वं तत्रैवानुभविष्यति ॥ ३१ ॥

राजराजेश्वर पुरूरवा प्रतिदिन देवराज इन्द्रको देखनेके लिये ( अमरावतीपुरी ) जाया करते थे। एक बार वे सूर्यके साथ रथपर चढ़कर गगन-तलके दक्षिण भागमें विचरण कर रहे थे, उसी समय उन्होंने दानवराज केशिद्वारा चित्रलेखा और उर्वशी नाम्नी अप्सराओंको आकाशमार्गसे ले जायी जाती हुई देखा ।* तब विविधास्त्रधारी यशोऽभिलाषी बुध-नन्दन पुरूरवाने समरभूमिमें वायव्यास्त्रका प्रयोग करके उस दानवराज केशिको पराजित कर दिया, जिसने संग्राममें इन्द्रको भी परास्त कर दिया था । तत्पश्चात् राजाने उर्वशीको ले जाकर इन्द्रको समर्पित कर दिया, जिससे उनकी देवोंके साथ प्रगाढ़ मैत्री हो गयी । तभीसे इन्द्र भी राजाके मित्र हो गये । फिर इन्द्रने प्रसन्न होकर राजाको समस्त लोकोंमें श्रेष्ठता, अत्यधिक बल, पराक्रम, यश और सम्पत्ति प्रदान की । साथ ही भरत मुनिद्वारा उनके यशका गान भी कराया गया । उर्वशी पुरूरवाके प्रेमसे उनके महान् चरित्रका गान करती रहती थी । एक वार भरत मुनिद्वारा प्रवर्तित 'लक्ष्मीस्वयंवर' नाटकका अभिनय हुआ । उसमें इन्द्रने मेनका, उर्वशी और रम्भा—तीनोंको नाचनेका आदेश दिया । उनमें उर्वशी लक्ष्मीका रूप धारण करके लयपूर्वक नृत्य कर रही थी । ( पर ) नृत्य-कालमें पुरूरवाको देखकर अनुरागसे सुधबुध खो जानेके कारण भरत मुनिने उसे पहले जो कुछ अभिनयका नियम बतलाया था, वह सारा-का-सारा उसे विस्मृत हो गया । तब भरत मुनिने क्रोधके वशीभूत हो उसे शाप देते हुए कहा—'तुम इसके वियोगसे भूतलपर पचपन वर्षतक सूक्ष्मलताके रूपमें उत्पन्न होकर रहोगी और पुरूरवा वहीं पिशाच-योनिका अनुभव करेगा ॥ २२—३१ ॥

ततस्तमुर्वशी गत्वा भर्तारमकरोच्चिरम् । शापान्ते भरतस्याथ उर्वशी बुधसूनुतः ॥ ३२ ॥
अजीजनत् सुतानष्टौ नामतस्तान् निबोधत । आयुर्दृढायुरश्वायुर्धनायुर्धृतिमान् वसुः ॥ ३३ ॥
शुचिविद्यः शतायुश्च सर्वे दिव्यबलौजसः । आयुषो नहुषः पुत्रो वृद्धशर्मा तथैव च ॥ ३४ ॥
रजिर्दम्भो विपाप्मा च वीराः पञ्च महारथाः । रजेः पुत्रशतं जज्ञे राजेयमिति विश्रुतम् ॥ ३५ ॥
रजिराराधयामास नारायणमकल्मषम् । तपसा तोषितो विष्णुर्वरान् प्रादान्महीपतेः ॥ ३६ ॥
देवासुरमनुष्याणामभूत् स विजयी तदा । अथ देवासुरं युद्धमभूद् वर्षशतत्रयम् ॥ ३७ ॥
प्रह्लादशक्रयोर्भीमं न कश्चिद् विजयी तयोः । ततो देवासुरैः पृष्टः प्राह देवश्चतुर्मुखः ॥ ३८ ॥
अनयोर्विजयी कः स्याद् रजिर्यत्रेति सोऽब्रवीत् । जयाय प्रार्थितो राजा सहायस्त्वं भवस्व नः ॥ ३९ ॥
दैत्यैः प्राह यदि स्वामी वो भवामि ततस्त्वलम् । नासुरैः प्रतिपन्नं तत् प्रतिपन्नं सुरैस्तथा ॥ ४० ॥

* कालिदासके विक्रमोर्वशीय नाटकका यही कथानक आधार है । यह पद्मपुराणमें भी है । वैसे पुरूरवावृत्त वेदोंसे लेकर प्रायः सभी पुराणोंमें चर्चित है, पर वह थोड़ा भिन्नरूपमें है ।

स्वामी भव त्वमस्माकं संग्रामे नाशय द्विषः । ततो विनाशिताः सर्वे येऽवध्या वज्रपाणिना ॥ ४१ ॥
पुत्रत्वमगमत् तुष्टस्तस्येन्द्रः कर्मणा विभुः । दत्त्वेन्द्राय तदा राज्यं जगाम तपसे रजिः ॥ ४२ ॥

तत्पश्चात् उर्वशीने पुरूरवाके पास जाकर चिरकालके लिये उनका पतिरूपमें वरण कर लिया । भरतमुनिद्वारा दिये गये शापकी निवृत्तिके पश्चात् उर्वशीने बुधपुत्र पुरूरवाके संयोगसे आठ पुत्रोंको जन्म दिया । उनके नाम थे—आयु, दृढायु, अश्वायु, धनायु, धृतिमान्, वसु, शुचिविद्य और शतायु । ये सभी दिव्य बल-पराक्रमसे सम्पन्न थे । इनमें आयुके नहुष, वृद्धशर्मा, रजि, दम्भ और विपाप्मा नामक पाँच महारथी वीर पुत्र उत्पन्न हुए । रजिके सौ पुत्र पैदा हुए, जो राजेय नामसे विख्यात हुए । रजिने पापरहित भगवान् नारायणकी आराधना की । उनकी तपस्यासे प्रसन्न हुए भगवान् विष्णुने राजाको अनेकों वर प्रदान किये, जिससे वे उस समय देवों, असुरों और मनुष्योंके विजेता हो गये । तदनन्तर प्रह्लाद और इन्द्रका भयंकर देवासुर-संग्राम छिड़ गया, जो तीन सौ वर्षोंतक चलता रहा; परंतु उन दोनोंमें कोई किसीपर विजय नहीं पा रहा था । तब देवताओं और असुरोंने मिलकर देवाधिदेव ब्रह्मासे पूछा—'ब्रह्मन् ! इन दोनोंमें कौन (पक्ष) विजयी होगा ?' यह सुनकर ब्रह्माने उत्तर दिया—'जिस पक्षमें राजा रजि रहेंगे ( वही विजयी होगा )।' तब दैत्योंने राजाके पास जाकर अपनी विजयके लिये उनसे प्रार्थना की कि 'आप हमारे सहायक हो जायँ ।' उनकी प्रार्थना सुनकर रजिने कहा—'यदि मैं आप लोगोंका स्वामी हो जाऊँ तभी उपयुक्त सहायता हो सकेगी ।' परंतु असुरोंने उस प्रस्तावको स्वीकार नहीं किया, किंतु देवताओंने उसे स्वीकार करते हुए कहा—'राजन् ! आप हमलोगोंके स्वामी हो जायँ और संग्राममें शत्रुओंका संहार करें !' तदनन्तर राजा रजिने उन सभी असुरोंको मौतके घाट उतार दिया, जो इन्द्रद्वारा अवध्य थे । इस कर्मसे प्रसन्न होकर देवराज इन्द्र राजाके पुत्र बन गये । तब राजा रजि इन्द्रको राज्य समर्पित कर स्वयं तपस्या करनेके लिये चले गये ॥ ३२—४२ ॥

रजिपुत्रैस्तदाच्छिन्नं बलादिन्द्रस्य वैभवम् । यज्ञभागं च राज्यं च तपोबलगुणान्वितैः ॥ ४३ ॥
राज्याद् भ्रष्टस्तदा शक्रो रजिपुत्रैर्निपीडितः । प्राह वाचस्पतिं दीनः पीडितोऽस्मि रजेः सुतैः ॥ ४४ ॥
न यज्ञभागो राज्यं मे निर्जितश्च बृहस्पते । राज्यलाभाय मे यत्नं विधत्स्व धिषणाधिप ॥ ४५ ॥
ततो बृहस्पतिः शक्रमकरोद् बलदर्पितम् । ग्रहशान्तिविधानेन पौष्टिकेन च कर्मणा ॥ ४६ ॥
गत्वाथ मोहयामास रजिपुत्रान् बृहस्पतिः । जिनधर्मं समास्थाय वेदबाह्यं स वेदवित् ॥ ४७ ॥
वेदत्रयीपरिभ्रष्टांश्चकार धिषणाधिपः । वेदबाह्यान् परिज्ञाय हेतुवादसमन्वितान् ॥ ४८ ॥
जघान शक्रो वज्रेण सर्वान् धर्मबहिष्कृतान् । नहुषस्य प्रवक्ष्यामि पुत्रान् सप्तैव धार्मिकान् ॥ ४९ ॥
यतिर्ययातिः संयातिरुद्भवः पचिरेव च । शर्यातिर्मेघजातिश्च सप्तैते वंशवर्धनाः ॥ ५० ॥

तत्पश्चात् तपस्या, बल और गुणोंसे सम्पन्न रजि-पुत्रोंने इन्द्रके वैभव, यज्ञभाग और राज्यको बलपूर्वक छीन लिया । इस प्रकार रजि-पुत्रोंद्वारा सताये गये एवं राज्यसे भ्रष्ट हुए दीन-दुःखी इन्द्र बृहस्पतिके पास जाकर बोले—'गुरुदेव ! मैं रजिके पुत्रोंद्वारा सताया जा रहा हूँ, मुझे अब यज्ञमें भाग नहीं मिलता तथा मेरा राज्य जीत लिया गया, अतः धिषणाधिप ! ( बृहस्पते ) पुनः मेरी राज्य-प्राप्तिके लिये किसी उपायका विधान कीजिये ।' तब बृहस्पतिने ग्रह-शान्तिके विधानसे तथा पौष्टिक कर्मद्वारा इन्द्रको बलसम्पन्न बना दिया और रजि-पुत्रोंके पास जाकर उन्हें मोहमें डाल दिया । उन वेदज्ञ बृहस्पतिने वेदोंद्वारा बहिष्कृत जिन-

धर्मका आश्रय लेकर उन्हें वेदत्रयी ( ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद )से परिभ्रष्ट कर दिया। तदुपरान्त इन्द्रने उन्हें हेतुवाद ( तर्कवाद-नास्तिक्य )से समन्वित और वेदबाह्य जानकर अपने वज्रसे उन सभी धर्मबहिष्कृत रजि-पुत्रोंका संहार कर डाला। अब मैं नहुषके सात धार्मिक पुत्रोंका वर्णन कर रहा हूँ। उनके नाम हैं—यति, ययाति, संयाति, उद्भव, पाचि, शर्याति और मेघजाति। ये सातों वंश-विस्तारक थे॥ ४३—५०॥

यतिः कुमारभावेऽपि योगी वैखानसोऽभवत्। ययातिश्चाकरोद् राज्यं धर्मैकशरणः सदा॥ ५१॥
शर्मिष्ठा तस्य भार्याभूद् दुहिता वृषपर्वणः। भार्गवस्यात्मजा तद्वद्देवयानी च सुव्रता॥ ५२॥
ययातेः पञ्च दायादास्तान् प्रवक्ष्यामि नामतः। देवयानी यदुं पुत्रं तुर्वसुं चाप्यजीजनत्॥ ५३॥
तथा द्रुह्युमनुं पूरुं शर्मिष्ठाजनयत् सुतान्। यदुः पूरुश्चाभवतां तेषां वंशविवर्धनौ॥ ५४॥
ययातिर्नाहुषश्चासीद् राजा सत्यपराक्रमः। पालयामास स महीमीजे च विधिवन्मखैः॥ ५५॥
अतिभक्त्या पितृनर्च्य देवांश्च प्रयतः सदा। अथाजयत् प्रजाः सर्वा ययातिरपराजितः॥ ५६॥
स शाश्वतीः समा राजा प्रजा धर्मेण पालयन्। जरामार्च्छन्महाघोरां नाहुषो रूपनाशिनीम्॥ ५७॥
जराभिभूतः पुत्रान् स राजा वचनमब्रवीत्। यदुं पूरुं तुर्वसुं च द्रुह्युं चानुं च पार्थिवः॥ ५८॥
यौवनेन चलान् कामान् युवा युवतिभिः सह। विहर्तुमहमिच्छामि सहायं कुरुतात्मजाः॥ ५९॥

( इनमें सबसे ) ज्येष्ठ यति जब अपनी कुमारावस्थामें ही वैखानसका रूप धारण करके योगी हो गये, तब दूसरे पुत्र ययाति सदा एकमात्र धर्मका ही आश्रय लेकर राज्यभार सँभालने लगे। उस समय दानवराज वृषपर्वाकी पुत्री शर्मिष्ठा तथा शुक्राचार्यकी कन्या व्रतपरायणा देवयानी—ये दोनो ययातिकी पत्नियाँ हुइ। इनके गर्भसे राजा ययातिके पाँच पुत्र उत्पन्न हुए थे, जिनका मै नाम-निर्देशानुसार वर्णन कर रहा हूँ। देवयानीने यदु और तुर्वसु नामक दो पुत्रोंको जन्म दिया तथा शर्मिष्ठाने द्रुह्यु, अनु और पूरु नामक तीन पुत्रोको पैदा किया। इनमें यदु और पूरु—ये दोनों वंशका विस्तार करनेवाले हुए। नहुषनन्दन राजा ययाति सत्यपराक्रमी एवं अजेय थे। उन्होने ( धर्मपूर्वक ) पृथ्वीका पालन किया और विधिपूर्वक अनेको यज्ञोंका अनुष्ठान किया तथा जितेन्द्रिय होकर अत्यन्त भक्तिपूर्वक देवों और पितरोंकी अर्चना करके सारी प्रजाओंपर अधिकार जमा लिया। इस प्रकार नहुष-पुत्र राजा ययाति अनेकों वर्षोतक धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करते रहे। इसी बीच वे रूपको विकृत कर देनेवाली महान् भयंकर वृद्धावस्थासे ग्रस्त हो गये। बुढ़ापाके वशीभूत हुए राजा ययातिने अपने यदु, पूरु, तुर्वसु, द्रुह्यु और अनु नामक पुत्रोंसे ऐसी बात कही—'पुत्रो! यद्यपि युवावस्थाके साथ-साथ मेरी कामनाएँ भी चली गयीं, तथापि मै पुनः युवा होकर युवतियोंके साथ विहार करना चाहता हूँ, इस विषयमें तुमलोग मेरी सहायता करो॥ ५१—५९॥

तं पुत्रो देवयानेयः पूर्वजो यदुरब्रवीत्। साहाय्यं भवतः कार्यमस्माभिर्यौवनेन किम्॥ ६०॥
ययातिरब्रवीत् पुत्रा जरा मे प्रतिगृह्यताम्। यौवनेनाथ भवतां चरेयं विषयानहम्॥ ६१॥
यजतो दीर्घसत्रैर्मे शापाच्चोशनसो मुनेः। कामार्थः परिहीनो मेऽतृप्तोऽहं तेन पुत्रकाः॥ ६२॥
स्वकीयेन शरीरेण जरामेनां प्रशास्तु वः। अहं तन्वाभिनवया युवा कामानवाप्नुयाम्॥ ६३॥
न तेऽस्य प्रत्यगृह्णन्त यदुप्रभृतयो जराम्। चतुरस्तान् स राजर्षिरशपच्चेति नः श्रुतम्॥ ६४॥
तमब्रवीत् ततः पूरुः कनीयान् सत्यविक्रमः। जरां मां देहि नवया तन्वा मे यौवनात् सुखी॥ ६५॥
अहं जरां तवादाय राज्ये स्थास्यामि चाज्ञया। एवमुक्तः स राजर्षिस्तपोवीर्यसमाश्रयात्॥ ६६॥
संस्थापयामास जरां तदा पुत्रे महात्मनि। पौरवेणाथ वयसा राजा यौवनमास्थितः॥ ६७॥
ययातेश्चाथ वयसा राज्यं पूरुरकारयत्। ततो वर्षसहस्रान्ते ययातिरपराजितः॥ ६८॥

अतृप्त इव कामानां पूरुं पुत्रमुवाच ह। त्वया दायादवानस्मि त्वं मे वंशकरः सुतः ॥ ६९ ॥
पौरवो वंश इत्येष ख्यातिं लोके गमिष्यति। ततः स नृपशार्दूलः पूरुं राज्येऽभिषिच्य च ॥ ७० ॥
कालेन महता पश्चात् कालधर्ममुपेयिवान्।
पूरुवंशं प्रवक्ष्यामि शृणुध्वमृषिसत्तमाः। यत्र ते भारता जाता भरतान्वयवर्धनाः ॥ ७१ ॥

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशे ययातिचरिते चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥*

यह सुनकर देवयानीके ज्येष्ठ पुत्र यदुने राजासे कहा—'पिताजी! हमलोगोंको अपनी युवावस्थाद्वारा आपकी कौन-सी सहायता करनी है।' तब ययातिने अपने पुत्रोंसे कहा—'तुमलोग मेरा बुढ़ापा ले लेना, तत्पश्चात् मैं तुमलोगोंकी जवानीसे विषयोंका उपभोग करूँगा। पुत्रो! दीर्घकालव्यापी अनेकों यज्ञोंके अनुष्ठान तथा महर्षि शुक्राचार्यके शापसे मेरे काम और अर्थ नष्ट हो गये हैं, इसी कारण मै उनसे तृप्त नहीं हो सका हूँ। इसलिये तुमलोगोंमेंसे कोई अपने शरीरद्वारा इस बुढ़ापेको स्वीकार करे और मै उसके अभिनव शरीरकी प्राप्तिसे युवा होकर विषयोंका उपभोग करूँ।' परंतु जब यदु आदि चार पुत्रोंने पिताकी वृद्धावस्थाको ग्रहण करना स्वीकार नहीं किया, तब राजर्षि ययातिने उन्हें शाप दे दिया—ऐसा हमलोगोंने सुन रखा है। तत्पश्चात् सबसे कनिष्ठ पुत्र सत्यपराक्रमी पूरुने राजासे कहा—'पिताजी! आप अपना बुढ़ापा मुझे दे दीजिये और मेरे नूतन शरीरकी प्राप्तिसे युवा होकर सुखोंका उपभोग कीजिये। मै आपकी वृद्धावस्था स्वीकार करके आपके आज्ञानुसार राज-कार्य सँभालूँगा।' पूरुके यों कहनेपर राजर्षि ययातिने अपने तपोबलका आश्रय लेकर उस महात्मा पुत्र पूरुके शरीरमें अपने बुढ़ापेको स्थापित किया और वे स्वयं पूरुकी युवावस्थाको लेकर तरुण हो गये। तदनन्तर ययातिकी वृद्धावस्थासे युक्त हुए पूरु राज-काजका संचालन करने लगे। इस प्रकार एक सहस्र वर्ष व्यतीत होनेपर भी अजेय ययाति कामोपभोगसे अतृप्त-से ही बने रहे। तब उन्होंने अपने पुत्र पूरुसे कहा—'बेटा! अकेले तुम्हींसे मैं पुत्रवान् हूँ और तुम्हीं मेरे वंशविस्तारक पुत्र हो। आजसे यह वंश पूरु-वंशके नामसे लोकमें विख्यात होगा।' तदनन्तर राजसिंह ययाति पूरुको राज्यपर अभिषिक्त करके स्वयं उससे उपराम हो गये और बहुत समय बीतनेके पश्चात् कालधर्म—मृत्युको प्राप्त हो गये। श्रेष्ठ ऋषियो! अब मै जिस वंशमें भरत-वंशकी वृद्धि करनेवाले भारत नामसे प्रसिद्ध नरेश हो चुके हैं, उस पूरु-वंशका वर्णन करने जा रहा हूँ, आपलोग समाहितचित्त होकर श्रवण कीजिये ॥ ६०—७१ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके सोमवंश-वर्णन-प्रसङ्गमे ययाति-चरित-वर्णन नामक चौबीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २४ ॥

## पचीसवाँ अध्याय

### कचका शिष्यभावसे शुक्राचार्य और देवयानीकी सेवामें संलग्न होना और अनेक कष्ट सहनेके पश्चात् मृतसंजीविनी विद्या प्राप्त करना

ऋषय ऊचुः

किमर्थं पौरवो वंशः श्रेष्ठत्वं प्राप भूतले। ज्येष्ठस्यापि यदोर्वंशः किमर्थं हीयते श्रिया ॥ १ ॥
अन्यद् ययातिचरितं सूत विस्तरतो वद। यस्मात् तत्पुण्यमायुष्यमभिनन्द्यं सुरैरपि ॥ २ ॥

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! (अनुज होकर भी) पूरुका वंश भूतलपर श्रेष्ठताको क्यों प्राप्त हुआ और ज्येष्ठ होते हुए भी यदुका वंश (राज्य-) लक्ष्मीसे हीन क्यों हो गया? इसका तथा ययातिके चरितका विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये; क्योंकि यह पुण्यप्रद, आयुवर्धक और देवताओंद्वारा भी अभिनन्दनीय है ॥ १—२ ॥

सूत उवाच

एतदेव पुरा पृष्टः शतानीकेन शौनकः। पुण्यं पवित्रमायुष्यं ययातिचरितं महत् ॥ ३ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! पूर्वकालमें शतानीकने (भी) महर्षि शौनकसे ययातिके इसी पुण्यप्रद, परम पवित्र, आयुवर्धक एवं महत्त्वशाली चरितके विषयमें (इस प्रकार) प्रश्न किया था ॥ ३ ॥

शतानीक उवाच

ययातिः पूर्वजोऽस्माकं दशमो यः प्रजापतेः। कथं स शुक्रतनयां लेभे परमदुर्लभाम् ॥ ४ ॥
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं विस्तरेण तपोधन। आनुपूर्व्याच्च मे शंस पूरोर्वंशधरान् नृपान् ॥ ५ ॥

शतानीकने पूछा—तपोधन ! हमारे पूर्वज महाराज ययातिने, जो प्रजापतिसे दसवीं पीढ़ीमें उत्पन्न हुए थे, शुक्राचार्यकी अत्यन्त दुर्लभ पुत्री देवयानीको पत्नीरूपमें कैसे प्राप्त किया ? मै इस वृत्तान्तको विस्तारके साथ सुनना चाहता हूँ। आप मुझसे पूरुके सभी वंश-प्रवर्तक राजाओंका क्रमशः पृथक्-पृथक् वर्णन कीजिये ॥ ४—५ ॥

शौनक उवाच

ययातिरासीद् राजर्षिर्देवराजसमद्युतिः। तं शुक्रवृषपर्वाणौ वव्राते वै यथा पुरा ॥ ६ ॥
तत्तेऽहं सम्प्रवक्ष्यामि पृच्छतो राजसत्तम। देवयान्याश्च संयोगं ययातेर्नाहुषस्य च ॥ ७ ॥
सुराणामसुराणां च समजायत वै मिथः। ऐश्वर्यं प्रति सङ्घर्षस्त्रैलोक्ये सचराचरे ॥ ८ ॥
जिगीषया ततो देवा वव्रुराङ्गिरसं मुनिम्। पौरोहित्ये च यज्ञार्थे काव्यं तूशनसं परे ॥ ९ ॥
ब्राह्मणौ तावुभौ नित्यमन्योन्यं स्पर्धिनौ भृशम्। तत्र देवा निजघ्नुर्यान् दानवान् युधि संगतान् ॥ १० ॥
तान् पुनर्जीवयामास काव्यो विद्याबलाश्रयात्। ततस्ते पुनरुत्थाय योधयाञ्चक्रिरे सुरान् ॥ ११ ॥
असुरास्तु निजघ्नुर्यान् सुरान् समरमूर्धनि। न तान् स जीवयामास बृहस्पतिरुदारधीः ॥ १२ ॥
न हि वेद स तां विद्यां यां काव्यो वेद वीर्यवान्। सञ्जीवनीं ततो देवा विषादमगमन् परम् ॥ १३ ॥

शौनकजीने कहा—राजसत्तम ! राजर्षि ययाति देवराज इन्द्रके समान तेजस्वी थे। पूर्वकालमें शुक्राचार्य और वृषपर्वाने ययातिका अपनी-अपनी कन्याके पतिरूपमें जिस प्रकार वरण किया था, वह सब प्रसङ्ग तुम्हारे पूछनेपर मै तुमसे कहूँगा। साथ ही यह भी बताऊँगा कि नहुष-नन्दन ययाति तथा देवयानीका संयोग किस प्रकार हुआ। एक समय चराचर प्राणियोंसहित समस्त त्रिलोकीके ऐश्वर्यके लिये देवताओ और असुरोंमें परस्पर बड़ा भारी संघर्ष हुआ, उसमें विजय पानेकी इच्छासे देवताओंने यज्ञ-कार्यके लिये अङ्गिरा मुनिके पुत्र बृहस्पतिका पुरोहितके पदपर वरण किया और दैत्योंने शुक्राचार्यको पुरोहित बनाया। वे दोनों ब्राह्मण सदा आपसमें बहुत लाग-डाँट रखते थे। देवता उस युद्धमें आये हुए जिन दानवोंको मारते थे, उन्हे शुक्राचार्य अपनी संजीविनी विद्याके बलसे पुनः जीवित कर देते थे। वे पुनः उठकर देवताओंसे युद्ध करने लगते; परंतु असुरगण युद्धके मुहानेपर जिन देवताओंको मारते, उन्हें उदार-बुद्धि बृहस्पति जीवित नहीं कर पाते; क्योंकि शक्तिशाली शुक्राचार्य जिस संजीविनी विद्याको जानते थे, उसका ज्ञान बृहस्पतिको न था। इससे देवताओको बड़ा विषाद हुआ ॥ ६—१३ ॥

अथ देवा भयोद्विग्नाः काव्यादुशनसस्तदा। ऊचुः कचमुपागम्य ज्येष्ठं पुत्रं बृहस्पतेः ॥ १४ ॥
भजमानान् भजस्वास्मान् कुरु साहाय्यमुत्तमम्। यासौ विद्या निवसति ब्राह्मणेऽमिततेजसि ॥ १५ ॥
शुक्रे तामाहर क्षिप्रं भागभाङ्नो भविष्यसि। वृषपर्वणः समीपेऽसौ शक्यो द्रष्टुं त्वया द्विजः ॥ १६ ॥
रक्षते दानवांस्तत्र न स रक्षत्यदानवान्। तमाराधयितुं शक्तो नान्यः कश्चिदृते त्वया ॥ १७ ॥

देवयानी च दयिता सुता तस्य महात्मनः। तामाराधयितुं शक्तो नान्यः कश्चन विद्यते ॥ १८ ॥
शीलदाक्षिण्यमाधुर्यैराचारेण दमेन च। देवयान्यां तु तुष्टायां विद्यां तां प्राप्स्यसि ध्रुवम् ॥ १९ ॥
तदा हि प्रेषितो देवैः समीपे वृषपर्वणः। तथेत्युक्त्वा तु स प्रायाद् बृहस्पतिसुतः कचः ॥ २० ॥
स गत्वा त्वरितो राजन् देवैः सम्पूजितः कचः। असुरेन्द्रपुरे शुक्रं प्रणम्येदमुवाच ह ॥ २१ ॥
ऋषेरङ्गिरसः पौत्रं पुत्रं साक्षाद् बृहस्पतेः। नाम्ना कचेति विख्यातं शिष्यं गृह्णातु मां भवान् ॥ २२ ॥
ब्रह्मचर्यं चरिष्यामि त्वय्यहं परमं गुरो। अनुमन्यस्व मां ब्रह्मन् सहस्रपरिवत्सरान् ॥ २३ ॥

देवता शुक्राचार्यके भयसे उद्विग्न हो गये। तब वे बृहस्पतिके ज्येष्ठ पुत्र कचके पास जाकर बोले—'ब्रह्मन्! हम तुम्हारी शरणमें हैं। तुम हमें अपनाओ और हमारी उत्तम सहायता करो। अमित तेजस्वी ब्राह्मण शुक्राचार्यके पास जो मृतसंजीविनी विद्या है, उसे तुम शीघ्र सीख लो, इससे तुम हम देवताओंके साथ यज्ञमें भाग प्राप्त कर सकोगे। राजा वृषपर्वाके समीप तुम्हें विप्रवर शुक्राचार्यका दर्शन हो सकता है। वहाँ रहकर वे दानवोंकी रक्षा करते हैं; किंतु जो दानव नहीं हैं, उनकी रक्षा नहीं करते। उनकी आराधना करनेके लिये तुम्हारे अतिरिक्त दूसरा कोई समर्थ नहीं है। उन महात्माकी प्यारी पुत्रीका नाम देवयानी है, उसे अपनी सेवाओंद्वारा तुम्हीं प्रसन्न कर सकते हो। दूसरा कोई इसमें समर्थ नहीं है। अपने शील-स्वभाव, उदारता, मधुर व्यवहार, सदाचार तथा इन्द्रियसंयमद्वारा देवयानीको संतुष्ट कर लेनेपर तुम निश्चय ही उस विद्याको प्राप्त कर लोगे।' तब 'बहुत अच्छा' कहकर बृहस्पति-पुत्र कच देवताओंसे सम्मानित हो वहाँसे वृषपर्वाके समीप गया। राजन्! देवताओंद्वारा भेजा गया कच तुरंत दानवराज वृषपर्वाके नगरमें जाकर शुक्राचार्यसे मिला और उन्हें प्रणाम करके इस प्रकार बोला—'भगवन्! मैं अङ्गिरा ऋषिका पौत्र तथा साक्षात् बृहस्पतिका पुत्र हूँ। मेरा नाम कच है। आप मुझे अपने शिष्यके रूपमें ग्रहण करें। ब्रह्मन्! आप मेरे गुरु हैं। मैं आपके समीप रहकर एक हजार वर्षोंतक उत्तम ब्रह्मचर्यका पालन करूँगा। इसके लिये आप मुझे अनुमति दें' ॥ १४—२३ ॥

शुक्र उवाच

कच सुस्वागतं तेऽस्तु प्रतिगृह्णामि ते वचः। अर्चयिष्येऽहमर्च्यं त्वामर्चितोऽस्तु बृहस्पतिः ॥ २४ ॥

शुक्राचार्यने कहा—कच! तुम्हारा भलीभाँति स्वागत है, मैं तुम्हारी प्रार्थना स्वीकार करता हूँ। तुम मेरे लिये आदरके पात्र हो, अतः मैं तुम्हारा सम्मान एवं सत्कार करूँगा। तुम्हारे आदर-सत्कारसे मेरेद्वारा बृहस्पतिका (ही) आदर-सत्कार होगा ॥ २४ ॥

शौनक उवाच

कचस्तु तं तथेत्युक्त्वा प्रतिजग्राह तद् व्रतम्। आदिष्टं कविपुत्रेण शुक्रेणोशनसा स्वयम् ॥ २५ ॥
व्रतं च व्रतकालं च यथोक्तं प्रत्यगृह्णत। आराधयन्नुपाध्यायं देवयानीं च भारत ॥ २६ ॥
नित्यमाराधयिष्यंस्तां युवा यौवनगोचराम्। गायन् नृत्यन् वादयंश्च देवयानीमतोषयत् ॥ २७ ॥
संशीलयन् देवयानीं कन्यां सम्प्राप्तयौवनाम्। पुष्पैः फलैः प्रेषणैश्च तोषयामास भार्गवीम् ॥ २८ ॥
देवयान्यपि तं विप्रं नियमव्रतचारिणम्। अनुगायन्ती ललना रहः पर्यचरत् तदा ॥ २९ ॥
पञ्चवर्षशतान्येवं कचस्य चरतो भृशम्। तत्रस्तीव्रं व्रतं बुद्ध्वा दानवास्तं ततः कचम् ॥ ३० ॥
गा रक्षन्तं वने दृष्ट्वा रहस्येनममर्षिताः। जघ्नुर्बृहस्पतेर्द्वेषाद्विद्यारक्षार्थमेव च ॥ ३१ ॥
हत्वा सालावृकेभ्यश्च प्रायच्छंस्तिलशः कृतम्। ततो गावो निवृत्तास्ता अगोपाः स्वनिवेशनम् ॥ ३२ ॥

ता दृष्ट्वा रहिता गास्तु कचो नाभ्यागतो वनात्। उवाच वचनं काले देवयान्यथ भार्गवम्॥ ३३॥
हुतं चैवाग्निहोत्रं ते सूर्यश्चास्तं गतः प्रभो। अगोपाश्चागता गावः कचस्तात न दृश्यते॥ ३४॥
व्यक्तं हतो मृतो वापि कचस्तात भविष्यति। तं विना नैव जीवामि वचः सत्यं ब्रवीम्यहम्॥ ३५॥

शौनकजी कहते हैं—तब कचने 'बहुत अच्छा' कहकर महाकान्तिमान् कविपुत्र शुक्राचार्यके आदेशके अनुसार स्वयं ब्रह्मचर्य-व्रत ग्रहण किया। राजन्! नियत समयतकके लिये व्रतकी दीक्षा लेनेवाले कचको शुक्राचार्यने भलीभाँति अपना लिया। कच आचार्य शुक्र तथा उनकी पुत्री देवयानी—दोनोंकी नित्य आराधना करने लगा। वह नवयुवक था और जवानीमें प्रिय लगनेवाले कार्य—गायन और नृत्य करके भाँति-भाँतिके बाजे बजाकर देवयानीको संतुष्ट रखता था। आचार्यकन्या देवयानी भी युवावस्थामें पदार्पण कर चुकी थी। कच उसके लिये फूल और फल ले आता तथा उसकी आज्ञाके अनुसार कार्य करता। (इस प्रकार उसकी सेवामें संलग्न रहकर वह सदा उसे प्रसन्न रखता था।) देवयानी भी नियमपूर्वक ब्रह्मचर्य धारण करनेवाले कचके ही समीप रहकर गाती और आमोद-प्रमोद करती हुई एकान्तमें उसकी सेवा करती थी। इस प्रकार वहाँ रहकर ब्रह्मचर्य-व्रतका पालन करते हुए कचके पाँच सौ वर्ष व्यतीत हो गये। तब दानवोंको यह बात मालूम हुई। तदनन्तर कचको वनके एकान्त प्रदेशमें अकेले गौएँ चराते देख बृहस्पतिके द्वेषसे और संजीविनी विद्याकी रक्षाके लिये क्रोधमें भरे हुए दानवोंने कचको मार डाला। उन्होंने मारनेके बाद उसके शरीरको टुकड़े-टुकड़े कर कुत्तों और सियारोंको बाँट दिया। उस दिन गौएँ बिना रक्षकके ही अपने स्थानपर लौटीं। जब देवयानीने देखा, गौएँ तो वनसे लौट आयीं, पर उनके साथ कच नहीं है, तब उसने उस समय अपने पितासे इस प्रकार कहा—'प्रभो! आपने अग्निहोत्र कर लिया और सूर्यदेव भी अस्ताचलको चले गये। गौएँ भी आज बिना रक्षकके ही लौट आयी हैं। तात! तो भी कच नहीं दिखायी देता। पिताजी! अवश्य ही कच या तो मारा गया है या पकड़ लिया गया है। मै आपसे सच कहती हूँ, मैं उसके बिना जीवित नहीं रह सकूँगी'॥ २५—३५॥

शुक्र उवाच

अयेह्येहीति शब्देन मृतं संजीवयाम्यहम्। ततः संजीवनीं विद्यां प्रयुज्य कचमाह्वयत्॥ ३६॥
आहूतः प्राद्रवद् दूरात् कचः शुक्रं ननाम सः। हतोऽहमिति चाचख्यौ राक्षसैर्धिषणात्मजः॥ ३७॥
स पुनर्देवयान्योक्तः पुष्पाहारे यदृच्छया। वनं ययौ कचो विप्रः पठन् ब्रह्म च शाश्वतम्॥ ३८॥
वने पुष्पाणि चिन्वन्तं ददृशुर्दानवाश्च तम्।
ततो द्वितीये तं हत्वा दग्ध्वा कृत्वा च चूर्णवत्। प्रायच्छन् ब्राह्मणायैव सुरायामसुरास्तदा॥ ३९॥
देवयान्यथ भूयोऽपि पितरं वाक्यमब्रवीत्। पुष्पाहारप्रेषणकृत्कचस्तात न दृश्यते॥ ४०॥
व्यक्तं हतो मृतो वापि कचस्तात भविष्यति। तं विना नैव जीवामि वचः सत्यं ब्रवीमि ते॥ ४१॥

शुक्राचार्यने कहा—(बेटी! चिन्ता न करो।) मै मरे हुए कचको अभी 'आओ, आओ'—इस प्रकार बुलाकर जीवित किये देता हूँ। ऐसा कहकर उन्होंने संजीविनी विद्याका प्रयोग किया और कचको पुकारा। फिर तो गुरुके पुकारनेपर सरस्वती-नन्दन कच दूरसे ही दौड़ पड़ा और शुक्राचार्यके निकट आकर उन्हें प्रणाम कर बोला—'गुरो! राक्षसोंने मुझे मार डाला था।' पुनः देवयानीने स्वेच्छानुसार वनसे पुष्प लानेके लिये कचको आज्ञा दी, तब ब्राह्मण कच सनातन ब्रह्म (वेद)का पाठ करते हुए वनमें गया। दानवोंने वनमें उसे पुष्पोंका चयन करते हुए देख लिया। तत्पश्चात् असुरोंने दूसरी बार मारकर आगमें

जलाया और उसकी जली हुई लाशका चूर्ण बनाकर मदिरामें मिला दिया तथा उसे शुक्राचार्यको ही पिला दिया। अब देवयानी पुनः अपने पितासे यह बात बोली—'पिताजी ! आज मैंने उसे फूल लानेके लिये भेजा था, परंतु अभीतक वह दिखायी नहीं दिया। तात ! जान पड़ता है कि वह मार दिया गया या मर गया। मैं आपसे सच कहती हूँ, मैं उसके बिना जीवित नहीं रह सकती' ॥ ३६-४१ ॥

शुक्र उवाच

बृहस्पतेः सुतः पुत्रि कचः प्रेतगतिं गतः। विद्यया जीवितोऽप्येवं हन्यते करवाणि किम् ॥ ४२ ॥
मैवं शुचो मा रुद देवयानि न त्वादृशी मर्त्यमनु प्रशोचेत्।
यस्यास्तव ब्रह्म च ब्राह्मणाश्च सेन्द्रा देवा वसवोऽश्विनौ च ॥ ४३ ॥
सुरद्विषश्चैव जगच्च सर्वमुपस्थितं मत्तपसः प्रभावात्।
अशक्योऽयं जीवयितुं द्विजातिः स जीवितो यो वध्यते चैव भूयः ॥ ४४ ॥

**शुक्राचार्यने कहा**—बेटी ! बृहस्पतिका पुत्र कच मर गया। मैंने विद्यासे उसे कई बार जिलाया तो भी वह इस प्रकार मार दिया जाता है, अब मैं क्या करूँ। देवयानि ! तुम इस प्रकार शोक न करो, रोओ मत। तुम-जैसी शक्तिशालिनी स्त्री किसी मरनेवालेके लिये शोक नहीं करती। तुम्हें तो वेद, ब्राह्मण, इन्द्रसहित सब देवता, वसुगण, अश्विनीकुमार, दैत्य तथा सम्पूर्ण जगत्‌के प्राणी मेरे प्रभावसे तीनों संध्याओंके समय मस्तक झुकाकर प्रणाम करते हैं। अब उस ब्राह्मणको जिलाना असम्भव है। यदि जीवित हो जाय तो फिर दैत्योंद्वारा मार डाला जायगा ( अतः उसे जिलानेसे कोई लाभ नहीं है। ) ॥ ४२-४४ ॥

देवयान्युवाच

यस्याङ्गिरा वृद्धतमः पितामहो बृहस्पतिश्चापि पिता तपोनिधिः।
ऋषेः सुपुत्रं तमथापि पौत्रं कथं न शोचे यमहं न रुद्याम् ॥ ४५ ॥
स ब्रह्मचारी च तपोधनश्च सदोत्थितः कर्मसु चैव दक्षः।
कचस्य मार्गं प्रतिपत्स्ये न भोक्ष्ये प्रियो हि मे तात कचोऽभिरूपः ॥ ४६ ॥

**देवयानी बोली**—पिताजी ! अत्यन्त वृद्ध महर्षि अङ्गिरा जिसके पितामह हैं, तपस्याके भण्डार बृहस्पति जिसके पिता हैं, जो ऋषिका पुत्र और ऋषिका ही पौत्र है, उस ब्रह्मचारी कचके लिये मैं कैसे शोक न करूँ और कैसे न रोऊँ ? तात ! वह ब्रह्मचर्यपालनमें रत था, तपस्या ही उसका धन था। वह सदा ही सजग रहनेवाला और कार्य करनेमें कुशल था। इसलिये कच मुझे बहुत प्रिय था। वह सदा मेरे मनके अनुरूप चलता था। अब मैं भोजनका त्याग कर दूँगी और कच जिस मार्गपर गया है, वहीं मैं भी चली जाऊँगी ॥ ४५-४६ ॥

शौनक उवाच

स त्वेवमुक्तो देवयान्या महर्षिः संरम्भेण व्याजहाराथ काव्यः।
असंशयं मामसुरा द्विषन्ति ये मे शिष्यानागतान् सूदयन्ति ॥ ४७ ॥
अब्राह्मणं कर्तुमिच्छन्ति रौद्रा एभिर्व्यर्थं प्रस्तुतो दानवैर्हि।
तत्कर्मणाप्यस्य भवेदिहान्तः कं ब्रह्महत्या न दहेदपीन्द्रम् ॥ ४८ ॥
स तेनापृष्टो विद्यया चोपहूतो शनैर्वाचं जठरे व्याजहार।
तमब्रवीत् केन चेहोपनीतो ममोदरे तिष्ठसि ब्रूहि वत्स ॥ ४९ ॥

**शौनकजी कहते हैं**—शतानीक! देवयानीके कहनेसे उसके दुःखसे दुःखी महर्षि शुक्राचार्यने कचको पुकारा और दैत्योंके प्रति कुपित होकर बोले—'इसमें तनिक भी संशय नहीं है कि असुरलोग मुझसे द्वेष करते हैं। तभी तो यहाँ आये हुए मेरे शिष्योंको ये लोग मार डालते हैं। ये भयंकर स्वभाववाले दैत्य मुझे ब्राह्मणत्वसे गिराना चाहते हैं। इसीलिये प्रतिदिन मेरे विरुद्ध आचरण कर रहे है। इस पापका परिणाम यहाँ अवश्य प्रकट होगा। ब्रह्महत्या किसे नहीं जला देगी, चाहे वह इन्द्र ही क्यों न हों?' जब गुरुने विद्याका प्रयोग करके बुलाया, तब उनके पेटमें बैठा हुआ कच भयभीत हो धीरेसे बोला। ( उसकी आवाज सुनकर ) शुक्राचार्यने पूछा—'वत्स! किस मार्गसे जाकर तुम मेरे उदरमें स्थित हो गये। ठीक-ठीक बताओ' ॥ ४७—४९ ॥

कच उवाच

भवत्प्रसादान्न जहाति मां स्मृतिः सर्वं स्मरेयं यच्च यथा च वृत्तम्।
न त्वेवं स्यात् तपसः क्षयो मे ततः क्लेशं घोरतरं स्मरामि ॥ ५० ॥
असुरैः सुरायां भवतोऽस्मि दत्तो हत्वा दग्ध्वा चूर्णयित्वा च काव्य।
ब्राह्मीं मायां त्वासुरीं त्वत्र माया त्वयि स्थिते कथमेवाभिबाधते ॥ ५१ ॥

**कचने कहा**—गुरुदेव! आपके प्रसादसे मेरी स्मरण-शक्तिने साथ नहीं छोड़ा है। जो बात जैसे हुई, वह सब मुझे स्मरण है। इस प्रकार पेट फाड़कर निकल जानेसे मेरी तपस्याका नाश होगा। वह न हो, इसीलिये मै यहाँ घोर क्लेश सहन करता हूँ। आचार्यपाद! असुरोंने मुझे मारकर मेरे शरीरको जलाया और चूर्ण बना दिया। फिर उसे मदिरामें मिलाकर आपको पिला दिया। विप्रवर! आप ब्राह्मी, आसुरी और दैवी—तीनों प्रकारकी मायाओंको जानते हैं। आपके होते हुए कोई इन मायाओंका उल्लङ्घन कैसे कर सकता है? ॥ ५०-५१ ॥

शुक्र उवाच

किं ते प्रियं करवाण्यद्य वत्से विनैव मे जीवितं स्यात् कचस्य।
नान्यत्र कुक्षेर्मम भेदनाच्च दृश्येत् कचो मद्गतो देवयानि ॥ ५२ ॥

**शुक्राचार्य बोले**—बेटी देवयानि! अब तुम्हारे लिये कौन-सा प्रिय कार्य करूँ! मेरे वधसे ही कचका जीवित होना सम्भव है। मेरे उदरको विदीर्ण करनेके अतिरिक्त और कोई ऐसा उपाय नहीं है, जिससे मेरे शरीरमें बैठा हुआ कच बाहर दिखायी दे ॥ ५२ ॥

देवयान्युवाच

द्वौ मां शोकावग्निकल्पौ दहेतां कचस्य नाशस्तव चैवोपघातः।
कचस्य नाशे मम नास्ति शर्म तवोपघाते जीवितुं नास्मि शक्ता ॥ ५३ ॥

**देवयानीने कहा**—पिताजी! कचका नाश और आपका वध—ये दोनो ही शोक अग्निके समान मुझे जला देगे। कचके नष्ट होनेपर मुझे शान्ति नहीं मिलेगी और आपके मरनेपर मै जीवित न रह सकूँगी ॥ ५३ ॥

शुक्र उवाच

संसिद्धरूपोऽसि बृहस्पतेः सुत यत् त्वां भक्तं भजते देवयानी।
विद्यामिमां प्राप्नुहि जीवनीं त्वं न चेदिन्द्रः कचरूपी त्वमद्य ॥ ५४ ॥
न निवर्तेत पुनर्जीवन् कश्चिदन्यो ममोदरात्। ब्राह्मणं वर्जयित्वैकं तस्माद् विद्यामवाप्नुहि ॥ ५५ ॥
पुत्रो भूत्वा निष्क्रमस्वोदरान्मे भित्त्वा कुक्षिं जीवय मां च तात।
अवेक्षेथा धर्मवतीमवेक्षां गुरोः सकाशात् प्राप्तविद्यां सविद्यः ॥ ५६ ॥

शुक्राचार्य बोले—बृहस्पतिके पुत्र कच! अब तुम सिद्ध हो गये; क्योंकि तुम देवयानीके भक्त हो और वह तुम्हें चाहती है। यदि कचके रूपमें तुम इन्द्र नहीं हो तो मुझसे मृतसंजीविनी विद्या ग्रहण करो। केवल एक ब्राह्मणको छोड़कर दूसरा कोई ऐसा नहीं है, जो मेरे पेटसे पुनः जीवित निकल सके। इसलिये तुम विद्या ग्रहण करो। तात! मेरे इस शरीरसे जीवित निकलकर मेरे लिये पुत्रके तुल्य हो मुझे पुनः जिला देना। मुझ गुरुसे विद्या प्राप्त करके विद्वान् हो जानेपर भी मेरे प्रति धर्मयुक्त दृष्टिसे ही देखना॥ ५४—५६॥

शौनक उवाच

गुरोः सकाशात् समवाप्य विद्यां भित्त्वा कुक्षिं निर्विचक्राम विप्रः।
प्रालेयाद्रेः शुक्लमुद्भिद्य शृङ्गं रात्र्यागमे पौर्णमास्यामिवेन्दुः॥ ५७॥
दृष्ट्वा च तं पतितं वेदराशिमुत्थापयामास ततः कचोऽपि।
विद्यां सिद्धां तामवाप्याभिवाद्य ततः कचस्तं गुरुमित्युवाच॥ ५८॥
निधिं निधीनां वरदं वराणां ये नाद्रियन्ते गुरुमर्चनीयम्।
प्रालेयाद्रिप्रोज्ज्वलद्वालसंस्थं पापाँल्लोकांस्ते व्रजन्त्यप्रतिष्ठाः॥ ५९॥

शौनकजी कहते हैं—शतानीक! गुरुसे संजीविनी विद्या प्राप्त करके विप्रवर कच तत्काल ही महर्षि शुक्राचार्यका पेट फाड़कर ठीक उसी तरह निकल आया, जैसे दिन बीतनेपर पूर्णिमाकी संध्याके समय हिमालय-पर्वतके श्वेत शिखरको भेदकर चन्द्रमा प्रकट हो जाते हैं। मूर्तिमान् वेदराशिके तुल्य शुक्राचार्यको भूमिपर पड़ा देख कचने भी अपने मरे हुए गुरुको ( संजीविनी ) विद्याके बलसे जिला कर उठा दिया और उस सिद्ध विद्याको प्राप्त कर लेनेपर गुरुको प्रणाम कर वह इस प्रकार बोला—'जो लोग निधियोंके भी निधि, श्रेष्ठ लोगोंको भी वरदान देनेवाले, मस्तकपर हिमालय पर्वतके समान श्वेत केशधारी पूजनीय गुरुदेवका ( उनसे विद्या प्राप्त करके भी ) आदर नहीं करते, वे प्रतिष्ठारहित होकर पापपूर्ण लोकों—नरकोंमें जाते हैं'॥ ५७—५९॥

शौनक उवाच

सुरापानाद् वञ्चनात् प्रापयित्वा संज्ञानाशं चेतसश्चापि घोरम्।
दृष्ट्वा कचं चापि तथाभिरूपं पीतं तथा सुरया मोहितेन॥ ६०॥
समन्युरुत्थाय महानुभावस्तदोशना विप्रहितं चिकीर्षुः।
काव्यः स्वयं वाक्यमिदं जगाद सुरापानं प्रत्यसौ जातशङ्कः॥ ६१॥

शौनकजी कहते हैं—शतानीक! विद्वान् शुक्राचार्य मदिरापानसे ठगे गये थे और उस अत्यन्त भयानक परिस्थितिको पहुँच गये थे, जिसमें तनिक भी चेत नहीं रह जाता। मदिरासे मोहित होनेके कारण ही वे उस समय अपने मनके अनुकूल चलनेवाले प्रिय शिष्य ब्राह्मणकुमार कचको भी पी गये थे। यह सब देख और सोचकर वे महानुभाव कविपुत्र शुक्र कुपित हो उठे। मदिरा-पानके प्रति उनके मनमें क्रोध और घृणाका भाव जाग उठा और उन्होने ब्राह्मणोंका हित करनेकी इच्छासे स्वयं इस प्रकार घोषणा की॥ ६०-६१॥

शुक्र उवाच

यो ब्राह्मणोऽद्यप्रभृतीह कश्चिन्मोहात् सुरां पास्यति मन्दबुद्धिः।
अपेतधर्मा ब्रह्महा चैव स स्यादस्मिँल्लोके गर्हितः स्यात् परे च॥ ६२॥
मया चेमां विप्रधर्मोक्तसीमां मर्यादां वै स्थापितां सर्वलोके।
सन्तो विप्राः शुश्रुवांसो गुरूणां देवा दैत्याश्चोपशृण्वन्तु सर्वे॥ ६३॥

**शुक्राचार्यने कहा**—आजसे ( इस जगत्‌का ) जो कोई भी मन्दबुद्धि ब्राह्मण अज्ञानसे भी मदिरापान करेगा, वह धर्मसे भ्रष्ट हो ब्रह्महत्याके पापका भागी होगा तथा इहलोक और परलोक—दोनोंमें निन्दित होगा। धर्मशास्त्रोंमें ब्राह्मण-धर्मकी जो सीमा निर्धारित की गयी है, उसीमें मेरेद्वारा स्थापित की हुई यह मर्यादा भी रहे और सम्पूर्ण लोकमें मान्य हो। साधु पुरुष, ब्राह्मण, गुरुओंके समीप अध्ययन करनेवाले शिष्य, देवता और समस्त जगत्‌के मनुष्य मेरी बाँधी हुई इस मर्यादाको अच्छी तरह सुन लें ॥ ६२-६३ ॥

शौनक उवाच

**इतीदमुक्त्वा स महाप्रभावस्ततो निधीनां निधिरप्रमेयः।**
**तान् दानवांश्चैव निगूढबुद्धीनिदं समाहूय वचोऽभ्युवाच ॥ ६४ ॥**

**शौनकजी कहते हैं**—ऐसा कहकर तपस्याकी निधियोंकी निधि, अप्रमेय शक्तिशाली महानुभाव शुक्राचार्यने, दैवने जिनकी बुद्धिको मोहित कर दिया था, उन दानवोंको बुलाया और इस प्रकार कहा ॥ ६४ ॥

शुक्र उवाच

**आचक्षे वो दानवा बालिशाः स्थ शिष्यः कचो वत्स्यति मत्समीपे।**
**संजीवनीं प्राप्य विद्यां मयायं तुल्यप्रभावो ब्राह्मणो ब्रह्मभूतः ॥ ६५ ॥**

**शुक्राचार्यने कहा**—दानवो ! तुम सब ( बड़े ) मूर्ख हो। मैं तुम्हें बताये देता हूँ—( महात्मा ) कच मुझसे संजीवनी विद्या पाकर सिद्ध हो गया है। इसका प्रभाव मेरे ही समान है। यह ब्राह्मण ब्रह्मस्वरूप है ॥ ६५ ॥

शौनक उवाच

**गुरोरुष्य सकाशे च दशवर्षशतानि सः। अनुज्ञातः कचो गन्तुमियेष त्रिदशालयम् ॥ ६६ ॥**

*॥ इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशे ययातिचरिते पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥*

**शौनकजी कहते हैं**—कचने ( इस प्रकार ) एक हजार वर्षोंतक गुरुके समीप रहकर अपना व्रत पूरा कर लिया। तब ( गुरुसे ) घर जानेकी अनुमति मिल जानेपर उसने देवलोकमें जानेका विचार किया ॥ ६६ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके सोम-वंश-वर्णन-प्रसंगमे ययाति-चरित नामक पचीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २५ ॥

## छब्बीसवाँ अध्याय

### देवयानीका कचसे पाणिग्रहणके लिये अनुरोध, कचकी अस्वीकृति तथा दोनोंका एक-दूसरेको शाप देना

शौनक उवाच

**समापितव्रतं तं तु विसृष्टं गुरुणा तदा। प्रस्थितं त्रिदशावास देवयानीदमब्रवीत् ॥ १ ॥**

**शौनकजी कहते हैं**—जब कचका व्रत समाप्त हो गया और गुरु (शुक्राचार्य)ने उसे जानेकी आज्ञा दे दी, तब वह देवलोक जानेको उद्यत हुआ। उस समय देवयानीने उससे इस प्रकार कहा—॥ १ ॥

देवयान्युवाच

**ऋषेरङ्गिरसः पौत्र वृत्तेनाभिजनेन च। भ्राजसे विद्यया चैव तपसा च दमेन च ॥ २ ॥**
**ऋषिर्यथाङ्गिरा मान्यः पितुर्मम महायशाः। तथा मान्यश्च पूज्यश्च मम भूयो बृहस्पतिः ॥ ३ ॥**
**एवं ज्ञात्वा विजानीहि यद् ब्रवीमि तपोधन। व्रतस्थे नियमोपेते यथा वर्ताम्यहं त्वयि ॥ ४ ॥**
**स समापितविद्यो मां भक्तां न त्यक्तुमर्हसि। गृहाण पाणिं विधिवन्मम मन्त्रपुरस्कृतम् ॥ ५ ॥**

देवयानी बोली—महर्षि अङ्गिराके पौत्र ! तुम सदाचार, उत्तम कुल, विद्या, तपस्या तथा इन्द्रियसंयम आदिसे बड़ी शोभा पा रहे हो। महायशस्वी महर्षि अङ्गिरा जिस प्रकार मेरे पिताजीके लिये माननीय हैं, उसी प्रकार तुम्हारे पिता बृहस्पतिजी मेरे लिये आदरणीय तथा पूज्य हैं। तपोधन ! ऐसा जानकर मै जो कहती हूँ, उसपर विचार करो। तुम जब व्रत और नियमोके पालनमें लगे थे, उन दिनों मैने तुम्हारे साथ जो बर्ताव किया है, ( आशा है, ) उसे तुम भूले नहीं होगे। अब तुम व्रत समाप्त करके अपनी अभीष्ट विद्या प्राप्त कर चुके हो। मै तुमसे प्रेम करती हूँ; तुम मुझे स्वीकार करो; अतः वैदिक मन्त्रोंके उच्चारणपूर्वक विधिवत् मेरा पाणिग्रहण करो ॥ २—५ ॥

कच उवाच

**पूज्यो मान्यश्च भगवान् यथा मम पिता तव। तथा त्वमनवद्याङ्गि पूजनीयतमा मता ॥ ६ ॥**
**आत्मप्राणैः प्रियतमा भार्गवस्य महात्मनः। त्वं भद्रे धर्मतः पूज्या गुरुपुत्री सदा मम ॥ ७ ॥**
**यथा मम गुरुर्नित्यं मान्यः शुक्रः पिता तव। देवयानि तथैव त्वं नैवं मां वक्तुमर्हसि ॥ ८ ॥**

कचने कहा—निर्दोष अङ्गोंवाली देवयानी ! जैसे तुम्हारे पिता शुक्राचार्य मेरे लिये पूजनीय और माननीय हैं, वैसे ही तुम हो; बल्कि उनसे भी बढ़कर मेरी पूजनीया हो। भद्रे ! महात्मा भार्गवको तुम प्राणोंसे भी अधिक प्यारी हो। गुरुपुत्री होनेके कारण धर्मकी दृष्टिसे मेरी सदा पूजनीया हो। देवयानी ! जैसे मेरे गुरुदेव तुम्हारे पिता शुक्राचार्य सदा मेरे माननीय हैं, उसी प्रकार तुम हो; अतः तुम्हें मुझसे ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये ॥ ६—८ ॥

देवयान्युवाच

**गुरुपुत्रस्य पुत्रो मे न तु त्वमसि मे पितुः। तस्मान्मान्यश्च पूज्यश्च ममापि त्वं द्विजोत्तम ॥ ९ ॥**
**असुरैर्हन्यमाने तु कच त्वयि पुनः पुनः। तदाप्रभृति या प्रीतिस्तां त्वमेव स्मरस्व मे ॥ १० ॥**
**सौहार्दे चानुरागे च वेत्थ मे भक्तिमुत्तमाम्। न मामर्हसि धर्मज्ञ त्यक्तुं भक्तामनागसाम् ॥ ११ ॥**

देवयानी बोली—द्विजोत्तम ! तुम मेरे गुरुके पुत्र हो, मेरे पिताके नहीं; ( अतः मेरे भाई नहीं लगते, पर ) मेरे पूजनीय और माननीय हो। कच ! जब असुर तुम्हे बार-बार मार डालते थे, तबसे लेकर आजतक तुम्हारे प्रति मेरा जो प्रेम रहा है, उसे तुम्हीं स्मरण करो। तुम्हें मेरे सौहार्द और अनुराग तथा मेरी उत्तम भक्तिका परिचय मिल चुका है। तुम धर्मके ज्ञाता भी हो। मैं तुम्हारे प्रति भक्ति रखनेवाली निरपराध अबला हूँ। तुम्हें मेरा त्याग करना ( कदापि ) उचित नहीं है ॥ ९—११ ॥

कच उवाच

**अनियोज्ये नियोगे मां नियुनक्षि शुभव्रते। प्रसीद सुभ्रु मह्यं त्वं गुरोर्गुरुतरा शुभे ॥ १२ ॥**
**यत्रोषितं विशालाक्षि त्वया चन्द्रनिभानने। तत्राहमुषितो भद्रे कुक्षौ काव्यस्य भामिनि ॥ १३ ॥**
**भगिनी धर्मतो मे त्वं मैवं वोचः शुभानने। सुखेनाध्युषितो भद्रे न मन्युर्विद्यते मम ॥ १४ ॥**
**आपृच्छे त्वां गमिष्यामि शिवमस्त्वथ मे पथि। अविरोधेन धर्मस्य स्मर्तव्योऽस्मि कथान्तरे ॥ १५ ॥**
**अप्रमत्तोद्यता नित्यमाराधय गुरुं मम।**

कचने कहा—उत्तम व्रतका आचरण करनेवाली सुन्दरि ! तुम मुझे ऐसे कार्यमें प्रवृत्त कर रही हो, जो कदापि उचित नहीं है। शुभे ! तुम मुझपर प्रसन्न हो जाओ। तुम मेरे लिये गुरुसे भी बढ़कर श्रेष्ठ हो। विशाल नेत्र तथा चन्द्रमाके समान मुखवाली भामिनि ! शुक्राचार्यके जिस उदरमें तुम रह चुकी हो,

उसीमें मैं भी रहा हूँ। इसलिये भद्रे! धर्मकी दृष्टिसे तुम मेरी बहन हो; अतः शुभानने! मुझसे ऐसी बात न कहो। कल्याणि! मैं तुम्हारे यहाँ बड़े सुखसे रहा हूँ। तुम्हारे प्रति मेरे मनमें तनिक भी रोष नहीं है। अब मै जाऊँगा, इसलिये तुम्हारी आज्ञा चाहता हूँ; आशीर्वाद दो कि मार्गमें मेरा मङ्गल हो। धर्मकी अनुकूलता रखते हुए बातचीतके प्रसङ्गमें कभी मेरा भी स्मरण कर लेना और सदा सावधान एवं सजग रहकर मेरे गुरुदेव ( अपने पिता शुक्राचार्य )की सेवामें लगी रहना॥ १२-१५½ ॥

देवयान्युवाच

**दैत्यैर्हतस्त्वं यद्भर्तबुद्ध्या त्वं रक्षितो मया॥ १६॥**
**यदि मां धर्मकामार्थां प्रत्याख्यास्यसि धर्मतः। ततः कच न ते विद्या सिद्धिरेषा गमिष्यति॥ १७॥**

**देवयानी बोली**—कच! दैत्योंद्वारा बार-बार तुम्हारे मारे जानेपर मैंने पति-बुद्धिसे ही तुम्हारी रक्षा की है ( अर्थात् पिताद्वारा जीवनदान दिलाया है, इसीलिये ) मैने धर्मानुकूल कामके लिये तुमसे प्रार्थना की है। यदि तुम मुझे ठुकरा दोगे तो यह संजीविनी विद्या तुम्हारे कोई काम न आयेगी॥ १६-१७॥

कच उवाच

**गुरुपुत्रीति कृत्वाहं प्रत्याख्यास्ये न दोषतः। गुरुणा चाभ्यनुज्ञातः काममेवं शपस्व माम्॥ १८॥**
**आर्षं धर्मं ब्रुवाणोऽहं देवयानि यथा त्वया। शप्तुं नार्होऽस्मि कल्याणि कामतोऽद्य च धर्मतः॥ १९॥**
**तस्माद् भवत्या यः कामो न तथा सम्भविष्यति। ऋषिपुत्रो न ते कश्चिज्जातु पाणिं ग्रहीष्यति॥ २०॥**
**फलिष्यति न मे विद्या त्वद्वचश्चेति तत् तथा। अध्यापयिष्यामि च यं तस्य विद्या फलिष्यति॥ २१॥**

**कचने कहा**—देवयानी! गुरुपुत्री समझकर ही मैने तुम्हारे अनुरोधको टाल दिया है; तुममें कोई दोष देखकर नहीं। गुरुजी भी इसे जानते-मानते हैं। स्वेच्छासे मुझे शाप भी दे दो। बहन! मै आर्ष धर्मकी बात कर रहा था। इस दशामें तुम्हारे द्वारा शाप पानेके योग्य नहीं था। तुमने मुझे धर्मके अनुसार नहीं, कामके वशीभूत होकर आज शाप दिया है, इसलिये तुम्हारे मनमें जो कामना है, वह पूरी नहीं होगी। कोई भी ऋषिपुत्र ( ब्राह्मण-कुमार ) कभी तुम्हारा पाणिग्रहण नहीं करेगा। तुमने जो मुझे यह कहा कि तुम्हारी विद्या सफल नहीं होगी, सो ठीक है; किंतु मै जिसे यह पढ़ा दूँगा, उसकी विद्या तो सफल होगी ही॥ १८—२१॥

शौनक उवाच

**एवमुक्त्वा नृपश्रेष्ठ देवयानीं कचस्तदा। त्रिदशेशालयं शीघ्रं जगाम द्विजसत्तमः॥ २२॥**
**तमागतमभिप्रेक्ष्य देवाः सेन्द्रपुरोगमाः। बृहस्पतिं सभाज्येदं कचमाहुर्मुदान्विताः॥ २३॥**

**शौनकजी कहते हैं**—नृपश्रेष्ठ शतानीक! द्विजश्रेष्ठ कच देवयानीसे ऐसा कहकर तत्काल बड़ी उतावलीके साथ इन्द्रलोकको चला गया। उसे आया देख इन्द्रादि देवता बृहस्पतिजीकी सेवामें उपस्थित हो उन्हे साथ ले आगे बढ़कर बड़ी प्रसन्नतासे कचसे इस प्रकार बोले॥ २२-२३॥

देवा ऊचुः

**त्वं कचास्मद्धितं कर्म कृतवान् महदद्भुतम्। न ते यशः प्रणशिता भागभाक् च भविष्यसि॥ २४॥**

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशे ययातिचरिते षड्विंशोऽध्यायः॥ २६॥

**देवता बोले**—कच! तुमने हमारे हितके लिये यह बड़ा अद्भुत कार्य किया है, अतः तुम्हारे यशका कभी लोप नहीं होगा और तुम यज्ञमें भाग पानेके अधिकारी होओगे॥ २४॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके सोम-वंश-वर्णन-प्रसंगमे ययाति-चरित नामक छब्बीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २६॥

# सत्ताईसवाँ अध्याय

## देवयानी और शर्मिष्ठाका कलह, शर्मिष्ठाद्वारा कुएँमें गिरायी गयी देवयानीको ययातिका निकालना और देवयानीका शुक्राचार्यके साथ वार्तालाप

शौनक उवाच

कृतविद्ये कचे प्राप्ते हृष्टरूपा दिवौकसः। कचादधीत्य तां विद्यां कृतार्था भरतर्षभ ॥ १ ॥
सर्व एव समागम्य शतक्रतुमथाब्रुवन्। कालस्त्वद्विक्रमस्याद्य जहि शत्रून् पुरंदर ॥ २ ॥
एवमुक्तस्तु सह तैस्त्रिदशैर्मघवांस्तदा। तथेत्युक्त्वोपचक्राम सोऽपश्यद् विपिने स्त्रियः॥ ३ ॥
क्रीडन्तीनां तु कन्यानां वने चैत्ररथोपमे। वायुर्भूतः स वस्त्राणि सर्वाण्येव व्यमिश्रयत् ॥ ४ ॥
ततो जलात् समुत्तीर्य ताः कन्याः सहितास्तदा। वस्त्राणि जगृहुस्तानि यथा संस्थान्यनेकशः ॥ ५ ॥
तत्र वासो देवयान्याः शर्मिष्ठा जगृहे तदा। व्यतिक्रममजानन्ती दुहिता वृषपर्वणः ॥ ६ ॥
ततस्तयोर्मिथस्तत्र विरोधः समजायत। देवयान्याश्च राजेन्द्र शर्मिष्ठायाश्च तत्कृते ॥ ७ ॥

शौनकजी कहते हैं—भरतर्षभ ! जब कच मृतसंजीविनी विद्या सीखकर आ गये, तब देवताओंको बड़ी प्रसन्नता हुई। वे कचसे उस विद्याको पढ़कर कृतार्थ हो गये। फिर सबने मिलकर इन्द्रसे कहा—'पुरंदर ! अब आपके लिये पराक्रम करनेका समय आ गया है, अपने शत्रुओंका संहार कीजिये।' संगठित होकर आये हुए देवताओंद्वारा इस प्रकार कहे जानेपर इन्द्र 'बहुत अच्छा' कहकर भूलोकमें आये। वहाँ एक वनमें उन्होंने बहुत-सी स्त्रियोंको देखा। वह वन चैत्ररथ* नामक देवोद्यानके समान मनोहर था। उसमें वे कन्याएँ जलक्रीडा कर रही थीं। इन्द्रने वायुका रूप धारण करके उनके सारे कपड़े परस्पर मिला दिये। तब वे सभी कन्याएँ एक साथ जलसे निकलकर अपने-अपने अनेक प्रकारके वस्त्र, जो निकट ही रखे हुए थे, लेने लगीं। उस सम्मिश्रणमें शर्मिष्ठाने देवयानीका वस्त्र ले लिया। शर्मिष्ठा वृषपर्वाकी पुत्री थी। दोनोंके वस्त्र मिल गये हैं, इस बातका उसे पता न था। राजेन्द्र ! वस्त्रोंकी उस अदला-बदलीको लेकर देवयानी और शर्मिष्ठा—दोनोंमें वहाँ परस्पर बड़ा भारी विरोध खड़ा हो गया ॥ १—७ ॥

देवयान्युवाच

कस्माद् गृह्णासि मे वस्त्रं शिष्या भूत्वा ममासुरि। समुदाचारहीनाया न ते श्रेयो भविष्यति ॥ ८ ॥

देवयानी बोली—अरी दानवकी बेटी ! मेरी शिष्या होकर तू मेरा वस्त्र कैसे ले रही है ? तू सज्जनोंके उत्तम आचारसे शून्य है, अतः तेरा भला न होगा ॥ ८ ॥

शर्मिष्ठोवाच

आसीनं च शयानं च पिता ते पितरं मम। स्तौति पृच्छति चाभीक्ष्णं नीचस्थः सुविनीतवत् ॥ ९ ॥
याचतस्त्वं च दुहिता स्तुवतः प्रतिगृह्णतः। सुताहं स्तूयमानस्य ददतो न तु गृह्णतः ॥ १० ॥
अनायुधा सायुधायाः किं त्वं कुप्यसि भिक्षुकि। लप्स्यसे प्रतियोद्धारं न च त्वां गणयाम्यहम् ॥ ११ ॥

शर्मिष्ठाने कहा—अरी ! मेरे पिता बैठे हो या सो रहे हों, उस समय तेरा पिता विनयशील सेवकके समान नीचे खड़ा होकर बार-बार बन्दीजनोंकी भाँति उनकी स्तुति करता है। तू भिखमंगेकी बेटी है, तेरा बाप स्तुति करता और दान लेता है। मैं उनकी बेटी हूँ, जिनकी स्तुति की जाती है, जो दूसरोंको दान देते हैं

* जैसे इन्द्रके वनका नाम नन्दन है, वैसे चैत्ररथ वरुणका उद्यान है।

और स्वयं किसीसे कुछ भी नहीं लेते। अरी भिक्षुकि ! तू खाली हाथ है, तेरे पास कोई अस्त्र-शस्त्र भी नहीं है। और देख ले, मेरे पास हथियार है। इसलिये तू मेरे ऊपर व्यर्थ ही क्रोध कर रही है। यदि लड़ना ही चाहती है तो इधरसे भी डटकर सामना करनेवाली मुझ-जैसी योद्धी तुझे मिल जायगी। मै तुझे कुछ भी नहीं गिनती ॥९—११॥

शौनक उवाच

सा विस्मयं देवयानीं गतां सक्तां च वासति। शर्मिष्ठा प्राक्षिपत् कूपे ततः स्वपुरमाविशत् ॥ १२ ॥
हतेयमिति विज्ञाय शर्मिष्ठा पापनिश्चया। अनवेक्ष्य ययौ तस्मात् क्रोधवेगपरायणा ॥ १३ ॥
अथ तं देशमभ्यागाद् ययातिर्नहुषात्मजः। श्रान्तयुग्यः श्रान्तरूपो मृगलिप्सुः पिपासितः ॥ १४ ॥
नाहुषिः प्रेक्षमाणो हि स निपाते गतोदके। ददर्श कन्यां तां तत्र दीप्तामग्निशिखामिव ॥ १५ ॥
तामपृच्छत् स दृष्ट्वैव कन्याममरवर्णिनीम्। सान्त्वयित्वा नृपश्रेष्ठः साम्ना परमवल्गुना ॥ १६ ॥
का त्वं चारुमुखी श्यामा सुमृष्टमणिकुण्डला। दीर्घं ध्यायसि चात्यर्थं कस्माच्छ्वसिषि चातुरा ॥ १७ ॥
कथं च पतिता ह्यस्मिन् कूपे वीरुत्तृणावृते। दुहिता चैव कस्य त्वं वद सर्वं सुमध्यमे ॥ १८ ॥

**शौनकजी कहते हैं**—शतानीक ! यह सुनकर देवयानी आश्चर्यचकित हो गयी और शर्मिष्ठाके शरीरसे अपने वस्त्रको खींचने लगी। यह देख शर्मिष्ठाने उसे कुएँमें ढकेल दिया और अब वह ( डूबकर ) मर गयी होगी, ऐसा समझकर पापमय विचारवाली शर्मिष्ठा नगरको लौट आयी। वह क्रोधके आवेशमें थी, अतः देवयानीकी ओर देखे बिना घर लौट गयी। तदनन्तर नहुष-पुत्र ययाति उस स्थानपर आये। उनके रथके वाहन तथा अन्य घोडे भी थक गये थे। वे भी थकावटसे चूर हो गये थे। वे एक हिंसक पशुको पकड़नेके लिये उसके पीछे-पीछे आये थे और प्याससे कष्ट पा रहे थे। ययाति उस जलशून्य कूपको देखने लगे। वहाँ उन्हें अग्निशिखाके समान तेजस्विनी एक कन्या दिखायी दी, जो देवाङ्गनाके समान सुन्दरी थी। उसपर दृष्टि पडते ही नृपश्रेष्ठ ययातिने पहले परम मधुर वचनोंद्वारा शान्तभावसे उसे आश्वासन दिया और पूछा—'सुमध्यमे ! तुम कौन हो ? तुम्हारा मुख परम मनोहर है। तुम्हारी अवस्था भी अभी बहुत अधिक नहीं दीखती। तुम्हारे कानोंके मणिमय कुण्डल अत्यन्त सुन्दर और चमकीले हैं। तुम किसी अत्यन्त घोर चिन्तामें पड़ी हो। आतुर होकर लम्बी साँस क्यों ले रही हो ? तृण और लताओंसे ढके हुए इस कुएँमें कैसे गिर पडी ? तुम किसकी पुत्री हो ? सब ठीक-ठीक बताओ' ॥ १२—१८ ॥

देवयान्युवाच

योऽसौ देवैर्हतान् दैत्यानुत्थापयति विद्यया। तस्य शुक्रस्य कन्याहं त्वं मां नूनं न बुध्यसे ॥ १९ ॥
एष मे दक्षिणो राजन् पाणिस्ताम्रनखाङ्गुलिः। समुद्धर गृहीत्वा मां कुलीनस्त्वं हि मे मतः ॥ २० ॥
जानामि त्वां च संशान्तं वीर्यवन्तं यशस्विनम्। तस्मान्मां पतितं कूपादस्मादुद्धर्तुमर्हसि ॥ २१ ॥

**देवयानी बोली**—जो देवताओंद्वारा मारे गये दैत्योंको अपनी विद्याके बलसे जिलाया करते हैं, उन्हीं शुक्राचार्यकी मै पुत्री हूँ। निश्चय ही आप मुझे पहचानते नहीं हैं। महाराज ! लाल नख और अङ्गुलियोंसे युक्त यह मेरा दाहिना हाथ है। इसे पकड़कर आप इस कुएँसे मेरा उद्धार कीजिये। मै जानती हूँ, आप उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए नरेश हैं। मुझे यह भी ज्ञात है कि आप परम शान्त स्वभाववाले, पराक्रमी तथा यशस्वी वीर हैं। इसलिये इस कुएँमें गिरी हुई मुझ अबलाका आप यहाँसे उद्धार कीजिये ॥ १९—२१ ॥

शौनक उवाच

तामथ ब्राह्मणीं स्त्रीं च विज्ञाय नहुषात्मजः। गृहीत्वा दक्षिणे पाणावुज्जहार ततोऽवटात् ॥ २२ ॥
उद्धृत्य चैनां तरसा तस्मात् कूपान्नराधिपः। आमन्त्रयित्वा सुश्रोणीं ययातिः स्वपुरं ययौ ॥ २३ ॥
गते तु नाहुषे तस्मिन् देवयान्यप्यनिन्दिता। उवाच शोकसंतप्ता घूर्णिकामागतां पुनः ॥ २४ ॥

शौनकजी कहते हैं—शतानीक ! तदनन्तर नहुष-पुत्र राजा ययातिने देवयानीको ब्राह्मण-कन्या जानकर उसका दाहिना हाथ अपने हाथमें ले उसे उस कुएँसे बाहर निकाला। इस प्रकार वेगपूर्वक उसे कुएँसे बाहर निकालकर राजा ययाति सुन्दरी देवयानीकी अनुमति लेकर अपने नगरको चले गये। नहुष-नन्दन ययातिके चले जानेपर सती-साध्वी देवयानी शोकसे संतप्त हो अपने सामने आयी हुई धाय घूर्णिकासे बोली ॥ २२—२४ ॥

देवयान्युवाच

त्वरितं घूर्णिके गच्छ सर्वमाचक्ष्व मे पितुः। नेदानीं तु प्रवेक्ष्यामि नगरं वृषपर्वणः ॥ २५ ॥

देवयानीने कहा—घूर्णिके ! तुम तुरंत वेगपूर्वक यहाँसे जाओ और शीघ्र मेरे पिताजीसे सब वृत्तान्त कह दो। अब मैं ( राजा ) वृषपर्वाके नगरमें प्रवेश नहीं करूँगी—उस नगरमें पैर नहीं रखूँगी ॥ २५ ॥

शौनक उवाच

सा तु वै त्वरितं गत्वा घूर्णिकासुरमन्दिरम्। दृष्ट्वा काव्यमुवाचेदं कम्पमाना विचेतना ॥ २६ ॥
आचख्यौ च महाभागा देवयानी वने हता। शर्मिष्ठया महाप्राज्ञ दुहित्रा वृषपर्वणः ॥ २७ ॥
श्रुत्वा दुहितरं काव्यस्तदा शर्मिष्ठया हताम्। त्वरया निर्ययौ दुःखान्मार्गमाणः सुतां वने ॥ २८ ॥
दृष्ट्वा दुहितरं काव्यो देवयानीं ततो वने। बाहुभ्यां सम्परिष्वज्य दुःखितो वाक्यमब्रवीत् ॥ २९ ॥
आत्मदोषैर्नियच्छन्ति सर्वे दुःखसुखे जनाः। मन्ये दुश्चरितं तस्मिंस्तस्येयं निष्कृतिः कृता ॥ ३० ॥

शौनकजी कहते हैं—शतानीक ! देवयानीकी बात सुनकर घूर्णिका तुरंत असुरराजके महलमें गयी और वहाँ शुक्राचार्यको देखकर काँपती हुई उसने सम्भ्रमपूर्ण चित्तसे वह बात बतला दी। उसने कहा—'महाप्राज्ञ ! वृषपर्वाकी पुत्री शर्मिष्ठाके द्वारा देवयानी वनमें मार डाली ( मृत-तुल्य कर दी ) गयी है।' अपनी पुत्रीको शर्मिष्ठा-द्वारा मृत-तुल्य की गयी सुनकर शुक्राचार्य बड़ी उतावलीके साथ निकले और दुःखी होकर उसे वनमें ढूँढने लगे। तदनन्तर वनमें अपनी बेटी देवयानीको देखकर शुक्राचार्यने दोनों भुजाओंसे उठाकर उसे हृदयसे लगा लिया और दुःखी होकर कहा—'बेटी ! सब लोग अपने ही दोष और गुणोंसे—अशुभ या शुभ कर्मोंसे दुःख एवं सुखमें पड़ते हैं। मालूम होता है, तुमसे कोई बुरा कर्म बन गया था, जिसका तुमने इस रूपमें प्रायश्चित्त किया है' ॥ २६—३० ॥

देवयान्युवाच

निष्कृतिर्वास्तु वा मास्तु शृणुष्वावहितो मम। शर्मिष्ठया यदुक्तास्मि दुहित्रा वृषपर्वणः ॥ ३१ ॥
सत्यं किलैतत् सा प्राह दैत्यानामसि गायना। एवं हि मे कथयति शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी ॥ ३२ ॥
वचनं तीक्ष्णपरुषं क्रोधरक्तेक्षणा भृशम्। स्तुवतो दुहितासि त्वं याचतः प्रतिगृह्णतः ॥ ३३ ॥
सुताहं स्तूयमानस्य ददतोऽप्रतिगृह्णतः।
इति मामाह शर्मिष्ठा दुहिता वृषपर्वणः। क्रोधसंरक्तनयना दर्पपूर्णानना ततः ॥ ३४ ॥
यद्यहं स्तुवतस्तात दुहिता प्रतिगृह्णतः। प्रसादयिष्ये शर्मिष्ठामित्युक्ता हि सखी मया ॥ ३५ ॥

देवयानी बोली—पिताजी ! मुझे अपने कर्मोंके फलसे निस्तार हो या न हो, आप मेरी बात ध्यान देकर सुनिये। वृषपर्वाकी पुत्री शर्मिष्ठाने आज मुझसे जो कुछ कहा है, क्या यह सच है ? वह कहती है—मैं भाटोंकी

तरह दैत्योंके गुण गाया करती हूँ। वृषपर्वाकी लाड़िली शर्मिष्ठा क्रोधसे लाल आँखें करके आज मुझसे इस प्रकार अत्यन्त तीखे और कठोर वचन कह रही थी। 'देवयानी! तू स्तुति करनेवाले, नित्य भीख माँगनेवाले और दान लेनेवालेकी बेटी है और मै तो उन महाराजकी पुत्री हूँ, जिनकी तुम्हारे पिता स्तुति करते हैं, जो स्वयं दान देते हैं और लेते (किसीसे) एक अधेला भी नहीं हैं।' वृषपर्वाकी बेटी शर्मिष्ठाने आज मुझसे ऐसी बात कही है। कहते समय उसकी आँखें क्रोधसे लाल हो रही थीं। वह भारी घमंडसे भरी हुई थी। तात! यदि सचमुच मैं स्तुति करनेवाले और दान लेनेवालेकी बेटी हूँ तो मैं शर्मिष्ठाको अपनी सेवाओंद्वारा प्रसन्न करूँगी। यह बात मैने अपनी सखीसे कह दी थी। (मेरे ऐसा कहनेपर भी अत्यन्त क्रोधमें भरी हुई शर्मिष्ठाने उस निर्जन वनमें मुझे पकड़कर कुएँमें ढकेल दिया। उसके बाद वह अपने घर चली गयी)॥ ३१—३५॥

शुक्र उवाच

**स्तुवतो दुहिता न त्वं भद्रे न प्रतिगृह्णतः। अतस्त्वं स्तूयमानस्य दुहिता देवयान्यसि॥ ३६॥**
**वृषपर्वैव तद् वेद शक्रो राजा च नाहुषः। अचिन्त्यं ब्रह्म निर्द्वन्द्वमैश्वरं हि बलं मम॥ ३७॥**

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशे ययातिचरिते सप्तविंशोऽध्यायः॥ २७॥*

**शुक्राचार्यने कहा**—देवयानी! तू स्तुति करनेवाले, भीख माँगनेवाले या दान लेनेवालेकी बेटी नहीं है। तू उस पवित्र ब्राह्मणकी पुत्री है, जो किसीकी स्तुति नहीं करता और जिसकी सब लोग स्तुति करते हैं। इस बातको वृषपर्वा, देवराज इन्द्र तथा राजा ययाति जानते हैं। निर्द्वन्द्व अचिन्त्य ब्रह्म ही मेरा ऐश्वर्ययुक्त बल है॥ ३६-३७॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके सोम-वंश-वर्णन-प्रसंगमे ययातिचरित नामक सत्ताईसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २७॥

# अट्ठाईसवाँ अध्याय

## शुक्राचार्यद्वारा देवयानीको समझाना और देवयानीका असंतोप

शुक्र उवाच

**यः परेषां नरो नित्यमतिवादांस्तितिक्षति। देवयानि विजानीहि तेन सर्वमिदं जितम्॥ १॥**
**यः समुत्पतितं क्रोधं निगृह्णाति हयं यथा। स यन्तेत्युच्यते सद्भिर्न यो रश्मिषु लम्बते॥ २॥**
**यः समुत्पतितं क्रोधमक्रोधेन नियच्छति। देवयानि विजानीहि तेन सर्वमिदं जितम्॥ ३॥**
**यः समुत्पतितं कोपं क्षमयैव निरस्यति। यथोरगस्त्वचं जीर्णां स वै पुरुष उच्यते॥ ४॥**
**यस्तु भावयते धर्मं योऽतिमात्रं तितिक्षति। यस्य तप्तो न तपति भृशं सोऽर्थस्य भाजनम्॥ ५॥**
**यो यजेदश्वमेधेन मासि मासि शतं समाः। यस्तु कुप्येन्न सर्वस्य तयोरक्रोधनो वरः॥ ६॥**
**ये कुमाराः कुमार्यश्च वैरं कुर्युरचेतसः। नैतत् प्राज्ञस्तु कुर्वीत विदुस्ते न बलाबलम्॥ ७॥**

**शुक्राचार्यने कहा**—बेटी देवयानी! तुम इसे निश्चय जानो, जो मनुष्य सदा दूसरोंके कठोर वचन (दूसरोंद्वारा की हुई अपनी निन्दा) को सह लेता है, उसने मानो इस सम्पूर्ण जगत्पर विजय प्राप्त कर ली। जो उभरे हुए क्रोधको घोड़ेके समान वशमें कर लेता है, वही सत्पुरुषोंद्वारा सच्चा सारथि कहा गया है; जो केवल बागडोर या लगाम पकडकर लटकता रहता है, वह नहीं। देवयानी! जो उत्पन्न हुए क्रोधको अक्रोध (क्षमाभाव) द्वारा मनसे निकाल देता है, समझ लो, उसने सम्पूर्ण जगत्को जीत लिया। जैसे साँप पुरानी केंचुल छोड़ता है, उसी

प्रकार जो मनुष्य उभड़नेवाले क्रोधको वहीं क्षमाद्वारा त्याग देता है, वही श्रेष्ठ पुरुष कहा गया है। जो श्रद्धापूर्वक धर्माचरण करता है, कड़ी-से-कड़ी निन्दा सह लेता है और दूसरेके सतानेपर भी दुःखी नहीं होता, वही सब पुरुषार्थोंका सुदृढ़ पात्र है। एक व्यक्ति, जो सौ वर्षोंतक प्रत्येक मासमें अश्वमेध यज्ञ करता जाता है और दूसरा जो किसीपर भी क्रोध नहीं करता, इन दोनोंमें क्रोध न करनेवाला ही श्रेष्ठ है। अबोध बालक और बालिकाएँ अज्ञानवश आपसमें जो वैर-विरोध करते हैं, उसका अनुकरण समझदार मनुष्योंको नहीं करना चाहिये; क्योंकि वे नादान बालक दूसरोंके बलाबलको नहीं जानते ॥ १—७ ॥

देवयान्युवाच

वेदाहं तात बालापि कार्याणां तु गतागतम्। क्रोधे चैवातिवादे च वेद चापि बलाबले ॥ ८ ॥
शिष्यस्याशिष्यवृत्तं हि न क्षन्तव्यं बुभूषुणा। असत्संकीर्णवृत्तेषु वासो मम न रोचते ॥ ९ ॥
पुंसो ये नाभिनन्दन्ति वृत्तेनाभिजनेन च। न तेषु निवसेत् प्राज्ञः श्रेयोऽर्थी पापबुद्धिषु ॥ १० ॥
ये नैनमभिजानन्ति वृत्तेनाभिजनेन च। तेषु साधुषु वस्तव्यं स वासः श्रेष्ठ उच्यते ॥ ११ ॥
तन्मे मथ्नाति हृदयमग्निकल्पमिवारणिम्। वाग्दुरुक्तं महाघोरं दुहितुर्वृषपर्वणः ॥ १२ ॥
न ह्यतो दुष्करं मन्ये तात लोकेष्वपि त्रिषु। यः सपत्नश्रियं दीप्तां हीनश्रीः पर्युपास्ते ॥ १३ ॥

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे ययातिचरितेऽष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥*

देवयानी बोली—पिताजी! यद्यपि मैं अभी (नादान) बालिका हूँ, फिर भी धर्म-अधर्मका अन्तर समझती हूँ। क्षमा और निन्दाकी सबलता और निर्बलताका भी मुझे ज्ञान है; परंतु जो शिष्य होकर भी शिष्योचित बर्ताव नहीं करता, अपना हित चाहनेवाले गुरुको उसकी धृष्टता क्षमा नहीं करनी चाहिये। इसलिये इन संकीर्ण आचार-विचारवाले दानवोंके बीच निवास करना अब मुझे अच्छा नहीं लगता। जो पुरुष दूसरोंके सदाचार और कुलकी निन्दा करते हैं, उन पापपूर्ण विचारवाले मनुष्योंमें कल्याणकी इच्छावाले विद्वान् पुरुषको नहीं रहना चाहिये। जो लोग आचार, व्यवहार अथवा कुलीनताकी प्रशंसा करते हों, उन साधु पुरुषोंमें ही निवास करना चाहिये और वही निवास श्रेष्ठ कहा जाता है। तात! वृषपर्वाकी पुत्री शर्मिष्ठाने जो अत्यन्त भयंकर दुर्वचन कहा है, वह मेरे हृदयको ठीक उसी तरह मथ रहा है, जैसे अग्नि प्रकट करनेकी इच्छावाला पुरुष अरणीकाष्ठका मन्थन करता है। इससे बढ़कर महान् दुःखकी बात मैं तीनों लोकोंमें और कुछ नहीं मानती, जो स्वयं श्रीहीन होकर शत्रुओंकी चमकती हुई (सातिशय) लक्ष्मीकी उपासना करता है (उस दुःखी मनुष्यका तो मर जाना ही अच्छा है।) ॥ ८-१३ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें ययातिचरितविषयक अट्ठाईसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २८ ॥

## उन्तीसवाँ अध्याय

### शुक्राचार्यका वृषपर्वाको फटकारना तथा उसे छोड़कर जानेके लिये उद्यत होना और वृषपर्वाके आदेशसे शर्मिष्ठाका देवयानीकी दासी बनकर शुक्राचार्य तथा देवयानीको संतुष्ट करना

शौनक उवाच

ततः काव्यो भृगुश्रेष्ठः समन्युरुपगम्य ह। वृषपर्वाणमासीनमित्युवाचाविचारयन् ॥ १ ॥
नाधर्मश्चरितो राजन् सद्यः फलति गौरिव। शनैरावर्त्यमानस्तु मूलान्यपि निकृन्तति ॥ २ ॥
यदि नात्मनि पुत्रेषु न चेत् पश्यति नप्तृषु। पापमाचरितं कर्म त्रिवर्गमनिवर्तते ॥ ३ ॥

फलत्येव ध्रुवं पापं गुरुभुक्तमिवोदरे। यदा घातयसे विप्रं कचमाङ्गिरसं तदा ॥ ४ ॥
अपापशीलं धर्मज्ञं शुश्रूषुं मद्गृहे रतम्। वधादनर्हतस्तस्य वधाच्च दुहितुर्मम ॥ ५ ॥
वृषपर्वन् निबोध त्वं त्यक्ष्यामि त्वां सबान्धवम्। स्थातुं त्वद्विषये राजन् न शक्नोमि त्वया सह ॥ ६ ॥
अद्यैवमभिजानामि दैत्यं मिथ्याप्रलापिनम्। यतस्त्वमात्मनोदीर्णां दुहितां किमुपेक्षसे ॥ ७ ॥

**शौनकजी कहते हैं**—शतानीक ! देवयानीकी बात सुनकर भृगुश्रेष्ठ शुक्राचार्य बड़े क्रोधमें भरकर वृषपर्वाके समीप गये। वह राजसिंहासनपर बैठा हुआ था। शुक्राचार्यजीने बिना कुछ सोचे-विचारे उससे इस प्रकार कहना आरम्भ किया—'राजन् ! जो ( लोकमें ) अधर्म किया जाता है, उसका फल तुरंत नहीं मिलता। जैसे गायकी सेवा करनेपर धीरे-धीरे कुछ कालके बाद वह ब्याती और दूध देती है अथवा धरतीको जोत-बोकर बीज डालनेसे कुछ कालके बाद पौधा उगता और यथासमय फल देता है, उसी प्रकार किया जानेवाला अधर्म धीरे-धीरे जड़ काट देता है। यदि वह ( पापसे उपार्जित द्रव्यका ) दुष्परिणाम न अपने ऊपर दिखायी देता है, न पुत्रों अथवा नाती-पोतोंपर ही तो वह इस त्रिवर्गका अतिक्रमण करके आगेकी पीढ़ियोंपर अवश्य प्रकट होता है। जैसे खाया हुआ गरिष्ठ अन्न तुरंत नहीं तो कुछ देर बाद अवश्य ही पेटमें उपद्रव करता है, उसी प्रकार किया हुआ पाप भी निश्चय ही अपना फल देता है। राजन् ! अङ्गिराका पौत्र कच विशुद्ध ब्राह्मण है। वह स्वभावसे ही निष्पाप और धर्मज्ञ है तथा उन दिनों मेरे घरमें रहकर निरन्तर मेरी सेवामें संलग्न था, परंतु तुमने उसका बार-बार वध करवाया था। वृषपर्वन् ! ध्यान देकर मेरी यह बात सुन लो, तुम्हारेद्वारा पहले वधके अयोग्य ब्राह्मणका वध किया गया है और अब मेरी पुत्री देवयानीका भी वध करनेके लिये उसे कुएँमें ढकेला गया है। इन दोनों हत्याओंके कारण मैं तुमको और तुम्हारे भाई-बन्धुओंको त्याग दूँगा। राजन् ! तुम्हारे राज्यमें और तुम्हारे साथ मैं एक क्षण भी नहीं ठहर सकूँगा। दैत्यराज ! आज मैं तुम-जैसे मिथ्याप्रलापी दैत्यको भलीभाँति समझ सका हूँ। तुम अपनी पुत्रीके उद्धत स्वभावकी उपेक्षा क्यों कर रहे हो ?'॥ १—७ ॥

वृषपर्वोवाच

नावद्यं न मृषावादं त्वयि जानामि भार्गव। त्वयि सत्यं च धर्मश्च तत् प्रसीदतु मां भवान् ॥ ८ ॥
अथास्मानपहाय त्वमितो यास्यसि भार्गव। समुद्रं सम्प्रवेक्ष्यामि नान्यदस्ति परायणम् ॥ ९ ॥

**वृषपर्वा बोले**—भृगुनन्दन ! आपने मेरे जानते कभी अनुचित या मिथ्या भाषण नहीं किया। आपमें धर्म और सत्य सदा प्रतिष्ठित है। अतः आप हमलोगोंपर कृपा करके प्रसन्न होइये ! भार्गव ! यदि आप हमें छोड़कर चले जाते हैं तो मैं ( तुरंत ) समुद्रमें प्रवेश कर जाऊँगा; क्योंकि हमारे लिये फिर दूसरी कोई गति नहीं है ॥ ८-९ ॥

शुक्र उवाच

समुद्रं प्रविशध्वं वा दिशो वा व्रजतासुराः। दुहितुर्नाप्रियं सोढुं शक्तोऽहं दयिता हि मे ॥ १० ॥
प्रसाद्यतां देवयानी जीवितं यत्र मे स्थितम्। योगक्षेमकरस्तेऽहमिन्द्रस्येव बृहस्पतिः ॥ ११ ॥

**शुक्राचार्यने कहा**—असुरो ! तुमलोग समुद्रमें घुस जाओ अथवा चारों दिशाओंमें भाग जाओ, मैं अपनी पुत्रीके प्रति किया गया अप्रिय बर्ताव नहीं सह सकता; क्योंकि वह मुझे अत्यन्त प्रिय है। तुम देवयानीको प्रसन्न करो; क्योंकि उसीमें मेरे प्राण बसते हैं। उसके प्रसन्न हो जानेपर इन्द्रके पुरोहित बृहस्पतिकी भाँति मैं तुम्हारे योगक्षेमका वहन करता रहूँगा ॥ १०-११ ॥

वृषपर्वोवाच

यत्किंचिदसुरेन्द्राणां विद्यते वसु भार्गव। भुवि हस्तिरथाश्वं वा तस्य त्वं मम चेश्वरः ॥ १२ ॥

वृषपर्वा बोले—भृगुनन्दन ! असुरेश्वरोंके पास इस आदि पशुधन है, उसके और मेरे भी आप ही स्वामी
भूतलपर जो कुछ भी सम्पत्ति तथा हाथी-घोड़े हैं ॥ १२ ॥

शुक्र उवाच

यत्किंचिदस्ति द्रविणं दैत्येन्द्राणां महासुर। तस्येश्वरोऽस्मि यद्येतद् देवयानी प्रसाद्यताम् ॥ १३ ॥

शुक्राचार्यने कहा—महान् असुर ! दैत्यराजोंका ही हूँ तो उसके द्वारा इस देवयानीको प्रसन्न
जो कुछ भी धन-वैभव है, यदि उसका स्वामी मै करो ॥ १३ ॥

शौनक उवाच

ततस्तु त्वरितः शुक्रस्तेन राज्ञा समं ययौ। उवाच चैनां सुभगे प्रतिपन्नं वचस्तव ॥ १४ ॥

शौनकजी कहते हैं—शतानीक ! तदनन्तर देवयानीके पास पहुँचे और उससे बोले—'सुभगे !
शुक्राचार्य तुरंत ही राजा वृषपर्वाके साथ अपनी पुत्री तुम्हारी बात पूरी हो गयी' ॥ १४ ॥

देवयान्युवाच

यदि त्वमीश्वरस्तात राज्ञो वित्तस्य भार्गव। नाभिजानामि तत्तेऽहं राजा वदतु मां स्वयम् ॥ १५ ॥

तब देवयानीने कहा—तात भार्गव ! 'आप राजाके नहीं मानूँगी । राजा स्वयं कहें तो हमें विश्वास
धनके स्वामी हैं' मै इस बातको आपके कहनेसे होगा ॥ १५ ॥

वृषपर्वोवाच

यं काममभिजानासि देवयानि शुचिस्मिते। तत्तेऽहं सम्प्रदास्यामि यद्यपि स्यात् सुदुर्लभम् ॥ १६ ॥

वृषपर्वा बोले—पवित्र मुसकानवाली देवयानी ! तुम हो तो भी मैं उसे तुम्हें अवश्य दूँगा ( यह तुम विश्वास
जिस वस्तुको पाना चाहती हो, वह यदि अत्यन्त दुर्लभ करो ) ॥ १६ ॥

देवयान्युवाच

दासीं कन्यासहस्रेण शर्मिष्ठामभिकामये। अनुयास्यति मां तत्र यत्र दास्यति मे पिता ॥ १७ ॥

देवयानीने कहा—मैं चाहती हूँ, शर्मिष्ठा एक पिताजी जहाँ मेरा विवाह करें, वहाँ भी वह मेरे
हजार कन्याओंके साथ मेरी दासी बनकर रहे और साथ जाय ॥ १७ ॥

वृषपर्वोवाच

उत्तिष्ठ धात्रि गच्छ त्वं शर्मिष्ठां शीघ्रमानय। यं च कामयते कामं देवयानी करोतु तम् ॥ १८ ॥

यह सुनकर वृषपर्वाने धायसे कहा—धात्रि ! तुम देवयानीकी जिस वस्तुकी कामना हो, उसे वह पूर्ण
उठो, जाओ और शर्मिष्ठाको (यहाँ) शीघ्र बुला लाओ एवं करे ॥ १८ ॥

शौनक उवाच

ततो धात्री तत्र गत्वा शर्मिष्ठामिदमब्रवीत्। उत्तिष्ठ भद्रे शर्मिष्ठे ज्ञातीनां सुखमावह ॥ १९ ॥
यं सा कामयते कामं स कार्योऽत्र त्वयानघे। दासी त्वमभिजातासि देवयान्याः सुशोभने ॥ २० ॥
त्यजति ब्राह्मणः शिष्यान् देवयान्या प्रचोदितः।

शौनकजी कहते हैं—तब धायने शर्मिष्ठाके पास शिष्यों—यजमानोंको त्याग रहे हैं । अतः देवयानीकी
जाकर कहा—'भद्रे शर्मिष्ठे ! उठो और अपने जो कामना हो, वह तुम्हें पूर्ण करनी चाहिये ।
जाति-भाइयोंको सुख पहुँचाओ । पापरहित सुशोभने ! तुम देवयानीकी दासी बनायी गयी
राजकुमारी ! आज शुक्राचार्य देवयानीके कहनेसे अपने हो' ॥ १९-२० ॥

शर्मिष्ठोवाच

**यं च कामयते कामं करवाण्यहमद्य तम्। मा गान्मन्युवशं शुक्रो देवयानी च मत्कृते ॥ २१ ॥**

**शर्मिष्ठा बोली**—यदि इस प्रकार देवयानीके लिये ही शुक्राचार्यजी मुझे बुला रहे हैं तो देवयानी जो कुछ चाहती हैं, वह सब आजसे मैं करूँगी। मेरे अपराधसे न शुक्राचार्यजी कहीं जायँ और न देवयानी ही। मेरे कारण ये अन्यत्र जानेका विचार न करें ॥ २१ ॥

शौनक उवाच

**ततः कन्यासहस्रेण वृता शिविकया तदा। पितुर्निदेशात् त्वरिता निश्चक्राम पुरोत्तमात् ॥ २२ ॥**

**शौनकजी कहते हैं**—शतानीक! तदनन्तर पिताकी आज्ञासे राजकुमारी शर्मिष्ठा शिविकापर आरूढ़ हो तुरंत राजधानीसे बाहर निकली। उस समय वह एक सहस्र कन्याओंसे घिरी हुई थी ॥ २२ ॥

शर्मिष्ठोवाच

**अहं कन्यासहस्रेण दासी ते परिचारिका। ध्रुवं त्वां तत्र यास्यामि यत्र दास्यति ते पिता ॥ २३ ॥**

**शर्मिष्ठा बोली**—देवयानी! मैं एक सहस्र दासियोंके साथ तुम्हारी दासी बनकर सेवा करूँगी और तुम्हारे पिता जहाँ भी तुम्हारा ब्याह करेंगे, निश्चय ही वहाँ तुम्हारे साथ चलूँगी ॥ २३ ॥

देवयान्युवाच

**स्तुवतो दुहिता चाहं याचतः प्रतिगृह्णतः। स्तूयमानस्य दुहिता कथं दासी भविष्यसि ॥ २४ ॥**

**देवयानीने कहा**—अरी! मैं तो स्तुति करनेवाले और दान लेनेवाले भिक्षुककी पुत्री हूँ और तुम उस बड़े बापकी बेटी हो, जिसकी मेरे पिता स्तुति करते हैं, फिर मेरी दासी बनकर कैसे रहोगी? ॥ २४ ॥

शर्मिष्ठोवाच

**येन केनचिदार्त्तानां ज्ञातीनां सुखमावहेत्। अनुयास्याम्यहं तत्र यत्र दास्यति ते पिता ॥ २५ ॥**

**शर्मिष्ठा बोली**—जिस-किसी उपायसे भी सम्भव हो, अपने विपद्ग्रस्त जाति-भाइयोंको सुख पहुँचाना चाहिये। ( इसलिये ) तुम्हारे पिता जहाँ तुम्हें देंगे, वहाँ भी मैं तुम्हारे साथ चलूँगी ॥ २५ ॥

शौनक उवाच

**प्रतिश्रुते दासभावे दुहित्रा वृषपर्वणः। देवयानी नृपश्रेष्ठ पितरं वाक्यमब्रवीत् ॥ २६ ॥**

**शौनकजी कहते हैं**—नृपश्रेष्ठ! जब वृषपर्वाकी पुत्रीने दासी होनेकी प्रतिज्ञा कर ली, तब देवयानीने अपने पितासे कहा ॥ २६ ॥

देवयान्युवाच

**प्रविशामि पुरं तात तुष्टास्मि द्विजसत्तम। अमोघं तव विज्ञानमस्ति विद्याबलं च ते ॥ २७ ॥**

**देवयानी बोली**—पिताजी! अब मैं नगरमें प्रवेश करूँगी। द्विजश्रेष्ठ! अब मुझे विश्वास हो गया है कि आपका विज्ञान और आपकी विद्याका बल अमोघ है ॥ २७ ॥

शौनक उवाच

**एवमुक्तो द्विजश्रेष्ठो दुहित्रा सुमहायशाः। प्रविवेश पुरं हृष्टः पूजितः सर्वदानवैः ॥ २८ ॥**

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशे ययातिचरिते एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥*

**शौनकजी कहते हैं**—शतानीक! देवयानीके ऐसा कहनेपर महायशस्वी द्विजश्रेष्ठ शुक्राचार्यने अपनी पुत्री समस्त दानवोंसे पूजित एवं प्रसन्न होकर नगरमें प्रवेश किया ॥ २८ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके सोम-वंश-वर्णन-प्रसङ्गमें ययाति-चरितवर्णन नामक उन्तीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २९ ॥

# तीसवाँ अध्याय

## सखियोंसहित देवयानी और शर्मिष्ठाका वनविहार, राजा ययातिका आगमन, देवयानीके साथ बातचीत तथा विवाह

शौनक उवाच

अथ दीर्घेण कालेन देवयानी नृपोत्तम। वनं तदेव निर्याता क्रीडार्थं वरवर्णिनी ॥ १ ॥
तेन दासीसहस्रेण सार्धं शर्मिष्ठया तदा। तमेव देशं सम्प्राप्ता यथाकामं चचार सा ॥ २ ॥
ताभिः सखीभिः सहिता सर्वाभिर्मुदिता भृशम्। क्रीडन्त्योऽभिरताः सर्वाः पिबन्त्यो मधु माधवम् ॥ ३ ॥
खादन्त्यो विविधान् भक्ष्यान् फलानि विविधानि च। पुनश्च नाहुषो राजा मृगलिप्सुर्यदृच्छया ॥ ४ ॥
तमेव देशं सम्प्राप्तो जललिप्सुः प्रतर्पितः। ददर्श देवयानीं च शर्मिष्ठां ताश्च योषितः ॥ ५ ॥
पिबन्त्यो ललनास्ताश्च दिव्याभरणभूषिताः। उपविष्टां च ददृशे देवयानीं शुचिस्मिताम् ॥ ६ ॥
रूपेणाप्रतिमां तासां स्त्रीणां मध्ये वराङ्गनाम्। शर्मिष्ठया सेव्यमानां पादसंवाहनादिभिः ॥ ७ ॥

**शौनकजी कहते हैं—**नृपश्रेष्ठ ! तदनन्तर दीर्घकालके पश्चात् उत्तम वर्णवाली देवयानी फिर उसी वनमें विहारके लिये गयी। उस समय उसके साथ एक हजार दासियोंसहित शर्मिष्ठा भी सेवामें उपस्थित थी। वनमें उसी प्रदेशमें जाकर वह उन समस्त सखियोंके साथ अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक इच्छानुसार विचरने लगी। वे सब वहाँ भाँति-भाँतिके खेल खेलती हुई आनन्दमें मग्न हो गयीं। वे कभी वासन्तिक पुष्पोंके मकरन्दका पान करतीं, कभी नाना प्रकारके भोज्य पदार्थोंका स्वाद लेतीं और कभी फल खाती थीं। इसी समय दैवेच्छासे नहुष-पुत्र राजा ययाति पुनः शिकार खेलनेके लिये उसी स्थानपर आ गये। वे परिश्रम करनेके कारण अधिक थक गये थे और जल पीना चाहते थे। उन्होंने देवयानी, शर्मिष्ठा तथा अन्य युवतियोंको भी देखा। वे सभी पीनेयोग्य रसका पान कर रही थीं। राजाने पवित्र मुसकानवाली देवयानीको वहाँ परम सुन्दर आसनपर बैठी हुई देखा। उसके रूपकी कहीं तुलना नहीं थी। वह सुन्दरी उन स्त्रियोंके मध्यमें बैठी हुई थी और शर्मिष्ठा उसकी चरणसेवा कर रही थी ॥ १—७ ॥

ययातिरुवाच

द्वाभ्यां कन्यासहस्राभ्यां द्वे कन्ये परिवारिते। गोत्रे च नामनी चैव द्वयोः पृच्छाम्यनो ह्यहम् ॥ ८ ॥

**ययातिने पूछा—**दो हजार* कुमारी सखियोंसे घिरी हुई कन्याओ ! मैं आप दोनोंके गोत्र और नाम पूछ रहा हूँ। शुभे ! आप दोनों अपना परिचय दें ॥ ८ ॥

देवयान्युवाच

आख्यास्याम्यहमादत्स्व वचनं मे नराधिप। शुक्रो नामासुरगुरुः सुतां जानीहि तस्य माम् ॥ ९ ॥
इयं च मे सखी दासी यत्राहं तत्र गामिनी। दुहिता दानवेन्द्रस्य शर्मिष्ठा वृषपर्वणः ॥ १० ॥

**देवयानी बोली—**महाराज ! मैं स्वयं परिचय देती हूँ, आप मेरी बात सुनें। असुरोंके जो सुप्रसिद्ध गुरु शुक्राचार्य हैं, मुझे उन्हींकी पुत्री जानिये। यह दानवराज वृषपर्वाकी पुत्री शर्मिष्ठा मेरी सखी और दासी है। मैं विवाह होनेपर जहाँ जाऊँगी, वहाँ यह भी साथ जायगी ॥ ९-१० ॥

---

* यहाँ किन्हीं श्लोकोंमें देवयानीकी दो हजार और किन्हींमें एक हजार सखियोंका उल्लेख हुआ है। यथावसर दोनों ही ठीक हैं।

ययातिरुवाच

**कथं तु ते सखी दासी कन्येयं वरवर्णिनी । असुरेन्द्रसुता सुभ्रूः परं कौतूहलं हि मे ॥ ११ ॥**

**ययाति बोले**—सुन्दरि ! यह असुरराजकी रूपवती कन्या सुन्दर भौहोंवाली शर्मिष्ठा आपकी सखी और दासी किस प्रकार हुई ? यह बताइये । इसे सुननेके लिये मेरे मनमें बडी उत्कण्ठा है ॥ ११ ॥

देवयान्युवाच

**सर्वमेव नरव्याघ्र विधानमनुवर्तते । विधिना विहितं ज्ञात्वा मा विचित्रं मनः कृथाः ॥ १२ ॥**
**राजवद् रूपवेशौ ते ब्राह्मीं वाचं बिभर्षि च । किंनामा त्वं कुतश्चासि कस्य पुत्रश्च शंस मे ॥ १३ ॥**

**देवयानी बोली**—नरश्रेष्ठ ! सब लोग दैवके विधानका ही अनुसरण करते हैं । इसे भी भाग्यका विधान मानकर संतोष कीजिये । इस विषयकी विचित्र घटनाओंको न पूछिये । आपके रूप और वेश राजाके समान हैं और आप विशुद्ध संस्कृत भाषा बोल रहे हैं । मुझे बताइये, आपका क्या नाम है, आप कहाँसे आये हैं और किसके पुत्र हैं ? ॥ १२-१३ ॥

ययातिरुवाच

**ब्रह्मचर्येण वेदो मे कृत्स्नः श्रुतिपथं गतः । राजाहं राजपुत्रश्च ययातिरिति विश्रुतः ॥ १४ ॥**

**ययातिने कहा**—मैंने ब्रह्मचर्यपालनपूर्वक सम्पूर्ण वेदका अध्ययन किया है । मैं राजा नहुषका पुत्र हूँ और इस समय स्वयं राजा हूँ । मेरा नाम ययाति है ॥ १४ ॥

देवयान्युवाच

**केन चार्थेन नृपते ह्येनं देशं समागतः । जिघृक्षुर्वारि यत् किंचिदथवा मृगलिप्सया ॥ १५ ॥**

**देवयानीने कहा**—महाराज ! आप किस कार्यसे वनके इस प्रदेशमें आये हैं ? आप जल अथवा कमल लेना चाहते हैं या शिकारकी इच्छासे ही आये हैं ? ॥ १५ ॥

ययातिरुवाच

**मृगलिप्सुरहं भद्रे पानीयार्थमिहागतः । बहुधाप्यनुयुक्तोऽस्मि त्वमनुज्ञातुमर्हसि ॥ १६ ॥**

**ययातिने कहा**—भद्रे ! मैं एक हिंसक पशुको मारनेके लिये उसका पीछा कर रहा था, इससे बहुत थक गया हूँ और पानी पीनेके लिये यहाँ आया हूँ; अतः अब आप मुझे आज्ञा दीजिये ॥ १६ ॥

देवयान्युवाच

**द्वाभ्यां कन्यासहस्राभ्यां दास्या शर्मिष्ठया सह । त्वदधीनास्मि भद्रं ते सखे भर्ता च मे भव ॥ १७ ॥**

**देवयानीने कहा**—सखे ! आपका कल्याण हो । मैं दो हजार कन्याओं तथा अपनी सेविका शर्मिष्ठाके साथ आपके अधीन होती हूँ । आप मेरे पति हो जायँ ॥ १७ ॥

ययातिरुवाच

**विद्ध्यौशनसि भद्रं ते न त्वदर्होऽस्मि भामिनि । अविवाह्याः स्म राजानो देवयानि पितुस्तव ॥ १८ ॥**

**ययाति बोले**—शुक्रनन्दिनी देवयानी ! आपका भला हो । भामिनि ! मैं आपके योग्य नहीं हूँ । क्षत्रिय-लोग आपके पितासे कन्यादान लेनेके अधिकारी नहीं हैं ॥ १८ ॥

देवयान्युवाच

**सृष्टं ब्रह्मणा क्षत्रं क्षत्रं ब्रह्मणि संश्रितम् । ऋषिश्च ऋषिपुत्रश्च नाहुषाद्य भजस्व माम् ॥ १९ ॥**

देवयानीने कहा—नहुष-नन्दन ! ब्राह्मणसे क्षत्रिय जाति और क्षत्रियसे ब्राह्मण जाति मिली हुई है। आप राजर्षिके पुत्र हैं और स्वयं भी राजर्षि हैं; अतः आज मुझसे विवाह कीजिये ॥ १९ ॥

ययातिरुवाच

**एकदेहोद्भवा वर्णाश्चत्वारोऽपि वरानने। पृथग्धर्माः पृथक्शौचास्तेषां वै ब्राह्मणो वरः ॥ २० ॥**

ययाति बोले—वरानने ! एक ही परमेश्वरके शरीरसे चारों वर्णोंकी उत्पत्ति हुई है, परंतु सबके धर्म और शौचाचार अलग-अलग हैं। ब्राह्मण उन सभी वर्णोंमें श्रेष्ठ है ॥ २० ॥

देवयान्युवाच

**पाणिग्रहो नाहुषायं न पुम्भिः सेवितः पुरा। त्वमेनमग्रहीरग्रे वृणोमि त्वामहं ततः ॥ २१ ॥**
**कथं तु मे मनस्विन्याः पाणिमन्यः पुमान् स्पृशेत्। गृहीतमृषिपुत्रेण स्वयं वाप्यृषिणा त्वया ॥ २२ ॥**

देवयानीने कहा—नहुषकुमार ! नारीके लिये पाणिग्रहण एक धर्म है। पहले किसी भी पुरुषने मेरा हाथ नहीं पकड़ा था। सबसे पहले आपने ही मेरा हाथ पकड़ा था। इसलिये आपका ही मैं पतिरूपमें वरण करती हूँ। मैं मनको वशमें रखनेवाली स्त्री हूँ। आप-जैसे राजर्षिकुमार अथवा राजर्षिद्वारा पकड़े गये मेरे हाथका स्पर्श अब दूसरा कोई कैसे कर सकता है ? ॥ २१-२२ ॥

ययातिरुवाच

**क्रुद्धादाशीविषात् सर्पाज्ज्वलनात् सर्वतोमुखात्। दुराधर्षतरो विप्रः पुरुषेण विजानता ॥ २३ ॥**

ययाति बोले—देवि ! विज्ञ पुरुषको चाहिये कि वह ब्राह्मणको क्रोधमें भरे हुए विषधर सर्प अथवा सब ओरसे प्रज्वलित अग्निसे भी अधिक दुर्धर्ष एवं भयंकर समझे ॥ २३ ॥

देवयान्युवाच

**कथमाशीविषात् सर्पाज्ज्वलनात् सर्वतोमुखात्। दुराधर्षतरो विप्र इत्यात्थ पुरुषर्षभ ॥ २४ ॥**

देवयानीने कहा—पुरुषप्रवर ! ब्राह्मण विषधर सर्प और सब ओरसे प्रज्वलित होनेवाली अग्निसे भी दुर्धर्ष एवं भयंकर है, यह बात आपने कैसे कही ? ॥ २४ ॥

ययातिरुवाच

**दशेदाशीविषस्त्वेकं शस्त्रेणैकश्च वध्यते। हन्ति विप्रः सराष्ट्राणि पुराण्यपि हि कोपितः ॥ २५ ॥**
**दुराधर्षतरो विप्रस्तस्माद् भीरु मतो मम। अतोऽदत्तां च पित्रा त्वां भद्रे न विवहाम्यहम् ॥ २६ ॥**

ययाति बोले—भद्रे ! सर्प एकको ही डँसता है, शस्त्रसे भी एक ही व्यक्तिका वध होता है; परंतु क्रोधमें भरा हुआ ब्राह्मण समस्त राष्ट्र और नगरका भी नाश कर सकता है। भीरु ! इसीलिये मैं ब्राह्मणको अधिक दुर्धर्ष मानता हूँ। अतः जबतक आपके पिता आपको मेरे हवाले न कर दें, तबतक मैं आपसे विवाह नहीं करूँगा ॥ २५-२६ ॥

देवयान्युवाच

**दत्तां वहस्व पित्रा मां त्वं हि राजन् वृतो मया। अयाचतो भयं नास्ति दत्तां च प्रतिगृह्णतः ॥ २७ ॥**

देवयानीने कहा—राजन् ! मैंने आपका वरण कर लिया है, अब आप मेरे पिताके देनेपर ही मुझसे विवाह करें। आप स्वयं तो उनसे याचना करते नहीं हैं, उनके देनेपर ही मुझे स्वीकार करेंगे; अतः आपको उनके कोपका भय नहीं है। ( राजन् ! दो घड़ी ठहर जाइये। मैं अभी पिताके पास संदेश भेजती हूँ।

धाय! शीघ्र जाओ और मेरे ब्रह्म-तुल्य पिताको यहाँ बुला ले आओ। उनसे यह भी कह देना कि देवयानीने स्वयंवरकी विधिसे नहुष-नन्दन राजा ययातिको पतिरूपमें वरण किया है।) ॥ २७ ॥

शौनक उवाच

**त्वरितं देवयान्याथ प्रेषिता पितुरात्मनः। सर्वं निवेदयामास धात्री तस्मै यथातथम् ॥ २८ ॥**
**श्रुत्वैव च स राजानं दर्शयामास भार्गवः। दृष्ट्वैवमागतं विप्रं ययातिः पृथिवीपतिः ॥ २९ ॥**
**ववन्दे ब्राह्मणं काव्यं प्राञ्जलिः प्रणतः स्थितः। तं चाप्यभ्यवदत् काव्यः साम्ना परमवल्गुना ॥ ३० ॥**

**शौनकजी कहते हैं**—राजन्! इस प्रकार देवयानीने तुरंत धायको भेजकर अपने पिताको संदेश दिया। धायने जाकर शुक्राचार्यसे सब बातें ठीक-ठीक बता दीं। सब समाचार सुनते ही शुक्राचार्यने वहाँ आकर राजाको दर्शन दिया। विप्रवर शुक्राचार्यको आया देख राजा ययातिने उन्हें प्रणाम किया और हाथ जोड़कर विनम्रभावसे खडे हो गये। तब शुक्राचार्यने भी राजाको परम मधुर वाणीसे सान्त्वना प्रदान की ॥ २८—३० ॥

देवयान्युवाच

**राजायं नाहुषस्तात दुर्गमे पाणिमग्रहीत्। नमस्ते देहि मामस्मै लोके नान्यं पतिं वृणे ॥ ३१ ॥**

**देवयानी बोली**—तात! आपको (हाथ जोड़कर) नमस्कार है। ये नहुषपुत्र राजा ययाति हैं। इन्होंने संकटके समय मेरा हाथ पकड़ा था। आप मुझे इन्हींकी सेवामें समर्पित कर दें। मै इस जगत्‌में इनके सिवा दूसरे किसी पतिका वरण नहीं करूँगी ॥ ३१ ॥

शुक्र उवाच

**वृतोऽनया पतिर्वीर सुतया त्वं ममेष्टया। गृहाणेमां मया दत्तां महिषीं नहुषात्मज ॥ ३२ ॥**

**शुक्राचार्यने कहा**—वीर नहुष-नन्दन! मेरी इस लाड़ली पुत्रीने तुम्हें पतिरूपमें वरण किया है, अतः मेरी दी हुई इस कन्याको तुम अपनी पटरानीके रूपमें ग्रहण करो ॥ ३२ ॥

ययातिरुवाच

**अधर्मो मां स्पृशेदेवं पापमस्याश्च भार्गव। वर्णसंकरतो ब्रह्मन्निति त्वां प्रवृणोम्यहम् ॥ ३३ ॥**

**ययाति बोले**—भार्गव ब्रह्मन्! मैं आपसे यह वर माँगता हूँ कि इस विवाहमें यह प्रत्यक्ष दीखनेवाला वर्णसंकरजनित महान् अधर्म मेरा स्पर्श न करे ॥ ३३ ॥

शुक्र उवाच

**अधर्मात् त्वां विमुञ्चामि वरं वरय चेप्सितम्। अस्मिन् विवाहे त्वं श्लाघ्यो रहःपापं नुदामि ते॥ ३४ ॥**
**वहस्व भार्यां धर्मेण देवयानीं शुचिस्मिताम्। अनया सह सम्प्रीतिमतुलां समवाप्नुहि ॥ ३५ ॥**
**इयं चापि कुमारी ते शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी। सम्पूज्या सततं राजन् न चैनां शयने ह्वय ॥ ३६ ॥**

**शुक्राचार्यने कहा**—राजन्! मैं तुम्हें अधर्मसे मुक्त करता हूँ। तुम्हारी जो इच्छा हो, वर माँग लो। विवाहको लेकर तुम प्रशंसाके पात्र बन जाओगे। मैं तुम्हारे सारे पापको दूर करता हूँ। तुम सुन्दर मुसकानवाली देवयानीको धर्मपूर्वक अपनी पत्नी बनाओ और इसके साथ रहकर अतुल सुख एवं प्रसन्नता प्राप्त करो। महाराज! वृषपर्वाकी पुत्री यह कुमारी शर्मिष्ठा भी तुम्हें समर्पित है। इसका सदा आदर करना, किंतु इसे अपनी सेजपर कभी न सुलाना ॥ ३४—३६ ॥

शौनक उवाच

एवमुक्तो ययातिस्तु शुक्रं कृत्वा प्रदक्षिणम्। जगाम स्वपुरं हृष्टः सोऽनुज्ञातो महात्मना ॥ ३७ ॥

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशे ययातिचरिते त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥*

( तुम्हारा कल्याण हो। इस शर्मिष्ठाको एकान्तमें बुलाकर न तो इससे बात करना और न इसके शरीरका स्पर्श ही करना। अब तुम विवाह करके इसे ( देवयानीको ) अपनी पत्नी बनाओ। इससे तुम्हें इच्छानुसार फलकी प्राप्ति होगी। )

**शौनकजी कहते हैं**—शतानीक! शुक्राचार्यके ऐसा कहनेपर राजा ययातिने उनकी परिक्रमा की ( और शास्त्रोक्त विधिसे मङ्गलमय विवाह-कार्य सम्पन्न किया )। पुनः उन महात्माकी आज्ञा ले नृपश्रेष्ठ ययाति बड़े हर्षके साथ अपनी राजधानीको चले गये ॥ ३७ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके सोम-वंश-वर्णन-प्रसंगमें ययाति-चरित नामक तीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३० ॥

# एकतीसवाँ अध्याय

## ययातिसे देवयानीको पुत्र-प्राप्ति, ययाति और शर्मिष्ठाका एकान्त-मिलन और उनसे एक पुत्रका जन्म

शौनक उवाच

ययातिः स्वपुरं प्राप्य महेन्द्रपुरसंनिभम्। प्रविश्यान्तःपुरं तत्र देवयानीं न्यवेशयत् ॥ १ ॥
देवयान्याश्चानुमते सुतां तां वृषपर्वणः। अशोकवनिकाभ्याशे गृहं कृत्वा न्यवेशयत् ॥ २ ॥
वृतां दासीसहस्रेण शर्मिष्ठामासुरायणीम्। वासोभिरन्नपानैश्च संविभज्य सुसंवृताम् ॥ ३ ॥
देवयान्या तु सहितः स नृपो नहुषात्मजः। विजहार बहूनब्दान् देववन्मुदितो भृशम् ॥ ४ ॥
ऋतुकाले तु सम्प्राप्ते देवयानी वराङ्गना। लेभे गर्भं प्रथमतः कुमारश्च व्यजायत ॥ ५ ॥
गते वर्षसहस्रे तु शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी। ददर्श यौवनं प्राप्ता ऋतुं सा कमलेक्षणा ॥ ६ ॥
चिन्तयामास धर्मज्ञा ऋतुप्राप्तौ च भामिनी। ऋतुकालश्च सम्प्राप्तो न कश्चिन्मे पतिर्वृतः ॥ ७ ॥
किं प्राप्तं किं च कर्तव्यं कथं कृत्वा सुखं भवेत्। देवयानी प्रसूतासौ वृथाहं प्राप्तयौवना ॥ ८ ॥
यथा तया वृतो भर्ता तथैवाहं वृणोमि तम्।
राज्ञा पुत्रफलं देयमिति मे निश्चिता मतिः। अपीदानीं स धर्मात्मा रहो मे दर्शनं व्रजेत् ॥ ९ ॥

**शौनकजी कहते हैं**—शतानीक! ययातिकी राजधानी महेन्द्रपुरी ( अमरावती )के समान थी। उन्होंने वहाँ आकर देवयानीको अन्तःपुरमें स्थान दिया तथा उसीकी अनुमतिसे अशोकवाटिकाके समीप एक महल बनवाकर उसमें वृषपर्वाकी पुत्री शर्मिष्ठाको उसकी एक हजार दासियोंके साथ ठहराया और उन सबके लिये अन्न, वस्त्र तथा पेय आदिकी अलग-अलग व्यवस्था कर दी। ( देवयानी ययातिके साथ परम रमणीय एवं मनोरम अशोकवाटिकामें आती और शर्मिष्ठाके साथ वन-विहार करके उसे वहीं छोड़कर स्वयं राजाके साथ महलमें चली जाती थी। इस तरह वह बहुत समयतक प्रसन्नतापूर्वक आनन्द भोगती रही। ) नहुषकुमार राजा ययातिने देवयानीके साथ बहुत वर्षोंतक देवताओंकी भाँति विहार किया। वे उसके साथ बहुत प्रसन्न और सुखी थे। ऋतुकाल आनेपर सुन्दरी देवयानीने गर्भ धारण किया और समयानुसार प्रथम पुत्रको जन्म दिया। इधर एक हजार वर्ष व्यतीत हो जानेपर युवावस्थाको प्राप्त हुई वृषपर्वाकी पुत्री कमलनयनी शर्मिष्ठाने अपनेको रजस्वलावस्थामें देखा और चिन्तामग्न हो मन-ही-मन कहने लगी—'मुझे ऋतुकाल प्राप्त हो गया, किंतु अभीतक मैंने पतिका वरण नहीं किया। यह कैसी परिस्थिति आ गयी।

अब क्या करना चाहिये अथवा क्या करनेसे सुख होगा। देवयानी तो पुत्रवती हो गयी, किंतु मुझे जो युवावस्था प्राप्त हुई है, वह व्यर्थ जा रही है। जिस प्रकार उसने पतिका वरण किया है, उसी तरह मै भी उन्हीं महाराजका क्यो न पतिके रूपमें वरण कर लूँ। मेरे याचना करनेपर राजा मुझे पुत्ररूप फल दे सकते हैं, इस बातका मुझे पूरा विश्वास है; परंतु क्या वे धर्मात्मा नरेश इस समय मुझे एकान्तमें दर्शन देगे? ॥ १—९ ॥

शौनक उवाच

**अथ निष्क्रम्य राजासौ तस्मिन् काले यदृच्छया। अशोकवनिकाभ्याशे शर्मिष्ठां प्राप्य विस्मितः ॥ १० ॥**
**तमेकं रहसि दृष्ट्वा शर्मिष्ठा चारुहासिनी। प्रत्युद्गम्याञ्जलिं कृत्वा राजानं वाक्यमब्रवीत् ॥ ११ ॥**

**शौनकजी कहते हैं**—शतानीक! शर्मिष्ठा इस प्रकार विचार कर ही रही थी कि राजा ययाति उसी समय दैववश महलसे बाहर निकले और अशोक-वाटिकाके निकट शर्मिष्ठाको देखकर आश्चर्यचकित हो गये। मनोहर हासवाली शर्मिष्ठाने उन्हे एकान्तमें अकेला देखा। तब उसने आगे बढ़कर उनकी अगवानी की तथा हाथ जोड़कर राजासे यह बात कही—॥ १०-११ ॥

शर्मिष्ठोवाच

**सोमश्चेन्द्रश्च वायुश्च यमश्च वरुणश्च वा। तव वा नाहुष गृहे कः स्त्रियं द्रष्टुमर्हति ॥ १२ ॥**
**रूपाभिजनशीलैर्हि त्वं राजन् वेत्थ मां सदा। सा त्वां याचे प्रसाद्येह ऋतुं देहि नराधिप ॥ १३ ॥**

**शर्मिष्ठाने कहा**—नहुष-नन्दन! चन्द्रमा, इन्द्र, वायु, यम अथवा वरुण ही क्यों न हो, आपके महलमें कौन किसी स्त्रीकी ओर दृष्टि डाल सकता है? (अतएव मै यहाँ सर्वथा सुरक्षित हूँ।) महाराज! मेरे रूप, कुल और शील कैसे हैं, यह तो आप सदासे ही जानते हैं। मैं आज आपको प्रसन्न करके यह प्रार्थना करती हूँ कि मुझे ऋतुदान दीजिये—मेरे ऋतुकालको सफल बनाइये ॥ १२-१३ ॥

ययातिरुवाच

**वेद्मि त्वां शीलसम्पन्नां दैत्यकन्यामनिन्दिताम्। रूपं तु ते न पश्यामि सूच्यग्रमपि निन्दितम् ॥ १४ ॥**
**मामब्रवीत् तदा शुक्रो देवयानीं यदावहम्। नेयमाह्वयितव्या ते शयने वार्षपर्वणी ॥ १५ ॥**

**ययातिने कहा**—शर्मिष्ठे! तुम दैत्यराजकी सुशील और निर्दोष कन्या हो। मै तुम्हे अच्छी तरह जानता हूँ। तुम्हारे शरीर अथवा रूपमें सूईकी नोक बराबर भी ऐसा स्थान नहीं है, जो निन्दाके योग्य हो; परंतु क्या करूँ, जब मैंने देवयानीके साथ विवाह किया था, उस समय शुक्राचार्यने मुझसे स्पष्ट कहा था कि 'वृषपर्वाकी पुत्री इस शर्मिष्ठाको अपनी सेजपर न बुलाना' ॥ १४-१५ ॥

शर्मिष्ठोवाच

**न नर्मयुक्तं वचनं हिनस्ति न स्त्रीषु राजन् न विवाहकाले।**
**प्राणात्यये सर्वधनापहारे पञ्चानृतान्याहुरपातकानि ॥ १६ ॥**
**पृष्टास्तु साक्ष्ये प्रवदन्ति चान्यथा भवन्ति मिथ्यावचना नरेन्द्र ते।**
**एकार्थतायां तु समाहितायां मिथ्यावदन्तं ह्यनृतं हिनस्ति ॥ १७ ॥**

**शर्मिष्ठाने कहा**—राजन्! परिहासयुक्त वचन असत्य हो तो भी वह हानिकारक नहीं होता। अपनी स्त्रियोंके प्रति, विवाहके समय, प्राणसंकटके समय तथा सर्वस्वका अपहरण होते समय यदि कभी विवश होकर असत्य भाषण करना पडे तो वह दोषकारक नहीं होता। ये पाँच प्रकारके असत्य पापशून्य बताये गये है। महाराज!

गवाही देते समय किसीके पूछनेपर जो अन्यथा ( असत्य ) भाषण करते हैं, वे मिथ्यावादी कहलाते हैं; परंतु जहाँ दो व्यक्तियोंके ( जैसे देवयानीका तथा मेरा ) कल्याणका प्रसङ्ग उपस्थित हो, वहाँ एकका ( अर्थात् मेरा ) कल्याण न करना असत्य भाषण है, जो वक्ताकी ( अर्थात् आपकी ) हानि कर सकता है ॥ १६-१७ ॥

ययातिरुवाच

**राजा प्रमाणं भूतानां स विनश्येन्मृषा वदन्। अर्थकृच्छ्रमपि प्राप्य न मिथ्या कर्तुमुत्सहे ॥ १८ ॥**

**ययाति बोले**—देवि ! सब प्राणियोंके लिये राजा ही प्रमाण है। यदि वह झूठ बोलने लगे तो उसका नाश हो जाता है; अतः अर्थ-संकटमें पड़नेपर भी मैं गलत काम नहीं कर सकता ॥ १८ ॥

शर्मिष्ठोवाच

**समावेतौ मतौ राजन् पतिः सख्याश्च यः पतिः। समं विवाह इत्याहुः सख्या मेऽसि पतिर्वृतः ॥ १९ ॥**

**शर्मिष्ठाने कहा**—राजन् ! अपना पति और सखीका पति—दोनो बराबर माने गये हैं। मेरी सखीने आपको अपना पति बनाया है, अतः मैंने भी बना लिया ॥ १९ ॥

ययातिरुवाच

**दातव्यं याचमानस्य हीति मे व्रतमाहितम्। त्वं च याचसि कामं मां ब्रूहि किं करवाणि ते ॥ २० ॥**

**ययाति बोले**—याचकोको उनकी अभीष्ट वस्तुएँ दी जायँ, ऐसा मेरा व्रत है। तुम भी मुझसे अपने मनोरथकी याचना करती हो; अतः बताओ, मैं तुम्हारा कौन-सा प्रिय कार्य करूँ ॥ २० ॥

शर्मिष्ठोवाच

**अधर्मात् त्राहि मां राजन् धर्मं च प्रतिपादय। त्वत्तोऽपत्यवती लोके चरेयं धर्ममुत्तमम् ॥ २१ ॥**
**त्रय एवाधना राजन् भार्या दासस्तथा सुतः। यत्ते समधिगच्छन्ति यस्य ते तस्य तद्धनम् ॥ २२ ॥***
**देवयान्या भुजिष्यास्मि वश्या च तव भार्गवी। सा चाहं च त्वया राजन् भजनीये भजस्व माम् ॥ २३ ॥**

**शर्मिष्ठाने कहा**—राजन् ! मुझे अधर्मसे बचाइये और धर्मका पालन कराइये। मैं चाहती हूँ, आपसे संतानवती होकर इस लोकमें उत्तम धर्मका आचरण करूँ। महाराज ! तीन व्यक्ति धनके अधिकारी नहीं होते—पत्नी, दास और पुत्र। उनकी सम्पत्ति भी उसीकी होती है, जहाँ ये जाते—जिसके अधिकारमें रहते हैं; अर्थात् पत्नीके धनपर पतिका, सेवकके धनपर स्वामीका और पुत्रके धनपर पिताका अधिकार होता है। मैं देवयानीकी सेविका हूँ और देवयानी आपके अधीन है; अतः राजन् ! वह और मैं—दोनो ही आपके सेवन अपनाने योग्य हैं। इसलिये आप मुझे भी अङ्गीकार कीजिये ॥ २१—२३ ॥

शौनक उवाच

**एवमुक्तस्तया राजा तथ्यमित्यभिजज्ञिवान्। पूजयामास शर्मिष्ठां धर्मं च प्रतिपादयन् ॥ २४ ॥**
**स समागम्य शर्मिष्ठां यथाकाममवाप्य च। अन्योऽन्यं चाभिसम्पूज्य जग्मतुस्तौ यथागतम् ॥ २५ ॥**
**तस्मिन् समागमे सुभ्रूः शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी। लेभे गर्भं प्रथमतस्तस्मान्नृपतिसत्तमात् ॥ २६ ॥**
**प्रजज्ञे च ततः काले राज्ञी राजीवलोचना। कुमारं देवगर्भाभमादित्यसमतेजसम् ॥ २७ ॥**

*॥ इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशे ययातिचरिते एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥*

---

* यह श्लोक स्वल्पान्तरसे मनुस्मृति ८। ४१६, नारदस्मृति, ५। ३९, महाभारत १। ८२। २२ आदिमें भी है। मेधातिथि, गोविन्दराज, कुल्लूक भट्ट, राघवानन्द आदि मनुके सभी व्याख्याता इस श्लोकका तात्पर्य धनके व्ययमें अभिभावककी सहमति लेनेमें ही चरितार्थ मानते हैं। नीलकण्ठकी व्याख्या केवल प्रस्तुत प्रसङ्गसे ही सम्बद्ध है।

**शौनकजी कहते हैं**—शर्मिष्ठाके ऐसा कहनेपर राजाने उसकी बातोंको ठीक समझा। उन्होंने शर्मिष्ठाका सत्कार किया और धर्मानुसार उसे अपनी भार्या बनाया। फिर शर्मिष्ठाके साथ सहवास करके एक दूसरेका आदर-सत्कार करनेके पश्चात् दोनों जैसे आये थे, वैसे ही अपने-अपने स्थानपर चले गये। सुन्दर भौंहोंवाली वृषपर्वा-कुमारी शर्मिष्ठाने उस सहवासमें नृपश्रेष्ठ ययातिसे प्रथम गर्भ धारण किया। शतानीक! तदनन्तर समय आनेपर कमलके समान नेत्रोंवाली शर्मिष्ठाने देवबालक-जैसे सुन्दर एवं सूर्यके समान तेजस्वी एक कुमारको उत्पन्न किया ॥ २४—२७ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके सोम-वंश-वर्णन-प्रसङ्गमे ययाति-चरित नामक एकतीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥३१॥

# बत्तीसवाँ अध्याय

## देवयानी और शर्मिष्ठाका संवाद, ययातिसे शर्मिष्ठाके पुत्र होनेकी बात जानकर देवयानीका रूठना और अपने पिताके पास जाना तथा शुक्राचार्यका ययातिको बूढ़े होनेका शाप देना

शौनक उवाच

**श्रुत्वा कुमारं जातं सा देवयानी शुचिस्मिता। चिन्तयाविष्टदुःखार्ता शर्मिष्ठां प्रति भारत ॥ १ ॥**
**ततोऽभिगम्य शर्मिष्ठां देवयान्यब्रवीदिदम्। किमर्थं वृजिनं सुभ्रु कृतं ते कामलुब्धया ॥ २ ॥**

**शौनकजी कहते हैं**—भारत! पवित्र मुसकानवाली देवयानीने जब सुना कि शर्मिष्ठाके पुत्र हुआ है, तब वह दुःखसे पीडित हो शर्मिष्ठाके व्यवहारको लेकर बड़ी चिन्तामें पड़ गयी। वह शर्मिष्ठाके पास गयी और इस प्रकार बोली—'सुन्दर भौंहोंवाली शर्मिष्ठे! तुमने काम-लोलुप होकर यह कैसा पाप कर डाला है?' ॥ १-२ ॥

शर्मिष्ठोवाच

**ऋषिरभ्यागतः कश्चिद् धर्मात्मा वेदपारगः। स मया तु वरः कामं याचितो धर्मसंहतम् ॥ ३ ॥**
**नाहमन्यायतः काममाचरामि शुचिस्मिते। तस्मादृषेर्ममापत्यमिति सत्यं ब्रवीमि ते ॥ ४ ॥**

**शर्मिष्ठा बोली**—सखी! कोई धर्मात्मा ऋषि आये थे, जो वेदोंके पारंगत विद्वान् थे। मैने उन वरदायक ऋषिसे धर्मानुसार कामकी याचना की। शुचिस्मिते! मै न्यायविरुद्ध कामका आचरण नहीं करती। उन ऋषिसे ही मुझे संतान पैदा हुई है, यह तुमसे सत्य कहती हूँ ॥ ३-४ ॥

देवयान्युवाच

**यद्येतदेवं शर्मिष्ठे न मन्युर्विद्यते मम। अपत्यं यदि ते लब्धं ज्येष्ठाच्छ्रेष्ठाच्च वै द्विजात् ॥ ५ ॥**
**शोभनं भीरु सत्यं चेत् कथं स ज्ञायते द्विजः। गोत्रनामाभिजननः श्रोतुमिच्छामि तं द्विजम् ॥ ६ ॥**

देवयानीने कहा—शर्मिष्ठे! यदि ऐसी बात है, तुमने यदि ज्येष्ठ और श्रेष्ठ द्विजसे संतान प्राप्त की है तो तुम्हारे ऊपर मेरा क्रोध नहीं रहा। भीरु! यदि ऐसी बात है तो बहुत अच्छा हुआ। क्या उन द्विजके गोत्र, नाम और कुलका कुछ परिचय मिला है? मैं उनको जानना चाहती हूँ ॥ ५—६ ॥

शर्मिष्ठोवाच

**ओजसा तेजसा चैव दीप्यमानं रविं यथा। तं दृष्ट्वा मम सम्प्रष्टुं शक्तिर्नासीच्छुचिस्मिते ॥ ७ ॥**

**शर्मिष्ठा बोली**—शुचिस्मिते! वे अपने तप और तेजसे सूर्यकी भाँति प्रकाशित हो रहे थे। उन्हे देखकर मुझे कुछ पूछनेका साहस ही न हुआ ॥ ७ ॥

शौनक उवाच

अन्योऽन्यमेवमुक्त्वा च सम्प्रहस्य च ते मिथः। जगाम भार्गवी वेश्म तथ्यमित्यभिजानती ॥ ८ ॥
ययातिर्देवयान्यां तु पुत्रावजनयन्नृपः। यदुं च तुर्वसुं चैव शक्रविष्णू इवापरौ ॥ ९ ॥
तस्मादेव तु राजर्षेः शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी। द्रुह्युं चानुं च पूरुं च त्रीन् कुमारानजीजनत् ॥ १० ॥
ततः काले च कस्मिंश्चिद् देवयानी शुचिस्मिता। ययातिसहिता राजञ्जगाम रहितं वनम् ॥ ११ ॥
ददर्श च तदा तत्र कुमारान् देवरूपिणः। क्रीडमानान् सुविस्रब्धान् विस्मिता चेदमब्रवीत् ॥ १२ ॥

शौनकजी कहते हैं—शतानीक ! वे दोनो आपसमें इस प्रकार बातें करके हँस पड़ीं। देवयानीको प्रतीत हुआ कि शर्मिष्ठा ठीक कहती है, अतः वह चुपचाप महलमें चली गयी। राजा ययातिने देवयानीके गर्भसे दो पुत्र उत्पन्न किये, जिनके नाम थे—यदु और तुर्वसु। वे दोनों दूसरे इन्द्र और विष्णुकी भाँति प्रतीत होते थे। उन्हीं राजर्षिसे वृषपर्वाकी पुत्री शर्मिष्ठाने तीन पुत्रोंको जन्म दिया, जिनके नाम थे—द्रुह्यु, अनु और पूरु। राजन् ! तदनन्तर किसी समय पवित्र मुसकानवाली देवयानी ययातिके साथ एकान्त वनमें गयी। वहाँ उसने देवताओंके समान सुन्दर रूपवाले कुछ बालकोंको निर्भय होकर क्रीडा करते देखा। उन्हें देखकर वह आश्चर्यचकित हो इस प्रकार बोली ॥ ८–१२ ॥

देवयान्युवाच

कस्यैते दारका राजन् देवपुत्रोपमाः शुभाः। वर्चसा रूपतश्चैव दृश्यन्ते सदृशास्तव ॥ १३ ॥
एवं पृष्ट्वा तु राजानं कुमारान् पर्यपृच्छत। किं नामधेयगोत्रं वः पुत्रका ब्राह्मणः पिता ॥ १४ ॥
विब्रूत मे यथातथ्यं श्रोतुकामास्म्यतो ह्यहम्। तेऽदर्शयन् प्रदेशिन्या तमेव नृपसत्तमम् ॥ १५ ॥
शर्मिष्ठां मातरं चैव तस्या ऊचुः कुमारकाः ॥

देवयानीने पूछा—राजन् ! ये देवबालकोंके तुल्य शुभ लक्षणसम्पन्न कुमार किसके हैं ? तेज और रूपमें तो ये मुझे आपके ही समान जान पड़ते हैं। राजासे इस प्रकार पूछकर उसने फिर उन कुमारोंसे प्रश्न किया—'बच्चो ! तुमलोग किस गोत्रमें उत्पन्न हुए हो ? तुम्हारे ब्राह्मण पिताका क्या नाम है ? यह मुझे ठीक-ठीक बताओ। मैं तुम्हारे पिताका नाम सुनना चाहती हूँ।' ( देवयानीके इस प्रकार पूछनेपर ) उन बालकोंने पिताका परिचय देते हुए तर्जनी अँगुलीसे उन्हीं नृपश्रेष्ठ ययातिको दिखा दिया और शर्मिष्ठाको अपनी माता बताया ॥ १३–१५½ ॥

शौनक उवाच

इत्युक्त्वा सहितास्तेन राजानमुपचक्रमुः ॥ १६ ॥
नाभ्यनन्दत तान् राजा देवयान्यास्तदान्तिके। रुदन्तस्तेऽथ शर्मिष्ठामभ्ययुर्बालकास्तदा ॥ १७ ॥
दृष्ट्वा तेषां तु बालानां प्रणयं पार्थिवं प्रति। बुद्ध्वा च तत्त्वतो देवी शर्मिष्ठामिदमब्रवीत् ॥ १८ ॥

शौनकजी कहते हैं—ऐसा कहकर वे सब बालक एक साथ राजाके समीप आ गये, परंतु उस समय देवयानीके निकट राजाने उनका अभिनन्दन नहीं किया—इन्हें गोदमें नहीं उठाया। तब बालक रोते हुए शर्मिष्ठाके पास चले गये। ( उनकी बातें सुनकर राजा ययाति लज्जित-से हो गये। ) उन बालकोंका राजाके प्रति विशेष प्रेम देखकर देवयानी सारा रहस्य समझ गयी और शर्मिष्ठासे इस प्रकार बोली—॥ १६–१८ ॥

देवयान्युवाच

**मदधीना सती कस्मादकार्षीर्विप्रियं मम। तमेवासुरधर्मं त्वमास्थिता न बिभेषि किम्॥ १९॥**

**देवयानी बोली**—शर्मिष्ठे! तुमने मेरे अधीन होकर फिर उसी असुर-धर्मपर उतर आयी। क्या मुझसे भी मुझे अप्रिय लगनेवाला बर्ताव क्यों किया? तुम नहीं डरती?॥ १९॥

शर्मिष्ठोवाच

**यदुक्तमृषिरित्येव तत् सत्यं चारुहासिनि। न्यायतो धर्मतश्चैव चरन्ती न बिभेमि ते॥ २०॥**
**यदा त्वया वृतो राजा वृत एव तदा मया। सखीभर्ता हि धर्मेण भर्ता भवति शोभने॥ २१॥**
**पूज्यासि मम मान्या च श्रेष्ठा ज्येष्ठा च ब्राह्मणी। त्वत्तो हि मे पूज्यतरो राजर्षिः किं न वेत्सि तत्॥ २२॥**

**शर्मिष्ठा बोली**—मनोहर मुसकानवाली सखी! मैंने जो ऋषि कहकर अपने स्वामीका परिचय दिया था, सो सत्य ही है। मै न्याय और धर्मके अनुकूल आचरण करती हूँ, अतः तुमसे नहीं डरती। जब तुमने राजाका पतिरूपमें वरण किया था, उसी समय मैने भी कर लिया। शोभने! तुम ज्येष्ठ एवं श्रेष्ठ हो, ब्राह्मणपुत्री हो, अतः मेरे लिये माननीय एवं पूजनीय हो; परंतु ये राजर्षि मेरे लिये तुमसे भी अधिक पूजनीय हैं। क्या यह बात तुम नहीं जानती? (शुभे! तुम्हारे पिता और मेरे गुरु (शुक्राचार्यजी)ने हम दोनोंको एक ही साथ महाराजकी सेवामें समर्पित किया है। तुम्हारे पति और पूजनीय महाराज ययाति भी मुझे पालन करने योग्य मानकर मेरा पोषण करते हैं।)॥ २०–२२॥

शौनक उवाच

**श्रुत्वा तस्यास्ततो वाक्यं देवयान्यब्रवीदिदम्। राजन् नाद्येह वत्स्यामि विप्रियं मे त्वया कृतम्॥ २३॥**
**सहसोत्पतितां श्यामां दृष्ट्वा तां साश्रुलोचनाम्। तूर्णं सकाशं काव्यस्य प्रस्थितां व्यथितस्तदा॥ २४॥**
**अनुवव्राज सम्भ्रान्तः पृष्ठतः सान्त्वयन् नृपः। न्यवर्तत न सा चैव क्रोधसंरक्तलोचना॥ २५॥**
**अविब्रुवन्ती किंचिच्च राजानं साश्रुलोचना। अचिरादेव सम्प्राप्ता काव्यस्योशनसोऽन्तिकम्॥ २६॥**
**सा तु दृष्ट्वैव पितरमभिवाद्याग्रतः स्थिता। अनन्तरं ययातिस्तु पूजयामास भार्गवम्॥ २७॥**

**शौनकजी कहते हैं**—शर्मिष्ठाका यह वचन सुनकर देवयानीने कहा—'राजन्! अब मै यहाँ नहीं रहूँगी। आपने मेरा अत्यन्त अप्रिय किया है।' ऐसा कहकर तरुणी देवयानी आँखोंमें आँसू भरकर सहसा उठी और तुरंत ही शुक्राचार्यजीके पास जानेके लिये वहाँसे चल दी। यह देख उस समय राजा ययाति व्यथित हो गये। वे व्याकुल हो देवयानीको समझाते हुए उसके पीछे-पीछे गये, किंतु वह नहीं लौटी। उसकी आँखें क्रोधसे लाल हो रही थीं। वह राजासे कुछ न बोलकर केवल नेत्रोंसे आँसू बहाये जाती थी। कुछ ही देरमें वह कवि-पुत्र शुक्राचार्यके पास पहुँची। पिताको देखते ही वह प्रणाम करके उनके सामने खड़ी हो गयी। तदनन्तर राजा ययातिने भी शुक्राचार्यकी वन्दना की॥ २३–२७॥

देवयान्युवाच

**अधर्मेण जितो धर्मः प्रवृत्तमधरोत्तरम्। शर्मिष्ठयातिवृत्तास्मि दुहित्रा वृषपर्वणः॥ २८॥**
**त्रयोऽस्यां जनिताः पुत्रा राज्ञानेन ययातिना। दुर्भगाया मम द्वौ तु पुत्रौ तात ब्रवीमि ते॥ २९॥**
**धर्मज्ञ इति विख्यात एष राजा भृगूद्वह। अतिक्रान्तश्च मर्यादां काव्यैतत् कथयामि ते॥ ३०॥**

**देवयानीने कहा**—पिताजी! अधर्मने धर्मको जीत लिया। नीचकी उन्नति हुई और उच्चकी अवनति। वृषपर्वाकी पुत्री शर्मिष्ठा मुझे लाँघकर आगे बढ़ गयी। इन महाराज ययातिसे ही उसके तीन पुत्र हुए हैं,

किंतु तात ! मुझ भाग्यहीनाके दो ही पुत्र हुए हैं। यह मैं आपसे ठीक बता रही हूँ। भृगुश्रेष्ठ ! ये महाराज धर्मज्ञके रूपमें प्रसिद्ध हैं, किंतु इन्होंने मर्यादाका उल्लङ्घन किया है। कवि-नन्दन ! यह मैं आपसे यथार्थ कह रही हूँ ॥ २८—३० ॥

शुक्र उवाच

**धर्मज्ञस्त्वं महाराज योऽधर्ममकृथाः प्रियम्। तस्माज्जरा त्वामचिराद् धर्षयिष्यति दुर्जया ॥ ३१ ॥**

**शुक्राचार्यने ( ययातिसे ) कहा—**महाराज! तुमने धर्मज्ञ होकर भी अधर्मको प्रिय मानकर उसका आचरण किया है। इसलिये जिसको जीतना कठिन है, वह वृद्धावस्था तुम्हें शीघ्र ही धर दबायेगी ॥ ३१ ॥

ययातिरुवाच

**ऋतुं यो याच्यमानाया न ददाति पुमान् वृतः। भ्रूणहेत्युच्यते ब्रह्मन् स चेह ब्रह्मवादिभिः ॥ ३२ ॥**
**ऋतुकामां स्त्रियं यस्तु गम्यां रहसि याचितः। नोपैति यो हि धर्मेण ब्रह्महेत्युच्यते बुधैः ॥ ३३ ॥**
**इत्येतानि समीक्ष्याहं कारणानि भृगूद्वह। अधर्मभयसंविग्नः शर्मिष्ठामुपजग्मिवान् ॥ ३४ ॥**

**ययाति बोले—**भगवन् ! दानवराजकी पुत्री मुझसे ऋतुदान माँग रही थी, अतः मैंने धर्म-सम्मत मानकर यह कार्य किया, किसी दूसरे विचारसे नहीं। ब्रह्मन् ! जो पुरुष न्याययुक्त ऋतुकी याचना करनेवाली स्त्रीको ऋतुदान नहीं देता, वह ब्रह्मवादी विद्वानोंद्वारा भ्रूण ( गर्भ )की हत्या करनेवाला कहा जाता है। जो न्यायसम्मत कामनासे युक्त गम्या स्त्रीके द्वारा एकान्तमें प्रार्थना करनेपर उसके साथ समागम नहीं करता, वह धर्मशास्त्रके विद्वानोंद्वारा गर्भ या ब्राह्मणकी हत्या करनेवाला बताया जाता है। ( ब्रह्मन् ! मेरा यह व्रत है कि मुझसे कोई जो भी वस्तु माँगे, उसे वह अवश्य दे दूँगा। आपके ही द्वारा मुझे सौंपी हुई शर्मिष्ठा इस जगत्में दूसरे किसी पुरुषको अपना पति बनाना नहीं चाहती थी; अतः उसकी इच्छा पूर्ण करना धर्म समझकर मैंने वैसा किया है। आप इसके लिये मुझे क्षमा करें। ) भृगुश्रेष्ठ ! इन्हीं सब कारणोंका विचार करके अधर्मके भयसे उद्विग्न हो मैं शर्मिष्ठाके पास गया था ॥ ३२—३४ ॥

शुक्र उवाच

**न त्वहं प्रत्यवेक्ष्यस्ते मदधीनोऽसि पार्थिव। मिथ्याचरणधर्मेषु चौर्यं भवति नाहुष ॥ ३५ ॥**

**शुक्राचार्यने कहा—**राजन् ! तुम्हें इस विषयमें मेरे आदेशका भी ध्यान रखना चाहता था; क्योंकि तुम मेरे अधीन हो। नहुष-नन्दन ! धर्ममें मिथ्या आचरण करनेवाले पुरुषको चोरीका पाप लगता है ॥ ३५ ॥

शौनक उवाच

**क्रोधेनोशनसा शप्तो ययातिर्नाहुषस्तदा। पूर्वं वयः परित्यज्य जरां सद्योऽन्वपद्यत ॥ ३६ ॥**

**शौनकजी कहते हैं—**क्रोधमें भरे हुए शुक्राचार्यके शाप देनेपर नहुष-पुत्र राजा ययाति उसी समय पूर्वावस्था ( यौवन ) का परित्याग करके तत्काल बूढ़े हो गये ॥ ३६ ॥

ययातिरुवाच

**अतृप्तो यौवनस्याहं देवयान्यां भृगूद्वह। प्रसादं कुरु मे ब्रह्मञ्जरेयं मा विशेत माम् ॥ ३७ ॥**

**ययाति बोले—**भृगुश्रेष्ठ ! मैं देवयानीके साथ युवावस्थामें रहकर तृप्त नहीं हो सका हूँ, अतः ब्रह्मन् ! मुझपर ऐसी कृपा कीजिये, जिससे यह बुढ़ापा मेरे शरीरमें प्रवेश न करे ॥ ३७ ॥

शुक्र उवाच

**नाहं मृषा वदाम्येतज्जरां प्राप्तोऽसि भूमिप । जरां त्वेतां त्वमन्यस्मिन् संक्रामय यदीच्छसि ॥ ३८ ॥**

**शुक्राचार्यने कहा**—भूमिपाल ! मै झूठ नहीं बोलता । बूढ़े तो तुम हो ही गये, किंतु तुम्हें इतनी सुविधा देता हूँ कि यदि चाहो तो किसी दूसरेसे जवानी लेकर इस बुढ़ापाको उसके शरीरमें डाल सकते हो ॥ ३८ ॥

ययातिरुवाच

**राज्यभाक् स भवेद् ब्रह्मन् पुण्यभाक् कीर्तिभाक् तथा । यो दद्यान्मे वयः शुक्र तद् भवाननुमन्यताम् ॥ ३९ ॥**

**ययाति बोले**—ब्रह्मन् ! मेरा जो पुत्र अपनी युवावस्था मुझे दे, वही पुण्य और कीर्तिका भागी होनेके साथ ही मेरे राज्यका भी भागी हो । शुक्राचार्यजी ! आप इसका अनुमोदन करें ॥ ३९ ॥

शुक्र उवाच

**संक्रामयिष्यसि जरां यथेष्टं नहुषात्मज । मामनुध्याय तत्त्वेन न च पापमवाप्स्यसि ॥ ४० ॥**
**वयो दास्यति ते पुत्रो यः स राजा भविष्यति । आयुष्मान् कीर्तिमांश्चैव बह्वपत्यस्तथैव च ॥ ४१ ॥**

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशे ययातिचरिते द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥*

**शुक्राचार्यने कहा**—नहुष-नन्दन ! तुम भक्तिभावसे मेरा चिन्तन करके अपनी वृद्धावस्थाका इच्छानुसार दूसरेके शरीरमें संचार कर सकोगे । उस दशामें तुम्हें पाप भी नहीं लगेगा । जो पुत्र तुम्हें ( प्रसन्नतापूर्वक ) अपनी युवावस्था देगा, वही राजा होगा । साथ ही दीर्घायु, यशस्वी तथा अनेक संतानोंसे युक्त होगा ॥ ४०-४१ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके सोम-वंश-वर्णन-प्रसङ्गमे ययातिचरित नामक बत्तीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३२ ॥

# तैंतीसवाँ अध्याय

## ययातिका अपने यदु आदि पुत्रोंसे अपनी युवावस्था देकर वृद्धावस्था लेनेके लिये आग्रह और उनके अस्वीकार करनेपर उन्हें शाप देना, फिर पूरुको जरावस्था देकर उसकी युवावस्था लेना तथा उसे वर-प्रदान करना

शौनक उवाच

**जरां प्राप्य ययातिस्तु स्वपुरं प्राप्य चैव हि । पुत्रं ज्येष्ठं वरिष्ठं च यदुमित्यब्रवीद् वचः ॥ १ ॥**

**शौनकजी कहते हैं**—शतानीक ! राजा ययाति बुढ़ापा लेकर वहाँसे अपने नगरमें आये और अपने ज्येष्ठ एवं श्रेष्ठ पुत्र यदुसे इस प्रकार बोले—॥ १ ॥

ययातिरुवाच

**जरा वली च मां तात पलितानि च पर्यगुः । काव्यस्योशनसः शापान्न च तृप्तोऽस्मि यौवने ॥ २ ॥**
**त्वं यदो प्रतिपद्यस्व पाप्मानं जरया सह । यौवनेन त्वदीयेन चरेयं विषयानहम् ॥ ३ ॥**
**पूर्णे वर्षसहस्रे तु त्वदीयं यौवनं त्वहम् । दत्त्वा सम्प्रतिपत्स्यामि पाप्मानं जरया सह ॥ ४ ॥**

**ययातिने कहा**—तात ! कवि-पुत्र शुक्राचार्यके शापसे मुझे बुढ़ापेने घेर लिया, मेरे शरीरमें झुर्रियाँ पड गयीं और बाल सफेद हो गये, किंतु मैं अभी जवानीके भोगोंसे तृप्त नहीं हुआ हूँ । यदो ! तुम बुढ़ापेके साथ मेरे दोषको ले लो और मैं तुम्हारी जवानीके द्वारा विषयोंका उपभोग करूँ । एक हजार वर्ष पूरे होनेपर मै पुनः तुम्हारी जवानी देकर बुढ़ापेके साथ अपना दोष वापस ले लूँगा ॥ २—४ ॥

यदुरुवाच

सितश्मश्रुधरो दीनो जरसा शिथिलीकृतः। वलीसंततगात्रश्च दुर्दर्शो दुर्बलः कृशः ॥ ५ ॥
अशक्तः कार्यकरणे परिभूतः स यौवने। सहोपजीविभिश्चैव तज्जरां नाभिकामये ॥ ६ ॥
सन्ति ते बहवः पुत्रा मत्तः प्रियतरा नृप। जरां ग्रहीतुं धर्मज्ञ पुत्रमन्यं वृणीष्व वै ॥ ७ ॥

यदु बोले—महाराज ! मैं उस बुढ़ापेको लेनेकी इच्छा नहीं करता, जिसके आनेपर दाढ़ी-मूँछके बाल सफेद हो जाते हैं, जीवनका आनन्द चला जाता है। वृद्धावस्था सर्वथा शिथिल कर देती है। सारे शरीरमें झुर्रियाँ पड़ जाती हैं और मनुष्य इतना दुर्बल तथा कृशकाय हो जाता है कि उसकी ओर देखते नहीं बनता। बुढ़ापेमें काम-काज करनेकी शक्ति नहीं रहती, युवतियाँ तथा जीविका पानेवाले सेवक भी तिरस्कार करते हैं; अतः मैं वृद्धावस्था नहीं लेना चाहता। धर्मज्ञ नरेश्वर ! आपके बहुत-से पुत्र हैं, जो आपको मुझसे भी अधिक प्रिय हैं; अतः बुढ़ापा लेनेके लिये आप अपने किसी दूसरे पुत्रको चुन लीजिये ॥ ५–७ ॥

ययातिरुवाच

यस्त्वं मे हृदयाज्जातो वयः स्वं न प्रयच्छसि। पापान्मातुलसम्बन्धाद् दुष्प्रजा ते भविष्यति ॥ ८ ॥
तुर्वसो प्रतिपद्यस्व पाप्मानं जरया सह। यौवनेन चरेयं वै विषयांस्तव पुत्रक ॥ ९ ॥
पूर्णे वर्षसहस्रे तु पुनर्दास्यामि यौवनम्। तथैव प्रतिपत्स्यामि पाप्मानं जरया सह ॥ १० ॥

ययातिने कहा—तात ! तुम मेरे हृदयसे उत्पन्न ( औरस पुत्र ) होकर भी मुझे अपनी युवावस्था नहीं देते हो, इसलिये इस पापके कारण तुम्हारी संतान मामाके अनुचित सम्बन्धद्वारा उत्पन्न होकर दुष्प्रजा कहलायेगी। ( अब उन्होंने तुर्वसुको बुलाकर कहा—) 'तुर्वसो ! तुम बुढ़ापेके साथ मेरा दोष ले लो। बेटा ! मैं तुम्हारी जवानीसे विषयोंका उपभोग करूँगा। एक हजार वर्ष पूर्ण होनेपर मैं तुम्हे जवानी लौटा दूँगा और बुढ़ापेसहित अपने दोषको वापस ले लूँगा' ॥ ८–१० ॥

तुर्वसुरुवाच

न कामये जरां तात कामभोगप्रणाशिनीम्। बलरूपान्तकरणीं बुद्धिमानविनाशिनीम् ॥ ११ ॥

तुर्वसु बोले—तात ! काम-भोगका नाश करनेवाली वृद्धावस्था मुझे नहीं चाहिये। वह बल तथा रूपका अन्त कर देती है और बुद्धि एवं मान-प्रतिष्ठाका भी नाश करनेवाली है ॥ ११ ॥

ययातिरुवाच

यस्त्वं मे हृदयाज्जातो वयः स्वं न प्रयच्छसि। तस्मात् प्रजासमुच्छेदं तुर्वसो तव यास्यति ॥ १२ ॥
संकीर्णाचारधर्मेषु प्रतिलोमचरेषु च। पिशिताशिषु लोकेषु नूनं राजा भविष्यसि ॥ १३ ॥
गुरुदारप्रसक्तेषु तिर्यग्योनिरतेषु च। पशुधर्मिषु म्लेच्छेषु पापेषु प्रभविष्यसि ॥ १४ ॥

ययातिने कहा—तुर्वसो ! तुम मेरे हृदयसे उत्पन्न होकर भी मुझे अपनी युवावस्था नहीं देते हो, इसलिये तुम्हारी संतति नष्ट हो जायगी। मूढ ! जिनके आचार और धर्म वर्णसंकरोंके समान हैं, जो प्रतिलोमसंकर जातियोंमें गिने जाते हैं तथा जो कच्चा मांस खानेवाले एवं चाण्डाल आदिकी श्रेणीमें हैं, ऐसे (यवनादिसे अधिष्ठित आटव्यादि देशोंके) लोगोंके तुम राजा होगे। जो गुरु-पत्नियोंमें आसक्त हैं, जो पशु-पक्षी आदिका-सा आचरण करनेवाले हैं तथा जिनके सारे आचार-विचार भी पशुओंके समान हैं, तुम उन पापात्मा म्लेच्छोंके राजा होगे ॥ १२–१४ ॥

शौनक उवाच

**एवं स तुर्वसुं शप्त्वा ययातिः सुतमात्मनः । शर्मिष्ठायाः सुतं ज्येष्ठं द्रुह्युं वचनमब्रवीत् ॥ १५ ॥**

**शौनकजी कहते हैं**—शतानीक ! राजा ययातिने इस प्रकार अपने पुत्र तुर्वसुको शाप देकर शर्मिष्ठाके ज्येष्ठ पुत्र द्रुह्युसे यह बात कही—॥ १५ ॥

ययातिरुवाच

**द्रुह्यो त्वं प्रतिपद्यस्व वर्णरूपविनाशिनीम् । जरां वर्षसहस्रं मे यौवनं स्वं प्रयच्छताम् ॥ १६ ॥**
**पूर्णे वर्षसहस्रे तु ते प्रदास्यामि यौवनम् । स्वं चादास्यामि भूयोऽहं पाप्मानं जरया सह ॥ १७ ॥**

**ययातिने कहा**—द्रुह्यो ! कान्ति तथा रूपका नाश करनेवाली यह वृद्धावस्था तुम ले लो और एक हजार वर्षोंके लिये अपनी जवानी मुझे दे दो। हजार वर्ष पूर्ण हो जानेपर मै पुनः तुम्हारी जवानी तुम्हे दे दूँगा और बुढापेके साथ अपना दोष फिर ले लूँगा ॥ १६-१७ ॥

द्रुह्युरुवाच

**न राज्यं न रथं नाश्वं जीर्णो भुङ्क्ते न च स्त्रियम् । न रागश्चास्य भवति तज्जरां ते न कामये ॥ १८ ॥**

**द्रुह्यु बोले**—पिताजी ! बूढ़ा मनुष्य न तो राज्य-सुखका अनुभव कर सकता है, न घोडे और रथपर ही चढ सकता है । वह स्त्रीका भी उपभोग नहीं कर सकता । उसके हृदयमें राग-प्रेम उत्पन्न ही नहीं होता; अतः मै वृद्धावस्था नहीं लेना चाहता ॥ १८ ॥

ययातिरुवाच

**यस्त्वं मे हृदयाज्जातो वयः स्वं न प्रयच्छसि । तद् द्रुह्यो वै प्रियः कामो न ते सम्पत्स्यते क्वचित् ॥ १९ ॥**
**नौरूपप्लवसंचारो यत्र नित्यं भविष्यति । अराजभोजशब्दं त्वं तत्र प्राप्स्यसि सान्वयः ॥ २० ॥**

**ययातिने कहा**—द्रुह्यो ! तुम मेरे हृदयसे उत्पन्न होकर भी अपनी जवानी मुझे नहीं दे रहे हो, इसलिये तुम्हारा प्रिय मनोरथ कभी नहीं सिद्ध होगा । ( जहाँ घोडे जुते हुए उत्तम रथो, घोड़ो, हाथियो, पीठको, पालकियो, गदहो, बकरो, बैलों और शिविका आदिकी भी गति नहीं है ) जहाँ प्रतिदिन ( केवल ) नावपर ही बैठकर घूमना-फिरना होगा, ऐसे ( पञ्चनदके निचले ) प्रदेशमे तुम अपनी संतानोंके साथ चले जाओगे और वहाँ तुम्हारे वंशके लोग राजा नहीं, भोज कहलायेंगे ॥ १९-२० ॥

ययातिरुवाच

**अनो त्वं प्रतिपद्यस्व पाप्मानं जरया सह । एकं वर्षसहस्रं तु चरेयं यौवनेन ते ॥ २१ ॥**

**तदनन्तर ययातिने अनुसे कहा**—अनो ! तुम बुढापेके साथ मेरा दोष-पाप ले लो और मै तुम्हारी जवानीके द्वारा एक हजार वर्षतक सुखसे चलते-फिरते आनन्द भोगूँगा ॥ २१ ॥

अनुरुवाच

**जीर्णः शिशुरिवादत्तेऽकालेऽन्नमशुचिर्यथा । न जुहोति च कालेऽग्निं तां जरां नाभिकामये ॥ २२ ॥**

**अनु बोले**—पिताजी ! बूढा मनुष्य बच्चोंकी तरह असमयमें भोजन करता है, अपवित्र रहता है तथा समयपर अग्निहोत्र आदि कर्म नहीं करता, अतः वैसी वृद्धावस्था-को मै नहीं लेना चाहता ॥ २२ ॥

ययातिरुवाच

**यस्त्वं मे हृदयाज्जातो वयः स्वं न प्रयच्छसि । जरादोषस्त्वयोक्तो यस्तस्मात् त्वं प्रतिपद्यसे ॥ २३ ॥**
**प्रजाश्च यौवनं प्राप्ता विनश्यन्ति ह्यनो तव । अग्निप्रस्कन्दनगतस्त्वं चाप्येवं भविष्यसि ॥ २४ ॥**

ययातिने कहा—अनो ! तुम मेरे हृदयसे उत्पन्न होकर भी अपनी युवावस्था मुझे नहीं दे रहे हो और बुढ़ापेके दोष बतला रहे हो, अतः तुम वृद्धावस्थाके समस्त दोषोंको प्राप्त करोगे और तुम्हारी संतान जवान होते ही मर जायगी तथा तुम भी बूढ़े-जैसे होकर अग्निहोत्रका त्याग कर दोगे ॥ २३-२४ ॥

ययातिरुवाच

पूरो त्वं प्रतिपद्यस्व पाप्मानं जरया सह । त्वं मे प्रियतरः पुत्रस्त्वं वरीयान् भविष्यसि ॥ २५ ॥
जरा वली च मां तात पलितानि च पर्यगुः । काव्यस्योशनसः शापान्न च तृप्तोऽस्मि यौवने ॥ २६ ॥
किंचित्कालं चरेयं वै विषयान् वयसा तव ।
पूर्णे वर्षसहस्रे तु प्रतिदास्यामि यौवनम् । स्वं चैव प्रतिपत्स्येऽहं पाप्मानं जरया सह ॥ २७ ॥

तत्पश्चात् ययातिने पूरुसे कहा—पूरो ! तुम मेरे अत्यधिक प्रिय पुत्र हो । गुणोंमें तुम श्रेष्ठ होओगे । तात ! मुझे बुढ़ापेने घेर लिया, सब अङ्गोंमें झुर्रियाँ पड़ गयीं और सिरके बाल सफेद हो गये । बुढ़ापेके ये सारे चिह्न मुझे एक ही साथ प्राप्त हुए हैं । कवि-पुत्र शुक्राचार्यके शापसे मेरी यह दशा हुई है; किंतु मैं जवानीके भोगोंसे अभी तृप्त नहीं हुआ हूँ । पूरो ! ( तुम बुढ़ापेके साथ मेरे दोष-पापको ले लो और ) मैं तुम्हारी युवावस्था लेकर उसके द्वारा कुछ कालतक विषयोंका उपभोग करूँगा । एक हजार वर्ष पूरे होनेपर मैं तुम्हें पुनः तुम्हारी जवानी दे दूँगा और बुढ़ापेके साथ अपना दोष ले लूँगा ॥ २५–२७ ॥

शौनक उवाच

एवमुक्तः प्रत्युवाच पूरुः पितरमञ्जसा । यथात्थ त्वं महाराज तत् करिष्यामि ते वचः ॥ २८ ॥
प्रतिपत्स्यामि ते राजन् पाप्मानं जरया सह । गृहाण यौवनं मत्तश्चर कामान् यथेप्सितान् ॥ २९ ॥
जरयाहं प्रतिच्छन्नो वयोरूपधरस्तव । यौवनं भवते दत्त्वा चरिष्यामि यथेच्छया ॥ ३० ॥

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशे ययातिचरिते त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥*

शौनकजी कहते हैं—ययातिके ऐसा कहनेपर पूरुने अपने पितासे विनयपूर्वक कहा—'महाराज ! आप मुझे जैसा आदेश दे रहे हैं, आपके उस वचनका मैं पालन करूँगा । ( गुरुजनोंकी आज्ञाका पालन मनुष्योंके लिये पुण्य, स्वर्ग तथा आयु प्रदान करनेवाला है । गुरुके ही प्रसादसे इन्द्रने तीनों लोकोंका शासन किया है । गुरुस्वरूप पिताकी अनुमति प्राप्त करके मनुष्य सम्पूर्ण कामनाओंको पा लेता है । ) राजन् ! मैं बुढ़ापेके साथ आपका दोष ग्रहण कर लूँगा । आप मुझसे जवानी ले लें और इच्छानुसार विषयोंका उपभोग करें । मैं वृद्धावस्थासे आच्छादित हो आपकी आयु एवं रूप धारण करके रहूँगा और आपको जवानी देकर आप मेरे लिये जो आज्ञा देंगे, उसका पालन करूँगा ॥ २८–३० ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके सोम-वंश-वर्णन-प्रसङ्गमें ययातिचरित नामक तैंतीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३३ ॥

---

## चौंतीसवाँ अध्याय

### राजा ययातिका विषय-सेवन और वैराग्य तथा पूरुका राज्याभिषेक करके वनमें जाना

शौनक उवाच

एवमुक्तः स राजर्षिः काव्यं स्मृत्वा महाव्रतम् । संक्रामयामास जरां तदा पुत्रे महात्मनि ॥ १ ॥
पौरवेणाथ वयसा ययातिर्नहुषात्मजः । प्रीतियुक्तो नरश्रेष्ठश्चचार विषयान् प्रियान् ॥ २ ॥
यथाकामं यथोत्साहं यथाकालं यथासुखम् । धर्माविरुद्धान् राजेन्द्रो यथार्हति स एव हि ॥ ३ ॥

देवानतर्पयद् यज्ञैः श्राद्धैरपि पितामहान् । दीनाननुग्रहैरिष्टैः कामैश्च द्विजसत्तमान् ॥ ४ ॥
अतिथीनन्नपानैश्च विशश्च प्रतिपालनैः । आनृशंस्येन शूद्रांश्च दस्यून् निग्रहणेन च ॥ ५ ॥
धर्मेण च प्रजाः सर्वा यथावदनुरञ्जयन् । ययातिः पालयामास साक्षादिन्द्र इवापरः ॥ ६ ॥
स राजा सिंहविक्रान्तो युवा विषयगोचरः । अविरोधेन धर्मस्य चचार सुखमुत्तमम् ॥ ७ ॥
स सम्प्राप्य शुभान् कामांस्तृप्तः खिन्नश्च पार्थिवः । कालं वर्षसहस्रान्तं सस्मार मनुजाधिपः ॥ ८ ॥
परिचिन्त्य स कालज्ञः कलाः काष्ठाश्च वीर्यवान् । पूर्णं मत्वा ततः कालं पूरुं पुत्रमुवाच ह ॥ ९ ॥
न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति । हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ॥ १० ॥
यत् पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः । नालमेकस्य तत् सर्वमिति मत्वा शमं व्रजेत् ॥ ११ ॥
यथासुखं यथोत्साहं यथाकाममरिंदम । सेविता विषयाः पुत्र यौवनेन मया तव ॥ १२ ॥
पूरो प्रीतोऽस्मि भद्रं ते गृहाणेदं स्वयौवनम् । राज्यं चैव गृहाणेदं त्वं हि मे प्रियकृत् सुतः ॥ १३ ॥

**शौनकजी कहते हैं**—शतानीक ! पूरुके ऐसा कहनेपर राजर्षि ययातिने महान् व्रतपरायण शुक्राचार्यका स्मरण कर अपने महात्मा पुत्र पूरुके शरीरमें अपनी वृद्धावस्थाका संक्रमण कराया ( और उसकी युवावस्था स्वयं ले ली ) । नहुषके पुत्र नरश्रेष्ठ ययातिने पूरुकी युवावस्थासे अत्यन्त प्रसन्न होकर अभीष्ट विषय-भोगोंका सेवन आरम्भ किया । उन राजेन्द्रकी जैसी कामना होती, जैसा उत्साह होता और जैसा समय होता, उसके अनुसार वे सुखपूर्वक धर्मानुकूल भोगोका उपभोग करते थे । वास्तवमें उसके योग्य वे ही थे । उन्होंने यज्ञोंद्वारा देवताओको, श्राद्धोसे पितरोको, इच्छाके अनुसार अनुग्रह करके दीन-दुखियोंको और मुँहमाँगी भोग्य वस्तुएँ देकर श्रेष्ठ ब्राह्मणोको तृप्त किया । वे अतिथियोंको अन्न और जल देकर, वैश्योको उनके धन-वैभवकी रक्षा करके, शूद्रोको दयाभावसे, लुटेरोंको कैद करके तथा सम्पूर्ण प्रजाको धर्मपूर्वक संरक्षणद्वारा प्रसन्न रखते थे । इस प्रकार साक्षात् दूसरे इन्द्रके समान राजा ययातिने समस्त प्रजाका पालन किया । वे राजा सिंहके समान पराक्रमी और नवयुवक थे । सम्पूर्ण विषय उनके अधीन थे और वे धर्मका विरोध न करते हुए उत्तम सुखका उपभोग करते थे । वे नरेश शुभ भोगोंको प्राप्त करके पहले तो तृप्त एवं आनन्दित होते थे, परंतु जब यह बात ध्यानमें आती कि ये हजार वर्ष भी पूरे हो जायँगे, तब उन्हें बड़ा खेद होता था । कालतत्त्वको जाननेवाले पराक्रमी राजा ययाति एक-एक कला और काष्ठाकी गिनती कर एक हजार वर्षके समयकी अवधिका स्मरण रखते थे । जब उन्होंने देखा कि अब समय पूरा हो गया, तब वे अपने पुत्र पूरुके पास आकर बोले—'शत्रुदमन पुत्र ! मैंने तुम्हारी जवानीके द्वारा अपनी रुचि, उत्साह और समयके अनुसार विषयोका सेवन किया; परंतु विषयोकी कामना उन विषयोके उपभोगसे कभी शान्त नहीं होती, अपितु घीकी आहुति पड़नेसे अग्निकी भाँति वह अधिकाधिक बढ़ती ही जाती है । इस पृथ्वीपर जितने भी धान, जौ, सुवर्ण, पशु और स्त्रियाँ हैं, वे सब एक मनुष्यके लिये भी पर्याप्त नहीं हैं, ऐसा मानकर शान्ति धारण कर लेना चाहिये । पूरो ! तुम्हारा भला हो, मैं प्रसन्न हूँ । तुम अपनी यह जवानी ले लो । साथ ही यह राज्य भी अपने अधिकारमें कर लो; क्योंकि तुम मेरा प्रिय करनेवाले पुत्र हो' ॥ १–१३ ॥

शौनक उवाच

प्रतिपेदे जरां राजा ययातिर्नाहुषस्तदा । यौवनं प्रतिपेदे स पूरुः स्वं पुनरात्मनः ॥ १४ ॥
अभिषेक्तुकामं च नृपं पूरुं पुत्रं कनीयसम् । ब्राह्मणप्रमुखा वर्णा इदं वचनमब्रुवन् ॥ १५ ॥
कथं शुक्रस्य दौहित्रं देवयान्याः सुतं प्रभो । ज्येष्ठं यदुमतिक्रम्य राज्यं पूरोः प्रदास्यसि ॥ १६ ॥
ज्येष्ठो यदुस्तव सुतस्तु [illegible] र्मिष्ठायाः सुतो द्रुह्युस्तथानु: पूरुरेव च ॥ १७ ॥
कथं ज्येष्ठमतिक्रम्य [illegible] सम्बोधयामस्त्वां स्वधर्ममनुपालय ॥ १८ ॥

**शौनकजी कहते हैं**—शतानीक ! उस समय नहुष-नन्दन राजा ययातिने अपनी वृद्धावस्था वापस ले ली और पूरुने पुनः अपनी युवावस्था प्राप्त कर ली। जब ब्राह्मण आदि वर्णोंने देखा कि महाराज ययाति अपने छोटे पुत्र पूरुको राजाके पदपर अभिषिक्त करना चाहते हैं, तब उनके पास आकर इस प्रकार बोले—'प्रभो ! शुक्राचार्यके नाती और देवयानीके ज्येष्ठ पुत्र यदुके होते हुए उन्हें लाँघकर आप पूरुको राज्य क्यों देते हैं ? यदु आपके ज्येष्ठ पुत्र हैं। उनके बाद तुर्वसु उत्पन्न हुए। तदनन्तर शर्मिष्ठाके पुत्र क्रमशः द्रुह्यु, अनु और पूरु हैं। ज्येष्ठ पुत्रोंका उल्लङ्घन करके छोटा पुत्र राज्यका अधिकारी कैसे हो सकता है ? हम आपको इस बातका स्मरण दिला रहे हैं। आप धर्मका पालन कीजिये' ॥ १४—१८ ॥

ययातिरुवाच

ब्राह्मणप्रमुखा वर्णाः सर्वे शृण्वन्तु मे वचः। ज्येष्ठं प्रति यतो राज्यं न देयं मे कथंचन ॥ १९ ॥
मम ज्येष्ठेन यदुना नियोगो नानुपालितः। प्रतिकूलः पितुर्यश्च न स पुत्रः सतां मतः ॥ २० ॥
मातापित्रोर्वचनकृद्धितः पथ्यश्च यः सुतः। स पुत्रः पुत्रवद् यश्च वर्तते पितृमातृषु ॥ २१ ॥
यदुनाहमवज्ञातस्तथा तुर्वसुनापि वा। द्रुह्युणा चानुना चैव मय्यवज्ञा कृता भृशम् ॥ २२ ॥
पूरुणा मे कृतं वाक्यं मानितश्च विशेषतः। कनीयान् मम दायादो जरा येन धृता मम ॥ २३ ॥
मम कामः स च कृतः पूरुणा पुत्ररूपिणा। शुक्रेण च वरो दत्तः काव्येनोशनसा स्वयम् ॥ २४ ॥
पुत्रो यस्त्वानुवर्तेत स राजा पृथिवीपतिः। भवन्तः प्रतिजानन्तु पूरू राज्येऽभिषिच्यताम्॥ २५ ॥

**ययातिने कहा**—ब्राह्मण आदि सब वर्णके लोग मेरी बात सुनें, मुझे ज्येष्ठ पुत्रको किसी तरह राज्य नहीं देना है। मेरे ज्येष्ठ पुत्र यदुने मेरी आज्ञाका पालन नहीं किया है। जो पिताके प्रतिकूल हो, वह सत्पुरुषोंकी दृष्टिमें पुत्र नहीं माना गया है। जो माता और पिताकी आज्ञा मानता है, उनका हित चाहता है, उनके अनुकूल चलता है, तथा माता-पिताके प्रति पुत्रोचित बर्ताव करता है, वही वास्तवमें पुत्र है। यदुने मेरी अवहेलना की है, तुर्वसु, द्रुह्यु तथा अनुने भी मेरा बड़ा तिरस्कार किया है। ( और ) पूरुने मेरी आज्ञाका पालन किया, मेरी बातको अधिक आदर दिया है, इसीने मेरा बुढ़ापा ले रखा था; अतः मेरा यह छोटा पुत्र ही वास्तवमें मेरे राज्य और धनको पानेका अधिकारी है। पूरुने पुत्ररूप होकर मेरी कामनाएँ पूर्ण की हैं। स्वयं शुक्राचार्यने मुझे वर दिया है कि 'जो पुत्र तुम्हारा अनुसरण करे, वही राजा एवं समस्त भूमण्डलका पालक हो।' अतः मैं आपलोगोंसे विनयपूर्ण आग्रह करता हूँ कि पूरुको ही राज्यपर अभिषिक्त करें ॥ १९—२५ ॥

प्रकृतय ऊचुः

यः पुत्रो गुणसम्पन्नो मातापित्रोर्हितः सदा। सर्वं सोऽर्हति कल्याणं कनीयानपि स प्रभुः ॥ २६ ॥
अर्हः पूरोरिदं राज्यं यः प्रियः प्रियकृत् तव। वरदानेन शुक्रस्य न शक्यं वक्तुमुत्तरम् ॥ २७ ॥

**प्रजावर्गके लोग बोले**—जो पुत्र गुणवान् और सदा माता-पिताका हितैषी हो, वह छोटा होनेपर भी श्रेष्ठतम है। वही सम्पूर्ण कल्याणका भागी होने योग्य है। पूरु आपका प्रिय करनेवाले पुत्र हैं, अतः शुक्राचार्यके वरदानके अनुसार ये ही इस राज्यको पानेके अधिकारी हैं। इस निश्चयके विरुद्ध अब कुछ भी उत्तर नहीं दिया जा सकता ॥ २६—२७ ॥

शौनक उवाच

**पौरजानपदैस्तुष्टैरित्युक्तो नाहुषस्तदा। अभिषिच्य ततः पूरुं राज्ये स्वसुतमात्मजम् ॥ २८ ॥**
**दत्त्वा च पूरवे राज्यं वनवासाय दीक्षितः। पुरात् स निर्ययौ राजा ब्राह्मणैस्तापसैः सह ॥ २९ ॥**
**यदोस्तु यादवा जातास्तुर्वसोर्यवनाः सुताः। द्रुह्योश्चैव सुता भोजा अनोस्तु म्लेच्छजातयः ॥ ३० ॥**
**पूरोस्तु पौरवो वंशो यत्र जातोऽसि पार्थिव। इदं वर्षसहस्रात् तु राज्यं कुरु कुलागतम् ॥ ३१ ॥**

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे ययातिचरिते चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥*

**शौनकजी कहते हैं**—नगर और राज्यके लोगोंने संतुष्ट होकर जब इस प्रकार कहा, तब नहुष-नन्दन ययातिने अपने पुत्र पूरुको ही अपने राज्यपर अभिषिक्त किया। इस प्रकार पूरुको राज्य दे वनवासकी दीक्षा लेकर राजा ययाति तपस्वी ब्राह्मणोंके साथ नगरसे बाहर निकल गये। यदुसे यादव क्षत्रिय उत्पन्न हुए, तुर्वसुकी संतान ( सीमान्तसे लेकर यूनानतकके निवासी ) यवन कहलायी, द्रुह्युके पुत्र भोज नामसे प्रसिद्ध हुए और अनुसे म्लेच्छ जातियाँ उत्पन्न हुईं। राजन्! पूरुसे पौरव वंश चला, जिसमें तुम उत्पन्न हुए हो। हजारों वर्षोंसे यह राज्य कुरुकुलमें सम्मिलित हो गया है, अर्थात् यह कुरुवंश नामसे प्रसिद्ध हो गया है ॥ २८—३१ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें ययाति-चरित्र-वर्णन नामक चौतीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३४ ॥

# पैंतीसवाँ अध्याय

## वनमें राजा ययातिकी तपस्या और उन्हें स्वर्गलोककी प्राप्ति

शौनक उवाच

**एवं स नाहुषो राजा ययातिः पुत्रमीप्सितम्। राज्येऽभिषिच्य मुदितो वानप्रस्थोऽभवन्मुनिः ॥ १ ॥**
**उषित्वा वनवासं स ब्राह्मणैः सह संश्रितः। फलमूलाशनो दान्तो यथा स्वर्गमितो गतः ॥ २ ॥**
**स गतः स्वर्गवासं तु न्यवसन्मुदितः सुखी। कालस्य नातिमहतः पुनः शक्रेण पातितः ॥ ३ ॥**
**विवशः प्रच्युतः स्वर्गादप्राप्तो मेदिनीतलम्। स्थितश्चासीदन्तरिक्षे स तदेति श्रुतं मया ॥ ४ ॥**
**तत एव पुनश्चापि गतः स्वर्गमिति श्रुतिः।**
**राज्ञा वसुमता सार्धमष्टकेन च वीर्यवान्। प्रतर्दनेन शिबिना समेत्य किल संसदि ॥ ५ ॥**

**शौनकजी कहते हैं**—शतानीक! इस प्रकार नहुष-नन्दन राजा ययाति अपने प्रिय पुत्र पूरुका राज्याभिषेक करके प्रसन्नतापूर्वक वानप्रस्थ मुनि हो गये। वे वनमें ब्राह्मणोंके साथ रहकर कठोर व्रतका पालन करते हुए फल-मूलका आहार तथा मन और इन्द्रियोंका संयम करते थे, इससे वे स्वर्गलोकमें गये। स्वर्गलोकमें जाकर वे बड़ी प्रसन्नताके साथ सुखपूर्वक रहने लगे और बहुत कालके बाद इन्द्रद्वारा वे पुनः स्वर्गसे नीचे गिरा दिये गये। स्वर्गसे भ्रष्ट हो पृथ्वीपर गिरते समय वे भूतलतक नहीं पहुँचे, आकाशमें ही स्थिर हो गये, ऐसा मैंने सुना है। फिर यह भी सुननेमें आया है कि वे पराक्रमी राजा ययाति मुनिसमाजमें राजा वसुमान्, अष्टक, प्रतर्दन और शिबिसे मिलकर पुनः वहींसे साधु पुरुषोंके सङ्गके प्रभावसे स्वर्गलोकमें चले गये ॥ १—५ ॥

शतानीक उवाच

**कर्मणा केन स दिवं पुनः प्राप्तो महीपतिः। कथमिन्द्रेण भगवन् पातितो मेदिनीतले ॥ ६ ॥**
**सर्वमेतदशेषेण श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः। कथ्यमानं त्वया विप्र देवर्षिगणसंनिधौ ॥ ७ ॥**

देवराजसमो ह्यासीद् ययातिः पृथिवीपतिः। वर्धनः कुरुवंशस्य विभावसुसमद्युतिः ॥ ८ ॥
तस्य विस्तीर्णयशसः सत्यकीर्तेर्महात्मनः। श्रोतुमिच्छामि देवेश दिवि चेह च सर्वशः ॥ ९ ॥

शतानीकने पूछा—भगवन् ! किस कर्मसे वे भूपाल पुनः स्वर्गमें पहुँचे थे ? तथा इन्द्रने उन्हे भूतलपर क्यो ढकेल दिया था ? विप्रवर ! मै ये सारी बाते पूर्णरूपसे यथावत् सुनना चाहता हूँ। इन ब्रह्मर्षियोंके समीप आप इस प्रसंगका वर्णन करें। कुरुवंशकी वृद्धि करनेवाले, अग्निके समान तेजस्वी राजा ययाति देवराज इन्द्रके समान थे। उनका यश चारों ओर फैला था। देवेश ! मैं उन सत्यकीर्ति महात्मा ययातिका चरित्र, जो इहलोक और स्वर्गलोकमें सर्वत्र प्रसिद्ध है, सुनना चाहता हूँ ॥ ६–९ ॥

शौनक उवाच

हन्त ते कथयिष्यामि ययातेरुत्तमां कथाम्। दिवि चेह च पुण्यार्थां सर्वपापप्रणाशिनीम् ॥ १० ॥
ययातिर्नाहुषो राजा पूरुं पुत्रं कनीयसम्। राज्येऽभिषिच्य मुदितः प्रवव्राज वनं तदा ॥ ११ ॥
अन्तेषु स विनिक्षिप्य पुत्रान् यदुपुरोगमान्। फलमूलाशनो राजा वनेऽसौ न्यवसच्चिरम् ॥ १२ ॥
स जितात्मा जितक्रोधस्तर्पयन् पितृदेवताः। अग्नींश्च विधिवज्जुह्वन् वानप्रस्थविधानतः ॥ १३ ॥
अतिथीन् पूजयन् नित्यं वन्येन हविषा विभुः। शिलोञ्छवृत्तिमास्थाय शेषान्नकृतभोजनः ॥ १४ ॥
पूर्णं सहस्रं वर्षाणामेवंवृत्तिरभून्नृपः। अम्बुभक्षः स चाब्दांस्त्रीनासीन्नियतवाङ्मनाः ॥ १५ ॥
ततस्तु वायुभक्षोऽभूत् संवत्सरमतन्द्रितः। पञ्चाग्निमध्ये च तपस्तेपे संवत्सरं पुनः ॥ १६ ॥
एकपादस्थितश्चासीत् षण्मासाननिलाशनः। पुण्यकीर्तिस्ततः स्वर्गं जगामावृत्य रोदसी ॥ १७ ॥

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशे ययातिचरिते पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥*

**शौनकजी कहते हैं**—शतानीक ! ययातिकी उत्तम कथा इहलोक और स्वर्गलोकमें भी पुण्यदायक है। यह सब पापोंका नाश करनेवाली है, मैं तुमसे उसका वर्णन करता हूँ। नहुष-पुत्र महाराज ययातिने अपने छोटे पुत्र पूरुको राज्यपर अभिषिक्त करके यदु आदि अन्य पुत्रोंको सीमान्त ( किनारेके देशों ) में रख दिया। फिर बड़ी प्रसन्नताके साथ वे वनमें चले गये। वहाँ फल-मूलका आहार करते हुए उन्होंने दीर्घकालतक निवास किया। उन्होने अपने मनको शुद्ध करके क्रोधपर विजय पायी और प्रतिदिन देवताओं तथा पितरोंका तर्पण करते हुए वानप्रस्थाश्रमकी विधिसे शास्त्रीय विधानके अनुसार अग्निहोत्र प्रारम्भ किया। वे राजा शिलोञ्छवृत्तिका आश्रय ले यज्ञशेष अन्नका भोजन करते थे। भोजनसे पूर्व वनमें उपलब्ध होनेवाले फल, मूल आदि हविष्यके द्वारा अतिथियोंका आदर-सत्कार करते थे। राजाको इसी वृत्तिसे रहते हुए पूरे एक हजार वर्ष बीत गये। उन्होंने मन और वाणीपर संयम करके तीन वर्षोंतक केवल जलका आहार किया। तत्पश्चात् वे आलस्यरहित हो एक वर्षतक केवल वायु पीकर रहे। फिर एक वर्षतक पाँच अग्नियोंके बीच बैठकर तपस्या की। इसके बाद छः महीनेतक हवा पीकर वे एक पैरसे खड़े रहे। तदनन्तर पुण्यकीर्ति महाराज ययाति पृथ्वी और आकाशमें अपना यश फैलाकर स्वर्गलोकमें चले गये ॥ १०–१७ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके सोम-वंश-वर्णन-प्रसंगमें ययाति-चरित्र-वर्णन नामक पैंतीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३५ ॥

# छत्तीसवाँ अध्याय

## इन्द्रके पूछनेपर ययातिका अपने पुत्र पूरुको दिये हुए उपदेशकी चर्चा करना

शौनक उवाच

स्वर्गतस्तु स राजेन्द्रो न्यवसद् देवसद्मनि। पूजितस्त्रिदशैः साध्यैर्मरुद्भिर्वसुभिस्तथा ॥ १ ॥
देवलोकाद् ब्रह्मलोकं स चरन् पुण्यकृद् वशी। अवसत् पृथिवीपालो दीर्घकालमिति श्रुतिः ॥ २ ॥
स कदाचिन्नृपश्रेष्ठो ययातिः शक्रमागतः। कथान्ते तत्र शक्रेण पृष्टः स पृथिवीपतिः ॥ ३ ॥

शौनकजी कहते हैं—शतानीक! स्वर्गलोकमें जाकर महाराज ययाति देव-भवनमें निवास करने लगे। वहाँ देवताओं, साध्यगणों, मरुद्गणों तथा वसुओंने उनका बड़ा स्वागत-सत्कार किया। पुण्यात्मा तथा जितेन्द्रिय राजा वहाँ देवलोकसे ब्रह्मलोकतक भ्रमण करते हुए दीर्घकाल-तक रहे—ऐसी पौराणिक परम्परा है। एक दिन नृपश्रेष्ठ ययाति देवराज इन्द्रके पास आये। वार्तालापके अन्तमें इन्द्रने राजा ययातिसे इस प्रकार प्रश्न किया ॥ १—३ ॥

शक्र उवाच

यदा स पूरुस्तव रूपेण राजञ्जरां गृहीत्वा प्रचचार लोके।
तदा राज्यं सम्प्रदायैवमस्मै त्वया किमुक्तः कथयेह सत्यम् ॥ ४ ॥

इन्द्रने पूछा—राजन्! जिस समय पूरु आपसे वृद्धावस्था लेकर आपके स्वरूपसे इस पृथ्वीपर विचरण करने लगा, सत्य कहिये, उस समय राज्य देकर आपने उसको क्या आदेश दिया था ? ॥ ४ ॥

ययातिरुवाच

प्रकृत्यनुमते पूरुं राज्ये कृत्वेदमब्रुवम्।
गङ्गायमुनयोर्मध्ये कृत्स्नोऽयं विषयस्तव। मध्ये पृथिव्यास्त्वं राजा भ्रातरोऽन्तेऽधिपास्तव ॥ ५ ॥
अक्रोधनः क्रोधनेभ्यो विशिष्टस्तथा तितिक्षुरतितिक्षोर्विशिष्टः।
अमानुषेभ्यो मानुषश्च प्रधानो विद्वांस्तथैवाविदुषः प्रधानः ॥ ६ ॥
आक्रोश्यमानो नाक्रोशेन्मन्युमेव तितिक्षति। आक्रोष्टारं निर्दहति सुकृतं चास्य विन्दति ॥ ७ ॥
नारुंतुदः स्यान्न नृशंसवादी न हीनतः परमभ्याददीत।
ययास्य वाचा पर उद्विजेत न तां वदेद् रुशतीं पापलोल्याम् ॥ ८ ॥
अरुंतुदं पुरुषं तीव्रवाचं वाक्कण्टकैर्वितुदन्तं मनुष्यान्।
विद्यादलक्ष्मीकतमं जनानां मुखे निबद्धं निर्ऋतिं वहन्तम् ॥ ९ ॥
सद्भिः पुरस्तादभिपूजितः स्यात् सद्भिस्तथा पृष्ठतो रक्षितः स्यात्।
सदासतामतिवादांस्तितिक्षेत् सतां वृत्तं पालयन् साधुवृत्तः ॥ १० ॥
वाक्सायका वदनान्निष्पतन्ति यैराहतः शोचति राज्यहानि।
परस्य वा मर्मसु ते पतन्ति तान् पण्डितो नावसृजेत् परेषु ॥ ११ ॥
नास्तीदृशं संवननं त्रिषु लोकेषु किंचन। यथा मैत्री च लोकेषु दानं च मधुरा च वाक् ॥ १२ ॥
तस्मात् सान्त्वं सदा वाच्यं न वाच्यं परुषं क्वचित्। पूज्यान् सम्पूजयेद् दद्यान्नाभिशापं कदाचन ॥ १३ ॥

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशे ययातिचरिते षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥*

**ययातिने कहा**—देवराज ! मैंने प्रजाओंकी अनुमतिसे पूरुको राज्याभिषिक्त करके उससे यह कहा था कि 'बेटा ! गङ्गा और यमुनाके बीचका यह सारा प्रदेश तुम्हारे अधिकारमें रहेगा। यह पृथ्वीका मध्य भाग है, इसके तुम राजा होओगे और तुम्हारे भाई सीमान्त देशोंके अधिपति होंगे।' देवेन्द्र ! ( इसके बाद मैंने यह उपदेश दिया कि मनुष्यको चाहिये कि वह दीनता, शठता और क्रोध न करे। कुटिलता, मात्सर्य और वैर कहीं न करे। माता, पिता, विद्वान्, तपस्वी तथा क्षमाशील पुरुषका बुद्धिमान् मनुष्य कभी अपमान न करे। शक्तिशाली पुरुष सदा क्षमा करता है। शक्तिहीन मनुष्य सदा क्रोध करता है। दुष्ट मानव साधु पुरुषसे और दुर्बल अधिक बलवान्से द्वेष करता है। कुरूप मनुष्य रूपवान्से, निर्धन धनवान्से, अकर्मण्य कर्मनिष्ठसे और अधार्मिक धर्मात्मासे द्वेष करते हैं। इसी प्रकार गुणहीन मनुष्य गुणवान्से डाह रखता है। इन्द्र ! यह कलिका लक्षण है। ) क्रोध करनेवालोंसे वह पुरुष श्रेष्ठ है, जो कभी क्रोध नहीं करता। इसी प्रकार असहनशीलसे सहनशील उत्तम है, मनुष्येतर प्राणियोंसे मनुष्य श्रेष्ठ है और मूर्खोंसे विद्वान् उत्तम है। यदि कोई किसीकी निन्दा करता या उसे गाली देता है तो वह भी बदलेमें निन्दा या गाली-गलौज न करे; क्योंकि जो गाली या निन्दा सह लेता है, उस पुरुषका आन्तरिक दुःख ही गाली देनेवाले या अपमान करनेवालेको जला डालता है। साथ ही उसके पुण्यको भी वह ले लेता है। क्रोधवश किसीके मर्म-स्थानमें चोट न पहुँचाये ( ऐसा बर्ताव न करे, जिससे किसीको मार्मिक पीडा हो )। किसीके प्रति कठोर बात भी मुँहसे न निकाले, अनुचित उपायसे शत्रुको भी वशमें न करे। जो जीको जलानेवाली हो, जिससे दूसरेको उद्वेग होता हो, ऐसी बात मुँहसे न बोले; क्योंकि पापीलोग ही ऐसी बातें बोला करते हैं। जो स्वभावका कठोर हो, दूसरोंके मर्ममें चोट पहुँचाता हो, तीखी बातें बोलता हो और कठोर वचनरूपी काँटोंसे दूसरे मनुष्यको पीड़ा देता हो, उसे अत्यन्त लक्ष्मीहीन ( दरिद्र या अभागा ) समझे। उसको देखना भी बुरा है; क्योंकि वह कड़वी बोलीके रूपमें अपने मुँहमें बँधी हुई एक पिशाचिनीको ढो रहा है। ( अपना बर्ताव और व्यवहार ऐसा रखे, जिससे ) साधु पुरुष सामने तो सत्कार करें ही, पीठ-पीछे भी उनके द्वारा अपनी रक्षा हो। दुष्ट लोगोंकी कही हुई अनुचित बातें सदा सह लेनी चाहिये तथा श्रेष्ठ पुरुषोंके सदाचारका आश्रय लेकर साधु पुरुषोंके व्यवहारको ही अपनाना चाहिये। दुष्ट मनुष्योंके मुखसे कटुवचनरूपी बाण सदा छूटते रहते हैं, जिनसे आहत होकर मनुष्य रात-दिन शोक और चिन्तामें डूबा रहता है। वे वाग्बाण दूसरोंके मर्मस्थानोंपर ही चोट करते हैं; अतः विद्वान् पुरुष दूसरेके प्रति ऐसी कठोर वाणीका प्रयोग न करे। सभी प्राणियोंके प्रति दया और मैत्रीका बर्ताव, दान और सबके प्रति मधुर वाणीका प्रयोग—तीनों लोकोंमें इनके समान कोई वशीकरण नहीं है। इसलिये कभी कठोर वचन न बोले। सदा सान्त्वनापूर्ण मधुर वचन ही बोले। पूजनीय पुरुषोंका पूजन ( आदर-सत्कार ) करे। दूसरोंको दान दे और स्वयं कभी किसीसे कुछ न माँगे ॥ ५—१३ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके सोम-वंश-वर्णन-प्रसंगमें ययाति-चरित्र-वर्णन नामक छत्तीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३६ ॥
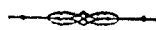
# सैंतीसवाँ अध्याय

## ययातिका स्वर्गसे पतन और अष्टकका उनसे प्रश्न करना

इन्द्र उवाच

सर्वाणि कार्याणि समाप्य राजन् गृहान् परित्यज्य वनं गतोऽसि ।
तत् त्वां पृच्छामि नहुषस्य पुत्र केनासि तुल्यस्तपसा ययाते ॥ १ ॥

इन्द्रने कहा—राजन् ! आप सम्पूर्ण कर्मोंको नहुषपुत्र ययाते ! मै आपसे पूछता हूँ कि आप तपस्यामें समाप्त करके घर छोड़कर वनमें चले गये थे; अतः किसके समान हैं ? ॥ १ ॥

ययातिरुवाच

नाहं देवमनुष्येषु न गन्धर्वमहर्षिषु । आत्मनस्तपसा तुल्यं कंचित् पश्यामि वासव ॥ २ ॥

ययातिने कहा—इन्द्र ! मै न तो देवताओं एवं ऐसा देख रहा हूँ, जो तपस्यामें मेरे समान हो ( अर्थात मनुष्योंमें तथा न गन्धर्वों और महर्षियोंमें ही किसीको मै तपमें अद्वितीय हूँ ) ॥ २ ॥

इन्द्र उवाच

यदावमंस्थाः सदृशः श्रेयसश्च पापीयसश्चाविदितप्रभावः ।
तस्माल्लोका ह्यन्तवन्तस्तवेमे क्षीणे पुण्ये पतितोऽस्यद्य राजन् ॥ ३ ॥

इन्द्र बोले—राजन् ! आपने अपने समान, रहनेकी अवधि समाप्त हो गयी, क्योंकि ( दूसरोंकी अपनेसे बड़े और छोटे लोगोंका प्रभाव न जानकर निन्दा करनेके कारण ) आपका पुण्य क्षीण हो गया, सबका तिरस्कार किया है, अतः आपके इन पुण्यलोकोंमें इसलिये अब आप यहाँसे नीचे गिरेंगे ॥ ३ ॥

ययातिरुवाच

सुरर्षिगन्धर्वनरावमानात् क्षयं गता मे यदि शक्र लोकाः ।
इच्छाम्यहं सुरलोकाद् विहीनः सतां मध्ये पतितुं देवराज ॥ ४ ॥

ययातिने कहा—देवराज इन्द्र ! देवता, ऋषि, गन्धर्व पुण्यलोक क्षीण हो गये हैं तो इन्द्रलोकसे भ्रष्ट होकर मै और मनुष्य आदिका अपमान करनेके कारण यदि मेरे साधु पुरुषोंके बीचमें गिरनेकी इच्छा करता हूँ ॥ ४ ॥

इन्द्र उवाच

सतां सकाशे पतितोऽसि राजंश्च्युतः प्रतिष्ठां यत्र लब्धासि भूयः ।
एवं विदित्वा तु पुनर्ययाते न तेऽवमान्या सदृशः श्रेयसे च ॥ ५ ॥

इन्द्र बोले—राजन् ययाति ! आप यहाँसे च्युत किंतु यह सब जानकर आप फिर ( आगे ) कभी होकर साधु पुरुषोंके ही समीप गिरेंगे और वहाँ अपनी बराबरीवाले तथा अपनेसे बडे लोगोंका अपमान अपनी खोयी हुई प्रतिष्ठा पुनः प्राप्त कर लेंगे; मत कीजियेगा ॥ ५ ॥

शौनक उवाच

ततः प्रपातामरराजजुष्टात् पुण्याल्लोकात् पतमानं ययातिम् ।
सम्प्रेक्ष्य राजर्षिवरोऽष्टकस्तमुवाच सद्धर्मविधानगोप्ता ॥ ६ ॥

शौनकजी कहते हैं—शतानीक ! तदनन्तर समय राजर्षियोंमे श्रेष्ठ एवं उत्तम धर्मविधिके पालक देवराज इन्द्रके सेवन करने योग्य पुण्यलोकोंका अष्टकने उन्हें गिरते देखा । ( तब ) उन्होंने उन परित्याग कर राजा ययाति नीचे गिरने लगे । उस ( ययाति )से ( इसप्रकार ) कहा ॥ ६ ॥

अष्टक उवाच

कस्त्वं युवा वासवतुल्यरूपः स्वतेजसा दीप्यमानो यथाग्निः ।
पतस्युदीर्णाम्बुधरप्रकाशः खे खेचराणां प्रवरो यथार्कः ॥ ७ ॥
दृष्ट्वा च त्वां सूर्यपथात् पतन्तं वैश्वानरार्कद्युतिमप्रमेयम् ।
किं नु स्विदेतत् पततीव सर्वे वितर्कयन्तः परिमोहिताः स्मः ॥ ८ ॥
दृष्ट्वा च त्वाधिष्ठितं देवमार्गे शक्रार्कविष्णुप्रतिमप्रभावम् ।
प्रत्युद्गतास्त्वां वयमद्य सर्वे तस्मात् पाते तव जिज्ञासमानाः ॥ ९ ॥
न चापि त्वां धृष्णवः प्रष्टुमग्रे न च त्वमस्मान् पृच्छसि के वयं स्म ।
तत् त्वां पृच्छामि स्पृहणीयरूप कस्य त्वं वा किं निमित्तं त्वमागाः ॥ १० ॥
भयं तु ते व्येतु विषादमोहौ त्यजाशु देवेन्द्रसमानरूप ।
त्वां वर्तमानं हि सतां सकाशे शक्रो न सोढुं बलहापि शक्तः ॥ ११ ॥
सन्तः प्रतिष्ठा हि सुखच्युतानां सतां सदैवामरराजकल्प ।
ते सङ्गताः स्थावरजङ्गमेशाः प्रतिष्ठितस्त्वं सदृशेषु सत्सु ॥ १२ ॥
प्रभुरग्निः प्रतपने भूमिरावपने प्रभुः । प्रभुः सूर्यः प्रकाशाय सतां चाभ्यागतः प्रभुः ॥ १३ ॥

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशे ययातिचरिते ययातिपतनं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥*

अष्टकने पूछा—'इन्द्रके समान सुन्दर रूपवाले तरुण पुरुष आप कौन हैं ? आप अपने तेजसे अग्निकी भाँति देदीप्यमान हो रहे हैं । मेघरूपी घने अन्धकारवाले आकाशसे आकाशचारी ग्रहोंमें श्रेष्ठ सूर्यके समान आप कैसे गिर रहे हैं ? आपका तेज सूर्य और अग्निके सदृश है । आप अप्रमेय शक्तिशाली जान पड़ते है । आपको सूर्यके मार्गसे गिरते देख हम सब लोग मोहित ( आश्चर्यचकित ) होकर इस तर्क-वितर्कमें पड़े हैं कि यह क्या गिर रहा है ? आप इन्द्र, सूर्य और विष्णुके समान प्रभावशाली हैं । आपको आकाशमें स्थित देखकर हम सब लोग अब यह जाननेके लिये आपके निकट आये हैं कि आपके पतनका यथार्थ कारण क्या है । हम पहले आपसे कुछ पूछनेका साहस नहीं कर सकते और आप भी हमसे हमारा परिचय नहीं पूछते कि हम कौन हैं । इसलिये मैं ही आपसे पूछता हूँ । मनोरम रूपवाले महापुरुष ! आप किसके पुत्र हैं और किसलिये यहाँ आये हैं ? इन्द्रके तुल्य शक्तिशाली पुरुष ! आपका भय दूर हो जाना चाहिये । अब आपको ( स्वर्गसे गिरनेका ) विषाद और मोह भी तुरंत त्याग देना चाहिये । इस समय आप संतोंके समीप विद्यमान हैं । बल दानवका नाश करनेवाले इन्द्र भी अब आपका तेज सहन करनेमें असमर्थ हैं । देवेश्वर इन्द्रके समान तेजस्वी महानुभाव ! सुखसे वञ्चित होनेवाले साधु पुरुषोंके लिये सदा संत ही परम आश्रय हैं । वे स्थावर और जङ्गम—सभी प्राणियोंपर शासन करनेवाले सत्पुरुष यहाँ एकत्र हुए हैं । आप अपने समान पुण्यात्मा संतोंके बीचमें स्थित हैं । जैसे तपनेकी शक्ति अग्निमें है, बोये हुए बीजको धारण करनेकी शक्ति पृथ्वीमें है, प्रकाशित होनेकी शक्ति सूर्यमें है, उसी प्रकार संतोंका स्वामित्व—उनपर शासन करनेकी शक्ति केवल अतिथिको ही प्राप्त है' ॥ ७–१३ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके सोम-वंश-वर्णन-प्रसङ्गमें ययाति-चरित-वर्णन नामक सैंतीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ३७ ॥

*

# अड़तीसवाँ अध्याय

## ययाति और अष्टकका संवाद

ययातिरुवाच

अहं ययातिर्नहुषस्य पुत्रः पूरोः पिता सर्वभूतावमानात्।
प्रभ्रंशितोऽहं सुरसिद्धलोकात् परिच्युतः प्रपताम्यल्पपुण्यः ॥ १ ॥
अहं हि पूर्वो वयसा भवद्भ्यस्तेनाभिवादं भवतां न युञ्जे।
यो विद्यया तपसा जन्मना वा वृद्धः स वै सम्भवति द्विजानाम् ॥ २ ॥

**ययातिने कहा**—महात्मन्! मै नहुपका पुत्र और पूरुका पिता ययाति हूँ। समस्त प्राणियोंका अपमान करनेसे मेरा पुण्य क्षीण हो गया है। इस कारण मै देवताओं तथा सिद्धोंके लोकसे च्युत होकर नीचे गिर रहा हूँ। मै आपलोगोंसे अवस्थामें बड़ा हूँ, अतः आपलोगोंको प्रणाम नहीं कर रहा हूँ। द्विजातियोंमें जो विद्या, तप और अवस्थामें बड़ा होता है, वही पूजनीय माना जाता है ॥ १-२ ॥

अष्टक उवाच

अवादीस्त्वं वयसास्मि वृद्ध इति वै राजन्नधिकः कथंचित्।
यो वै विद्वांस्तपसा च वृद्धः स एव पूज्यो भवति द्विजानाम् ॥ ३ ॥

**अष्टक बोले**—राजन्! आपने जो यह कहा है कि मै अवस्थामें बड़ा हूँ, इसलिये ज्येष्ठ हूँ, सो इसमें आप कुछ अधिक कह गये; क्योंकि द्विजोंमें जो विद्या और तपस्यामें बढ़ा-चढ़ा होता है, वही पूज्य माना जाता है ॥३॥

ययातिरुवाच

प्रतिकूलं कर्मणां पापमाहुस्तद्वर्तिनां प्रवणं पापलोकम्।
सन्तोऽसतो नानुवर्तन्त ते वै यदात्मनैषां प्रतिकूलवादी ॥ ४ ॥
अभूद् धनं मे विपुलं महद् वै विचेष्टमानोऽधिगन्ता तदस्मि।
एवं प्रधार्यात्महिते निविष्टो यो वर्तते स विजानाति धीरः ॥ ५ ॥
नानाभावा बहवो जीवलोके दैवाधीना नष्टचेष्टाधिकाराः।
तत् तत् प्राप्य न विहन्येत धीरो दिष्टं बलीय इति मत्वात्मबुद्ध्या ॥ ६ ॥
सुखं हि जन्तुर्यदि वापि दुःखं दैवाधीनं विन्दति नात्मशक्त्या।
तस्माद् दिष्टं बलवन्मन्यमानो न संज्वरेन्नापि हृष्येत् कदाचित् ॥ ७ ॥
दुःखे न तप्येत सुखे न हृष्येत् समेन वर्तेत सदैव धीरः।
दिष्टं बलीय इति मन्यमानो न संज्वरेन्नापि हृष्येत् कदाचित् ॥ ८ ॥
भये न मुह्याम्यष्टकाहं कदाचित् संतापो मे मानसो नास्ति कश्चित्।
धाता यथा मां विदधाति लोके ध्रुवं तदाहं भवितेति मत्वा ॥ ९ ॥
संस्वेदजा ह्यण्डजा ह्युद्भिदश्च सरीसृपाः कृमयोऽप्यप्सु मत्स्याः।
तथाश्मानस्तृणकाष्ठं च सर्वे दिष्टक्षये स्वां प्रकृतिं भजन्ते ॥ १० ॥
अनित्यतां सुखदुःखस्य बुद्ध्वा कस्मात् संतापमष्टकाहं भजेयम्।
किं कुर्यां वै किं च कृत्वा न तप्ये तस्मात् संतापं वर्जयाम्यप्रमत्तः ॥ ११ ॥

**ययातिने कहा**—पापको पुण्यकर्मोंका नाशक बताया जाता है। वह नरककी प्राप्ति करानेवाला है और वह उद्दण्ड पुरुषोंमें ही देखा जाता है। श्रेष्ठ पुरुष दुराचारी पुरुषोंके दुराचारका अनुसरण नहीं करते।

पहलेके साधु पुरुष भी उन श्रेष्ठ पुरुषोंके ही अनुकूल आचरण करते थे। मेरे पास पुण्यरूपी बहुत धन था, किंतु दूसरोंकी निन्दा करनेके कारण वह सब नष्ट हो गया। अब मैं चेष्टा करके भी उसे नहीं पा सकता। मेरी इस दुरवस्थाको समझ-बूझकर जो आत्मकल्याणमें संलग्न रहता है, वही ज्ञानी और धीर है। इस जीव-जगत्‌में भिन्न-भिन्न स्वभाववाले बहुत-से प्राणी हैं; वे सभी प्रारब्धके अधीन हैं, अतः उनके धनादि पदार्थोंके लिये किये हुए उद्योग और अधिकार सभी व्यर्थ हो जाते हैं। इसलिये धीर पुरुषको चाहिये कि वह अपनी बुद्धिसे 'प्रारब्ध ही बलवान् है'—यह जानकर दुःख या सुख जो भी मिले, उसमें विकारको न प्राप्त हो। जीव जो सुख अथवा दुःख पाता है, वह उसे प्रारब्ध ( भाग्य )से ही प्राप्त होता है, अपनी शक्तिसे नहीं; अतः प्रारब्धको ही बलवान् मानकर मनुष्य किसी प्रकार भी हर्ष अथवा शोक न करे। दुःखोंसे संतप्त न हो और सुखोंसे हर्षित न हो। धीर पुरुष सदा समभावसे ही रहे और भाग्यको ही प्रबल मानकर किसी प्रकार चिन्ता एवं हर्षके वशीभूत न हो। अष्टक! मैं कभी भयमें पड़कर मोहित नहीं होता, मुझे कोई मानसिक संताप भी नहीं होता; क्योंकि मैं समझता हूँ कि विधाता इस संसारमें मुझे जैसे रखेगा वैसे ही रहूँगा। स्वेदज, अण्डज, उद्भिज्ज, सरीसृप, कृमि, जलमें रहनेवाले मत्स्य आदि जीव तथा पर्वत, तृण और काष्ठ—ये सभी प्रारब्ध-भोगका सर्वथा क्षय हो जानेपर अपनी प्रकृतिको प्राप्त हो जाते हैं। अष्टक! मैं सुख तथा दुःख—दोनोंकी अनित्यताको जानता हूँ, फिर मुझे संताप हो तो कैसे? मैं क्या करूँ और क्या करके संतप्त न होऊँ—इन बातोंकी चिन्ता छोड़ चुका हूँ अतः सावधान रहकर शोक-संतापको अपनेसे दूर रखता हूँ॥ ४—११॥

शौनक उवाच

एवं ब्रुवाणं नृपतिं ययातिमथाष्टकः पुनरेवान्वपृच्छत्।
मातामहं सर्वगुणोपपन्नं यत्र स्थितं स्वर्गलोके यथावत्॥ १२॥

शौनकजी कहते हैं—शतानीक! राजा ययाति समस्त सद्गुणोंसे सम्पन्न थे और नातेमें अष्टकके नाना लगते थे। वे अन्तरिक्षमें वैसे ही ठहरे हुए थे, जैसे मानो स्वर्गलोकमें हों। जब उन्होंने उपर्युक्त बातें कहीं, तब अष्टकने उनसे पुनः प्रश्न किया॥ १२॥

अष्टक उवाच

ये ये लोकाः पार्थिवेन्द्र प्रधानास्त्वया भुक्ता यं च कालं यथा च।
तन्मे राजन् ब्रूहि सर्वं यथावत् क्षेत्रज्ञवद् भाषसे त्वं हि धर्मम्॥ १३॥

अष्टकने कहा—महाराज! आपने जिन-जिन प्रधान लोकोंमें रहकर जितने समयतक वहाँके सुखोंका भली-भाँति उपभोग किया है, उन सबका मुझे यथार्थ परिचय दीजिये। राजन्! आप तो महात्माओंकी भाँति धर्मोका उपदेश कर रहे हैं॥ १३॥

ययातिरुवाच

राजाहमासं त्विह सार्वभौमस्ततो लोकान् महतश्चार्जयं वै।
तत्रावसं वर्षसहस्रमात्रं ततो लोकान् परमानभ्युपेतः॥ १४॥
ततः पुरीं पुरुहूतस्य रम्यां सहस्रद्वारां शतयोजनान्ताम्।
अध्यावसं वर्षसहस्रमात्रं ततो लोकान् परमानभ्युपेतः॥ १५॥
ततो दिव्यमजरं प्राप्य लोकं प्रजापतेर्लोकपतेर्दुरापम्।
तत्रावसं वर्षसहस्रमात्रं ततो लोकान् परमानभ्युपेतः॥ १६॥

देवस्य देवस्य निवेशने च विजित्य लोकान् न्यवसं यथेष्टम्।
सम्पूज्यमानस्त्रिदशैः समस्तैस्तुल्यप्रभावद्युतिरीश्वराणाम् ॥ १७ ॥
तथावसं नन्दने कामरूपी संवत्सराणामयुतं शतानाम्।
सहाप्सरोभिर्विचरन् पुण्यगन्धान् पश्यन् नगान् पुष्पितांश्चारुरूपान् ॥ १८ ॥
तत्र स्थित मां देवसुखेषु सक्तं कालेऽतीते महति ततोऽतिमात्रम्।
दूतो देवानामब्रवीदुग्ररूपो ध्वंसेत्युच्चैस्त्रिः प्लुतेन स्वरेण ॥ १९ ॥
एतावन्मे विदितं राजसिंह ततो भ्रष्टोऽहं नन्दनात् क्षीणपुण्यः।
वाचोऽश्रौषं चान्तरिक्षे सुराणामनुक्रोशाच्छोचतां मां नरेन्द्र ॥ २० ॥
अकस्माद् वै क्षीणपुण्यो ययातिः पतत्यसौ पुण्यकृत् पुण्यकीर्तिः।
तानब्रुवं पतमानस्तदाहं सतां मध्ये निपतेयं कथं नु ॥ २१ ॥
तैराख्यातां भवतां यज्ञभूमिं समीक्ष्य चैनामहमागतोऽस्मि।
हविर्गन्धैर्दर्शितां यज्ञभूमिं धूमापाङ्गं परिगृह्य प्रतीताम् ॥ २२ ॥

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशे ययातिचरितेऽष्टात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥*

**ययातिने कहा**—अष्टक! मैं पहले समस्त भूमण्डलमें प्रसिद्ध चक्रवर्ती राजा था। तदनन्तर सत्कर्मोंद्वारा बड़े-बड़े लोकोंपर मैंने विजय प्राप्त की और उनमें एक हजार वर्षोंतक (सुखपूर्वक) निवास किया। इसके बाद उनसे भी उच्चतम लोकमें जा पहुँचा। वहाँ सौ योजन विस्तृत और एक हजार दरवाजोंसे युक्त इन्द्रकी रमणीय पुरी प्राप्त हुई। उसमें मैंने केवल एक हजार वर्षोंतक निवास किया और उसके बाद उससे भी ऊँचे लोकमें गया। तदनन्तर लोकपालोंके लिये भी दुर्लभ प्रजापतिके उस दिव्य लोकमें जा पहुँचा, जहाँ जरावस्थाका प्रवेश नहीं है। वहाँ एक हजार वर्षतक रहा, फिर उससे भी उत्तम लोकमें चला गया। वह देवाधिदेव ब्रह्माजीका धाम था। वहाँ मै अपनी इच्छाके अनुसार भिन्न-भिन्न लोकोंमें विहार करता हुआ सम्पूर्ण देवताओंसे सम्मानित होकर रहा। उस समय मेरा प्रभाव और तेज देवेश्वरोंके समान था। इसी प्रकार मै नन्दनवनमें इच्छानुसार रूप धारण करके अप्सराओंके साथ विहार करता हुआ दस लाख वर्षोंतक रहा। वहाँ मुझे पवित्र गन्ध और मनोहर रूपवाले वृक्ष देखनेको मिले, जो फूलोंसे लदे हुए थे। वहाँ रहकर मैं देवलोकके सुखोंमें आसक्त हो गया। तदनन्तर बहुत अधिक समय बीत जानेपर एक भयंकर रूपधारी देवदूत आकर मुझसे ऊँची आवाजमें तीन बार बोला—'गिर जाओ, गिर जाओ, गिर जाओ।' राजशिरोमणे! मुझे इतना ही ज्ञात हो सका है। तदनन्तर पुण्य क्षीण हो जानेके कारण मै नन्दनवनसे नीचे गिर पड़ा। नरेन्द्र! उस समय मेरे लिये शोक करनेवाले देवताओंकी अन्तरिक्षमें यह दयाभरी वाणी सुनायी पडी—'अहो! बडे कष्टकी बात है कि पवित्र कीर्तिवाले ये पुण्यकर्मा महाराज ययाति पुण्य क्षीण होनेके कारण नीचे गिर रहे हैं!' तब नीचे गिरते हुए मैंने उनसे पूछा—'देवताओ! मै साधु पुरुषोंके बीच गिरूँ, इसका क्या उपाय है?' तब देवताओंने मुझे आपकी यज्ञभूमिका परिचय दिया। मै इसीको देखता हुआ तुरत यहाँ आ पहुँचा हूँ। यज्ञभूमिका परिचय देनेवाली हविष्यकी सुगन्धका अनुभव तथा धूम्रप्रान्तका अवलोकन कर मुझे बड़ी प्रसन्नता और सान्त्वना मिली है॥ १४—२२॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके सोम-वंश-वर्णन-प्रसङ्गमें ययाति-चरित-वर्णन नामक अड़तीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ३८॥

# उन्तालीसवाँ अध्याय

## अष्टक और ययातिका संवाद

अष्टक उवाच

यदा वसन् नन्दने कामरूपे संवत्सराणामयुतं शतानाम् ।
किं कारणं कार्तयुगप्रधानं हित्वा तद् वै वसुधामन्वपद्यः ॥ १ ॥

अष्टकने पूछा—सत्ययुगके निष्पाप राजाओंमें प्रधान नरेश ! जब आप इच्छानुसार रूप धारण करके दस लाख वर्षोंतक नन्दनवनमें निवास कर चुके हैं, तब क्या कारण है कि आप उसे छोड़कर भूतलपर चले आये ? ॥ १ ॥

ययातिरुवाच

ज्ञातिः सुहृत् स्वजनो यो यथेह क्षीणे वित्ते त्यज्यते मानवैर्हि ।
तथा स्वर्गे क्षीणपुण्यं मनुष्यं त्यजन्ति सद्यः खचरा देवसंघाः ॥ २ ॥

ययाति बोले—जैसे इस लोकमें जाति-भाई, सुहृद् अथवा स्वजन कोई भी क्यों न हो, धन नष्ट हो जानेपर उसे सब मनुष्य त्याग देते हैं, उसी प्रकार स्वर्गलोकमें जिसका पुण्य समाप्त हो जाता है, उस मनुष्यको देवराज इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता तुरंत त्याग देते हैं ॥ २ ॥

अष्टक उवाच

कथं तस्मिन् क्षीणपुण्या भवन्ति सम्मुह्यते मेऽत्र मनोऽतिमात्रम् ।
किं विशिष्टाः कस्य धामोपयान्ति तद् वै ब्रूहि क्षेत्रवित् त्वं मतो मे ॥ ३ ॥

अष्टकने पूछा—देवलोकमें मनुष्योंके पुण्य कैसे क्षीण होते हैं ? इस विषयमें मेरा मन अत्यन्त मोहित हो रहा है । प्रजापतिका वह कौन-सा धाम है, जिसमें विशिष्ट ( अपुनरावृत्तिकी योग्यतावाले ) पुरुष जाते हैं ? यह बताइये; क्योंकि आप मुझे ज्ञानी जान पड़ते हैं ॥ ३ ॥

ययातिरुवाच

इमं भौमं नरकं ते पतन्ति लालप्यमाना नरदेव सर्वे ।
ते कङ्कगोमायुपलाशनार्थं क्षितौ विवृद्धिं बहुधा प्रयान्ति ॥ ४ ॥
तस्मादेवं वर्जनीयं नरेन्द्र दुष्टं लोके गर्हणीयं च कर्म ।
आख्यातं ते पार्थिव सर्वमेतद् भूयश्चेदानीं वद किं ते वदामि ॥ ५ ॥

ययाति बोले—नरदेव ! जो अपने मुखसे अपने पुण्यकर्मोंका बखान करते हैं, वे सभी इस भौम नरकमें आ गिरते हैं । यहाँ वे गीधों, गीदड़ों और कौओं आदिके खाने योग्य इस शरीरके लिये पृथ्वीपर पुत्र-पौत्रादिरूपसे बहुधा विस्तारको प्राप्त होते हैं । इसलिये नरेन्द्र ! इस लोकमें जो दुष्ट और निन्दनीय कर्म हो, उसे सर्वथा त्याग देना चाहिये । भूपाल ! मैंने तुमसे सब कुछ कह दिया; बोलो, अब तुम्हें क्या बताऊँ ॥ ४-५ ॥

अष्टक उवाच

यदा तु तांस्ते वितुदन्ते वयांसि तथा गृध्राः शितिकण्ठाः पतङ्गाः ।
कथं भवन्ति कथमाभवन्ति त्वत्तो भौमं नरकमहं शृणोमि ॥ ६ ॥

**अष्टकने पूछा**—जब मनुष्योंको मृत्युके पश्चात् पक्षी, गीध, मयूर और पतङ्ग—ये नोच-नोचकर खा लेते हैं, तब वे कैसे और किस रूपमें उत्पन्न होते हैं ? आज मैं आपके ही मुखसे ( प्रथम बार ) भौम नरकका ( जिसे कभी नहीं सुना था ) नाम सुन रहा हूँ ॥ ६ ॥

ययातिरुवाच

ऊर्ध्वं देहात् कर्मणो जृम्भमाणाद् व्यक्तं पृथिव्यामनुसंचरन्ति ।
इमं भौमं नरकं ते पतन्ति नावेक्षन्ते वर्षपूगाननेकान् ॥ ७ ॥
षष्टिं सहस्राणि पतन्ति व्योम्नि तथाशीतिं चैव तु वत्सराणाम् ।
तान् वै तुदन्ते प्रपतन्तः प्रयातान् भीमा भौमा राक्षसास्तीक्ष्णदंष्ट्राः ॥ ८ ॥

**ययाति बोले**—कर्मसे उत्पन्न होने और बढ़नेवाले शरीरको पाकर गर्भसे निकलनेके पश्चात् जीव सबके समक्ष इस पृथ्वीपर ( विषयोंमें ) विचरते हैं । उनका यह विचरण ही भौम नरक कहा गया है । इसीमें वे पड़ते है । इसमें पड़नेपर वे व्यर्थ बीतनेवाले अनेक वर्षसमूहोंकी ओर दृष्टिपात नहीं करते । कितने ही प्राणी स्वर्गादि लोकोंमें साठ हजार वर्ष रहते हैं । कुछ अस्सी हजार वर्षोंतक वहाँ निवास करते हैं । इसके बाद वे भूमिपर गिरते हैं । यहाँ उन गिरनेवाले जीवोंको तीखी दाढ़ोंवाले पृथ्वीके भयानक राक्षस ( दुष्ट प्राणी ) अत्यन्त पीड़ा देते हैं ॥ ७-८ ॥

अष्टक उवाच

यदेतांस्ते सम्पतन्तस्तुदन्ति भीमा भौमा राक्षसास्तीक्ष्णदंष्ट्राः ।
कथं भवन्ति कथमाभवन्ति कथंभूता गर्भभूता भवन्ति ॥ ९ ॥

**अष्टकने पूछा**—तीखी दाढ़ोंवाले पृथ्वीके भयंकर राक्षस पापवश आकाशसे गिरते हुए जिन जीवोंको सताते हैं, वे गिरकर कैसे जीवित रहते हैं ? किस प्रकार इन्द्रिय आदिसे युक्त होते हैं ? और गर्भमें कैसे आते हैं ? ॥ ९ ॥

ययातिरुवाच

असृग्रेतःपुष्परसानुयुक्तमन्वेति सद्यः पुरुषेण सृष्टम् ।
तद्वै तस्या रज आपद्यते च स गर्भभूतः समुपैति तत्र ॥ १० ॥
वनस्पतीनोषधीश्चाविशन्ति अपो वायुं पृथिवीं चान्तरिक्षम् ।
चतुष्पदं द्विपदं चापि सर्वं एवंभूता गर्भभूता भवन्ति ॥ ११ ॥

**ययाति बोले**—अन्तरिक्षसे गिरा हुआ प्राणी असृक् ( रक्त ) होता है । फिर वही क्रमशः नूतन शरीरका बीजभूत वीर्य बन जाता है । ( फिर ) वह पुष्पके रससे संयुक्त होकर कर्मानुरूप योनिका अनुसरण करता है । गर्भाधान करनेवाले पुरुषके द्वारा स्त्रीसंसर्ग होनेपर वीर्यमें आविष्ट हुआ वह जीव उस स्त्रीके रजसे मिल जाता है । तदनन्तर वही गर्भरूपमें परिणत हो जाता है । जीव जलरूपसे गिरकर वनस्पतियों और ओषधियोंमें प्रवेश करते हैं तथा जल, वायु, पृथ्वी और अन्तरिक्ष आदिमें प्रवेश करते हुए कर्मानुसार पशु अथवा मनुष्य सब कुछ होते हैं । इस प्रकार वे भूमिपर आकर फिर पूर्वोक्त क्रमके अनुसार गर्भभावको प्राप्त होते हैं ॥ १०-११ ॥

अष्टक उवाच

अन्यद्वपुर्विदधातीह गर्भं उताहोस्वित् स्वेन कामेन याति ।
आपद्यमानो नरयोनिमेतामाचक्ष्व मे संशयात् पृच्छतस्त्वम् ॥ १२ ॥
शरीरदेहादिसमुच्छ्रयं च चक्षुः श्रोत्रे लभते केन संज्ञाम् ।
एतत् सर्वं तात आचक्ष्व पृष्टः क्षेत्रज्ञं त्वां मन्यमाना हि सर्वे ॥ १३ ॥

अष्टकने पूछा—राजन् ! इस मनुष्ययोनिमें आनेवाला जीव अपने इसी शरीरसे गर्भमें आता है या दूसरा शरीर धारण करता है ? आप यह रहस्य मुझे बताइये। मै संशय होनेके कारण पूछता हूँ। गर्भमें आनेपर वह भिन्न-भिन्न शरीररूपी आश्रयको, आँख और कान आदि इन्द्रियोंको तथा चेतनाको भी कैसे उपलब्ध करता है ? मेरे पूछनेपर ये सब बातें आप बताइये। तात ! हम सब लोग आपको क्षेत्रज्ञ ( आत्मज्ञानी ) मानते हैं ॥ १२-१३ ॥

ययातिरुवाच

वायुः समुत्कर्षति गर्भयोनिमृतौ रेतः पुष्परसानुयुक्तम्।
स तत्र तन्मात्रकृताधिकारः क्रमेण संवर्धयतीह गर्भम् ॥ १४ ॥
स जायमानोऽथ गृहीतगात्रः संज्ञामधिष्ठाय ततो मनुष्यः।
स श्रोत्राभ्यां वेदयतीह शब्दं स वै रूपं पश्यति चक्षुषा च ॥ १५ ॥
घ्राणेन गन्धं जिह्वयाथो रसं च त्वचा स्पर्शं मनसा देवभावम्।
इत्यष्टकेहोपचितं हि विद्धि महात्मनः प्राणभृतः शरीरे ॥ १६ ॥

ययाति बोले—ऋतुकालमें पुष्परससे संयुक्त वीर्यको वायु गर्भाशयमें खींच लेता है और वह वहाँ उसपर अधिकार जमाकर क्रमशः गर्भकी वृद्धि करता रहता है। वह गर्भ बढ़कर जब सम्पूर्ण अवयवोंसे सम्पन्न हो जाता है, तब चेतनताका आश्रय ले योनिसे बाहर निकलकर मनुष्य कहलाता है। वह कानोंसे शब्द सुनता है, आँखोंसे रूप देखता है, नासिकासे गन्ध लेता है, जिह्वासे रसका आस्वादन करता है, त्वचासे स्पर्श और मनसे आन्तरिक भावोंका अनुभव करता है। अष्टक ! इस प्रकार महान् आत्मबलसे सम्पन्न प्राणधारियोंके शरीरमें जीवकी स्थापना होती है ॥ १४—१६ ॥

अष्टक उवाच

यः संस्थितः पुरुषो दह्यते वा निखन्यते वापि निकृष्यते वा।
अभावभूतः स विनाशमेत्य केनात्मानं चेतयते पुरस्तात् ॥ १७ ॥

अष्टकने पूछा—जो मनुष्य मर जाता है, वह जलाया जाता है या गाड़ दिया जाता है अथवा जलमें बहा दिया जाता है। इस प्रकार विनाश होकर स्थूल शरीरका अभाव हो जाता है। फिर वह चेतन जीवात्मा किस शरीरके आधारपर रहकर चैतन्ययुक्त व्यवहार करता है ? ॥ १७ ॥

ययातिरुवाच

हित्वा सोऽसून् सुप्तवन्निष्टितत्वात् पुरोधाय सुकृतं दुष्कृतं च।
अन्यां योनिं पुण्यपापानुसारां हित्वा देहं भजते राजसिंह ॥ १८ ॥
पुण्यां योनिं पुण्यकृतो विशन्ति पापां योनिं पापकृतो व्रजन्ति।
कीटाः पतङ्गाश्च भवन्ति पापान्न मे विवक्षास्ति महानुभाव ॥ १९ ॥
चतुष्पदा द्विपदाः पक्षिणश्च तथाभूता गर्भभूता भवन्ति।
आख्यातमेतन्निखिलं हि सर्वं भूयस्तु किं पृच्छसि राजसिंह ॥ २० ॥

ययाति बोले—राजसिंह ! जैसे मनुष्य श्वास लेते हुए प्राणयुक्त स्थूल शरीरको छोड़कर स्वप्नमें विचरण करता है, वैसे ही यह चेतन जीवात्मा अस्फुट शब्दोच्चारणके साथ इस मृतक स्थूल शरीरको त्यागकर सूक्ष्म शरीरसे संयुक्त होता है और फिर पुण्य अथवा पापको आगे रखकर उसी पुण्य-पापके अनुसार अन्य योनिको प्राप्त होता है। पुण्य करनेवाले मनुष्य पुण्य-योनिमें और पाप करनेवाले मनुष्य पाप-योनिमें जाते हैं। इस

प्रकार पापी जीव कीट-पतङ्ग आदि होते हैं । महानुभाव ! इन सब विषयोंको विस्तारके साथ कहनेकी इच्छा नहीं होती । नृपश्रेष्ठ ! इसी प्रकार जीव गर्भमें आकर चार पैरवाले ( चतुष्पाद ), दो पैरवाले मनुष्यादि और पक्षियोंके रूपमें उत्पन्न होते हैं । यह सब मैंने पूरा-पूरा बतला दिया । अब और क्या पूछना चाहते हो ?

अष्टक उवाच

किंस्वित् कृत्वा लभते तात संज्ञां मर्त्यः श्रेष्ठां तपसा विद्यया वा ।
तन्मे पृष्टः शंस सर्वं यथावच्छुभांल्लोकान् येन गच्छेत् क्रमेण ॥ २१ ॥

अष्टकने पूछा—तात ! मनुष्य कौन-सा कर्म करके उत्तम यश प्राप्त करता है ? वह यश तपसे प्राप्त होता है या विद्यासे ? मै यही पूछता हूँ । जिस कर्मके द्वारा क्रमशः श्रेष्ठ लोकोंकी प्राप्ति हो सके, वह सब यथार्थ-रूपसे बताइये ॥ २१ ॥

ययातिरुवाच

तपश्च दानं च शमो दमश्च ह्रीरार्जवं सर्वभूतानुकम्पा ।
स्वर्गस्य लोकस्य वदन्ति सन्तो द्वाराणि सप्तैव महान्ति पुंसाम् ॥ २२ ॥
सर्वाणि चैतानि यथोदितानि तपःप्रधानान्यभिमर्षकेण ।
नश्यन्ति मानेन तमोऽभिभूताः पुंसः सदैवेति वदन्ति सन्तः ॥ २३ ॥
अधीयानः पण्डितम्मन्यमानो यो विद्यया हन्ति यशः परस्य ।
तस्यान्तवन्तः पुरुषस्य लोका न चास्य तद् ब्रह्मफलं ददाति ॥ २४ ॥
चत्वारि कर्माण्यभयंकराणि भयं प्रयच्छन्त्ययथाकृतानि ।
पानाग्निहोत्रमुत मानमौनं मानेनाधीतमुत मानयज्ञः ॥ २५ ॥
न मान्यमानो मुदमाददीत न संतापं प्राप्नुयाच्चावमानात् ।
सन्तः सतः पूजयन्तीह लोके नासाधवः साधुबुद्धिं लभन्ते ॥ २६ ॥
इति दद्यादिति यजेदित्यधीयीत मे श्रुतम् । इत्येतान्यभयान्याहुस्तान्यवर्ज्यानि नित्यशः ॥ २७ ॥
ये चाश्रयं वेदयन्ते पुराणं मनीषिणो मानसमार्गरुद्धम् ।
तन्निःश्रेयस्तेन संयोगमेत्य परां शान्तिं प्राप्नुयुः प्रेत्य चेह ॥ २८ ॥

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशे ययातिचरिते एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥*

ययाति बोले—राजन् ! साधु पुरुष स्वर्गलोकके सात महान् दरवाजे बतलाते हैं, जिनसे प्राणी उसमें प्रवेश करते हैं । उनके नाम ये हैं—तप, दान, शम, दम, लज्जा, सरलता और समस्त प्राणियोंके प्रति दया । वे तप आदि द्वार सदा ही पुरुषके अभिमानरूप तमसे आच्छादित होनेपर नष्ट हो जाते हैं, यह संत पुरुषोंका कथन है । जो वेदोंका अध्ययन करके अपनेको सबसे बड़ा पण्डित मानता और अपनी विद्याद्वारा दूसरोंके यशका नाश करता है, उसके पुण्यलोक अन्तवान् ( विनाशशील ) होते हैं और उसका पढ़ा हुआ वेद भी उसे फल नहीं देता । अग्निहोत्र, मौन, अध्ययन और यज्ञ—ये चार कर्म मनुष्यको भयसे मुक्त करनेवाले हैं; परंतु वे ही ठीकसे न किये जायँ, दूषित भावसे अनुष्ठित हों तो वे उलटे भय प्रदान करते हैं । विद्वान् पुरुष सम्मानित होनेपर अधिक आनन्दित न हो, अपमानित होनेपर संतप्त न हो । इस लोकमें संत पुरुष ही सत्पुरुषोंका आदर करते हैं । दुष्ट पुरुषोंको 'यह सत्पुरुष है' ऐसी बुद्धि प्राप्त ही नहीं होती । ऐसा दान देना चाहिये, इस प्रकार

यजन करना चाहिये, इस तरह स्वाध्यायमें लगा रहना चाहिये—ये सभी वचन अभयदायक हैं, अतः नित्य पालनीय हैं—ऐसा मैंने सुना है। जो सबका आश्रय है, पुराण ( कूटस्थ ) है तथा जहाँ मनकी गति भी रुक जाती है, वह ( परब्रह्म परमात्मा ) तुम सब लोगोंके लिये कल्याणकारी हो। जो विद्वान् उसे जानते हैं, वे उस परब्रह्म परमात्मासे संयुक्त होकर इहलोक और परलोकमें परम शान्तिको प्राप्त होते हैं॥२२—२८॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके सोम-वंश-वर्णन-प्रसङ्गमें ययाति-चरित-वर्णन नामक उन्तालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ३९॥

# चालीसवाँ अध्याय

## ययाति और अष्टकका आश्रमधर्मसम्बन्धी संवाद

अष्टक उवाच

चरन् गृहस्थः कथमेति देवान् कथं भिक्षुः कथमाचार्यकर्मा।
वानप्रस्थः सत्पथे संनिविष्टो बहून्यस्मिन् सम्प्रति वेदयन्ति॥ १॥

अष्टकने पूछा—महाराज! वेदज्ञ विद्वान् इस धर्मके अन्तर्गत बहुत-से कर्मोंको उत्तम लोकोंकी प्राप्तिका द्वार बताते हैं, अतः मैं आपसे पूछता हूँ कि आचार्यकी सेवा करनेवाला ब्रह्मचारी, गृहस्थ, सन्मार्गमें स्थित वानप्रस्थ और संन्यासी किस प्रकार धर्माचरण करके उत्तम लोकमें जाते हैं?॥ १॥

ययातिरुवाच

आहूताध्यायी गुरुकर्मसु चोद्यतः पूर्वोत्थायी चरमं चाथ शायी।
मृदुर्दान्तो धृतिमानप्रमत्तः स्वाध्यायशीलः सिध्यति ब्रह्मचारी॥ २॥
धर्मागतं प्राप्य धनं यजेत दद्यात् सदैवातिथीन् भोजयेच्च।
अनाददानश्च परैरदत्तं सैषा गृहस्थोपनिषत् पुराणी॥ ३॥
स्ववीर्यजीवी वृजिनान्निवृत्तो दाता परेभ्यो न परोपतापी।
तादृङ्मुनिः सिद्धिमुपैति मुख्यां वसन्नरण्ये नियताहारचेष्टः॥ ४॥
अशिल्पजीवी विगृहश्च नित्यं जितेन्द्रियः सर्वतो विप्रमुक्तः।
अनोकशायी लघु लिप्समानश्चरन् देशानेकचरः स भिक्षुः॥ ५॥
रात्र्या यया चाभिरताश्च लोका भवन्ति कामाभिजिताः सुखेन च।
तामेव रात्रिं प्रयतेत विद्वानरण्यसंस्थो भवितुं यतात्मा॥ ६॥
दशैव पूर्वान् दश चापरांस्तु ज्ञातींस्तथात्मानमथैकविंशम्।
अरण्यवासी सुकृतं दधाति मुक्त्वा त्वरण्ये स्वशरीरधातून्॥ ७॥

ययाति बोले—शिष्यको उचित है कि गुरुके बुलानेपर उसके समीप जाकर पढ़े, गुरुकी सेवामें बिना कहे लगा रहे, रातमें गुरुजीके सो जानेके बाद सोवे और सवेरे उनसे पहले ही उठ जाय। वह मृदुल ( विनम्र ), जितेन्द्रिय, धैर्यवान्, सावधान और स्वाध्याय-शील हो। इस नियमसे रहनेवाला ब्रह्मचारी सिद्धिको पाता है। गृहस्थ पुरुष न्यायसे प्राप्त हुए धनको पाकर उससे यज्ञ करे, दान दे और सदा अतिथियोंको भोजन करावे। दूसरोंकी वस्तु उनके दिये बिना ग्रहण न करे। यह गृहस्थधर्मका प्राचीन एवं रहस्यमय स्वरूप है। वानप्रस्थ मुनि वनमें निवास करे। आहार और विहारको नियमित रखे। अपने ही पराक्रम एवं परिश्रमसे

जीवन-निर्वाह करे, पापसे दूर रहे। दूसरोंको दान दे और किसीको कष्ट न पहुँचाये। ऐसा मुनि परम मोक्ष(सिद्धि)को प्राप्त होता है। संन्यासी शिल्पकलासे जीवन-निर्वाह न करे। वह शम, दम आदि श्रेष्ठ गुणोंसे सम्पन्न हो, सदा अपनी इन्द्रियोंको काबूमें रखे, सबसे अलग रहे, गृहस्थके घरमें न सोये, परिग्रहका भार न लेकर अपनेको हल्का रखे, थोड़ा-थोड़ा चले और अकेला ही अनेक स्थानोंमें भ्रमण करता रहे। ऐसा संन्यासी ही वास्तवमें भिक्षु कहलाने योग्य है। जिस समय रूप, रस आदि विषय तुच्छ प्रतीत होने लगें, इच्छानुसार जीत लिये जायँ तथा उनके परित्यागमें ही सुख जान पड़े, उसी समय विद्वान् पुरुष मनको वशमें करके समस्त संग्रहोंका त्याग कर वनवासी होनेका प्रयत्न करे। जो वनवासी मुनि वनमें ही अपने पञ्चभूतात्मक शरीरका परित्याग करता है, वह दस पीढ़ी पूर्वके और दस पीढ़ी बादके जाति-भाइयोंको तथा इक्कीसवें अपनेको भी पुण्यलोकोंमें पहुँचा देता है॥ २—७॥

अष्टक उवाच

**कतिस्विद् देव मुनयो मौनानि कति चाप्युत। भवन्तीति तदाचक्ष्व श्रोतुमिच्छामहे वयम्॥ ८॥**

**अष्टकने पूछा**—राजन्! मुनि कितने हैं? और मौन कितने प्रकारके हैं! यह बताइये, हम इसे सुनना चाहते हैं।

ययातिरुवाच

**अरण्ये वसतो यस्य ग्रामो भवति पृष्ठतः। ग्रामे वा वसतोऽरण्यं स मुनिः स्याज्जनाधिप॥ ९॥**

**ययातिने कहा**—जनेश्वर! अरण्यमें निवास करते समय जिसके लिये ग्राम पीछे होता है और ग्राममें वास करते समय जिसके लिये अरण्य पीछे होता है, वह मुनि कहलाता है॥ ९॥

अष्टक उवाच

**कथंस्विद् वसतोऽरण्ये ग्रामो भवति पृष्ठतः। ग्रामे वा वसतोऽरण्यं कथं भवति पृष्ठतः॥ १०॥**

**अष्टकने पूछा**—अरण्यवासीके लिये ग्राम और ग्राममें निवास करनेवालेके लिये अरण्य पीछे कैसे है?॥१०॥

ययातिरुवाच

**न ग्राम्यमुपयुञ्जीत य आरण्यो मुनिर्भवेत्। तथास्य वसतोऽरण्ये ग्रामो भवति पृष्ठतः॥ ११॥**
**अनग्निरनिकेतश्चाप्यगोत्रचरणो मुनिः। कौपीनाच्छादनं यावत् तावदिच्छेच्च चीवरम्॥ १२॥**
**यावत् प्राणाभिसंधानं तावदिच्छेच्च भोजनम्। तदास्य वसतो ग्रामेऽरण्यं भवति पृष्ठतः॥ १३॥**
**यस्तु कामान् परित्यज्य त्यक्तकर्मा जितेन्द्रियः। आतिष्ठेत मुनिर्मौनं स लोके सिद्धिमाप्नुयात्॥ १४॥**
**धौतदन्तं कृत्तनखं सदा स्नातमलङ्कृतम्। असितं सितकर्मस्थं कस्तं नार्चितुमर्हति॥ १५॥**
**तपसा कर्शितः क्षामः क्षीणमांसास्थिशोणितः। यदा भवति निर्द्वन्द्वो मुनिर्मौनं समास्थितः॥ १६॥**
**अथ लोकमिमं जित्वा लोकं चापि जयेत् परम्।**
**आस्येन तु यथाहारं गोवन्मृगयते मुनिः। अथास्य लोकः सर्वो यः सोऽमृतत्वाय कल्पते॥ १७॥**

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशे ययातिचरिते चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४०॥*

**ययातिने कहा**—जो मुनि वनमें निवास करता है और गाँवोंमें प्राप्त होनेवाली वस्तुओंका उपयोग नहीं करता, इस प्रकार वनमें निवास करनेवाले उस ( वान-प्रस्थ ) मुनिके लिये गाँव पीछे समझा जाता है। जो अग्नि और गृहको त्याग चुका है, जिसका गोत्र और चरण ( वेदकी शाखा एवं जाति ) से भी सम्बन्ध नहीं

रह गया है, जो मौन रहता और उतने ही वस्त्रकी इच्छा रखता है, जितनेसे लँगोटी और ओढ़नेका काम चल जाय; इसी प्रकार जितनेसे प्राणोंकी रक्षा हो सके, उतना ही भोजन चाहता है, इस नियमसे गाँवमें निवास करनेवाले उस ( संन्यासी ) मुनिके लिये अरण्य पीछे समझा जाता है। जो मुनि सम्पूर्ण कामनाओंको छोड़कर कर्मोंको त्याग चुका है और इन्द्रिय-संयमपूर्वक सदा मौनमें स्थित है, ऐसा संन्यासी लोकमें परम सिद्धिको प्राप्त होता है। जिसके दाँत शुद्ध और साफ हैं, जिसके नख ( और केश ) कटे हुए हैं, जो सदा स्नान करता है तथा यम-नियमादिसे अलंकृत ( उन्हें धारण किये हुए ) है, शीतोष्णको सहनेसे जिसका शरीर श्याम पड़ गया है, जिसके आचरण उत्तम हैं—ऐसा संन्यासी किसके लिये पूजनीय नहीं है। तपस्यासे मांस, हड्डी तथा रक्तके क्षीण हो जानेपर जिसका शरीर कृश और दुर्बल हो गया है तथा जो सुख-दुःख, राग-द्वेष आदि द्वन्द्वोंसे रहित एवं भलीभाँति मौनावलम्बी हो चुका है, वह इस लोकको जीतकर परलोकपर भी विजय पाता है। जब संन्यासी मुनि गाय-बैलोंकी तरह मुखसे ही आहार ग्रहण करता है, हाथ आदिका भी सहारा नहीं लेता, तब उसके द्वारा ये सब लोक जीत लिये गये समझे जाते हैं और वह मोक्षकी प्राप्तिके लिये समर्थ समझा जाता है ॥ ११–१७ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके सोमवंशवर्णन-प्रसङ्गमें ययाति-चरित-वर्णन नामक चालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ४० ॥

# एकतालीसवाँ अध्याय

## अष्टक-ययाति-संवाद और ययातिद्वारा दूसरोंके दिये हुए पुण्यदानको अस्वीकार करना

अष्टक उवाच

कतरस्त्वेतयोः पूर्वं देवानामेति सात्म्यताम्। उभयोर्धावतो राजन् सूर्याचन्द्रमसोरिव ॥ १ ॥

अष्टकने पूछा—राजन्! सूर्य और चन्द्रमाकी तरह अपने-अपने लक्ष्यकी ओर दौड़ते हुए वानप्रस्थ और संन्यासी—इन दोनोंमेंसे पहले कौन-सा देवताओंके आत्मभाव ( ब्रह्म ) को प्राप्त होता है? ॥ १ ॥

ययातिरुवाच

अनिकेतगृहस्थेषु कामवृत्तेषु संयतः। ग्राम एव चरन् भिक्षुस्तयोः पूर्वतरं गतः ॥ २ ॥
अप्राप्य दीर्घमायुस्तु यः प्राप्तो विकृतिं चरेत्। तप्येत यदि तत् कृत्वा चरेत् सोऽग्रं तपस्ततः ॥ ३ ॥
यद् वै नृशंसं तदपथ्यमाहुर्यः सेवते धर्ममनर्थबुद्धिः।
असावनीशः स तथैव राजंस्तदार्जवं स समाधिस्तदार्यम् ॥ ४ ॥

ययाति बोले—कामवृत्तिवाले गृहस्थोंके बीच ग्राममें ही वास करते हुए भी जो जितेन्द्रिय और गृहरहित संन्यासी है, वही उन दोनों प्रकारके मुनियोंमें पहले ब्रह्मभावको प्राप्त होता है। जो वानप्रस्थ दुर्लभ दीर्घायुको पाकर भी विषयोंके प्राप्त होनेपर उनसे विकृत हो उन्हींमें विचरने लगता है, उसे यदि विषयोपभोगके अनन्तर पश्चात्ताप होता है तो उसे मोक्षके लिये पुनः तपका अनुष्ठान करना चाहिये। राजन्! जो पापबुद्धि-वाला मनुष्य अधर्मका आचरण करता है, उसका वह आचरण नृशंस ( पापमय ) और असत्य कहा गया है ( एवं उस अजितेन्द्रियका धन भी वैसा ही पापमय और असत्य है ); परंतु वानप्रस्थ मुनिका जो धर्मपालन है, वही सरलता है, वही समाधि है और वही श्रेष्ठ आचरण है ॥ २–४ ॥

अष्टक उवाच

**केनाद्य त्वं तु प्रहितोऽसि राजन् युवा स्रग्वी दर्शनीयः सुवर्चाः।**
**कुत आगतः कतमस्यां दिशि त्वमुताहोस्वित् पार्थिवं स्थानमस्ति ॥ ५ ॥**

**अष्टकने पूछा**—राजन् ! आपको यहाँ किसने भेजा है ? आप अवस्थामें तरुण, फूलोंकी मालासे सुशोभित, दर्शनीय तथा उत्तम तेजसे उद्भासित जान पड़ते हैं। आप कहाँसे आये हैं ? अथवा क्या आपके लिये इस पृथ्वीपर ही किसी दिशामें कोई उत्तम वासस्थान है ? ॥ ५ ॥

ययातिरुवाच

**इमं भौमं नरकं क्षीणपुण्यः प्रवेष्टुमुर्वीं गगनाद् विप्रहीणः।**
**उक्त्वाहं वः प्रपतिष्याम्यनन्तरं त्वरन्त्यमी ब्रह्मणो लोकपा ये ॥ ६ ॥**
**सतां सकाशे तु वृतः प्रपातस्ते सङ्गता गुणवन्तस्तु सर्वे।**
**शक्राच्च लब्धो हि वरो मयैष पतिष्यता भूमितलं नरेन्द्र ॥ ७ ॥**

**ययातिने कहा**—मैं अपने पुण्यका क्षय होनेसे भौमनरकमें प्रवेश करनेके लिये आकाशसे गिर रहा हूँ। ये जो ब्रह्माजीके लोकपाल हैं, वे मुझे गिरनेके लिये जल्दी मचा रहे हैं। अतः ( अब ) आपलोगोंसे पूछकर—विदा लेकर इस पृथ्वीपर गिरूँगा। नरेन्द्र ! मैं जब इस पृथ्वीतलपर गिरनेवाला था, उस समय मैंने इन्द्रसे यह वर माँगा था कि मैं साधु पुरुषोंके समीप गिरूँ। वह वर मुझे मिला, जिसके कारण आप सब सद्गुणी संतोंका सङ्ग प्राप्त हुआ ॥ ६-७ ॥

अष्टक उवाच

**पृच्छामि त्वां प्रपतन्तं प्रपातं यदि लोकाः पार्थिव सन्ति मेऽत्र।**
**यद्यन्तरिक्षे यदि वा दिवि श्रिताः क्षेत्रज्ञं त्वां तस्य धर्मस्य मन्ये ॥ ८ ॥**

**अष्टक बोले**—महाराज ! मेरा विश्वास है कि आप पारलौकिक धर्मके ज्ञाता हैं। मैं नीचे गिरनेवाले आपसे एक बात पूछता हूँ—'क्या अन्तरिक्ष या स्वर्गलोकमें मुझे प्राप्त होनेवाले कोई पुण्यलोक भी हैं ?' ॥ ८ ॥

ययातिरुवाच

**यावत् पृथिव्यां विहितं गवाश्वं सहारण्यैः पशुभिः पक्षिभिश्च।**
**तावल्लोका दिवि ते संस्थिता वै तथा विजानीहि नरेन्द्रसिंह ॥ ९ ॥**

**ययातिने कहा**—नरेन्द्रसिंह ! इस पृथ्वीपर जंगली पशुओं और पक्षियोंके साथ जितने गाय, घोड़े आदि पशु रहते हैं, स्वर्गमें तुम्हारे लिये उतने ही लोक विद्यमान हैं। तुम इसे निश्चय जानो ॥ ९ ॥

अष्टक उवाच

**तांस्ते ददामि मा प्रपत प्रपातं ये मे लोका दिवि राजेन्द्र सन्ति।**
**यद्यन्तरिक्षे यदि वा दिवि श्रितास्तानाक्रम क्षिप्रममित्रहासि ॥ १० ॥**

**अष्टक बोले**—राजेन्द्र ! स्वर्गमें मेरे लिये जो लोक विद्यमान हैं, उन्हें मैं आपको देता हूँ, परंतु आपका पतन न हो। अन्तरिक्ष या द्युलोकमें मेरे लिये जो स्थान हैं, उनमें आप शीघ्र ही चले जायँ; क्योंकि आप शत्रुओंका संहार करनेवाले हैं ॥ १० ॥

ययातिरुवाच

**नास्मद्विधो ब्राह्मणो ब्रह्मविच्च प्रतिग्रहे वर्तते राजमुख्य।**
**यथा प्रदेयं सततं द्विजेभ्यस्तथा ददे पूर्वमहं नरेन्द्र ॥ ११ ॥**

नाब्राह्मणः कृपणो जातु जीवेद् याच्ञापि स्याद् ब्राह्मणी वीरपत्नी ।
सोऽहं यद्वेवाकृतपूर्वं चरेयं विधित्समानः किमु तत्र साधुः ॥ १२ ॥

**ययातिने कहा**—नृपश्रेष्ठ ! ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण ही प्रतिग्रह लेता है, मेरे-जैसा क्षत्रिय कदापि नहीं । नरेन्द्र ! जैसे दान करना चाहिये, उस विधिसे मैंने पहले भी सदा उत्तम ब्राह्मणोंको बहुत दान दिये हैं । जो ब्राह्मण नहीं है, उसे दीन याचक बनकर कभी जीवन नहीं बिताना चाहिये । याचना तो विद्यासे दिग्विजय करनेवाले विद्वान् ब्राह्मणकी पत्नी है अर्थात् ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मणको ही याचना करनेका अधिकार है । मुझे सत्कर्म करनेकी इच्छा है, अतः ऐसा कोई अकार्य कर्म कर सकता हूँ, जो पहले कभी न किया हो ॥ ११-१२ ॥

प्रतर्दन उवाच

पृच्छामि त्वां स्पृहणीयरूप प्रतर्दनोऽहं यदि मे सन्ति लोकाः ।
यद्यन्तरिक्षे यदि वा दिवि श्रिताः क्षेत्रज्ञं त्वां तस्य धर्मस्य मन्ये ॥ १३ ॥

**प्रतर्दन बोले**—वाञ्छनीय रूपवाले श्रेष्ठ पुरुष ! मैं प्रतर्दन हूँ और आपसे पूछता हूँ, यदि अन्तरिक्ष अथवा स्वर्गमें मेरे भी लोक हों तो बताइये । मैं आपको पारलौकिक धर्मका ज्ञाता मानता हूँ ॥ १३ ॥

ययातिरुवाच

सन्ति लोका बहवस्ते नरेन्द्र अप्येकैकं सप्त सप्ताप्यहानि ।
मधुच्युतो घृतवन्तो विशोकास्ते नान्तवन्तः प्रतिपालयन्ति ॥ १४ ॥

**ययातिने कहा**—नरेन्द्र ! तुम्हारे तो बहुत लोक हैं, यदि एक-एक लोकमें सात-सात दिन रहा जाय तो भी उनका अन्त नहीं है । वे सब-के-सब अमृतके झरने बहाते हैं एवं घृत ( तेज ) से युक्त हैं । उनमें शोकका सर्वथा अभाव है । वे सभी लोक तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं ॥ १४ ॥

प्रतर्दन उवाच

तांस्ते ददामि पतमानस्य राजन् ये मे लोकास्तव ते वै भवन्तु ।
यद्यन्तरिक्षे यदि वा दिवि श्रितास्तानाक्रम क्षिप्रमपेतमोहः ॥ १५ ॥

**प्रतर्दन बोले**—महाराज ! वे सभी लोक मैं आपको देता हूँ, आप नीचे न गिरें । जो मेरे लोक हैं, वे सब आपके हो जायँ । वे अन्तरिक्षमें हों या स्वर्गमें, आप शीघ्र मोहरहित होकर उनमें चले जाइये ॥ १५ ॥

ययातिरुवाच

न तुल्यतेजाः सुकृतं हि कामये योगक्षेमं पार्थिवात् पार्थिवः सन् ।
दैवादेशादापदं प्राप्य विद्वांश्चरेन्नृशंसं हि न जातु राजा ॥ १६ ॥
धर्म्यं मार्गं चिन्तयानो यशस्यं कुर्यान्नृपो धर्ममवेक्षमाणः ।
न मद्विधो धर्मबुद्धिर्हि राजा ह्येवं कुर्यात् कृपणं मां यथात्थ ॥ १७ ॥
कुर्यामपूर्वं न कृतं यदन्यैर्विधित्समानः किमु तत्र साधुः ।
ब्रुवाणमेवं नृपतिं ययातिं नृपोत्तमो वसुमानब्रवीत्तम् ॥ १८ ॥

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशे ययातिचरिते एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥*

**ययातिने कहा**—राजन् ! मैं स्वयं एक तेजस्वी राजा होकर दूसरेसे पुण्य तथा योग-क्षेमकी इच्छा नहीं करता । विद्वान् राजा दैववश भारी आपत्तिमें पड़ जानेपर भी कोई पापमय कार्य न करे । धर्मपर दृष्टि रखनेवाले राजाको उचित है कि वह प्रयत्नपूर्वक धर्म और यशके मार्गपर ही चले । जिसकी बुद्धि धर्ममें लगी

हो, उस मेरे-जैसे मनुष्यको जान-बूझकर ऐसा दीनतापूर्ण कार्य नहीं करना चाहिये, जिसके लिये तुम मुझसे कह रहे हो। जो शुभ कर्म करनेकी इच्छा रखता है, वह ऐसा काम नहीं कर सकता, जिसे अन्य राजाओंने नहीं किया हो। (तदनन्तर) इस प्रकारकी बातें कहनेवाले राजा ययातिसे नृपश्रेष्ठ वसुमान् बोले ॥ १६-१८ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके सोमवंश-वर्णन-प्रसंगमें ययाति-चरित-वर्णन नामक एकतालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥४१॥

---

# बयालीसवाँ अध्याय

## राजा ययातिका वसुमान् और शिविके प्रतिग्रहको अस्वीकार करना तथा अष्टक आदि चारों राजाओंके साथ स्वर्गमें जाना

वसुमानुवाच

**पृच्छाम्यहं वसुमानौषदश्विर्यद्यस्ति लोको दिवि मह्यं नरेन्द्र।**
**यद्यन्तरिक्षे प्रथितो महात्मन् क्षेत्रज्ञं त्वां तस्य धर्मस्य मन्ये ॥ १ ॥**

**वसुमान्ने कहा**—नरेन्द्र! मैं उषदश्वका पुत्र हूँ और आपसे पूछ रहा हूँ। यदि स्वर्ग या अन्तरिक्षमें मेरे लिये भी कोई विख्यात लोक हों तो बताइये। महात्मन्! मैं आपको पारलौकिक धर्मका ज्ञाता मानता हूँ ॥ १ ॥

ययातिरुवाच

**यदन्तरिक्षं पृथिवी दिशश्च यत्तेजसा तपते भानुमांश्च।**
**लोकास्तावन्तो दिवि संस्थिता वै ते त्वां भवन्तं प्रतिपालयन्ति ॥ २ ॥**

**ययातिने कहा**—राजन्! पृथ्वी, आकाश और दिशाओंके जितने प्रदेशको सूर्यदेव अपनी किरणोंसे तपाते और प्रकाशित करते हैं, उतने लोक तुम्हारे लिये स्वर्गमें स्थित हैं। वे तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं ॥ २ ॥

वसुमानुवाच

**तांस्ते ददामि पत मा प्रपातं ये मे लोकास्तव ते वै भवन्तु।**
**क्रीणीष्वैनांस्तृणकेनापि राजन् प्रतिग्रहस्ते यदि सम्यक् प्रदुष्टः ॥ ३ ॥**

**वसुमान् बोले**—राजन्! वे सभी लोक मैं आपके लिये देता हूँ, वे सब आपके हो जायँ। धीमन्! यदि आपको प्रतिग्रह लेनेमें दोष दिखायी देता हो तो एक मुट्ठा तिनका मुझे मूल्यके रूपमें देकर मेरे इन सभी लोकोंको आप खरीद लें ॥ ३ ॥

ययातिरुवाच

**न मिथ्याहं विक्रियं वै स्मरामि मया कृतं शिशुभावेऽपि राजन्।**
**कुर्यां न चैवाकृतपूर्वमन्यैर्विधित्समानो वसुमन् न साधु ॥ ४ ॥**

**ययातिने कहा**—राजन्! मैंने बचपनमें भी कभी इस प्रकार झूठ-मूठकी खरीद-बिक्री की हो, इसका मुझे स्मरण नहीं है। जिसे पूर्ववर्ती अन्य महापुरुषोंने नहीं किया, वह कार्य मैं भी नहीं कर सकता हूँ; क्योंकि मैं सत्कर्म करना चाहता हूँ ॥ ४ ॥

वसुमानुवाच

**तांस्त्वं लोकान् प्रतिपद्यस्व राजन् मया दत्तान् यदि नेष्टः क्रयस्ते।**
**नाहं तान् वै प्रतिगन्ता नरेन्द्र सर्वे लोकास्तावका वै भवन्तु ॥ ५ ॥**

वसुमान् बोले—राजन्! यदि आप खरीदना नहीं चाहते तो मेरेद्वारा स्वतःअर्पण किये हुए पुण्यलोकोंको ग्रहण कीजिये। नरेन्द्र! निश्चय जानिये कि मैं उन लोकोंमें नहीं जाऊँगा। वे सब आपके ही अधिकारमें रहें ॥ ५ ॥

शिविरुवाच

पृच्छामि त्वां शिविरौशीनरोऽहं ममापि लोका यदि सन्ति तात।
यद्यन्तरिक्षे यदि वा दिवि श्रिताः क्षेत्रज्ञं त्वां तस्य धर्मस्य मन्ये ॥ ६ ॥

शिविने कहा—तात! मैं उशीनरका पुत्र शिवि आपसे पूछता हूँ। यदि अन्तरिक्ष या स्वर्गमें मेरे भी पुण्यलोक हों तो बताइये; क्योंकि मैं आपको उक्त धर्मका ज्ञाता मानता हूँ ॥ ६ ॥

ययातिरुवाच

न त्वं वाचा हृदयेनापि राजन् परीप्समानो मावमंस्था नरेन्द्र।
तेनानन्ता दिवि लोकाः स्थिता वै विद्युद्रूपाः स्वनवन्तो महान्तः ॥ ७ ॥

ययाति बोले—नरेन्द्र! जो-जो साधु पुरुष तुमसे कुछ माँगनेके लिये आये, उनका तुमने वाणीसे कौन कहे, मनसे भी अपमान नहीं किया। इस कारण स्वर्गमें तुम्हारे लिये अनन्त लोक विद्यमान हैं, जो विद्युत्के समान तेजोमय, भाँति-भाँतिके सुमधुर शब्दोंसे युक्त तथा महान् हैं ॥ ७ ॥

शिविरुवाच

तांस्त्वं लोकान् प्रतिपद्यस्व राजन् मया दत्तान् यदि नेष्टः क्रयस्ते।
न चाहं तान् प्रतिपद्येह दत्त्वा यत्र त्वं तात गन्तासि लोके ॥ ८ ॥

शिविने कहा—महाराज! यदि आप खरीदना नहीं चाहते तो मेरेद्वारा स्वयं अर्पण किये हुए पुण्यलोकोंको ग्रहण कीजिये। तात! उन सबको देकर निश्चय ही मैं उन लोकोंमें नहीं जाऊँगा, जिन लोकोंमें आप जा रहे होंगे ॥ ८ ॥

ययातिरुवाच

यथा त्वमिन्द्रप्रतिमप्रभावस्ते चाप्यनन्ता नरदेव लोकाः।
तथाद्य लोके न रमेऽन्यदत्ते तस्माच्छिबे नाभिनन्दामि वाचम् ॥ ९ ॥

ययाति बोले—नरदेव शिवि! जिस प्रकार तुम इन्द्रके समान प्रभावशाली हो, उसी प्रकार तुम्हारे वे लोक भी अनन्त हैं, तथापि दूसरेके दिये हुए लोकमें मैं विहार नहीं कर सकता; इसीलिये तुम्हारे दिये हुएका अभिनन्दन नहीं करता ॥ ९ ॥

अष्टक उवाच

न चेदेकैकशो राजँल्लोकान् नः प्रतिनन्दसि। सर्वे प्रदाय ताँल्लोकान् गन्तारो नरकं वयम् ॥ १० ॥

अष्टकने कहा—राजन्! यदि आप हममेंसे एक-एकके दिये हुए लोकोंको प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण नहीं करते तो हम सब लोग अपने पुण्यलोक आपकी सेवामें समर्पित करके नरक (भूलोक)में जानेको तैयार हैं ॥ १० ॥

ययातिरुवाच

यदर्हास्तद् वदध्वं वः सन्तः सत्यादिदर्शिनः। अहं तु नाभिगृह्णामि यत् कृतं न मया पुरा ॥ ११ ॥
अलिप्समानस्य तु मे यदुक्तं न तत्तथास्तीह नरेन्द्रसिंह।
अस्य प्रदानस्य यदेव युक्तं तस्यैव चानन्तफलं भविष्यम् ॥ १२ ॥

**ययाति बोले**—मै जिसके योग्य हूँ, उसीके लिये यत्न करो; क्योंकि साधु पुरुष सत्यका ही अभिनन्दन करते हैं । मैने पूर्वकालमें जो कर्म नहीं किया, उसे अब भी स्वीकार नहीं कर सकता । नरेन्द्रसिंह ! मुझ निर्लोभके प्रति तुमलोगोंने जो कुछ कहा है, उसका फल वैसे ही निराशापूर्ण नहीं होगा, अपितु इतने बड़े दानके लिये जो उपयुक्त होगा, वह अनन्त फल तुम-लोगोंको अवश्य प्राप्त होगा ॥ ११-१२ ॥

अष्टक उवाच

**कस्यैते प्रतिदृश्यन्ते रथाः पञ्च हिरण्मयाः । उच्चैः सन्तः प्रकाशन्ते ज्वलन्तोऽग्निशिखा इव ॥ १३ ॥**

**अष्टकने पूछा**—आकाशमें ये किसके पाँच सुवर्णमय रथ दिखायी देते हैं, जो आकाशमण्डलमें बड़ी ऊँचाईपर स्थित हैं और अग्नि-शिखाकी भाँति प्रकाशित हो रहे हैं ? ॥ १३ ॥

ययातिरुवाच

**भवतां मम चैवैते रथा भान्ति हिरण्मयाः । आरुह्यैतेषु गन्तव्यं भवद्भिश्च मया सह ॥ १४ ॥**

**ययाति बोले**—ये जो स्वर्णमय रथ चमक रहे हैं, सभी मेरे तथा तुमलोगोंके लिये आये हैं । इन्हींपर आरूढ़ होकर तुमलोग मेरे साथ इन्द्र-लोकको चलोगे ॥ १४ ॥

अष्टक उवाच

**आतिष्ठस्व रथं राजन् विक्रमस्व विहायसा । वयमप्यनुयास्यामो यदा कालो भविष्यति ॥ १५ ॥**

**अष्टक बोले**—राजन् ! आप रथमें बैठिये और आकाशमें ऊपरकी ओर बढ़िये । जब समय होगा, तब हम भी आपका अनुसरण करेंगे ॥ १५ ॥

ययातिरुवाच

**सर्वैरिदानीं गन्तव्यं सह स्वर्गो जितो यतः । एष वो विरजाः पन्था दृश्यते देवसद्मगः ॥ १६ ॥**

**ययाति बोले**—हम सब लोगोने साथ-साथ स्वर्गपर विजय पायी है, इसलिये इस समय सबको वहाँ चलना चाहिये । देवलोकका यह रजोहीन सात्त्विक मार्ग हमें स्पष्ट दिखायी दे रहा है ॥ १६ ॥

शौनक उवाच

**तेऽभिरुह्य रथं सर्वे प्रयाता नृपते नृपाः । आक्रमन्तो दिवं भान्ति धर्मेणावृत्य रोदसी ॥ १७ ॥**

**शौनकजी कहते हैं**—राजन् ! तदनन्तर वे सभी नृपश्रेष्ठ उन दिव्य रथोपर आरूढ हो धर्मके बलसे स्वर्गमें पहुँचनेके लिये चल दिये । उस समय पृथ्वी और आकाशमें उनकी प्रभा व्याप्त हो रही थी ॥ १७ ॥

अष्टक उवाच

**अहं मन्ये पूर्वमेकोऽभिगन्ता सखा चेन्द्रः सर्वथा मे महात्मा ।**
**कस्मादेवं शिबिरौशीनरोऽयमेकोऽत्ययात् सर्ववेगेन वाहान् ॥ १८ ॥**

**अष्टक बोले**—राजन् ! महात्मा इन्द्र मेरे बडे मित्र हैं, अतः मै तो समझता था कि अकेला मैं ही सबसे पहले उनके पास पहुँचूँगा; परंतु ये उशीनर-पुत्र शिबि अकेले सम्पूर्ण वेगसे हम सबके वाहनोंको लाँघकर आगे बढ़ गये हैं, ऐसा कैसे हुआ ? ॥ १८ ॥

ययातिरुवाच

**अददाद् देवयानाय यावद् वित्तमनिन्दितः । उशीनरस्य पुत्रोऽयं तस्माच्छ्रेष्ठो हि वः शिबिः ॥ १९ ॥**

दानं शौचं सत्यमथो ह्यहिंसा ह्रीः श्रीस्तितिक्षा समताऽऽनृशंस्यम्।
राजन्त्येतान्यथ सर्वाणि राज्ञि शिबौ स्थितान्यप्रतिमेषु बुद्ध्या।
एवं वृत्तं ह्रीनिषेवी बिभर्ति तस्माच्छिबिरभिगन्ता रथेन ॥ २० ॥

ययातिने कहा—राजन्! उशीनरके पुत्र शिबिने ब्रह्मलोकके मार्गकी प्राप्तिके लिये अपना सर्वस्व दान कर दिया था, इसलिये ये तुमलोगोंमें श्रेष्ठ हैं। नरेश्वर! दान, पवित्रता, सत्य, अहिंसा, ह्री, श्री, क्षमा, समता और दयालुता—ये सभी अनुपम गुण राजा शिबिमें विद्यमान हैं तथा बुद्धिमें भी उनकी समता करनेवाला कोई नहीं है। राजा शिबि ऐसे सदाचारसम्पन्न और लज्जाशील हैं। (इनमें अभिमानकी मात्रा छू भी नहीं गयी है।) इसीलिये शिबि रथारूढ़ हो हम सबसे आगे बढ़ गये हैं ॥ १९-२० ॥

शौनक उवाच

अथाष्टकः पुनरेवान्वपृच्छन्मातामहं कौतुकादिन्द्रकल्पम्।
पृच्छामि त्वां नृपते ब्रूहि सत्यं कुतश्च कश्चासि कथं त्वमागाः।
कृतं त्वया यद्धि न तस्य कर्ता लोके त्वदन्यो ब्राह्मणः क्षत्रियो वा ॥ २१ ॥

शौनकजी कहते हैं—शतानीक! तदनन्तर अष्टकने कौतूहलवश इन्द्र-तुल्य अपने नाना राजा ययातिसे पुनः प्रश्न किया—'महाराज! मैं आपसे एक बात पूछता हूँ। आप उसे सच-सच बताइये। आप कहाँसे आये हैं, कौन हैं और किसके पुत्र हैं? आपने जो कुछ किया है, उसे करनेवाला आपके सिवा दूसरा कोई क्षत्रिय अथवा ब्राह्मण इस संसारमें नहीं है' ॥ २१ ॥

ययातिरुवाच

ययातिरस्मि नहुषस्य पुत्रः पूरोः पिता सार्वभौमस्त्विहासम्।
गुह्यं मन्त्रं मामकेभ्यो ब्रवीमि मातामहो भवतां सुप्रकाशः ॥ २२ ॥
सर्वामिमां पृथिवीं निर्जिगाय ऋद्धां महीमददां ब्राह्मणेभ्यः।
मेध्यानश्वान् नैकशस्तान् सुरूपांस्तदा देवाः पुण्यभाजो भवन्ति ॥ २३ ॥
अदामहं पृथिवीं ब्राह्मणेभ्यः पूर्णामिमामखिलान्नैः प्रशस्ताम्।
गोभिः सुवर्णैश्च धनैश्च मुख्यैरश्वाः सनागाः शतशस्त्वर्बुदानि ॥ २४ ॥
सत्येन मे द्यौश्च वसुंधरा च तथैवाग्निर्ज्वलते मानुषेषु।
न मे वृथा व्याहृतमेव वाक्यं सत्यं हि सन्तः प्रतिपूजयन्ति ॥ २५ ॥
साध्वष्टक प्रब्रवीमीह सत्यं प्रतर्दनं वसुमन्तं शिबिं च।
सर्वे देवा मुनयश्च लोकाः सत्येन पूज्या इति मे मनोगतम् ॥ २६ ॥
यो नः स्वर्गजितं सर्वं यथावृत्तं निवेदयेत्। अनसूयुर्द्विजाग्र्येभ्यः स भजेन्नः सलोकताम् ॥ २७ ॥

ययातिने कहा—मैं नहुषका पुत्र और पूरुका पिता राजा ययाति हूँ। मैं इस लोकमें चक्रवर्ती नरेश था। तुम सब लोग मेरे अपने हो, अतः तुमसे गुप्त बात भी खोलकर बतलाये देता हूँ। मैं तुमलोगोंका नाना हूँ। (यद्यपि पहले भी यह बात बता चुका हूँ, तथापि पुनः स्पष्ट कर देता हूँ।) मैंने इस सारी पृथ्वीको जीत लिया था और पुनः इस समृद्धिशालिनी पृथ्वीको ब्राह्मणोंको दान भी कर दिया था। मनुष्य जब एक सौ सुन्दर पवित्र अश्वोंका दान करते हैं, तब वे पुण्यात्मा देवता होते हैं। मैंने सब तरहके अन्न, गौ, सुवर्ण तथा उत्तम धनसे परिपूर्ण यह प्रशस्त पृथ्वी ब्राह्मणोंको दान कर दी थी एवं सौ अर्बुद (दस अरब) हाथियोंसहित घोड़ोंका दान भी किया था। सत्यसे ही पृथ्वी और आकाश टिके हुए हैं। इसी प्रकार सत्यसे

*

ही मनुष्य-लोकमें अग्नि प्रज्वलित होती है। मैंने कभी व्यर्थ बात मुँहसे नहीं निकाली है; क्योंकि साधु पुरुष सदा सत्यका ही आदर करते हैं। अष्टक! मै तुमसे, प्रतर्दनसे, वसुमान्से और शिबिसे भी यहाँ जो कुछ कहता हूँ, वह सब सत्य ही है। मेरे मनका यह विश्वास है कि समस्त लोक, मुनि और देवता सत्यसे ही पूजनीय होते हैं। जो मनुष्य हृदयमें ईर्ष्या न रखकर स्वर्गपर अधिकार करनेवाले हम सबलोगोंके इस वृत्तान्तको यथार्थरूपसे श्रेष्ठ द्विजोंके सामने सुनायेगा, वह हमारे ही समान पुण्यलोकोंको प्राप्त कर लेगा ॥ २२-२७ ॥

शौनक उवाच

एवं राजन् स महात्मा ययातिः स्वदौहित्रैस्तारितो मित्रवर्यैः।
त्यक्त्वा महीं परमोदारकर्मा स्वर्गं गतः कर्मभिर्व्याप्य पृथ्वीम् ॥ २८ ॥
एवं सर्वं विस्तरतो यथावदाख्यातं ते चरितं नाहुषस्य।
वंशो यस्य प्रथितः पौरवेयो यस्मिञ्जातस्त्वं मनुजेन्द्रकल्पः ॥ २९ ॥

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशे ययातिचरिते द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥*

**शौनकजी कहते हैं**—राजन्! राजा ययाति बड़े महात्मा थे और उनके कर्म अत्यन्त उदार थे। उनके श्रेष्ठ मित्ररूपी दौहित्रोंने उनका उद्धार किया और वे सत्कर्मोंद्वारा सम्पूर्ण भूमण्डलको व्याप्त करके पृथ्वीको छोड़कर स्वर्गलोकमें चले गये। इस प्रकार मैंने तुमसे नहुष-पुत्र राजा ययातिका सारा चरित्र यथार्थरूपसे विस्तारपूर्वक कह सुनाया। यही वंश आगे चलकर पूरु-वंशके नामसे विख्यात हुआ, जिसमें तुम मनुष्योंमें इन्द्रके समान उत्पन्न हुए हो ॥ २८-२९ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके सोम-वंश-वर्णन-प्रसङ्गमें ययाति-चरित-वर्णन-विषयक बयालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ४२ ॥

## तैंतालीसवाँ अध्याय

### ययाति-वंश-वर्णन, यदुवंशका वृत्तान्त तथा कार्तवीर्य अर्जुनकी कथा

सूत उवाच

इत्येतच्छौनकाद् राजा शतानीको निशम्य तु। विस्मितः परया प्रीत्या पूर्णचन्द्र इवावभौ ॥ १ ॥
पूजयामास नृपतिर्विधिवच्चाथ शौनकम्। रत्नैर्गोभिः सुवर्णैश्च वासोभिर्विविधैस्तथा ॥ २ ॥
प्रतिगृह्य ततः सर्वं यद् राज्ञा प्रहितं धनम्। दत्त्वा च ब्राह्मणेभ्यश्च शौनकोऽन्तरधीयत ॥ ३ ॥

**सूतजी कहते हैं**—ऋषियो! राजा शतानीक महर्षि शौनकसे यह सारा वृत्तान्त सुनकर विस्मयाविष्ट हो गये तथा उत्कृष्ट प्रेमके कारण उनका चेहरा पूर्णिमाके चन्द्रमाकी भाँति खिल उठा। तदनन्तर राजाने अनेक प्रकारके रत्न, गौ, सुवर्ण और वस्त्रोंद्वारा महर्षि शौनककी विधिपूर्वक पूजा की। शौनकजीने राजाद्वारा दिये गये उस सारे धनको ग्रहण करके पुनः उसे ब्राह्मणोंको दान कर दिया और स्वयं वहीं अन्तर्हित हो गये ॥ १-३ ॥

ऋषय ऊचुः

ययातेर्वंशमिच्छामः श्रोतुं विस्तरतो वद। यदुप्रभृतिभिः पुत्रैर्यदा लोके प्रतिष्ठितम् ॥ ४ ॥

**ऋषियोंने पूछा**—सूतजी! अब हमलोग ययातिके वंशका वर्णन सुनना चाहते हैं। जब उनके यदु आदि पुत्र लोकमें प्रतिष्ठित हुए, तब फिर आगे चलकर क्या हुआ? इसे विस्तारपूर्वक बतलाइये ॥ ४ ॥

सूत उवाच

यदोर्वंशं प्रवक्ष्यामि ज्येष्ठस्योत्तमतेजसः। विस्तरेणानुपूर्व्या च गदतो मे निबोधत ॥ ५ ॥
यदोः पुत्रा बभूवुर्हि पञ्च देवसुतोपमाः। महारथा महेष्वासा नामतस्तान् निबोधत ॥ ६ ॥
सहस्रजिरथो ज्येष्ठः क्रोष्टुर्नीलोऽन्तिको लघुः। सहस्रजेस्तु दायादः शतजिर्नाम पार्थिवः ॥ ७ ॥
शतजेरपि दायादास्त्रयः परमकीर्तयः। हैहयश्च हयश्चैव तथा वेणुहयश्च यः ॥ ८ ॥
हैहयस्य तु दायादो धर्मनेत्रः प्रतिश्रुतः। धर्मनेत्रस्य कुन्तिस्तु संहतस्तस्य चात्मजः ॥ ९ ॥
संहतस्य तु दायादो महिष्मान् नाम पार्थिवः। आसीन्महिष्मतः पुत्रो रुद्रश्रेण्यः प्रतापवान् ॥ १० ॥
वाराणस्यामभूद् राजा कथितं पूर्वमेव तु। रुद्रश्रेण्यस्य पुत्रोऽभूद् दुर्दमो नाम पार्थिवः ॥ ११ ॥
दुर्दमस्य सुतो धीमान् कनको नाम वीर्यवान्। कनकस्य तु दायादाश्चत्वारो लोकविश्रुताः ॥ १२ ॥
कृतवीर्यः कृताग्निश्च कृतवर्मा तथैव च। कृतौजाश्च चतुर्थोऽभूत् कृतवीर्यात् तु सोऽर्जुनः ॥ १३ ॥
जातः करसहस्रेण सप्तद्वीपेश्वरो नृपः। वर्षायुतं तपस्तेपे दुश्चरं पृथिवीपतिः ॥ १४ ॥
दत्तमाराधयामास कार्तवीर्योऽत्रिसम्भवम्। तस्मै दत्ता वरास्तेन चत्वारः पुरुषोत्तमः ॥ १५ ॥
पूर्वं बाहुसहस्रं तु स वव्रे राजसत्तमः। अधर्मं चरमाणस्य सद्भिश्चापि निवारणम् ॥ १६ ॥
युद्धेन पृथिवीं जित्वा धर्मेणैवानुपालनम्। संग्रामे वर्तमानस्य वधश्चैवाधिकाद् भवेत् ॥ १७ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! अब मैं ययातिके ज्येष्ठ पुत्र परम तेजस्वी यदुके वंशका क्रमसे एवं विस्तारपूर्वक* वर्णन कर रहा हूँ, आपलोग मेरे कथनानुसार उसे ध्यानपूर्वक सुनिये। यदुके पाँच पुत्र हुए, जो सभी देव-पुत्र-सदृश तेजस्वी, महारथी और महान् धनुर्धर थे। उन्हे नामनिर्देशानुसार यों जानिये—उनमें ज्येष्ठका नाम सहस्रजि था, शेष चारोंका नाम क्रमशः क्रोष्टु, नील, अन्तिक और लघु था। सहस्रजिका पुत्र राजा शतजि हुआ। शतजिके हैहय, हय और वेणुहय नामक परम यशस्वी तीन पुत्र हुए। हैहयका विश्वविख्यात पुत्र धर्मनेत्र हुआ। धर्मनेत्रका पुत्र कुन्ति और उसका पुत्र संहत हुआ। संहतका पुत्र राजा महिष्मान् हुआ। महिष्मान्का पुत्र प्रतापी रुद्रश्रेण्य था, जो वाराणसी नगरीका राजा हुआ। इसका वृत्तान्त पहले ही कहा जा चुका है। रुद्रश्रेण्यका पुत्र दुर्दम नामका राजा हुआ। दुर्दमका पुत्र परम बुद्धिमान् एवं पराक्रमी कनक था। कनकके चार विश्वविख्यात पुत्र हुए, जिनके नाम हैं—कृतवीर्य, कृताग्नि, कृतवर्मा और चौथा कृतौजा। इनमें कृतवीर्यसे अर्जुनका जन्म हुआ, जो सहस्र भुजाधारी (होनेके कारण सहस्रार्जुन नामसे प्रसिद्ध था) तथा सातों द्वीपोंका अधीश्वर था। पुरुषश्रेष्ठ कृतवीर्यनन्दन राजा सहस्रार्जुनने दस हजार वर्षोंतक घोर तपस्या करते हुए महर्षि अत्रिके पुत्र दत्तात्रेयकी आराधना की। उससे प्रसन्न होकर दत्तात्रेयने उसे चार वर प्रदान किये। उनमें प्रथम वरके रूपमें राजश्रेष्ठ अर्जुनने अपने लिये एक हजार भुजाएँ माँगीं। दूसरे वरसे सत्पुरुषोंके साथ अधर्म करनेवालोंके निवारणका अधिकार माँगा। तीसरे वरसे युद्धद्वारा सारी पृथ्वीको जीतकर धर्मानुसार उसका पालन करना था और चौथा वर यह माँगा कि रणभूमिमें युद्ध करते समय मुझसे अधिक बलवान्के हाथों मेरा वध हो ॥ ५—१७ ॥

तेनेयं पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपा सपर्वता। समोदधिपरिक्षिप्ता क्षात्रेण विधिना जिता ॥ १८ ॥
जज्ञे बाहुसहस्रं वै इच्छतस्तस्य धीमतः। रथो ध्वजश्च सञ्जज्ञे इत्येवमनुशुश्रुमः ॥ १९ ॥
दशयज्ञसहस्राणि राज्ञा द्वीपेषु वै तदा। निरर्गलानि वृत्तानि श्रूयन्ते तस्य धीमतः ॥ २० ॥
सर्वे यज्ञा महाराजस्तस्यासन् भूरिदक्षिणाः। सर्वे काञ्चनयूपास्ते सर्वाः काञ्चनवेदिकाः ॥ २१ ॥

* यह वर्णन भागवत ९।२३।१९ से२४।६७ तक तथा वायु, ब्रह्माण्ड,विष्णु, मार्कण्डेय आदि पुराणोंमें भी मिलता है।

सर्वं देवैः समं प्राप्तैर्विमानस्थैरलङ्कृताः। गन्धर्वैरप्सरोभिश्च नित्यमेवोपशोभिताः॥ २२॥
तस्य यज्ञे जगौ गाथां गन्धर्वो नारदस्तथा। कार्तवीर्यस्य राजर्षेर्महिमानं निरीक्ष्य सः॥ २३॥
न नूनं कार्तवीर्यस्य गतिं यास्यन्ति पार्थिवः। यज्ञैर्दानैस्तपोभिश्च विक्रमेण श्रुतेन च॥ २४॥
स हि सप्तसु द्वीपेषु खड्गी चक्री शरासनी। रथी द्वीपान्यनुचरन् योगी पश्यति तस्करान्॥ २५॥
पञ्चाशीतिसहस्राणि वर्षाणां स नराधिपः। स सर्वरत्नसम्पूर्णश्चक्रवर्ती बभूव ह॥ २६॥
स एव पशुपालोऽभूत् क्षेत्रपालः स एव हि। स एव वृष्ट्या पर्जन्यो योगित्वादर्जुनोऽभवत्॥ २७॥
योऽसौ बाहुसहस्रेण ज्याघातकठिनत्वचा। भाति रश्मिसहस्रेण शारदेनैव भास्करः॥ २८॥

उस वरदानके प्रभावसे कार्तवीर्य अर्जुनने क्षात्र-धर्मानुसार सातों समुद्रोंसे परिवेष्टित पर्वतोंसहित सातों द्वीपोंकी समग्र पृथ्वीको जीत लिया; क्योंकि उस बुद्धिमान् अर्जुनके इच्छा करते ही एक हजार भुजाएँ निकल आयीं तथा उसी प्रकार रथ और ध्वज भी प्रकट हो गये—ऐसा हमलोगोंके सुननेमें आया है। साथ ही उस बुद्धिमान् अर्जुनके विषयमें यह भी सुना जाता है कि उसने सातों द्वीपोंमें दस सहस्र यज्ञोंका अनुष्ठान निर्विघ्नतापूर्वक सम्पन्न किया था। उस राजराजेश्वरके सभी यज्ञोंमें प्रचुर दक्षिणाएँ बाँटी गयी थीं। उनमें गड़े हुए यूप (यज्ञस्तम्भ) स्वर्णनिर्मित थे। सभी वेदिकाएँ सुवर्णकी बनी हुई थीं। वे सभी यज्ञ अपना-अपना भाग लेनेके लिये आये हुए विमानारूढ देवोंद्वारा सुशोभित थे। गन्धर्व और अप्सराएँ भी नित्य आकर उनकी शोभा बढ़ाती थीं। राजर्षि कार्तवीर्यके महत्त्वको देखकर नारदनामक गन्धर्वने उनके यज्ञमें ऐसी गाथा गायी थी—'भावी क्षत्रिय नरेश निश्चय ही यज्ञ, दान, तप, पराक्रम और शास्त्रज्ञानके द्वारा कार्तवीर्यकी समकक्षता-को नहीं प्राप्त होंगे।' योगी अर्जुन रथपर आरूढ हो हाथमें खड्ग, चक्र और धनुष धारण करके सातों द्वीपोंमें भ्रमण करता हुआ चोरों-डाकुओंपर कड़ी दृष्टि रखता था। राजा अर्जुन पचासी हजार वर्षोंतक भूतलपर शासन करके समस्त रत्नोंसे परिपूर्ण हो चक्रवर्ती सम्राट् बना रहा। राजा अर्जुन ही अपने योगबलसे पशुओंका पालक था, वही खेतोंका भी रक्षक था और वही समयानुसार मेघ बनकर वृष्टि भी करता था। प्रत्यञ्चाके आघातसे कठोर हुई त्वचाओंवाली अपनी सहस्रों भुजाओंसे वह उसी प्रकार शोभा पाता था, जिस प्रकार सहस्रों किरणोंसे युक्त शारदीय सूर्य शोभित होते हैं॥ १८—२८॥

एष नागं मनुष्येषु माहिष्मत्यां महाद्युतिः। कर्कोटकसुतं जित्वा पुर्यां तत्र न्यवेशयत्॥ २९॥
एष वेगं समुद्रस्य प्रावृट्काले भजेत वै। क्रीडन्नेव सुखोद्भिन्नः प्रतिस्रोतो महीपतिः॥ ३०॥
ललनाः क्रीडता तेन प्रतिस्रग्दाममालिनीः। ऊर्मिभ्रुकुटिसंत्रासाच्चकिताभ्येति नर्मदा॥ ३१॥
एको बाहुसहस्रेण वगाहे स महार्णवः। करोत्युद्वृत्तवेगां तु नर्मदां प्रावृडुद्धताम्॥ ३२॥
तस्य बाहुसहस्रेण क्षोभ्यमाणे महोदधौ। भवन्त्यतीव निश्चेष्टाः पातालस्था महासुराः॥ ३३॥
चूर्णीकृतमहावीचिलीनमीनमहातिमिम्। मारुताविद्धफेनौघमावर्तोक्षिप्तदुःसहम्॥ ३४॥
करोत्यालोडयन्नेव दोःसहस्रेण सागरम्। मन्दरक्षोभचकिता ह्यमृतोत्पादशङ्किताः॥ ३५॥
तदा निश्चलमूर्धानो भवन्ति च महोरगाः। सायाह्ने कदलीखण्डा निर्वातस्तिमिता इव॥ ३६॥
एवं बद्ध्वा धनुर्ज्यायामुत्सिक्तं पञ्चभिः शरैः। लङ्कायां मोहयित्वा तु सबलं रावणं बलात्॥ ३७॥
निर्जित्य बद्ध्वा चानीय माहिष्मत्यां बबन्ध च। ततो गत्वा पुलस्त्यस्तु ह्यर्जुनः सम्प्रसादयत्॥ ३८॥
मुमोच रक्षः पौलस्त्यं पुलस्त्येनेह सान्त्वितम्। तस्य बाहुसहस्रेण बभूव ज्यातलस्वनः॥ ३९॥
युगान्ताभ्रसहस्रस्य आस्फोटस्त्वशनेरिव। अहो बत विधेर्वीर्यं भार्गवोऽयं यदाच्छिनत्॥ ४०॥

तद् वै सहस्रं बाहूनां हेमतालवनं यथा। यत्रापवस्तु संक्रुद्धो ह्यर्जुनं शप्तवान् प्रभुः ॥ ४१ ॥
यस्माद् वनं प्रदग्धं वै विश्रुतं मम हैहय। तस्मात् ते दुष्करं कर्म कृतमन्यो हरिष्यति ॥ ४२ ॥
छित्त्वा बाहुसहस्रं ते प्रथमं तरसा बली। तपस्वी ब्राह्मणश्च त्वां स वधिष्यति भार्गवः ॥ ४३ ॥

मनुष्योंमें महान् तेजस्वी अर्जुनने कर्कोटक नागके पुत्रको जीतकर अपनी माहिष्मती पुरीमें बाँध रखा था। भूपाल अर्जुन वर्षा-ऋतुमें प्रवाहके सम्मुख सुखपूर्वक क्रीडा करते हुए ही समुद्रके वेगको रोक देता था। ललनाओंके साथ जलविहार करते समय उसके गलेसे टूटकर गिरी हुई मालाओंको धारण करनेवाली तथा लहररूपी भ्रूकुटियोंके व्याजसे भयभीत-सी हुई नर्मदा चकित होकर उसके निकट आ जाती थी। वह अकेला ही अपनी सहस्र भुजाओंसे अगाध समुद्रको विलोडित कर देता था एवं वर्षाकालमें वेगसे बहती हुई नर्मदाको और भी उद्धत वेगवाली बना देता था। उसकी हजारों भुजाओंद्वारा विलोडन करनेसे महासागरके क्षुब्ध हो जानेपर पातालनिवासी बड़े-बड़े असुर अत्यन्त निश्चेष्ट हो जाते थे। अपनी सहस्र भुजाओंसे महासागरका विलोडन करते समय वह समुद्रकी उठती हुई विशाल लहरोंके मध्य आयी हुई मछलियों और बड़े-बड़े तिमिङ्गिलोंके चूर्णसे उसे व्याप्त कर देता था तथा वायुके झकोरेसे उठे हुए फेनसमूहसे फेनिल और भँवरोंके चपेटसे दुःसह बना देता था। उस समय पूर्वकालमें मन्दराचलके मन्थनके विक्षोभसे चकित एवं पुनः अमृतोत्पादनकी आशङ्कासे सशङ्कित-से हुए बड़े-बडे नागोंके मस्तक इस प्रकार निश्चल हो जाते थे, जैसे सायंकाल वायुके स्थगित हो जानेपर केलेके पत्ते प्रशान्त हो जाते हैं। इसी प्रकार अर्जुनने एक बार लंकामें जाकर अपने पाँच बाणोंद्वारा सेनासहित रावणको मोहित कर दिया और उसे बलपूर्वक जीतकर अपने धनुषकी प्रत्यञ्चामें बाँध लिया, फिर माहिष्मती पुरीमें लाकर उसे बंदी बना लिया। यह सुनकर महर्षि पुलस्त्यने माहिष्मतीपुरीमें जाकर अर्जुनको अनेकों प्रकारसे समझा-बुझाकर प्रसन्न किया। तब अर्जुनने महर्षि पुलस्त्यद्वारा सान्त्वना दिये जानेपर उस पुलस्त्य-पौत्र राक्षसराज रावणको बन्धन-मुक्त कर दिया। उसकी हजारों भुजाओंद्वारा धनुषकी प्रत्यञ्चा खींचनेपर ऐसा भयंकर शब्द होता था, मानो प्रलयकालीन सहस्रों बादलोंकी घटाके मध्य वज्रकी गड़गड़ाहट हो रही हो; परंतु विधिका पराक्रम धन्य है, जो भृगुकुलोत्पन्न परशुरामजीने उसकी हजारों भुजाओंको हेमतालके वनकी भाँति काटकर छिन्न-भिन्न कर दिया। इसका कारण यह है कि एक बार सामर्थ्यशाली महर्षि आपव* ( वसिष्ठ ) ने क्रुद्ध होकर अर्जुनको शाप देते हुए कहा था—'हैहय! चूँकि तुमने मेरे लोकप्रसिद्ध वनको जलाकर भस्म कर दिया है, इसलिये तुम्हारेद्वारा किये गये इस दुष्कर कर्मका फल कोई दूसरा हरण कर लेगा। भृगुकुलमें उत्पन्न एक तपस्वी एवं बलवान् ब्राह्मण पहले तुम्हारी सहस्रों भुजाओंको काटकर फिर तुम्हारा वध कर देगा' ॥ २९—४३ ॥

सूत उवाच

तस्य रामस्तदा त्वासीन्मृत्युः शापेन धीमतः। वरश्चैवं तु राजर्षेः स्वयमेव वृतः पुरा ॥ ४४ ॥
तस्य पुत्रशतं त्वासीत् पञ्च तत्र महारथाः। कृतास्त्रा बलिनः शूरा धर्मात्मानो महाबलाः ॥ ४५ ॥
शूरसेनश्च शूरश्च धृष्टः क्रोष्टुस्तथैव च। जयध्वजश्च वैकर्ता अवन्तिश्च विशांपते ॥ ४६ ॥
जयध्वजस्य पुत्रस्तु तालजङ्घो महाबलः। तस्य पुत्रशतान्येव तालजङ्घा इति श्रुताः ॥ ४७ ॥

* आपुशब्द वरुणका वाचक है। उनके पुत्र मैत्रावारुणिके होनेसे यहाँ महर्षि वसिष्ठ ही महाभारत, हरिवंश, देवीभागवत तथा उसके व्याख्याताओंके अनुसार 'आपव' नामसे निर्दिष्ट हैं।

तेषां पञ्च कुलाः ख्याता हैहयानां महात्मनाम् । वीतिहोत्राश्च शार्याता भोजाश्चावन्तयस्तथा ॥ ४८ ॥
कुण्डिकेराश्च विक्रान्तास्तालजङ्घास्तथैव च ।
वीतिहोत्रसुतश्चापि आनर्तो नाम वीर्यवान् । दुर्जयस्तस्य पुत्रस्तु बभूवामित्रकर्शनः ॥ ४९ ॥
सद्भावेन महाप्राज्ञः प्रजा धर्मेण पालयन् । कार्तवीर्यार्जुनो नाम राजा बाहुसहस्रवान् ॥ ५० ॥
येन सागरपर्यन्ता धनुषा निर्जिता मही । यस्तस्य कीर्तयेन्नाम कल्यमुत्थाय मानवः ॥ ५१ ॥
न तस्य वित्तनाशः स्यान्नष्टं च लभते पुनः ।
कार्तवीर्यस्य यो जन्म कथयेदिह धीमतः । यथावत् स्विष्टपूतात्मा स्वर्गलोके महीयते ॥ ५२ ॥
*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशे सहस्रार्जुनचरिते त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥*

**सूतजी कहते हैं**—ऋषियो ! इस प्रकार उस शापके कारण परशुरामजी उसकी मृत्युके कारण तो अवश्य हुए, परंतु पूर्वकालमें उस राजर्षिने स्वयं ही ऐसे वरका वरण किया था । राजन् ! सहस्रार्जुनके पुत्र तो एक सौ हुए, परंतु उनमें पाँच महारथी थे । उनके अतिरिक्त शूरसेन, शूर, धृष्ट, क्रोष्टु, जयध्वज, वैकर्ता और अवन्ति—ये सातों अस्त्रविद्यामें निपुण, बलवान्, शूरवीर, धर्मात्मा और महान् पराक्रमशाली थे। जयध्वजका पुत्र महाबली तालजङ्घ हुआ । उसके एक सौ पुत्र हुए, जो तालजङ्घके नामसे विख्यात हुए । हैहयवंशी इन महात्मा नरेशोंका कुल विभक्त होकर पाँच भागोंमें विख्यात हुआ । उनके नाम हैं—वीतिहोत्र, शार्यात, भोज, आवन्ति तथा पराक्रमी कुण्डिकेर । ये ही तालजङ्घके भी नामसे प्रसिद्ध थे । वीतिहोत्रका पुत्र प्रतापी आनर्त ( गुजरातका शासक ) हुआ । उसका पुत्र दुर्जेय हुआ, जो शत्रुओंका विनाशक था । अमित बुद्धिसम्पन्न एवं सहस्रभुजाधारी कृतवीर्य-नन्दन राजा अर्जुन सद्भावना एवं धर्मपूर्वक प्रजाओंका पालन करता था । उसने अपने धनुषके बलसे सागरपर्यन्त पृथ्वीपर विजय पायी थी । जो मानव प्रातःकाल उठकर उसका नाम स्मरण करता है, उसके धनका नाश नहीं होता और यदि नष्ट हो गया है तो पुनः प्राप्त हो जाता है । जो मनुष्य कार्तवीर्य अर्जुनके जन्म-वृत्तान्तको कहता है, उसका आत्मा यथार्थरूपसे पवित्र हो जाता है और वह स्वर्गलोकमें प्रशंसित होता है ॥ ४४—५२ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके सोम-वंश-वर्णन-प्रसङ्गमें सहस्रार्जुनचरित नामक तैंतालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥४३॥

# चौवालीसवाँ अध्याय

## कार्तवीर्यका आदित्यके तेजसे सम्पन्न होकर वृक्षोंको जलाना, महर्षि आपवद्वारा कार्तवीर्यको शाप और क्रोष्टुके वंशका वर्णन

ऋषय ऊचुः

किमर्थं तद् वनं दग्धमापवस्य महात्मनः । कार्तवीर्येण विक्रम्य सूत प्रब्रूहि तत्त्वतः ॥ १ ॥
रक्षिता स तु राजर्षिः प्रजानामिति नः श्रुतम् । स कथं रक्षिता भूत्वा अदहत् तत् तपोवनम् ॥ २ ॥

**ऋषियोंने पूछा**—सूतजी ! कार्तवीर्यने बलपूर्वक महात्मा आपवके उस वनको किस कारण जलाया था ? अभी-अभी हमलोगोंने सुना है कि वे राजर्षि कार्तवीर्य प्रजाओंके रक्षक थे तो फिर रक्षक होकर उन्होंने महर्षिके तपोवनको कैसे जला दिया ? ॥ १-२ ॥

सूत उवाच

आदित्यो द्विजरूपेण कार्तवीर्यमुपस्थितः । तृप्तिमेकां प्रयच्छस्व आदित्योऽहं नरेश्वर ॥ ३ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! एक वार सूर्य* और कहने लगे—'नरेश्वर ! मैं सूर्य हूँ, आप मुझे एक ब्राह्मणका रूप धारण करके कार्तवीर्यके निकट पहुँचे वार तृप्ति प्रदान कीजिये' ॥ ३ ॥

राजोवाच

भगवन् केन तृप्तिस्ते भवत्येव दिवाकर । कीदृशं भोजनं दद्मि श्रुत्वा तु विदधाम्यहम् ॥ ४ ॥

राजाने पूछा—भगवन् ! किस पदार्थसे आपकी प्रदान करूँ ? आपकी बात सुनकर मैं उसी प्रकारका तृप्ति होगी ? दिवाकर ! मै आपको किस प्रकारका भोजन विधान करूँगा ॥ ४ ॥

आदित्य उवाच

स्थावरं देहि मे सर्वमाहारं ददतां वर । तेन तृप्तो भवेयं वै सा मे तृप्तिर्हि पार्थिव ॥ ५ ॥

सूर्य बोले—दानिशिरोमणे ! मुझे समस्त स्थावर उसीसे तृप्त होऊँगा । राजन् ! यही मेरे लिये सर्वश्रेष्ठ अर्थात् वृक्ष आदिको आहाररूपमें प्रदान कीजिये । मै तृप्ति होगी ॥ ५ ॥

कार्तवीर्य उवाच

न शक्याः स्थावराः सर्वे तेजसा च बलेन च । निर्दग्धुं तपतां श्रेष्ठ तेन त्वां प्रणमाम्यहम् ॥ ६ ॥

कार्तवीर्यने कहा—तेजस्वियोंमें श्रेष्ठ सूर्य ! ये सकते; अतः मै आपको प्रणाम करता हूँ; समस्त वृक्ष मेरे तेज और बलद्वारा जलाये नहीं जा ॥ ६ ॥

आदित्य उवाच

तुष्टस्तेऽहं शरान् दद्मि अक्षयान् सर्वतोमुखान् । ये प्रक्षिप्ता ज्वलिष्यन्ति मम तेजःसमन्विताः ॥ ७ ॥
आविष्टा मम तेजोभिः शोषयिष्यन्ति स्थावरान् । शुष्कान् भस्मीकरिष्यन्ति तेन तृप्तिर्नराधिप ॥ ८ ॥

सूर्य बोले—नरेश्वर ! मैं आपपर प्रसन्न हूँ, इसलिये जल उठेंगे और मेरे तेजसे परिपूर्ण हुए वे सारे वृक्षोंको मैं आपको ऐसे अक्षय एवं सर्वतोमुखी बाण दे रहा हूँ, सुखा देंगे; फिर सूख जानेपर उन्हें जलाकर भस्म कर जो मेरे तेजसे युक्त होनेके कारण चलाये जानेपर स्वयं देंगे । उससे मेरी तृप्ति हो जायगी ॥ ७-८ ॥

सूत उवाच

ततः शरांस्तदादित्यस्त्वर्जुनाय प्रयच्छत । ततो ददाह सम्प्राप्तान् स्थावरान् सर्वमेव च ॥ ९ ॥
ग्रामांस्तथाऽऽश्रमांश्चैव घोषाणि नगराणि च । तपोवनानि रम्याणि वनान्युपवनानि च ॥ १० ॥
एवं प्राचीमन्वदहं ततः सर्वां सदक्षिणाम् । निर्वृक्षा निस्तृणा भूमिर्हता घोरेण तेजसा ॥ ११ ॥
एतस्मिन्नेव काले तु आपवो जलमास्थितः । दशवर्षसहस्राणि तत्रास्ते स महान् ऋषिः ॥ १२ ॥
पूर्णे व्रते महातेजा उदतिष्ठंस्तपोधनः । सोऽपश्यदाश्रमं दग्धमर्जुनेन महामुनिः ॥ १३ ॥
क्रोधाच्छशाप राजर्षिं कीर्तितं वो यथा मया ।

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! तदनन्तर सूर्यने कार्तवीर्य अर्जुनको अपने बाण प्रदान कर दिये । तब अर्जुनने सम्मुख आये हुए समस्त वृक्षों, ग्रामों, आश्रमों, घोषों, नगरों, तपोवनो तथा रमणीय वनों एवं उपवनोंको जलाकर राखका ढेर बना दिया । इस प्रकार पूर्व दिशाको जलाकर फिर समूची दक्षिण दिशाको भी भस्म कर दिया । उस भयंकर तेजसे पृथ्वी वृक्षों एवं तृणोंसे रहित होकर नष्ट-भ्रष्ट हो गयी । उसी समय महर्षि आपव, जो महान् तेजस्वी और तपस्याके धनी थे, दस हजार वर्षोंसे जलके भीतर बैठकर तप कर रहे थे, व्रत पूर्ण होनेपर बाहर निकले तो उन महामुनिने अर्जुनद्वारा अपने आश्रमको जलाया हुआ देखा । तब उन्होंने क्रुद्ध होकर राजर्षि अर्जुनको उक्त शाप दे दिया, जैसा कि मैंने अभी आपलोगोंको बतलाया है ॥ ९—१३½ ॥

* यहाँ आदित्य सूर्य हैं, पर हरिवंश १ । ३३ आदिके अनुसार अग्निदेव ही ब्राह्मणवेषमें आये थे ।

क्रोष्टोः शृणुत राजर्षेर्वंशमुत्तमपौरुषम् ॥ १४ ॥
यस्यान्ववाये सम्भूतो विष्णुर्वृष्णिकुलोद्वहः । क्रोष्टोरेवाभवत् पुत्रो वृजिनीवान् महारथः ॥ १५ ॥
वृजिनीवतश्च पुत्रोऽभूत् स्वाहो नाम महाबलः । स्वाहपुत्रोऽभवद् राजन् रुषङ्गुर्वदतां वरः ॥ १६ ॥
स तु प्रसूतिमिच्छन् वै रुषङ्गुः सौम्यमात्मजम् । चित्रश्चित्ररथश्चास्य पुत्रः कर्मभिरन्वितः ॥ १७ ॥
अथ चैत्ररथिर्वीरो जज्ञे विपुलदक्षिणः । शशबिन्दुरिति ख्यातश्चक्रवर्ती बभूव ह ॥ १८ ॥
अत्रानुवंशश्लोकोऽयं गीतस्तस्मिन् पुराभवत् । शशबिन्दोस्तु पुत्राणां शतानामभवच्छतम् ॥ १९ ॥
धीमतां चाभिरूपाणां भूरिद्रविणतेजसाम् । तेषां शतप्रधानानां पृथुसाह्वा महाबलाः ॥ २० ॥
पृथुश्रवाः पृथुयशाः पृथुधर्मा पृथुञ्जयः । पृथुकीर्तिः पृथुमना राजानः शशबिन्दवः ॥ २१ ॥
शंसन्ति च पुराणज्ञाः पृथुश्रवसमुत्तमम् । अन्तरस्य सुयज्ञस्य सुयज्ञस्तनयोऽभवत् ॥ २२ ॥
उशना तु सुयज्ञस्य यो रक्षेत् पृथिवीमिमाम् । आजहाराश्वमेधानां शतमुत्तमधार्मिकः ॥ २३ ॥
तितिक्षुरभवत् पुत्र औशनः शत्रुतापनः । मरुत्तस्तस्य तनयो राजर्षीणामनुत्तमः ॥ २४ ॥
आसीन्मरुत्ततनयो वीरः कम्बलबर्हिषः । पुत्रस्तु रुक्मकवचो विद्वान् कम्बलबर्हिषः ॥ २५ ॥
निहत्य रुक्मकवचः परान् कवचधारिणः । धन्विनो विविधैर्बाणैरवाप्य पृथिवीमिमाम् ॥ २६ ॥
अश्वमेधे ददौ राजा ब्राह्मणेभ्यस्तु दक्षिणाम् । यज्ञे तु रुक्मकवचः कदाचित् परवीरहा ॥ २७ ॥

ऋषियो ! ( अब ) आपलोग राजर्षि क्रोष्टुके उस उत्तम बल-पौरुषसे सम्पन्न वंशका वर्णन सुनिये, जिस वंशमें वृष्णिवंशावतंस भगवान् विष्णु ( श्रीकृष्ण ) अवतीर्ण हुए थे । क्रोष्टुके पुत्र महारथी वृजिनीवान् हुए । वृजिनीवान्के स्वाह ( पद्मपुराणमें स्वाति ) नामक महाबली पुत्र उत्पन्न हुआ । राजन् ! वक्ताओंमें श्रेष्ठ रुषङ्गु* स्वाहके पुत्ररूपमें पैदा हुए । रुषङ्गुने संतानकी इच्छासे सौम्य स्वभाववाले पुत्रकी कामना की । तब उनके सत्कर्मोंसे समन्वित एवं चित्र-विचित्र रथसे युक्त चित्ररथ नामक पुत्र हुआ । चित्ररथके एक वीर पुत्र उत्पन्न हुआ, जो शशबिन्दु नामसे विख्यात था । वह आगे चलकर चक्रवर्ती सम्राट् हुआ । वह यज्ञोंमें प्रचुर दक्षिणा देनेवाला था । पूर्वकालमें इस शशबिन्दुके विषयमें वंशानुक्रमणिकारूप यह श्लोक गाया जाता रहा है कि शशबिन्दुके सौ पुत्र हुए । उनमें भी प्रत्येकके सौ-सौ पुत्र हुए । वे सभी प्रचुर धन-सम्पत्ति एवं तेजसे परिपूर्ण, सौन्दर्यशाली एवं बुद्धिमान् थे । उन पुत्रोंके नामके अग्रभागमें 'पृथु' शब्दसे संयुक्त छः महाबली पुत्र हुए । उनके पूरे नाम इस प्रकार हैं—पृथुश्रवा, पृथुयशा, पृथुधर्मा, पृथुंजय, पृथुकीर्ति और पृथुमना । ये शशबिन्दुके वंशमें उत्पन्न हुए राजा थे । पुराणोंके ज्ञाता विद्वान्लोग इनमें सबसे ज्येष्ठ पृथुश्रवाकी विशेष प्रशंसा करते हैं । उत्तम यज्ञोंका अनुष्ठान करनेवाले पृथुश्रवाका पुत्र सुयज्ञ हुआ । सुयज्ञका पुत्र उशना हुआ, जो सर्वश्रेष्ठ धर्मात्मा था । उसने इस पृथ्वीकी रक्षा करते हुए सौ अश्वमेध यज्ञोंका अनुष्ठान किया था । उशनाका पुत्र तितिक्षु† हुआ, जो शत्रुओंको संतप्त कर देनेवाला था । राजर्षियोंमें सर्वश्रेष्ठ मरुत्त तितिक्षुके पुत्र हुए । मरुत्तका पुत्र वीरवर कम्बलबर्हिष् था । कम्बलबर्हिष्का पुत्र विद्वान् रुक्मकवच हुआ । रुक्मकवचने अपने अनेकों प्रकारके बाणोंके प्रहारसे धनुर्धारी एवं कवचसे सुसज्जित शत्रुओंको मारकर इस पृथ्वीको प्राप्त किया था । शत्रु-वीरोंका संहार करनेवाले राजा रुक्मकवचने एक बार बड़े ( भारी ) अश्वमेध यज्ञमें ब्राह्मणोंको प्रचुर दक्षिणा प्रदान की थी ॥ १४—२७ ॥

* भागवत ९ । २३ । ३१ तथा विष्णुपुराण ४ । १२ । २ में 'रुशङ्गु' एवं पद्म० १ । १३ । ४ में 'कुशङ्ग' पाठ है ।

† अन्यत्र शिमेयु, रुचक या शितपु पाठ भी मिलता है ।

जज्ञिरे पञ्च पुत्रास्तु महावीर्या धनुर्भृतः। रुक्मेषुः पृथुरुक्मश्च ज्यामघः परिघो हरिः ॥ २८ ॥
परिघं च हरिं चैव विदेहेऽस्थापयत् पिता। रुक्मेषुरभवद् राजा पृथुरुक्मस्तदाश्रयः ॥ २९ ॥
तेभ्यः प्रव्राजितो राज्याज्ज्यामघस्तु तदाश्रमे। प्रशान्तश्चाश्रमस्थश्च ब्राह्मणेनावबोधितः ॥ ३० ॥
जगाम धनुरादाय देशमन्यं ध्वजी रथी। नर्मदां नृप एकाकी केवलं वृत्तिकामतः ॥ ३१ ॥
ऋक्षवन्तं गिरिं गत्वा भुक्तमन्यैरुपाविशत्। ज्यामघस्याभवद् भार्या शैव्या परिणता सती ॥ ३२ ॥
अपुत्रो न्यवसद् राजा भार्यामन्यां न विन्दति। तस्यासीद् विजयो युद्धे तत्र कन्यामवाप्य सः ॥ ३३ ॥
भार्यामुवाच संत्रासात् स्नुषेयं ते शुचिस्मिते। एवमुक्ताब्रवीदेनं कस्य चेयं स्नुषेति च ॥ ३४ ॥

राजोवाच

यस्ते जनिष्यते पुत्रस्तस्य भार्या भविष्यति। तस्मात् सा तपसोग्रेण कन्यायाः सम्प्रसूयत ॥ ३५ ॥
पुत्रं विदर्भं सुभगा चैत्रा परिणता सती।
राजपुत्र्यां च विद्वान् स स्नुषायां क्रथकैशिकौ। लोमपादं तृतीयं तु पुत्रं परमधार्मिकम् ॥ ३६ ॥
तस्यां विदर्भोऽजनयच्छूरान् रणविशारदान्। लोमपादान्मनुः पुत्रो ज्ञातिस्तस्य तु चात्मजः ॥ ३७ ॥
कैशिकस्य चिदिः पुत्रो तस्माच्चैद्या नृपाः स्मृताः। क्रथो विदर्भपुत्रस्तु कुन्तिस्तस्यात्मजोऽभवत् ॥ ३८ ॥
कुन्तेर्धृष्टः सुतो जज्ञे रणधृष्टः प्रतापवान्। धृष्टस्य पुत्रो धर्मात्मा निर्वृतिः परवीरहा ॥ ३९ ॥
तदेको निर्वृतेः पुत्रो नाम्ना स तु विदूरथः।
दशार्हस्तस्य वै पुत्रो व्योमस्तस्य च वै स्मृतः। दाशार्हाच्चैव व्योमात्तु पुत्रो जीमूत उच्यते ॥ ४० ॥

इन ( राजा रुक्मकवच )के रुक्मेषु, पृथुरुक्म, ज्यामघ, परिघ और हरिनामक पाँच पुत्र हुए, जो महान् पराक्रमी एवं श्रेष्ठ धनुर्धर थे। पिता रुक्मकवचने इनमेंसे परिघ और हरि—इन दोनोंको विदेह देशके राज-पदपर नियुक्त कर दिया। रुक्मेषु प्रधान राजा हुआ और पृथुरुक्म उसका आश्रित बन गया। उन लोगोंने ज्यामघको राज्यसे निकाल दिया। वहाँ एकत्र ब्राह्मणद्वारा समझाये-बुझाये जानेपर वह प्रशान्त-चित्त होकर वानप्रस्थीरूपसे आश्रमोंमें स्थिररूपसे रहने लगा। कुछ दिनोंके पश्चात् वह ( एक ब्राह्मणकी शिक्षासे ) ध्वजायुक्त रथपर सवार हो हाथमें धनुष धारणकर दूसरे देशकी ओर चल पड़ा। वह केवल जीविकोपार्जनकी कामनासे अकेले ही नर्मदा-तटपर जा पहुँचा। वहाँ दूसरोंद्वारा उपभुक्त ऋक्षवान् गिरि ( शतपुरा पर्वत-श्रेणी ) पर जाकर निश्चितरूपसे निवास करने लगा। ज्यामघकी सती-साध्वी पत्नी शैव्या* प्रौढ़ा हो गयी थी। ( उसके गर्भसे ) कोई पुत्र न उत्पन्न हुआ। इस प्रकार यद्यपि राजा ज्यामघ पुत्रहीन अवस्थामें ही जीवनयापन कर रहे थे, तथापि उन्होंने दूसरी पत्नी नहीं स्वीकार की। एक बार किसी युद्धमें राजा ज्यामघकी विजय हुई। वहाँ उन्हें ( विवाहार्थ ) एक कन्या प्राप्त हुई। ( पर ) उसे लाकर पत्नीको देते हुए राजाने उससे भयपूर्वक कहा—'शुचिस्मिते! यह ( मेरी स्त्री नहीं, ) तुम्हारी स्नुषा ( पुत्रवधू ) है।' इस प्रकार कहे जानेपर उसने राजासे पूछा—'यह किसकी स्नुषा है?' ॥ २८–३४ ॥

तब राजाने कहा—( प्रिये ) तुम्हारे गर्भसे जो पुत्र उत्पन्न होगा, उसीकी यह पत्नी होगी। ( यह आश्चर्य देख-सुनकर वह कन्या तप करने लगी। ) तत्पश्चात् उस कन्याकी उग्र तपस्याके परिणामस्वरूप वृद्धा प्रायः बूढ़ी होनेपर भी शैव्याने ( गर्भ धारण किया और ) विदर्भ नामक एक पुत्रको जन्म दिया। उस विद्वान् विदर्भने स्नुषाभूता उस राजकुमारीके गर्भसे क्रथ, कैशिक

* प्रायः अठारह पुराणों तथा उपपुराणोंमें एवं भागवतादिकी टीकाओंमें 'ज्यामघ'की पत्नी शैव्या ही कही गयी है। कुछ मत्स्यपुराणकी प्रतियोंमें 'चैत्रा' नाम भी आया है, परंतु यह अनुकृतिमें भ्रान्तिका ही परिणाम है।

तथा तीसरे परम धर्मात्मा लोमपाद नामक पुत्रोंको उत्पन्न किया। ये सभी पुत्र शूरवीर एवं युद्धकुशल थे। इनमें लोमपादसे मनु नामक पुत्र उत्पन्न हुआ तथा मनुका पुत्र ज्ञाति हुआ। कौशिकका पुत्र चिदि हुआ, उससे उत्पन्न हुए नरेश चैद्य नामसे प्रख्यात हुए। विदर्भ-पुत्र क्रथके कुन्ति नामक पुत्र पैदा हुआ। कुन्तिसे धृष्ट नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो परम प्रतापी एवं रणविशारद था। धृष्टका पुत्र निर्वृति हुआ, जो धर्मात्मा एवं शत्रु-वीरोंका संहारक था। निर्वृतिके एक ही पुत्र था, जो विदूरथ नामसे प्रसिद्ध था। विदूरथका पुत्र दशार्ह* और दशार्हका पुत्र व्योम बतलाया जाता है। दशार्हवंशी व्योमसे पैदा हुए पुत्रको जीमूत नामसे कहा जाता है ॥ ३५–४० ॥

जीमूतपुत्रो विमलस्तस्य भीमरथः सुतः। सुतो भीमरथस्यासीत् स्मृतो नवरथः किल ॥ ४१ ॥
तस्य चासीद् दृढरथः शकुनिस्तस्य चात्मजः। तस्मात् करम्भः कारम्भिर्देवरातो बभूव ह ॥ ४२ ॥
देवक्षत्रोऽभवद् राजा देवरातिर्महायशाः। देवगर्भसमो जज्ञे देवनक्षत्रनन्दनः ॥ ४३ ॥
मधुर्नाम महातेजा मधोः पुरवसस्तथा। आसीद् पुरवसः पुत्रः पुरुद्वान् पुरुषोत्तमः ॥ ४४ ॥
जन्तुर्जज्ञेऽथ वैदर्भ्यां भद्रसेन्यां पुरुद्वतः। ऐक्ष्वाकी चाभवद् भार्या जन्तोस्तस्यामजायत ॥ ४५ ॥
सात्वतः सत्त्वसंयुक्तः सात्वतां कीर्तिवर्धनः।
इमां विसृष्टिं विज्ञाय ज्यामघस्य महात्मनः। प्रजावानेति सायुज्यं राज्ञः सोमस्य धीमतः ॥ ४६ ॥
सात्वतात्सत्त्वसम्पन्नान् कौसल्या सुषुवे सुतान्। भजिनं भजमानं तु दिव्यं देवावृधं नृपम् ॥ ४७ ॥
अन्धकं च महाभोजं वृष्णिं च यदुनन्दनम्। तेषां हि सर्गाश्चत्वारो विस्तरेणैव तच्छृणु ॥ ४८ ॥
भजमानस्य सृञ्जय्यां वाह्यकायां च वाह्यकाः। सृंजयस्य सुते द्वे तु वाह्यकास्तु तदाभवन् ॥ ४९ ॥
तस्य भार्ये भगिन्यौ द्वे सुषुवाते बहून् सुतान्।
निमिं च क्रमिलं चैव वृष्णिं परपुरंजयम्। ते वाह्यकायां सृंजय्यां भजमानाद् विजज्ञिरे ॥ ५० ॥

जीमूतका पुत्र विमल और विमलका पुत्र भीमरथ हुआ। भीमरथका पुत्र नवरथ नामसे प्रसिद्ध था। नवरथका पुत्र दृढरथ और उसका पुत्र शकुनि था। शकुनिसे करम्भ और करम्भसे देवरात उत्पन्न हुआ। देवरातका पुत्र महायशस्वी राजा देवक्षत्र हुआ। देवक्षत्रका पुत्र देव-पुत्रकी-सी कान्तिसे युक्त महातेजस्वी मधु नामसे उत्पन्न हुआ। मधुका पुत्र पुरवस् तथा पुरवस्का पुत्र पुरुषश्रेष्ठ पुरुद्वान् था। पुरुद्वान्के संयोगसे विदर्भ-राजकुमारी भद्रसेनीके गर्भसे जन्तु नामक पुत्रने जन्म लिया। उस जन्तुकी पत्नी ऐक्ष्वाकी हुई, उसके गर्भसे उत्कृष्ट बल-पराक्रमसे सम्पन्न एवं सात्वतवंशियों ( या आप )की कीर्तिका विस्तारक सात्वत नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। इस प्रकार महात्मा ज्यामघकी इस संतान-परम्पराको जानकर मनुष्य पुत्रवान् हो जाता है और अन्तमें बुद्धिमान् राजा सोमका सायुज्य प्राप्त कर लेता है। राजन्! कौसल्या ( सात्वतकी पत्नी थी। उसने ) सात्वतके संयोगसे जिन बल-पराक्रमसम्पन्न पुत्रोंको जन्म दिया, उनके नाम हैं—भजि, भजमान, दिव्य राजा देवावृध, अन्धक, महाभोज और यदुकुलको आनन्द प्रदान करनेवाले वृष्णि। इनमें चार वंशका विस्तार हुआ। अब उसका विस्तारपूर्वक वर्णन श्रवण कीजिये। सृंजयकी दो कन्याएँ सृंजयी और वाह्यका भजमान-की पत्नियाँ थीं। इनसे वाह्यक नामक पुत्र उत्पन्न हुए। इनके अतिरिक्त उन दोनो बहनोंने और भी बहुत-से पुत्रोंको जन्म दिया था। उनके नाम हैं—निमि, क्रमिल और शत्रु-नगरीको जीतनेवाला वृष्णि। ये सभी भजमानके संयोगसे सृंजयी और वाह्यकाके गर्भसे उत्पन्न हुए थे। ॥ ४१–५० ॥

* इन्हींसे श्रीकृष्ण आदि दाशार्हवंशी रूपमें प्रसिद्ध हुए हैं।

जज्ञे देवावृधो राजा बन्धूनां मित्रवर्धनः ।
अपुत्रस्त्वभवद् राजा चचार परमं तपः । पुत्रः सर्वगुणोपेतो मम भूयादिति स्पृहन् ॥ ५१ ॥
संयोज्य मन्त्रमेवाथ पर्णाशाजलमस्पृशत् । तदोपस्पर्शनात् तस्य चकार प्रियमापगा ॥ ५२ ॥
कल्याणत्वान्नरपतेस्तस्मै सा निम्नगोत्तमा । चिन्तयाथ परीतात्मा जगामाथ विनिश्चयम् ॥ ५३ ॥
नाधिगच्छाम्यहं नारीं यस्यामेवंविधः सुतः । जायेत तस्मादद्याहं भवाम्यथ सहस्रशः ॥ ५४ ॥
अथ भूत्वा कुमारी सा बिभ्रती परमं वपुः । ज्ञापयामास राजानं तामियेष महाव्रतः ॥ ५५ ॥
अथ सा नवमे मासि सुषुवे सरितां वरा । पुत्रं सर्वगुणोपेतं बभ्रुं देवावृधान्नृपात् ॥ ५६ ॥
अनुवंशे पुराणज्ञा गायन्तीति परिश्रुतम् । गुणान् देवावृधस्यापि कीर्तयन्तो महात्मनः ॥ ५७ ॥
यथैव शृणुमो दूरादपश्यामस्तथान्तिकात् । बभ्रुः श्रेष्ठो मनुष्याणां देवैर्देवावृधः समः ॥ ५८ ॥
षष्टिशतं च पूर्वपुरुषाः सहस्राणि च सप्ततिः । एतेऽमृतत्वं सम्प्राप्ता बभ्रोर्देवावृधान्नृप ॥ ५९ ॥
यज्वा दानपतिर्वीरो ब्रह्मण्यश्च दृढव्रतः । रूपवान् सुमहातेजाः श्रुतवीर्यधरस्तथा ॥ ६० ॥
अथ कङ्कस्य दुहिता सुषुवे चतुरः सुतान् । कुकुरं भजमानं च शशिं कम्बलबर्हिषम् ॥ ६१ ॥
कुकुरस्य सुतो वृष्णिर्वृष्णेस्तु तनयो धृतिः । कपोतरोमा तस्याथ तैत्तिरिस्तस्य चात्मजः ॥ ६२ ॥
तस्यासीत् तनुजः सर्पो विद्वान् पुत्रो नलः किल । ख्यायते तस्य नाम्ना स नन्दनो दरदुन्दुभिः ॥ ६३ ॥

तत्पश्चात् राजा देवावृधका जन्म हुआ, जो बन्धुओंके साथ सुदृढ मैत्रीके प्रवर्धक थे । परंतु राजा (देवावृध)को कोई पुत्र न था । उन्होंने 'मुझे सम्पूर्ण सद्गुणोसे सम्पन्न पुत्र पैदा हो' ऐसी अभिलाषासे युक्त हो अत्यन्त घोर तप किया । अन्तमें उन्होंने मन्त्रको संयुक्त कर पर्णाशा* नदीके जलका स्पर्श किया । इस प्रकार स्पर्श करनेके कारण पर्णाशा नदी राजाका प्रिय करनेका विचार करने लगी । वह श्रेष्ठ नदी उस राजाके कल्याण-की चिन्तासे व्याकुल हो उठी । अन्तमें वह इस निश्चयपर पहुँची कि मै ऐसी किसी दूसरी स्त्रीको नहीं देख पा रही हूँ; जिसके गर्भसे इस प्रकारका ( राजाकी अभिलाषाके अनुसार ) पुत्र पैदा हो सके, इसलिये आज मै स्वयं ही हजारों प्रकारका रूप धारण करूँगी । तत्पश्चात् पर्णाशाने परम सुन्दर शरीर धारण करके कुमारीरूपमें प्रकट होकर राजाको सूचित किया । तब महान् व्रतशाली राजाने उसे ( पत्नीरूपसे ) स्वीकार कर लिया । तदुपरान्त नदियोंमें श्रेष्ठ पर्णाशाने राजा देवावृधके संयोगसे नवें महीनेमें सम्पूर्ण सद्गुणोंसे सम्पन्न बभ्रु नामक पुत्रको जन्म दिया । पुराणोके ज्ञाता विद्वान्लोग वंशानुकीर्तन-प्रसङ्गमें महात्मा देवावृधके गुणोंका कीर्तन करते हुए ऐसी गाथा गाते हैं—उद्गार प्रकट करते हैं—'इन (बभ्रु)के विषयमें हमलोग जैसा ( दूरसे ) सुन रहे थे, उसी प्रकार (इन्हें) निकट आकर भी देख रहे हैं । बभ्रु तो सभी मनुष्योंमें श्रेष्ठ हैं और देवावृध ( साक्षात् ) देवताओंके समान हैं । राजन् ! बभ्रु और देवावृधके प्रभावसे इनके छिहत्तर हजार पूर्वज अमरत्वको प्राप्त हो गये । राजा बभ्रु यज्ञानुष्ठानी, दानशील, शूरवीर, ब्राह्मणभक्त, सुदृढव्रती, सौन्दर्यशाली, महान् तेजस्वी तथा विख्यात बल-पराक्रमसे सम्पन्न थे । तदनन्तर ( बभ्रुके संयोगसे ) कङ्ककी कन्याने कुकुर, भजमान, शशि और कम्बलबर्हिष नामक चार पुत्रोंको जन्म दिया । कुकुरका पुत्र वृष्णि,† वृष्णिका पुत्र धृति, उसका पुत्र कपोतरोमा, उसका पुत्र तैत्तिरि, उसका पुत्र सर्प, उसका पुत्र विद्वान् नल‡ था । नलका पुत्र दरदुन्दुभि§ नामसे कहा जाता था ॥ ५१—६३ ॥

* भारतमे पर्णाशा नामकी दो नदियाँ हैं । ये दोनों राजस्थानकी पूर्वी सीमापर स्थित हैं और पारियात्र पर्वतसे निकली हैं । ( द्रष्टव्य मत्स्य० ११ । ५० तथा वायुपुराण ३८ । १७६ ) † ऊपर ४८वें श्लोकमें 'वृष्णि'का उल्लेख हो चुका है, अतः अधिकांश अन्य पुराणसम्मत यहाँ 'धृष्णु' पाठ मानना चाहिये, या इन्हे द्वितीय वृष्णि मानना चाहिये । ‡ पुराणोंमें दो नल तो प्रसिद्ध ही है, पर (मत्स्य० ११४ । २४ पर ) ये तीसरे नल हैं । § पद्म० १।१३ । ४०में चन्दनोदकदुंदुभि नाम है ।

तस्मिन् प्रवितते यज्ञे अभिजातः पुनर्वसुः । अश्वमेधं च पुत्रार्थमाजहार नरोत्तमः ॥ ६४ ॥
तस्य मध्येऽतिरात्रस्य सभामध्यात् समुत्थितः । अतस्तु विद्वान् कर्मज्ञो यज्वा दाता पुनर्वसुः ॥ ६५ ॥
तस्यासीत् पुत्रमिथुनं बभूवाविजितं किल । आहुकश्चाहुकी चैव ख्यातं मतिमतां वर ॥ ६६ ॥
इमांश्चोदाहरन्त्यत्र श्लोकान् प्रति तमाहुकम् । सोपासङ्गानुकर्षाणां सध्वजानां वरूथिनाम् ॥ ६७ ॥
रथानां मेघघोषाणां सहस्राणि दशैव तु । नासत्यवादी नातेजा नायज्वा नासहस्रदः ॥ ६८ ॥
नाशुचिर्नाप्यविद्वान् हि यो भोजेष्वभ्यजायत । आहुकस्य भृतिं प्राप्ता इत्येतद् वै तदुच्यते ॥ ६९ ॥
आहुकश्चाप्यवन्तीषु स्वसारं चाहुकीं ददौ । आहुकात् काश्यदुहिता द्वौ पुत्रौ समसूयत ॥ ७० ॥
देवकश्चोग्रसेनश्च देवगर्भसमावुभौ । देवकस्य सुता वीरा जज्ञिरे त्रिदशोपमाः ॥ ७१ ॥
देववानुपदेवश्च सुदेवो देवरक्षितः । तेषां स्वसारः सप्तासन् वसुदेवाय ता ददौ ॥ ७२ ॥
देवकी श्रुतदेवी च मित्रदेवी यशोधरा । श्रीदेवी सत्यदेवी च सुतापी चेति सप्तमी ॥ ७३ ॥

नरश्रेष्ठ दरदुन्दुभि पुत्रप्राप्तिके लिये अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठान कर रहे थे । उस विशाल यज्ञमें पुनर्वसु नामक पुत्र प्रादुर्भूत हुआ । पुनर्वसु अतिरात्रके मध्यमें सभाके बीच प्रकट हुआ था, इसलिये वह विद्वान्, शुभाशुभ कर्मोंका ज्ञाता, यज्ञपरायण और दानी था । बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ राजन् ! पुनर्वसुके आहुक नामका पुत्र और आहुकी नामकी कन्या—ये जुड़वीं संतान पैदा हुई । इनमें आहुक अजेय और लोकप्रसिद्ध था । उन आहुकके प्रति विद्वान् लोग इन श्लोकोंको गाया करते हैं—'राजा आहुकके पास दस हजार ऐसे रथ रहते थे, जिनमें सुदृढ़ उपासङ्ग (कूबर) एवं अनुकर्ष ( धूरे ) लगे रहते थे, जिनपर ध्वजाएँ फहराती रहती थीं, जो कवचसे सुसज्जित रहते थे तथा जिनसे मेघकी घरघराहटके सदृश शब्द निकलते थे । उस भोजवंशमें ऐसा कोई राजा नहीं पैदा हुआ, जो असत्यवादी, निस्तेज, यज्ञविमुख, सहस्रोंकी दक्षिणा देनेमें असमर्थ, अपवित्र और मूर्ख हो ।' राजा आहुकसे भरण-पोषणकी वृत्ति पानेवाले लोग ऐसा कहा करते थे । आहुकने अपनी बहन आहुकीको अवन्ती-नरेशको प्रदान किया था । आहुकके संयोगसे काश्यकी कन्याने देवक और उग्रसेन नामक दो पुत्रोंको जन्म दिया । वे दोनो देव-पुत्रोके सदृश कान्तिमान् थे । देवकके देवताओंके समान कान्तिमान् एवं पराक्रमी चार शूरवीर पुत्र उत्पन्न हुए । उनके नाम हैं—देववान्, उपदेव, सुदेव और देवरक्षित । इनके सात बहने भी थीं, जिन्हे देवकने वसुदेवको समर्पित किया था । उनके नाम हैं—देवकी, श्रुतदेवी, मित्रदेवी, यशोधरा, श्रीदेवी, सत्यदेवी और सातवी सुतापी ॥ ६४—७३ ॥

नवोग्रसेनस्य सुताः कंसस्तेषां तु पूर्वजः । न्यग्रोधश्च सुनामा च कङ्कः शङ्कुश्च भूयशः ॥ ७४ ॥
अजभू राष्ट्रपालश्च युद्धमुष्टिः सुमुष्टिदः । तेषां स्वसारः पञ्चासन् कंसा कंसवती तथा ॥ ७५ ॥
सुतन्तू राष्ट्रपाली च कङ्का चेति वराङ्गना । उग्रसेनः सहापत्यो व्याख्यातः कुकुरोद्भव ॥ ७६ ॥
भजमानस्य पुत्रोऽथ रथिमुख्यो विदूरथः । राजाधिदेवः शूरश्च विदूरथसुतोऽभवत् ॥ ७७ ॥
राजाधिदेवस्य सुतौ जज्ञाते देवसम्मितौ । नियमव्रतप्रधानौ शोणाश्वः श्वेतवाहनः ॥ ७८ ॥
शोणाश्वस्य सुताः पञ्च शूरा रणविशारदाः । शमी च देवशर्मा च निकुन्तः शक्रशत्रुजित् ॥ ७९ ॥
शमिपुत्रः प्रतिक्षत्रः प्रतिक्षत्रस्य चात्मजः । प्रतिक्षेत्रः सुतो भोजो हृदीकस्तस्य चात्मजः ॥ ८० ॥
हृदीकस्याभवन् पुत्रा दश भीमपराक्रमाः । कृतवर्माग्रजस्तेषां शतधन्वा च मध्यमः ॥ ८१ ॥
देवार्हश्चैव नाभश्च धिषणश्च महाबलः । अजातो वनजातश्च कनीयककरम्भकौ ॥ ८२ ॥
देवार्हस्य सुतो विद्वाञ्जज्ञे कम्बलबर्हिषः । असोमजाः सुतस्तस्य तमोजास्तस्य चात्मजः ॥ ८३ ॥

अजातपुत्रा विक्रान्तास्त्रयः परमकीर्तयः। सुदंष्ट्रश्च सुनाभश्च कृष्ण इत्यन्धका मताः ॥ ८४ ॥
अन्धकानामिमं वंशं यः कीर्तयति नित्यशः। आत्मनो विपुलं वंशं प्रजावानाप्नुते नरः ॥ ८५ ॥

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशे चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥*

उग्रसेनके नौ पुत्र थे, उनमें कंस ज्येष्ठ था। उनके नाम हैं—न्यग्रोध, सुनामा, कङ्क, शङ्कु, अजभू, राष्ट्रपाल, युद्धमुष्टि और सुमुष्टिद। उनके कंसा, कंसवती, सतन्तू, राष्ट्रपाली और कङ्का नामकी पाँच बहनें थीं, जो परम सुन्दरी थीं। अपनी संतानों-सहित उग्रसेन कुकुर-वंशमें उत्पन्न हुए कहे जाते हैं। भजमानका पुत्र महारथी विदूरथ और शूरवीर राजाधिदेव विदूरथका पुत्र हुआ। राजाधिदेवके शोणाश्व और श्वेतवाहन नामक दो पुत्र हुए, जो देवोके सदृश कान्तिमान् और नियम एवं व्रतके पालनमें तत्पर रहनेवाले थे। शोणाश्वके शमी, देवशर्मा, निकुन्त, शक्र और शत्रुजित् नामक पाँच शूरवीर एवं युद्धनिपुण पुत्र हुए। शमीका पुत्र प्रतिक्षत्र, प्रतिक्षत्रका पुत्र प्रतिक्षेत्र, उसका पुत्र भोज और उसका पुत्र हृदीक हुआ। हृदीकके दस अनुपम पराक्रमी पुत्र उत्पन्न हुए, उनमें कृतवर्मा ज्येष्ठ और शतधन्वा मँझला था। शेषके नाम ( इस प्रकार ) हैं—देवार्ह, नाभ, धिषण, महावल, अजात, वनजात, कनीयक और करम्भक। देवार्हके कम्बलबर्हिष् नामक विद्वान् पुत्र हुआ। उसका पुत्र असोमजा और असोमजाका पुत्र तमोजा हुआ। इसके बाद सुदंष्ट्र, सुनाभ और कृष्ण नामके तीन राजा और हुए, जो परम पराक्रमी और उत्तम कीर्तिवाले थे। इनके कोई संतान नहीं हुई। ये सभी अन्धकवंशी माने गये हैं। जो मनुष्य अन्धकोंके इस वंशका नित्य कीर्तन करता है, वह स्वयं पुत्रवान् होकर अपने वंशकी वृद्धि करता है ॥ ७४—८५ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके सोमवंश-वर्णनमें चौवालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ४४ ॥

# पैंतालीसवाँ अध्याय

## वृष्णिवंशके वर्णन-प्रसङ्गमें स्यमन्तक मणिकी कथा

सूत उवाच

गान्धारी चैव माद्री च वृष्णिभार्ये बभूवतुः। गान्धारी जनयामास सुमित्रं मित्रनन्दनम् ॥ १ ॥
माद्री युधाजितं पुत्रं ततो वै देवमीढुषम्। अनमित्रं शिविं चैव पञ्चमं कृतलक्षणम् ॥ २ ॥
अनमित्रसुतो निघ्नो निघ्नस्यापि तु द्वौ सुतौ। प्रसेनश्च महावीर्यः शक्तिसेनश्च तावुभौ ॥ ३ ॥
स्यमन्तकः प्रसेनस्य मणिरत्नमनुत्तमम्। पृथिव्यां सर्वरत्नानां राजा वै सोऽभवन्मणिः ॥ ४ ॥
हृदि कृत्वा तु बहुशो मणिं तमभियाचितः। गोविन्दोऽपि न तं लेभे शक्तोऽपि न जहार सः ॥ ५ ॥
कदाचिन्मृगयां यातः प्रसेनस्तेन भूषितः। यथाशब्दं स शुश्राव बिले सत्त्वेन पूरिते ॥ ६ ॥
ततः प्रविश्य स बिलं प्रसेनो ह्यृक्षमैक्षत। ऋक्षः प्रसेनं च तथा ऋक्षं चैव प्रसेनजित् ॥ ७ ॥
हत्वा ऋक्षः प्रसेनं तु ततस्तं मणिमाददात्। अदृष्टस्तु हतस्तेन अन्तर्बिलगतस्तदा ॥ ८ ॥
प्रसेनं तु हतं ज्ञात्वा गोविन्दः परिशङ्कितः। गोविन्देन हतो व्यक्तं प्रसेनो मणिकारणात् ॥ ९ ॥
प्रसेनस्तु गतोऽरण्यं मणिरत्नेन भूषितः।
तं दृष्ट्वा स हतस्तेन गोविन्दः प्रत्युवाच ह। हन्मि चैनं दुराचारं शत्रुभूतं हि वृष्णिषु ॥ १० ॥
अथ दीर्घेण कालेन मृगयां निर्गतः पुनः। यदृच्छया च गोविन्दो बिलस्याभ्याशमागमत् ॥ ११ ॥
तं दृष्ट्वा तु महाशब्दं स चक्रे ऋक्षराड् बली।

शब्दं श्रुत्वा तु गोविन्दः खड्गपाणिः प्रविश्य सः । अपश्यज्जाम्बवन्तं तमृक्षराजं महाबलम् ॥ १२ ॥
ततस्तूर्णं हृषीकेशस्तमृक्षपतिमञ्जसा । जाम्बवन्तं स जग्राह क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ १३ ॥
तुष्टावैनं तदा ऋक्षः कर्मभिर्वैष्णवैः प्रभुम् । ततस्तुष्टस्तु भगवान् वरेणैनमरोचयत् ॥ १४ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! (अब आपलोग सात्वतके कनिष्ठ पुत्र वृष्णिका वंश-वर्णन सुनिये।) गान्धारी और माद्री—ये दोनों वृष्णिकी पत्नियाँ हुईं। उनमें गान्धारीने सुमित्र और मित्रनन्दन नामक दो पुत्रोंको तथा माद्रीने युधाजित, तत्पश्चात् देवमीढुष, अनमित्र, शिबि और पाँचवें कृतलक्षण नामक पुत्रोंको जन्म दिया। अनमित्रका पुत्र निघ्न हुआ और निघ्नके महान् पराक्रमी प्रसेन और शक्तिसेन नामक दो पुत्र हुए। इसी प्रसेनके पास स्यमन्तक नामक सर्वश्रेष्ठ मणिरत्न था। वह मणिरत्न भूतलपर समस्त रत्नोंका राजा था। भगवान् श्रीकृष्णने भी अनेकों बार मनमें उसे प्राप्त करनेकी इच्छा करके प्रसेनसे याचना की, परंतु वे उसे प्राप्त न कर सके। साथ ही समर्थ होनेपर भी उन्होंने उसका अपहरण भी नहीं किया। एक बार प्रसेन उस मणिसे विभूषित हो शिकार खेलनेके लिये वनमें गया। वहाँ उसने एक बिल (गुफा)में, जिसका स्वामी जीव उसमें विद्यमान था, होनेवाले कोलाहलको सुना। कुतूहलवश प्रसेनने उसमें प्रवेश करके एक रीछको देखा। फिर तो रीछकी दृष्टि प्रसेनपर और प्रसेनकी दृष्टि रीछपर पड़ी। (तत्पश्चात् दोनोंमें युद्ध छिड़ गया।) रीछने प्रसेनको मारकर वह मणि ले ली।* बिलके भीतर प्रविष्ट हुआ प्रसेन रीछद्वारा मार डाला गया, इसलिये उसे कोई देख न सका। इधर प्रसेनको मारा गया जानकर भगवान् श्रीकृष्णको आशङ्का हो गयी कि लोग स्पष्टरूपसे कहते होंगे कि मणि लेनेके लिये श्रीकृष्णने ही प्रसेनका वध किया है। ऐसी किंवदन्तीके फैलनेपर भगवान् गोविन्दने उत्तर दिया कि 'उस मणिरत्नको धारण करके प्रसेन वनमें गया था, उसे देखकर (मणिको हथियानेके लिये) किसीके द्वारा (सम्भवतः) वह मार डाला गया है। अतः वृष्णिवंशके शत्रुरूप उस दुराचारीका मैं वध करूँगा।' तदनन्तर दीर्घकालके पश्चात् आखेटके लिये निकले हुए भगवान् श्रीकृष्ण इच्छानुसार भ्रमण करते हुए उसी बिल (गुफा)के निकट जा पहुँचे। उन्हें देखकर महाबली रीछराजने उच्चस्वरसे गर्जना की। उस शब्दको सुनकर भगवान् गोविन्द हाथमें तलवार लिये हुए उस बिलमें घुस गये। वहाँ उन्होंने उन महाबली रीछराज जाम्बवान्‌को देखा। तब जिनके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये थे, उन हृषीकेश श्रीकृष्णने शीघ्र ही रीछराज जाम्बवान्‌को वेगपूर्वक अपने वशमें कर लिया। उस समय रीछराजने विष्णुसम्बन्धी स्तोत्रोंद्वारा उन प्रभुका स्तवन किया। उससे संतुष्ट होकर भगवान् श्रीकृष्णने जाम्बवान्‌को भी वरप्रदानद्वारा प्रसन्न कर दिया॥ १—१४॥

जाम्बवानुवाच

इच्छे चक्रप्रहारेण त्वत्तोऽहं मरणं प्रभो।
कन्या चेयं मम शुभा भर्तारं त्वामवाप्नुयात्। योऽयं मणिः प्रसेनं तु हत्वा प्राप्तो मया प्रभो ॥ १५ ॥
ततः स जाम्बवन्तं तं हत्वा चक्रेण वै प्रभुः। कृतकर्मा महाबाहुः सकन्यं मणिमाहरत् ॥ १६ ॥
ददौ सत्राजितायैतं सर्वसात्वतसंसदि। तेन मिथ्यापवादेन संतप्तोऽयं जनार्दनः ॥ १७ ॥
ततस्ते यादवाः सर्वे वासुदेवमथाब्रुवन्। अस्माकं तु मतिर्ह्यासीत् प्रसेनस्तु त्वया हतः ॥ १८ ॥
कैकेयस्य सुता भार्या दश सत्राजितः शुभाः।
तास्वुत्पन्नाः सुतास्तस्य शतमेकं तु विश्रुताः। ख्यातिमन्तो महावीर्या भङ्गकारस्तु पूर्वजः ॥ १९ ॥

* अन्य भागवत, विष्णु आदि पुराणोंके अनुसार सिंहने प्रसेनको और जाम्बवान्‌ने सिंहको मारा है। परिष्कारदृष्ट्या मत्स्यपुराणकी भागवतादिसे पूर्व स्थिति सिद्ध होती है।

अथ व्रतवती तस्माद् भङ्गकारात् तु पूर्वजात्। सुषुवे सुकुमारीस्तु तिस्रः कमललोचनाः ॥ २० ॥
सत्यभामा वरा स्त्रीणां व्रतिनी च दृढव्रता। तथा पद्मावती चैव ताश्च कृष्णाय सोऽददात् ॥ २१ ॥
अनमित्राच्छिनिर्जज्ञे कनिष्ठाद् वृष्णिनन्दनात्। सत्यकस्तस्य पुत्रस्तु सात्यकिस्तस्य चात्मजः ॥ २२ ॥
सत्यवान् युयुधानस्तु शिनेर्नप्ता प्रतापवान्। असङ्गो युयुधानस्य द्युम्निस्तस्यात्मजोऽभवत् ॥ २३ ॥
द्युम्नेर्युगंधरः पुत्र इति शैन्याः प्रकीर्तिताः।

जाम्बवान्ने कहा—प्रभो ! मेरी अभिलाषा है कि मैं आपके चक्र-प्रहारसे मृत्युको प्राप्त होऊँ। यह मेरी सौन्दर्यशालिनी कन्या आपको पतिरूपमें प्राप्त करे। प्रभो ! यह मणि, जिसे मैंने प्रसेनको मारकर प्राप्त किया है, आपके ही पास रहे। तत्पश्चात् सामर्थ्यशाली एवं महाबाहु श्रीकृष्णने अपने चक्रसे उन जाम्बवान्‌का वध करके कृतकृत्य हो कन्यासहित मणिको ग्रहण कर लिया।* घर लौटकर भगवान् जनार्दनने समस्त सात्वतोंकी भरी सभामें वह मणि सत्राजित्‌को समर्पित कर दी; क्योंकि वे उस मिथ्यापवादसे अत्यन्त दुःखी थे। उस समय सभी यदुवंशियोंने वसुदेव-नन्दन श्रीकृष्णसे यों कहा—'श्रीकृष्ण ! हमलोगोका तो यह दृढ़ निश्चय था कि प्रसेन तुम्हारे ही हाथो मारा गया है। केकयराजकी दस सौन्दर्यशालिनी कन्याएँ सत्राजित्‌की पत्नियाँ थीं। उनके गर्भसे सत्राजित्‌के एक सौ पुत्र उत्पन्न हुए थे, जो विश्वविख्यात, प्रशंसित एवं महान् पराक्रमी थे। उनमें भंगकार ज्येष्ठ था। उस ज्येष्ठ भंगकारके संयोगसे व्रतवतीने तीन कमलनयनी सुकुमारी कन्याओंको जन्म दिया। उनके नाम हैं—स्त्रियोंमें सर्वश्रेष्ठ सत्यभामा, दृढव्रतपरायणा व्रतिनी तथा पद्मावती। भंगकारने इन तीनोंको पत्नीरूपमें श्रीकृष्णको प्रदान किया था। कनिष्ठ वृष्णिनन्दन अनमित्रसे शिनिका जन्म हुआ। उसका पुत्र सत्यक और सत्यकका पुत्र सात्यकि हुआ। सत्यवान् और प्रतापी युयुधान—ये दोनो शिनिके नाती थे। युयुधानका पुत्र असंग और उसका पुत्र द्युम्नि हुआ। द्युम्निका पुत्र युगंधर हुआ। इस प्रकार यह शिनि-वंशका वर्णन किया गया ॥ १५—२३½ ॥

अनमित्रान्वयो ह्येष व्याख्यातो वृष्णिवंशजः ॥ २४ ॥
अनमित्रस्य संजज्ञे पृथ्व्यां वीरो युधाजितः। अन्यौ तु तनयौ वीरौ वृषभः क्षत्र एव च ॥ २५ ॥
वृषभः काशिराजस्य सुतां भार्यामविन्दत। जयन्तस्तु जयन्त्यां तु पुत्रः समभवच्छुभः ॥ २६ ॥
सदायज्ञोऽतिवीरश्च श्रुतवानतिथिप्रियः। अक्रूरः सुषुवे तस्मात् सदायज्ञोऽतिदक्षिणः ॥ २७ ॥
रत्ना कन्या च शैव्यस्य अक्रूरस्तामवाप्तवान्। पुत्रानुत्पादयामास त्वेकादश महाबलान् ॥ २८ ॥
उपलम्भः सदालम्भो वृकलो वीर्य एव च। सवीतरः सदापक्षः शत्रुघ्नो वारिमेजयः ॥ २९ ॥
धर्मभृद् धर्मवर्माणो धृष्टमानस्तथैव च। सर्वे च प्रतिहोतारो रत्नायां जज्ञिरे च ते ॥ ३० ॥
अक्रूरादुग्रसेनायां सुतौ द्वौ कुलवर्धनौ। देववानुपदेवश्च जज्ञाते देवसंनिभौ ॥ ३१ ॥
अश्विन्यां च ततः पुत्राः पृथुर्विपृथुरेव च। अश्वत्थामा सुबाहुश्च सुपार्श्वकगवेषणौ ॥ ३२ ॥
वृष्टिनेमिः सुधर्मा च तथा शर्यातिरेव च। अभूमिर्वर्जभूमिश्च श्रमिष्ठः श्रवणस्तथा ॥ ३३ ॥
इमां मिथ्याभिशस्तिं यो वेद कृष्णादपोहिताम्। न स मिथ्याभिशापेन अभिशाप्योऽथ केनचित् ॥ ३४ ॥

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशो नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥*

अब मैं वृष्णि-वंशमें उत्पन्न अनमित्रके वंशका वर्णन कर रहा हूँ। अनमित्रकी दूसरी पत्नी पृथ्वीके गर्भसे वीरवर युधाजित् पैदा हुए। उनके वृषभ और क्षत्र नामवाले दो अन्य शूरवीर पुत्र थे। वृषभने काशिराजकी जयन्ती

* यह कथा प्रायः कल्किपुराणसे मिलती है। शेष अन्य भागवत, विष्णु आदि पुराणोंमें जाम्बवान् कन्या-दान करनेके बाद भी जीवित ही रहते हैं। कल्किपुराणके अन्तमें जाम्बवान् तथा शशबिन्दुकी ऐसी स्थिति हुई है।

नामकी कन्याको पत्नीरूपमें प्राप्त ( ग्रहण ) किया। उन्हें उस जयन्तीके गर्भसे जयन्त नामक अत्यन्त सुन्दर पुत्र प्राप्त हुआ, जो सदा यज्ञानुष्ठानमें निरत रहनेवाला, महान् शूरवीर, शास्त्रज्ञ तथा अतिथियोंका प्रेमी था। उससे अक्रूर नामक पुत्रकी उत्पत्ति हुई। वह भी आगे चलकर सदा यज्ञानुष्ठान-शील और विपुल दक्षिणा देनेवाला हुआ। शिवि-नरेशकी एक रत्ना नामकी कन्या थी, जिसे अक्रूरने पत्नीरूपमें प्राप्त किया और उसके गर्भसे ग्यारह महाबली पुत्रोंको उत्पन्न किया। उनके नाम इस प्रकार हैं—उपलम्भ, सदा-लम्भ, वृकल, वीर्य, सविता, सदापक्ष, शत्रुघ्न, वारिमेजय, धर्मभृद्, धर्मवर्मा और धृष्टमान। रत्नाके गर्भसे उत्पन्न हुए ये सभी पुत्र यज्ञादि शुभ कर्म करनेवाले थे। अक्रूरके संयोगसे उग्रसेनाके गर्भसे देववान् और उपदेव नामक दो पुत्र और उत्पन्न हुए थे, जो देवताके सदृश शोभाशाली और वंश-विस्तारक थे। उन्हींकी दूसरी पत्नी अश्विनीके गर्भसे पृथु, विपृथु, अश्वत्थामा, सुबाहु, सुपार्श्वक, गवेषण, वृष्टिनेमि, सुधर्मा, शर्याति, अभूमि, वर्जभूमि, श्रमिष्ठ तथा श्रवण—ये तेरह पुत्र भी पैदा हुए थे। जो मनुष्य श्रीकृष्णके शरीरसे हटाये गये इस मिथ्यापवादको जानता है, वह किसीके भी द्वारा मिथ्याभिशापसे अभिशप्त नहीं किया जा सकता॥ २५—२४॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके सोमवंश-वर्णनमें पैंतालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ४५॥

# छियालीसवाँ अध्याय

## वृष्णि-वंशका वर्णन

सूत उवाच

ऐक्ष्वाकी सुषुवे शूरं ख्यातमद्भुतमीढुषम्। पौरुषाज्जज्ञिरे शूराद् भोजायां पुत्रका दश॥ १॥
वसुदेवो महाबाहुः पूर्वमानकदुन्दुभिः। देवभागस्ततो जज्ञे ततो देवश्रवाः पुनः॥ २॥
अनाधृष्टिः शिनिश्चैव नन्दश्चैव सृञ्जयः। श्यामः शमीकः संयूपः पञ्च चास्य वराङ्गनाः॥ ३॥
श्रुतकीर्तिः पृथा चैव श्रुतदेवी श्रुतश्रवाः। राजाधिदेवी च तथा पञ्चैता वीरमातरः॥ ४॥
कृतस्य तु श्रुतदेवी सुग्रीवं सुषुवे सुतम्। कैकेय्यां श्रुतकीर्त्यां तु जज्ञे सोऽनुव्रतो नृपः॥ ५॥
श्रुतश्रवसि चैद्यस्य सुनीथः समपद्यत। बहुशो धर्मचारी स सम्बभूवारिमर्दनः॥ ६॥
अथ सख्येन वृद्धेऽसौ कुन्तिभोजे सुतां ददौ। एवं कुन्ती समाख्याता वसुदेवस्वसा पृथा॥ ७॥
वसुदेवेन सा दत्ता पाण्डोर्भार्या ह्यनिन्दिता। पाण्डोरर्थेन सा जज्ञे देवपुत्रान् महारथान्॥ ८॥
धर्माद् युधिष्ठिरो जज्ञे वायोर्जज्ञे वृकोदरः। इन्द्राद् धनंजयश्चैव शक्रतुल्यपराक्रमः॥ ९॥
माद्रवत्यां तु जनितावश्विभ्यामिति शुश्रुमः। नकुलः सहदेवश्च रूपशीलगुणान्वितौ॥ १०॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! ऐक्ष्वाकी ( माद्री )ने शूर ( शूरसेन ) नामक एक अद्भुत पुत्रको जन्म दिया, जो आगे चलकर ईढुष ( देवमीढुष ) नामसे विख्यात हुआ। पुरुषार्थी शूरके सम्पर्कसे भोजाके गर्भसे दस पुत्रों और पाँच सुन्दरी कन्याओंकी उत्पत्ति हुई। पुत्रोंमें सर्व-प्रथम महाबाहु वसुदेव उत्पन्न हुए, जिनकी आनकदुन्दुभि नामसे भी प्रसिद्धि हुई। उसके बाद देवभाग ( देवमार्ग )का जन्म हुआ। तत्पश्चात् पुनः देवश्रवा, अनाधृष्टि, शिनि, नन्द, सृञ्जय, श्याम, शमीक और संयूप पैदा हुए। कन्याओंके नाम हैं—श्रुतकीर्ति, पृथा, श्रुतादेवी, श्रुतश्रवा और राजाधिदेवी। ये पाँचों शूरवीर पुत्रोंकी माताएँ हुईं। कृतकी पत्नी श्रुतदेवीने सुग्रीव नामक पुत्रको जन्म दिया। केकय देशकी राजमहिषी श्रुतकीर्तिके गर्भसे राजा अनुव्रतने जन्म

लिया । चेदि-नरेशकी पत्नी श्रुतश्रवाके गर्भसे एक सुनीथ नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो अनेकों प्रकारके धर्मोंका आचरण करनेवाला एवं शत्रुओंका विनाशक था । तत्पश्चात् शूरने अपनी पृथा नाम्नी कन्याको मित्रतावश वृद्ध राजा कुन्तिभोजको पुत्रीरूपमें दे दिया । इसी कारण वसुदेवकी बहन यह पृथा कुन्ती नामसे विख्यात हुई । उसे वसुदेवने पाण्डुको ( पत्नीरूपमें ) प्रदान किया था । उस अनिन्द्यसुन्दरी पाण्डु-पत्नी कुन्तीने पाण्डुकी वंशवृद्धिके लिये ( पतिकी आज्ञासे ) महारथी देवपुत्रोंको जन्म दिया था । उनमें धर्मके संयोगसे युधिष्ठिर पैदा हुए, वायुके सम्पर्कसे वृकोदर ( भीमसेन )का जन्म हुआ और इन्द्रके सकाशसे इन्द्रके ही समान पराक्रमी धनजय ( अर्जुन ) की उत्पत्ति हुई । साथ ही अश्विनीकुमारोंके संयोगसे माद्रवती (माद्री)के गर्भसे रूप, शील एवं सद्गुणोंसे समन्वित नकुल और सहदेव पैदा हुए—ऐसा हमलोगोंने सुना है ॥ १—१० ॥

रोहिणी पौरवी चैव पत्न्यावानकदुन्दुभेः । लेभे ज्येष्ठं सुतं रामं सारणं च सुतं प्रियम् ॥ ११ ॥
दुर्दमं दमनं सुभ्रुं पिण्डारकमहाहनू । चित्राक्ष्यौ द्वे कुमार्यौ तु रोहिण्यां जज्ञिरे तदा ॥ १२ ॥
देवक्यां जज्ञिरे शौरेः सुषेणः कीर्तिमानपि ।
उदारो भद्रसेनश्च भद्रवासस्तथैव च । षष्ठो भद्रविदेहश्च कंसः सर्वानघातयत् ॥ १३ ॥
अथ तस्यामवस्थायामायुष्मान् संबभूव ह । लोकनाथो महाबाहुः पूर्वकृष्णः प्रजापतिः ॥ १४ ॥
अनुजा त्वभवत् कृष्णात् सुभद्रा भद्रभाषिणी । देवक्यां तु महातेजा जज्ञे शूरी महायशाः ॥ १५ ॥
सहदेवस्तु ताम्रायां जज्ञे शौरिकुलोद्वहः ।
उपासङ्गधरं लेभे तनयं देवरक्षिता । एकां कन्यां च सुभगां कंसस्तामभ्यघातयत् ॥ १६ ॥
विजयं रोचमानं च वर्धमानं तु देवलम् । एते सर्वे महात्मानो ह्युपदेव्यां प्रजज्ञिरे ॥ १७ ॥
अवगाहो महात्मा च वृकदेव्यामजायत । वृकदेव्यां स्वयं जज्ञे नन्दनो नाम नामतः ॥ १८ ॥

आनकदुन्दुभि ( वसुदेव )के संयोगसे रोहिणी ( उनकी चौबीस पत्नियोंमें प्रथम )ने विश्वविख्यात ज्येष्ठ पुत्र राम ( बलराम )को, तत्पश्चात् प्रिय पुत्र सारण, दुर्दम, दमन, सुभ्रु, पिण्डारक और महाहनुको प्राप्त किया । ( उनकी दूसरी पत्नी पौरवीके भी भद्र, सुभद्रादि पुत्र हुए । ) उसी समय रोहिणीके गर्भसे चित्रा और अक्षी नामवाली ( अथवा सुन्दर नेत्रोंवाली ) दो कन्याएँ भी पैदा हुईं । वसुदेवजीके सम्पर्कसे देवकीके गर्भसे सुषेण, कीर्तिमान्, उदार, भद्रसेन, भद्रवास और छठा भद्रविदेह नामक पुत्र उत्पन्न हुए थे, जिन्हें कंसने मार डाला । फिर उसी समय ( देवकीके गर्भसे ) आयुष्मान् लोकनाथ महाबाहु प्रजापति श्रीकृष्ण उत्पन्न हुए । श्रीकृष्णके बाद उनकी छोटी बहन शुभभाषिणी सुभद्रा पैदा हुई । तदनन्तर देवकीके गर्भसे महान् तेजस्वी एवं महायशस्वी शूरी नामक पुत्र उत्पन्न हुआ । ताम्राके गर्भसे शौरिकुलका उद्वहन करनेवाला सहदेव नामक पुत्र पैदा हुआ । देवरक्षिताने उपासङ्गधर नामक पुत्रको और एक सुन्दरी कन्याको, जिसे कंसने मार डाला, उत्पन्न किया । विजय, रोचमान, वर्धमान और देवल—ये सभी महान् आत्मबलसे सम्पन्न पुत्र उपदेवीके गर्भसे पैदा हुए थे । महात्मा अवगाह वृकदेवीके गर्भसे उत्पन्न हुए । इसी वृकदेवीके गर्भसे नन्दन नामक एक और पुत्र पैदा हुआ था ॥ ११—१८ ॥

सप्तमं देवकीपुत्रं मदनं सुषुवे नृप । गवेषणं महाभागं संग्रामेष्वपराजितम् ॥ १९ ॥
श्रद्धादेव्या विहारे तु वने हि विचरन् पुरा । वैश्यायामदधाच्छौरिः पुत्रं कौशिकमग्रजम् ॥ २० ॥
सुतनू रथराजी च शौरेरास्तां परिग्रहौ । पुण्ड्रश्च कपिलश्चैव वसुदेवात्मजौ बलौ ॥ २१ ॥
जरा नाम निषादोऽभूत् प्रथमः स धनुर्धरः । सौभद्रश्च भवश्चैव महासत्त्वौ बभूवतुः ॥ २२ ॥

*

देवभागसुतश्चापि नाम्नासावुद्धवः स्मृतः। पण्डितं प्रथमं प्राहुर्देवश्रवःसमुद्भवम् ॥ २३ ॥
ऐक्ष्वाक्यलभतापत्यमनाधृष्टेर्यशस्विनी । निधूतसत्त्वं शत्रुघ्नं श्राद्धस्तस्मादजायत ॥ २४ ॥
करूषायानपत्याय कृष्णस्तुष्टः सुतं ददौ। सुचन्द्रं तु महाभागं वीर्यवन्तं महाबलम् ॥ २५ ॥
जाम्बवत्याः सुतावेतौ द्वौ च सत्कृतलक्षणौ। चारुदेष्णश्च साम्बश्च वीर्यवन्तौ महाबलौ ॥ २६ ॥
तन्तिपालश्च तन्तिश्च नन्दनस्य सुतावुभौ।
शमीकपुत्राश्चत्वारो विक्रान्ताः सुमहाबलाः। विराजश्च धनुश्चैव श्यामश्च सृञ्जयस्तथा ॥ २७ ॥
अनपत्योऽभवच्छ्यामः शमीकस्तु वनं ययौ। जुगुप्समानो भोजत्वं राजर्षित्वमवाप्तवान् ॥ २८ ॥
कृष्णस्य जन्माभ्युदयं यः कीर्तयति नित्यशः। श्रृणोति मानवो नित्यं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २९ ॥

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशे वृष्णिवंशानुकीर्तनं नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥*

राजन्! देवकीने अपने सातवें पुत्र मदनको तथा संग्राममें अजेय एवं महान् भाग्यशाली गवेषणको जन्म दिया था। इससे पूर्व श्रद्धादेवीके साथ विहारके अवसरपर वनमें विचरण करते हुए शूरनन्दन वसुदेवने एक वैश्य-कन्याके उदरमें गर्भाधान किया, जिससे कौशिक नामक ज्येष्ठ पुत्र उत्पन्न हुआ। वसुदेवजीकी (नवीं) सुतनु और (दसवीं)* रथराजी नामकी दो पत्नियाँ और थीं। उनके गर्भसे वसुदेवके पुण्ड्र और कपिल नामक दो पुत्र तथा महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न सौभद्र और भव नामक दो पुत्र और उत्पन्न हुए थे। उनमें जो ज्येष्ठ था, वह जरा नामक निषाद हुआ, जो महान धनुर्धर था। देवभागका पुत्र उद्धव नामसे प्रसिद्ध था। देवश्रवाके प्रथम पुत्रको पण्डित नामसे पुकारा जाता था। यशस्विनी ऐक्ष्वाकीने अनाधृष्टिके संयोगसे शत्रुसंहारक निधूतसत्त्व नामक पुत्रको प्राप्त किया। निधूतसत्त्वसे श्राद्धकी उत्पत्ति हुई। संतानहीन करूषपर प्रसन्न होकर श्रीकृष्णने उसे एक सुचन्द्र नामक पुत्र प्रदान किया था, जो महान् भाग्यशाली, पराक्रमी और महाबली था। जाम्बवतीके चारुदेष्ण और साम्ब—ये दोनो पुत्र उत्तम लक्षणोंसे युक्त, पराक्रमी और महान् बलसम्पन्न थे। नन्दनके तन्तिपाल और तन्तिनामक दो पुत्र हुए। शमीकके चारों पुत्र विराज, धनु, श्याम और सृंजय अत्यन्त पराक्रमी और महाबली थे। इनमें श्याम तो संतानहीन हो गया और शमीक भोजवंशके आचार-व्यवहारकी निन्दा करता हुआ वनमें चला गया, वहाँ आराधना करके उसने राजर्षिकी पदवी प्राप्त की। जो मनुष्य भगवान् श्रीकृष्णके इस जन्म एवं अभ्युदयका नित्य कीर्तन (पाठ) अथवा श्रवण करता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है ॥ १९—२९ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके सोमवंश-वर्णन-प्रसङ्गमें वृष्णिवंशानुकीर्तन नामक छियालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ४६ ॥

## सैंतालीसवाँ अध्याय

### श्रीकृष्ण-चरित्रका वर्णन, दैत्योंका इतिहास तथा देवासुर-संग्रामके प्रसङ्गमें विभिन्न अवान्तर कथाएँ

सूत उवाच

अथ देवो महादेवः पूर्वं कृष्णः प्रजापतिः। विहारार्थं स देवेशो मानुषेष्विह जायते ॥ १ ॥
देवक्यां वसुदेवस्य तपसा पुष्करेक्षणः। चतुर्बाहुस्तदा जातो दिव्यरूपो ज्वलञ्छ्रिया ॥ २ ॥
श्रीवत्सलक्षणं देवं दृष्ट्वा दिव्यैश्च लक्षणैः। उवाच वसुदेवस्तं रूपं संहर वै प्रभो ॥ ३ ॥

* यहाँ वसुदेवजीकी दस, पर हरिवंशप० १, ब्रह्मपु० ४। ३६ आदिमें चौदह पत्नियाँ और उनकी संततियाँ निर्दिष्ट हैं।

भीतोऽहं देव कंसस्य ततस्त्वेनद् ब्रवीमि ते। मम पुत्रा हतास्तेन ज्येष्ठास्ते भीमविक्रमाः ॥ ४ ॥
वसुदेववचः श्रुत्वा रूपं संहरतेऽच्युतः। अनुज्ञाप्य ततः शौरिं नन्दगोपगृहेऽनयत् ॥ ५ ॥
दत्त्वैनं नन्दगोपस्य रक्ष्यतामिति चाब्रवीत्।
अतस्तु सर्वकल्याणं यादवानां भविष्यति। अयं तु गर्भो देवक्यां जातः कंसं हनिष्यति ॥ ६ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! पूर्वकालमें जो प्रजाओंके स्वामी थे, वे ही देवाधिदेव महादेव श्रीकृष्ण लीला-विहार करनेके लिये मृत्युलोकमें मानव-योनिमें अवतीर्ण हुए। वे वसुदेवजीकी तपस्यासे देवकीके गर्भसे उत्पन्न हुए। उनके नेत्र कमल-सदृश अति रमणीय थे, उनके चार भुजाएँ थीं, उनका दिव्य रूप दिव्य कान्तिसे प्रज्वलित हो रहा था और उनका वक्षःस्थल श्रीवत्सके चिह्नसे विभूषित था। वसुदेवजीने इन दिव्य लक्षणोंसे सम्पन्न श्रीकृष्णको देखकर उनसे कहा—'प्रभो! आप इस रूपको समेट लीजिये। देव! मैं कंससे डरा हुआ हूँ, इसीलिये आपसे ऐसा कह रहा हूँ; क्योंकि उसने मेरे उन अत्यन्त पराक्रमी (छः) पुत्रोंको मार डाला है, जो आपसे ज्येष्ठ थे।' वसुदेवजीकी बात सुनकर अच्युत भगवान्‌ने शूरनन्दन वसुदेवजीको (अपनेको नन्दके घर पहुँचा देनेकी) आज्ञा देकर उस रूपका संवरण कर लिया। (तब वसुदेवजी उन्हें नन्दगोपके घर ले गये और) उन्हें नन्दगोपके हाथमें समर्पित करके यों बोले—'सखे! इस (बालक) की रक्षा करो, इससे यदुवंशियोंका सब प्रकारसे कल्याण होगा। देवकीके गर्भसे उत्पन्न हुआ यह बालक कंसका वध करेगा'॥

ऋषय ऊचुः

क एष वसुदेवस्तु देवकी च यशस्विनी। नन्दगोपश्च कस्त्वेष यशोदा च महाव्रता ॥ ७ ॥
यो विष्णुं जनयामास यं च तातेत्यभाषत। या गर्भं जनयामास या चैनं त्वभ्यवर्धयत् ॥ ८ ॥

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! ये वसुदेव कौन थे, जिन्होंने भगवान् विष्णुको पुत्ररूपमें उत्पन्न किया और जिन्हें भगवान् 'तात-पिता' कहकर पुकारते थे तथा यशस्विनी देवकी कौन थीं, जिन्होंने भगवान्‌को अपने गर्भसे जन्म दिया? साथ ही ये नन्दगोप कौन थे तथा महाव्रतपरायणा यशोदा कौन थीं, जिन्होंने बालकरूपमें भगवान्‌का पालन-पोषण किया? ॥ ७-८ ॥

सूत उवाच

पुरुषः कश्यपस्त्वासीददितिस्तु प्रिया स्मृता। ब्रह्मणः कश्यपस्त्वंशः पृथिव्यास्त्वदितिस्तथा ॥ ९ ॥
अथ कामान् महाबाहुर्देवक्याः समपूरयत्। ये तया काङ्क्षिता नित्यमजातस्य महात्मनः ॥ १० ॥
सोऽवतीर्णो महीं देवः प्रविष्टो मानुषीं तनुम्। मोहयन् सर्वभूतानि योगात्मा योगमायया ॥ ११ ॥
नष्टे धर्मे तथा जज्ञे विष्णुर्वृष्णिकुले प्रभुः। कर्तुं धर्मस्य संस्थानमसुराणां प्रणाशनम् ॥ १२ ॥
रुक्मिणी सत्यभामा च सत्या नाग्नजिती तथा। सुभामा च तथा शैब्या गान्धारी लक्ष्मणा तथा ॥ १३ ॥
मित्रविन्दा च कालिन्दी देवी जाम्बवती तथा।
सुशीला च तथा माद्री कौसल्या विजया तथा। एवमादीनि देवीनां सहस्राणि च षोडश ॥ १४ ॥
रुक्मिणी जनयामास पुत्रान् रणविशारदान्। चारुदेष्णं रणे शूरं प्रद्युम्नं च महाबलम् ॥ १५ ॥
सुचारुं भद्रचारुं च सुदेष्णं भद्रमेव च।
परशुं चारुगुप्तं च चारुभद्रं सुचारुकम्। चारुहासं कनिष्ठं च कन्यां चारुमतीं तथा ॥ १६ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! पुरुष (वसुदेवजी) कश्यप हैं और उनकी प्रिय पत्नी देवकी अदिति (प्रकृति) कही गयी हैं। कश्यप ब्रह्माके अंश हैं और अदिति पृथ्वीका। देवकी देवीने अजन्मा एवं महात्मा परमेश्वरसे जो कामनाएँ की थीं, उन सभी कामनाओंको महाबाहु श्रीकृष्णने पूर्ण कर दिया। वे ही योगात्मा भगवान् योगमाया-के आश्रयसे समस्त प्राणियोंको मोहित करते हुए मानव-शरीर धारण करके भूतलपर अवतीर्ण हुए। उस समय

धर्मका ह्रास हो चुका था, अतः धर्मकी स्थापना और असुरोंका विनाश करनेके लिये उन सामर्थ्यशाली विष्णुने वृष्णिकुलमें जन्म धारण किया। रुक्मिणी, सत्यभामा, नग्नजित्की कन्या सत्या, सुभामा, शैब्या, गान्धार-राजकुमारी लक्ष्मणा, मित्रविन्दा, देवी कालिन्दी, जाम्बवती, सुशीला, मद्रराजकुमारी कौसल्या तथा विजया आदि सोलह हजार देवियाँ श्रीकृष्णकी पत्नियाँ थीं। रुक्मिणीने ग्यारह पुत्रोंको जन्म दिया; जो सभी युद्धकर्ममें निष्णात थे। उनके नाम हैं—महाबली प्रद्युम्न, रणशूर चारुदेष्ण, सुचारु, भद्रचारु, सुदेष्ण, भद्र, परशु, चारुगुप्त, चारुभद्र, सुचारुक और सबसे छोटा चारुहास। रुक्मिणीसे एक चारुमती नामकी कन्या भी उत्पन्न हुई थी ॥ ९—१६ ॥

जज्ञिरे सत्यभामायां भानुर्भ्रमरतेक्षणः। रोहितो दीप्तिमांश्चैव ताम्रश्चक्रो जलंधमः ॥ १७ ॥
चतस्रो जज्ञिरे तेषां स्वसारस्तु यवीयसीः। जाम्बवत्याः सुतो जज्ञे साम्बः समितिशोभनः ॥ १८ ॥
मित्रवान् मित्रविन्दश्च मित्रविन्दा वराङ्गना। मित्रबाहुः सुनीथश्च नाग्नजित्याः प्रजा हि सा ॥ १९ ॥
एवमादीनि पुत्राणां सहस्राणि निबोधत। शतं शतसहस्राणां पुत्राणां तस्य धीमतः ॥ २० ॥
अशीतिश्च सहस्राणि वासुदेवसुतास्तथा। लक्षमेकं तथा प्रोक्तं पुत्राणां च द्विजोत्तमाः ॥ २१ ॥
उपासङ्गस्य तु सुतौ वज्रः संक्षिप्त एव च। भूरीन्द्रसेनो भूरिश्च गवेषणसुतावुभौ ॥ २२ ॥
प्रद्युम्नस्य तु दायादो वैदर्भ्यां बुद्धिसत्तमः। अनिरुद्धो रणेऽरुद्धो जज्ञेऽस्य मृगकेतनः ॥ २३ ॥
काश्या सुपार्श्वतनया साम्बाल्लेभे तरस्विनः। सत्यप्रकृतयो देवाः पञ्च वीराः प्रकीर्तिताः ॥ २४ ॥
तिस्रः कोट्यः प्रवीराणां यादवानां महात्मनाम्। षष्टिः शतसहस्राणि वीर्यवन्तो महाबलाः ॥ २५ ॥
देवांशाः सर्व एवेह ह्युत्पन्नास्ते महौजसः। देवासुरे हता ये च त्वसुरा ये महाबलाः ॥ २६ ॥
इहोत्पन्ना मनुष्येषु बाधन्ते सर्वमानवान्। तेषामुत्सादनार्थाय उत्पन्नो यादवे कुले ॥ २७ ॥
कुलानां शतमेकं च यादवानां महात्मनाम्। सर्वमेतत् कुलं यावद् वर्तते वैष्णवे कुले ॥ २८ ॥
विष्णुस्तेषां प्रणेता च प्रभुत्वे च व्यवस्थितः। निदेशस्थायिनस्तस्य कथ्यन्ते सर्वयादवाः ॥ २९ ॥

सत्यभामाके गर्भसे भानु, भ्रमरतेक्षण, रोहित, दीप्तिमान्, ताम्र, चक्र और जलन्धम नामक पुत्र उत्पन्न हुए थे। इनकी चार छोटी बहनें भी पैदा हुई थीं। जाम्बवतीके संग्रामशोभी साम्ब नामक पुत्र पैदा हुआ। श्रेष्ठ सुन्दरी मित्रविन्दाने मित्रवान् और मित्रविन्दको तथा नाग्नजिती सत्याने मित्रबाहु और सुनीथको पुत्ररूपमें जन्म दिया। इसी प्रकार अन्य पत्नियोंसे भी हजारों पुत्रोंकी उत्पत्ति समझ लीजिये। द्विजवरो! इस प्रकार उन बुद्धिमान् वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णके पुत्रोंकी संख्या एक करोड़ एक लाख अस्सी हजार बतलायी गयी है। उपासङ्गके दो पुत्र वज्र और संक्षिप्त थे। भूरीन्द्रसेन और भूरि—ये दोनों गवेषणके पुत्र थे। प्रद्युम्नके विदर्भ-राजकुमारीके गर्भसे अनिरुद्ध नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो परम बुद्धिमान् एवं युद्धमें उत्साहपूर्वक लड़नेवाला वीर था। अनिरुद्धके पुत्रका नाम मृगकेतन था। पार्श्वनन्दिनी काश्याने साम्बके संयोगसे ऐसे पाँच पुत्रोंको जन्म दिया, जो तरस्वी ( एवं फुर्तीले ), सत्यवादी, देवोंके समान सौन्दर्यशाली और शूरवीर थे। इस प्रकार प्रबल शूरवीर एवं महात्मा यादवोंकी संख्या तीन करोड़ थी, उनमें साठ लाख तो महाबली और महान् पराक्रमी थे। ये सभी महान् ओजस्वी यादव देवताओंके अंशसे ही भूतलपर उत्पन्न हुए थे। देवासुर-संग्राममें जो महाबली असुर मारे गये थे, वे ही भूतलपर मानव-योनिमें उत्पन्न होकर सभी मानवोंको कष्ट दे रहे थे। उन्हींका संहार करनेके लिये भगवान् यदुकुलमें अवतीर्ण हुए। इन महाभाग यादवोंके एक सौ एक कुल हैं। ये सब-के-सब कुल विष्णुसे सम्बन्धित कुलके अंदर ही वर्तमान थे। भगवान् विष्णु ( श्रीकृष्ण ) उनके नेता और स्वामी थे तथा वे सभी यादव श्रीकृष्णकी आज्ञाके अधीन रहते थे—ऐसा कहा जाता है ॥ १७—२९ ॥

ऋषय ऊचुः

सप्तर्षयः कुबेरश्च यक्षो मणिश्चरस्तथा । शालङ्किर्नारदश्चैव सिद्धो धन्वन्तरिस्तथा ॥ ३० ॥
आदिदेवस्तथा विष्णुरेभिस्तु सहदैवतैः । किमर्थं सङ्घशो भूताः स्मृताः सम्भूतयः कति ॥ ३१ ॥
भविष्याः कति चैवान्ये प्रादुर्भावा महात्मनः । ब्रह्मक्षत्रेषु शान्तेषु किमर्थमिह जायते ॥ ३२ ॥
यदर्थमिह सम्भूतो विष्णुर्वृष्ण्यन्धकोत्तमः । पुनः पुनर्मनुष्येषु तन्नः प्रब्रूहि पृच्छताम् ॥ ३३ ॥

ऋषियोंने पूछा—सूतजी ! सप्तर्षि, कुबेर, यक्ष मणिचर ( मणिभद्र ), शालङ्कि, नारद, सिद्ध, धन्वन्तरि तथा देवसमाज—इन सबके साथ आदिदेव भगवान् विष्णु संबद्ध होकर किसलिये अवतीर्ण होते हैं ? इन महापुरुषके कितने अवतार हो चुके और भविष्यमें कितने अन्य अवतार होनेवाले हैं ? ब्राह्मणो और क्षत्रियोंके नष्ट हो जानेपर ये किस कारण भूतलपर उत्पन्न होते हैं ? वृष्णि और अन्धक-वंशमें सर्वश्रेष्ठ विष्णु ( श्रीकृष्ण ) जिस प्रयोजनसे भूतलपर बारंबार मानव-योनिमें प्रकट होते हैं, वह सभी कारण हम सब प्रश्नकर्ताओंको बतलाइये ॥ ३०–३३ ॥

सूत उवाच

त्यक्त्वा दिव्यां तनुं विष्णुर्मानुषेष्विह जायते । युगे त्वथ परावृत्ते काले प्रशिथिले प्रभुः ॥ ३४ ॥
देवासुरविमर्देषु जायते हरिरीश्वरः । हिरण्यकशिपौ दैत्ये त्रैलोक्यं प्राक् प्रशासति ॥ ३५ ॥
बलिनाधिष्ठिते चैव पुरा लोकत्रये क्रमात् । सख्यमासीत् परमकं देवानामसुरैः सह ॥ ३६ ॥
युगाख्यासुरसम्पूर्णं ह्यासीदत्याकुलं जगत् । निदेशस्थायिनश्चापि तयोर्देवासुराः समम् ॥ ३७ ॥
वधो बलिविमर्दाय सम्प्रवृद्धः सुदारुणः । देवानामसुराणां च घोरः क्षयकरो महान् ॥ ३८ ॥
कर्तुं धर्मव्यवस्थानं जायते मानुषेष्विह । भृगोः शापनिमित्तं तु देवासुरकृते तदा ॥ ३९ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! युग-युगमें जब लोग धर्मसे विमुख हो जाते हैं तथा शुभ कर्मोंमें विशेषरूपसे शिथिलता आ जाती है, तब भगवान् विष्णु अपने दिव्य शरीरका त्याग कर भूतलपर मानव-योनिमें प्रकट होते हैं । पूर्वकालमें दैत्यराज हिरण्यकशिपुके त्रिलोकीका शासन करते समय देवासुर-संग्रामके अवसरपर भगवान् श्रीहरि अवतीर्ण हुए थे । इसी प्रकार क्रमशः जब बलि तीनों लोकोंपर अधिष्ठित था, उस समय देवताओंकी असुरोंके साथ प्रगाढ़ मैत्री हो गयी थी । ऐसा समय एक युगतक चलता रहा । उस समय सारा जगत् असुरोंसे व्याप्त होकर अत्यन्त व्याकुल हो उठा था । देवता और असुर—दोनों समानरूपसे उसकी आज्ञाके अधीन थे । अन्तमें ( बलि-बन्धनके समय ) बलिका विमर्दन करनेके लिये देवताओं और असुरोंके बीच अत्यन्त भयंकर एवं महान् विनाशकारी घोर संग्राम प्रारम्भ हो गया । तब भगवान् विष्णु धर्मकी व्यवस्था करनेके लिये तथा देवताओं और असुरोंके प्रति दिये गये भृगुके शापके कारण पृथ्वीपर मानव-योनिमें उत्पन्न हुए ॥

ऋषय ऊचुः

कथं देवासुरकृते व्यापारं प्राप्तवान् स्वतः । देवासुरं यथा वृत्तं तन्नः प्रब्रूहि पृच्छताम् ॥ ४० ॥

ऋषियोंने पूछा—सूतजी ! उस समय भगवान् विष्णु देवताओं और असुरोंके लिये अपने-आप इस अवताररूप कार्यमें कैसे प्रवृत्त हुए थे ? तथा वह देवासुरसंग्राम जिस प्रकार हुआ था ? वह सब हमलोगोंको बतलाइये ॥ ४० ॥

सूत उवाच

तेषां दायनिमित्तं ते संग्रामास्तु सुदारुणाः । वराहाद्या दश द्वौ च शण्डामर्कान्तरे स्मृताः ॥ ४१ ॥
नामतस्तु समासेन शृणु तेषां विवक्षतः । प्रथमो नारसिंहस्तु द्वितीयश्चापि वामनः ॥ ४२ ॥

* वायुपुराण ९७ । १ आदिमें मणिकर और मणिरथ पाठ है, सबका भाव 'मणिभद्र' से ही है ।

देवासुरक्षयकराः प्रजानां तु हिताय वै ।
तृतीयस्तु वराहश्च चतुर्थोऽमृतमन्थनः । संग्रामः पञ्चमश्चैव संजातस्तारकामयः ॥ ४३ ॥
षष्ठो ह्याडीवकाख्यस्तु सप्तमस्त्रैपुरस्तथा । अन्धकाख्योऽष्टमस्तेषां नवमो वृत्रघातकः ॥ ४४ ॥
धात्रश्च दशमश्चैव ततो हालाहलः स्मृतः । प्रथितो द्वादशस्तेषां घोरः कोलाहलस्तथा ॥ ४५ ॥
हिरण्यकशिपुर्दैत्यो नारसिंहेन पातितः । वामनेन बलिर्बद्धस्त्रैलोक्याक्रमणे पुरा ॥ ४६ ॥
हिरण्याक्षो हतो द्वन्द्वे प्रतिघाते तु दैवतैः । दंष्ट्रया तु वराहेण समुद्रस्तु द्विधा कृतः ॥ ४७ ॥
प्रह्लादो निर्जितो युद्धे इन्द्रेणामृतमन्थने । विरोचनस्तु प्राह्लादिर्नित्यमिन्द्रवधोद्यतः ॥ ४८ ॥
इन्द्रेणैव तु विक्रम्य निहतस्तारकामये । अशक्नुवन् स देवानां सर्वं सोढुं सदैवतम् ॥ ४९ ॥
निहता दानवाः सर्वे त्रैलोक्ये त्र्यम्बकेण तु । असुराश्च पिशाचाश्च दानवाश्चान्धकाहवे ॥ ५० ॥
हता देवमनुष्यैस्ते पितृभिश्चैव सर्वशः । सम्पृक्तो दानवैर्वृत्रो घोरो हालाहले हतः ॥ ५१ ॥
तदा विष्णुसहायेन महेन्द्रेण निवर्तितः ।
हतो ध्वजे महेन्द्रेण मायाच्छन्नस्तु योगवित् । ध्वजलक्षणमाविश्य विप्रचित्तिः सहानुजः ॥ ५२ ॥
दैत्यांश्च दानवांश्चैव संयतान् किल संयुतान् । जयन् कोलाहले सर्वान् देवैः परिवृतो वृषा ॥ ५३ ॥
यज्ञस्यावभृथे दृश्यौ शण्डामर्कौ तु दैवतैः । एते देवासुरे वृत्ताः संग्रामा द्वादशैव तु ॥ ५४ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! पूर्वकालमें वराह आदि बारह अत्यन्त भयंकर देवासुर-संग्राम भाग-प्राप्तिके निमित्त हुए थे । ये सभी युद्ध शण्डामर्कके पौरोहित्यकालमें घटित हुए बतलाये जाते हैं । मैं संक्षेपमें नामनिर्देशानुसार उनका वर्णन कर रहा हूँ, सुनिये । प्रथम युद्ध नरसिंह ( नृसिंहावतार )में, दूसरा वामन, तीसरा वाराह ( वराहावतार-)में और चौथा अमृत-मन्थनके अवसरपर हुआ था । पाँचवाँ तारकामय संग्राम घटित हुआ था । इसी प्रकार छठा युद्ध आडीवक, सातवाँ त्रैपुर ( त्रिपुर-सम्बन्धी ), आठवाँ अन्धक, नवाँ वृत्रघातक, दसवाँ धात्र ( या वार्त्र ), ग्यारहवाँ हालाहल और बारहवाँ भयंकर संग्राम कोलाहलके नामसे विख्यात है । ( इन संग्रामोंमें ) भगवान् विष्णुने दैत्यराज हिरण्यकशिपुको नृसिंह-रूप धारण करके मार डाला था । पूर्वकालमें त्रिलोकीको नापते समय भगवान्ने वामन-रूपसे बलिको बाँध लिया था । देवताओंके साथ भगवान्ने वराहका रूप धारण करके द्वन्द्व-युद्धमें अपनी दाढ़ोंसे हिरण्याक्षको विदीर्ण कर मार डाला था और समुद्रको दो भागोंमें विभक्त कर दिया था । अमृत-मन्थनके अवसरपर घटित हुए युद्धमें इन्द्रने प्रह्लादको पराजित किया था । उससे अपमानित होकर प्रह्लाद-पुत्र विरोचन नित्य इन्द्रका वध करनेकी ताकमें लगा रहता था । वह पृथक्-पृथक् देवोंको तथा पूरे देवसमाजको सहन नहीं कर पाता था, किंतु इन्द्रने तारकामय युद्धमें पराक्रम प्रकट करके उसे यमलोकका पथिक बना दिया । त्रिलोकीमें जितने दानव, असुर और पिशाच थे, वे सभी शंकरजीद्वारा अन्धक नामक युद्धमें मौतके घाट उतारे गये । उस युद्धमें देवता, मनुष्य और पितृगण भी सब ओरसे सहायक रूपमें उपस्थित थे । दानवोंसे घिरा हुआ भयंकर वृत्रासुर हालाहल-युद्धमें मारा गया था ।* तत्पश्चात् इन्द्रने विष्णुकी सहायतासे विप्रचित्तिको युद्धसे विमुख कर दिया, परंतु योगका ज्ञाता विप्रचित्ति अपनेको मायासे छिपाकर ध्वजरूपमें परिणत कर दिया, फिर भी इन्द्रने ध्वजमें छिपे होनेपर भी अनुज-समेत उसका सफाया कर दिया । इस प्रकार देवोंकी सहायतासे इन्द्रने कोलाहल नामक युद्धमें संगठित होकर आये हुए सभी पराक्रमी दानवों और दैत्योंको पराजित किया था । ( ऐसा प्रतीत होता है कि युद्धके उपरान्त देवताओंने

* इसके ९ से ११ वीं संख्यातकके निर्दिष्ट संग्राम वृत्र-इन्द्र-विष्णु-युद्धसे ही सम्बद्ध दीखते हैं ।

किसी यज्ञका अनुष्ठान किया था, उस ) यज्ञकी समाप्तिके अवसरपर अवभृथ-स्नानके समय शण्ड और अमर्क नामक दोनों दैत्यपुरोहित देवताओंके दृष्टिगोचर हुए थे। इस प्रकार ये बारह युद्ध देवताओं और असुरोंके बीच घटित हुए थे, जो देवताओं और असुरोंके विनाशक और प्रजाओंके लिये हितकारी थे ॥ ४१—५४½ ॥

हिरण्यकशिपू राजा वर्षाणामर्बुदं बभौ ॥ ५५ ॥
द्विसप्तति तथान्यानि नियुतान्यधिकानि च। अशीतिं च सहस्राणि त्रैलोक्यैश्वर्यतां गतः ॥ ५६ ॥
पर्यायेण तु राजाभूद् बलिर्वर्षायुतं पुनः। षष्टिवर्षसहस्राणि नियुतानि च विंशतिः ॥ ५७ ॥
बले राज्याधिकारस्तु यावत्कालं बभूव ह। तावत्कालं तु प्रह्लादो निवृत्तो ह्यसुरैः सह ॥ ५८ ॥
इन्द्रास्त्रयस्ते विज्ञेया असुराणां महौजसः। दैत्यसंस्थमिदं सर्वमासीद् दशयुगं पुनः ॥ ५९ ॥
त्रैलोक्यमिदमव्यग्रं महेन्द्रेणानुपाल्यते। असपत्नमिदं सर्वमासीद् दशयुगं पुनः ॥ ६० ॥
प्रह्लादस्य हते तस्मिंस्त्रैलोक्ये कालपर्ययात्।
पर्यायेण तु सम्प्राप्ते त्रैलोक्यं पाकशासने। ततोऽसुरान् परित्यज्य शुक्रो देवानगच्छत ॥ ६१ ॥
यज्ञे देवानथ गतान् दितिजाः काव्यमाह्वयन्। किं त्वं नो मिषतां राज्यं त्यक्त्वा यज्ञं पुनर्गतः ॥ ६२ ॥
स्थातुं न शक्नुमो ह्यत्र प्रविशामो रसातलम्। एवमुक्तोऽब्रवीद् दैत्यान् विषण्णान् सान्त्वयन् गिरा॥ ६३ ॥
मा भैष्ट धारयिष्यामि तेजसा स्वेन चोऽसुराः। मन्त्राश्चौषधयश्चैव रसा वसु च यत्परम् ॥ ६४ ॥
कृत्स्नानि मयि तिष्ठन्ति पादस्तेषां सुरेषु वै। तत् सर्वं वः प्रदास्यामि युष्मदर्थं धृता मया ॥ ६५ ॥

पूर्वकालमें राजा हिरण्यकशिपु एक अरब सात करोड़ बीस लाख अस्सी हजार वर्षोंतक त्रिलोकीके ऐश्वर्यका उपभोग करता हुआ ( सिंहासनपर ) विराजमान था। तदनन्तर पर्यायक्रमसे बलि राजा हुए। इनका शासनकाल दो करोड़ सत्तर हजार वर्षोंतक था। जितने समयतक बलिका शासनकाल था, उतने कालतक प्रह्लाद अपने अनुयायी असुरोंके साथ निवृत्तिमार्गपर अवलम्बित रहे। इन महान् ओजस्वी तीनों दैत्योंको असुरोंका इन्द्र ( अध्यक्ष ) जानना चाहिये। इस प्रकार दस युगपर्यन्त यह सारा विश्व दैत्योंके अधीन था। पुनः कालक्रमानुसार गत युद्धमें प्रह्लादके मारे जानेपर पर्याय-क्रमसे त्रिलोकीका राज्य इन्द्रके हाथोंमें आ गया। उस समय दस युगतक यह विश्व शत्रुहीन था, तब इन्द्र निश्चिन्ततापूर्वक त्रिलोकीका पालन कर रहे थे। उसी समय शुक्राचार्य असुरोंका परित्याग कर एक देव-यज्ञमें चले आये। इस प्रकार यज्ञके अवसरपर शुक्राचार्यको देवताओंके पक्षमें गया हुआ देखकर दैत्योंने शुक्राचार्यको उपालम्भ देते हुए कहा—'गुरुदेव! आप हमलोगोंके देखते-देखते हमारे राज्यको छोड़कर देवताओंके यज्ञमें क्यों चले गये? अब हमलोग यहाँ किसी प्रकार ठहर नहीं सकते, अतः रसातलमें प्रवेश कर जायँगे।' दैत्योंके इस प्रकार गिड़गिड़ानेपर शुक्राचार्य उन दुःखी दैत्योंको मधुर वाणीसे सान्त्वना देते हुए बोले—'असुरो! तुमलोग डरो मत, मै अपने तेजोबलसे पुनः तुमलोगोंको धारण करूँगा अर्थात् अपनाऊँगा; क्योंकि त्रिलोकीमें जितने मन्त्र, ओषधि, रस और धन-सम्पत्ति हैं, वे सब-के-सब मेरे पास हैं।* इनका चतुर्थांश ही देवोंके अधिकारमें है। मै वह सारा-का-सारा तुमलोगोंको प्रदान कर दूँगा; क्योंकि तुम्हीं लोगोंके लिये ही मैने उन्हें धारण कर रखा है ॥ ५५—६५ ॥

ततो देवास्तु तान् दृष्ट्वा वृतान् काव्येन धीमता। सम्मन्त्रयन्ति देवा वै संविग्नास्तु जिघृक्षया ॥ ६६ ॥
काव्यो ह्येष इदं सर्वं व्यावर्तयति नो बलात्। साधु गच्छामहे तूर्णं यावन्नाध्यापयिष्यति ॥ ६७ ॥

* महाभारत उद्योगपर्व तथा भीष्मपर्व ६। २२-२३ में भी शुक्रको ही धन-रत्नोंका अधिकारी कहा गया है।

प्रसह्य हत्वा शिष्टांस्तु पातालं प्रापयामहे। ततो देवास्तु संरब्धा दानवानुपसृत्य ह ॥ ६८ ॥
ततस्ते वध्यमानास्तु काव्यमेवाभिदुद्रुवुः। ततः काव्यस्तु तान् दृष्ट्वा तूर्णं देवैरभिद्रुतान् ॥ ६९ ॥
रक्षां काव्येन संहृत्य देवास्तेऽप्यसुरार्दिताः। काव्यं दृष्ट्वा स्थितं देवा निःशङ्कमसुरा जहुः ॥ ७० ॥
ततः काव्योऽनुचिन्त्याथ ब्राह्मणो वचनं हितम्। तानुवाच ततः काव्य. पूर्वं वृत्तमनुस्मरन् ॥ ७१ ॥
त्रैलोक्यं वो हृतं सर्वं वामनेन त्रिभिः क्रमैः। बलिर्बद्धो हतो जम्भो निहतश्च विरोचनः ॥ ७२ ॥
महासुरा द्वादशसु संग्रामेषु शरैर्हताः। तैस्तैरुपायैर्भूयिष्ठं निहता व. प्रधानतः ॥ ७३ ॥
किंचिच्छिष्टास्तु यूयं वै युद्धं मास्त्विति मे मतम्। नीतयो वोऽभिधास्यामि तिष्ठध्वं कालपर्ययात् ॥ ७४ ॥
यास्याम्यहं महादेवं मन्त्रार्थं विजयावहम्।
अप्रतीपांस्ततो मन्त्रान् देवात् प्राप्य महेश्वरात्। युध्यामहे पुनर्देवांस्ततः प्राप्स्यथ वै जयम् ॥ ७५ ॥

तदनन्तर जब देवताओंने देखा कि बुद्धिमान् शुक्राचार्यने पुनः असुरोका पक्ष ग्रहण कर लिया है, तब विचारशील देवगण समग्र राज्य ग्रहण करनेके विषयमें मन्त्रणा करते हुए कहने लगे—'भाइयो ! ये शुक्राचार्य हमलोगोंके सभी कार्योंको बलपूर्वक उलट-पलट देंगे, अतः ठीक तो यही होगा कि जबतक ये उन असुरोको सिखा-पढ़ाकर बली नहीं बना देते, उसके पूर्व ही हमलोग यहाँसे शीघ्र चलें और उन्हे बलपूर्वक मार डालें तथा बचे हुए लोगोको पातालमे भाग जानेके लिये विवश कर दें ।' ऐसा परामर्श करके देवगण दानवोंके निकट जाकर उनपर टूट पड़े । इस प्रकार अपना संहार होते देखकर असुरगण शुक्राचार्यकी शरणमें भाग चले । तब शुक्राचार्यने असुरोको देवताओंद्वारा खदेड़ा गया देखकर तुरंत ही उनकी रक्षाका विधान किया । इससे उलटे देवता ही असुरोंद्वारा पीड़ित किये जाने लगे । तब देवगण वहाँ शुक्राचार्यको निःशङ्क-भावसे स्थित देखकर असुरोके सामनेसे हट गये । तदनन्तर ब्राह्मण शुक्राचार्य पूर्वमें घटित हुए वृत्तान्तका स्मरण करते हुए बहुत सोच-विचारकर असुरोंसे हितकारक वचन बोले—'असुरो ! वामनद्वारा अपने तीन पगोंसे ( बलिद्वारा शासित ) सम्पूर्ण त्रिलोकीका राज्य छीन लिया गया, बलि बाँध लिया गया, जम्भासुरका वध हुआ और विरोचनका भी निधन हुआ । इस प्रकार बारहों युद्धोंमें तुमलोगोमें जो प्रधान-प्रधान महाबली असुर थे, वे सभी देवताओंद्वारा तरह-तरहके उपायोंका आश्रय लेकर मार डाले गये । अब थोड़ा-बहुत तुमलोग शेष रह गये हो, अतः मेरा विचार है कि अभी तुमलोग युद्ध बंद कर दो और कालके विपर्ययको देखते हुए चुपचाप शान्त हो जाओ । पीछे मै तुमलोगोको नीति बतलाऊँगा । मैं आज ही विजय प्रदान करनेवाले मन्त्रकी प्राप्तिके लिये महादेवजीके पास जा रहा हूँ । जब मैं देवाधिदेव महेश्वरसे उन अमोघ मन्त्रोंको प्राप्त करके लौटूँ, तब पुनः मेरे सहयोगसे तुमलोग देवताओके साथ युद्ध करना, उस समय तुम्हे विजय प्राप्त होगी'—॥

ततस्ते कृतसंवादा देवानूचुस्तदासुराः। न्यस्तशस्त्रा वयं सर्वे निःसंनाहा रथैर्विना ॥ ७६ ॥
वयं तपश्चरिष्यामः संवृता वल्कलैर्वने। प्रह्लादस्य वचः श्रुत्वा सत्याभिव्याहृतं तु तत् ॥ ७७ ॥
ततो देवा न्यवर्तन्त विज्वरा मुदिताश्च ते। न्यस्तशस्त्रेषु दैत्येषु विनिवृत्तास्तदा सुराः ॥ ७८ ॥
ततस्तानब्रवीत् काव्यः कंचित्कालमुपास्यथ। निरुत्सिक्तास्तपोयुक्ताः कालं कार्यार्थसाधकम् ॥ ७९ ॥
पितुर्ममाश्रमस्था वै मां प्रतीक्षथ दानवाः। तत्संदिश्यासुरान् काव्यो महादेवं प्रपद्यत ॥ ८० ॥

इस प्रकार परस्पर युद्धविषयक परामर्श करके उन असुरोंने देवताओके पास जाकर कहा—'देवगण ! इस समय हम सभी लोगोने अपने शस्त्रोंको रख दिया है, कवचोंको उतार दिया है और रथोंको छोड़ दिया है । अब हमलोग वल्कल-वस्त्र धारण करके वनमें छिपकर तपस्या करेंगे ।' सत्यवादी प्रह्लादके उस सत्य वचनको

सुनकर तथा दैत्योंके शस्त्रास्त्र रख देनेपर देवतालोग प्रसन्न हो गये। उनकी चिन्ता नष्ट हो गयी और वे युद्धसे विरत हो गये। युद्ध बंद हो जानेपर शुक्राचार्यने असुरोंसे कहा—'दानवो! तुमलोग अपने अभिमान आदि कुप्रवृत्तियोंका त्याग कर तपस्यामें लग जाओ और कुछ कालतक उपासना करो; क्योंकि काल ही अभीष्ट कार्यका साधक होता है। इस प्रकार तुमलोग मेरे पिताजीके आश्रममें निवास करते हुए मेरे लौटनेकी प्रतीक्षा करो।' असुरोंको ऐसी शिक्षा देकर शुक्राचार्य महादेवजीके पास जा पहुँचे ( और उनसे निवेदन करने लगे ) ॥७९–८०॥

शुक्र उवाच

मन्त्रानिच्छाम्यहं देव ये न सन्ति बृहस्पतौ। पराभवाय देवानामसुराणां जयाय च ॥ ८१ ॥
एवमुक्तोऽब्रवीद् देवो व्रतं त्वं चर भार्गव।
पूर्णं वर्षसहस्रं तु कणधूममवाक्शिराः। यदि पास्यसि भद्रं ते ततो मन्त्रानवाप्स्यसि ॥ ८२ ॥
तथेति समनुज्ञाप्य शुक्रस्तु भृगुनन्दनः।
पादौ संस्पृश्य देवस्य बाढमित्यब्रवीद् वचः। व्रतं चराम्यहं देव त्वयाऽऽदिष्टोऽद्य वै प्रभो ॥ ८३ ॥
ततोऽनुसृष्टो देवेन कुण्डधारोऽस्य धूमकृत्।
तदा तस्मिन् गते शुक्रे ह्यसुराणां हिताय वै। मन्त्रार्थं तत्र वसति ब्रह्मचर्यं महेश्वरे ॥ ८४ ॥
तद् बुद्ध्वा नीतिपूर्वं तु राज्ये न्यस्ते तदा सुरैः। अस्मिंश्छिद्रे तदामर्षाद् देवास्तान् समुपाद्रवन् ॥ ८५ ॥
दंशिताः सायुधाः सर्वे बृहस्पतिपुरःसराः ॥ ८६ ॥

शुक्राचार्यने कहा—'देव! मै देवताओंके पराभव तथा असुरोंकी विजयके लिये आपसे उन मन्त्रोंको जानना चाहता हूँ, जो बृहस्पतिके पास नहीं हैं।' ऐसा कहे जानेपर महादेवजीने कहा—'भार्गव! तुम्हारा कल्याण हो। इसके लिये तुम्हे कठोर व्रतका पालन करना पड़ेगा। यदि तुम पूरे एक सहस्र वर्षोंतक नीचा सिर करके कनीके धुएँका पान करोगे, तब कहीं तुम्हे उन मन्त्रोंकी प्राप्ति हो सकेगी।' तब भृगुनन्दन शुक्रने महादेवजीकी आज्ञा शिरोधार्य कर उनके चरणोंका स्पर्श किया और कहा—'देव! ठीक है, मै वैसा ही करूँगा। प्रभो! मै आजसे ही आपके आदेशानुसार व्रत-पालनमें लग रहा हूँ।' इस प्रकार महादेवजीसे विदा होकर शुक्राचार्य धूमको उत्पन्न करनेवाले कुण्डधार यक्षके निकट गये और असुरोंके हितार्थ मन्त्र-प्राप्तिके लिये ब्रह्मचर्य-पूर्वक महेश्वरके आश्रममें निवास करने लगे। तदनन्तर जब देवताओंको यह ज्ञात हुआ कि असुरोंद्वारा राज्य छोड़नेमें ऐसी कूटनीति और यह छिद्र था, तब वे अमर्षसे भर गये; फिर तो वे संगठित हो कवच धारणकर हथियारोंसे सुसज्जित हो बृहस्पतिजीको आगे करके असुरोंपर टूट पड़े ॥ ८१—८६ ॥

दृष्ट्वासुरगणा देवान् प्रगृहीतायुधान् पुनः। उत्पेतुः सहसा ते वै संत्रस्तास्तान् वचोऽब्रुवन् ॥ ८७ ॥
न्यस्ते शस्त्रेऽभये दत्ते आचार्ये व्रतमास्थिते। दत्त्वा भवन्तो ह्यभयं सम्प्राप्ता नो जिघांसया ॥ ८८ ॥
अनाचार्या वयं देवास्त्यक्तशस्त्रास्त्ववस्थिताः। चीरकृष्णाजिनधरा निष्क्रिया निष्परिग्रहाः ॥ ८९ ॥
रणे विजेतुं देवांश्च न शक्ष्यामः कथञ्चन। अयुद्धेन प्रपत्स्यामः शरणं काव्यमातरम् ॥ ९० ॥
यापयामः कृच्छ्रमिदं यावदभ्येति नो गुरुः। निवृत्ते च तथा शुक्रे योत्स्यामो दंशितायुधाः ॥ ९१ ॥
एवमुक्त्वासुरान्योऽन्यं शरणं काव्यमातरम्। प्रापद्यन्त ततो भीतास्तेभ्योऽदादभयं तु सा ॥ ९२ ॥
न भेतव्यं न भेतव्यं भयं त्यजत दानवाः। मत्संनिधौ वर्ततां वो न भीर्भवितुमर्हति ॥ ९३ ॥

इस प्रकार पुनः देवताओंको आयुध धारण करके आक्रमण करते देख असुरगण सहसा भयभीत होकर उठ खड़े हुए और देवताओंसे बोले—'देवगण! हमलोगोंने शस्त्रास्त्र रख दिया है, आपलोगो-

द्वारा हमें अभयदान मिल चुका है, मेरे गुरुदेव इस समय व्रतमें स्थित हैं—ऐसी परिस्थितिमें अभय-दान देकर भी आपलोग हमारा वध करनेकी इच्छासे क्यों आये हैं ? इस समय हमलोग बिना गुरुके हैं, शस्त्रास्त्रों-का परित्याग करके निहत्थे खडे हैं, तपस्वियोंकी भाँति चीर और काला मृगचर्म धारण किये हुए हैं, निष्क्रिय और परिग्रहरहित हैं। ऐसी दशामें हम किसी प्रकार भी युद्धमें आप देवताओंको जीतनेमें समर्थ नहीं हैं, अतः बिना युद्ध किये ही काव्यकी माताकी शरणमें जा रहे हैं। वहाँ हमलोग इस विषम संकटके समयको तबतक व्यतीत करेंगे, जबतक हमारे गुरुदेव लौटकर आ नहीं जाते। गुरुदेव शुक्राचार्यके वापस आ जानेपर हमलोग कवच और शस्त्रास्त्रसे लैस होकर आपलोगोंके साथ युद्ध करेंगे।' इस प्रकार भयभीत हुए असुरगण परस्पर परामर्श करके शुक्राचार्यकी माताकी शरणमें चले गये। तब उन्होंने असुरोंको अभयदान देते हुए कहा—'दानवो ! मत डरो, मत डरो, भय छोड दो। मेरे निकट रहते हुए तुमलोगोंको किसी प्रकारका भय नहीं प्राप्त हो सकता' ॥

तथा चाभ्युपपन्नांस्तान् दृष्ट्वा देवास्ततोऽसुरान्। अभिजग्मुः प्रसह्यैतानविचार्य बलाबलम् ॥ ९४ ॥
ततस्तान् बाध्यमानांस्तु देवैर्दृष्ट्वासुरांस्तदा। देवी क्रुद्धाब्रवीद् देवाननिन्द्रान् वः करोम्यहम्॥ ९५ ॥
सम्भृत्य सर्वसम्भारानिन्द्रं साभ्यचरत् तदा। तस्तम्भ देवी बलवद् योगयुक्ता तपोधना ॥ ९६ ॥
ततस्तं स्तम्भितं दृष्ट्वा इन्द्रं देवाश्च मूकवत्। प्राद्रवन्त ततो भीता इन्द्रं दृष्ट्वा वशीकृतम् ॥ ९७ ॥
गतेषु सुरसंघेषु शक्रं विष्णुरभाषत। मां त्वं प्रविश भद्रं ते नयिष्ये त्वां सुरोत्तम ॥ ९८ ॥
एवमुक्तस्ततो विष्णुं प्रविवेश पुरंदरः। विष्णुना रक्षितं दृष्ट्वा देवी क्रुद्धा वचोऽब्रवीत् ॥ ९९ ॥
एषा त्वां विष्णुना सार्धं दहामि मघवन् बलात्। मिषतां सर्वभूतानां दृश्यतां मे तपोबलम् ॥१००॥

तत्पश्चात् शुक्र-माताद्वारा असुरोंको सुरक्षित देखकर देवताओंने बलाबलका ( कौन बलवान् है, कौन दुर्बल है—ऐसा )विचार न करके बलपूर्वक उनपर धावा बोल दिया। उस समय देवताओंद्वारा उन असुरोंको पीडित किया जाता हुआ देखकर (शुक्रमाता ख्याति) देवी क्रुद्ध होकर देवताओंसे बोलीं—'मैं अभी-अभी तुमलोगोंको इन्द्र-रहित कर देती हूँ।' उस समय उन तपस्विनी एवं योगिनी देवीने सभी सामग्रियोंको एकत्र करके अभिचार-मन्त्रका प्रयोग किया और बलपूर्वक इन्द्रको स्तम्भित कर दिया। अपने स्वामी इन्द्रको स्तम्भित हुआ देखकर देवगण मूक-से हो गये और इन्द्रको असुरोंके वशीभूत हुआ देखकर वहाँसे भाग खड़े हुए। देवगणके भाग जानेपर भगवान् विष्णुने इन्द्रसे कहा—'सुरश्रेष्ठ ! तुम्हारा कल्याण हो। तुम मेरे शरीरमें प्रवेश कर जाओ, मैं तुम्हें यहाँसे अन्यत्र पहुँचा दूँगा।' ऐसा कहे जानेपर इन्द्र भगवान् विष्णुके शरीरमें प्रविष्ट हो गये। इस प्रकार भगवान् विष्णुद्वारा इन्द्रको सुरक्षित देखकर (ख्याति) देवी कुपित होकर ऐसा वचन बोलीं—'मघवन् ! यह मैं सम्पूर्ण प्राणियोंके देखते-देखते विष्णुसहित तुमको बलपूर्वक जलाये देती हूँ। तुम दोनों मेरे तपोबलको देखो' ॥

भयाभिभूतौ तौ देवाविन्द्रविष्णू बभूवतुः। कथं मुच्येव सहितौ विष्णुरिन्द्रमभाषत ॥१०१॥
इन्द्रोऽब्रवीज्जहि होनां यावन्नौ न दहेत् प्रभो। विशेषेणाभिभूतोऽस्मि त्वत्तोऽहं जहि मा चिरम्॥१०२॥
ततः समीक्ष्य विष्णुस्तां स्त्रीवधे कृच्छ्रमास्थितः। अभिध्याय ततश्चक्रमापदुद्धरणे तु तत् ॥१०३॥
ततस्तु त्वरया युक्तः शीघ्रकारी भयान्वितः।
ज्ञात्वा विष्णुस्ततस्तस्याः क्रूरं देव्याश्चिकीर्षितम्। क्रुद्धः स्वमस्त्रमादाय शिरश्चिच्छेद वै भिया ॥१०४॥
तं दृष्ट्वा स्त्रीवधं घोरं चुक्रोध भृगुरीश्वरः। ततोऽभिशप्तो भृगुणा विष्णुर्भार्यावधे तदा ॥१०५॥
यस्मात् ते जानतो धर्ममवध्या स्त्री निषूदिता। तस्मात् त्वं सप्तकृत्वेह मानुषेषूपपत्स्यसि ॥१०६॥
ततस्तेनाभिशापेन नष्टे धर्मे पुनः पुनः। लोकस्य च हितार्थाय जायते मानुषेष्विह ॥१०७॥

यह सुनकर वे दोनों देवता—इन्द्र और विष्णु भयभीत हो गये। तब विष्णुने इन्द्रसे कहा—'हम दोनों एक साथ किस प्रकार ( इस संकटसे ) मुक्त हो सकेंगे ?' यह सुनकर इन्द्र बोले—'प्रभो ! जबतक यह हम दोनोंको जला नहीं देती है, उसके पूर्व ही आप इसे मार डालिये। मैं तो आपके द्वारा विशेषरूपसे अभिभूत हो चुका हूँ, इसलिये आप ही इसका वध कर दीजिये, अब विलम्ब मत कीजिये।' तब भगवान् विष्णु एक ओर उस देवीकी भीषण दुर्भावना—दुश्चेष्टा तथा दूसरी ओर स्त्रीवधरूप घोर पापको देखकर गम्भीर चिन्तामें पड गये। फिर उस देवीके क्रूर विचारको जानकर उस आपत्तिसे उद्धार पानेके लिये उन्होंने अपने सुदर्शन चक्रका ध्यान किया। अस्त्रके आ जानेपर शीघ्र ही कार्य-सम्पादन करनेमें निपुण एवं भयभीत विष्णु क्रुद्ध हो उठे और तुरंत ही उन्होंने अपना अस्त्र लेकर ( पापसे ) डरते-डरते उसके सिरको काट गिराया। इधर ऐश्वर्यशाली भृगु उस भयंकर स्त्री-वधको देख कुपित हो गये और वे उस भार्या-वधको निमित्त बनाकर भगवान् विष्णुको शाप देते हुए बोले—'विष्णो ! चूँकि 'स्त्री अवध्य होती है'—इस धर्मको जानते हुए भी तुमने मेरी भार्याका प्राण हरण किया है, अतः तुम मृत्युलोकमें सात बार मानव-योनिमें जन्म धारण करोगे।' उसी शापके कारण धर्मका ह्रास हो जानेपर भगवान् विष्णु लोकके कल्याणके लिये मृत्युलोकमें पुनः-पुनः मानव-योनिमें अवतीर्ण होते हैं* ॥ १०१-१०७ ॥

अनुव्याहृत्य विष्णुं स तदादाय शिरस्त्वरन्। समानीय ततः कायमसौ गृह्येदमब्रवीत् ॥१०८॥
एषा त्वं विष्णुना देवि हता संजीवयाम्यहम्। ततस्तां योज्य शिरसा अभिजीवेति सोऽब्रवीत्॥१०९॥
यदि कृत्स्नो मया धर्मो ज्ञायते चरितोऽपि वा। तेन सत्येन जीवस्व यदि सत्यं वदाम्यहम् ॥११०॥
ततस्तां प्रोक्ष्य शीताभिरद्भिर्जीवेति सोऽब्रवीत्। ततोऽभिव्याहृते तस्य देवी स जीविता तदा ॥१११॥
ततस्तां सर्वभूतानि दृष्ट्वा सुप्तोत्थितामिव। साधु साध्विति चक्रुस्ते वचसा सर्वतो दिशम्॥११२॥
एवं प्रत्याहृता तेन देवी सा भृगुणा तदा। मिषतां देवतानां हि तदद्भुतमिवाभवत् ॥११३॥

भगवान् विष्णुको ऐसा शाप देकर भृगुने फिर तुरंत ही ( ख्यातिके ) उस सिरको उठा लिया और उसे देवीके शरीरके निकट लाकर तथा उस शरीरसे जोड़कर इस प्रकार कहा—'देवि ! यह तुम विष्णुद्वारा मार डाली गयी हो, अब मैं तुम्हें पुनः जिलाये देता हूँ।' यों कहकर उसके शरीरको सिरसे जोड़कर कहा—'जी उठो'। पुनः वे प्रतिज्ञा करते हुए बोले—'यदि मैं सम्पूर्ण धर्मोंको जानता हूँ तथा मेरेद्वारा सम्पूर्ण धर्मोंका आचरण भी किया गया हो अथवा यदि मैं सत्यवादी होऊँ तो उस सत्यके प्रभावसे तुम जीवित हो जाओ।' तत्पश्चात् देवीके शरीरका शीतल जलसे प्रोक्षण करके उन्होंने पुनः कहा—'जीवित हो जाओ !' भृगुके यों कहते ही देवी तुरंत जीवित होकर उठ बैठी। उस देवीको सोकर उठी हुईकी भाँति जीवित देखकर सभी प्राणी 'ठीक है, ठीक है'—ऐसा कहने लगे। उनका यह साधुवाद सभी दिशाओंमें गूँज उठा। इस प्रकार महर्षि भृगुने सभी देवताओंके देखते-देखते देवीको पुनः जीवन प्रदान कर दिया, यह एक अद्भुत-सी बात हुई ॥ १०८-११३ ॥

---

* यह कथा वाल्मीकीय रामायण १। ७४। २१-२५, योगवासिष्ठ १। १। ६१-६५ तथा भविष्यपुराण ४। ६३। ८-१३में भी आती है।

असम्भ्रान्तेन भृगुणा पत्नीं संजीवितां पुनः।
दृष्ट्वा चेन्द्रो नालभत शर्म काव्यभयात् पुनः। प्रजागरे ततश्चेन्द्रो जयन्तीमिदमब्रवीत् ॥११४॥
संचिन्त्य मतिमान् वाक्यं स्वां कन्यां पाकशासनः।
एष काव्यो ह्यमित्राय व्रतं चरति दारुणम्। तेनाहं व्याकुलः पुत्रि कृतो मतिमता भृशम् ॥११५॥
गच्छ संसाधयस्वैनं श्रमापनयनैः शुभैः। तैस्तैर्मनोऽनुकूलैश्च ह्युपचारैरतन्द्रिता ॥११६॥
काव्यमाराधयस्वैनं यथा तुष्येत स द्विजः। गच्छ त्वं तस्य दत्तासि प्रयत्नं कुरु मत्कृते ॥११७॥
एवमुक्ता जयन्ती सा वचः संगृह्य वै पितुः। अगच्छद् यत्र घोरं स तप आरभ्य तिष्ठति ॥११८॥
तं दृष्ट्वा तु पिबन्तं सा कणधूममवाङ्मुखम्। यक्षेण पात्यमानं च कुण्डधारेण पातितम् ॥११९॥
दृष्ट्वा च तं पात्यमानं देवी काव्यमवस्थितम्।
स्वरूपध्यानशाम्यं तं दुर्बलं भूतिमास्थितम्। पित्रा यथोक्तं वाक्यं सा काव्ये कृतवती तदा ॥१२०॥
गीर्भिश्चैवानुकूलाभिः स्तुवती वल्गुभाषिणी।
गात्रसंवाहनैः काले सेवमाना त्वचः सुखैः। व्रतचर्यानुकूलाभिरुवास बहुलाः समाः ॥१२१॥
पूर्णेऽथवा व्रते तस्मिन् घोरे वर्षसहस्रके। वरेण च्छन्दयामास काव्यं प्रीतो भवस्तदा ॥१२२॥

इस प्रकार व्यवस्थित चित्तवाले भृगुद्वारा अपनी पत्नीको जीवित किया हुआ देखकर इन्द्रको शुक्राचार्यके भयसे शान्ति नहीं मिल पा रही थी। वे रातभर जागते ही रहते। अन्तमें बुद्धिमान् इन्द्र बहुत कुछ सोच-विचारकर अपनी कन्या जयन्तीसे यह वचन बोले—'बेटी! ये शुक्राचार्य मेरे शत्रुओंके हितार्थ भीषण व्रतका अनुष्ठान कर रहे हैं। इससे बुद्धिमान् काव्य (उन शुक्राचार्य) ने मुझे अत्यन्त व्याकुल कर दिया है, अतः तुम उनके पास जाओ और मेरा कार्य सिद्ध करो। वहाँ तुम आलस्यरहित होकर थकावटको दूर करनेवाले तथा उनके मनोऽनुकूल विभिन्न प्रकारके शुभ उपचारोंद्वारा शुक्राचार्यकी ऐसी उत्तम आराधना करो, जिससे वे ब्राह्मण प्रसन्न हो जायँ। जाओ, आज मैं तुम्हें शुक्राचार्यको समर्पित कर दे रहा हूँ। तुम मेरे कल्याणके लिये प्रयत्न करो।' इन्द्रद्वारा इस प्रकार कहे जानेपर इन्द्र-पुत्री जयन्ती पिताके वचनको अङ्गीकार करके उस स्थानके लिये प्रस्थित हुई, जहाँ बैठकर शुक्राचार्य भीषण तपका अनुष्ठान कर रहे थे। वहाँ जाकर जयन्तीने शुक्राचार्यको नीचे मुख किये हुए कुण्डधार नामक यक्षद्वारा गिराये गये तथा गिराये जाते हुए कण-धूमका पान करते हुए देखा। उनके निकट जाकर जयन्तीने जब यह लक्ष्य किया कि शुक्राचार्य उस गिराये जाते हुए धूमका पान करते हुए अपने स्वरूपके ध्यानमें शान्तभावसे अवस्थित हैं, उनके शरीरपर विभूति लगी है और वे अत्यन्त दुर्बल हो गये हैं, तब पिताने जैसी सीख दी थी, उसीके अनुसार वह शुक्राचार्यके प्रति व्यवहार करने लगी। मधुर भाषण करनेवाली जयन्ती अनुकूल वचनोंद्वारा शुक्राचार्यकी स्तुति करती थी, समय-समयपर उनके सिर-हाथ-पैर आदि अङ्गोंको दबाकर उनकी सेवा करती थी। इस प्रकार व्रतचर्याके अनुकूल प्रवृत्तियोंद्वारा उनकी सेवा करती हुई वह बहुत वर्षोंतक उनके निकट निवास करती रही। एक सहस्र वर्षकी अवधिवाले उस भयंकर धूमव्रतके पूर्ण होनेपर भगवान् शंकर प्रसन्न हो गये और शुक्राचार्यको वर प्रदान करते हुए बोले—॥ ११४-१२२ ॥

महादेव उवाच

एतद् व्रतं त्वयैकेन चीर्णं नान्येन केनचित्। तस्माद् वै तपसा बुद्ध्या श्रुतेन च बलेन च ॥१२३॥
तेजसा च सुरान् सर्वांस्त्वमेकोऽभिभविष्यसि। यच्चाभिलषितं ब्रह्मन् विद्यते भृगुनन्दन ॥१२४॥
प्रपत्स्यसे तु तत् सर्वं नानुवाच्यं तु कस्यचित्। सर्वाभिभावी तेन त्वं भविष्यसि द्विजोत्तम ॥१२५॥

एतान् दत्त्वा वरांस्तस्मै भार्गवाय भवः पुनः। प्रजेशत्वं धनेशत्वमवध्यत्वं च वै ददौ ॥१२६॥
एतांल्लब्ध्वा वरान् काव्यः सम्प्रहृष्टतनूरुहः।
हर्षात् प्रादुर्बभौ तस्य दिव्यस्तोत्रं महेश्वरे। तथा तिर्यक् स्थितश्चैव तुष्टुवे नीललोहितम् ॥१२७॥

महादेवजीने कहा—भृगुनन्दन ! अबतक एकमात्र तुमने ही इस व्रतका अनुष्ठान किया है, किसी अन्यके द्वारा इस व्रतका पालन नहीं हो सका है; इसलिये तुम अकेले ही अपने तप, बुद्धि, शास्त्रज्ञान, बल और तेजसे समस्त देवताओंको पराजित कर दोगे। ब्रह्मन् ! तुम्हारी जो कुछ भी अभिलाषा है, वह सारी-की-सारी तुम्हें प्राप्त हो जायगी, किंतु तुम यह मन्त्र किसी दूसरेको मत बतलाना। द्विजोत्तम ! इससे तुम सम्पूर्ण शत्रुओंके दमनकर्ता हो जाओगे।' भृगुनन्दन शुक्राचार्यको इतना वरदान देनेके पश्चात् शंकरजीने पुनः उन्हें प्रजेशत्व ( प्रजापति ), धनेशत्व ( धनाध्यक्ष ) और अवध्यत्वका भी वर प्रदान किया। इन वरदानोंको पाकर शुक्राचार्यका शरीर हर्षसे पुलकित हो उठा। उसी हर्षावेगके कारण उनके हृदयमें भगवान् शंकरके प्रति एक दिव्य स्तोत्र प्रादुर्भूत हो गया। तब वे उसी तिर्यक्-अवस्थामें पड़े-पड़े नीललोहित शंकरजीकी स्तुति करने लगे ॥१२३-१२७॥

शुक्र उवाच

नमोऽस्तु शितिकण्ठाय कनिष्ठाय सुवर्चसे। लेलिहानाय काव्याय वत्सरायान्धसःपतेः ॥१२८॥
कपर्दिने करालाय हर्यक्ष्णे वरदाय च। संस्तुताय सुतीर्थाय देवदेवाय रंहसे ॥१२९॥
उष्णीषिणे सुवक्त्राय बहुरूपाय वेधसे। वसुरेताय रुद्राय तपसे चित्रवाससे ॥१३०॥
ह्रस्वाय मुक्तकेशाय सेनान्ये रोहिताय च। कवये राजवृक्षाय तक्षककीडनाय च ॥१३१॥
सहस्रशिरसे चैव सहस्राक्षाय मीढुषे। वराय भव्यरूपाय श्वेताय पुरुषाय च ॥१३२॥
गिरिशाय नमोऽर्काय बलिने आज्यपाय च। सुतृप्ताय सुवस्त्राय धन्विने भार्गवाय च ॥१३३॥
निषङ्गिणे च ताराय स्वक्षाय क्षपणाय च। ताम्राय चैव भीमाय उग्राय च शिवाय च ॥१३४॥

शुक्राचार्यने कहा—प्रभो ! आप **शितिकण्ठ**—जगत्की रक्षाके लिये हालाहल विषका पान करके उसके नील चिह्नको कण्ठमें धारण करनेवाले ( अथवा कर्पूर-गौरकण्ठवाले ), **कनिष्ठ**—ब्रह्माके पुत्रोंमें सबसे छोटे रुद्र या अदितिके छोटे पुत्ररूप*, **सुवर्चा**—अध्ययन एवं तप आदिसे उत्पन्न हुए सुन्दर तेजवाले, **लेलिहान**—प्रलय-कालमें त्रिलोकीके संहारार्थ बारंबार जीभ लपलपानेवाले, **काव्य**—कवि या पण्डितके लक्षणोंसे सम्पन्न, **वत्सर**—संवत्सररूप, **अन्धसपति**—सोमलताके अथवा सभी अन्नोंके स्वामी, **कपर्दी**—जटाजूटधारी, **कराल**—भीषण रूपधारी, **हर्यक्ष**—पीले नेत्रोंवाले, **वरद**—वरप्रदाता, **संस्तुत**—पूर्णरूपसे प्रशंसित, **सुतीर्थ**—महान् गुरुस्वरूप अथवा उत्तम तीर्थस्वरूप, **देवदेव**—देवताओंके अधीश्वर, **रंहस्**—वेगशाली, **उष्णीषी**—सिरपर पगड़ी धारण करनेवाले, **सुवक्त्र**—सुन्दर मुखवाले, **बहुरूप**—एकादश रुद्रोंमेंसे एक, **वेधा**—विधानकर्ता, **वसुरेता**—अग्निरूप, **रुद्र**—समस्त प्राणियोंके प्राणस्वरूप, **तपः**—तप-स्वरूप, **चित्रवासा**—चित्र-विचित्र वस्त्रधारी, **ह्रस्व**—बौना, **मुक्तकेश**—खुली हुई जटाओंवाले, **सेनानी**—सेनापति, **रोहित**—मृगरूपधारी, **कवि**—अतीन्द्रिय विषयोंके ज्ञाता, **राजवृक्ष**—रुद्राक्ष-वृक्षस्वरूप,

* यहाँ प्रायः २५० नामोंद्वारा भगवान् शंकरकी दिव्य स्तुति है। ये नाम प्रसिद्ध 'वाजसनेयि-संहिता' ( यजुर्वेद १६ ) आदि पर आधृत हैं। ये नाम विभिन्न शिवसहस्रनामोंमें भी आते हैं। यह स्तोत्र वायु और ब्रह्माण्डपुराणोंमें भी प्राप्त है। पर अभीतक इसका अनुवाद कहींसे नहीं हो सका है।

**तक्षकक्रीडन**—नागराज तक्षकके साथ क्रीडा करनेवाले, **सहस्रशिरा**—हजारों मस्तकोंवाले, **सहस्राक्ष**—सहस्र नेत्रधारी, **मीढुष**—सेक्ता अथवा स्तुतिकी वृद्धि करनेवाले, **वर**—वरण करनेयोग्य, वरस्वरूप, **भव्यरूप**—सौन्दर्यशाली, **श्वेत**—गौरवर्णवाले, **पुरुष**—आत्मनिष्ठ, **गिरिश**—कैलासपर्वतपर शयनकर्ता, **अर्क**—सबकी उत्पत्तिके हेतुभूत सूर्य, **बली**—बलसम्पन्न, **आज्यप**—घृतपायी, **सुतृप्त**—परम संतुष्ट, **सुवस्त्र**—सुन्दर वस्त्र पहननेवाले, **धन्वी**—धनुर्धर, **भार्गव**—परशुरामस्वरूप, **निषङ्गी**—तूणीरधारी, **तार**—विश्वके रक्षक, **स्वक्ष**—सुशोभन नेत्रोंसे युक्त, **क्षपण**—भिक्षुकस्वरूप, **ताम्र**—अरुण अधरोंवाले, **भीम**—एकादश रुद्रोंमें एक रुद्र, संहारक होनेके कारण भयंकर, **उग्र**—एकादश रुद्रोंमें एक रुद्र, निष्ठुर तथा **शिव**—कल्याणस्वरूपको नमस्कार है ॥ १२८—१३४ ॥

**महादेवाय शर्वाय विश्वरूपशिवाय च । हिरण्याय वरिष्ठाय ज्येष्ठाय मध्यमाय च ॥१३५॥**
**वास्तोष्पते पिनाकाय मुक्तये केवलाय च । मृगव्याधाय दक्षाय स्थाणवे भीषणाय च ॥१३६॥**
**बहुनेत्राय धुर्याय त्रिनेत्रायेश्वराय च । कपालिने च वीराय मृत्यवे त्र्यम्बकाय च ॥१३७॥**
**बभ्रवे च पिशङ्गाय पिङ्गलायारुणाय च । पिनाकिने चेषुमते चित्राय रोहिताय च ॥१३८॥**
**दुन्दुभ्यायैकपादाय अजाय बुद्धिदाय च । आरण्याय गृहस्थाय यतये ब्रह्मचारिणे ॥१३९॥**
**सांख्याय चैव योगाय व्यापिने दीक्षिताय च । अनाहताय शर्वाय भव्येशाय यमाय च ॥१४०॥**
**रोधसे चेकितानाय ब्रह्मिष्ठाय महर्षये । चतुष्पदाय मेध्याय रक्षिणे शीघ्रगाय च ॥१४१॥**
**शिखण्डिने करालाय दंष्ट्रिणे विश्ववेधसे । भास्वराय प्रतीताय सुदीप्ताय सुमेधसे ॥१४२॥**

**महादेव**—देवताओंके भी पूज्य, **शर्व**—प्रलयकालमें सबके संहारक, **विश्वरूप शिव**—विश्वरूप धारण करके जीवोंके कल्याणकर्ता, **हिरण्य**—सुवर्णकी उत्पत्तिके मूल कारण, **वरिष्ठ**—सर्वश्रेष्ठ, **ज्येष्ठ**—आदिदेव, **मध्यम**—मध्यस्थ, **वास्तोष्पति**—गृहक्षेत्रके पालक, **पिनाक**—पिनाक नामक धनुषके स्वामी, **मुक्ति**—मुक्तिदाता, **केवल**—असाधारण पुरुष, **मृगव्याध**—मृगरूपधारी यज्ञके लिये व्याधस्वरूप, **दक्ष**—उत्साही, **स्थाणु**—गृहके आधारभूत स्तम्भके समान जगत्‌के आधारस्तम्भ, **भीषण**—अमङ्गल वेषधारी, **बहुनेत्र**—सर्वद्रष्टा, **धुर्य**—अग्रगण्य, **त्रिनेत्र**—सोम-सूर्य-अग्निरूप त्रिनेत्रधारी, **ईश्वर**—सबके शासक, **कपाली**—चौथे हाथमे कपालधारी, **वीर**—शूरवीर, **मृत्यु**—संहारकर्ता, **त्र्यम्बक**—त्रिनेत्रधारी, एकादश रुद्रोंमें अन्यतम, **बभ्रु**—विष्णुस्वरूप, **पिशङ्ग**—भूरे रंगवाले, **पिङ्गल**—नील-पीतमिश्रित वर्णवाले, **अरुण**—आदित्यरूप, **पिनाकी**—पिनाक नामक धनुष या त्रिशूल धारण करनेवाले, **ईषुमान्**—बाणधारी, **चित्र**—अद्भुत रूपधारी, **रोहित**—लाल रंगका मृगविशेष, **दुन्दुभ्य**—दुन्दुभिके शब्दोंको सुनकर प्रसन्न होनेवाले, **एकपाद**—एकादश रुद्रोंमें एक रुद्र, एकमात्र शरण लेने योग्य, **अज**—एकादश रुद्रोंमें एक रुद्र, अजन्मा, **बुद्धिद**—बुद्धिदाता, **आरण्य**—अरण्यनिवासी, **गृहस्थ**—गृहमें निवास करनेवाले, **यति**—संन्यासी, **ब्रह्मचारी**—ब्रह्मनिष्ठ, **सांख्य**—आत्मानात्मविवेकशील, **योग**—चित्तवृत्तियोंके निरोधस्वरूप अथवा निर्बीज समाधिस्वरूप, **व्यापी**—सर्वव्यापक, **दीक्षित**—अष्ट मूर्तियोंमें एक मूर्ति, सोमयागके विशिष्ट यागकर्ता, **अनाहत**—हृदयस्थित द्वादशदल कमलरूप चक्रके निवासी, **शर्व**—दारुकावनमे स्थित मुनियोको मोहित करनेवाले, **भव्येश**—पार्वतीके प्राणपति, **यम**—संहारकालमें यमस्वरूप, **रोधा**—समुद्र-तटकी भाँति धर्म-ह्रासके निरोधक, **चेकितान**—अतिशय ज्ञानसम्पन्न, **ब्रह्मिष्ठ**—वेदोंके पारंगत विद्वान्, **महर्षि**—वसिष्ठ आदि, **चतुष्पाद**—विश्व, तैजस, प्राज्ञ और शिव-ध्यानरूप चार पादोंवाले, **मेध्य**—

पवित्रस्वरूप, रक्षी—रक्षक, शीघ्रग—शीघ्रगामी, शिखण्डी—जटाके ऊपर जटाग्र-गुच्छको धारण करनेवाले, कराल—भयानक, दंष्ट्री—दाढ़वाले, विश्ववेधा—विश्वके सृष्टिकर्ता, भास्वर—दीप्तिमान् स्वरूपवाले, प्रतीत—विख्यात, सुदीप्त—परम प्रकाशमान तथा सुमेधा—उत्कृष्ट बुद्धिसम्पन्नको नमस्कार है ॥ १३५–१४२ ॥

क्रूरायाविकृतायैव भीषणाय शिवाय च । सौम्याय चैव मुख्याय धार्मिकाय शुभाय च ॥१४३॥
अवध्यायामृतायैव नित्याय शाश्वताय च । व्यापृताय विशिष्टाय भरताय च साक्षिणे ॥१४४॥
क्षेमाय सहमानाय सत्याय चामृताय च । कर्त्रे परशवे चैव शूलिने दिव्यचक्षुषे ॥१४५॥
सोमपायाज्यपायैव धूमपायोष्मपाय च । शुचये परिधानाय सद्योजाताय मृत्यवे ॥१४६॥
पिशिताशाय शर्वाय मेघाय वैद्युताय च । व्यावृत्ताय वरिष्ठाय भरिताय तरक्षवे ॥१४७॥
त्रिपुरघ्नाय तीर्थायावक्राय रोमशाय च । तिग्मायुधाय व्याख्याय सुसिद्धाय पुलस्तये ॥१४८॥
रोचमानाय चण्डाय स्फीताय ऋषभाय च । व्रतिने युञ्जमानाय शुचये चोर्ध्वरेतसे ॥१४९॥
असुरघ्नाय स्वाघ्नाय मृत्युघ्ने यज्ञियाय च । कृशानवे प्रचेताय वह्नये निर्मलाय च ॥१५०॥

क्रूर—निर्दयी, अविकृत—सम्पूर्ण विपरीत क्रियाओंसे रहित, भीषण—भयंकर, शिव—धर्मचिन्ता-रहित, सौम्य—शान्तस्वरूप, मुख्य—सर्वश्रेष्ठ, धार्मिक—धर्मका आचरण करनेवाले, शुभ—मङ्गलस्वरूप, अवध्य—वधके अयोग्य, अमृत—मृत्युरहित, नित्य—अविनाशी, शाश्वत—सनातन स्थायी, व्यापृत—कर्मसचिव, विशिष्ट—सर्वश्रेष्ठ, भरत—लोकोंका भरण-पोषण करनेवाले, साक्षी—जीवोंके शुभाशुभ कर्मोंके साक्षीरूप, क्षेम—मोक्षस्वरूप, सहमान—सहनशील, सत्य—सत्य-स्वरूप, अमृत—धन्वन्तरिस्वरूप, कर्ता—सबके उत्पादक, परशु—परशुधारी, शूली—त्रिशूलधारी, दिव्यचक्षु—दिव्य नेत्रोंवाले, सोमप—सोमरसका पान करनेवाले, आज्यप—घृतपायी अथवा एक विशिष्ट पितरस्वरूप, धूमप—धूम-पान करनेवाले, ऊष्मप—एक विशिष्ट पितरस्वरूप, ऊष्माको पी जानेवाले, शुचि—सर्वथा शुद्ध, परिधान—ताण्डवके समय साज-सज्जासे विभूषित, सद्योजात—पञ्च मूर्तियोंमेंसे एक मूर्ति, तत्काल प्रकट होनेवाले, मृत्यु—कालस्वरूप, पिशिताश—फलका गूदा खानेवाले, सर्व—विश्वात्मा होनेके कारण सर्वस्वरूप, मेघ—बादलकी भाँति दाता, विद्युत्—बिजलीकी तरह दीप्तिमान्, व्यावृत्त—गजचर्म या व्याघ्रचर्मसे आवृत, सबसे अलग मुक्तस्वरूप, वरिष्ठ—सर्वश्रेष्ठ, भरित—परिपूर्ण, तरक्षु—व्याघ्रविशेष, त्रिपुरघ्न—त्रिपुरासुरके वधकर्ता, तीर्थ—महान् गुरुस्वरूप, अवक्र—सौम्य स्वभाववाले, रोमश—लम्बी जटाओंवाले, तिग्मायुध—तीखे हथियारोंवाले, व्याख्य—विशेषरूपसे व्याख्येय या प्रशंसित, सुसिद्ध—परम सिद्धिसम्पन्न, पुलस्ति—पुलस्त्यऋषिरूप, रोचमान—आनन्दप्रद, चण्ड—अत्यन्त क्रोधी, स्फीत—वृद्धिगत, ऋषभ—सर्वोत्कृष्ट, व्रती—व्रतपरायण, युञ्जमान—सर्वदा कार्यरत, शुचि—निर्मलचित्त, ऊर्ध्वरेता—अखण्डित ब्रह्मचर्यवाले, असुरघ्न—राक्षसोंके विनाशक, स्वाघ्न—निजजनोंके रक्षक, मृत्युघ्न—मृत्यु-संकटको टालनेवाले, यज्ञिय—यज्ञके लिये हितकारी, कृशानु—अपने तेजसे तृण-काष्ठादि वस्तुओंको सूक्ष्म कर देनेवाले, प्रचेता—उत्कृष्ट चेतनावाले, वह्नि—अग्निस्वरूप और निर्मल—जागतिक मलोंसे रहितको नमस्कार है ॥१४३–१५०॥

रक्षोघ्नाय पशुघ्नायाविघ्नाय श्वसिताय च । विभ्रान्ताय महान्ताय अत्यन्तं दुर्गमाय च ॥१५१॥
कृष्णाय च जयन्ताय लोकानामीश्वराय च । अनाश्रिताय वेध्याय समन्वाधिष्ठिताय च ॥१५२॥
हिरण्यबाहवे चैव व्याप्ताय च महाय च । सुकर्मणे प्रसह्याय चेशालाय सुचक्षुषे ॥१५३॥
क्षिप्रेषवे सदश्वाय शिवाय मोक्षदाय च । कपिलाय पिशङ्गाय महादेवाय धीमते ॥१५४॥

महाकल्पाय दीप्ताय रोदनाय हसाय च। दृढधन्विने कवचिने रथिने च वरूथिने ॥१५५॥
भृगुनाथाय शुक्राय गह्वरेष्ठाय वेधसे। अमोघाय प्रशान्ताय सुमेधाय वृषाय च ॥१५६॥
नमोऽस्तु तुभ्यं भगवन् विश्वाय कृत्तिवाससे। पशूनां पतये तुभ्यं भूतानां पतये नमः ॥१५७॥

**रक्षोघ्न**—राक्षसोंके संहारकर्ता, **पशुघ्न**—जीवोंके संहारक, **अविघ्न**—विघ्नरहित, **श्वसित**—ताण्डवकालमें ऊँची श्वास लेनेवाले, **विभ्रान्त**—भ्रान्तिहीन, **महान्त**—विशाल मर्यादावाले, **अत्यन्त दुर्गम**—परम दुष्प्राप्य, **कृष्ण**—सच्चिदानन्दस्वरूप, **जयन्त**—बारंबार शत्रुओंपर विजय पानेवाले, **लोकानामीश्वर**—समस्त लोकोंके स्वामी, **अनाश्रित**—स्वतन्त्र, **वेध्य**—भक्तोंद्वारा प्राप्त करनेके लिये लक्ष्यस्वरूप, **समत्वाधिष्ठित**—समतासम्पन्न, **हिरण्यबाहु**—सुनहरी कान्तिवाली सुन्दर भुजाओंसे सुशोभित, **व्याप्त**—सर्वव्यापी, **मह**—दीप्तिशाली, **सुकर्मा**—उत्तम कर्मवाले, **प्रसह्य**—विशेषरूपसे सहन करनेयोग्य, **ईशान**—नियन्ता, **सुचक्षुः**—सुशोभन नेत्रोंसे युक्त, **क्षिप्रेषु**—शीघ्रतापूर्वक बाण चलानेवाले, **सदश्व**—उच्चैःश्रवा आदि उत्तम अश्वरूप, **शिव**—निरुपाधि, **मोक्षद**—मोक्षदाता, **कपिल**—कपिल वर्ण, **पिशङ्ग**—कनक-सदृश कान्तिमान्, **महादेव**—ब्रह्मादि देवताओंके तथा ब्रह्मवादी मुनियोंके देवता, **धीमान्**—उत्तम बुद्धिसम्पन्न, **महाकल्प**—महा-प्रलयकालमें विशाल शरीर धारण करनेवाले, **दीप्त**—अत्यन्त तेजस्वी, **रोदन**—रुलानेवाले, **हस**—हसनशील, **दृढधन्वा**—सुदृढ़ धनुषवाले, **कवची**—कवचधारी, **रथी**—रथके स्वामी, **वरूथी**—भूतों एवं पिशाचोंकी सेनावाले, **भृगुनाथ**—महर्षि भृगुके रक्षक, **शुक्र**—अग्निस्वरूप, **गह्वरेष्ठ**—निकुञ्जप्रिय, **वेधा**—ब्रह्मस्वरूप, **अमोघ**—निष्फलतारहित, **प्रशान्त**—शान्तचित्त, **सुमेध**—सुन्दर बुद्धिवाले और **वृष**—धर्मस्वरूप हैं, आपको नमस्कार है। भगवन्! आप **विश्व**—विश्वस्वरूप, **कृत्तिवासा**—गजासुरके चर्मको धारण करनेवाले, **पशुपति**—पशुओंके स्वामी और **भूतपति**—भूत-प्रेतोंके अधीश्वर हैं, आपको बारंबार प्रणाम है ॥ १५१—१५७ ॥

प्रणवे ऋग्यजुःसाम्ने स्वाहाय च स्वधाय च। वषट्कारात्मने चैव तुभ्यं मन्त्रात्मने नमः ॥१५८॥
त्वष्ट्रे धात्रे तथा कर्त्रे चक्षुःश्रोत्रमयाय च। भूतभव्यभवेशाय तुभ्यं कर्मात्मने नमः ॥१५९॥
वसवे चैव साध्याय रुद्रादित्यसुराय च। विश्वाय मारुतायैव तुभ्यं देवात्मने नमः ॥१६०॥
अग्नीषोमविधिज्ञाय पशुमन्त्रौषधाय च।
स्वयम्भुवे ह्यजायैव अपूर्वप्रथमाय च। प्रजानां पतये चैव तुभ्यं ब्रह्मात्मने नमः ॥१६१॥
आत्मेशायात्मवश्याय सर्वेशातिशयाय च। सर्वभूताङ्गभूताय तुभ्यं भूतात्मने नमः ॥१६२॥

आप **प्रणव**—ॐकारस्वरूप एवं **ऋग्यजुःसाम**—वेदत्रयीरूप हैं, **स्वाहा, स्वधा, वषट्कार**—ये तीनों आपके स्वरूप हैं तथा **मन्त्रात्मा**—मन्त्रोंके आत्मा आप ही हैं, आपको अभिवादन है। आप **त्वष्टा**—प्रजापति विश्वकर्मा, **धाता**—सबको धारण करनेवाले, **कर्ता**—कर्मनिष्ठ, **चक्षुःश्रोत्रमय**—दिव्य नेत्र एवं दिव्य श्रोत्रसे युक्त, **भूतभव्यभवेश**—भूत, भविष्य और वर्तमानके ज्ञाता और **कर्मात्मा**—कर्मस्वरूप हैं, आपको नमस्कार है। आप **वसु**—आठ वसुओंमें एक वसु, **साध्य**—गणदेवोंकी एक कोटि, **रुद्र**—दुःखोंके विनाशक, **आदित्य**—अदितिपुत्र, **सुर**—देवरूप, **विश्व**—विश्वेदेवतारूप **मारुत**—वायुस्वरूप एवं **देवात्मा**—देवताओंके आत्मस्वरूप हैं, आपको प्रणाम है। आप **अग्नीषोमविधिज्ञ**—अग्नीषोम नामक यज्ञकी विधिके ज्ञाता, **पशुमन्त्रौषध**—यज्ञमें प्रयुक्त होनेवाले पशु, मन्त्र और औषधके निर्णेता, **स्वयम्भू**—स्वयं उत्पन्न होनेवाले, **अज**—जन्मरहित, **अपूर्वप्रथम**—आद्यन्तस्वरूप, **प्रजापति**—प्रजाओंके

स्वामी और ब्रह्मात्मा—ब्रह्मस्वरूप हैं, आपको अभिवादन है । आप आत्मेश—मनके स्वामी, आत्मवश्य—मनको वशमें रखनेवाले, सर्वेशातिशय—समस्त ईश्वरोंमें सबसे बढ़कर, सर्वभूताङ्गभूत—सम्पूर्ण जीवोंके अङ्गभूत तथा भूतात्मा—समस्त प्राणियोंके आत्मा हैं, आपको नमस्कार है ॥ १५८–१६२ ॥

निर्गुणाय गुणज्ञाय व्याकृतायामृताय च । निरुपाख्याय मित्राय तुभ्यं योगात्मने नमः ॥१६३॥
पृथिव्यै चान्तरिक्षाय महसे त्रिदिवाय च । जनस्तपाय सत्याय तुभ्यं लोकात्मने नमः ॥१६४॥
अव्यक्ताय च महते भूतादेरिन्द्रियाय च । आत्मज्ञाय विशेषाय तुभ्यं सर्वात्मने नमः ॥१६५॥
नित्याय चात्मलिङ्गाय सूक्ष्मायैवेतराय च । शुद्धाय विभवे चैव तुभ्यं मोक्षात्मने नमः ॥१६६॥
नमस्ते त्रिषु लोकेषु नमस्ते परतस्त्रिषु । सत्यान्तेषु महाद्येषु चतुर्षु च नमोऽस्तु ते ॥१६७॥
नमः स्तोत्रे मया ह्यस्मिन् सदसद् व्याहृतं विभो । मद्भक्त इति ब्रह्मण्य तत् सर्वं क्षन्तुमर्हसि ॥१६८॥

आप निर्गुण—सत्त्व, रजस्, तमस्—तीनों गुणोंसे परे, गुणज्ञ—तीनों गुणोंके रहस्यके ज्ञाता, व्याकृत—रूपान्तरित, अमृत—अमृतस्वरूप, निरुपाख्य—अदृश्य, मित्र—जीवोंके हितैषी और योगात्मा—योगस्वरूप हैं, आपको प्रणाम है । आप पृथिवी—मृत्युलोक, अन्तरिक्ष—अन्तरिक्षलोक, मह—महर्लोक, त्रिदिव्य—स्वर्गलोक, जन—जनलोक, तपः—तपोलोक, सत्य—सत्यलोक हैं, इस प्रकार लोकात्मा—सातों लोकस्वरूप आपको अभिवादन है । आप अव्यक्त—निराकाररूप, महान्—पूज्य, भूतादि—समस्त प्राणियोंके आदिभूत, इन्द्रिय—इन्द्रियस्वरूप, आत्मज्ञ—आत्मतत्त्वके ज्ञाता, विशेष—सर्वाधिक और सर्वात्मा—सम्पूर्ण जीवोंके आत्मस्वरूप हैं, आपको नमस्कार है । आप नित्य—सनातन, आत्मलिङ्ग—स्वप्रमाणस्वरूप, सूक्ष्म—अणुसे भी अणु, इतर—महान्‌से भी महान्, शुद्ध—शुद्धज्ञानसम्पन्न, विभु—सर्वव्यापक और मोक्षात्मा—मोक्षरूप हैं, आपको प्रणाम है । यहाँ तीनों लोकोंमें आपके लिये मेरा नमस्कार है तथा इनके अतिरिक्त ( अन्य ) तीन परलोकोंमें भी मैं आपको प्रणाम करता हूँ । इसी प्रकार महर्लोकसे लेकर सत्यलोकपर्यन्त चारों लोकोंमें मैं आपको अभिवादन करता हूँ । ब्राह्मणवत्सल विभो ! इस स्तोत्रमें मेरे द्वारा जो कुछ उचित-अनुचित कहा गया, उसे 'यह मेरा भक्त है'—ऐसा जानकर आप क्षमा कर दें ॥ १६३–१६८ ॥

सूत उवाच

एवमाभाष्य देवेशमीश्वरं नीललोहितम् । प्रह्वोऽभिप्रणतस्तस्मै प्राञ्जलिर्वाग्यतोऽभवत् ॥१६९॥
काव्यस्य गात्रं संस्पृश्य हस्तेन प्रीतिमान् भवः । निकामं दर्शनं दत्त्वा तत्रैवान्तरधीयत ॥१७०॥
ततः सोऽन्तर्हिते तस्मिन् देवेशेऽनुचरीं तदा । तिष्ठन्तीं पार्श्वतो दृष्ट्वा जयन्तीमिदमब्रवीत् ॥१७१॥
कस्य त्वं सुभगे का वा दुःखिते मयि दुःखिता । महता तपसा युक्ता किमर्थं मां निषेवसे ॥१७२॥
अनया संस्तुतो भक्त्या प्रश्रयेण दमेन च । स्नेहेन चैव सुश्रोणि प्रीतोऽस्मि वरवर्णिनि ॥१७३॥
किमिच्छसि वरारोहे कस्ते कामः समृद्ध्यताम् । तं ते सम्पादयाम्यद्य यद्यपि स्यात् सुदुष्करः ॥१७४॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! तदनन्तर शुक्राचार्य देवाधिदेव नीललोहित भगवान् शंकरसे इस प्रकार प्रार्थना करके हाथ जोडकर उनके चरणोंमें लोट गये और पुनः विनम्र होकर उनके समक्ष चुपचाप खडे हो गये । तब शिवजीने हर्षपूर्वक अपने हाथसे शुक्राचार्यके शरीरको सहलाते हुए उन्हें यथेष्ट दर्शन दिया और वे वहीं अन्तर्हित हो गये । उन देवेश्वरके अन्तर्हित हो जानेपर शुक्राचार्य अपने पार्श्व भागमें खड़ी हुई सेविका जयन्तीको देखकर उससे इस प्रकार बोले—'सुभगे ! तुम कौन हो अथवा किसकी पुत्री हो, जो मेरे तपस्यामें निरत

होनेपर तुम भी कष्ट झेल रही हो? इस प्रकार यह घोर तप करती हुई तुम किसलिये मेरी सेवा कर रही हो? सुश्रोणि! मै तुम्हारी इस उत्कृष्ट भक्ति, विनम्रता, इन्द्रियनिग्रह और प्रेमसे परम प्रसन्न हूँ। वरवर्णिनि! तुम मुझसे क्या प्राप्त करना चाहती हो? वरारोहे! तुम्हारी क्या अभिलाषा है? उसे तुम अवश्य बतलाओ। मै आज उसे अवश्य पूर्ण करूँगा, चाहे वह कितना ही दुष्कर क्यो न हो' ॥ १६९–१७४ ॥

एवमुक्ताब्रवीदेनं तपसा ज्ञातुमर्हसि। चिकीर्षितं हि मे ब्रह्मस्त्वं हि वेत्थ यथातथम् ॥१७५॥
एवमुक्तोऽब्रवीदेनां दृष्ट्वा दिव्येन चक्षुषा। मया सह त्वं सुश्रोणि दश वर्षाणि भामिनि ॥१७६॥
देवि चेन्दीवरश्यामे वरार्हे वामलोचने। एवं वृणोषि कामं त्वं मत्तो वै वल्गुभाषिणि ॥१७७॥
एवं भवतु गच्छामो गृहान्नो मत्तकाशिनि। ततः स्वगृहमागत्य जयन्त्याः पाणिमुद्वहन् ॥१७८॥
तया सहावसद् देव्या दश वर्षाणि भार्गवः। अदृश्यः सर्वभूतानां मायया संवृतः प्रभुः ॥१७९॥
कृतार्थमागतं दृष्ट्वा काव्यं सर्वे दितेः सुताः। अभिजग्मुर्गृहं तस्य मुदितास्ते दिदृक्षवः ॥१८०॥
यदा गता न पश्यन्ति मायया संवृतं गुरुम्। लक्षणं तस्य तद् बुद्ध्वा प्रतिजग्मुर्यथागतम् ॥१८१॥

शुक्राचार्यके यों कहनेपर जयन्तीने उनसे कहा— 'ब्रह्मन्! आप अपने तपोबलसे मेरे मनोरथको भलीभाँति जान सकते हैं; क्योकि आपको तो सबका यथार्थ ज्ञान है। ऐसा कहे जानेपर शुक्राचार्यने अपनी दिव्य दृष्टिद्वारा जयन्तीके मनोरथको जानकर उससे कहा—'सुन्दर भावोंवाली सुश्रोणि! इन्दीवर कमलके सदृश तुम्हारा वर्ण श्याम है, देवि! तुम्हारे नेत्र अत्यन्त रमणीय हैं तथा तुम्हारा भाषण अतिशय मधुर है। वरार्हे! तुम दस वर्षोंतक मेरे साथ रहनेका जो मुझसे वर चाह रही हो, वह वैसा ही हो। मत्तकाशिनि! आओ, अब हमलोग अपने घर चले।' तब अपने घर आकर शुक्राचार्यने जयन्तीका पाणिग्रहण किया। फिर तपोबलसम्पन्न शुक्राचार्यने मायाका आवरण डाल दिया, जिससे सभी प्राणियोंसे अदृश्य होकर वे दस वर्षोतक जयन्तीके साथ निवास करते रहे। इसी बीच जब दितिके पुत्रोंको यह ज्ञात हुआ कि शुक्राचार्य सफल-मनोरथ होकर घर लौट आये हैं, तब वे सभी हर्षपूर्वक उन्हें देखनेकी अभिलाषासे उनके घरकी ओर चल पड़े। वहाँ पहुँचनेपर जब उन्हे मायासे छिपे हुए गुरुदेव शुक्राचार्य नहीं दीख पड़े, तब वे उनके उस लक्षणको समझकर जैसे आये थे, वैसे ही वापस चले गये॥

बृहस्पतिस्तु संरुद्धं काव्यं ज्ञात्वा वरेण तु। तुष्ट्यर्थं दश वर्षाणि जयन्त्या हितकाम्यया ॥१८२॥
बुद्ध्वा तदन्तरं सोऽपि दैत्यानामिन्द्रनोदितः। काव्यस्य रूपमास्थाय असुरान् समुपाह्वयत् ॥१८३॥
ततस्तानागतान् दृष्ट्वा बृहस्पतिरुवाच ह। स्वागतं मम याज्यानां प्राप्तोऽहं वो हिताय च ॥१८४॥
अहं वोऽध्यापयिष्यामि विद्याः प्राप्तास्तु या मया। ततस्ते हृष्टमनसो विद्यार्थमुपपेदिरे ॥१८५॥
पूर्णे काव्यस्तदा तस्मिन् समये दशवार्षिके।
समयान्ते देवयानी तदोत्पन्ना इति श्रुतिः। बुद्धिं चक्रे ततः सोऽथ याज्यानां प्रत्यवेक्षणे ॥१८६॥
देवि गच्छाम्यहं द्रष्टुं तव याज्याञ्शुचिस्मिते। विभ्रान्तवीक्षिते साध्वि विवर्णायतलोचने ॥१८७॥
एवमुक्ताब्रवीदेनं भज भक्तान् महाव्रत। एष धर्मः सतां ब्रह्मन् न धर्मं लोपयामि ते ॥१८८॥

इधर बृहस्पतिको जब यह ज्ञात हुआ कि शुक्राचार्य जयन्तीकी हित-कामनासे उसे संतुष्ट करनेके लिये दस वर्षोतक वरदानके बन्धनसे बँध चुके हैं, तब इसे दैत्योका महान् छिद्र जानकर इन्द्रकी प्रेरणासे उन्होंने शुक्राचार्यका रूप धारणकर असुरोको बुलाया। उन्हें आया देखकर (शुक्ररूपधारी) बृहस्पतिने उनसे कहा—

'मेरे यजमानो! तुम्हारा स्वागत है। मै तुमलोगोंके कल्याणके लिये तपोवनसे लौट आया हूँ। वहाँ मुझे जो विद्याएँ प्राप्त हुई हैं, उन्हें मैं तुमलोगोंको पढ़ाऊँगा।' यह सुनकर वे सभी प्रसन्नमनसे विद्या-प्राप्तिके लिये वहाँ एकत्र हो गये। उधर जब वह दस वर्षका निश्चित समय पूर्ण हो गया, तब शुक्राचार्यने अपने यजमानोंकी खोज-खबर लेनेका विचार किया। इसी समयकी समाप्तिपर (जयन्तीके गर्भसे) देवयानी उत्पन्न हुई थी—ऐसा सुना जाता है। (तब वे जयन्तीसे बोले—) 'पावन मुसकानवाली देवि! तुम्हारे नेत्र तो विभ्रान्तसे एवं बड़े हैं तथा तुम्हारी दृष्टि चञ्चल है, साध्वि! अब मैं तुम्हारे यजमानोंकी देख-भाल करनेके लिये जा रहा हूँ।' यों कहे जानेपर जयन्तीने शुक्राचार्यसे कहा—'महाव्रत! आप अपने भक्तोंका अवश्य भला कीजिये; क्योंकि यही सत्पुरुषोंका धर्म है। ब्रह्मन्! मै आपके धर्मका लोप नहीं करना चाहती' ॥ १८२—१८८ ॥

ततो गत्वासुरान् दृष्ट्वा देवाचार्येण धीमता। वञ्चितान् काव्यरूपेण ततः काव्योऽब्रवीत्तु तान् ॥ १८९ ॥
काव्यं मां वो विजानीध्वं तोषितो गिरिशो विभुः। वञ्चिता बत यूयं वै सर्वे शृणुत दानवाः ॥ १९० ॥
श्रुत्वा तथा ब्रुवाणं तं सम्भ्रान्तास्ते तदाभवन्। प्रेक्षन्तस्तावुभौ तत्र स्थितासीनौ सुविस्मिताः ॥ १९१ ॥
सम्प्रमूढास्ततः सर्वे न प्राबुध्यन्त किंचन। अब्रवीत् सम्प्रमूढेषु काव्यस्तानसुरांस्तदा ॥ १९२ ॥
आचार्यो वो ह्यहं काव्यो देवाचार्योऽयमङ्गिराः। अनुगच्छत मां दैत्यास्त्यजतैनं बृहस्पतिम् ॥ १९३ ॥
इत्युक्ता ह्यसुरास्तेन तावुभौ समवेक्ष्य च। यदासुरा विशेषं तु न जानन्त्युभयोस्तयोः ॥ १९४ ॥
बृहस्पतिरुवाचैनानसम्भ्रान्तस्तपोधनः । काव्यो वोऽहं गुरुर्दैत्या मद्रूपोऽयं बृहस्पतिः ॥ १९५ ॥
सम्मोहयति रूपेण मामकेनैष वोऽसुराः।

तदनन्तर असुरोंके निकट पहुँचकर शुक्राचार्यने जब यह देखा कि बुद्धिमान् देवाचार्य बृहस्पतिने मेरा रूप धारणकर असुरोंको ठग लिया है, तब वे असुरोंसे बोले—'दानवो! तुमलोग ध्यानपूर्वक सुन लो। अपनी तपस्याद्वारा भगवान् शंकरको प्रसन्न करनेवाला शुक्राचार्य मैं हूँ। मुझे ही तुमलोग अपना गुरुदेव शुक्राचार्य समझो। बृहस्पतिद्वारा तुम सब लोग ठग लिये गये हो।' शुक्राचार्यको वैसा कहते हुए सुनकर उस समय वे सभी अत्यन्त भ्रममें पड़ गये और आश्चर्यचकित हो वहाँ बैठे हुए उन दोनोंकी ओर निहारते ही रह गये। वे किंकर्तव्यविमूढ हो गये थे। उस समय उनकी समझमें कुछ भी नहीं आ रहा था। इस प्रकार उनके किंकर्तव्यविमूढ़ हो जानेपर शुक्राचार्यने उन असुरोंसे कहा—'असुरो! तुमलोगोंका आचार्य शुक्राचार्य मै हूँ और ये देवताओंके आचार्य बृहस्पति हैं। इसलिये तुमलोग इन बृहस्पतिका त्याग कर दो और मेरा अनुगमन करो।' शुक्राचार्यके यों समझानेपर असुरगण उन दोनोंकी ओर ध्यानपूर्वक निहारने लगे, परंतु जब उन्हें उन दोनोंमें कोई विशेषता नहीं प्रतीत हुई, तब तपस्वी बृहस्पति धैर्यपूर्वक उन असुरोसे बोले—'दैत्यो! तुमलोगोंका गुरु शुक्राचार्य मैं हूँ और मेरा रूप धारण करनेवाले ये बृहस्पति हैं। असुरो! ये मेरा रूप धारणकर तुमलोगोंको मोहमें डाल रहे हैं' ॥ १८९—१९५½ ॥

श्रुत्वा तस्य ततस्ते वै समेत्य तु ततोऽब्रुवन् ॥ १९६ ॥
अयं नो दशवर्षाणि सततं शास्ति वै प्रभुः। एष वै गुरुरस्माकमन्तरे स्फुरयन् द्विजः ॥ १९७ ॥
ततस्ते दानवाः सर्वे प्रणिपत्याभिनन्द्य च। वचनं जगृहुस्तस्य चिराभ्यासेन मोहिताः ॥ १९८ ॥
ऊचुस्तमसुराः सर्वे क्रोधसंरक्तलोचनाः। अयं गुरुर्हितोऽस्माकं गच्छ त्वं नासि नो गुरुः ॥ १९९ ॥
भार्गवो वाङ्गिरा वापि भगवानेष नो गुरुः। स्थिता वयं निदेशेऽस्य साधु त्वं गच्छ मा चिरम् ॥ २०० ॥
एवमुक्त्वासुराः सर्वे प्रापद्यन्त बृहस्पतिम्। यदा न प्रत्यपद्यन्त काव्येनोक्तं महद्धितम् ॥ २०-

चुकोप भार्गवस्तेषामवलेपेन तेन तु। बोधिता हि मया यस्मान्न मां भजथ दानवाः ॥२०२॥
तस्मात् प्रनष्टसंज्ञा वै पराभवमवाप्स्यथ। इति व्याहृत्य तान् काव्यो जगामाथ यथागतम्॥२०३॥

बृहस्पतिकी बात सुनकर वे सभी एकत्र हो इस प्रकार बोले—'ये सामर्थ्यशाली ब्राह्मणदेवता हमारे अन्तः-करणमें स्फुरित होते हुए दस वर्षोंसे लगातार हमलोगोंको शिक्षा दे रहे हैं, अतः ये ही हमारे गुरु हैं।' ऐसा कहकर चिरकालके अभ्याससे मोहित हुए उन सभी दानवोंने बृहस्पतिको प्रणाम करके उनका अभिनन्दन किया और उन्हींके वचनोंको अङ्गीकार किया। तत्पश्चात् क्रोधसे आँखें लाल करके उन सभी असुरोंने शुक्राचार्यसे कहा—'ये ही हमलोगोंके हितैषी गुरुदेव हैं, आप हमारे गुरु नहीं हैं, अतः आप यहाँसे चले जाइये। ये चाहे शुक्राचार्य हों अथवा बृहस्पति ही क्यों न हों, ये ही हमारे ऐश्वर्यशाली गुरुदेव हैं। हमलोग इन्हींकी आज्ञामें स्थित हैं। अतः आपके लिये यही अच्छा होगा कि आप यहाँसे शीघ्र चले जाइये, विलम्ब मत कीजिये।' ऐसा कहकर सभी असुर बृहस्पतिके निकट चले आये। इधर जब असुरोंने शुक्राचार्यद्वारा कहे गये महान् हितकारक वचनोंपर कुछ ध्यान नहीं दिया, तब उनके उस गर्वसे शुक्राचार्य कुपित हो उठे (और शाप देते हुए बोले—) 'दानवो! चूँकि मेरे समझानेपर भी तुमलोगोंने मेरी बात नहीं मानी है, इसलिये (भावी संग्राममें) तुम्हारी चेतना नष्ट हो जायगी और तुमलोग पराभवको प्राप्त करोगे।' इस प्रकार असुरोंको शाप देकर शुक्राचार्य जैसे आये थे, वैसे ही लौट गये॥ १९६—२०३॥

शप्तांस्तानसुराञ्ज्ञात्वा काव्येन स बृहस्पतिः। कृतार्थः स तदा हृष्टः स्वरूपं प्रत्यपद्यत ॥२०४॥
बुद्ध्वासुरान् हताञ्ज्ञात्वा कृतार्थोऽन्तरधीयत। ततः प्रनष्टे तस्मिंस्तु विभ्रान्ता दानवाभवन् ॥२०५॥
अहो विवञ्चिताः स्मेति परस्परमथाब्रुवन्। पृष्ठतोऽभिमुखाश्चैव ताडिताङ्गिरसेन तु ॥२०६॥
वञ्चिताः सोपधानेन स्वे स्वे वस्तुनि मायया।
ततस्त्वपरितुष्टास्ते तमेव त्वरिता ययुः। प्रह्लादमग्रतः कृत्वा काव्यस्यानुपदं पुनः ॥२०७॥
ततः काव्यं समासाद्य उपतस्थुरवाङ्मुखाः। समागतान् पुनर्दृष्ट्वा काव्यो याज्यानुवाच ह ॥२०८॥
मया सम्बोधिताः सर्वे यस्मान्मां नाभिनन्दथ। ततस्तेनावमानेन गता यूयं पराभवम् ॥२०९॥
एवं ब्रुवाणं शुक्रं तु बाष्पसंदिग्धया गिरा। प्रह्लादस्तं तदोवाच मा नस्त्वं त्यज भार्गव ॥२१०॥
स्वाश्रयान् भजमानांश्च भक्तांस्त्वं भज भार्गव।
त्वय्यदृष्टे वयं तेन देवाचार्येण मोहिताः। भक्तानर्हसि वै ज्ञातुं तपोदीर्घेण चक्षुषा ॥२११॥
यदि नस्त्वं न कुरुषे प्रसादं भृगुनन्दन। अपध्यातास्त्वया ह्यद्य प्रविशामो रसातलम् ॥२१२॥

इधर जब बृहस्पतिको यह ज्ञात हुआ कि शुक्राचार्यने असुरोंको शाप दे दिया, तब वे प्रसन्नतासे खिल उठे; क्योंकि उनका प्रयोजन सिद्ध हो चुका था। तत्पश्चात् वे तुरंत अपने वास्तविक बृहस्पतिरूपमें प्रकट हो गये और अपने बुद्धिबलसे असुरोंको मरा हुआ जानकर सफलमनोरथ हो अन्तर्हित हो गये। बृहस्पतिके आँखोंसे ओझल हो जानेपर दानवगण विशेषरूपसे भ्रममें पड़ गये और परस्पर यों कहने लगे—'अहो! हमलोग तो विशेषरूपसे ठग लिये गये। बृहस्पतिने हमलोगोंको आगे और पीछे अर्थात् अप्रत्यक्ष और परोक्ष—दोनों ओरसे व्यथित कर दिया। उन्होंने अपनी मायाद्वारा सहायक-सहित हमलोगोंको अपनी-अपनी वस्तुओंसे वञ्चित कर दिया।' इस प्रकार असंतुष्ट हुए वे सभी दानव प्रह्लादको आगे कर पुनः उन्हीं शुक्राचार्यका अनुगमन करनेके लिये तुरंत प्रस्थित हुए और शुक्राचार्यके निकट पहुँचकर नीचे मुख किये हुए उन्हें घेरकर खड़े हो

गये। तब अपने यजमानोंको पुनः आया देखकर शुक्राचार्यने उनसे कहा—'दानवो! चूँकि मेरेद्वारा भलीभाँति समझाये जानेपर भी तुम सब लोगोंने मेरा अभिनन्दन नहीं किया, इसलिये मेरे प्रति किये हुए उस अपमानके कारण तुमलोग पराभवको प्राप्त हुए हो।' शुक्राचार्यके यों कहनेपर प्रह्लादकी आँखोंमें आँसू उमड़ आये। तब वे गद्गद वाणीद्वारा उनसे प्रार्थना करते हुए बोले—'भृगुनन्दन! आप हमलोगोंका परित्याग न करें। भार्गव! हमलोग आपके आश्रित, सेवक और भक्त हैं, इसलिये आप हमें अपनाइये। आपके अदृष्ट हो जानेपर देवाचार्य बृहस्पतिने हमलोगोंको मोहमें डाल दिया था। आप अपनी दीर्घकालिक तपस्याद्वारा अर्जित दिव्यदृष्टि-द्वारा स्वयं अपने भक्तोंको जान सकते हैं। भृगुनन्दन! यदि आप हमलोगोंपर कृपा नहीं करेंगे और हमलोगोंका अनिष्ट-चिन्तन ही करते रहेंगे तो हमलोग आज ही रसातलमें प्रवेश कर जायँगे' ॥२०४—२१२॥

ज्ञात्वा काव्यो यथातत्त्वं कारुण्यादनुकम्पया।
एवं प्रत्यनुनीतो वै ततः कोपं नियम्य सः। उवाचैतान् न भेतव्यं न गन्तव्यं रसातलम् ॥२१३॥
अवश्यं भाविनो ह्यर्थाः प्राप्तव्या मयि जाग्रति। न शक्यमन्यथा कर्तुं दिष्टं हि बलवत्तरम् ॥२१४॥
संज्ञा प्रणष्टा या वोऽद्य कामं तां प्रतिपत्स्यथ। देवाञ्जित्वा सकृच्चापि पातालं प्रतिपत्स्यथ ॥२१५॥
प्राप्ते पर्यायकाले च हीति ब्रह्माभ्यभाषत। मत्प्रसादाच्च त्रैलोक्यं भुक्तं युष्माभिरूर्जितम् ॥२१६॥
युगाख्या दश सम्पूर्णा देवानाक्रम्य मूर्धनि। एतावन्तं च कालं वै ब्रह्मा राज्यमभाषत ॥२१७॥
राज्यं सावर्णिके तुभ्यं पुनः किल भविष्यति। लोकानामीश्वरो भाव्यस्तव पौत्रः पुनर्बलिः ॥२१८॥
एवं किल मिथः प्रोक्तः पौत्रस्ते विष्णुना स्वयम्। वाचा हृतेषु लोकेषु तास्तास्तस्याभवन् किल ॥२१९॥
यस्मात् प्रवृत्तयश्चास्य सकाशादभिसंधिताः। तस्माद् वृत्तेन प्रीतेन तुभ्यं दत्तं स्वयम्भुवा ॥२२०॥
देवराज्ये बलिर्भाव्य इति मामीश्वरोऽब्रवीत्। तस्माददृश्यो भूतानां कालापेक्षः स तिष्ठति ॥२२१॥
प्रीतेन चापरो दत्तो वरस्तुभ्यं स्वयम्भुवा। तस्मान्निरुत्सुकस्त्वं वै पर्यायं सहितोऽसुरैः ॥२२२॥
न हि शक्यं मया तुभ्यं पुरस्ताद् विप्रभाषितुम्। ब्रह्मणा प्रतिषिद्धोऽहं भविष्यं जानता विभो ॥२२३॥
इमौ च शिष्यौ द्वौ मह्यं समावेतौ बृहस्पतेः। दैवतैः सह संसृष्टान् सर्वान् वो धारयिष्यतः ॥२२४॥

इस प्रकार अनुनय-विनय किये जानेपर शुक्राचार्यने दिव्यदृष्टिद्वारा यथार्थ तत्त्वको समझ लिया, तब उनके हृदयमें करुणा एवं अनुकम्पा उमड़ आयी और वे उमडे हुए क्रोधको रोककर उन असुरोंसे इस प्रकार बोले—'प्रह्लाद! न तो तुमलोग डरो और न रसातलको ही जाओ। यों तो जो अवश्यम्भावी इष्ट-अनिष्ट कार्य हैं, वे तो मेरे जागरूक रहनेपर भी तुमलोगोंको प्राप्त होंगे ही, उन्हे अन्यथा नहीं किया जा सकता; क्योंकि दैवका विधान सबसे बलवान् होता है। मेरे शापानुसार तुमलोगोंकी जो चेतना नष्ट हो गयी है, उसे तो तुमलोग आज ही प्राप्त कर लोगे। साथ ही विपरीत समय आनेपर तुमलोगोंको देवताओंपर विजय पा लेनेपर भी एक बार पातालमें जाना पड़ेगा; क्योंकि ब्रह्माने पहले ही ऐसा बतलाया है। मेरी ही कृपासे तुमलोगोंने देवताओंके मस्तकपर पैर रखकर समूचे दस युगपर्यन्त त्रिलोकीके ऊर्जस्वी राज्यका उपभोग किया है। इतने ही दिनोंतक ब्रह्माने तुमलोगोंका राज्यकाल बतलाया था। सावर्णि-मन्वन्तरमें पुनः तुमलोगोंका राज्य होगा। उस समय तुम्हारा पौत्र बलि त्रिलोकीका अधीश्वर होगा। ऐसा स्वयं भगवान् विष्णुने वाणीद्वारा त्रिलोकीके अपहरण कर लेनेपर तुम्हारे पौत्रसे परस्पर वार्तालापके प्रसङ्गमें कहा था। वे सारी बातें अब उसके लिये घटित होंगी। चूँकि इसकी प्रवृत्तियाँ दस वर्षोंतक उत्तम बनी रहीं,

इसलिये इसके व्यवहारसे प्रसन्न होकर स्वयम्भूने तुम्हें यह राज्य प्रदान किया है। देवराज्यपर बलि अधिष्ठित होगा—ऐसा मुझसे भगवान् शंकरने भी कहा था। इसी कारण वह कालकी प्रतीक्षा करता हुआ जीवोंके नेत्रोंके अगोचर होकर अवस्थित है। उस समय प्रसन्न हुए स्वयम्भूने तुम्हे एक दूसरा वरदान भी दिया था, इसलिये तुम असुरोंसहित निरुत्सुक रहकर कालकी प्रतीक्षा करो। विभो! यद्यपि मैं भविष्यकी सारी बातें जानता हूँ, तथापि मै पहले ही तुमसे उन घटनाओंका वर्णन नहीं कर सकता; क्योंकि ब्रह्माजीने मुझे मना कर दिया है। मेरे ये दोनों शिष्य (शण्ड और अमर्क), जो बृहस्पतिके समान प्रभावशाली हैं, देवताओंके साथ ही उत्पन्न हुए तुम सब लोगोंकी रक्षा करेंगे' ॥ २१३–२२४ ॥

**इत्युक्ता ह्यसुराः सर्वे काव्येनाक्लिष्टकर्मणा। हृष्टास्तेन ययुः सार्धं प्रह्लादेन महात्मना ॥२२५॥**
**अवश्यं भाव्यमर्थं तु श्रुत्वा शुक्रेण भाषितम्।**
**सकृदाशंसमानास्तु जयं शुक्रेण भाषितम्। दंशिताः सायुधाः सर्वे ततो देवान् समाह्वयन् ॥२२६॥**
**देवास्तदासुरान् दृष्ट्वा संग्रामे समुपस्थितान्। सर्वे सम्भृतसम्भारा देवास्तान् समयोधयन् ॥२२७॥**
**देवासुरे तदा तस्मिन् वर्तमाने शतं समाः। अजयन्नसुरा देवांस्ततो देवा ह्यमन्त्रयन् ॥२२८॥**
**यज्ञेनोपाह्वयामस्तौ ततो जेष्यामहेऽसुरान्। तदोपामन्त्रयन् देवाः शण्डामर्कौ तु तावुभौ ॥२२९॥**
**यज्ञे चाहूय तौ प्रोक्तौ त्यजेतामसुरान् द्विजौ। वयं युवां भजिष्यामः सह जित्वा तु दानवान् ॥२३०॥**
**एवं कृताभिसंधी तौ शण्डामर्कौ सुरास्तथा। ततो देवा जयं प्रापुर्दानवाश्च पराजिताः ॥२३१॥**
**शण्डामर्कपरित्यक्ता दानवा ह्यबलास्तथा। एवं दैत्याः पुरा काव्यशापेनाभिहतास्तदा ॥२३२॥**
**काव्यशापाभिभूतास्ते निराधाराश्च सर्वशः। निरस्यमाना देवैश्च विविशुस्ते रसातलम् ॥२३३॥**
**एवं निरुद्यमा देवैः कृताः कृच्छ्रेण दानवाः। ततः प्रभृति शापेन भृगोर्नैमित्तिकेन तु ॥२३४॥**
**जज्ञे पुनः पुनर्विष्णुर्धर्मे प्रशिथिले प्रभुः। कुर्वन् धर्मव्यवस्थानमसुराणां प्रणाशनम् ॥२३५॥**

सरलतापूर्वक कार्यको सम्पन्न करनेवाले शुक्राचार्यके द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर असुरगण उन महात्मा प्रह्लादके साथ प्रसन्नतापूर्वक अपने-अपने वासस्थानको चले गये। उस समय उनके मनमें शुक्राचार्यद्वारा कथित यह विचार कि 'अवश्यम्भावी कार्य तो होगा ही' गूँज रहा था। कुछ दिन व्यतीत होनेपर उन्होंने सोचा कि शुक्राचार्यके कथनानुसार एक बार विजय तो होगी ही, अतः सभी असुरोंने विजयकी आशासे अपना-अपना कवच धारण कर लिया और शस्त्रास्त्रसे लैस हो देवताओंके निकट जाकर उन्हे ललकारा। देवताओंने जब यह देखा कि असुरगण सेनासहित रणभूमिमें आ डटे हैं, तब देवगण भी संगठित एवं युद्ध-सामग्रीसे सुसज्जित हो असुरोंके साथ युद्ध करने लगे। वह देवासुर-संग्राम सौ वर्षोंतक चलता रहा। उसमें असुरोंने देवताओंको पराजित किया। तब देवताओंने परस्पर मन्त्रणा करके यह निश्चय किया कि जब हमलोग यज्ञके निमित्तसे उन दोनों (शण्ड और अमर्क) को अपने यहाँ बुलायेंगे तभी असुरोंपर विजय पा सकेंगे। ऐसा परामर्श करके देवताओंने उन शण्ड और अमर्क—दोनोंको आमन्त्रित किया और अपने यज्ञमें बुलाकर उनसे कहा—'द्विजवरो! आपलोग असुरोंका पक्ष छोड़ दें। हमलोग आप दोनोंके सहयोगसे दानवोंको पराजित कर आपकी सेवा करेंगे।' इस प्रकार जब देवताओंके तथा शण्ड-अमर्क—दोनों दैत्याचार्योंके बीच संधि हो गयी, तब रणभूमिमें देवताओको विजय प्राप्त हुई और दानवगण पराजित हो गये; क्योंकि शण्ड-अमर्कद्वारा परित्याग कर दिये जानेपर दानववृन्द बलहीन हो गये थे। इस प्रकार पूर्वकालमें शुक्राचार्यद्वारा दिये गये शापके कारण

उस समय दैत्यगण मारे गये । अवशिष्ट दैत्यगण शुक्राचार्यके शापसे अभिभूत होनेके कारण जब सब ओरसे निराधार हो गये, साथ ही देवताओंने उन्हें खदेड़ना आरम्भ किया, तब वे विवश होकर रसातलमें प्रविष्ट हो गये । इस प्रकार देवगण दानवोंको बड़ी कठिनाईसे उद्यमहीन अर्थात् युद्ध-विमुख कर पाये । तभीसे शुक्राचार्यके नैमित्तिक शापके कारण धर्मका विशेषरूपसे ह्रास हो जानेपर धर्मकी पुनः स्थापना और असुरोंका विनाश करनेके लिये भगवान् विष्णु बारंबार अवतीर्ण होते रहे ॥ २२५—२३५ ॥

प्रह्लादस्य निदेशे तु न स्थास्यन्त्यसुराश्च ये । मनुष्यवध्यास्ते सर्वे ब्रह्मेति व्याहरत् प्रभुः ॥२३६॥
धर्मान्नारायणस्यांशः सम्भूतश्चाक्षुषेऽन्तरे । यज्ञं प्रवर्तयामासदेवो वैवस्वतेऽन्तरे ॥२३७॥
प्रादुर्भावे ततस्तस्य ब्रह्मा ह्यासीत् पुरोहितः । युगाख्यायां चतुर्थ्यां तु आपन्नेषु सुरेषु च ॥२३८॥
सम्भूतस्तु समुद्रान्ते हिरण्यकशिपोर्वधे । द्वितीये नरसिंहाख्ये रुद्रो ह्यासीत् पुरोहितः ॥२३९॥
बलिसंस्थेषु लोकेषु त्रेतायां सप्तमं प्रति । दैत्यैस्त्रैलोक्य आक्रान्ते तृतीयो वामनोऽभवत् ॥२४०॥
एतास्तिस्रः स्मृतास्तस्य दिव्याः सम्भूतयो द्विजाः । मानुषाः सप्त यान्यास्तु शापतस्ता निबोधत ॥२४१॥
त्रेतायुगे तु प्रथमे दत्तात्रेयो बभूव ह । नष्टे धर्मे चतुर्थांशे मार्कण्डेयपुरःसरः ॥२४२॥
पञ्चमः पञ्चदश्यां च त्रेतायां सम्बभूव ह । मान्धाता चक्रवर्ती तु तस्थौतथ्यपुरःसरः ॥२४३॥
एकोनविंश्यां त्रेतायां सर्वक्षत्रान्तकृद् विभुः । जामदग्न्यस्तथा षष्ठो विश्वामित्रपुरःसरः ॥२४४॥
चतुर्विंशे युगे रामो वसिष्ठेन पुरोधसा । सप्तमो रावणस्यार्थे जज्ञे दशरथात्मजः ॥२४५॥
अष्टमे द्वापरे विष्णुरष्टाविंशे पराशरात् । वेदव्यासस्तथा जज्ञे जातूकर्ण्यपुरःसरः ॥२४६॥

पूर्वकालमें सामर्थ्यशाली ब्रह्माने प्रसङ्गवश ऐसा कहा था कि जो असुर प्रह्लादकी आज्ञाके वशीभूत नहीं रहेंगे, वे सभी मनुष्योंके हाथों मारे जायँगे । चाक्षुष-मन्वन्तरमें धर्मके अंशसे साक्षात् भगवान् नारायणका अवतार हुआ था । अपने प्रादुर्भावके पश्चात् वैवस्वत-मन्वन्तरमें उन्होंने एक यज्ञानुष्ठान प्रवर्तित किया था; उस यज्ञके पुरोहित ब्रह्मा थे । चौथे तामस-मन्वन्तरमें देवताओंके विपत्तिग्रस्त हो जानेपर हिरण्यकशिपुका वध करनेके लिये समुद्रतटपर नृसिंहका अवतार हुआ था । इस द्वितीय नृसिंहावतारमें रुद्र पुरोहित-पदपर आसीन थे । सातवें वैवस्वत-मन्वन्तरके त्रेतायुगमें, जब त्रिलोकीपर बलिका अधिकार था, उस समय तीसरा वामन-अवतार हुआ था । ( उस कार्यकालमें धर्म पुरोहितका पद सँभाल रहे थे । ) द्विजवरो ! भगवान् विष्णुकी ये तीन दिव्य उत्पत्तियाँ बतलायी गयी हैं । अब अन्य सात सम्भूतियाँ, जो भृगुके शापवश मानव-योनिमें हुई हैं, उन्हें सुनिये । प्रथम त्रेतायुगमें, जब धर्मका चतुर्थांश नष्ट हो गया था, भगवान् मार्कण्डेयको पुरोहित बनाकर दत्तात्रेयके रूपमें अवतीर्ण हुए थे । पंद्रहवें त्रेतायुगमें चक्रवर्ती मान्धाताके रूपमें पाँचवाँ अवतार हुआ था । उस समय पुरोहितका पद महर्षि तथ्य (उत्तथ्य) को मिला था । उन्नीसवें त्रेतायुगमें छठा अवतार जमदग्निनन्दन महाबली परशुराम-के रूपमें हुआ था, जो सम्पूर्ण क्षत्रिय-वंशके संहारक थे । उस समय महर्षि विश्वामित्र आदि सहायक बने थे । चौबीसवें त्रेतायुगमें सातवें अवतारके रूपमें रावणका वध करनेके लिये भगवान् श्रीराम महाराज दशरथके पुत्र-रूपमें उत्पन्न हुए थे । उस समय महर्षि वसिष्ठ पुरोहित थे । अट्ठाईसवें द्वापरयुगमें आठवें अवतारमें भगवान् विष्णु महर्षि पराशरसे वेदव्यासके रूपमें अवतीर्ण हुए । उस समय जातूकर्ण्यने पुरोहित-पदको सुशोभित किया ॥

कर्तुं धर्मव्यवस्थानमसुराणां प्रणाशनम् ।
बुद्धो नवमको जज्ञे तपसा पुष्करेक्षणः । देवसुन्दररूपेण द्वैपायनपुरःसरः ॥२४७॥

तस्मिन्नेव युगे क्षीणे संध्याशिष्टे भविष्यति ।
कल्की तु विष्णुयशसः पाराशर्यपुरःसरः । दशमो भाव्यसम्भूतो याज्ञवल्क्यपुरःसरः ॥२४८॥
सर्वांश्च भूतान् स्तिमितान् पाषण्डांश्चैव सर्वशः । प्रगृहीतायुधैर्विप्रैर्वृतः शतसहस्रशः ॥२४९॥
निःशेषः क्षुद्रराज्ञस्तु तदा स तु करिष्यति । ब्रह्मद्विषः सपत्नांस्तु संहृत्यैव च तद्वपुः ॥२५०॥
अष्टाविंशे स्थितः कल्किश्चरितार्थः ससैनिकः । शूद्रान् संशोधयित्वा तु समुद्रान्तं च वै स्वयम् ॥२५१॥
प्रवृत्तचक्रो बलवान् संहारं तु करिष्यति । उत्सादयित्वा वृषलान् प्रायशस्तानधार्मिकान् ॥२५२॥
ततस्तदा स वै कल्किश्चरितार्थः ससैनिकः । प्रजास्तं साधयित्वा तु समृद्धास्तेन वै स्वयम् ॥२५३॥
अकस्मात् कोपितान्योऽन्यं भविष्यन्तीह मोहिताः । क्षपयित्वा तु तेऽन्योऽन्यं भाविनार्थेन चोदिताः ॥२५४॥
ततः काले व्यतीते तु स देवोऽन्तरधीयत ।

धर्मकी विशेषरूपसे स्थापना और असुरोंका विनाश करनेके निमित्त नवें अवतारमें बुद्ध अवतीर्ण हुए। सुन्दर ( सौन्दरानन्दके नायक ) उनके सहचर रूपवाले थे। उनके नेत्र कमल-सरीखे थे। उनके पुरोहित महर्षि द्वैपायन थे। इसी युगकी समाप्तिके समय, जब संध्यामात्र अवशिष्ट रह जायगी, विष्णुयशाके पुत्ररूपमें कल्किका अवतार होगा। इसी भावी दसवें अवतारमें पराशर-पुत्र व्यास और याज्ञवल्क्य पुरोहितका कार्यभार सँभालेंगे। उस समय भगवान् कल्कि आयुधधारी सैकड़ों एवं सहस्रों विप्रोंको साथ लेकर चारों ओरसे धर्मविमुख जीवों, पाखण्डों और शूद्रवंशी राजाओंका सर्वथा विनाश कर डालेंगे; क्योंकि ब्रह्मद्वेषी शत्रुओंका संहार करनेके हेतु ही कल्कि-अवतार होता है। इस अट्ठाईसवें युगमें भगवान् कल्कि सेनासहित सफल-मनोरथ हो विराजमान रहेंगे। उस समय वे बलशाली भगवान् उन धर्महीन शूद्रोंका समूल विनाश करके अपने राज्यचक्रका विस्तार करते हुए पापियोंका संहार कर डालेंगे। तदुपरान्त कल्कि अपना कार्य पूरा करके सेनासहित विश्राम-लाभ करेंगे। उस समय सारी प्रजाएँ उनके प्रभावसे समृद्धिशालिनी होकर उनकी सेवामें लग जायँगी। तत्पश्चात् भावी कार्यसे प्रेरित हुई प्रजाएँ मोहित होकर अकस्मात् एक-दूसरेपर कुपित हो जायँगी और परस्पर लड़कर एक-दूसरेको मार डालेंगी। उस समय कार्यकाल समाप्त हो जानेपर भगवान् कल्कि भी अन्तर्हित हो जायँगे ॥ २४७—२५४½ ॥

नृपेष्वथ प्रणष्टेषु प्रजास्तां संग्रहात् तदा ॥२५५॥
रक्षणे विनिवृत्ते तु हत्वा चान्योऽन्यमाहवे । परस्परं निहत्वा तु निराक्रन्दाः सुदुःखिताः ॥२५६॥
पुराणि हित्वा ग्रामांश्च तुल्यत्वे निष्परिग्रहाः । प्रणष्टाश्रमधर्माश्च नष्टवर्णाश्रमास्तथा ॥२५७॥
अट्टशूला जानपदाः शिवशूलाश्चतुष्पथाः । प्रमदाः केशशूलिन्यो भविष्यन्ति युगक्षये ॥२५८॥
ह्रस्वदेहायुषश्चैव भविष्यन्ति वनौकसः । सरित्पर्वतवासिन्यो मूलपत्रफलाशनाः ॥२५९॥
चीरचर्माजिनधराः संकरं घोरमाश्रिताः । उत्पातदुःखाः स्वल्पार्था बहुबाधाश्च ताः प्रजाः ॥२६०॥
एवं कष्टमनुप्राप्ताः काले संध्यंशके तदा । ततः क्षयं गमिष्यन्ति सार्धं कलियुगेन तु ॥२६१॥
क्षीणे कलियुगे तस्मिंस्ततः कृतमवर्तत । इत्येतत् कीर्तितं सम्यग् देवासुरविचेष्टितम् ॥२६२॥
यदुवंशप्रसङ्गेन समासाद् वैष्णवं यशः । तुर्वसोस्तु प्रवक्ष्यामि पूरोर्द्रुह्योस्तथा ह्यनोः ॥२६३॥

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽसुरशापो नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥*

इस प्रकार प्रजाओंके संगठनसे राजाओंके नष्ट हो जानेपर जब कोई रक्षक नहीं रह जायगा, तब प्रजाएँ युद्धभूमिमें एक-दूसरेको मार डालेंगी। यों परस्पर मार-पीट कर वे आक्रन्दनरहित एवं अत्यन्त दुःखित हो जायँगी। फिर तो वे परिवारहीन होकर समानरूपसे ग्रामों एवं नगरोंको छोड़कर वनकी राह लेंगी। उनके वर्ण-धर्म तथा आश्रम-धर्म नष्ट हो जायँगे। कलियुगकी समाप्तिके समय देशवासी अन्न बेचने लगेंगे, चौराहोंपर शिवकी मूर्तियाँ

बिकने लगेंगी और स्त्रियाँ अपने शीलका विक्रय करेंगी अर्थात् वेश्या-कर्ममें प्रवृत्त हो जायँगी। लोगोंके कद छोटे होंगे। उनकी आयु स्वल्प होगी। वे वनमें तथा नदी-तट और पर्वतोंपर निवास करेंगे। कन्द-मूल, पत्तियाँ और फल ही उनके भोजन होंगे। वल्कल, पशु-चर्म और मृगचर्म ही उनके वस्त्र होंगे। वे सभी भयंकर वर्णसंकरत्वके आश्रित हो जायँगे। तरह-तरहके उपद्रवोंसे दुःखी रहेंगे। उनकी धन-सम्पत्ति घट जायगी और वे अनेकों बाधाओंसे घिरे रहेंगे। इस प्रकार कष्टका अनुभव करती हुई वे सारी प्रजाएँ उस संध्यांशके समय कलियुगके साथ ही नष्ट हो जायँगी। इस कलियुगके व्यतीत हो जानेपर कृतयुगका प्रारम्भ होगा। इस प्रकार मैंने पूर्णरूपसे देवताओं और असुरोंकी चेष्टाका तथा यदुवंशके वर्णन-प्रसङ्गमें संक्षेपरूपसे भगवान् विष्णु ( श्रीकृष्ण )के यशका वर्णन कर दिया। अब मैं तुर्वसु, पूरु, द्रुह्यु और अनुके वंशका क्रमशः वर्णन करूँगा॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमे असुर-शाप-नामक सैंतालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ४७॥

# अड़तालीसवाँ अध्याय

## तुर्वसु और द्रुह्युके वंशका वर्णन, अनुके वंश-वर्णनमें बलिकी कथा और कर्णकी उत्पत्तिका प्रसङ्ग

सूत उवाच

तुर्वसोस्तु सुतो गर्भो गोभानुस्तस्य चात्मजः। गोभानोस्तु सुतो वीरस्त्रिसारिरपराजितः॥ १॥
करंधमस्तु त्रैसारिर्मरुत्तस्तस्य चात्मजः। दुष्यन्तं पौरवं चापि स वै पुत्रमकल्पयत्॥ २॥
एवं ययातिशापेन जरासंक्रमणे पुरा। तुर्वसोः पौरवं वंशं प्रविवेश पुरा किल॥ ३॥
दुष्यन्तस्य तु दायादो वरूथो नाम पार्थिवः। वरूथात् तु तथाण्डीरः संधानस्तस्य चात्मजः॥ ४॥
पाण्ड्यश्च केरलश्चैव चोलः कर्णस्तथैव च। तेषां जनपदाः स्फीताः पाण्ड्याश्चोलाः सकेरलाः॥ ५॥
द्रुह्योस्तु तनयौ शूरौ सेतुः केतुस्तथैव च। सेतुपुत्रः शरद्वांस्तु गन्धारस्तस्य चात्मजः॥ ६॥
ख्यायते यस्य नाम्नासौ गान्धारविषयो महान्। आरट्टदेशजास्तस्य तुरगा वाजिनां वराः॥ ७॥
गन्धारपुत्रो धर्मस्तु धृतस्तस्यात्मजोऽभवत्। धृताच्च विदुषो जज्ञे प्रचेतास्तस्य चात्मजः॥ ८॥
प्रचेतसः पुत्रशतं राजानः सर्व एव ते। म्लेच्छराष्ट्राधिपाः सर्वे ह्युदीचीं दिशमाश्रिताः॥ ९॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! ( ययातिके पञ्चम पुत्र ) तुर्वसुका पुत्र गर्भ* और उसका पुत्र गोभानु हुआ। गोभानुका पुत्र अजेय शूरवीर त्रिसारि हुआ। त्रिसारिका† पुत्र करंधम और उसका पुत्र मरुत्त हुआ। उसने ( संतानरहित होनेके कारण ) पुरुवंशी दुष्यन्तको अपना पुत्र बनाया। इस प्रकार पूर्वकालमें वृद्धावस्थाके परिवर्तनके समय ययातिद्वारा दिये गये शापके कारण तुर्वसुका वंश पूरु-वंशमें प्रविष्ट हो गया था।‡ दुष्यन्तका पुत्र राजा वरूथ§ था। वरूथसे आण्डीर ( भुवमन्यु )की उत्पत्ति हुई। आण्डीरके संधान, पाण्ड्य,

* ऋग्वेदमे यह उर्वश है और ४। ३०। १६ से १०। ६२। १० तक निरन्तर अपने सभी उपर्युक्त भाइयोंके साथ वर्णित है। भागवत ९। २३। १६ तथा विष्णुपुराण ४। १६। ३ आदिमें तुर्वसके पुत्रका नाम 'वह्नि' और उसके पुत्रका नाम 'गोभानु'की जगह 'भर्ग' बतलाया गया है। † अन्यत्र प्रायः सर्वत्र इसका 'त्रिसारि'की जगह 'त्रिभानु' नाम आया है। ‡ तुर्वसुके वंशके पौरव वंशमे प्रविष्ट होनेकी कथा सभी पुराणोमें ( विशेषकर वायु ९९। ५, ब्रह्माण्ड-३। ७५। ७ तथा विष्णुपुराण ४। १६। ६मे बहुत ) स्पष्ट रूपसे आयी है।

§ इनके दूसरे नाम वितथ एवं भरद्वाज भी हैं।

केरल, चोल और कर्ण नामक पाँच पुत्र हुए। उनके समृद्धिशाली देश उन्हींके नामपर पाण्ड्य, चोल और केरल नामसे प्रसिद्ध हुए। (ययातिके चतुर्थ पुत्र) द्रुह्युके सेतु और केतु (अन्यत्र सर्वत्र बभ्रु) नामक दो शूरवीर पुत्र उत्पन्न हुए। सेतुका पुत्र शरद्वान् और उसका पुत्र गन्धार हुआ, जिसके नामसे यह विशाल गान्धार जनपद विख्यात है। उस जनपदके आरट्ट* (पंजाबका पश्चिमी भाग) प्रदेशमें उत्पन्न हुए घोड़े अश्वजातिमें सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं। गन्धारका पुत्र धर्म और उसका पुत्र धृत हुआ। धृतसे विदुषका जन्म हुआ और उसका पुत्र प्रचेता हुआ। प्रचेताके सौ पुत्र हुए, जो सब-के-सब राजा हुए। वे सभी उत्तर दिशामें स्थित म्लेच्छ-राज्योंके अधीश्वर थे॥ १—९॥

**अनोश्चैव सुता वीरास्त्रयः परमधार्मिकाः। सभानरश्चाक्षुषश्च परमेषुस्तथैव च॥ १०॥**
**सभानरस्य पुत्रस्तु विद्वान् कोलाहलो नृपः। कोलाहलस्य धर्मात्मा संजयो नाम विश्रुतः॥ ११॥**
**संजयस्याभवत् पुत्रो वीरो नाम पुरंजयः। जनमेजयो महाराजः पुरंजयसुतोऽभवत्॥ १२॥**
**जनमेजयस्य राजर्षेर्महाशालोऽभवत् सुतः। आसीदिन्द्रसमो राजा प्रतिष्ठितयशाभवत्॥ १३॥**
**महामनाः सुतस्तस्य महाशालस्य धार्मिकः। सप्तद्वीपेश्वरो जज्ञे चक्रवर्ती महामनाः॥ १४॥**
**महामनास्तु द्वौ पुत्रौ जनयामास विश्रुतौ। उशीनरं च धर्मज्ञं तितिक्षुं चैव तावुभौ॥ १५॥**
**उशीनरस्य पत्न्यस्तु पञ्च राजर्षिसम्भवाः। भृशा कृशा नवा दर्शा या च देवी दृषद्वती॥ १६॥**
**उशीनरस्य पुत्रास्तु तासु जाताः कुलोद्वहाः। तपसा ते तु महता जाता वृद्धस्य धार्मिकाः॥ १७॥**
**भृशायास्तु नृगः पुत्रो नवाया नव एव च।**
**कृशायास्तु कृशो जज्ञे दर्शायाः सुव्रतोऽभवत्। दृषद्वत्याः सुतश्चापि शिविरौशीनरो नृपः॥ १८॥**
**शिबेस्तु शिवयः पुत्राश्चत्वारो लोकविश्रुताः। पृथुदर्भः सुवीरश्च केकयो मद्रकस्तथा॥ १९॥**
**तेषां जनपदाः स्फीताः कैकया मद्रकास्तथा। सौवीराश्चैव पौराश्च नृगस्य केकयास्तथा॥ २०॥**
**सुव्रतस्य तथाम्बष्ठा कृशस्य वृषला पुरी। नवस्य नवराष्ट्रं तु तितिक्षोस्तु प्रजां शृणु॥ २१॥**

(ययातिके तृतीय पुत्र) अनुके सभानर, चाक्षुष और परमेषु नामक तीन शूरवीर एवं परम धार्मिक पुत्र उत्पन्न हुए। सभानरका पुत्र विद्वान् राजा कोलाहल हुआ। कोलाहलका धर्मात्मा पुत्र संजय नामसे विख्यात था। संजयका पुरंजय नामक वीरवर पुत्र हुआ। महाराज जनमेजय (प्रथम) पुरंजयके पुत्र हुए। राजर्षि जनमेजयसे महाशाल नामक पुत्र पैदा हुआ, जो इन्द्र-तुल्य तेजस्वी एवं प्रतिष्ठित कीर्तिवाला राजा हुआ। उन महाशालके महामना नामक पुत्र पैदा हुआ, जो परम धर्मात्मा, महान् मनस्वी तथा सातों द्वीपोंका अधीश्वर चक्रवर्ती सम्राट् हुआ। महामनाने दो पुत्रोंको जन्म दिया। वे दोनों धर्मज्ञ उशीनर और तितिक्षु नामसे विख्यात हुए। उशीनरकी भृशा, कृशा, नवा, दर्शा और देवी दृषद्वती—ये पाँच पत्नियाँ थीं, जो सभी राजर्षियोंकी कन्याएँ थीं। उनके गर्भसे उशीनरके परम धर्मात्मा एवं कुलवर्धक पुत्र उत्पन्न हुए थे। वे सभी उशीनरकी वृद्धावस्थामें महान् तपके फलस्वरूप पैदा हुए थे। भृशाका पुत्र नृग और नवाका पुत्र नव हुआ। कृशाने कृशको जन्म दिया। दर्शाके सुव्रत नामक पुत्र हुआ। दृषद्वतीके पुत्र उशीनर-नन्दन राजा शिवि हुए। शिविके पृथुदर्भ, सुवीर, केकय और मद्रक नामक चार विश्वविख्यात पुत्र हुए। ये सभी शिविगण नामसे भी प्रसिद्ध थे। इनके समृद्धिशाली जनपद केकय (व्यास और शतलजके मध्य पंजाबका

* इस प्रदेशकी महाभारत, कर्णपर्व ४४। ३७-३८ (श्लो०) से ४५ (श्लोक ३० तक) अध्यायोंतकमें चर्चा एवं आलोचना है।

पश्चिमोत्तर भाग ), मद्रक, सौवीर ( सिंधका उत्तरी भाग ) और पौर नामसे विख्यात थे। नृगका जनपद केकय और सुव्रतका अम्बष्ठ नामसे प्रसिद्ध था। कुशकी राजधानी वृषलापुरी थी। नव नवराष्ट्रके अधीश्वर थे। अब तितिक्षुकी संततिका वर्णन सुनिये ॥ १०–२१ ॥

तितिक्षुरभवद् राजा पूर्वस्यां दिशि विश्रुतः। वृषद्रथः सुतस्तस्य तस्य सेनोऽभवत् सुतः ॥ २२ ॥
सेनस्य सुतपा जज्ञे सुतपस्तनयो बलिः। जातो मानुषयोन्या तु क्षीणे वंशे प्रजेच्छया ॥ २३ ॥
महायोगी तु स बलिर्बद्धो बन्धैर्महात्मना। पुत्रानुत्पादयामास क्षेत्रजान् पञ्च पार्थिवान् ॥ २४ ॥
अङ्गं स जनयामास वङ्गं सुह्मं तथैव च।
पुण्ड्रं कलिङ्गं च तथा बालेयं क्षेत्रमुच्यते। बालेया ब्राह्मणाश्चैव तस्य वंशकराः प्रभोः ॥ २५ ॥
बलेश्च ब्रह्मणा दत्तो वरः प्रीतेन धीमतः। महायोगित्वमायुश्च कल्पस्य परिमाणकम् ॥ २६ ॥
संग्रामे चाप्यजेयत्वं धर्मे चैवोत्तमा मतिः। त्रैकाल्यदर्शनं चैव प्राधान्यं प्रसवे तथा ॥ २७ ॥
जयं चाप्रतिमं युद्धे धर्मे तत्त्वार्थदर्शनम्। चतुरो नियतान् वर्णान् स वै स्थापयिता प्रभुः ॥ २८ ॥
तेषां च पञ्च दायादा वङ्गाङ्गाः सुह्मकास्तथा। पुण्ड्राः कलिङ्गाश्च तथा अङ्गस्य तु निबोधत ॥ २९ ॥

ऋषय ऊचुः

कथं बलेः सुता जाताः पञ्च तस्य महात्मनः। किं नाम्नी महिषी तस्य जनिता कतमो ऋषिः ॥ ३० ॥
कथं चोत्पादितास्तेन तन्नः प्रब्रूहि पृच्छताम्। माहात्म्यं च प्रभावं च निखिलेन वदस्व तत् ॥ ३१ ॥

सूत उवाच

अथोशिज इति ख्यात आसीद् विद्वान् ऋषिः पुरा। पत्नी वै ममता नाम बभूवास्य महात्मनः ॥ ३२ ॥
उशिजस्य यवीयान् वै भ्रातृपत्नीमकामयत्। बृहस्पतिर्महातेजा ममतामेत्य कामतः ॥ ३३ ॥
उवाच ममता तं तु देवरं वरवर्णिनी। अन्तर्वत्न्यस्मि ते भ्रातुर्ज्येष्ठस्य तु विरम्यताम् ॥ ३४ ॥
अयं तु मे महाभाग गर्भः कुप्येद् बृहस्पते। औशिजो भ्रातृजन्यस्ते सोपाङ्गं वेदमुद्गिरन् ॥ ३५ ॥
अमोघरेतास्त्वं चापि न मां भजितुमर्हसि। अस्मिन्नेवं गते काले यथा वा मन्यसे प्रभो ॥ ३६ ॥
एवमुक्तस्तथा सम्यग् बृहत्तेजा बृहस्पतिः। कामात्मा स महात्मापि न मनः सोऽभ्यवारयत् ॥ ३७ ॥
सम्बभूवैव धर्मात्मा तया सार्धमकामया। उत्सृजन्तं तु तद्रेतो वाचं गर्भोऽभ्यभाषत ॥ ३८ ॥
भो तात वाचामधिप द्वयोर्नास्तीह संस्थितिः। अमोघरेतास्त्वं चापि पूर्वं चाहमिहागतः ॥ ३९ ॥
सोऽशपत् तं ततः क्रुद्ध एवमुक्तो बृहस्पतिः। पुत्रं ज्येष्ठस्य वै भ्रातुर्गर्भस्थं भगवानृषिः ॥ ४० ॥
यस्मात् त्वमीदृशे काले गर्भस्थोऽपि निषेधसि। मामेवमुक्तवांस्तस्मात् तमो दीर्घं प्रवेक्ष्यसि ॥ ४१ ॥
ततो दीर्घतमा नाम शापादृषिरजायत। अथौशिजो बृहत्कीर्तिर्बृहस्पतिरिवौजसा ॥ ४२ ॥
ऊर्ध्वरेतास्ततोऽसौ वै वसते भ्रातुराश्रमे। स धर्मान् सौरभेयांस्तु वृषभाच्छ्रुतवांस्ततः ॥ ४३ ॥
तस्य भ्राता पितृव्यो यश्चकार भरणं तदा। तस्मिन् निवसतस्तस्य यदृच्छैवागतो वृषः ॥ ४४ ॥
यज्ञार्थमाहृतान् दर्भांश्चचार सुरभीसुतः। जग्राह तं दीर्घतमाः शृङ्गयोस्तु चतुष्पदम् ॥ ४५ ॥
तेनासौ निगृहीतश्च न चचाल पदात् पदम्। ततोऽब्रवीद् वृषस्तं वै मुञ्च मां बलिनां वर ॥ ४६ ॥
न मयाऽऽसादितस्तात बलवांस्त्वत्समः क्वचित्।
मम चान्यः समो वापि न हि मे बलसंख्यया। मुञ्च तातेति च पुनः प्रीतस्तेऽहं वरं वृणु ॥ ४७ ॥
एवमुक्तोऽब्रवीदेनं जीवन्मे त्वं क्व यास्यसि। एष त्वां न विमोक्ष्यामि परस्वादं चतुष्पदम् ॥ ४८ ॥

वृषभ उवाच

नास्माकं विद्यते तात पातकं स्तेयमेव च। भक्ष्याभक्ष्यं तथा चैव पेयापेयं तथैव च ॥ ४९ ॥
द्विपदां बहवो ह्येते धर्म एष गवां स्मृतः। कार्याकार्यं न वागम्यागमनं च तथैव च ॥ ५० ॥

तितिक्षु पूर्व दिशामें विख्यात राजा हुआ। उसका पुत्र वृषद्रथ और वृषद्रथका पुत्र सेन हुआ। सेनके सुतपा नामक पुत्र उत्पन्न हुआ और सुतपाका पुत्र बलि हुआ। महायोगी बलि अपने वंशके नष्ट हो जानेपर संतानकी कामनासे मानव-योनिमें उत्पन्न हुआ था। इसे महान् आत्मबलसे सम्पन्न भगवान् विष्णुने वामन रूपसे बन्धनोंद्वारा बाँध लिया था। राजा बलिने पाँच क्षेत्रज पुत्रोंको जन्म दिया, जो सभी आगे चलकर पृथ्वीपति हुए। उसने अङ्ग, वङ्ग, सुह्म, पुण्ड्र और कलिङ्ग नामक पुत्रोंको पैदा किया, जो बलिके क्षेत्रज पुत्र कहलाते हैं। ये बलिपुत्र ब्राह्मणसे उत्पन्न होनेके कारण ब्राह्मण थे और सामर्थ्यशाली बलिके वंशप्रवर्तक हुए। पूर्वकालमें ब्रह्माने प्रसन्न होकर बुद्धिमान् बलिको ऐसा वरदान दिया था कि 'तुम महान् योगी होगे। कल्पपर्यन्त परिमाणवाली तुम्हारी आयु होगी। तुम संग्राममें किसीसे पराजित नहीं होगे। धर्मके विषयमें तुम्हारी बुद्धि उत्तम होगी। तुम त्रिकालदर्शी और असुरवंशमें प्रधान होगे। युद्धमें तुम्हें अनुपम विजय प्राप्त होगी। धर्मके विषयमें तुम तत्त्वार्थदर्शी होगे।' इसीके परिणामस्वरूप सामर्थ्यशाली बलि चारों नियत (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) वर्णोंकी स्थापना करनेवाला हुआ। बलिके पाँचों क्षेत्रज पुत्रोंके वंश भी उन्हींके नामपर अङ्ग, वङ्ग, सुह्मक, पुण्ड्र और कलिङ्ग नामसे विख्यात हुए*। उनमें अङ्गके वंशका वर्णन सुनिये ॥ २२—५० ॥

सूत उवाच

गवां धर्मं तु वै श्रुत्वा सम्भ्रान्तस्तु विसृज्य तम्। शक्त्यान्नपानदानात् तु गोपतिं सम्प्रसादयत् ॥ ५१ ॥
प्रसादिते गते तस्मिन् गोधर्मं भक्तितस्तु सः। मनसैव समादध्यौ तन्निष्ठस्तत्परो हि सः ॥ ५२ ॥
ततो यवीयसः पत्नीं गौतमस्याभ्यपद्यत। कृतावलेपां तां मत्वा सोऽनड्वानिव न क्षमे ॥ ५३ ॥
गोधर्मं तु परं मत्वा स्नुषां तामभ्यपद्यत। निर्भर्त्स्य चैनं रुद्ध्वा च बाहुभ्यां सम्प्रगृह्य च ॥ ५४ ॥
भाव्यमर्थं तु तं ज्ञात्वा माहात्म्यात् तमुवाच सा। विपर्ययं तु त्वं लब्ध्वा अनड्वानिव वर्तसे ॥ ५५ ॥
गम्यागम्यं न जानीषे गोधर्मात् प्रार्थयन् सुताम्। दुर्वृत्तं त्वां त्यजाम्यद्य गच्छ त्वं स्वेन कर्मणा ॥ ५६ ॥
काष्ठे समुद्रे प्रक्षिप्य गङ्गाम्भसि समुत्सृजत्। तस्मात् त्वमन्धो वृद्धश्च भर्तव्यो दुरधिष्ठितः ॥ ५७ ॥
तमुह्यमानं वेगेन स्रोतसोऽभ्याशमागतः। जग्राह तं स धर्मात्मा बलिर्वैरोचनिस्तदा ॥ ५८ ॥
अन्तःपुरे जुगोपैनं भक्ष्यभोज्यैश्च तर्पयन्। प्रीतश्चैवं वरेणैवच्छन्दयामास वै बलिम् ॥ ५९ ॥
तस्माच्च स वरं वव्रे पुत्रार्थं दानवर्षभः।
संतानार्थं महाभाग भार्यायां मम मानद। पुत्रान् धर्मार्थतत्त्वज्ञानुत्पादयितुमर्हसि ॥ ६० ॥
एवमुक्तोऽथ देवर्षिस्तथास्त्वित्युक्तवान् प्रभुः।
स तस्य राजा स्वां भार्यां सुदेष्णां नाम प्राहिणोत्। अन्धं वृद्धं च तं ज्ञात्वा न सा देवी जगाम ह ॥ ६१ ॥
शूद्रां धात्रेयिकां तस्मादन्धाय प्राहिणोत् तदा। तस्यां काक्षीवदादींश्च शूद्रयोनावृषिर्वशी ॥ ६२ ॥
जनयामास धर्मात्मा शूद्रानित्येवमादिकम्। उवाच तं बली राजा दृष्ट्वा काक्षीवदादिकान् ॥ ६३ ॥

राजोवाच

प्रवीणानृषिधर्मस्य चेश्वरान् ब्रह्मवादिनः। विद्वान् प्रत्यक्षधर्माणां बुद्धिमान् वृत्तिमाञ्छुचीन् ॥ ६४ ॥
ममैव चेति होवाच तं दीर्घतमसं बलिः। नेत्युवाच मुनिस्तं वै ममैवमिति चाब्रवीत् ॥ ६५ ॥
उत्पन्नाः शूद्रयोनौ तु भवच्छन्देऽसुरोत्तम।
अन्धं वृद्धं च मां ज्ञात्वा सुदेष्णा महिषी तव। प्राहिणोदवमानान्मे शूद्रां धात्रेयिकां नृप ॥ ६६ ॥

---

* इनके वंशजातिवालोंके कारण ये जनपद भी इन्हीं नामोंसे प्रसिद्ध हुए। इनमें अङ्ग—भागलपुर, वङ्ग—पश्चिम बंगाल, सुह्म—आसाम, पुण्ड्र—आजका बंगला देश तथा कलिङ्ग—उड़ीसा है।

ततः प्रसादयामास बलिस्तमृषिसत्तमम् । बलिः सुदेष्णां तां भार्यां भर्त्सयामास दानवः ॥ ६७ ॥
पुनश्चैनामलङ्कृत्य ऋषये प्रत्यपादयत् । तां स दीर्घतमा देवीं तथा कृतवतीं तदा ॥ ६८ ॥
दध्ना लवणमिश्रेण त्वभ्यक्तं मधुकेन तु ।
लिह मामजुगुप्सन्ती आपादतलमस्तकम् । ततस्त्वं प्राप्स्यसे देवि पुत्रान् वै मनसेप्सितान्॥ ६९ ॥
तस्य सा तद्वचो देवी सर्वं कृतवती तदा । तस्य सापानमासाद्य देवी पर्यहरत् तदा ॥ ७० ॥
तामुवाच ततः सोऽथ यत् ते परिहृतं शुभे । विनापानं कुमारं तु जनयिष्यसि पूर्वजम् ॥ ७१ ॥

सुदेष्णोवाच

नार्हसि त्वं महाभाग पुत्रं मे दातुमीदृशम् । तोषितश्च यथाशक्ति प्रसादं कुरु मे प्रभो ॥ ७२ ॥

दीर्घतमा उवाच

तवापचाराद् देव्येष नान्यथा भविता शुभे । नैव दास्यति पुत्रस्ते पौत्रो वै दास्यते फलम् ॥ ७३ ॥
तस्यापानं विना चैव योग्यभावो भविष्यति । तस्माद् दीर्घतमाङ्गेषु कुक्षौ स्पृष्ट्वेदमब्रवीत् ॥ ७४ ॥
प्राशितं यद्यदङ्गेषु न सोपस्थं शुचिस्मिते । तेन तिष्ठन्ति ते गर्भे पौर्णमास्यामिवोडुराट् ॥ ७५ ॥
भविष्यन्ति कुमारास्तु पञ्च देवसुतोपमाः । तेजस्विनः सुवृत्ताश्च यज्वानो धार्मिकाश्च ते ॥ ७६ ॥

सूत उवाच

ततंशस्तु सुदेष्णाया ज्येष्ठः पुत्रो व्यजायत । अङ्गस्तथा कलिङ्गश्च पुण्ड्रः सुह्मस्तथैव च ॥ ७७ ॥
वङ्गराजस्तु पञ्चैते बलेः पुत्राश्च क्षेत्रजाः । यस्यैते दीर्घतमसा बलेर्दत्ताः सुतास्तथा ॥ ७८ ॥
प्रतिष्ठामागतानां हि ब्राह्मण्यं कारणं्ततः । ततो मानुषयोन्यां स जनयामास वै प्रजाः ॥ ७९ ॥
ततस्तं दीर्घतमसं सुरभिर्वाक्यमब्रवीत् । विचार्य यस्माद् गोधर्मं प्रमाणं ते कृतं विभो ॥ ८० ॥
भक्त्या चानन्ययास्मासु तेन प्रीतास्मि तेऽनघ । तस्मात् तुभ्यं तमो दीर्घमाघ्रायापनुदामि वै ॥ ८१ ॥
बार्हस्पत्यस्तथैवैष पाप्मा वै तिष्ठति त्वयि । जरां मृत्युं तमश्चैव आघ्रायापनुदामि ते ॥ ८२ ॥
सद्यः स घ्रातमात्रस्तु अभितो मुनिसत्तमः । आयुष्मांश्च वपुष्मांश्च चक्षुष्मांश्च ततोऽभवत्॥ ८३ ॥

ऋषियो ! दीर्घतमाके प्रभावसे सुदेष्णाका जो ज्येष्ठ पुत्र उत्पन्न हुआ, उसका नाम अङ्ग था । तत्पश्चात् कलिङ्ग, पुण्ड्र, सुह्म और वङ्गराजका जन्म हुआ । ये पाँचों दैत्यराज बलिके क्षेत्रज पुत्र थे । ये सभी पुत्र महर्षि दीर्घतमाद्वारा बलिको प्रदान किये गये थे । तदनन्तर उन्होंने मानव-योनिमें कई संतानें उत्पन्न कीं । एक बार सुरभि ( गौ ) दीर्घतमाके पास आकर उनसे बोले—'विभो ! आपने हमलोगोके प्रति अनन्य-भक्ति होनेके कारण भलीभाँति विचारकर पशु-धर्मको प्रमाणित कर दिया है, इसलिये मैं आपपर परम प्रसन्न हूँ । अनघ ! आपके शरीरमें बृहस्पतिका अंशभूत जो यह पाप स्थित है, उस घोर अंधकारको सूँघकर मै आपसे दूर किये देती हूँ । साथ ही आपके शरीरसे बुढ़ापा, मृत्यु और अंधकारको भी सूँघकर हटा दे रही हूँ ।' ( ऐसा कहकर सुरभिने उनके शरीरको सूँघा । ) सुरभिके सूँघते ही वे मुनिश्रेष्ठ दीर्घतमा तुरंत दीर्घ आयु, सौन्दर्यशाली शरीर और सुन्दर नेत्रोंसे युक्त हो गये ॥ ५१—८३ ॥

गोऽभ्याहते तमसि वै गौतमस्तु ततोऽभवत् । कक्षीवांस्तु ततो गत्वा सह पित्रा गिरिव्रजम् ॥ ८४ ॥
दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा पितुर्वै स ह्यपविष्टश्चिरं तपः । ततः कालेन महता तपसा भावितस्तु सः ॥ ८५ ॥
विधूय मातृजं कायं ब्राह्मणं प्राप्तवान् विभुः । ततोऽब्रवीत् पिता तं वै पुत्रवानस्म्यहं त्वया ॥ ८६ ॥
सत्पुत्रेण तु धर्मज्ञ कृतार्थोऽहं यशस्विना । युक्त्वाऽऽत्मानं ततोऽसौ वै प्राप्तवान् ब्रह्मणः क्षयम्॥ ८७ ॥
ब्राह्मण्यं प्राप्य काक्षीवान् सहस्रमसृजत् सुतान् । कौष्माण्डा गौतमाश्चैव स्मृताः काक्षीवतः सुताः॥ ८८ ॥
इत्येष दीर्घतमसो बलेर्वैरोचनस्य च । समागमो वः कथितः सन्ततिश्चोभयोस्तथा ॥ ८९ ॥

इस प्रकार गौद्वारा अंधकारके नष्ट कर दिये जानेपर वे गौतम नामसे प्रसिद्ध हुए। तदनन्तर कक्षीवान् अपने पिता गौतमके साथ गिरिव्रजको जाकर उन्हींके साथ निवास करता हुआ चिरकालिक तपस्यामें संलग्न हो गया। वहाँ वह नित्य पिताका दर्शन और स्पर्श करता था। दीर्घकालके पश्चात् महान् तपस्यासे शुद्ध हुए कक्षीवान्ने शूद्रा माताके गर्भसे उत्पन्न हुए शरीरको तपाकर ब्राह्मणत्वकी प्राप्ति कर ली। तब पिता गौतमने उससे कहा—'बेटा! तुम्हारे-जैसे यशस्वी सत्पुत्रसे मैं पुत्रवान् हो गया हूँ। धर्मज्ञ! अब मैं कृतार्थ हो गया।' ऐसा कहकर गौतम अपने शरीरका त्याग कर ब्रह्मलोकको चले गये। ब्राह्मणत्वकी प्राप्ति करके कक्षीवान्ने हजारों पुत्रोंको उत्पन्न किया। कक्षीवान्के वे पुत्र कौष्माण्ड और गौतम नामसे विख्यात हुए॥८४—८९॥

**बलिस्तानभिनन्द्याह पञ्च पुत्रानकल्मषान्। कृतार्थः सोऽपि धर्मात्मा योगमायावृतः स्वयम्॥ ९०॥**
**अदृश्यः सर्वभूतानां कालापेक्षः स वै प्रभुः। तत्राङ्गस्य तु दायादो राजासीद् दधिवाहनः॥ ९१॥**
**दधिवाहनपुत्रस्तु राजा दिविरथः स्मृतः। आसीद् दिविरथापत्यं विद्वान् धर्मरथो नृपः॥ ९२॥**
**स हि धर्मरथः श्रीमांस्तेन विष्णुपदे गिरौ। सोमः शुक्रेण वै राज्ञा सह पीतो महात्मना॥ ९३॥**
**अथ धर्मरथस्याभूत् पुत्रश्चित्ररथः किल। तस्य सत्यरथः पुत्रस्तस्माद् दशरथः किल॥ ९४॥**
**लोमपाद इति ख्यातस्तस्य शान्ता सुताभवत्। अथ दाशरथिर्वीरश्चतुरङ्गो महायशाः॥ ९५॥**
**ऋष्यशृङ्गप्रसादेन जज्ञे स्वकुलवर्धनः। चतुरङ्गस्य पुत्रस्तु पृथुलाक्ष इति स्मृतः॥ ९६॥**
**पृथुलाक्षसुतश्चापि चम्पनामा बभूव ह। चम्पस्य तु पुरी चम्पा पूर्वं या मालिनी भवत्॥ ९७॥**
**पूर्णभद्रप्रसादेन हर्यङ्गोऽस्य सुतोऽभवत्। यज्ञे विभाण्डकाच्चास्य वारणः शत्रुवारणः॥ ९८॥**
**अवतारयामास महीं मन्त्रैर्वाहनमुत्तमम्। हर्यङ्गस्य तु दायादो जातो भद्ररथः किल॥ ९९॥**
**अथ भद्ररथस्यासीद् बृहत्कर्मा जनेश्वरः। बृहद्भानुः सुतस्तस्य तस्माज्जज्ञे महात्मवान्॥१००॥**
**बृहद्भानुस्तु राजेन्द्रो जनयामास वै सुतम्। नाम्ना जयद्रथं नाम तस्माद् बृहद्रथो नृपः॥१०१॥**
**आसीद् बृहद्रथाच्चैव विश्वजिज्जनमेजयः। दायादस्तस्य चाङ्गो वै तस्मात् कर्णोऽभवन्नृपः॥१०२॥**
**कर्णस्य वृषसेनस्तु पृथुसेनस्तथात्मजः।**
**एतेऽङ्गस्यात्मजाः सर्वे राजानः कीर्तिता मया। विस्तरेणानुपूर्व्याच्च पूरोस्तु शृणुत द्विजाः॥१०३॥**

इधर बलिने अपने पाँचों निष्पाप पुत्रोंका अभिनन्दन करके उनसे कहा—'पुत्रो! मैं कृतार्थ हो गया।' स्वयं धर्मात्मा एवं सामर्थ्यशाली बलि योगमायासे समावृत था। वह सम्पूर्ण प्राणियोंसे अदृश्य रहकर कालकी प्रतीक्षा कर रहा था। उन पुत्रोंमें अङ्गका पुत्र राजा दधिवाहन हुआ। राजा दिविरथ दधिवाहनके पुत्र कहे जाते हैं। दिविरथका पुत्र विद्वान् राजा धर्मरथ था। ये धर्मरथ बड़े सम्पत्तिशाली नरेश थे। इन्होंने विष्णुपद पर्वतपर महात्मा शुक्राचार्यके साथ सोमरसका पान किया था। धर्मरथका पुत्र चित्ररथ हुआ। उसका पुत्र सत्यरथ हुआ और उससे दशरथका जन्म हुआ, जो लोमपाद नामसे विख्यात था। उसके शान्ता नामकी एक (दत्रिमा) कन्या हुई थी। दशरथका पुत्र महायशस्वी शूरवीर चतुरङ्ग हुआ। चतुरङ्गका पुत्र पृथुलाक्ष नामसे प्रसिद्ध हुआ। अपने कुलकी वृद्धि करनेवाला यह पृथुलाक्ष महर्षि ऋष्यशृङ्गकी कृपासे पैदा हुआ था। पृथुलाक्षके चम्प नामक पुत्र हुआ। चम्पकी राजधानीका नाम चम्पा (भागलपुर) था, जो पहले मालिनी नामसे प्रसिद्ध थी। पूर्णभद्रकी कृपासे चम्पका पुत्र हर्यङ्ग हुआ। इस राजाके यज्ञमें महर्षि विभाण्डकने

मन्त्रोंद्वारा एक ऐसे हस्तीको भूतलपर अवतीर्ण किया था, जो शत्रुओंको विमुख कर देनेवाला एवं उत्तम वाहन था। हर्यङ्गका पुत्र भद्ररथ पैदा हुआ। भद्ररथका पुत्र राजा बृहत्कर्मा हुआ। उसका पुत्र बृहद्भानु हुआ। उससे महात्मवान्‌का जन्म हुआ। राजेन्द्र बृहद्भानुने एक अन्य पुत्रको भी उत्पन्न किया था, जिसका नाम जयद्रथ था। उससे राजा बृहद्रथका जन्म हुआ। बृहद्रथसे विश्वविजयी जनमेजय पैदा हुआ था। उसका पुत्र अङ्ग था और उससे राजा कर्णकी उत्पत्ति हुई थी। कर्णका वृषसेन और उसका पुत्र पृथुसेन हुआ। द्विजवरो! ये सभी राजा अङ्गके वंशमें उत्पन्न हुए थे, मैंने इनका आनुपूर्वी विस्तारपूर्वक वर्णन कर दिया। अब आपलोग पूरुके वंशका वर्णन सुनिये ॥ ९०—१०३ ॥

ऋषय ऊचुः

कथं सूतात्मजः कर्णः कथमङ्गस्य चात्मजः। एतदिच्छामहे श्रोतुमत्यन्तकुशलो ह्यसि ॥१०४॥

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! कर्ण कैसे अधिरथ सूतके पुत्र थे, पुनः किस प्रकार अङ्गके पुत्र कहलाये? इस रहस्यको सुननेकी हम-लोगोंकी उत्कट इच्छा है, इसका वर्णन कीजिये; क्योंकि आप कथा कहनेमें परम प्रवीण हैं ॥ १०४ ॥

सूत उवाच

बृहद्भानुसुतो जज्ञे राजा नाम्ना बृहन्मनाः।
तस्य पत्नीद्वयं ह्यासीच्छैब्यस्य तनये ह्युभे। यशोदेवी च सत्या च तयोर्वंशं च मे शृणु ॥१०५॥
जयद्रथं तु राजानं यशोदेवी ह्यजीजनत्। सा बृहन्मनसः सत्या विजयं नाम विश्रुतम् ॥१०६॥
विजयस्य बृहत्पुत्रस्तस्य पुत्रो बृहद्रथः। बृहद्रथस्य पुत्रस्तु सत्यकर्मा महामनाः ॥१०७॥
सत्यकर्मणोऽधिरथः सूतश्चाधिरथः स्मृतः।
यः कर्णं प्रतिजग्राह तेन कर्णस्तु सूतजः। तच्चेदं सर्वमाख्यातं कर्णं प्रति यथोदितम् ॥१०८॥

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशेऽष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥*

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! बृहद्भानुका पुत्र बृहन्मना नामका राजा हुआ। उसके दो पत्नियाँ थीं। वे दोनों शैब्यकी कन्याएँ थीं। उनका नाम यशोदेवी और सत्या था। अब मुझसे उन दोनोंका वंश-वर्णन सुनिये। बृहन्मनाके संयोगसे यशोदेवीने राजा जयद्रथको और सत्याने विश्वविख्यात विजयको जन्म दिया था। विजयका पुत्र बृहत्पुत्र और उसका पुत्र बृहद्रथ हुआ। बृहद्रथका पुत्र महामना सत्यकर्मा हुआ। सत्यकर्माका पुत्र अधिरथ हुआ। यही अधिरथ सूत नामसे भी विख्यात था, जिसने ( गङ्गामें बहते हुए ) कर्णको पकड़ा था। इसी कारण कर्ण सूत-पुत्र कहे जाते हैं। इस प्रकार कर्णके प्रति जो किंवदन्ती फैली है, उसे पूर्णतया मैंने आपलोगोंसे कह दिया ॥ १०५—१०८ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके सोमवंश-वर्णन-प्रसङ्गमें अड़तालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ४८ ॥

# उनचासवाँ अध्याय

## पूरु-वंशके वर्णन-प्रसङ्गमें भरत-वंशकी कथा, भरद्वाजकी उत्पत्ति और उनके वंशका कथन, नीप-वंशका वर्णन तथा पौरवोंका इतिहास

सूत उवाच

पूरोः पुत्रो महातेजा राजा स जनमेजयः। प्राचीत्वतः सुतस्तस्य यः प्राचीमकरोद् दिशम् ॥ १ ॥
प्राचीत्वतस्य तनयो मनस्युश्च तथाभवत्। राजा वी(पी)तायुधो नाम मनस्योरभवत् सुतः ॥ २ ॥
दायादस्तस्य चाप्यासीद् धुन्धुर्नाम महीपतिः। धुन्धोर्बहुविधः पुत्रः संयातिस्तस्य चात्मजः ॥ ३ ॥
संयातेस्तु रहंवर्चा भद्राश्वस्तस्य चात्मजः। भद्राश्वस्य घृतायां तु दशाप्सरसि सूनवः ॥ ४ ॥
औचेयुश्च हृषेयुश्च कक्षेयुश्च सनेयुकः। धृतेयुश्च विनेयुश्च स्थलेयुश्चैव सत्तमः ॥ ५ ॥
धर्मेयुः संनतेयुश्च पुण्येयुश्चेति ते दश। औचेयोर्ज्वलना नाम भार्या वै तक्षकात्मजा ॥ ६ ॥
तस्यां स जनयामास रन्तिनारं महीपतिम्। रन्तिनारो मनस्विन्यां पुत्राञ् जज्ञे पराञ् शुभान् ॥ ७ ॥
अमूर्तरयसं वीरं त्रिवनं चैव धार्मिकम्। गौरी कन्या तृतीया च मान्धातुर्जननी शुभा ॥ ८ ॥
इलिना तु यमस्यासीत् कन्या साजनयत् सुतम्। त्रिवनाद् दयितं पुत्रमैलिनं ब्रह्मवादिनम् ॥ ९ ॥
उपदानवी सुतॉंल्लेभे चतुरस्त्विलिनात्मजात्। ऋष्यन्तमथ दुष्यन्तं प्रवीरमनघं तथा ॥ १० ॥
चक्रवर्ती ततो जज्ञे दुष्यन्तात् समितिंजयः। शकुन्तलायां भरतो यस्य नाम्ना च भारताः ॥ ११ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! (ययातिके सबसे छोटे) पुत्र पूरुका पुत्र महातेजस्वी राजा जनमेजय (प्रथम) था। उसका पुत्र प्राचीत्वत (प्राचीनवंत) हुआ, जिसने प्राची (पूर्व) दिशा बसायी। प्राचीत्वतका पुत्र मनस्यु* हुआ। मनस्युका पुत्र राजा वीतायुध (अभय) हुआ। उसका पुत्र धुन्धु नामका राजा हुआ। धुन्धुका पुत्र बहुविध (बहुविद,अन्यत्र बहुगव) और उसका पुत्र संयाति हुआ। संयातिका पुत्र रहंवर्चा और उसका पुत्र भद्राश्व (रौद्राश्व) हुआ। भद्राश्वके घृता (घृताची, अन्यत्र मिश्रकेशी) नामकी अप्सराके गर्भसे दस पुत्र उत्पन्न हुए। उन दसोंके नाम हैं—औचेयु (अधिकांश पुराणोंमें ऋचेयु), हृषेयु, कक्षेयु, सनेयु, धृतेयु, विनेयु, श्रेष्ठ स्थलेयु, धर्मेयु, संनतेयु और पुण्येयु। औचेयु (ऋचेयु)की पत्नीका नाम ज्वलना था। वह नागराज तक्षककी कन्या थी। उसके गर्भसे उन्होंने भूपाल रन्तिनार (यह प्रायः सर्वत्र मतिनार, पर भागवतमें रन्तिभार है) को जन्म दिया। रन्तिनारने अपनी पत्नी मनस्विनीके गर्भसे कई सुन्दर पुत्रोंको उत्पन्न किया, जिनमें वीरवर अमूर्तरय और धर्मात्मा त्रिवन प्रधान थे। उसकी तीसरी संतति गौरी नामकी सुन्दरी कन्या थी, जो मान्धाताकी जननी हुई। इलिना यमराजकी कन्या थी। उसने त्रिवनसे ब्रह्म-वादमें श्रेष्ठ पराक्रमी ऐलिन (ऐलिक, त्रंसु या जंसु) नामक प्रिय पुत्र उत्पन्न किया। इलिना-नन्दन ऐलिन (जंसु)के संयोगसे उपदानवीने ऋष्यन्त, दुष्यन्त, प्रवीर तथा अनघ नामक चार पुत्रोंको प्राप्त किया। इनमें द्वितीय पुत्र राजा दुष्यन्तके संयोगसे शकुन्तलाके गर्भसे भरतका जन्म हुआ, जो आगे चलकर संग्राम-विजयी चक्रवर्ती सम्राट् हुआ। उसीके नामपर उसके वंशधर 'भारत' नामसे कहे जाने लगे ॥ १–११ ॥

दौष्यन्तिं प्रति राजानं वागूचे चाशरीरिणी। माता भस्त्रा पितुः पुत्रो येन जातः स एव सः ॥ १२ ॥
भरस्व पुत्रं दुष्यन्त मावमंस्थाः शकुन्तलाम्।
रेतोधां नयते पुत्रः परेतं यमसादनात्। त्वं चास्य धाता गर्भस्य सत्यमाह शकुन्तला ॥ १३ ॥

* महाभारत १। ९४। १ तथा अन्य वायु, विष्णु-(वि० स० पृ० ६२८), ब्रह्माण्डादिपुराणोंमें प्राचीन्वत या प्राचीनवंशका पुत्र प्रवीर और उसका पुत्र मनस्यु कहा गया है। इसमें आगे भी जहाँ-तहाँ कुछ पुरुष छोड़ दिये गये हैं, जो पढ़ते समय स्पष्ट ज्ञात हो जाता है।

भरतस्य विनष्टेषु तनयेषु पुरा किल। पुत्राणां मातृकात् कोपात् सुमहान् संक्षयः कृतः॥ १४॥
ततो मरुद्भिरानीय पुत्रः स तु बृहस्पतेः। संक्रामितो भरद्वाजो मरुद्भिर्भरतस्य तु॥ १५॥

ऋषय ऊचुः

भरतस्य भरद्वाजः पुत्रार्थं मारुतैः कथम्। संक्रामितो महातेजास्तन्नो ब्रूहि यथातथम्॥ १६॥

सूत उवाच

पत्न्यामापन्नसत्त्वायामुशिजः स स्थितो भुवि। भ्रातुर्भार्यां स दृष्ट्वा तु बृहस्पतिरुवाच ह॥ १७॥
उपतिष्ठ स्वलंकृत्य मैथुनाय च मां शुभे। एवमुक्ताब्रवीदेनं स्वयमेव बृहस्पतिम्॥ १८॥
गर्भः परिणतश्चायं ब्रह्म व्याहरते गिरा। अमोघरेतास्त्वं चापि धर्मं चैवं विगर्हितम्॥ १९॥
एवमुक्तोऽब्रवीदेनां स्वयमेव बृहस्पतिः। नोपदेष्टव्यो विनयस्त्वया मे वरवर्णिनि॥ २०॥
धर्षमाणः प्रसह्यैनां मैथुनायोपचक्रमे। ततो बृहस्पतिं गर्भो धर्षमाणमुवाच ह॥ २१॥
संनिविष्टो ह्यहं पूर्वमिह नाम बृहस्पते। अमोघरेताश्च भवान् नावकाश इह द्वयोः॥ २२॥
एवमुक्तः स गर्भेण कुपितः प्रत्युवाच ह।
यस्मात् त्वमीदृशे काले सर्वभूतेप्सिते सति। अभिषेधसि तस्मात् त्वं तमो दीर्घं प्रवेक्ष्यसि॥ २३॥
ततः कामं संनिवर्त्य तस्यानन्दाद् बृहस्पतेः। तद्रेतस्त्वपतद् भूमौ निवृत्तं शिशुकोऽभवत्॥ २४॥
सद्योजातं कुमारं तु दृष्ट्वा तं ममताब्रवीत्। गमिष्यामि गृहं स्वं वै भरस्वैनं बृहस्पते॥ २५॥
एवमुक्त्वा गता सा तु गतायां सोऽपि तं त्यजत्।

इसी दुष्यन्त-पुत्र भरतके विषयमें आकाश-वाणीने राजा दुष्यन्तसे कहा था—'दुष्यन्त! माताका गर्भाशय तो एक चमड़ेके थैलेके समान है, उसमें गर्भाधान करनेके कारण पुत्र पिताका ही होता है; अतः जो जिससे पैदा होता है, वह उसका आत्मस्वरूप ही होता है। इसलिये तुम अपने पुत्रका भरण-पोषण करो और शकुन्तलाका अपमान मत करो। पुत्र अपने मरे हुए पिताको यमपुरीके कष्टोंसे छुटकारा दिलाता है। इस गर्भका आधान करनेवाले तुम्हीं हो, शकुन्तलाने यह बिल्कुल सच बात कही है।' पूर्वकालमें भरतके सभी पुत्रोंका विनाश हो गया था। माताके कोपके कारण उनके पुत्रोंका यह महान् संहार हुआ था। यह देखकर मरुद्गणोंने बृहस्पतिके पुत्र भरद्वाजको लाकर भरतके हाथोंमें समर्पित किया था। बृहस्पति अपने इस पुत्रको वनमें छोड़कर चले गये थे॥ १२—२५½॥

मातापितृभ्यां त्यक्तं तु दृष्ट्वा तं मरुतः शिशुम्। जगृहुस्तं भरद्वाजं मरुतः कृपया स्थिताः॥ २६॥
तस्मिन् काले तु भरतो बहुभिर्क्रतुभिर्विभुः। पुत्रनैमित्तिकैर्यज्ञैरयजत् पुत्रलिप्सया॥ २७॥
यदा स यजमानस्तु पुत्रं नासादयत् प्रभुः। ततः क्रतुं मरुत्सोमं पुत्रार्थे समुपाहरत्॥ २८॥
तेन ते मरुतस्तस्य मरुत्सोमेन तुष्टुवुः। उपनिन्युर्भरद्वाजं पुत्रार्थं भरताय वै॥ २९॥
दायादोऽङ्गिरसः सूनोरौरसस्तु बृहस्पतेः। संक्रामितो भरद्वाजो मरुद्भिर्भरतं प्रति॥ ३०॥
भरतस्तु भरद्वाजं पुत्रं प्राप्य विभुर्ब्रवीत्। आदावात्महिताय त्वं कृतार्थोऽहं त्वया विभो॥ ३१॥
पूर्वं तु वितथे तस्मिन् कृते वै पुत्रजन्मनि। ततस्तु वितथो नाम भरद्वाजो नृपोऽभवत्॥ ३२॥
तस्मादपि भरद्वाजाद् ब्राह्मणाः क्षत्रिया भुवि। द्व्यामुष्यायणकौलीनाः स्मृतास्ते द्विविधेन च॥ ३३॥

इस प्रकार माता-पिताद्वारा त्यागे गये उस शिशुको देखकर मरुद्गणोंका हृदय दयार्द्र हो गया, तब उन्होंने उस भरद्वाज नामक शिशुको उठा लिया। उसी समय राजा भरत पुत्र-प्राप्तिकी अभिलाषासे अनेकों ऋतुकालके अवसरोंपर पुत्रनिमित्तक यज्ञोंका अनुष्ठान करते आ रहे थे, परंतु जब उन सामर्थ्यशाली

नरेशको उन यज्ञोंके करनेसे भी पुत्रकी प्राप्ति नहीं हुई, तब उन्होंने पुत्र-प्राप्तिके निमित्त 'मरुत्स्तोम' नामक यज्ञका अनुष्ठान प्रारम्भ किया। राजा भरतके उस मरुत्स्तोम यज्ञसे सभी मरुद्गण प्रसन्न हो गये। तब वे उस भरद्वाज नामक शिशुको साथ लेकर भरतको पुत्ररूपमें प्रदान करनेके लिये उस यज्ञमें उपस्थित हुए। वहाँ उन्होंने अङ्गिरा-पुत्र बृहस्पतिके औरस पुत्र भरद्वाजको भरतके हाथोंमें समर्पित कर दिया। तब राजा भरत भरद्वाजको पुत्ररूपमें पाकर इस प्रकार बोले—'विभो! पहले तो आप ( इस शिशुको लेकर ) आत्महितकी ही बात सोच रहे थे, परंतु अब इसे पाकर मैं आपकी कृपासे कृतार्थ हो गया हूँ।' पुत्र-जन्मके हेतु किये गये पहलेके सभी यज्ञ वितथ ( निष्फल ) हो गये थे, इसलिये वह भरद्वाज राजा वितथके नामसे प्रसिद्ध हुआ। उस भरद्वाजसे भी भूतलपर ब्राह्मण और क्षत्रिय—दोनों प्रकारके पुत्र उत्पन्न हुए, जो द्व्यामुष्यायण और कौलीन नामसे विख्यात हुए ॥ २६—३३ ॥

ततो जाते हि वितथे भरतश्च दिवं ययौ। भरद्वाजो दिवं यातो ह्यभिषिच्य सुतं ऋषिः ॥ ३४ ॥
दायादो वितथस्यासीद् भुवमन्युर्महायशाः। महाभूतोपमाः पुत्राश्चत्वारो भुवमन्यवः ॥ ३५ ॥
बृहत्क्षत्रो महावीर्यो नरो गर्गश्च वीर्यवान्। नरस्य संकृतिः पुत्रस्तस्य पुत्रो महायशाः ॥ ३६ ॥
गुरुधी रन्तिदेवश्च सत्कृत्यां तावुभौ स्मृतौ। गर्गस्य चैव दायादः शिबिर्विद्वानजायत ॥ ३७ ॥
स्मृताः शैब्यास्ततो गर्गाः क्षत्रोपेता द्विजातयः। आहार्यतनयश्चैव धीमानासीदुरुक्षवः ॥ ३८ ॥
तस्य भार्या विशाला तु सुषुवे पुत्रकत्रयम्। त्र्यरुणं पुष्करिं चैव कविं चैव महायशा ॥ ३९ ॥
उरुक्षवाः स्मृता ह्येते सर्वे ब्राह्मणतां गताः। काव्यानां तु वरा ह्येते त्रयः प्रोक्ता महर्षयः ॥ ४० ॥
गर्गाः संकृतयः काव्याः क्षत्रोपेता द्विजातयः। सम्भृताङ्गिरसो दक्षा बृहत्क्षत्रस्य च क्षितिः ॥ ४१ ॥
बृहत्क्षत्रस्य दायादो हस्तिनामा बभूव ह। तेनेदं निर्मितं पूर्वं पुरं तु गजसाह्वयम् ॥ ४२ ॥
हस्तिनश्चैव दायादास्त्रयः परमकीर्तयः। अजमीढो द्विमीढश्च पुरुमीढस्तथैव च ॥ ४३ ॥
अजमीढस्य पत्न्यस्तु तिस्रः कुरुकुलोद्वहाः। नीलिनी धूमिनी चैव केशिनी चैव विश्रुताः ॥ ४४ ॥
स तासु जनयामास पुत्रान् वै देववर्चसः। तपसोऽन्ते महातेजा जाता वृद्धस्य धार्मिकाः ॥ ४५ ॥
भारद्वाजप्रसादेन विस्तरं तेषु मे शृणु।

तदनन्तर वितथके पुत्ररूपमें प्राप्त हो जानेपर राजा भरत ( उसे राज्याभिषिक्त करके ) स्वर्गलोकको चले गये। राजर्षि भरद्वाज भी यथासमय अपने पुत्रको राज्यपर अभिषिक्त करके स्वर्गलोक सिधारे। महायशस्वी भुवमन्यु वितथका पुत्र था। भुवमन्युके बृहत्क्षत्र, महावीर्य, नर और वीर्यशाली गर्ग नामक चार पुत्र थे, जो वायु आदि ४ महातत्त्वोंके समान थे। नरका पुत्र संकृति हुआ। संकृतिके दो पुत्र महायशस्वी गुरुधी और रन्तिदेव हुए। वे दोनों सत्कृतिके गर्भसे उत्पन्न हुए बतलाये जाते हैं। गर्गके पुत्ररूपमें विद्वान् शिबि उत्पन्न हुआ। उसके वंशधर जो क्षत्रियांशसे युक्त द्विज थे, शैब्य और गर्गके नामसे विख्यात हुए। शिबिके आहार्यतनय और बुद्धिमान् उरुक्षव नामक दो पुत्र थे। उरुक्षवकी पत्नी विशालाने त्र्यरुण, पुष्करि और महायशस्वी कवि—इन तीन पुत्रोंको जन्म दिया। ये सभी उरुक्षव कहलाते हैं और अन्तमें ब्राह्मणत्वको प्राप्त हो गये थे। काव्यके वंशधरों ( भार्गव गोत्र-प्रवरो )में ये तीनों महर्षि कहे गये हैं। इस प्रकार गर्ग, संकृति और कविके वंशमें उत्पन्न हुए लोग क्षत्रियांशसे युक्त ब्राह्मण थे। अङ्गिरागोत्रीय बृहत्क्षत्रने भी इस समृद्धिशालिनी पृथ्वीका शासन किया था। बृहत्क्षत्रका हस्ति नामक पुत्र हुआ। उसीने पूर्वकालमें इस हस्तिनापुर नामक नगरको बसाया था। हस्तीके अजमीढ, द्विमीढ और पुरुमीढ नामक तीन परम कीर्तिशाली पुत्र हुए। अजमीढकी तीन पत्नियाँ थीं, जो कुरुकुलमें उत्पन्न हुई थीं। वे नीलिनी, धूमिनी और केशिनी नामसे प्रसिद्ध थीं। अजमीढने उनके गर्भसे अनेकों पुत्रोंको पैदा किया था, जो सभी

देवताओंके समान वर्चस्वी, महान् तेजस्वी और धर्मात्मा थे। वे अपने वृद्ध पिताकी तपस्याके अन्तमें महर्षि भारद्वाजकी कृपासे उत्पन्न हुए थे। उनका विस्तारपूर्वक वृत्तान्त मुझसे सुनिये ॥ ३४—४५½ ॥

अजमीढस्य केशिन्यां कण्वः समभवत् किल ॥ ४६ ॥
मेधातिथिः सुतस्तस्य तस्मात् काण्वायना द्विजाः । अजमीढस्य भूमिन्यां जज्ञे बृहदनुर्नृपः ॥ ४७ ॥
बृहदनोर्बृहन्तोऽथ बृहन्तस्य बृहन्मनाः । बृहन्मनःसुतश्चापि बृहद्धनुरिति श्रुतः ॥ ४८ ॥
बृहद्धनोर्बृहदिपुः पुत्रस्तस्य जयद्रथः । अश्वजित् तनयस्तस्य सेनजित् तस्य चात्मजः ॥ ४९ ॥
अथ सेनजितः पुत्राश्चत्वारो लोकविश्रुताः । रुचिराश्वश्च काव्यश्च राजा दृढरथस्तथा ॥ ५० ॥
वत्सश्चावर्तको राजा यस्यैते परिवत्सकाः । रुचिराश्वस्य दायादः पृथुसेनो महायशाः ॥ ५१ ॥
पृथुसेनस्य पौरस्तु पौरान्नीपोऽथ जज्ञिवान् । नीपस्यैकशतं त्वासीत् पुत्राणाममितौजसाम् ॥ ५२ ॥
नीपा इति समाख्याता राजानः सर्व एव ते । तेषां वंशकरः श्रीमान्नीपानां कीर्तिवर्धनः ॥ ५३ ॥
काव्याच्च समरो नाम सदेष्टसमरोऽभवत् । समरस्य पारसम्पारौ सदश्व इति ते त्रयः ॥ ५४ ॥
पुत्राः सर्वगुणोपेता जाता वै विश्रुता भुवि । पारपुत्रः पृथुर्जातः पृथोस्तु सुकृतोऽभवत् ॥ ५५ ॥
जज्ञे सर्वगुणोपेतो विभ्राजस्तस्य चात्मजः । विभ्राजस्य तु दायादस्त्वणुहो नाम वीर्यवान् ॥ ५६ ॥
बभूव शुकजामाता कृत्वीभर्ता महायशाः । अणुहस्य तु दायादो ब्रह्मदत्तो महीपतिः ॥ ५७ ॥
युगदत्तः सुतस्तस्य विष्वक्सेनो महायशाः । विभ्राजः पुनराजातो सुकृतेनेह कर्मणा ॥ ५८ ॥
विष्वक्सेनस्य पुत्रस्तु उदक्सेनो बभूव ह ।
भल्लाटस्तस्य पुत्रस्तु तस्यासीज्जनमेजयः । उग्रायुधेन तस्यार्थे सर्वे नीपाः प्रणाशिताः ॥ ५९ ॥

अजमीढके केशिनीके गर्भसे कण्व नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका पुत्र मेधातिथि हुआ। उससे काण्वायन ब्राह्मणोंकी* उत्पत्ति हुई। भूमिनी ( धूमिनी ) के गर्भसे अजमीढके पुत्ररूपमें राजा बृहदनुका जन्म हुआ। बृहदनुका पुत्र बृहन्त, बृहन्तका पुत्र बृहन्मना और बृहन्मनाका पुत्र बृहद्धनु नामसे विख्यात हुआ। बृहद्धनुका पुत्र बृहदिषु और उसका पुत्र जयद्रथ हुआ। उसका पुत्र अश्वजित् और उसका पुत्र सेनजित् हुआ। सेनजित्के रुचिराश्व, काव्य, राजा दृढरथ और राजा वत्सावर्तक—ये चार लोकविख्यात पुत्र हुए। इनमें वत्सावर्तकके वंशधर परिवत्सक नामसे कहे जाते हैं। रुचिराश्वका पुत्र महायशस्वी पृथुसेन हुआ। पृथुसेनसे पौरका और पौरसे नीपका जन्म हुआ। नीपके अमित तेजस्वी पुत्रोंकी संख्या एक सौ थी। वे सभी राजा थे और नीप नामसे ही विख्यात थे। काव्यसे समर नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो उन नीपवंशियोंका वंशप्रवर्तक, लक्ष्मीसे युक्त और कीर्ति-वर्धक था। वह समरके लिये सदा प्रयत्नशील रहता था। समरके पार, सम्पार और सदश्व—ये तीन पुत्र हुए, जो सम्पूर्ण गुणोंसे सम्पन्न तथा भूतलपर विख्यात थे। पारका पुत्र पृथु हुआ और पृथुसे सुकृतकी उत्पत्ति हुई। उससे सम्पूर्ण गुणोंसे सम्पन्न विभ्राज नामक पुत्र पैदा हुआ। विभ्राजका पुत्र महायशस्वी एवं पराक्रमी अणुह हुआ, जो शुकदेवजीका जामाता एवं कृत्वीका पति था। अणुहका पुत्र राजा ब्रह्मदत्त हुआ। उसका पुत्र युगदत्त और युगदत्तका पुत्र महायशस्वी विष्वक्सेन हुआ। अपने पुण्यकर्मोंके फलस्वरूप राजा विभ्राजने ही पुनः विष्वक्सेनरूपसे जन्म धारण किया था। विष्वक्सेनका पुत्र उदक्सेन हुआ। उसका पुत्र भल्लाट† और उसका पुत्र जनमेजय ( द्वितीय ) हुआ। इसी जनमेजयकी रक्षाके लिये उग्रायुधने सभी नीपवंशी नरेशोंको मौतके घाट उतारा था ॥ ४६—५९ ॥

* विशेष द्रष्टव्य—ऋग्वेदसंहिता—८।५५।४, ब्राह्मणोत्पत्ति मार्तण्ड, भागवत १२।१।४९ तथा पुनः मत्स्यपुराण १९१।२६

† इसने भल्लाटनगर ( सुलेमानपर्वतके पासका एक शहर ) बसाया, जहाँका राजा शशिध्वज ( कल्किपुराण, अ० २१-२२ ) प्रसिद्ध था।

ऋषय ऊचुः

**उग्रायुधः कस्य सुतः कस्य वंशे स कथ्यते। किमर्थं तेन ते नीपाः सर्वे चैव प्रणाशिताः ॥ ६० ॥**

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! उग्रायुध किसका पुत्र था? वह किसके वंशमें उत्पन्न हुआ बतलाया जाता है? तथा किस कारण उसने समस्त नीपवंशी राजाओंका संहार किया था? (यह हमें बतलाइये) ॥ ६० ॥

सूत उवाच

**उग्रायुधः सूर्यवंश्यस्तपस्तेपे वराश्रमे। स्थाणुभूतोऽष्टसाहस्रं तं भेजे जनमेजयः ॥ ६१ ॥**
**तस्य राज्यं प्रतिश्रुत्य नीपानाजघ्निवान् प्रभुः। उवाच सान्त्वं विविधं जघ्नुस्ते वै ह्युभावपि ॥ ६२ ॥**
**हन्यमानांश्च तांश्चैव यस्माद्धेतोर्न मे वचः। शरणागतरक्षार्थं तस्मादेवं शपामि वः ॥ ६३ ॥**
**यदि मेऽस्ति तपस्तप्तं सर्वान् नयतु वो यमः। ततस्तान् कृष्यमाणांस्तु यमेन पुरतः स तु ॥ ६४ ॥**
**कृपया परयाऽऽविष्टो जनमेजयमूचिवान्। गतानेतानिमान् वीरांस्त्वं मे रक्षितुमर्हसि ॥ ६५ ॥**

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! उग्रायुध सूर्य-वंशमें उत्पन्न हुए थे। इन्होने एक श्रेष्ठ आश्रममें जाकर स्थाणुकी भाँति स्थित हो आठ हजार वर्षोंतक घोर तप किया। उसी समय (युद्धमें पराजित हुए) राजा जनमेजय उनके पास पहुँचे। (जनमेजयकी प्रार्थनापर) उन्हे राज्य दिलानेकी प्रतिज्ञा करके सामर्थ्यशाली उग्रायुधने नीपवंशियोंका संहार किया था। प्रथमतस्तु उग्रायुधने उन्हे अनेक प्रकारके सान्त्वनापूर्ण वचनोंद्वारा समझाने-बुझानेकी चेष्टा की, किंतु जब वे (इनकी बात न मानकर) इन्हीं दोनोंको मार डालनेके लिये उतारू हो गये, तब मारनेके लिये उद्यत हुए उनसे उग्रायुधने कहा—'जिस कारण तुमलोग मेरी बातको अनसुनी कर रहे हो, इसीलिये शरणागतकी रक्षाके हेतु मैं तुमलोगोको इस प्रकारका शाप दे रहा हूँ कि यदि मैने तपका अनुष्ठान किया है तो यमराज तुम सबको अपने घर उठा ले जायँ।' तदनन्तर अपने सामने ही उन्हे यमराजद्वारा घसीटा जाता हुआ देखकर उग्रायुधके हृदयमें अतिशय दया उत्पन्न हो गयी। तब उन्होंने जनमेजयसे कहा—'जनमेजय! तुम मेरे कहनेसे इन ले जाये गये हुए तथा ले जाये जाते हुए वीरोंकी रक्षा करो' ॥ ६१—६५ ॥

जनमेजय उवाच

**अरे पापा दुराचारा भवितारोऽस्य किंकराः। तथेत्युक्तस्ततो राजा यमेन युयुधे चिरम् ॥ ६६ ॥**
**व्याधिभिर्नारकैर्घोरैर्यमेन सह तान् बलात्। विजित्य मुनये प्रादात् तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ६७ ॥**
**यमस्तुष्टस्ततस्तस्मै मुक्तिज्ञानं ददौ परम्। सर्वे यथोचितं कृत्वा जग्मुस्ते कृष्णमव्ययम् ॥ ६८ ॥**
**येषां तु चरितं गृह्य हन्यते नापमृत्युभिः। इह लोके परे चैव सुखमक्षय्यमश्नुते ॥ ६९ ॥**

जनमेजय बोले—अरे पापी एवं दुराचारी यमदूतो! तुमलोग दण्डके भागी होओगे, अन्यथा उन्हें छोड़ दो। यमदूतोंद्वारा भी उसी प्रकारका उत्तर दिये जानेपर राजा जनमेजयने यमके साथ चिरकालतक युद्ध किया। अन्ततोगत्वा उन्होंने भयंकर नारकीय व्याधियोंके साथ उन सबको बलपूर्वक जीतकर यमराजसहित उन्हे उग्रायुध मुनिको समर्पित कर दिया। यह एक अद्भुत-सी बात हुई। इससे प्रसन्न हुए यमराजने राजा जनमेजयको मुक्तिका उत्तम ज्ञान प्रदान किया। तत्पश्चात् वे सभी यथोचित धर्म-कार्य कर अविनाशी भगवान् श्रीकृष्णमें लीन हो गये। इन नरेशोके जीवन-चरितको जान लेनेपर मनुष्य अपमृत्यु आदिका शिकार नहीं होता। उसे इस लोक और परलोकमें अक्षय सुखकी प्राप्ति होती है ॥ ६६—६९ ॥

**अजमीढस्य धूमिन्यां विद्वाञ् जज्ञे यवीनरः।**
**धृतिमांस्तस्य पुत्रस्तु तस्य सत्यधृतिः स्मृतः। अथ सत्यधृतेः पुत्रो दृढनेमिः प्रतापवान् ॥ ७० ॥**

दृढनेमिसुतश्चापि सुधर्मा नाम पार्थिवः । आसीत् सुधर्मतनयः सार्वभौमः प्रतापवान् ॥ ७१ ॥
सार्वभौमेति विख्यातः पृथिव्यामेकराड् बभौ । तस्यान्ववाये महति महापौरवनन्दनः ॥ ७२ ॥
महापौरवपुत्रस्तु राजा रुक्मरथः स्मृतः । अथ रुक्मरथस्यासीत् सुपार्श्वो नाम पार्थिवः ॥ ७३ ॥
सुपार्श्वतनयश्चापि सुमतिर्नाम धार्मिकः । सुमतेरपि धर्मात्मा राजा संनतिमानपि ॥ ७४ ॥
तस्यासीन् संनतिमतः कृतो नाम सुतो महान् । हिरण्यनाभिनः शिष्यः कौसल्यस्य* महात्मनः ॥ ७५ ॥
चतुर्विंशतिधा येन प्रोक्ता वै सामसंहिताः । स्मृतास्ते प्राच्यसामानः कार्ता नामेह सामगाः ॥ ७६ ॥
कार्तिरुग्रायुधोऽसौ वै महापौरववर्धनः । बभूव येन विक्रम्य पृथुकस्य पिता हतः ॥ ७७ ॥
नीलो नाम महाराजः पाञ्चालाधिपतिर्वशी । उग्रायुधस्य दायादः क्षेमो नाम महायशाः ॥ ७८ ॥
क्षेमात् सुनीथः संजज्ञे सुनीथस्य नृपंजयः । नृपंजयाच्च विरथ इत्येते पौरवाः स्मृताः ॥ ७९ ॥

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशे पौरववंशकीर्तनं नामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥*

धूमिनीके गर्भसे अजमीढके पुत्ररूपमें विद्वान् यवीनरका जन्म हुआ । उसका पुत्र धृतिमान् हुआ और उसका पुत्र सत्यधृति कहा जाता है । सत्यधृतिका पुत्र प्रतापी दृढनेमि हुआ । दृढनेमिका पुत्र सुधर्मानामक भूपाल हुआ । सुधर्माका पुत्र प्रतापी सार्वभौम था, जो भूतलपर एकच्छत्र चक्रवर्ती सम्राट्के रूपमें सुशोभित हुआ । उसके उस विशाल वंशमें एक महापौरव नामक पुत्र उत्पन्न हुआ । राजा रुक्मरथ महापौरवके पुत्र कहे गये हैं । रुक्मरथका पुत्र सुपार्श्व नामका राजा हुआ । सुपार्श्वका पुत्र धर्मात्मा सुमति हुआ । सुमतिका पुत्र धर्मात्मा राजा संनतिमान् था । उस संनतिमान्का कृत नामक महान् प्रतापी पुत्र था, जो महात्मा हिरण्यनाभ कौसल्य (कौथुम*)का शिष्य हुआ । इसी राजाने सामवेदकी संहिताओंको चौबीस भागोंमें विभक्त किया, जो प्राच्यसामके नामसे प्रसिद्ध हुईं तथा उन साम-संहिताओंका गान करनेवाले कार्त नामसे कहे जाने लगे ।† ये उग्रायुध इसी कृतके पुत्र थे, जो पौरववंशकी विशेषरूपसे वृद्धि करनेवाले थे । इन्होंने ही पराक्रम प्रकट करके पृथुकके पिता पाञ्चाल-नरेश जितेन्द्रिय महाराज नीलका वध किया था । उग्रायुधका पुत्र महायशस्वी क्षेम हुआ । क्षेमसे सुनीथका और सुनीथसे नृपंजयका जन्म हुआ । नृपंजयसे विरथकी उत्पत्ति हुई । ये सभी नरेश पौरव-नामसे विख्यात हुए ॥ ७०—७९ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके सोमवंश-वर्णन-प्रसङ्गमे पौरव-वंश-कीर्तन नामक उनचासवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ४९ ॥

* वायुपुराण ९९ । १०० में यहाँ 'कौथुम' पाठ है । सामवेदियोंकी कौथुमी संहिता प्रसिद्ध है ।

† यहाँ सामवेद-संहिताके इतिहासकी एकसे चौबीस (तथा पुनः एक हजार शाखा होनेकी) बड़ी रहस्यात्मक बात कही गयी है । कार्त्त शाखाका उल्लेख सभी चरणव्यूहोंमें भी है । इसी प्रकार वायु ५९—६१ तथा ब्रह्माण्ड २ । ३८—४१में भी वेदोंका सच्चा एवं विस्तृत इतिहास है । २४ सामशाखाएँ चरणव्यूह आदिमें यों निर्दिष्ट हैं—१—वार्तान्तरेय, २—राणायनीय, ३—शाट्यायनीय, ४—आमुरायणीय, ५—वासुरायणीय, ६—प्राचीनयोग, ७—प्राञ्जल ऋग्, ८—साक्ष्यमुद्गल, ९—खल्वल, १०—महाखल्वल, ११—माङ्गल, १२—कौथुम, १३—गौतम, १४—जैमिनीय, १५—सुपर्ण, १६—वालखिल्य, १७—सात्यमुग्र, १८—कालेय, १९—महाकालेय, २०—लाङ्गलायन, २१—शार्दूल, २२—तातायन, २३—नैगमीय और २४—पायमान ।

# पचासवाँ अध्याय

## पूरु-वंशी नरेशोंका विस्तृत इतिहास

सूत उवाच

अजमीढस्य नीलिन्यां नीलः समभवन्नृपः। नीलस्य तपसोग्रेण सुशान्तिरुदपद्यत ॥ १ ॥
पुरुजानुः सुशान्तेस्तु पृथुस्तु पुरुजानुतः। भद्राश्वः पृथुदायादो भद्राश्वतनयाञ्छृणु ॥ २ ॥
मुद्गलश्च जयश्चैव राजा बृहदिपुस्तथा। जवीनरश्च विक्रान्तः कपिलश्चैव पञ्चमः ॥ ३ ॥
पञ्चानां चैव पञ्चालानेताञ्जनपदान् विदुः। पञ्चालरक्षिणो ह्येते देशानामिति नः श्रुतम् ॥ ४ ॥
मुद्गलस्यापि मौद्गल्याः क्षत्रोपेता द्विजातयः। एते ह्याङ्गिरसः पक्षं संश्रिताः काण्वमुद्गलाः ॥ ५ ॥
मुद्गलस्य सुतो जज्ञे ब्रह्मिष्ठः सुमहायशाः। इन्द्रसेनः सुतस्तस्य विन्ध्याश्वस्तस्य चात्मजः ॥ ६ ॥
विन्ध्याश्वान्मिथुनं जज्ञे मेनकायामिति श्रुतिः। दिवोदासश्च राजर्षिरहल्या च यशस्विनी ॥ ७ ॥
शरद्वतस्तु दायादमहल्या सम्प्रसूयत। शतानन्दमृषिश्रेष्ठं तस्यापि सुमहातपाः ॥ ८ ॥
सुतः सत्यधृतिर्नाम धनुर्वेदस्य पारगः। आसीत् सत्यधृतेः शुक्रममोघं धार्मिकस्य तु ॥ ९ ॥
स्कन्नं रेतः सत्यधृतेर्दृष्ट्वा चाप्सरसं जले। मिथुनं तत्र सम्भूतं तस्मिन् सरसि सम्भृतम् ॥ १० ॥
ततः सरसि तस्मिंस्तु क्रममाणं महीपतिः। दृष्ट्वा जग्राह कृपया शन्तनुर्मृगयां गतः ॥ ११ ॥
एते शरद्वतः पुत्रा आख्याता गौतमा वराः। अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि दिवोदासस्य वै प्रजाः ॥ १२ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! अजमीढकी नीलिनी नामकी पत्नीके गर्भसे राजा नीलका* जन्म हुआ। नीलकी उग्र तपस्याके परिणामस्वरूप सुशान्तिकी उत्पत्ति हुई। सुशान्तिसे पुरुजानुका और पुरुजानुसे पृथुका जन्म हुआ। पृथुका पुत्र भद्राश्व हुआ। अब भद्राश्वके पुत्रोंके विषयमें सुनिये—मुद्गल, जय, राजा बृहद्दिषु, पराक्रमी जवीनर और पाँचवाँ कपिल—ये पाँचों भद्राश्वके पुत्र थे। इन पाँचोंके द्वारा शासित जनपद पञ्चाल† नामसे प्रसिद्ध हुए। ये सभी पञ्चाल देशोंके रक्षक थे—ऐसा हमलोगोंने सुना है। मुद्गलके पुत्रगण, जो क्षत्रियांशसे युक्त द्विजाति थे, मौद्गल्य नामसे प्रसिद्ध हुए। ये कण्व और मुद्गलके गोत्रमें उत्पन्न होनेवाले द्विजाति अङ्गिराके पक्षमें सम्मिलित हो गये। महायशस्वी ब्रह्मिष्ठने मुद्गलके पुत्ररूपमें जन्म लिया। उसका पुत्र इन्द्रसेन और उसका पुत्र विन्ध्याश्व हुआ। विन्ध्याश्वके संयोगसे मेनकाके गर्भसे जुड़वीं संतान उत्पन्न हुई थी—ऐसा सुना जाता है। उनमें एक तो राजर्षि दिवोदास थे और दूसरी यशस्विनी अहल्या थी। अहल्याने शरद्वान् गौतमके पुत्र ऋषिश्रेष्ठ शतानन्दको उत्पन्न किया था। शतानन्दका पुत्र महातपस्वी एवं धनुर्वेदका पारंगत विद्वान् सत्यधृति हुआ। धर्मात्मा सत्यधृतिका वीर्य अमोघ था। एक बार एक अप्सराको देखकर सत्यधृतिका वीर्य ( सरोवरमें स्नान करते समय ) जलमें स्खलित हो गया। उस वीर्यसे उस सरोवरमें जुड़वीं संतान उत्पन्न हो गयी। वे उसी सरोवरमें पल रहे थे। एक बार महाराज शंतनु शिकारके लिये निकले हुए थे। वे उस सरोवरमें घूमते हुए उन बच्चोंको देखकर कृपा-परवश हो उन्हें उठा लाये। इस प्रकार मैंने शरद्वान्‌के उन पुत्रोंका जो गौतम ( गोत्र ) नामसे विख्यात है, वर्णन कर दिया। अब इसके आगे दिवोदासकी संततिका वर्णन कर रहा हूँ, उसे सुनिये ॥ १—१२ ॥

* एक नील राजाकी चर्चा गत अध्यायके अन्तमें ७८ वें श्लोकमें भी है। ये उनसे भिन्न हैं।

† यह रुहेलखण्ड है, जो दिल्लीसे पूर्व गङ्गाके उत्तर तथा दक्षिणमें चम्बल नदीके तटतक फैला है। ये दक्षिण और उत्तर पञ्चालके नामसे प्रसिद्ध हैं। उत्तर पञ्चालकी राजधानी अहिच्छत्र ( रामनगर ) तथा दक्षिण पञ्चालकी राजधानी कम्पिल और माकंद थी। ( द्रष्टव्य महाभा० आदि० १४०, उद्योग० १९३, गर्गसंहिता १३९ आदि ) गौतमबुद्धके समय उत्तर पञ्चालकी राजधानी कन्नौज भी रहा। राइस् डैविड्स 'Buddhist India'.

दिवोदासस्य दायादो धर्मिष्ठो मित्रयुर्नृपः । मैत्रायणावरः सोऽथ मैत्रेयस्तु ततः स्मृतः ॥ १३ ॥
एते वंश्या यतेः पक्षाः क्षत्रोपेतास्तु भार्गवाः । राजा चैद्यवरो नाम मैत्रेयस्य सुतः स्मृतः ॥ १४ ॥
अथ चैद्यवराद् विद्वान् सुदासस्तस्य चात्मजः । अजमीढः पुनर्जातः क्षीणे वंशे तु सोमकः ॥ १५ ॥
सोमकस्य सुतो जन्तुर्हते तस्मिञ्शतं बभौ । पुत्राणामजमीढस्य सोमकस्य महात्मनः ॥ १६ ॥
महिषी त्वजमीढस्य धूमिनी पुत्रवर्धिनी । पुत्राभावे तपस्तेपे शतं वर्षाणि दुश्चरम् ॥ १७ ॥
हुत्वाग्निं विधिवत् सम्यक् पवित्रीकृतभोजना । अग्निहोत्रक्रमेणैव सा सुष्वाप महाव्रता ॥ १८ ॥
तस्यां वै धूमवर्णायामजमीढः समीयिवान् । ऋक्षं सा जनयामास धूमवर्णं शताग्रजम् ॥ १९ ॥
ऋक्षात् संवरणो जज्ञे कुरुः संवरणात् ततः । यः प्रयागमतिक्रम्य कुरुक्षेत्रमकल्पयत् ॥ २० ॥
कृष्यतस्तु महाराजो वर्षाणि सुबहून्यथ । कृष्यमाणस्ततः शक्रो भयात् तस्मै वरं ददौ ॥ २१ ॥
पुण्यं च रमणीयं च कुरुक्षेत्रं तु तत् स्मृतम् । तस्यान्ववायः सुमहान् यस्य नाम्ना तु कौरवाः ॥ २२ ॥

दिवोदासका ज्येष्ठ पुत्र धर्मिष्ठ राजा मित्रयु हुआ। तत्पश्चात् उससे छोटे मैत्रायण और उसके बाद मैत्रेयकी उत्पत्ति हुई। ये सभी पुत्र ( ययातिके भाई ) यतिके पक्षके थे और क्षत्रियांशसे युक्त भार्गव ( भृगुवंशी ) कहलाते थे। राजा चैद्यवर मैत्रेयके पुत्र कहे जाते हैं। चैद्यवरसे विद्वान् सुदासका जन्म हुआ। वंशके नष्ट हो जानेपर पुनः अजमीढ सुदासके पुत्र-रूपमें उत्पन्न हुए। इन्हींका दूसरा नाम सोमक भी है। सोमकका पुत्र जन्तु हुआ। उसके मारे जानेपर महात्मा अजमीढ सोमकके सौ पुत्र हुए। अजमीढकी धूमिनी नामकी पत्नी थी, जो पुत्रोंकी वृद्धि करनेवाली थी। जन्तुके मारे जानेसे पुत्रका अभाव हो जानेपर वह सौ वर्षोंतक दुष्कर तपस्यामें संलग्न हो गयी। एक समय भलीभाँति पवित्र किये हुए पदार्थोंको ही भोजन करनेवाली महान् व्रतपरायणा धूमिनी अग्निहोत्रके क्रमसे विधिपूर्वक अग्निमें हवन करके नींदके वशीभूत हो गयी। निरन्तर अग्निहोत्र करनेके कारण उसके शरीरका रंग धूमिल पड़ गया था। उसी समय अजमीढने उसमें गर्भाधान किया। उस गर्भसे धूमिनीने ऋक्ष नामक पुत्रको जन्म दिया, जो अपने सौ भाइयोंमें ज्येष्ठ था तथा जिसके शरीरका रंग धूम-वर्णका था। ऋक्षसे संवरणकी और संवरणसे कुरुकी उत्पत्ति हुई, जिन्होंने प्रयागका अतिक्रमण कर कुरुक्षेत्रकी तीर्थरूपमें कल्पना की थी। महाराज कुरु अनेकों वर्षोंतक इस कुरुक्षेत्रको अपने हाथों जोतते रहे। उन्हें इस प्रकार जोतते देखकर इन्द्रने भयभीत हो उन्हें वर प्रदान किया। इसी कारण कुरुक्षेत्र पुण्यप्रद और रमणीय क्षेत्र कहा जाता है। उन महाराज कुरुका वंश अत्यन्त विशाल था, जो उन्हींके नामसे ( आगे चलकर ) कौरव कहलाया ॥ १३–२२ ॥

कुरोस्तु दयिताः पुत्राः सुधन्वा जह्नुरेव च । परीक्षिच्च महातेजाः प्रजनश्चारिमर्दनः ॥ २३ ॥
सुधन्वनस्तु दायादः पुत्रो मतिमतां वरः । च्यवनस्तस्य पुत्रस्तु राजा धर्मार्थतत्त्ववित् ॥ २४ ॥
च्यवनस्य कृमिः पुत्र ऋक्षाज्जज्ञे महातपाः । कृमेः पुत्रो महावीर्यः ख्यातस्त्विन्द्रसमो विभुः ॥ २५ ॥
चैद्योपरिचरो वीरो वसुर्नामान्तरिक्षगः । चैद्योपरिचराज्जज्ञे गिरिका सप्त वै सुतान् ॥ २६ ॥
महारथो मगधराड् विश्रुतो यो बृहद्रथः । प्रत्यश्रवाः कुशश्चैव चतुर्थो हरिवाहनः ॥ २७ ॥
पञ्चमश्च यजुश्चैव मत्स्यः काली च सप्तमी । बृहद्रथस्य दायादः कुशाग्रो नाम विश्रुतः ॥ २८ ॥
कुशाग्रस्यात्मजश्चैव वृषभो नाम वीर्यवान् । वृषभस्य तु दायादः पुण्यवान् नाम पार्थिवः ॥ २९ ॥
पुण्यः पुण्यवतश्चैव राजा सत्यधृतिस्ततः । दायादस्तस्य धनुषस्तस्मात् सर्वश्च जज्ञिवान् ॥ ३० ॥
सर्वस्य सम्भवः पुत्रस्तस्माद् राजा बृहद्रथः । द्वे तस्य शकले जाते जरया संधितश्च सः ॥ ३१ ॥

**जरया संधितो यस्माज्जरासंधस्ततः स्मृतः। जेता सर्वस्य क्षत्रस्य जरासंधो महाबलः ॥ ३२ ॥**
**जरा संधस्य पुत्रस्तु सहदेवः प्रतापवान्। सहदेवात्मजः श्रीमान् सोमवित् स महातपाः ॥ ३३ ॥**
**श्रुतश्रवास्तु सोमाद् वै मागधाः परिकीर्तिताः।**

कुरुके सुधन्वा, जह्नु, महातेजस्वी परीक्षित् और शत्रुविनाशक प्रजन—ये चार परम प्रिय पुत्र हुए। सुधन्वाका पुत्र राजा च्यवन हुआ, जो बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ एवं धर्म और अर्थके तत्त्वका ज्ञाता था। च्यवनका पुत्र कृमि हुआ, जो ऋक्षसे उत्पन्न हुआ था। ( इन्हीं ) कृमिके पुत्र महापराक्रमी चैद्योपरिचर वसु हुए। वे प्रभावशाली, शूरवीर, इन्द्रके समान विख्यात और ( सदा विमानद्वारा ) आकाशमें गमन करनेवाले थे। चैद्योपरिचरके संयोगसे गिरिकाने सात संतानोंको जन्म दिया। इनमें पहला महारथी मगधराज था, जो बृहद्रथ नामसे विख्यात हुआ। उसके बाद दूसरा प्रत्यश्रवा, तीसरा कुश, चौथा हरिवाहन, पाँचवाँ यजुष् और छठा मत्स्य नामसे प्रसिद्ध हुआ। सातवीं संतान काली नामकी कन्या थी। बृहद्रथका पुत्र कुशाग्र नामसे विख्यात हुआ। कुशाग्रका पुत्र पराक्रमी वृषभ हुआ। वृषभका पुत्र राजा पुण्यवान् था। पुण्यवान्से पुण्य और उससे राजा सत्यधृतिका जन्म हुआ। उसका पुत्र धनुष हुआ और उससे सर्वकी उत्पत्ति हुई। सर्वका पुत्र सम्भव हुआ और उससे राजा बृहद्रथका जन्म हुआ। बृहद्रथका पुत्र दो टुकडेके रूपमें उत्पन्न हुआ, जिन्हें जरानामकी राक्षसीने जोड़ दिया था। जराद्वारा जोड़ दिये जानेके कारण वह जरासंध नामसे विख्यात हुआ। महाबली जरासंध अपने समयके समस्त क्षत्रियोंका विजेता था। जरासंधका पुत्र प्रतापी सहदेव हुआ। सहदेवका पुत्र लक्ष्मीवान् एवं महातपस्वी सोमवित् हुआ। सोमवित्से श्रुतश्रवाकी उत्पत्ति हुई। ( मगधपर शासन करनेके कारण ) ये सभी नरेश मागध नामसे विख्यात हुए ॥ २२—३३½ ॥

**जह्नुस्त्वजनयत् पुत्रं सुरथं नाम भूमिपम् ॥ ३४ ॥**
**सुरथस्य तु दायादो वीरो राजा विदूरथः। विदूरथसुतश्चापि सार्वभौम इति स्मृतः ॥ ३५ ॥**
**सार्वभौमाज्जयत्सेनो रुचिरस्तस्य चात्मजः। रुचिरस्य सुतो भौमस्त्वरितायुस्ततोऽभवत ॥ ३६ ॥**
**अक्रोधनस्त्वायुसुतस्तस्माद् देवातिथिः स्मृतः। देवातिथेस्तु दायादो दक्ष एव बभूव ह ॥ ३७ ॥**
**भीमसेनस्ततो दक्षाद् दिलीपस्तस्य चात्मजः। दिलीपस्य प्रतीपस्तु तस्य पुत्रास्त्रयः स्मृताः ॥ ३८ ॥**
**देवापिः शंतनुश्चैव बाह्लीकश्चैव ते त्रयः।**
**बाह्लीकस्य तु दायादाः सप्त बाह्लीश्वरा नृपाः। देवापिस्तु ह्यपध्यातः प्रजाभिरभवन्मुनिः ॥ ३९ ॥**

जह्नुने सुरथ नामक भूपालको पुत्ररूपमें जन्म दिया। सुरथका पुत्र वीरवर राजा विदूरथ हुआ। विदूरथका पुत्र सार्वभौम कहा गया है। सार्वभौमसे जयत्सेन उत्पन्न हुआ और उसका पुत्र रुचिर हुआ। रुचिरसे भौमका और उससे त्वरितायुका जन्म हुआ। त्वरितायुका पुत्र अक्रोधन और उससे देवातिथिकी उत्पत्ति बतलायी जाती है। देवातिथिका एकमात्र पुत्र दक्ष ही था। दक्षसे भीमसेनका जन्म हुआ और उसका पुत्र ( पुरुवंशी ) दिलीप तथा दिलीपका पुत्र प्रतीप हुआ। प्रतीपके तीन पुत्र कहे जाते हैं, ये तीनों देवापि, शंतनु और बाह्लीक हैं। बाह्लीकके सात पुत्र थे, जो सभी राजा थे और बाह्लीक ( बल्ख ) देशके अधीश्वर थे। देवापिको प्रजाओंने दोषी ठहरा दिया था; इसलिये वह राजपाट छोड़कर मुनि हो गया ॥ ३४—३९ ॥

ऋषय ऊचुः

**प्रजाभिस्तु किमर्थं वै ह्यपध्यातो जनेश्वरः। को दोषो राजपुत्रस्य प्रजाभिः समुदाहृतः ॥ ४० ॥**

**ऋषियोंने पूछा**—सूतजी! प्रजाओंने राजा देवापिको किस कारण दोषी ठहराया था? तथा प्रजाओंने उस राजकुमारका कौन-सा दोष प्रकट किया था? ॥ ४० ॥

सूत उवाच

किलासीद् राजपुत्रस्तु कुष्ठी तं नाभ्यपूजयन्। भविष्यं कीर्तयिष्यामि शंतनोस्तु निबोधत ॥ ४१ ॥
शंतनुस्त्वभवद् राजा विद्वान् स वै महाभिषक्। इदं चोदाहरन्त्यत्र श्लोकं प्रति महाभिषम् ॥ ४२ ॥
यं यं कराभ्यां स्पृशति जीर्णं रोगिणमेव च। पुनर्युवा स भवति तस्मात् तं शंतनुं विदुः ॥ ४३ ॥
तत् तस्य शंतनुत्वं हि प्रजाभिरिह कीर्त्यते। ततोऽवृणुत भार्यार्थे शंतनुर्जाह्नवीं नृपः ॥ ४४ ॥
तस्यां देवव्रतं नाम कुमारं जनयद् विभुः। काली विचित्रवीर्यं तु दाशेयी जनयन् सुतम् ॥ ४५ ॥
शंतनोर्दयितं पुत्रं शान्तात्मानमकल्मषम्। कृष्णद्वैपायनो नाम क्षेत्रे वैचित्रवीर्यके ॥ ४६ ॥
धृतराष्ट्रं च पाण्डुं च विदुरं चाप्यजीजनत्। धृतराष्ट्रस्तु गान्धार्यां पुत्रानजनयच्छतम् ॥ ४७ ॥
तेषां दुर्योधनः श्रेष्ठः सर्वक्षत्रस्य वै प्रभुः। माद्री कुन्ती तथा चैव पाण्डोर्भार्ये बभूवतुः ॥ ४८ ॥
देवदत्ताः सुताः पञ्च पाण्डोरर्थेऽभिजज्ञिरे। धर्माद् युधिष्ठिरो जज्ञे मारुताच्च वृकोदरः ॥ ४९ ॥
इन्द्राद् धनंजयश्चैव इन्द्रतुल्यपराक्रमः। नकुलं सहदेवं च माद्र्यश्विभ्यामजीजनत् ॥ ५० ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! राजकुमार देवापि कुष्ठ-रोगी था, इसीलिये प्रजाओंने उसका आदर-सत्कार नहीं किया। अब मै शंतनुके भविष्यका वर्णन कर रहा हूँ, उसे सुनिये। ( देवापिके वन चले जानेपर ) शंतनु राजा हुए। ये विद्वान् तो थे ही, साथ ही महान् वैद्य भी थे। इनकी महावैद्यताके प्रति लोग एक श्लोक कहा करते हैं, जिसका आशय यह है कि 'महाराज शंतनु जिस-जिस रोगी अथवा वृद्धको अपने हाथोंसे स्पर्श कर लेते थे, वह पुनः नौजवान हो जाता था। इसी कारण लोग उन्हें शंतनु कहते थे।' उस समय प्रजागण उनके इस शंतनुत्व ( रोगी और वृद्धको युवा बना देनेवाले ) गुणका ही वर्णन करते थे। तदनन्तर प्रभावशाली राजा शंतनुने जह्नु-नन्दिनी गङ्गाको अपनी पत्नीके रूपमें वरण किया और उनके गर्भसे देवव्रत ( भीष्म ) नामक कुमारको पैदा किया। दाश-कन्या काली सत्यवतीने शंतनुके संयोगसे विचित्रवीर्य नामक पुत्रको जन्म दिया, जो पिताके लिये परम प्रिय, शान्तात्मा और निष्पाप था। महर्षि कृष्णद्वैपायन व्यासने विचित्र-वीर्यके क्षेत्रमें धृतराष्ट्र और पाण्डुको तथा ( दासीसे ) विदुरको उत्पन्न किया था। धृतराष्ट्रने गान्धारीके गर्भसे सौ पुत्रोंको उत्पन्न किया, उनमें दुर्योधन सबसे श्रेष्ठ था और वह सम्पूर्ण क्षत्रिय-वंशका स्वामी था। इसी प्रकार पाण्डुकी कुन्ती और माद्री नामकी दो पत्नियाँ हुईं। इन्हीं दोनोंके गर्भसे महाराज पाण्डुकी वंश-वृद्धिके लिये देवताओंद्वारा प्रदान किये गये पाँच पुत्र उत्पन्न हुए। कुन्तीने धर्मके संयोगसे युधिष्ठिरको, वायुके संयोगसे वृकोदर ( भीमसेन )को और इन्द्रके संयोगसे इन्द्र-सरीखे पराक्रमी धनंजय ( अर्जुन ) को जन्म दिया। इसी प्रकार माद्रीने अश्विनीकुमारोंके संयोगसे नकुल और सहदेवको पैदा किया ॥ ४१—५० ॥

पञ्चैते पाण्डवेभ्यस्तु द्रौपद्यां जज्ञिरे सुताः। द्रौपद्यजनयच्छ्रेष्ठं प्रतिविन्ध्यं युधिष्ठिरात् ॥ ५१ ॥
श्रुतसेनं भीमसेनाच्छ्रुतकीर्तिं धनंजयात्। चतुर्थं श्रुतकर्माणं सहदेवादजायत ॥ ५२ ॥
नकुलाच्च शतानीकं द्रौपदेयाः प्रकीर्तिताः। तेभ्योऽपरे पाण्डवेयाः षडेवान्ये महारथाः ॥ ५३ ॥
हैडम्बो भीमसेनात् तु पुत्रो जज्ञे घटोत्कचः। काशी बलधराद् भीमाज्जज्ञे वै सर्वगं सुतम् ॥ ५४ ॥
सुहोत्रं तनयं माद्री सहदेवादसूयत। करेणुमत्यां चैद्यायां निरमित्रस्तु नाकुलिः ॥ ५५ ॥
सुभद्रायां रथी पार्थादभिमन्युरजायत। यौधेयं देवकी चैव पुत्रं जज्ञे युधिष्ठिरात् ॥ ५६ ॥
अभिमन्योः परीक्षित् तु पुत्रः परपुरंजयः। जनमेजयः परीक्षितः पुत्रः परमधार्मिकः ॥ ५७ ॥

इन पाँचो पाण्डवोंके संयोगसे द्रौपदीके गर्भसे पाँच पुत्र उत्पन्न हुए। उनमें द्रौपदीने युधिष्ठिरके संयोगसे ज्येष्ठ पुत्र प्रतिविन्ध्यको, भीमसेनके संयोगसे श्रुतसेनको और अर्जुनके संयोगसे श्रुतकीर्तिको जन्म दिया था। चौथा पुत्र श्रुतकर्मा सहदेवसे और शतानीक नकुलसे उत्पन्न किया था। ये पाँचों द्रौपदेय अर्थात् द्रौपदीके पुत्र कहलाये। इनके अतिरिक्त पाण्डवोंके छः अन्य महारथी पुत्र भी थे। (उनका विवरण इस प्रकार है——) भीमसेनके संयोगसे हिडिम्बा नामकी राक्षसीके गर्भसे घटोत्कच नामक पुत्रका जन्म हुआ था। उनकी दूसरी पत्नी काशीने बलवान् भीमसेनके संयोगसे सर्वग नामक पुत्रको जन्म दिया था। मद्रराज-कुमारी सहदेव-पत्नीने सहदेवके संयोगसे सुहोत्र नामक पुत्रको पैदा किया था। नकुल-पुत्र निरमित्र चेदिराज-कुमारी करेणुमतीके गर्भसे उत्पन्न हुआ था। पृथा-पुत्र अर्जुनके संयोगसे सुभद्राके गर्भसे महारथी अभिमन्यु पैदा हुआ था। युधिष्ठिर-पत्नी देवकीने युधिष्ठिरके सयोगसे यौधेय नामक पुत्रको जन्म दिया था। अभिमन्युके पुत्र शत्रुओंकी नगरीको जीतनेवाले परीक्षित् हुए। परीक्षित्के पुत्र परम धर्मात्मा जनमेजय (तृतीय) हुए॥ ५१—५७॥

**ब्रह्माणं कल्पयामास स वै वाजसनेयकम्। स वैशम्पायनेनैव शप्तः किल महर्षिणा॥ ५८॥**
**न स्थास्यतीह दुर्बुद्धे तवैतद् वचनं भुवि। यावत् स्थास्यसि त्वं लोके तावदेव प्रपत्स्यति॥ ५९॥**
**क्षत्रस्य विजयं ज्ञात्वा ततः प्रभृति सर्वशः। अभिगम्य स्थिताश्चैव नृपं च जनमेजयम्॥ ६०॥**
**ततः प्रभृति शापेन क्षत्रियस्य तु याजिनः। उत्सन्ना याजिनो यज्ञे ततः प्रभृति सर्वशः॥ ६१॥**
**क्षत्रस्य याजिनः केचिच्छापात् तस्य महात्मनः।**
**पौर्णमासेन हविषा इष्ट्वा तस्मिन् प्रजापतिम्। स वैशम्पायनेनैव प्रविशन् वारितस्ततः॥ ६२॥**
**परीक्षितः सुतोऽसौ वै पौरवो जनमेजयः। द्विरश्वमेधमाहृत्य महावाजसनेयकः॥ ६३॥**
**प्रवर्तयित्वा तं सर्वमृषिं वाजसनेयकम्। विवादे ब्राह्मणैः सार्धमभिशप्तो वनं ययौ॥ ६४॥**
**जनमेजयाच्छतानीकस्तस्माज्जज्ञे स वीर्यवान्। जनमेजयः शतानीकं पुत्रं राज्येऽभिषिक्तवान्॥ ६५॥**
**अथाश्वमेधेन ततः शतानीकस्य वीर्यवान्। जज्ञेऽधिसीमकृष्णाख्यः साम्प्रतं यो महायशाः॥ ६६॥**
**तस्मिञ्शासति राष्ट्रं तु युष्माभिरिदमाहृतम्।**
**दुरापं दीर्घसत्रं वै त्रीणि वर्षाणि पुष्करे। वर्षद्वयं कुरुक्षेत्रे दृषद्वत्यां द्विजोत्तमाः॥ ६७॥**

जनमेजयने अपने यज्ञमें वाजसनेय (शुक्लयजुर्वेदके आचार्य) ऋषिको ब्रह्माके पदपर नियुक्त किया। यह देखकर वैशम्पायन (कृष्णयजुर्वेदके आचार्य)ने उन्हे शाप देते हुए कहा—'दुर्बुद्धे! तुम्हारा यह (नवीन) वचन अर्थात् (संहिता-ग्रन्थ) भूतलपर स्थायी नहीं हो सकेगा। जबतक तुम लोकमें जीवित रहोगे, तभीतक यह भी ठहर सकेगा।' तभीसे क्षत्रियजातिकी विजय जानकर बहुत-से लोग चारों ओरसे (शुक्लयजुर्वेदके प्रवर्धक) राजा जनमेजयके पास आकर रहने लगे। परंतु महात्मा वैशम्पायनके शापके कारण उस यज्ञमें बहुत-से यज्ञानुष्ठान करनेवाले क्षत्रिय तथा कुछ याजक भी नष्ट हो गये। तब उस यज्ञमें जब जनमेजय पौर्णमास हविद्वारा ब्रह्माका यजन कर यज्ञशालामें प्रवेश करनेके लिये प्रयत्नशील हुए, उसी समय महर्षि वैशम्पायनने उन्हे भीतर जानेसे रोक दिया। तदनन्तर परीक्षित्-पुत्र पूरुवंशी जनमेजयने दो अश्वमेध-यज्ञोका अनुष्ठान किया। उनमें उन्होने अपनेद्वारा प्रवर्तित महावाजसनेय (शौक्लयाजुष) विधिका ही प्रयोग किया। वह सारा कार्य वाजसनेय ऋषिकी अध्यक्षतामें ही सम्पन्न हो रहा था। उसी समय ब्राह्मणोंके साथ विवाद हो जानेपर ब्राह्मणोंने उन्हें शाप दे दिया, जिससे वे वनमें चले गये।* उन जनमेजयसे पराक्रमी शतानीकका जन्म हुआ। जनमेजयने (वन-गमन करते समय) अपने पुत्र शतानीकको राज्यपर अभिषिक्त कर दिया था। शतानीक-

* द्र० हरिवंश, भविष्यपु० अ० ५।

द्वारा अश्वमेध-यज्ञका अनुष्ठान किये जानेपर उसके फलस्वरूप शतानीकके एक महायशस्वी एवं पराक्रमी अधिसीमकृष्ण नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो इस (पुराण-प्रवचनके) समय सिंहासनासीन है। द्विजवरो! उसीके राज्य-शासन करते समय आपलोगोंने अभी-अभी पुष्करक्षेत्रमें तीन वर्षोंतक तथा कुरुक्षेत्रमें दृषद्वतीके तटपर दो वर्षोंतक इस दुर्लभ दीर्घ सत्रका अनुष्ठान सम्पन्न किया है॥ ५८—६७॥

ऋषय ऊचुः

भविष्यं श्रोतुमिच्छामः प्रजानां लोमहर्षणे। पुरा किल यदेतद् वै व्यतीतं कीर्तितं त्वया॥ ६८॥
येषु वै स्थास्यते क्षत्रमुत्पत्स्यन्ते नृपाश्च ये। तेषामायुःप्रमाणं च नामतश्चैव तान् नृपान्॥ ६९॥
कृतयुगप्रमाणं च त्रेताद्वापरयोस्तथा। कलियुगप्रमाणं च युगदोषं युगक्षयम्॥ ७०॥
सुखदुःखप्रमाणं च प्रजादोषं युगस्य तु। एतत् सर्वं प्रसंख्याय पृच्छतां ब्रूहि नः प्रभो॥ ७१॥

ऋषियोंने पूछा—लोमहर्षणके पुत्र सूतजी! पूर्वकालमें जो बातें बीत चुकी हैं, उनका वर्णन तो आपने कर दिया। अब हमलोग प्रजाओंके भविष्यके विषयमें सुनना चाहते हैं। यह क्षत्रिय-जाति जिन-जिन वंशोंमें स्थित रहेगी और उनमें जो-जो नरेश उत्पन्न होंगे, उनके क्या नाम होंगे तथा उनकी आयुका प्रमाण कितना होगा? कृतयुग, त्रेता, द्वापर तथा कलियुग—इन चारों युगोंकी कितनी-कितनी अवधि होगी? प्रत्येक युगमें क्या-क्या दोष होंगे? तथा उन युगोंका विनाश कैसे होगा? सुख और दुःखका प्रमाण क्या होगा? तथा प्रत्येक युगकी प्रजाओंमें क्या-क्या दोष उत्पन्न होंगे? प्रभो! यह सब क्रमशः हमें बतलाइये; क्योंकि हमलोग इसे जानना चाहते हैं॥ ६८—७१॥

सूत उवाच

यथा मे कीर्तितं पूर्वं व्यासेनाक्लिष्टकर्मणा। भाव्यं कलियुगं चैव तथा मन्वन्तराणि च॥ ७२॥
अनागतानि सर्वाणि ब्रुवतो मे निबोधत। अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि भविष्या ये नृपास्तथा॥ ७३॥
ऐडेक्ष्वाकान्वये चैव पौरवे चान्वये तथा।
येषु संस्थास्यते तच्च ऐडेक्ष्वाकुकुलं शुभम्। तान् सर्वान् कीर्तयिष्यामि भविष्ये कथितान् नृपान्॥ ७४॥
तेभ्योऽपरेऽपि ये त्वन्ये ह्युत्पत्स्यन्ते नृपाः पुनः। क्षत्राः पारशवाः शूद्रास्तथान्ये ये बहिश्चराः॥ ७५॥
अन्धाः शकाः पुलिन्दाश्च चूलिका यवनास्तथा।
कैवर्ताभीरशबरा ये चान्ये म्लेच्छसम्भवाः। पर्यायतः प्रवक्ष्यामि नामतश्चैव तान् नृपान्॥ ७६॥
अधिसीमकृष्णश्चैतेषां प्रथमं वर्तते नृपः। तस्यान्ववाये वक्ष्यामि भविष्ये कथितान् नृपान्॥ ७७॥
अधिसीमकृष्णपुत्रस्तु विवक्षुर्भविता नृपः। गङ्गया तु हृते तस्मिन् नगरे नागसाह्वये॥ ७८॥
त्यक्त्वा विवक्षुर्नगरं कौशाम्ब्यां तु निवत्स्यति। भविष्याष्टौ सुतास्तस्य महाबलपराक्रमाः॥ ७९॥
भूरिर्ज्येष्ठः सुतस्तस्य तस्य चित्ररथः स्मृतः। शुचिद्रवश्चित्ररथाद् वृष्णिमांश्च शुचिद्रवात्॥ ८०॥
वृष्णिमतः सुषेणश्च भविष्यति शुचिर्नृपः। तस्मात् सुषेणाद् भविता सुनीथो नाम पार्थिवः॥ ८१॥
नृपात् सुनीथाद् भविता नृचक्षुः सुमहायशाः। नृचक्षुषस्तु दायादो भविता वै सुखीबलः॥ ८२॥
सुखीबलसुतश्चापि भावी राजा परिष्णवः। परिष्णवसुतश्चापि भविता सुतपा नृपः॥ ८३॥
मेधावी तस्य दायादो भविष्यति न संशयः। मेधाविनः सुतश्चापि भविष्यति पुरंजयः॥ ८४॥
उर्वो भाव्यः सुतस्तस्य तिग्मात्मा तस्य चात्मजः। तिग्माद् बृहद्रथो भाव्यो वसुदामा बृहद्रथात्॥ ८५॥
वसुदाम्नः शतानीको भविष्योदयनस्ततः। भविष्यते चोदयनाद् वीरो राजा वहीनरः॥ ८६॥
वहीनरात्मजश्चैव दण्डपाणिर्भविष्यति। दण्डपाणेर्निरमित्रो निरमित्रात्तु क्षेमकः॥ ८७॥
अत्रानुवंशश्लोकोऽयं गीतो विप्रैः पुरातनैः।

ब्रह्मक्षत्रस्य यो योनिर्वंशो देवर्षिसत्कृतः। क्षेमकं प्राप्य राजानं संस्थास्यति कलौ युगे ॥ ८८ ॥
इत्येष पौरवो वंशो यथावदिह कीर्तितः। धीमतः पाण्डुपुत्रस्य चार्जुनस्य महात्मनः ॥ ८९ ॥
*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशे पूरुवंशानुकीर्तनं नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥*

**सूतजी कहते हैं—**ऋषियो ! पूर्वकालमें अक्लिष्टकर्मा व्यासजीने मुझसे भावी कलियुग तथा आनेवाले सभी मन्वन्तरोंके विषयमें जैसा वर्णन किया था, वही मैं आपलोगोंको बतला रहा हूँ; सुनिये । इसके बाद अब मैं उन्हीं राजाओंका वर्णन करने जा रहा हूँ, जो भविष्यमें ऐड ( ऐल ) और इक्ष्वाकुके वंशमें तथा पौरव-वंशमें उत्पन्न होनेवाले हैं । जिन राजाओंमें ये मङ्गलमय ऐड और इक्ष्वाकु-वंश स्थित रहेंगे, भविष्यमें होनेवाले उन सभी तथाकथित नरेशोंका मैं वर्णन करूँगा । इनके अतिरिक्त भी जो अन्य नृपतिगण क्षत्रिय, पारशव, शूद्र, बहिश्चर, अंध, शक, पुलिन्द, चूलिक, यवन, कैवर्त, आभीर और शबर जातियोंमें उत्पन्न होंगे तथा दूसरे जो म्लेच्छ-जातियोंमें पैदा होंगे, उन सभी नरेशोंका पर्याय क्रमसे नामनिर्देशानुसार वर्णन कर रहा हूँ । इन सबमें सर्वप्रथम राजा अधिसोमकृष्ण हैं, जो सम्प्रति वर्तमान हैं । इनके वंशमें भविष्यमें उत्पन्न होनेवाले राजाओंका वर्णन कर रहा हूँ । अधिसोमकृष्णका पुत्र राजा विवक्षु होगा । गङ्गाद्वारा हस्तिनापुर नगरके डुबो (बहा) दिये जानेपर विवक्षु उस नगरका परित्याग कर कौशाम्बी* नगरीमें निवास करेगा । उसके महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न आठ पुत्र होंगे । उसका ज्येष्ठ पुत्र भूरि होगा और उसका पुत्र चित्ररथ नामसे विख्यात होगा । चित्ररथसे शुचिद्रव, शुचिद्रवसे वृष्णिमान् और वृष्णिमान्‌से परम पवित्र राजा सुषेण उत्पन्न होगा । उस सुषेणसे सुनीथ नामका राजा होगा । राजा सुनीथसे महायशस्वी नृचक्षुकी उत्पत्ति होगी । नृचक्षुका पुत्र सुखीवल होगा । सुखीवलका पुत्र भावी राजा परिष्णव और परिष्णवका पुत्र राजा सुतपा होगा । उसका पुत्र निस्सदेह मेधावी होगा । मेधावीका पुत्र पुरंजय होगा । उसका भावी पुत्र उर्व और उसका पुत्र तिग्मात्मा होगा । तिग्मात्मासे बृहद्रथ और बृहद्रथसे वसुदामाका जन्म होगा । वसुदामासे शतानीक और उससे उदयनकी उत्पत्ति होगी । उदयनसे वीरवर राजा वहीनर उत्पन्न होगा । वहीनरका पुत्र दण्डपाणि होगा । दण्डपाणिसे निरमित्र और निरमित्रसे क्षेमकका जन्म होगा । इस वंश-परम्पराके विषयमें प्राचीनकालिक विप्रोंद्वारा एक श्लोक गाया गया है, जिसका आशय यह है कि 'ब्राह्मण और क्षत्रियोंकी योनिस्वरूप यह वंश, जो देवर्षियोंद्वारा सत्कृत है, कलियुगमें राजा क्षेमकको प्राप्त कर समाप्त हो जायगा ।' इस प्रकार पूरु-वंशका तथा पाण्डुपुत्र परम बुद्धिमान् महात्मा अर्जुनके वंशका वर्णन मैंने यथार्थरूपसे कर दिया ॥ ७२—८९ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके सोमवंश-वर्णन-प्रसङ्गमें पूरुवंशानुकीर्तन नामक पचासवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ५० ॥

---

# इक्यावनवाँ अध्याय

## अग्नि-वंशका वर्णन तथा उनके भेदोपभेदका कथन

ऋषय ऊचुः

ये पूज्याः स्युर्द्विजातीनामग्नयः सूत सर्वदा। तानिदानीं समाचक्ष्व तद्वंशं चानुपूर्वशः ॥ १ ॥

**ऋषियोंने पूछा—**सूतजी ! जो अग्नि द्विजातियोंके लिये सदा परम पूज्य माने गये हैं, अब उनका तथा उनके वंशका आनुपूर्वी वर्णन कीजिये ॥ १ ॥

---

* यह प्रयागसे १४ मील दक्षिणकी ओर स्थित है । आजकल लोग इसे कोसम कहते हैं ।

सूत उवाच

योऽसावग्निरभीमानी स्मृतः स्वायम्भुवेऽन्तरे। ब्रह्मणो मानसः पुत्रस्तस्मात् स्वाहा व्यजायत॥ २ ॥
पावकं पवमानं च शुचिरग्निश्च यः स्मृतः। निर्मथ्यः पवमानोऽग्निर्वैद्युतः पावकात्मजः* ॥ ३ ॥
शुचिरग्निः स्मृतः सौरः स्थावराश्चैव ते स्मृताः। पवमानात्मजो ह्यग्निः कव्यवाहन उच्यते ॥ ४ ॥
पावकिः सहरक्षस्तु हव्यवाहः शुचेः सुतः। देवानां हव्यवाहोऽग्निः पितॄणां कव्यवाहनः ॥ ५ ॥
सहरक्षोऽसुराणां तु त्रयाणां ते त्रयोऽग्नयः। एतेषां पुत्रपौत्राश्च चत्वारिंशन्नवैव च ॥ ६ ॥
प्रवक्ष्ये नामतस्तान् वै प्रविभागेन तान् पृथक्। पावनो लौकिको ह्यग्निः प्रथमो ब्रह्मणश्च यः ॥ ७ ॥
ब्रह्मौदनाग्निस्तत्पुत्रो भरतो नाम विश्रुतः। वैश्वानरः सुतस्तस्य वहन् हव्यं समाः शतम् ॥ ८ ॥
सम्भूतोऽथर्वणः पुत्रो मथितः पुष्करादधि। सोऽथर्वा लौकिको ह्यग्निर्दध्यङ्ङाथर्वणः सुतः ॥ ९ ॥
भृगोः प्रजायताथर्वा दध्यङ्ङाथर्वणः स्मृतः। तस्य ह्यलौकिको ह्यग्निर्दक्षिणाग्निः स वै स्मृतः ॥ १० ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! स्वायम्भुव-मन्वन्तरमें जो ये अग्निके अभिमानी देवता कहे गये हैं, वे ब्रह्माके मानस पुत्र हैं। स्वाहाने उनके संयोगसे पावक (दक्षिणाग्नि), पवमान (गार्हपत्य) और शुचि (आहवनीय) नामक तीन पुत्रोंको जन्म दिया, जो अग्नि भी कहलाते हैं। उनमेंसे पावकको वैद्युत (जलबिजलीसे उत्पन्न), पवमानको निर्मथ्य (निर्मन्थन करनेपर उत्पन्न) और शुचिको सौर (सूर्यके सम्बन्धसे उत्पन्न) अग्नि कहा जाता है। ये सभी अग्नि स्थावर (स्थिर स्वभाववाले) माने गये हैं। पवमानके पुत्र जो अग्नि हुए, उन्हें कव्यवाहन कहा जाता है। पावकके पुत्र सहरक्ष और शुचिके पुत्र हव्यवाहन हुए। देवताओंके अग्नि हव्यवाह हैं, जो ब्रह्माके प्रथम पुत्र हैं। सहरक्ष असुरोंके अग्नि हैं तथा पितरोंके अग्नि कव्यवाहन हैं। इस प्रकार ये तीनों देव-असुर-पितर—इन तीनोंके पृथक्-पृथक् अग्नि हैं। इनके पुत्र-पौत्रोंकी संख्या उनचास है। उनको मैं विभागपूर्वक पृथक्-पृथक् नामनिर्देशानुसार बतला रहा हूँ। सर्वप्रथम पावन नामक लौकिक अग्निदेव हुए, जो ब्रह्माके पुत्र हैं। उनके पुत्र ब्रह्मौदनाग्नि हुए, जो भरत नामसे भी विख्यात हैं। वैश्वानर नामक अग्नि सौ वर्षोंतक हव्यको वहन करते रहे। पुष्कर (या आकाश) का मन्थन करनेपर अथर्वाके पुत्ररूपमें जो अग्नि उत्पन्न हुए, वे दध्यङ्ङाथर्वणके नामसे प्रसिद्ध हुए। उन्हींको दक्षिणाग्नि भी कहा जाता है। भृगुसे अथर्वाकी और अथर्वासे अङ्गिराकी उत्पत्ति बतलायी जाती है। उनसे अलौकिक अग्निकी उत्पत्ति हुई, जिसे दक्षिणाग्नि भी कहते हैं ॥ २—१० ॥

अथ यः पवमानस्तु निर्मथ्योऽग्निः स उच्यते। स च वै गार्हपत्योऽग्निः प्रथमो ब्रह्मणः स्मृतः ॥ ११ ॥
ततः सभ्यावसथ्यौ च संशत्यास्तौ सुतावुभौ।
ततः षोडश नद्यस्तु चकमे हव्यवाहनः। यः खल्वाहवनीयोऽग्निरभिमानी द्विजैः स्मृतः ॥ १२ ॥
कावेरीं कृष्णवेणां च नर्मदां यमुनां तथा। गोदावरीं वितस्तां च चन्द्रभागामिरावतीम् ॥ १३ ॥
विपाशां कौशिकीं चैव शतद्रुं सरयूं तथा। सीतां मनस्विनीं चैव ह्लादिनीं पावनां तथा ॥ १४ ॥
तासु षोडशधाऽऽत्मानं प्रविभज्य पृथक् पृथक्। तदा तु विहरंस्तासु धिष्ण्येच्छः स बभूव ह ॥ १५ ॥
स्वाभिधानस्थिता धिष्ण्यास्तासूत्पन्नाश्च धिष्णवः। धिष्ण्येषु जज्ञिरे यस्मात् ततस्ते धिष्णवः स्मृताः॥ १६ ॥
इत्येते वै नदीपुत्रा धिष्ण्येषु प्रतिपेदिरे।
तेषां विहरणीया ये उपस्थेयाश्च ताञ्शृणु। विभुः प्रवाहणोऽग्नीध्रस्तत्रस्था धिष्णवोऽपरे ॥ १७ ॥
विहरन्ति यथास्थानं पुण्याहे समुपक्रमे। अनिर्देश्यानिवार्याणामग्नीनां शृणुत क्रमम् ॥ १८ ॥
वासवोऽग्निः कृशानुर्यो द्वितीयोत्तरवेदिकः। सम्राडग्निसुतो ह्यष्टावुपतिष्ठन्ति तान् द्विजाः ॥ १९ ॥

* 'अन्योनिर्वैद्युतः स्मृतः' इति पाठान्तरम्।

पर्जन्यः पवमानस्तु द्वितीयः सोऽनुदृश्यते। पावकोष्णः समूह्यस्तु वोत्तरे सोऽग्निरुच्यते॥ २०॥
हव्यसूदो ह्यसम्मृज्यः शामित्रः स विभाव्यते। शतधामा सुधाज्योती रौद्रैश्वर्यः स उच्यते॥ २१॥
ब्रह्मज्योतिर्वसुधामा ब्रह्मस्थानीय उच्यते। अजैकपादुपस्थेयः स वै शालामुखो यतः॥ २२॥
अनिर्देश्यो ह्यहिर्बुध्न्यो बहिरन्ते तु दक्षिणे। पुत्रा ह्येते वासवस्य उपस्थेया द्विजैः स्मृताः॥ २३॥

हम पहले कह चुके हैं कि जो पवमान अग्नि है, वे ही निर्मथ्य नामसे भी कहे जाते हैं। वे ही ब्रह्माके प्रथम पुत्र गार्हपत्य* अग्नि हैं। फिर संशतिसे सभ्य और आवसथ्य—इन दो पुत्रोंकी उत्पत्ति हुई। तदनन्तर आहवनीय नामक अग्निने जिन्हें ब्राह्मणोंने अग्निके अभिमानी देवता नामसे अभिहित किया है, अपनेको सोलह भागोंमें विभक्त कर कावेरी, कृष्णवेणा, नर्मदा, यमुना, गोदावरी, वितस्ता ( झेलम ), चन्द्रभागा, इरावती, विपाशा, कौशिकी ( कोसी ), शतद्रु ( सतलज ), सरयू, सीता, मनस्विनी, ह्लादिनी तथा पावना—इन सोलह नदियोंके साथ पृथक्-पृथक् विहार किया। उनके साथ विहार करते समय अग्निको स्थान-प्राप्तिकी इच्छा उत्पन्न हो गयी थी, इसलिये उन नदियोंके गर्भसे उत्पन्न हुए पुत्र उस इच्छाके अनुसार धिष्णु ( या धिष्ण्य ) कहलाये। चूँकि वे यज्ञिय अग्निके स्थापनयोग्य स्थानपर पैदा हुए थे, इसलिये धिष्णु नामसे कहे जाने लगे। इस प्रकार ये सभी नदी-पुत्र धिष्ण्य ( यज्ञिय अग्निके स्थापन योग्य स्थान ) में उत्पन्न हुए थे। अब इनके विहार एवं उपासनायोग्य स्थानका वर्णन कर रहा हूँ, उन्हें सुनिये। यज्ञादि पुण्य अवसरके उपस्थित होनेपर विभु, प्रवाहण, अग्नीध्र आदि अन्यान्य धिष्णु वहाँ उपस्थित होकर यथास्थान विचरते रहते हैं। अब अनिर्देश्य और अनिवार्य अग्नियोंके क्रमको सुनिये। वासव नामक अग्नि, जिसे कृशानु भी कहते हैं, यज्ञकी दूसरी वेदीके उत्तर भागमें स्थित होते हैं। उन्हीं अग्निका एक नाम सम्राट् भी है। इन अग्निके आठ पुत्र है, जिनकी विप्रगण उपासना करते है। पवमान नामक जो द्वितीय अग्नि हैं, वे पर्जन्यके रूपमें देखे जाते हैं और उत्तर दिशामें स्थित पावक नामक अग्निको समूह्य अग्नि कहा जाता है। असम्मृज्य हव्यसूद अग्निको शामित्र कहा जाता है। शतधामा अग्नि सुधाज्योति हैं, इन्हे रौद्रैश्वर्य नामसे अभिहित किया जाता है। ब्रह्मज्योति अग्निको वसुधाम और ब्रह्मस्थानीय भी कहते हैं। अजैकपाद् उपासनीय अग्नि हैं, इन्हे शालामुख भी कहा जाता है। अहिर्बुध्न्य अनिर्देश्य अग्नि हैं। ये वेदीकी दक्षिण दिशामें परिधिके अन्तमें स्थित होते है। वासव नामक अग्निके ये आठों पुत्र ब्राह्मणोंद्वारा उपासनीय बतलाये गये हैं॥ ११—२३॥

ततो विहरणीयांस्तु वक्ष्याम्यष्टौ तु तान् सुतान्। होत्रियस्य सुतो ह्यग्निर्बर्हिषो हव्यवाहनः॥ २४॥
प्रशंस्योऽग्निः प्रचेतास्तु द्वितीयः संसहायकः। सुतो ह्यग्नेर्विश्ववेदा ब्राह्मणाच्छंसिरुच्यते॥ २५॥
अपां योनिः स्मृतः स्वाम्भः सेतुर्नाम विभाव्यते। धिष्ण्य आहरणा ह्येते सोमेनेज्यन्त वै द्विजैः॥ २६॥
ततो यः पावको नाम्ना यः सद्भिर्योग उच्यते। अग्निः सोऽवभृथो ज्ञेयो वरुणेन सहेज्यते॥ २७॥
हृदयस्य सुतो ह्यग्नेर्जठरेऽसौ नृणां पचन्। मन्युमाञ्जठरश्चाग्निर्विद्धाग्निः सततं स्मृतः॥ २८॥
परस्परोत्थितो ह्यग्निर्भूतानीह विभुर्दहन्। अग्नेर्मन्युमतः पुत्रो घोरः संवर्तकः स्मृतः॥ २९॥
पिबन्नपः स वसति समुद्रे वडवामुखे। समुद्रवासिनः पुत्रः सहरक्षो विभाव्यते॥ ३०॥

* इन अग्नियोंकी वैदिक २१ यज्ञसंस्थाओंमें बड़ी प्रतिष्ठा है। इनका वितृत विवरण आश्वलायनादि ( २। १-२ ) श्रौतसूत्रों, कौशिकसूत्र, महाभारत, ब्रह्माण्डपुराणादिमें है। वासुदेवशरण अग्रवालने—'Matsya Purana A Study' में, अनेक कर्मोंमें अग्निनाम संग्रहमें विधानपारिजात कारने तथा 'यज्ञमीमांसा' ग्रन्थमें वेणीराम शर्माने बहुत श्रम किया है।

सहरक्षस्तु वै कामान् गृहे स वसते नृणाम्। क्रव्यादग्निः सुतस्तस्य पुरुषान् योऽत्ति वै मृतान्॥ ३१ ॥
इत्येते पावकस्याग्नेर्द्विजैः पुत्राः प्रकीर्तिताः। ततः सुतास्तु सौवीर्याद् गन्धर्वैरसुरैर्हृताः ॥ ३२ ॥
मथितो यस्त्वरण्यां तु सोऽग्निराप समिन्धनम्। आयुर्नाम्ना तु भगवान् पशौ यस्तु प्रणीयते ॥ ३३ ॥
आयुषो महिमान् पुत्रो दहनस्तु ततः सुतः। पाकयज्ञेष्वभीमानी हुतं हव्यं भुनक्ति यः ॥ ३४ ॥
सर्वस्माद् देवलोकाच्च हव्यं कव्यं भुनक्ति यः। पुत्रोऽस्य स हितो ह्यग्निरद्भुतः स महायशाः ॥ ३५ ॥
प्रायश्चित्तेष्वभीमानी हुतं हव्यं भुनक्ति यः। अद्भुतस्य सुतो वीरो देवांशस्तु महान् स्मृतः ॥ ३६ ॥
विविधाग्निस्ततस्तस्य तस्य पुत्रो महाकविः। विविधाग्निसुतादर्कादग्नयोऽष्टौ सुताः स्मृताः॥ ३७ ॥

अब मै उन आठ विहरणीय अग्नि-पुत्रोंका वर्णन कर रहा हूँ। बर्हिष् नामक होत्रिय अग्निके पुत्र हव्यवाहन अग्नि हैं। इसके पश्चात् प्रचेता नामक प्रशंसनीय अग्निकी उत्पत्ति हुई, जिनका दूसरा नाम संसहायक है। पुनः अग्निपुत्र विश्ववेदा हुए, जिन्हें ब्राह्मणाच्छंसि* भी कहा जाता है। जलसे उत्पन्न होनेवाले प्रसिद्ध स्वाम्भ अग्नि सेतु नामसे भी अभिहित होते हैं। इन धिष्ण्यसंज्ञक अग्नियोका यज्ञमें यथास्थान आवाहन होता है और ब्राह्मणलोग सोम-रसद्वारा इनकी पूजा करते हैं। तत्पश्चात् जो पावक नामक अग्नि हैं, जिन्हें सत्पुरुषगण योग नामसे पुकारते हैं, उन्हींको अवभृथ अग्नि† समझना चाहिये। उनकी वरुणके साथ पूजा होती है। हृदय नामक अग्निके पुत्र मन्युमान् है, जिन्हे जठराग्नि भी कहते हैं। ये मनुष्योके उदरमें स्थित रहकर भक्षित पदार्थोंको पचाते हैं। परस्परके संघर्षसे उत्पन्न हुए प्रभावशाली अग्निको, जो जगत्में निरन्तर प्राणियोंको जलाते रहते हैं, विद्वाग्नि कहते हैं। मन्युमान् अग्निके पुत्र संवर्तक हैं, जो अत्यन्त भयंकर बताये जाते हैं। वे समुद्रमें वडवामुखद्वारा निरन्तर जलपान करते हुए निवास करते हैं। समुद्रवासी संवर्तक अग्निके पुत्र सहरक्ष बतलाये जाते हैं। सहरक्ष मनुष्योंके घरोंमें निवास करते हैं और उनकी सभी कामनाओंको सम्पन्न करते रहते हैं। सहरक्षके पुत्र क्रव्यादग्नि हैं, जो मरे हुए पुरुषोंका भक्षण करते हैं। इस प्रकार ये सभी ब्राह्मणोंद्वारा पावक नामक अग्निके पुत्र बतलाये गये हैं। इनके अतिरिक्त जो अन्य पुत्र हैं, उन्हें सौवीर्यसे गन्धर्वों और असुरोंने हरण कर लिया था। अरणीमें मन्थन करनेसे जो अग्नि उत्पन्न होता है, वह तो इन्धनके आश्रित रहता है। पृथु-योनिके लिये जिन अग्निकी नियुक्ति हुई है, उन ऐश्वर्यशाली अग्निका नाम आयु है। आयुके पुत्र महिमान् और उनके पुत्र दहन हैं, जो पाकयज्ञोंके अभिमानी देवता हैं। वे ही उन यज्ञोंमें हवन किये गये हविको खाते हैं। दहनके पुत्र अद्भुत नामक अग्नि हैं, जो समस्त देवलोकोंमें दिये गये हव्य एवं कव्यका भक्षण करते हैं। वे महान् यशस्वी और जनताके हितकारी हैं। ये प्रायश्चित्तनिमित्तक यज्ञोंके अभिमानी देवता हैं, इसी कारण उन यज्ञोंमें हवन किये गये हव्यको खाते हैं। अद्भुतके पुत्र वीर नामक अग्नि हैं, जो देवांशसे उद्भूत और महान् कहे जाते हैं। उनके पुत्र विविधाग्नि हैं और विविधाग्निके पुत्र महाकवि हैं। विविधाग्निके दूसरे पुत्र अर्कसे आठ अग्नि-पुत्रोंकी उत्पत्ति बतलायी जाती है॥

काम्यास्विष्टिष्वभीमानी रक्षोहा यतिकृच्च यः। सुरभिर्वसुमान् नादो ह्यर्यश्वश्चैव रुक्मवान् ॥ ३८ ॥
प्रवर्ग्यः क्षेमवांश्चैव इत्यष्टौ च प्रकीर्तिताः। शुच्यग्नेस्तु प्रजा ह्येषा अग्नयश्च चतुर्दश ॥ ३९ ॥
इत्येते ह्यग्नयः प्रोक्ताः प्रणीता ये हि चाध्वरे। समतीते तु सर्गे ये यामैः सह सुरोत्तमैः ॥ ४० ॥

---

* यह अग्निष्टोमके १६ ऋत्विजोंमेंसे भी एक होता है, जिसका इस अग्निपरिचर्यासे विशेष सम्बन्ध होता है।

† यज्ञान्तहवन एवं अवभृथ स्नानके समय इसका उपयोग होता है।

स्वायम्भुवेऽन्तरे पूर्वमग्नयस्तेऽभिमानिनः । एते विहरणीयेषु चेतनाचेतनेष्विह ॥ ४१ ॥
स्थानाभिमानिनोऽग्नीध्राः प्रागासन् हव्यवाहनाः । काम्यनैमित्तिकाद्यास्ते ये ते कर्मस्ववस्थिताः ॥ ४२ ॥
पूर्वं मन्वन्तरेऽतीते शुक्रैर्यामैश्च तैः सह । एते देवगणैः सार्धं प्रथमस्यान्तरे मनोः ॥ ४३ ॥
इत्येता योनयो ह्युक्ताः स्थानाख्या जातवेदसाम् । स्वारोचिषादिषु ज्ञेयाः सवर्णान्तेषु सप्तसु ॥ ४४ ॥
तैरेवं तु प्रसंख्यातं साम्प्रतानागतेष्विह । मन्वन्तरेषु सर्वेषु लक्षणं जातवेदसाम् ॥ ४५ ॥
मन्वन्तरेषु सर्वेषु नानारूपप्रयोजनैः । वर्तन्ते वर्तमानैश्च यामैर्देवैः सहाग्नयः ॥ ४६ ॥
अनागतैः सुरैः सार्धं वत्स्यन्तोऽनागतास्त्वथ ।
इत्येष प्रचयोऽग्नीनां मया प्रोक्तो यथाक्रमम् । विस्तरेणानुपूर्व्या च किमन्यच्छ्रोतुमिच्छथ ॥ ४७ ॥

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽग्निवंशो नामैकपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५१ ॥*

कामना-पूर्तिके निमित्त किये जानेवाले यज्ञोंके जो अभिमानी देवता हैं, उनका नाम रक्षोहा अग्नि है। उनका दूसरा नाम यतिकृत भी है। इनके अतिरिक्त सुरभि, वसुरत्न, नाद, हर्यश्व, रुक्मवान्, प्रवर्ग्य और क्षेमवान्—ये आठ अग्नि कहे गये हैं। ये सभी शुचि नामक अग्निकी संतान हैं। इन सबकी संख्या चौदह है। इस प्रकार मैंने उन सभी अग्नियोंका वर्णन कर दिया, जिनका यज्ञ-कार्यमें प्रयोग किया जाता है। प्रलयकालमें ये सभी अग्निपुत्र याम नामक श्रेष्ठ देवताओंके साथ स्वायम्भुव मन्वन्तरमें सभी चेतन एवं अचेतन विहरणीय पदार्थोंके अभिमानी देवता थे। इस पूर्व मन्वन्तरके समाप्त हो जानेपर पुनः प्रथम मन्वन्तरमें ये सभी अग्निगण शुक्र एवं याम नामक देवगणोंके साथ स्थानाभिमानी देवता बनकर अग्नीध्र नामक अग्निके साथ हव्यवहनका कार्य करते थे और काम्य एवं नैमित्तिक आदि जो यज्ञ किये जाते थे, उन कर्मोंमें अवस्थित रहते थे। इस प्रकार मैंने अग्नियोंकी स्थाननाम्नी योनियोंका वर्णन कर दिया। उन्हें स्वारोचिष् मन्वन्तरसे लेकर सावर्णि मन्वन्तरतकके सातों लोकोंमें वर्तमान जानना चाहिये। ऋषियोंने वर्तमान एवं भविष्यमें आनेवाले सभी मन्वन्तरोंमें इसी प्रकार अग्नियोंके लक्षणका वर्णन किया है। ये सभी अग्नि समस्त मन्वन्तरोंमें नाना प्रकारके रूप और प्रयोजनोंसे समन्वित हो वर्तमानकालीन याम नामक देवताओंके साथ वर्तमान थे और इस समय भी हैं तथा भविष्यमें भी उत्पन्न होकर इन नये उत्पन्न होनेवाले देवगणोंके साथ निवास करेंगे। इस प्रकार मैं अग्नियोंके वंश-समूहका क्रमशः विस्तारपूर्वक आनुपूर्वी वर्णन कर चुका। अब आपलोग और क्या सुनना चाहते हैं ? ॥ ३८—४७ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें अग्निवंश-वर्णन नामक इक्यावनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ५१ ॥

# बावनवाँ अध्याय

## कर्मयोगकी महत्ता

ऋषय ऊचुः

इदानीं प्राह यद् विष्णुः पृष्टः परमसुत्तमम् । तमिदानीं समाचक्ष्व धर्माधर्मस्य विस्तरम् ॥ १ ॥

ऋषियोंने पूछा—सूतजी ! सूर्यपुत्र मनुद्वारा पूछे जानेपर भगवान् विष्णुने उनसे धर्म और अधर्मके जिस परम उत्तम प्रसङ्गको विस्तारपूर्वक कहा था, वह इस समय आप हमलोगोंको बतलाइये ॥ १ ॥

सूत उवाच

एवमेकार्णवे तस्मिन् मत्स्यरूपी जनार्दनः। विस्तारमादिसर्गस्य प्रतिसर्गस्य चाखिलम् ॥ २ ॥
कथयामास विश्वात्मा मनवे सूर्यसूनवे। कर्मयोगं च सांख्यं च यथावद् विस्तरान्वितम् ॥ ३ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! प्रलयकालके उस एकार्णवके जलमें मत्स्यरूपधारी विश्वात्मा भगवान् विष्णुने सूर्यपुत्र मनुके प्रति सर्गके विस्तारका पूर्णरूपसे वर्णन किया था। साथ ही कर्मयोग और सांख्ययोगको भी उन्हें विस्तारपूर्वक यथार्थरूपसे बतलाया था ( उसे ही मैं आपलोगोंको सुनाना चाहता हूँ ) ॥ २-३ ॥

ऋषय ऊचुः

श्रोतुमिच्छामहे सूत कर्मयोगस्य लक्षणम्। यस्मादविदितं लोके न किंचित् तव सुव्रत ॥ ४ ॥

ऋषियोंने पूछा—उत्तम व्रतका पालन करनेवाले सूतजी ! आपके लिये लोकमें कोई वस्तु अज्ञात तो है नहीं, अतः हमलोग आपसे कर्मयोगका लक्षण सुनना चाहते हैं ॥ ४ ॥

सूत उवाच

कर्मयोगं च वक्ष्यामि यथा विष्णुविभाषितम्। ज्ञानयोगसहस्राद्धि कर्मयोगः प्रशस्यते ॥ ५ ॥
कर्मयोगोद्भवं ज्ञानं तस्मात् तत्परमं पदम्। कर्मज्ञानोद्भवं ब्रह्म न च ज्ञानमकर्मणः ॥ ६ ॥
तस्मात् कर्मणि युक्तात्मा तत्त्वमाप्नोति शाश्वतम्। वेदोऽखिलो धर्ममूलमाचारश्चैव तद्विदाम् ॥ ७ ॥
अष्टावात्मगुणास्तस्मिन् प्रधानत्वेन संस्थिताः। दया सर्वेषु भूतेषु क्षान्ती रक्षाऽऽतुरस्य तु ॥ ८ ॥
अनसूया तथा लोके शौचमन्तर्बहिर्द्विजाः। अनायासेषु कार्येषु माङ्गल्याचारसेवनम् ॥ ९ ॥
न च द्रव्येषु कार्पण्यमार्तेषूपार्जितेषु च। तथास्पृहा परद्रव्ये परस्त्रीषु च सर्वदा ॥ १० ॥
अष्टावात्मगुणाः प्रोक्ताः पुराणस्य तु कोविदैः। अयमेव क्रियायोगो ज्ञानयोगस्य साधकः ॥ ११ ॥
कर्मयोगं विना ज्ञानं कस्यचिन्नेह दृश्यते। श्रुतिस्मृत्युदितं धर्ममुपतिष्ठेत् प्रयत्नतः ॥ १२ ॥
देवतानां पितॄणां च मनुष्याणां च सर्वदा। कुर्यादहरहर्यज्ञैर्भूतर्षिगणतर्पणम् ॥ १३ ॥
स्वाध्यायैरर्चयेच्चर्षीन् होमैर्देवान् यथाविधि। पितॄञ्श्राद्धैरन्नदानैर्भूतानि बलिकर्मभिः ॥ १४ ॥
पञ्चैते विहिता यज्ञाः पञ्चसूनापनुत्तये। कण्डनी पेषणी चुल्ली जलकुम्भी प्रमार्जनी ॥ १५ ॥
पञ्च सूना गृहस्थस्य तेन स्वर्गं न गच्छति। तत्पापनाशनायामी पञ्च यज्ञाः प्रकीर्तिताः* ॥ १६ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! विष्णुभगवान्ने जिस प्रकार कर्मयोगकी व्याख्या की थी, उसे मैं बतला रहा हूँ। कर्मयोग ज्ञानयोगसे हजारोंगुना अधिक प्रशस्त है; क्योंकि ज्ञान कर्मयोगसे ही प्रादुर्भूत होता है; अतः वह परमपद है। ब्रह्म भी कर्मज्ञानसे उद्भूत होता है। कर्मके बिना तो ज्ञानकी सत्ता ही नहीं है। इसीलिये कर्मयोगके अभ्यासमें संलग्न मनुष्य अविनाशी तत्त्वको प्राप्त कर लेता है। सम्पूर्ण वेद और वेदज्ञोंके आचार-विचार धर्मके मूल हैं। उनमें आठ प्रकारके आत्मगुण प्रधान-रूपसे विद्यमान रहते हैं; जैसे समस्त प्राणियोंपर दया, क्षमा दुःखसे पीडित प्राणीको आश्वासन प्रदान करना और उसकी रक्षा करना, जगत्में किसीसे ईर्ष्या-द्वेष न करना, बाह्य एवं आन्तरिक पवित्रता, परिश्रमरहित अथवा अनायास प्राप्त हुए कार्योंके अवसरपर उन्हें माङ्गलिक आचार-व्यवहारके द्वारा सम्पन्न करना, अपनेद्वारा उपार्जित द्रव्योंसे दीन-दुखियोंकी सहायता करते समय कृपणता न करना तथा पराये धन और परायी स्त्रीके प्रति सदा निःस्पृह रहना—पुराणोंके ज्ञाता विद्वानोंद्वारा

* ये १३-१६ तकके ४ श्लोक मनुस्मृति ३। ६८-७१ में भी प्राप्त होते हैं। और आठ गुणोंके निर्देशक श्लोक गौतमधर्म सूत्र शुक्र स० २१। १७१, चाणक्य० १२। १५ आदिमें उपलब्ध भी हैं।

*

ये आठ आत्मगुण बतलाये गये हैं। यही कर्मयोग ज्ञानयोगका साधक है। जगत्‌में कर्मयोगके बिना किसीको ज्ञानकी प्राप्ति हुई हो, ऐसा नहीं देखा गया है; इसलिये श्रुतियों एवं स्मृतियोंद्वारा कहे गये धर्मका प्रयत्नपूर्वक पालन करना चाहिये। प्रतिदिन सर्वदा देवताओं, पितरों और मनुष्योंको यज्ञोंद्वारा तृप्त करना चाहिये। साथ ही पितरों और ऋषियोंके तर्पणका कार्य भी कर्तव्य है। विद्वान् पुरुषको चाहिये कि वह स्वाध्यायद्वारा देवताओंकी, हवनद्वारा ऋषियोंकी, श्राद्धद्वारा पितरोंकी, अन्नद्वारा अतिथियोंकी तथा बलिकर्मद्वारा मृत प्राणियोंकी विधिपूर्वक अर्चना करे। गृहस्थोंके घरमें जीवहिंसाके पाँच प्रकारके स्थानोंपर घटित हुए पापकी निवृत्तिके लिये इन पाँच प्रकारके यज्ञोंका विधान बतलाया गया है। गृहस्थके घरमें जीवहिंसाके पाँच स्थान ये हैं— कण्डनी ( वस्तुओंके कूटनेका पात्र ओखली, खरल आदि ), पेषणी ( पीसनेका उपकरण चक्की, सिलवट आदि ), चुल्ली ( चूल्हा ), जलकुम्भी ( पानी रखे जानेवाले घड़े ) और प्रमार्जनी ( झाड़ू आदि )। इन स्थानोंपर उत्पन्न हुए पापके कारण गृहस्थ पुरुष स्वर्ग नहीं जा सकता, अतः उन पापोंके विनाशके लिये ये पाँचों यज्ञ बतलाये गये हैं ॥ ५-१६ ॥

द्वात्रिंशच्च तथाष्टौ च ये संस्काराः प्रकीर्तिताः। तद्युक्तोऽपि न मोक्षाय यस्त्वात्मगुणवर्जितः ॥ १७ ॥
तस्मादात्मगुणोपेतः श्रुतिकर्म समाचरेत्। गोब्राह्मणानां वित्तेन सर्वदा भद्रमाचरेत् ॥ १८ ॥
गोभूहिरण्यवासोभिर्गन्धमाल्योदकेन च। पूजयेद् ब्रह्मविष्ण्वर्करुद्रवस्वात्मकं शिवम् ॥ १९ ॥
व्रतोपवासैर्विधिवच्छ्रद्धया च विमत्सरः।
योऽसावतीन्द्रियः शान्तः सूक्ष्मोऽव्यक्तः सनातनः। वासुदेवो जगन्मूर्तिस्तस्य सम्भूतयो ह्यमी ॥ २० ॥
ब्रह्मा विष्णुश्च भगवान् मार्तण्डो वृषवाहनः।
अष्टौ च वसवस्तद्वदेकादश गणाधिपाः। लोकपालाधिपाश्चैव पितरो मातरस्तथा ॥ २१ ॥
इमा विभूतयः प्रोक्ताश्चराचरसमन्विताः। ब्रह्माद्याश्चतुरो मूलमव्यक्ताधिपतिः स्मृतः ॥ २२ ॥
ब्रह्मणा चाथ सूर्येण विष्णुनाथ शिवेन वा। अभेदात् पूजितेन स्यात् पूजितं सचराचरम् ॥ २३ ॥
ब्रह्मादीनां परं धाम त्रयाणामपि संस्थितिः। वेदमूर्तावतः पूपा पूजनीयः प्रयत्नतः ॥ २४ ॥
तस्मादग्निद्विजमुखान् कृत्वा सम्पूजयेदिमान्। दानैर्व्रतोपवासैश्च जपहोमादिना नरः ॥ २५ ॥
इति क्रियायोगपरायणस्य वेदान्तशास्त्रस्मृतिवत्सलस्य।
विकर्मभीतस्य सदा न किंचित् प्राप्तव्यमस्तीह परे च लोके ॥ २६ ॥

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे कर्मयोगमाहात्म्यं नाम द्विपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५२ ॥*

द्विजातियोंके लिये जो चालीस प्रकारके संस्कार बतलाये गये हैं, उनसे संस्कृत होनेपर भी जो मनुष्य ( उपर्युक्त आठ ) आत्मगुणोंसे रहित है, वह मोक्षका भागी नहीं हो सकता। इसलिये आत्मगुणोंसे सम्पन्न होकर ही वैदिक कर्मका अनुष्ठान करना चाहिये। गृहस्थको सदा उपार्जित धनद्वारा गौओं और ब्राह्मणोंका कल्याण करना चाहिये। उसका कर्तव्य है कि वह व्रत एवं उपवास आदि करके गौ, पृथ्वी, सुवर्ण, वस्त्र, गन्ध, माला और जल आदिसे ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य, रुद्र और वसुस्वरूप शिवकी श्रद्धापूर्वक विधिसहित पूजा करे; इसमें कृपणता न करे। जो ये इन्द्रियोंके अगोचर, परम शान्त, सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म, अव्यक्त, अविनाशी एवं विश्वस्वरूप भगवान् वासुदेव हैं, उन्हींकी ये विभूतियाँ हैं। उन विभूतियोंके नाम ये हैं—ब्रह्मा, भगवान् विष्णु, सूर्य, शिव, आठ वसु, ग्यारह गणाधिप, लोकपालाधीश्वर, पितर और मातृकाएँ। चराचर जगत्सहित ये सभी विभूतियाँ बतलायी गयी हैं। ब्रह्मा आदि चार ( ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य, शिव ) देवता मूलरूपसे इस जगत्‌के अव्यक्त अधिपति कहे

मित्रः शनिर्वा हुतभुग् ये च बालग्रहाः क्वचित्। पीडां कुर्वन्तु बालस्य मा मातुर्जनकस्य वै ॥ २८ ॥
ततः शुक्लाम्बरधरा कुमारपतिसंयुता। सप्तकं पूजयेद् भक्त्या स्त्रीणामथ गुरुं पुनः ॥ २९ ॥
काञ्चनीं च ततः कुर्यात् ताम्रपात्रोपरिस्थिताम्। प्रतिमां धर्मराजस्य गुरवे विनिवेदयेत् ॥ ३० ॥
वस्त्रकाञ्चनरत्नौघैर्भक्ष्यैः सघृतपायसैः। पूजयेद् ब्राह्मणांस्तद्वद् वित्तशाठ्यविवर्जितः ॥ ३१ ॥
भुक्त्वा च गुरुणा चेयमुच्चार्या मन्त्रसन्ततिः। दीर्घायुरस्तु बालोऽयं यावद्वर्षशतं सुखी ॥ ३२ ॥
यत्किंचिदस्य दुरितं तत् क्षिप्तं वडवानले। ब्रह्मा रुद्रो वसुः स्कन्दो विष्णुः शक्रो हुताशनः॥ ३३ ॥
रक्षन्तु सर्वे दुष्टेभ्यो वरदाः सन्तु सर्वदा। एवमादीनि वाक्यानि वदन्तं पूजयेद् गुरुम् ॥ ३४ ॥
शक्तितः कपिलां दद्यात् प्रणम्य च विसर्जयेत्। चरुं च पुत्रसहिता प्रणम्य रविशंकरौ ॥ ३५ ॥
हुतशेषं तदाश्नीयादादित्याय नमोऽस्त्विति। इदमेवाद्भुतोद्वेगदुःस्वप्नेषु प्रशस्यते ॥ ३६ ॥

तदनन्तर कार्यकर्ता ब्राह्मण रत्नगर्भित चारो कलशोंके मध्यमें स्थित पाँचवें कलशको हाथमें लेकर सूर्य-मन्त्रोंका पाठ करे तथा सात ऐसी स्त्रियोंद्वारा, जो किसी अङ्गसे हीन न हों तथा जिनकी यथाशक्ति पुष्पमाला, वस्त्र और आभूषणोंद्वारा पूजा की गयी हो, ब्राह्मणके साथ-साथ उस घड़ेके जलसे मृतवत्सा स्त्रीका अभिषेक कराये। ( अभिषेकके समय इस प्रकार कहे—) 'यह बालक दीर्घायु और यह स्त्री जीवत्पुत्रा ( जीवित पुत्रवाली ) हो। सूर्य, ग्रहों और नक्षत्र-समूहोंसहित चन्द्रमा, इन्द्रसहित लोकपालगण, ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, इनके अतिरिक्त अन्यान्य जो देव-समूह हैं, वे सभी इस कुमारकी सदा रक्षा करें। सूर्य, शनि, अग्नि अथवा अन्यान्य जो कोई बालग्रह हों, वे सभी इस बालकको तथा इसके माता-पिताको कहीं भी कष्ट न पहुँचायें।' अभिषेकके पश्चात् वह स्त्री श्वेत वस्त्र धारण करके अपने बच्चे और पतिके साथ उन सातों स्त्रियोंकी भक्ति-पूर्वक पूजा करे। पुनः गुरुकी पूजा करके धर्मराजकी स्वर्णमयी प्रतिमाको ताम्रपात्रके ऊपर स्थापित करके गुरुको निवेदित कर दे। उसी प्रकार कृपणता छोड़कर अन्य ब्राह्मणोंका भी वस्त्र, सुवर्ण, रत्नसमूह आदिसे पूजन करके उन्हें घी और खीरसहित भक्ष्य पदार्थोंका भोजन कराये। भोजनोपरान्त गुरुदेवको इन मन्त्रोंका उच्चारण करना चाहिये—'यह बालक दीर्घायु हो और सौ वर्षोंतक सुखका उपभोग करे। इसका जो कुछ पाप था, उसे वडवानलमें डाल दिया गया। ब्रह्मा, रुद्र, वसुगण, स्कन्द, विष्णु, इन्द्र और अग्नि—ये सभी दुष्ट ग्रहोंसे इसकी रक्षा करें और सदा इसके लिये वरदायक हों।' इस प्रकारके वाक्योंका उच्चारण करनेवाले गुरुदेवका यजमान पूजन करे। अपनी शक्तिके अनुसार उन्हें एक कपिला गौ प्रदान करे और फिर प्रणाम करके विदा कर दे। तत्पश्चात् मृतवत्सा स्त्री पुत्रको गोदमें लेकर सूर्यदेव और भगवान् शंकरको नमस्कार करे और हवनसे बचे हुए हव्यान्नको 'सूर्यदेवको नमस्कार है'—यह कहकर खा जाय। यही व्रत आश्चर्यजनक उद्विग्नता और दुःस्वप्न आदिमें भी प्रशस्त माना गया है ॥ २४–३६ ॥

कर्तुर्जन्मदिनर्क्षं च त्यक्त्वा सम्पूजयेत् सदा। शान्त्यर्थं शुक्लसप्तम्यामेतत् कुर्वन् न सीदति ॥ ३७ ॥
सदानेन विधानेन दीर्घायुरभवन्नरः। संवत्सराणामयुतं शशास पृथिवीमिमाम् ॥ ३८ ॥
पुण्यं पवित्रमायुष्यं सप्तमीस्नपनं रविः। कथयित्वा द्विजश्रेष्ठ तत्रैवान्तरधीयत ॥ ३९ ॥
एतत् सर्वं समाख्यातं सप्तमीस्नानमुत्तमम्। सर्वदुष्टोपशमनं बालानां परमं हितम् ॥ ४० ॥
आरोग्यं भास्करादिच्छेद् धनमिच्छेद्धुताशनात्। ईश्वराज्ज्ञानमन्विच्छेन्मोक्षमिच्छेज्जनार्दनात् ॥ ४१ ॥

एतन्महापातकनाशनं स्यात् परं हितं बालविवर्धनं च।
शृणोति यश्चैनमनन्यचेतास्तस्यापि सिद्धिं मुनयो वदन्ति ॥ ४२ ॥

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सप्तमीस्नपनव्रतं नामाष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥*

इस प्रकार कर्ताके जन्मदिनके नक्षत्रको छोड़कर शान्ति-प्राप्तिके हेतु शुक्ल-पक्षकी सप्तमी तिथिमें सदा ( सूर्य और शंकरका ) पूजन करना चाहिये; क्योंकि इस व्रतका अनुष्ठान करनेवाला कभी कष्टमें नहीं पड़ता। जो मनुष्य सदा इस विधानके अनुसार इस व्रतका अनुष्ठान करता है, वह दीर्घायु होता है। ( इसी व्रतके प्रभावसे ) कृतवीर्यने दस हजार वर्षोंतक इस पृथ्वीपर शासन किया था। द्विजश्रेष्ठ ! इस प्रकार सूर्यदेव इस पुण्यप्रद, परम पावन और आयुवर्धक सप्तमीस्नपन-व्रतका विधान बतलाकर वहीं अन्तर्हित हो गये। इस प्रकार मैंने इस सप्तमीस्नपन-व्रतका, जो सर्वश्रेष्ठ, समस्त दोषोंको शान्त करनेवाला और बालकोंके लिये परम हितकारक है, सम्यग्रूपसे वर्णन कर दिया। मनुष्यको सूर्यसे नीरोगता, अग्निसे धन, ईश्वर ( शिवजी ) से ज्ञान और भगवान् जनार्दनसे मोक्षकी अभिलाषा करनी चाहिये। यह व्रत बड़े-से-बड़े पापोंका विनाशक, बाल-वृद्धिकारक तथा परम हितकारी है। जो मनुष्य अनन्यचित्त होकर इस व्रत-विधानको श्रवण करता है, उसे भी सिद्धि प्राप्त होती है, ऐसा मुनियोंका कथन है ॥ ३७–४२ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें सप्तमीस्नपन-व्रत नामक अड़सठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ६८ ॥

# उनहत्तरवाँ अध्याय

## भीमद्वादशी-व्रतका विधान

मत्स्य उवाच

**पुरा रथन्तरे कल्पे परिपृष्टो महात्मना। मन्दरस्थो महादेवः पिनाकी ब्रह्मणा स्वयम् ॥ १ ॥**

**मत्स्यभगवान्‌ने** कहा—राजन् ! प्राचीन रथन्तर-कल्पकी बात है, पिनाकधारी भगवान् शंकर मन्दराचल-पर विराजमान थे। उस समय महात्मा ब्रह्माजीने स्वयं ही उनके पास जाकर प्रश्न किया—॥ १ ॥

ब्रह्मोवाच

**कथमारोग्यमैश्वर्यमनन्तममरेश्वर। स्वल्पेन तपसा देव भवेन्मोक्षोऽथवा नृणाम् ॥ २ ॥**
**किमज्ञातं महादेव त्वत्प्रसादादधोक्षज। स्वल्पकेनाथ तपसा महत्फलमिहोच्यताम् ॥ ३ ॥**

**ब्रह्माजीने पूछा**—देवेश्वर ! थोड़ी-सी तपस्यासे मनुष्योंको नीरोगता, अनन्त ऐश्वर्य और मोक्षकी प्राप्ति कैसे हो सकती है ? महादेव ! आपके लिये कुछ अज्ञात तो है नहीं, अर्थात् आप सर्वज्ञ हैं, इसलिये अधोक्षज ! आपकी कृपासे थोड़ी-सी तपस्याद्वारा इस लोकमें महान् फलकी प्राप्तिका क्या उपाय है ? यह बतलाइये ॥२-३॥

मत्स्य उवाच

**एवं पृष्टः स विश्वात्मा ब्रह्मणा लोकभावनः। उमापतिरुवाचेदं मनसः प्रीतिकारकम् ॥ ४ ॥**

**मत्स्यभगवान्‌ने** कहा—ब्रह्माजीके इस प्रकार प्रश्न करनेपर जगत्‌की उत्पत्ति एवं वृद्धि करनेवाले विश्वात्मा उमानाथ शिव मनको प्रिय लगनेवाले वचन बोले ॥ ४ ॥

ईश्वर उवाच

**अस्माद् रथन्तरात् कल्पात् त्रयोविंशात् पुनर्यदा। वाराहो भविता कल्पस्तस्य मन्वन्तरे शुभे ॥ ५ ॥**
**वैवस्वताख्ये संजाते सप्तमे सप्तलोककृत्। द्वापराख्यं युगं तद्वदष्टाविंशतिमं जगुः ॥ ६ ॥**
**तस्यान्ते स महादेवो वासुदेवो जनार्दनः। भारावतरणार्थाय त्रिधा विष्णुर्भविष्यति ॥ ७ ॥**
**द्वैपायनऋषिस्तद्वद् रौहिणेयोऽथ केशवः। कंसादिदर्पमथनः केशवः क्लेशनाशनः ॥ ८ ॥**

पुरी द्वारवतीं नाम साम्प्रतं या कुशस्थली।
दिव्यानुभावसंयुक्तामधिवासाय शार्ङ्गिणः। त्वष्टा ममाज्ञया तद्वत् करिष्यति जगत्पतेः॥ ९॥
तस्यां कदाचिदासीनः सभायाममितद्युतिः। भार्याभिर्वृष्णिभिश्चैव भूभृद्भिर्भूरिदक्षिणैः॥ १०॥
कुरुभिर्देवगन्धर्वैरन्वितः कैटभार्दनः। प्रवृत्तासु पुराणेषु धर्मसंवर्धिनीषु च॥ ११॥
कथान्ते भीमसेनेन परिपृष्टः प्रतापवान्। त्वया पृष्टस्य धर्मस्य रहस्यस्यास्य भेदकृत्॥ १२॥
भविता स तदा ब्रह्मन् कर्ता चैव वृकोदरः। प्रवर्तकोऽस्य धर्मस्य पाण्डुपुत्रो महाबलः॥ १३॥
यस्य तीक्ष्णो वृको नाम जठरे हव्यवाहनः। मया दत्तः स धर्मात्मा तेन चासौ वृकोदरः॥ १४॥
मतिमान् दानशीलश्च नागायुतबलो महान्। भविष्यत्यजरः श्रीमान् कंदर्प इव रूपवान्॥ १५॥
धार्मिकस्याप्यशक्तस्य तीव्राग्नित्वादुपोषणे। इदं व्रतमशेषाणां व्रतानामधिकं यतः॥ १६॥
कथयिष्यति विश्वात्मा वासुदेवो जगद्गुरुः। अशेषयज्ञफलदमशेषाघविनाशनम्॥ १७॥
अशेषदुष्टशमनमशेषसुरपूजितम्।
पवित्राणां पवित्रं च मङ्गलानां च मङ्गलम्। भविष्यं च भविष्याणां पुराणानां पुरातनम्॥ १८॥

ईश्वरने कहा—ब्रह्मन्! इस तेईसवें रथन्तरकल्पके पश्चात् जब पुनः वाराहकल्प आयेगा, तब उसके सातवें वैवस्वत नामक मङ्गलमय मन्वन्तरके प्राप्त होनेपर अट्ठाईसवें द्वापर नामक युगके अन्तमें सातों लोकोंके रचयिता देवाधिदेव जनार्दन भगवान् विष्णु वासुदेवरूपसे पृथ्वीका भार दूर करनेके लिये अपनेको महर्षि द्वैपायन, रोहिणीनन्दन बलराम और केशवरूपसे तीन भागोंमें विभक्त करके अवतीर्ण होंगे। वे कष्टहारी केशव कंस आदि राक्षसोंके मदको चूर्ण करेंगे। शार्ङ्गधनुषधारी उन जगत्पतिके निवासके लिये मेरी आज्ञासे विश्वकर्मा द्वारवती ( द्वारका ) नामकी पुरीका निर्माण करेंगे, जो समस्त दिव्य भावोंसे युक्त होगी। वह इस समय कुशस्थली नामसे विख्यात है। वहीं कभी जब द्वारकाकी सभामें दानवराज कैटभके संहारक अमिततेजस्वी भगवान् श्रीकृष्ण अपनी पत्नियों, वृष्णिवंशी पुरुषों, प्रचुर दक्षिणा देनेवाले राजाओं, कौरवों और देव-गन्धर्वोंसे घिरे हुए बैठे रहेंगे और धर्मकी वृद्धि करनेवाली पौराणिक कथाएँ होती रहेंगी, तब कथाकी समाप्तिपर भीमसेन प्रतापी श्रीकृष्णसे वैसा ही प्रश्न करेंगे, जो तुम्हारे द्वारा पूछा गया है और इस धर्मके रहस्यके भेदको प्रकट करनेवाला है। ब्रह्मन्! उस समय पाण्डुपुत्र महाबली भीमसेन इस धर्मके कर्ता एवं प्रवर्तक होंगे। उनके उदरमें मेरेद्वारा दिये गये वृक नामक तीक्ष्ण अग्निका निवास होगा, इसी कारण वे धर्मात्मा 'वृकोदर' नामसे विख्यात होंगे। वे श्रेष्ठ बुद्धिसम्पन्न, दानशील, दस हजार हाथियोंके सदृश बलशाली, महत्त्वयुक्त, जरारहित, लक्ष्मीवान् और कामदेव-सदृश सौन्दर्यशाली होंगे। भीमसेनके धर्मात्मा होनेपर भी उदरमें तीव्र अग्निके स्थित रहनेके कारण उपवासमें असमर्थ जानकर विश्वात्मा जगद्गुरु भगवान् वासुदेव उन्हें यह व्रत बतलायेंगे; क्योंकि यह सम्पूर्ण व्रतोंमें श्रेष्ठ है। यह समस्त यज्ञोंका फलदाता, सम्पूर्ण पापोंका विनाशक, अखिल दोषोंका शामक, समस्त देवताओंद्वारा सम्मानित, सम्पूर्ण पवित्र पदार्थोंमें परम पवित्र, निखिल मङ्गलोंमें श्रेष्ठ मङ्गलरूप, भविष्यमें सर्वाधिक भव्य और पुरातनोंमें विशेष पुरातन है॥ ५—१८॥

वासुदेव उवाच

यद्यष्टमीचतुर्दश्योर्द्वादशीष्वथ भारत। अन्येष्वपि दिनर्क्षेषु न शक्तस्त्वमुपोषितुम्॥ १९॥
ततः पुण्यां तिथिमिमां सर्वपापप्रणाशिनीम्। उपोष्य विधिनानेन गच्छ विष्णोः परं पदम्॥ २०॥
माघमासस्य दशमी यदा शुक्ला भवेत् तदा। घृतेनाभ्यञ्जनं कृत्वा तिलैः स्नानं समाचरेत्॥ २१॥

तथैव विष्णुमभ्यर्च्य नमो नारायणाय च । कृष्णाय पादौ सम्पूज्य शिरः सर्वात्मने नमः ॥ २२ ॥
वैकुण्ठायेति वै कण्ठमुरः श्रीवत्सधारिणे ।
शङ्खिने चक्रिणे तद्वद् गदिने वरदाय वै । सर्वं नारायणस्यैवं सम्पूज्या बाहवः क्रमात् ॥ २३ ॥

भगवान् वासुदेव कहेंगे—भारत ! यदि तुम अष्टमी, चतुर्दशी, द्वादशी तिथियोंमें तथा अन्यान्य दिनों और नक्षत्रोंमें उपवास करनेमें असमर्थ हो तो मैं तुम्हें एक पापविनाशिनी तिथिका परिचय देता हूँ । उस दिन निम्नाङ्कित विधिसे उपवास कर तुम श्रीविष्णुके परम धामको प्राप्त करो । जिस दिन माघ मासके शुक्लपक्षकी दशमी* तिथि आये, उस दिन ( व्रतीको चाहिये कि ) समस्त शरीरमें घी लगाकर तिलमिश्रित जलसे स्नान करे तथा 'ॐ नमो नारायणाय' इस मन्त्रसे भगवान् श्रीविष्णुका पूजन करे । 'श्रीकृष्णाय नमः' कहकर दोनों चरणोंकी और 'सर्वात्मने नमः' कहकर मस्तककी पूजा करे । 'वैकुण्ठाय नमः' इस मन्त्रसे कण्ठकी और 'श्रीवत्सधारिणे नमः, इससे वक्षःस्थलकी अर्चा करे । फिर 'शङ्खिने नमः', 'चक्रिणे नमः', 'गदिने नमः', 'वरदाय नमः' तथा 'सर्वं नारायणस्य' ( सब कुछ नारायणका ही है )—ऐसा कहकर आवाहन आदिके क्रमसे भगवान्‌की बाहुओंकी पूजा करे ॥ १९–२३ ॥

दामोदरायेत्युदरं मेढ्रं पञ्चशराय वै । ऊरू सौभाग्यनाथाय जानुनी भूतधारिणे ॥ २४ ॥
नमो नीलाय वै जङ्घे पादौ विश्वसृजे नमः । नमो देव्यै नमः शान्त्यै नमो लक्ष्म्यै नमः श्रियै ॥ २५ ॥
नमः पुष्ट्यै नमस्तुष्ट्यै धृष्ट्यै हृष्ट्यै नमो नमः ।
नमो विहङ्गनाथाय वायुवेगाय पक्षिणे । विषप्रमाथिने नित्यं गरुडं चाभिपूजयेत् ॥ २६ ॥
एवं सम्पूज्य गोविन्दमुमापतिविनायकौ । गन्धैर्माल्यैस्तथा धूपैर्भक्ष्यैर्नानाविधैरपि ॥ २७ ॥
गव्येन पयसा सिद्धां कृसरामथ वाग्यतः । सर्पिषा सह भुक्त्वा च गत्वा शतपदं बुधः ॥ २८ ॥
न्यग्रोधं दन्तकाष्ठमथवा खादिरं बुधः । गृहीत्वा धावयेद् दन्तानाचान्तः प्रागुदङ्मुखः ॥ २९ ॥
ब्रूयात् सायंतनीं कृत्वा संध्यामस्तमिते रवौ । नमो नारायणायेति त्वामहं शरणं गतः ॥ ३० ॥

'इसके बाद 'दामोदराय नमः' कहकर उदरका, 'पञ्चशराय नमः' इस मन्त्रसे जननेन्द्रियका, 'सौभाग्यनाथाय नमः' इससे दोनो जंघोंका, 'भूतधारिणे नमः' से दोनो घुटनोंका, 'नीलाय नमः' इस मन्त्रसे पिंडलियों ( घुटनेसे नीचेके भाग ) का और 'विश्वसृजे नमः' इससे पुनः दोनों चरणोंका पूजन करे । तत्पश्चात् 'देव्यै नमः', 'शान्त्यै नमः', 'लक्ष्म्यै नमः', 'श्रियै नमः', 'पुष्ट्यै नमः', 'तुष्ट्यै नमः', धृष्ट्यै नमः', 'हृष्ट्यै नमः'—इन मन्त्रोंसे भगवती लक्ष्मीकी पूजा करे । इसके बाद 'विहङ्गनाथाय नमः', 'वायुवेगाय नमः', 'पक्षिणे नमः', 'विषप्रमाथिने नमः'—इन मन्त्रोंके द्वारा सदा गरुडकी पूजा करनी चाहिये । इस प्रकार गन्ध, पुष्प, धूप तथा नाना प्रकारके पकवानोंद्वारा श्रीकृष्णकी, महादेवजीकी तथा गणेशजीकी भी पूजा करे । फिर गौके दूधकी बनी हुई खीर लेकर घीके साथ मौनपूर्वक भोजन करे । भोजनके अनन्तर विद्वान् पुरुष सौ पग चलकर बरगद अथवा खैरकी दाँतुन ले उसके द्वारा दाँतोंको साफ करे, फिर मुँह धोकर आचमन करे । सूर्यास्त होनेके बाद पूर्वाभिमुख अथवा उत्तराभिमुख बैठकर सायंकालीन संध्या करे । उसके अन्तमें यह कहे—'भगवान् श्रीनारायणको नमस्कार है । भगवन् ! मैं आपकी शरणमें आया हूँ ।' ( इस प्रकार प्रार्थना करके रात्रिमें शयन करे । ) ॥ २४–३० ॥

* अन्य पुराणोंमें तथा एकादशीमाहात्म्य आदिमें ज्येष्ठ शुक्ल ११को निर्जला या भीमसेनी एकादशी अथवा द्वादशी कहा गया है ।

एकादश्यां निराहारः समभ्यर्च्य च केशवम्। रात्रिं च सकलां स्थित्वा स्नानं च पयसा तथा ॥ ३१ ॥
सर्पिषा चापि दहनं हुत्वा ब्राह्मणपुङ्गवैः। सहैव पुण्डरीकाक्ष द्वादश्यां क्षीरभोजनम् ॥ ३२ ॥
करिष्यामि यतात्माहं निर्विघ्नेनास्तु तच्च मे। एवमुक्त्वा स्वपेद् भूमावितिहासकथां पुनः ॥ ३३ ॥
श्रुत्वा प्रभाते संजाते नदीं गत्वा विशाम्पते। स्नानं कृत्वा मुदा तद्वत् पाषण्डानभिवर्जयेत् ॥ ३४ ॥
उपास्य संध्यां विधिवत् कृत्वा च पितृतर्पणम्। प्रणम्य च हृषीकेशं सप्तलोकैकमीश्वरम् ॥ ३५ ॥
गृहस्य पुरतो भक्त्या मण्डपं कारयेद् बुधः। दशहस्तमथाष्टौ वा करान् कुर्याद् विशांपते ॥ ३६ ॥
चतुर्हस्तां शुभां कुर्याद् वेदीमरिनिषूदन। चतुर्हस्तप्रमाणं च विन्यसेत् तत्र तोरणम् ॥ ३७ ॥
आरोप्य कलशं तत्र दिक्पालान् पूजयेत् ततः।
छिद्रेण जलसम्पूर्णमथ कृष्णाजिनस्थितः। तस्य धारां च शिरसा धारयेत् सकलां निशाम् ॥ ३८ ॥
तथैव विष्णोः शिरसि क्षीरधारां प्रपातयेत्। अरत्निमात्रं कुण्डं च कुर्यात् तत्र त्रिमेखलम् ॥ ३९ ॥
योनिवक्त्रं च तत् कृत्वा ब्राह्मणैः यवसर्पिषी। तिलांश्च विष्णुदैवत्यैर्मन्त्रैरेकाग्निवत् तदा ॥ ४० ॥
हुत्वा च वैष्णवं सम्यक् चरुं गोक्षीरसंयुतम्। निष्पावार्धप्रमाणां वै धारामाज्यस्य पातयेत् ॥ ४१ ॥

दूसरे दिन एकादशीको निराहार रहकर भगवान् केशवकी पूजा करे और रातभर बैठा रहकर प्रातःकाल दूध या जलसे स्नान करे। फिर अग्निमें घीकी आहुति देकर प्रार्थना करे—'पुण्डरीकाक्ष! मैं जितेन्द्रिय होकर द्वादशीको श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके साथ ही खीरका भोजन करूँगा। मेरा यह व्रत निर्विघ्नतापूर्वक पूर्ण हो।' यह कहकर इतिहास-पुराणकी कथा सुननेके पश्चात् भूमिपर शयन करे। राजन्! सवेरा होनेपर जाकर नदीमें प्रसन्नतापूर्वक स्नान करे। पाखण्डियोंके संसर्गसे दूर रहे। विधिपूर्वक संध्योपासन करके पितरोंका तर्पण करे। फिर सातों लोकोंके एकमात्र अधीश्वर भगवान् हृषीकेशको प्रणाम करके बुद्धिमान् व्रती घरके सामने भक्तिपूर्वक एक मण्डपका निर्माण कराये। राजन्! वह मण्डप दस अथवा आठ हाथ लम्बा-चौड़ा होना चाहिये। शत्रुसूदन! उसके भीतर चार हाथकी सुन्दर वेदी बनवाये। वेदीके ऊपर चार हाथका तोरण लगाये। फिर (सुदृढ खम्भोंके आधारपर) एक कलश रखे और दिक्पालोंकी पूजा करे, उसमें नीचेकी ओर (उड़दके दानेके बराबर) छेद कर दे। तदनन्तर उसे जलसे भरे और स्वयं उसके नीचे काला मृगचर्म बिछाकर बैठ जाय। कलशसे गिरती हुई धाराको सारी रात अपने मस्तकपर धारण करे। उसी प्रकार भगवान् विष्णुके सिरपर दूधकी धारा गिराये। फिर उनके निमित एक कुण्ड बनवाये, जो हाथभर लंबा, उतना ही चौड़ा और उतना ही गहरा हो। उसके ऊपरी किनारेपर तीन मेखलाएँ बनवाये। उसमें यथास्थान योनि और मुखके चिह्न बनवाये। तदनन्तर ब्राह्मण (कुण्डमें अग्नि प्रज्वलित कर) एकाग्निक उपासककी तरह जौ, घी और तिलोंका श्रीविष्णु-सम्बन्धी मन्त्रोंद्वारा हवन करे। फिर गो-दुग्धसे बने हुए चरुका हवन करके विधिपूर्वक वैष्णवयागका सम्पादन करे। फिर कुण्डके मध्यमें मटरकी दालके बराबर मोटी घीकी धारा गिराये ॥ ३१—४१ ॥

जलकुम्भान् महावीर्य स्थापयित्वा त्रयोदश। भक्ष्यैर्नानाविधैर्युक्तान् सितवस्त्रैरलंकृतान् ॥ ४२ ॥
युक्तानौदुम्बरैः पात्रैः पञ्चरत्नसमन्वितान्। चतुर्भिर्बह्वृचैर्होमस्तत्र कार्य उदङ्मुखैः ॥ ४३ ॥
रुद्रजापश्चतुर्भिश्च यजुर्वेदपरायणैः।
वैष्णवानि तु सामानि चतुरः सामवेदिनः। अरिष्टवर्गसहितान्यभितः परिपाठयेत् ॥ ४४ ॥
एवं द्वादश तान् विप्रान् वस्त्रमाल्यानुलेपनैः। पूजयेदङ्गुलीयैश्च कटकैर्हेमसूत्रकैः ॥ ४५ ॥
वासोभिः शयनीयैश्च वित्तशाठ्यविवर्जितः। एवं क्षपातिवाह्या च गीतमङ्गलनिःस्वनैः ॥ ४६ ॥

उपाध्यायस्य च पुनर्द्विगुणं सर्वमेव तु । ततः प्रभाते विमले समुत्थाय त्रयोदश ॥ ४७ ॥
गा वै दद्यात् कुरुश्रेष्ठ सौवर्णमुखसंयुताः । पयस्विनीः शीलवतीः कांस्यदोहसमन्विताः ॥ ४८ ॥
रौप्यखुराः सवस्त्राश्च चन्दनेनाभिषेचिताः । तास्तु तेषां ततो भक्त्या भक्ष्यभोज्यान्नतर्पितान् ॥ ४९ ॥
कृत्वा वै ब्राह्मणान् सर्वानन्नैर्नानाविधैस्तथा । भुक्त्वा चाक्षारलवणमात्मना च विसर्जयेत् ॥ ५० ॥

महावीर्य ! फिर जलसे भरे हुए तेरह कलशोंकी स्थापना करे । वे नाना प्रकारके भक्ष्य पदार्थोंसे युक्त और श्वेत वस्त्रोंसे अलंकृत होने चाहिये । उनके साथ उदुम्बर-पात्र तथा पञ्चरत्नका होना भी आवश्यक है । वहाँ चार ऋग्वेदी ब्राह्मण उत्तरकी ओर मुख करके हवन करें, चार यजुर्वेदी विप्र रुद्राध्यायका पाठ करें तथा चार सामवेदी ब्राह्मण चारों ओरसे अरिष्टवर्गसहित वैष्णवसामका गान करते रहे । इस प्रकार उपर्युक्त बारहों ब्राह्मणोंको वस्त्र, पुष्प, चन्दन, अँगूठी, कड़े, सोनेकी जंजीर, वस्त्र तथा शय्या आदि देकर उनका पूर्ण सत्कार करे । इस कार्यमें धनकी कृपणता न करे । इस प्रकार गीत और माङ्गलिक शब्दोंके साथ रात्रि व्यतीत करे । उपाध्याय ( आचार्य या पुरोहित ) को सब वस्तुएँ अन्य ब्राह्मणोंकी अपेक्षा दूनी मात्रामें अर्पण करे । कुरुश्रेष्ठ ! रात्रिके बाद जब निर्मल प्रभातका उदय हो, तब शयनसे उठकर ( नित्यकर्मके पश्चात् ) मुखपर सोनेके पत्रसे विभूषित की हुई तेरह गौएँ दान करनी चाहिये । वे सब-की-सब दूध देनेवाली और सीधी हों । उनके खुर चाँदीसे मँढे हुए हों तथा उन सबको वस्त्र ओढ़ाकर चन्दनसे विभूषित किया गया हो । गौओंके साथ काँसेका दोहनपात्र भी होना चाहिये । गोदानके पश्चात् उन सभी ब्राह्मणोंको भक्तिपूर्वक नाना प्रकारके भक्ष्य-भोज्य पदार्थोंसे तृप्त करके स्वयं भी क्षार लवणसे रहित अन्नका भोजन करके ब्राह्मणोंको विदा करे ॥ ४२—५० ॥

अनुगम्य पदान्यष्टौ पुत्रभार्यासमन्वितः । प्रीयतामत्र देवेशः केशवः क्लेशनाशनः ॥ ५१ ॥
शिवस्य हृदये विष्णुर्विष्णोश्च हृदये शिवः । यथान्तरं न पश्यामि तथा मे स्वस्ति चायुषः ॥ ५२ ॥
एवमुच्चार्य तान् कुम्भान् गाश्चैव शयनानि च । वासांसि चैव सर्वेषां गृहाणि प्रापयेद् बुधः ॥ ५३ ॥
अभावे बहुशय्यानामेकामपि सुसंस्कृताम् । शय्यां दद्याद् द्विजातेश्च सर्वोपस्करसंयुताम् ॥ ५४ ॥
इतिहासपुराणानि वाचयित्वातिवाहयेत् । तद्दिनं नरशार्दूल य इच्छेद् विपुलां श्रियम् ॥ ५५ ॥
तस्मात् त्वं सत्त्वमालम्ब्य भीमसेन विमत्सरः । कुरु व्रतमिदं सम्यक् स्नेहात् तव मयेरितम् ॥ ५६ ॥
त्वया कृतमिदं वीर त्वन्नामाख्यं भविष्यति ।
सा भीमद्वादशी ह्येषा सर्वपापहरा शुभा । या तु कल्याणिनी नाम पुरा कल्पेषु पठ्यते ॥ ५७ ॥
त्वमादिकर्ता भव सौकरेऽस्मिन् कल्पे महावीरवरप्रधान ।
यस्याः स्मरन् कीर्तनमप्यशेषं विनष्टपापस्त्रिदशाधिपः स्यात् ॥ ५८ ॥

पुत्र और स्त्रीके साथ आठ पगतक उनके पीछे-पीछे जाय और इस प्रकार प्रार्थना करे—'हमारे इस कार्यसे देवताओंके स्वामी भगवान् श्रीविष्णु, जो सबका क्लेश दूर करनेवाले हैं, प्रसन्न हों । श्रीशिवके हृदयमें श्रीविष्णु हैं और श्रीविष्णुके हृदयमें श्रीशिव विराजमान हैं । मैं यदि इन दोनोंमें अन्तर न देखता होऊँ तो इस धारणासे मेरी आयु बढ़े तथा कल्याण हो ।' यह कहकर बुद्धिमान् व्रती उन कलशों, गौओं, शय्याओं तथा वस्त्रोंको सब ब्राह्मणोंके घर पहुँचवा दे । अधिक शय्याएँ सुलभ न हों तो गृहस्थ पुरुष एक ही सुसज्जित एवं सभी उपकरणोंसे सम्पन्न शय्या ब्राह्मणको दान करे । नरसिंह ! जिसे विपुल लक्ष्मीकी अभिलाषा हो, उसे वह दिन इतिहास और पुराणोंके श्रवणमें ही बिताना चाहिये । अतः भीमसेन ! तुम भी सत्त्वगुणका आश्रय ले, मात्सर्यका त्याग कर इस व्रतका सम्यक् प्रकारसे अनुष्ठान करो । ( यह बहुत गुप्त व्रत है, किंतु ) स्नेहवश मैंने तुम्हे

बता दिया है। वीर! तुम्हारेद्वारा इसका अनुष्ठान होनेपर यह व्रत तुम्हारे ही नामसे प्रसिद्ध होगा। इसे लोग 'भीमद्वादशी' कहेंगे। यह भीमद्वादशी सब पापोंको नाश करनेवाली और शुभकारिणी होगी। प्राचीन कल्पोंमें इस व्रतको 'कल्याणिनी व्रत' कहा जाता था। महान् वीरोंमें श्रेष्ठ वीर भीमसेन! इस वाराहकल्पमें तुम इस व्रतके सर्वप्रथम अनुष्ठानकर्ता बनो। इसका स्मरण और कीर्तनमात्र करनेसे मनुष्यका सारा पाप नष्ट हो जाता है और वह देवताओंका राजा इन्द्र बन जाता है॥ ५१—५८॥

कृत्वा च यामप्सरसामधीशा वेश्या कृता ह्यन्यभवान्तरेषु।
आभीरकन्यातिकुतूहलेन सैवोर्वशी सम्प्रति नाकपृष्ठे॥ ५९॥
जाताथवा वैश्यकुलोद्भवापि पुलोमकन्या पुरुहूतपत्नी।
तत्रापि तस्याः परिचारिकेयं मम प्रिया सम्प्रति सत्यभामा॥ ६०॥
स्नातः पुरा मण्डलमेप तद्वत् तेजोमयं वेदशरीरमाप।
अस्यां च कल्याणतिथौ विवस्वान् सहस्रधारेण सहस्ररश्मिः॥ ६१॥
इदमेव कृतं महेन्द्रमुख्यैर्वसुभिर्देवसुरारिभिस्तथा तु।
फलमस्य न शक्यतेऽभिवक्तुं यदि जिह्वायुतकोटयो मुखे स्युः॥ ६२॥

जन्मान्तरमें एक अहीरकी कन्याने अत्यन्त कुतूहल-वश इस व्रतका अनुष्ठान किया था, जिसके फलस्वरूप वह वेश्या अप्सराओंकी अधीश्वरी हुई। वही इस समय स्वर्गलोकमें उर्वशी नामसे विख्यात है। इसी प्रकार वैश्यकुलमें उत्पन्न हुई एक दूसरी कन्याने भी इस व्रतका अनुष्ठान किया था, जिसके परिणामस्वरूप वह पुलोम (दानव) की पुत्रीरूपमें उत्पन्न होकर इन्द्रकी पत्नी बनी। उसके अनुष्ठान-कालमें जो उसकी सेविका थी, वही इस समय मेरी प्रिया सत्यभामा है। पूर्वकालमें इस कल्याणमयी तिथिको सहस्र किरणधारी सूर्यने हजारों धाराओंसे स्नान किया था, इसी कारण उन्हें उस प्रकारका तेजोमय मण्डल और वेदमय शरीर प्राप्त हुआ है। महेन्द्र आदि देवताओं, वसुओं तथा असुरोंने भी इस व्रतका अनुष्ठान किया है। यदि एक मुखमें दस हजार करोड़ जिह्वाएँ हों तो भी इसके फलका पूरा वर्णन नहीं किया जा सकता॥ ५९—६२॥

कलिकलुषविदारिणीमनन्तामिति कथयिष्यति यादवेन्द्रसूनुः।
अपि नरकगतान् पितॄनशेपानलमुद्धर्तुमिहैव यः करोति॥ ६३॥
य इदमघविदारणं शृणोति भक्त्या परिपठतीह परोपकारहेतोः।
तिथिमिह सकलार्थभाङ्नरेन्द्रस्तव चतुरानन साम्यतामुपैति॥ ६४॥
कल्याणिनी नाम पुरा बभूव या द्वादशी माघदिनेषु पूज्या।
सा पाण्डुपुत्रेण कृता भविष्यत्यनन्तपुण्यानघ भीमपूर्वा॥ ६५॥

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे भीमद्वादशीव्रतं नामैकोनसप्ततितमोऽध्यायः॥ ६९॥*

ब्रह्मन्! कलियुगके पापोंको नष्ट करनेवाली एवं अनन्त फल प्रदान करनेवाली इस कल्याणमयी तिथिकी महिमाका वर्णन यादवराजकुमार भगवान् श्रीकृष्ण अपने श्रीमुखसे करेंगे। जो इसके व्रतका अनुष्ठान करता है, उसके नरकमें पड़े हुए सम्पूर्ण पितरोंका भी यह उद्धार करनेमें समर्थ है। चतुरानन! जो अत्यन्त भक्तिके साथ इस पापनाशक व्रतकी कथाको सुनता तथा दूसरोंके उपकारके लिये पढ़ता है, वह इस लोकमें जनताका स्वामी और सम्पूर्ण सम्पत्तियोंका भागी हो जाता है तथा परलोकमें आपकी समताको प्राप्त कर लेता है। पूर्व-

कल्पमें जो माघ मासकी द्वादशी परम पूजनीय कल्याणिनी तिथिके नामसे प्रसिद्ध थी, वही पाण्डुनन्दन भीमसेनके व्रत करनेपर अनन्त पुण्यदायिनी 'भीमद्वादशी'के नामसे प्रसिद्ध होगी ॥ ६३–६५ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें भीमद्वादशी-व्रत नामक उनहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ६९ ॥

## सत्तरवाँ अध्याय

### पण्यस्त्री-व्रतकी विधि और उसका माहात्म्य

ब्रह्मोवाच

वर्णाश्रमाणां प्रभवः पुराणेषु मया श्रुतः ।
सदाचारस्य भगवन् धर्मशास्त्रविनिश्चयः । पण्यस्त्रीणां सदाचारं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ १ ॥

ब्रह्माजीने पूछा—भगवन् ! मैं पुराणोंमें सभी वर्णों और आश्रमोंके सदाचारकी उत्पत्ति तथा धर्मशास्त्रके सिद्धान्तोंको तो सुन चुका, अब मैं पण्यस्त्रियों ( मूल्यद्वारा खरीदी जानेवाली स्त्रियों ) के समुचित आचारको यथार्थरूपसे सुनना चाहता हूँ* ॥ १ ॥

ईश्वर उवाच

तस्मिन्नेव युगे ब्रह्मन् सहस्राणि तु षोडश । वासुदेवस्य नारीणां भविष्यन्त्यम्बुजोद्भव ॥ २ ॥
ताभिर्वसन्तसमये कोकिलालिकुलाकुले । पुष्पितोपवने फुल्लकह्लारसरसस्तटे ॥ ३ ॥
निर्भरं सह पत्नीभिः प्रसक्ताभिरलंकृतः ।
रमयिष्यति विश्वात्मा कृष्णो यदुकुलोद्वहः । कुरङ्गनयनः श्रीमान् मालतीकृतशेखरः ॥ ४ ॥
गच्छन् समीपमार्गेण साम्बः परपुरंजयः । साक्षात् कंदर्परूपेण सर्वाभरणभूषितः ॥ ५ ॥
अनङ्गशरतप्ताभिः साभिलापमवेक्षितः । प्रवृद्धो मन्मथस्तासां भविष्यति यदात्मनि ॥ ६ ॥
तदावेक्ष्य जगन्नाथः सर्वतो ध्यानचक्षुषा ।
शापं वक्ष्यति ताः सर्वा वो हरिष्यन्ति दस्यवः । मत्परोक्षं यतः काममौल्यादीदृग्विधं कृतम् ॥ ७ ॥
ततः प्रसादितो देव इदं वक्ष्यति शार्ङ्गभृत् । ताभिः शापाभितप्ताभिर्भगवान् भूतभावनः ॥ ८ ॥
उत्तारभूतं दाशत्वं समुद्राद् ब्राह्मणप्रियः । उपदेक्ष्यत्यनन्तात्मा भाविकल्याणकारकम् ॥ ९ ॥
भवतीनामृषिर्दाल्भ्यो यद् व्रतं कथयिष्यति ।
तदेवोत्तारणायालं दासीत्वेऽपि भविष्यति । इत्युक्त्वा ताः परिष्वज्य गतो द्वारवतीश्वरः ॥ १० ॥
ततः कालेन महता भारावतरणे कृते । निवृत्ते मौसले तद्वत् केशवे दिवमागते ॥ ११ ॥
शून्ये यदुकुले सर्वैश्चौरैरपि जितेऽर्जुने । हृतासु कृष्णपत्नीषु दाशभोग्यासु चाम्बुधौ ॥ १२ ॥
तिष्ठन्तीषु च दौर्गत्यसंतप्तासु चतुर्मुख । आगमिष्यति योगात्मा दाल्भ्यो नाम महातपाः ॥ १३ ॥
तास्तमर्घ्येण सम्पूज्य प्रणिपत्य पुनः पुनः । लालप्यमाना बहुशो बाष्पपर्याकुलेक्षणाः ॥ १४ ॥
स्मरन्त्यो विपुलान् भोगान् दिव्यमाल्यानुलेपनम् । भर्तारं जगतामीशमनन्तमपराजितम् ॥ १५ ॥
दिव्यभावां तां च पुरीं नानारत्नगृहाणि च ।
द्वारकावासिनः सर्वान् देवरूपान् कुमारकान् । प्रश्नमेवं करिष्यन्ति मुनेरभिमुखं स्थिताः ॥ १६ ॥

---

* इस अध्यायमें कृपालु भगवान् द्वारा—'मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः । स्त्रियो···शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ॥(गीता ९ । ३२) के भाव, पापयोनिकी व्याख्या तथा उनके कल्याणकी पद्धति निर्दिष्ट हुई है । यह अध्याय पद्म० सृ० २३ । ७४–१४६ तथा भविष्य ४ । १२० । १–७३ तक में तो ज्यों-का-त्यों आता ही है । इससे मिलते-जुलते सृष्टि अध्याय, स्कन्द तथा समाधानात्मक अंश वराह, साम्ब, आदित्यादि अन्य अनेक पुराणोंमें भी प्राप्त हैं ।

**भगवान् शंकरने कहा**—कमलोद्भव ब्रह्मन्! उसी द्वापरयुगमें वसुदेव-नन्दन श्रीकृष्णकी सोलह सहस्र पत्नियाँ होंगी। एक बार वसन्त ऋतुमें वे सभी नारियाँ खिले हुए पुष्पोंसे सुशोभित वनमें उत्फुल्ल कमल-पुष्पोंसे परिपूर्ण एक सरोवरके तटपर जायँगी। उस समय कोकिल कूज रहे होंगे, भ्रमर-समूह अपनी गुंजार चतुर्दिक् बिखेर रहे होंगे तथा शीतल-मन्द-सुगन्ध पवन बह रहा होगा। इसी समय वे निश्चिन्त रूपसे एकत्र होकर जलपान आदि कार्योंमें लीन होंगी। उस समय यदुकुलके उद्वाहक विश्वात्मा भगवान् श्रीकृष्ण भी उनके साथ वहाँ भ्रमण करेंगे। उसी समय शत्रु-नगरीको जीतनेवाले, अलंकारोंसे सुशोभित श्रीमान् साम्ब, जिनके नेत्र मृगनेत्र-सरीखे होंगे, जिनका मस्तक मालतीकी मालासे सुशोभित होगा, जो सब प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित तथा रूपसे साक्षात् कामदेवके समान होंगे, उस सरोवरके समीपवर्ती मार्गसे जा निकलेंगे। उन्हें देखकर वे सभी (स्त्रियाँ) रागभरी दृष्टिसे उनकी ओर देखने लगेंगी। तब जगदीश्वर श्रीकृष्ण ध्यान-दृष्टिसे सारा वृत्तान्त जानकर उन्हें शाप दे देंगे—'चूँकि तुमलोगोंने मुझसे विश्वासघात किया; कामलोलुपतावश ऐसा जघन्य कार्य किया है, इसलिये चोर तुमलोगोंका अपहरण कर लेंगे।' तत्पश्चात् शापसे संतप्त हुई उन स्त्रियोंद्वारा प्रसन्न किये जानेपर भगवान् श्रीकृष्ण जो अनन्तात्मा, ब्राह्मणोंके प्रेमी तथा प्राणियोंको भवसागरसे पार करनेवाले कर्णधार हैं, उन्हें भविष्यमें इस प्रकार कल्याणकारी मार्गका उपदेश करेंगे—'महर्षि दाल्भ्य तुमलोगोंको जो व्रत बतलायेंगे, वही दासीत्वावस्थामें भी तुमलोगोंका उद्धार करनेमें समर्थ होगा।' यों कहकर द्वारकाधीश वहाँसे चले जायँगे चतुर्मुख! इसके बहुत दिन बाद जब श्रीभगवान्‌द्वारा पृथ्वीका भार दूर करने, मौसलयुद्ध समाप्त होने—मूसलद्वारा यदुवंशियोंके विनाश होने, भगवान् श्रीकेशवके वैकुण्ठ पधार जाने तथा यदुकुलके वीरोंसे शून्य हो जानेपर दस्युगण अर्जुनको पराजितकर श्रीकृष्णकी पत्नियोंका अपहरण कर लेंगे और उन्हें अपनी पत्नी बना लेंगे, तब अपनी दुर्गतिसे दुःखी हुई वे सभी समुद्रमें निवास करेंगी। उसी समय महान् तपस्वी योगात्मा महर्षि दाल्भ्य वहाँ आयेंगे। तब वे ऋषिकी अर्घ्यद्वारा पूजा करके बारंबार उनके चरणोंमें प्रणिपात करेंगी और आँखोंमें आँसू भरकर अनेकों प्रकारसे विलाप करेंगी। उस समय उनको प्रचुर भोगोंका, दिव्य पुष्पमाला और अनुलेपका, अनन्त एवं अपराजित जगदीश्वर पतिका, दिव्य भावोंसे संयुक्त द्वारकापुरीका, नाना प्रकारके रत्नोंसे निर्मित गृहोंका, द्वारकावासियोंका और देवरूपी सभी कुमारोंका स्मरण हो रहा होगा। तब वे मुनिके समक्ष खड़ी होकर इस प्रकार प्रश्न करेंगी॥ २—१६॥

स्त्रिय ऊचुः

दस्युभिर्भगवन् सर्वाः परिभुक्ता वयं बलात्। स्वधर्माच्च्यवनेऽस्माकमस्मिन् त्वं शरणं भव॥ १७॥
आदिष्टोऽसि पुरा ब्रह्मन् केशवेन च धीमता। कस्मादीशेन संयोगं प्राप्य वेश्यात्वमागताः॥ १८॥
वेश्यानामपि यो धर्मस्तं नो ब्रूहि तपोधन। कथयिष्यत्यतस्तासां स दाल्भ्यश्चैकितायनः॥ १९॥

**स्त्रियाँ कहेंगी**—भगवन्! डाकुओंने बलपूर्वक (हमलोगोंका अपहरण करके) अपने वशीभूत कर लिया है। इस प्रकार हम सभी अपने धर्मसे च्युत हो गयी हैं। अब इस विषयमें आप हमलोगोंके आश्रयदाता बनें। ब्रह्मन्! इसके लिये बुद्धिमान् श्रीकेशवने पहले ही आपको आदेश दे दिया है। पता नहीं, किस घोर पाप-कर्मके कारण जगदीश्वर श्रीकृष्णका संयोग पाकर भी हमलोग कुधर्ममें आ पड़ी हैं। इसलिये तपोधन! पण्यस्त्रियोंके लिये भी जो धर्म कहे गये हैं, उन्हें हमें बतलाइये। उनके द्वारा यों पूछे जानेपर चेकितायन महर्षिके पुत्र दाल्भ्य उन्हें सारा वृत्तान्त बतलायेंगे॥ १७—१९॥

दाल्भ्य उवाच

जलक्रीडाविहारेषु पुरा सरसि मानसे। भवतीनां च सर्वासां नारदोऽभ्याशमागतः॥ २०॥
हुताशनसुताः सर्वा भवन्त्योऽप्सरसः पुरा।
अप्रणम्यात्रलेपेन परिपृष्टः स योगवित्। कथं नारायणोऽस्माकं भर्ता स्यादित्युपादिश॥ २१॥
तस्माद् वरप्रदानं वः शापश्चायमभूत् पुरा। शय्याद्वयप्रदानेन मधुमाधवमासयोः॥ २२॥
सुवर्णोपस्करोत्सर्गाद् द्वादश्यां शुक्लपक्षतः। भर्ता नारायणो नूनं भविष्यत्यन्यजन्मनि॥ २३॥
यदकृत्वा प्रणामं मे रूपसौभाग्यमत्सरात्।
परिपृष्टोऽस्मि तेनाशु वियोगो वो भविष्यति। चौरैरपहृताः सर्वा वेश्यात्वं समवाप्स्यथ॥ २४॥
एवं नारदशापेन केशवस्य च धीमतः।
वेश्यात्वमागताः सर्वा भवन्त्यः काममोहिताः। इदानीमपि यद् वक्ष्ये तच्छृणुध्वं वराङ्गनाः॥ २५॥
पुरा देवासुरे युद्धे हतेषु शतशः सुरैः। दानवासुरदैत्येषु राक्षसेषु ततस्ततः॥ २६॥
तेषां व्रातसहस्राणि शतान्यपि च योषिताम्।
परिणीतानि यानि स्युर्बलाद् भुक्तानि यानि वै। तानि सर्वाणि देवेशः प्रोवाच वदतां वरः॥ २७॥

दाल्भ्य कहते हैं—नारियो ! पूर्वकालमें तुमलोग अप्सराएँ थीं और सब-की-सब अग्निकी कन्याएँ थीं। एक बार जब तुमलोग मानस-सरोवरमें जलक्रीडाद्वारा मनोरञ्जन कर रही थीं, उसी समय तुमलोगोंके निकट नारदजी आ पहुँचे। उस समय तुमलोग गर्ववश उन्हें प्रणाम न कर उन योगवेत्तासे इस प्रकार प्रश्न कर बैठीं—'देवर्षे ! भगवान् नारायण किस प्रकार हमलोगोंके पति हो सकते हैं, इसका उपाय बतलाइये।' उस समय तुमलोगोंको नारदजीसे वरदान और शाप दोनों प्राप्त हुए थे। ( उन्होंने कहा था—) 'यदि तुमलोग चैत्र और वैशाख मासमें शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिके दिन स्वर्णनिर्मित उपकरणोंसहित दो शय्याएँ प्रदान करोगी तो निश्चय ही दूसरे जन्ममें भगवान् नारायण तुमलोगोंके पति होंगे। साथ ही सुन्दरता और सौभाग्यके अभिमान-वश जो तुमलोगोंने मुझे बिना प्रणाम किये ही मुझसे प्रश्न किया है, इस कारण तुमलोगोंका उनसे शीघ्र ही वियोग भी हो जायगा तथा डाकू तुमलोगोंका अपहरण कर लेंगे और तुम सभी कुधर्मको प्राप्त हो जाओगी।' इस प्रकार नारदजी एवं बुद्धिमान् भगवान् केशवके शापसे तुम सभी कामसे मोहित होकर कुधर्मको प्राप्त हो गयी हो। सुन्दरियो ! इस समय मैं जो कुछ कह रहा हूँ, उसे भी तुमलोग ध्यान देकर सुनो। पूर्वकालमें घटित हुए सैकड़ों देवासुर-संग्रामोंमें देवताओंने समय-समयपर बहुत-से दानवों, असुरों, दैत्यों और राक्षसोंको मार डाला था, उनकी जो सैकड़ों-हजारों यूथ-की-यूथ पत्नियाँ थीं, जिन्हें अन्य राक्षसोंने बलपूर्वक ( इसी प्रकार ) व्याह लिया था, उन सबसे वक्ताओंमें श्रेष्ठ देवराज इन्द्रने कहा॥ २०—२७॥

इन्द्र उवाच

वेश्याधर्मेण वर्तध्वमधुना नृपमन्दिरे। भक्तिमत्यो वरारोहास्तथा देवकुलेषु च॥ २८॥
राजानः स्वामिनस्तुल्याः सुता वापि च तत्समाः। भविष्यति च सौभाग्यं सर्वासामपि शक्तितः॥ २९॥
यः कश्चिच्छुल्कमादाय गृहमेष्यति वः सदा। निधनेनोपचार्यो वः स तदान्यत्र दाम्भिकात्॥ ३०॥
देवतानां पितॄणां च पुण्याहे समुपस्थिते।
गोभूहिरण्यधान्यानि प्रदेयानि स्वशक्तितः। ब्राह्मणानां वरारोहाः कार्याणि वचनानि च॥ ३१॥
यच्चाप्यन्यद् व्रतं सम्यगुपदेक्ष्याम्यहं ततः। अविचारेण सर्वाभिरनुष्ठेयं च तत् पुनः॥ ३२॥
संसारोत्तारणायालमेतद् वेदविदो विदुः।

इन्द्र बोले—भक्तिमती सुन्दरियो ! तुमलोगोंको दाम्भिकोंसे सदा दूर रहना चाहिये । तुमलोगोंको देवताओं एवं पितरोंके पुण्य-पर्व आनेपर अपनी शक्तिके अनुसार गौ, पृथ्वी, स्वर्ण और अन्न आदिका दान करना तथा ब्राह्मणोंकी आज्ञाका पालन करना चाहिये । इसके अतिरिक्त मैं तुमलोगोंको जिस दूसरे व्रतका उपदेश दे रहा हूँ, उसका भी बिना आगा-पीछा सोचे तुम सभीको अनुष्ठान करना चाहिये । यह व्रत तुमलोगोंका संसारसे उद्धार करनेमें समर्थ है । इसे वेदवेत्तालोग ही जानते हैं ॥२८–३३½॥

यदा सूर्यदिने हस्तः पुष्यो वाथ पुनर्वसुः ॥ ३३ ॥
भवेत् सर्वौषधीस्नानं सम्यङ्नारी समाचरेत् ।
तदा पञ्चशरस्यापि संनिधातृत्वमेष्यति । अर्चयेत् पुण्डरीकाक्षमनङ्गस्यानुकीर्तनैः ॥ ३४ ॥
कामाय पादौ सम्पूज्य जङ्घे वै मोहकारिणे । मेढ्रं कंदर्पनिधये कटिं प्रीतिमते नमः ॥ ३५ ॥
नाभिं सौख्यसमुद्राय रामाय च तथोदरम् । हृदयं हृदयेशाय स्तनावाह्लादकारिणे ॥ ३६ ॥
उत्कण्ठायेति वै कण्ठमास्यमानन्दकारिणे । वामाङ्गं पुष्पचापाय पुष्पबाणाय दक्षिणम् ॥ ३७ ॥
मानसायेति वै मौलिं विलोलायेति मूर्धजम् । सर्वात्मने च सर्वाङ्गं देवदेवस्य पूजयेत् ॥ ३८ ॥
नमः शिवाय शान्ताय पाशाङ्कुशधराय च । गदिने पीतवस्त्राय शङ्खचक्रधराय च ॥ ३९ ॥
नमो नारायणायेति कामदेवात्मने नमः । सर्वशान्त्यै नमः प्रीत्यै नमो रत्यै नमः श्रियै ॥ ४० ॥
नमः पुष्ट्यै नमस्तुष्ट्यै नमः सर्वार्थसम्पदे ।
एवं सम्पूज्य देवेशमनङ्गात्मकमीश्वरम् । गन्धैर्माल्यैस्तथा धूपैर्नैवेद्येन च कामिनी ॥ ४१ ॥
तत आहूय धर्मज्ञं ब्राह्मणं वेदपारगम् । अव्यङ्गावयवं पूज्य गन्धपुष्पार्चनादिभिः ॥ ४२ ॥
शालेयतण्डुलप्रस्थं घृतपात्रेण संयुतम् । तस्मै विप्राय सा दद्यान्माधवः प्रीयतामिति ॥ ४३ ॥
यथेष्टाहारयुक्तं वै तमेव द्विजसत्तमम् । रत्यर्थं कामदेवोऽयमिति चित्तेऽवधार्य तम् ॥ ४४ ॥
यद् यदिच्छति विप्रेन्द्रस्तत्तत्कुर्याद् विलासिनी । सर्वभावेन चात्मानमर्पयेत् स्मितभाषिणी ॥ ४५ ॥

जब रविवारको हस्त, पुष्य अथवा पुनर्वसु नक्षत्र आवे तो स्त्रीको सर्वौषधिमिश्रित जलसे भलीभाँति स्नान करना उचित है । ऐसा करनेसे उसे देवताकी संनिकटता प्राप्त होगी । फिर नामोंका कीर्तन करते हुए भगवान् पुण्डरीकाक्षकी यों अर्चना करनी चाहिये—'कामाय नमः'से दोनों चरणोंका, 'मोहकारिणे नमः'से जङ्घाओंका, 'कंदर्पनिधये नमः' से जननेन्द्रियका, 'प्रीतिमते नमः'से कटिका, 'सौख्यसमुद्राय नमः'से नाभिका, 'रामाय नमः' से उदरका, 'हृदयेशाय नमः'से हृदयका, 'आह्लादकारिणे नमः' से दोनों स्तनोंका, 'उत्कण्ठाय नमः'से कण्ठका, 'आनन्दकारिणे नमः'से मुखका, 'पुष्पचापाय नमः' से वामाङ्गका, 'पुष्पबाणाय नमः'से दक्षिणाङ्गका, 'मानसाय नमः'से ललाटका, 'विलोलाय नमः'से केशोंका और 'सर्वात्मने नमः'से देवाधिदेव पुण्डरीकाक्षके सर्वाङ्गका पूजन करना चाहिये । पुनः 'शिवाय नमः,' 'शान्ताय नमः,' 'पाशाङ्कुशधराय नमः,' 'गदिने नमः', 'पीतवस्त्राय नमः', 'शङ्खचक्रधराय नमः', 'नारायणाय नमः', 'कामदेवात्मने नमः' से भगवान् विष्णुकी पूजा करके 'सर्वशान्त्यै नमः', 'प्रीत्यै नमः', 'रत्यै नमः', 'श्रियै नमः', 'पुष्ट्यै नमः', 'तुष्ट्यै नमः', 'सर्वार्थसम्पदे नमः'से लक्ष्मीका भी पूजन करनेका विधान है । इस प्रकार व्रतिनी नारी चन्दन, पुष्पमाला, धूप और नैवेद्य आदिसे कामदेव-स्वरूप देवेश्वर भगवान् विष्णुकी पूजा करे । तत्पश्चात् वह सुडौल अङ्गोंवाले, धर्मज्ञ एवं वेदज्ञ ब्राह्मणको बुलाकर चन्दन, पुष्प आदि पूजन-सामग्रीद्वारा उनकी

पूजा करे और घीसे भरे हुए पात्रके साथ एक सेर अगहनी चावल उस ब्राह्मणको दान करे और कहे— 'माधव मुझपर प्रसन्न हों।' फिर वह विलासिनी नारी उन द्विजवरको यथेष्ट भोजन करावे ॥ ३३–४५ ॥

एवमादित्यवारेण सर्वमेतत् समाचरेत् । तण्डुलप्रस्थदानं च यावन्मासास्त्रयोदश ॥ ४६ ॥
ततस्त्रयोदशे मासि सम्प्राप्ते तस्य भामिनी । विप्रायोपस्करैर्युक्तां शय्यां दद्याद् विलक्षणाम् ॥ ४७ ॥
सोपधानकविश्रामां सास्तरावरणां शुभाम् । प्रदीपोपानहच्छत्रपादुकासनसंयुताम् ॥ ४८ ॥
सपत्नीकमलंकृत्य हेमसूत्राङ्गुलीयकैः । सूक्ष्मवस्त्रैः सकटकैर्भूरिमाल्यानुलेपनैः ॥ ४९ ॥
कामदेवं सपत्नीकं गुडकुम्भोपरि स्थितम् । ताम्रपात्रासनगतं हेमनेत्रपटावृतम् ॥ ५० ॥
सकांस्यभाजनोपेतमिक्षुदण्डसमन्वितम् । दद्यादेतेन मन्त्रेण तथैकां गां पयस्विनीम् ॥ ५१ ॥
यथान्तरं न पश्यामि कामकेशवयोः सदा । तथैव सर्वकामाप्तिरस्तु विष्णो सदा मम ॥ ५२ ॥
यथा न कमला देहात् प्रयाति तव केशव । तथा ममापि देवेश शरीरं स्वीकुरु प्रभो ॥ ५३ ॥
तथा च काञ्चनं देवं प्रतिगृह्णन् द्विजोत्तमः । क इदं कस्मादादिति वैदिकं मन्त्रमीरयेत् ॥ ५४ ॥
ततः प्रदक्षिणीकृत्य विसर्ज्य द्विजपुंगवम् । शय्यासनादिकं सर्वं ब्राह्मणस्य गृहं नयेत् ॥ ५५ ॥
ततः प्रभृति यो विप्रो रत्यर्थं गृहमागतः । स मान्यः सूर्यवारे च स मन्तव्यो भवेत् तदा ॥ ५६ ॥
एवं त्रयोदशं यावन्मासमेवं द्विजोत्तमान् । तर्पयेत यथाकामं प्रोषितेऽन्यं समाचरेत् ॥ ५७ ॥
तदनुज्ञया रूपवान् यावदभ्यागतो भवेत् । आत्मनोऽपि यथाविघ्नं गर्भभूतिकरं प्रियम् ॥ ५८ ॥
दैवं वा मानुषं वा स्यादनुरागेण वा ततः । साचारानग्रपञ्चाशद् यथाशक्त्या समाचरेत् ॥ ५९ ॥
एतद्धि कथितं सम्यग् भवतीनां विशेषतः । अधर्मोऽयं ततो न स्याद् वेश्यानामिह सर्वदा ॥ ६० ॥

इस प्रकार रविवारसे प्रारम्भ करके यह सब कार्य करते रहना चाहिये। एक सेर चावलका दान तो तेरह मासतक करनेका विधान है। तेरहवाँ महीना आनेपर उस स्त्रीको चाहिये कि उपर्युक्त ब्राह्मणको समस्त उपकरणोंसे युक्त एक ऐसी विलक्षण शय्या प्रदान करे, जो गद्दा, चादर और विश्रामहेतु बने हुए तकियेसे युक्त एवं सुन्दर हो तथा उसके साथ दीपक, जूता, छाता, खड़ाऊँ और आसनी भी हो। उस समय उस सपत्नीक ब्राह्मणको महीन वस्त्र, सोनेकी जंजीर, अँगूठी, कड़ा, अधिकाधिक पुष्पमाला और चन्दनसे अलंकृत करके गुडसे भरे हुए कलशके ऊपर स्थापित ताम्रपात्रके आसनपर सपत्नीक कामदेवकी मूर्तिको रख दे, उसे स्वर्णनिर्मित नेत्राच्छादनसे ढक दे। उसके निकट काँसेका पात्र और गन्ना भी रख दे। फिर आगे कहे जानेवाले मन्त्रका उच्चारण करके समग्र उपकरणोंसहित उस मूर्तिका तथा एक दुधारू गौका उस ब्राह्मणको दान करे। (दानका मन्त्र इस प्रकार है—) 'केशव! जिस प्रकार लक्ष्मी आपके शरीरसे विलग होकर कहीं अन्यत्र नहीं जातीं, देवेश्वर प्रभो! उसी प्रकार आप मेरे शरीरको भी स्वीकार कर लें।' स्वर्णमय कामदेवकी मूर्तिको ग्रहण करते समय वे द्विजवर—'कोऽदात् कस्मा अदात् कामोऽदात् कामायादात्' इत्यादि—( वाजस० सं० ७।४८ ) इस वैदिक मन्त्रका उच्चारण करें। तदनन्तर वह स्त्री उन द्विजवरकी प्रदक्षिणा करके उन्हे विदा करे और शय्या, आसन आदि दानकी सभी वस्तुएँ उनके घर भिजवा दे। इस प्रकार इस दैवकर्मको अनुरागपूर्वक अपनी शक्तिके अनुसार विधिपूर्वक अट्ठावन बार करना चाहिये। विशेषतः तुम्हीं लोगोंके लिये ही मैंने इस व्रतका सम्यक् प्रकारसे वर्णन किया है। ऐसा करनेसे पण्यस्त्रियोंको इस लोकमें सदा अधर्मका भागी नहीं होना पड़ेगा ॥ ४६–६० ॥

**पुरुहूतेन यत् प्रोक्तं दानवीषु पुरा मया। तदिदं साम्प्रतं सर्वं भवतीष्वपि युज्यते ॥ ६१ ॥**
**सर्वपापप्रशमनमनन्तफलदायकम्। कल्याणीनां च कथितं तत् कुरुध्वं वराननाः ॥ ६२ ॥**
**करोति याशेषमखण्डमेतत् कल्याणिनी माधवलोकसंस्था।**
**सा पूजिता देवगणैरशेषैरानन्दकृत् स्थानमुपैति विष्णोः ॥ ६३ ॥**

पूर्वकालमें इन्द्रने दानव-पत्नियोंके प्रति जिस व्रतका वर्णन किया था, वही सब इस समय तुमलोगोंको भी करना उचित है। सुन्दरियो! कल्याणी स्त्रियोंके समस्त पापोंको शान्त करनेवाले एवं अनन्त फलदायक जिस व्रतका मैंने वर्णन किया है, उसका तुमलोग अवश्य पालन करो। जो कल्याणमयी नारी इस व्रतका पूरा-पूरा अखण्डरूपसे पालन करती है, वह भगवान् विष्णुके लोकमें स्थित होती है और अखिल देवगणोंद्वारा पूजित होकर भगवान् विष्णुके आनन्ददायक स्थानको प्राप्त होती है ॥ ६१—६३ ॥

श्रीभगवानुवाच

**तपोधनः सोऽप्यभिधाय चैवं तदा च तासां व्रतमङ्गनानाम्।**
**स्वस्थानमेष्यत्यनु वै समस्ताः व्रतं चरिष्यन्ति च वेदयोने ॥ ६४ ॥**

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽनङ्गदानव्रतं नाम सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥*

**श्रीभगवान्‌ने कहा—**ब्रह्मन्! इस प्रकार तपस्वी दाल्भ्य उन स्त्रियोंसे वाराङ्गनाओंके व्रतका वर्णन करके अपने स्थानको चले जायँगे। उसके पश्चात् वे सभी उस व्रतका अनुष्ठान करेंगी ॥ ६४ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें अनङ्गदानव्रत-नामक सत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ७० ॥

# इकहत्तरवाँ अध्याय

## अशून्यशयन ( द्वितीया )-व्रतकी विधि और उसका माहात्म्य

ब्रह्मोवाच

**भगवन् पुरुषस्येह स्त्रियाश्च विरहादिकम्। शोकव्याधिभयं दुःखं न भवेद् येन तद् वद ॥ १ ॥**

**ब्रह्माजीने पूछा—**भगवन्! इस लोकमें जिसका अनुष्ठान करनेसे पुरुषको पत्नीवियोग अथवा स्त्रीको पतिवियोग न हो तथा शोक एवं रोगका भय और दुःख न हो, वह व्रत बतलाइये ॥ १ ॥

श्रीभगवानुवाच

**श्रावणस्य द्वितीयायां कृष्णायां मधुसूदनः। क्षीरार्णवे सपत्नीकः सदा वसति केशवः ॥ २ ॥**
**तस्यां सम्पूज्य गोविन्दं सर्वान् कामान् समश्नुते। गोभूहिरण्यदानादि सप्तकल्पशतानुगम् ॥ ३ ॥**
**अशून्यशयना नाम द्वितीया सम्प्रकीर्तिता। तस्यां सम्पूजयेद् विष्णुमेभिर्मन्त्रैर्विधानतः ॥ ४ ॥**
**श्रीवत्सधारिञ् श्रीकान्त श्रीधामन् श्रीपतेऽव्यय। गार्हस्थ्यं मा प्रणाशं मे यातु धर्मार्थकामदम् ॥ ५ ॥**
**अग्नयो मा प्रणश्यन्तु देवताः पुरुषोत्तम। पितरो मा प्रणश्यन्तु मास्तु दाम्पत्यभेदनम् ॥ ६ ॥**
**लक्ष्म्या वियुज्यते देव न कदाचिद् यथा भवान्। तथा कलत्रसम्बन्धो देव मा मे वियुज्यताम् ॥ ७ ॥**
**लक्ष्म्या न शून्यं वरद यथा ते शयनं सदा। शय्या ममाप्यशून्यास्तु तथैव मधुसूदन ॥ ८ ॥**
**गीतवादित्रनिर्घोषं देवदेवस्य कीर्तयेत्। घण्टा भवेदशक्तस्य सर्ववाद्यमयी यतः ॥ ९ ॥**

**श्रीभगवान्‌ने कहा—**ब्रह्मन्! श्रावण मासके कृष्ण पक्षकी द्वितीया तिथिको मधुसूदन भगवान् केशव लक्ष्मीसहित सदा क्षीरसागरमें निवास करते हैं, अतः उस तिथिको जो मनुष्य भगवान् गोविन्दकी पूजा कर

सात सौ कल्पोतक फल देनेवाले गौ, पृथ्वी और सुवर्णका दान करता है, उसकी सारी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। यह द्वितीया अशून्यशयना* नामसे प्रसिद्ध है; इस दिन विधिपूर्वक भगवान् विष्णुका पूजन कर इन वक्ष्यमाण मन्त्रोंद्वारा प्रार्थना करनी चाहिये—'लक्ष्मीकान्त! आप श्रीवत्सको धारण करनेवाले, धन-सम्पत्तिके निधि और सौन्दर्यके अधीश्वर हैं। अविनाशी भगवन्! मेरा धर्म, अर्थ और कामको सिद्ध करनेवाला गृहस्थ-आश्रम कभी विनाशको न प्राप्त हो। पुरुषोत्तम! मेरे गृहमें अग्नियों और इष्ट देवताओंका कभी अभाव न हो, मेरे पितरोंका विनाश न हो और दाम्पत्य—पति-पत्नी (रूप व्यवहार) में कभी भेद-भाव न उत्पन्न हो। देवाधिदेव! जैसे आप कभी लक्ष्मीसे वियुक्त नहीं होते, उसी प्रकार मेरा भी पत्नी-सम्बन्ध कभी विच्छिन्न न हो। वरदाता मधुसूदन! जिस प्रकार आपकी शय्या कभी लक्ष्मीसे शून्य नहीं रहती, उसी तरह मेरी भी शय्या पत्नीसे शून्य न हो।' इस प्रकार प्रार्थना कर गाने-बजानेके माङ्गलिक शब्दोंके साथ-साथ देवाधिदेव भगवान् विष्णुके नामोंका कीर्तन करना चाहिये। जो गीत-वाद्यके आयोजनमें असमर्थ हो, उसे घण्टाका शब्द करना चाहिये; क्योंकि घण्टा सकल वाद्योंके समान माना गया है॥ २—९॥

एवं सम्पूज्य गोविन्दमश्नीयात् तैलवर्जितम्। नक्तमक्षारलवणं यावत् तत् स्याच्चतुष्टयम्॥ १०॥
ततः प्रभाते संजाते लक्ष्मीपतिसमन्विताम्। दीपान्नभाजनैर्युक्तां शय्यां दद्याद् विलक्षणाम्॥ ११॥
पादुकोपानहच्छत्रचामरासनसंयुताम्। अभीष्टोपस्करैर्युक्तां शुक्लपुष्पाम्बरावृताम्॥ १२॥
सोपधानकविश्रामां फलैर्नानाविधैर्युताम्। तथाऽऽभरणधान्यैश्च यथाशक्त्या समन्विताम्॥ १३॥
अव्यङ्गाङ्गाय विप्राय वैष्णवाय कुटुम्बिने। दातव्या वेदविदुषे भावेनापतिताय च॥ १४॥
तत्रोपवेश्य दाम्पत्यमलंकृत्य विधानतः। पत्न्यास्तु भाजनं दद्याद् भक्ष्यभोज्यसमन्वितम्॥ १५॥
ब्राह्मणस्यापि सौवर्णीमुपस्करसमन्विताम्। प्रतिमां देवदेवस्य सोदकुम्भां निवेदयेत्॥ १६॥

इस प्रकार भगवान् गोविन्दकी पूजा करके रातमें एक बार तेल और क्षार नमकसे रहित अन्नका भोजन करे। ऐसा भोजन तबतक करे, जबतक इस व्रतकी चार आवृत्ति न हो जाय (चार मासतक ऐसा ही भोजन करना चाहिये)। तदनन्तर प्रातःकाल होनेपर एक विलक्षण शय्याका भी दान करनेका विधान है। वह शय्या गद्दा, श्वेत चादर और विश्रामोपयोगी तकियेसे सुशोभित हो; उसपर भगवान् लक्ष्मीपतिकी स्वर्णमयी प्रतिमा स्थापित हो; उसके निकट दीपक, अन्नके पात्र, खड़ाऊँ, जूता, छाता, चँवर और आसन रखे गये हों, वह अभीष्ट सामग्रियोंसे युक्त हो, उसपर श्वेत पुष्प बिखेरे गये हों, वह नाना प्रकारके ऋतु-फलोंसे सम्पन्न हो तथा अपनी शक्तिके अनुसार आभूषण और अन्न आदिसे समन्वित हो। इस प्रकार वह शय्या ऐसे ब्राह्मणको देनी चाहिये, जिसका कोई अङ्ग विकृत न हो तथा जो विष्णु-भक्त, परिवारवाला, वेदज्ञ और आचरणसे पतित न हो। फिर उस शय्यापर द्विज-दम्पतिको बैठाकर विधानके अनुसार उन्हें अलंकृत करे। उस समय पत्नीको भक्ष्य एवं भोज्य पदार्थोंसे युक्त बर्तन दान करे और ब्राह्मणको सभी उपकरणोंसे युक्त देवाधिदेव विष्णुकी स्वर्णमयी प्रतिमा जलपूर्ण घटके साथ निवेदित करे। (तत्पश्चात् ब्राह्मणको विदा कर व्रत समाप्त करे)॥ १०—१६॥

---

* इस व्रतकी विस्तृत विधि वामनपुराणके १६वें अध्यायमें है। पर यह वहाँ तथा पद्म, भविष्यादिमें कुछ अन्तरसे प्रायः इसी प्रकार निर्दिष्ट है।

एवं यस्तु पुमान् कुर्यादशून्यशयनं हरेः। वित्तशाठ्येन रहितो नारायणपरायणः ॥ १७ ॥
न तस्य पत्न्या विरहः कदाचिदपि जायते।
नारी वा विधवा ब्रह्मन् यावच्चन्द्रार्कतारकम्। न विरूपौ न शोकार्तौ दम्पती भवतः क्वचित् ॥ १८ ॥
न पुत्रपशुरत्नानि क्षयं यान्ति पितामह।
सप्तकल्पसहस्राणि सप्तकल्पशतानि च। कुर्वन्नशून्यशयनं विष्णुलोके महीयते ॥ १९ ॥
*इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽशून्यशयनव्रतं नामैकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥*

ब्रह्मन्! इस प्रकार जो पुरुष श्रीहरिके अशून्यशयन-व्रतका अनुष्ठान करता है, उसे कभी पत्नी-वियोग नहीं होता तथा सधवा अथवा विधवा नारी नारायणपरायण होकर कृपणता छोड़कर इसका अनुष्ठान करती है, वह दम्पति सूर्य-चन्द्रमाके स्थितिपर्यन्त न तो कभी शोकसे दुःखी होते हैं और न उनका रूप ही विकृत होता है। साथ ही उनके पुत्र, पशु और धन आदिका विनाश नहीं होता। पितामह! अशून्यशयन-व्रतका अनुष्ठान करनेवाला मनुष्य सात हजार सात सौ कल्पोंतक विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है ॥ १७—१९ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें अशून्यशयन-व्रत नामक इकहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ७१ ॥

---

## बहत्तरवाँ अध्याय

### अङ्गारक-व्रतकी विधि और उसका माहात्म्य

ईश्वर उवाच

शृणु चान्यद् भविष्यं यद् रूपसम्पत्प्रदायकम्।
भविष्यति युगे तस्मिन् द्वापरान्ते पितामह। पिप्पलादस्य संवादो युधिष्ठिरपुरःसरैः ॥ १ ॥
वसन्तं नैमिशारण्ये पिप्पलादं महामुनिम्।
अभिगम्य तदा चैनं प्रश्नमेकं करिष्यति। युधिष्ठिरो धर्मपुत्रो धर्मयुक्तस्तपोधनम् ॥ २ ॥

ईश्वरने कहा—पितामह! अब भविष्यमें घटित होनेवाले एक अन्य व्रतके वृत्तान्तको सुनो, जो सुन्दरता और सम्पत्ति प्रदान करनेवाला है। उसी द्वापरयुगके अन्तमें युधिष्ठिर आदिके साथ महर्षि पिप्पलादका संवाद होगा। उस समय तपस्वी महामुनि पिप्पलादके नैमिशारण्यमें निवास करते समय धर्म-पुत्र धर्मात्मा युधिष्ठिर उनके निकट जाकर एक प्रश्न करेंगे ॥ १-२ ॥

युधिष्ठिर उवाच

कथमारोग्यमैश्वर्यं मतिर्धर्मे गतिस्तथा। अव्यङ्गता शिवे भक्तिर्वैष्णवी वा भवेत् कथम् ॥ ३ ॥

युधिष्ठिर पूछेंगे—नीरोगता, ऐश्वर्य, धर्ममें बुद्धि तथा गति, अव्यङ्गता ( शरीरके सभी अङ्गोंकी पूर्णता ) तथा शिव एवं विष्णुमें अनुपम भक्ति कैसे प्राप्त हो सकती है? ॥ ३ ॥

ईश्वर उवाच

तस्योत्तरमिदं ब्रह्मन् पिप्पलादस्य धीमतः। शृणुष्व यद् वक्ष्यति वै धर्मपुत्राय धार्मिकः ॥ ४ ॥

ईश्वरने कहा—ब्रह्मन्! ( इस विषयमें ) सुनो, जो वे बुद्धिमान् पिप्पलादका वह उत्तर धर्मपुत्र धर्मात्मा युधिष्ठिरसे कहेंगे ॥ ४ ॥

पिप्पलाद उवाच

साधु पृष्टं त्वया भद्र इदानीं कथयामि ते। अङ्गारव्रतमित्येतत् स वक्ष्यति महीपतेः॥ ५॥
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्। विरोचनस्य संवादं भार्गवस्य च धीमतः॥ ६॥
प्रह्लादस्य सुतं दृष्ट्वा द्विरष्टपरिवत्सरम्। रूपेणाप्रतिमं कान्त्या सोऽहसद् भृगुनन्दनः॥ ७॥
साधु साधु महाबाहो विरोचन शिवं तव। तत् तथा हसितं तस्य पप्रच्छ सुरसूदनः॥ ८॥
ब्रह्मन् किमर्थमेतत् ते हास्यमाकस्मिकं कृतम्। साधु साध्विति मामेवमुक्तवांस्त्वं वदस्व मे॥ ९॥
तमेवंवादिनं शुक्र उवाच वदतां वरः। विस्मयाद् व्रतमाहात्म्याद्धास्यमेतत् कृतं मया॥ १०॥
पुरा दक्षविनाशाय कुपितस्य तु शूलिनः। अथ तद्भीमवक्त्रस्य स्वेदबिन्दुर्ललाटजः॥ ११॥
भित्त्वा स सप्त पातालानदहत् सप्त सागरान्। अनेकवक्त्रनयनो ज्वलज्ज्वलनभीषणः॥ १२॥
वीरभद्र इति ख्यातः करपादायुतैर्युतः।
कृत्वासौ यज्ञमथनं पुनर्भूतलसम्भवः। त्रिजगन्निर्दहन् भूयः शिवेन विनिवारितः॥ १३॥

पिप्पलाद कहेंगे—भद्र! आपने बड़ी उत्तम बात पूछी है, अब मैं आपको इस अङ्गारक-व्रतको बतला रहा हूँ। यों कहकर वे मुनि राजा युधिष्ठिरसे इस व्रतका (इस प्रकार) वर्णन करेंगे। महाराज युधिष्ठिर! इस विषयमें एक पुरातन इतिहासका उदाहरण दिया जाता है, जो विरोचन और बुद्धिमान् शुक्राचार्यके संवाद (रूप)में है। एक बार प्रह्लादके षोडशवर्षीय पुत्र विरोचनको देखकर, जो अनुपम सौन्दर्यशाली और कान्तिमान् था, भृगुनन्दन शुक्राचार्य हँस पड़े और उससे बोले—'महाबाहु विरोचन! तुम धन्य हो, तुम्हारा कल्याण हो।' उन्हें उस प्रकार हँसते देखकर देवशत्रु विरोचनने उनसे पूछा—'ब्रह्मन्! आपने किस प्रयोजनसे यह आकस्मिक हास्य किया है और मुझे 'साधु-साधु' (तुम धन्य हो) ऐसा कहा है? इसका कारण मुझे बतलाइये।' इस प्रकार पूछनेवाले विरोचनसे वक्ताओंमें श्रेष्ठ शुक्राचार्यने कहा—'व्रतके माहात्म्यसे आश्चर्य-चकित होकर मैंने यह हास्य किया है। (उस प्रसङ्गको सुनो—) पूर्वकालमें दक्ष-यज्ञका विनाश करनेके लिये जब भयंकर मुखवाले त्रिशूलधारी भगवान् शंकर कुपित हो उठे, तब उनके ललाटसे पसीनेकी एक बूँद टपक पड़ी। वह स्वेदबिन्दु अनेकों मुखों, नेत्रों और दस सहस्र हाथ-पैरोंसे युक्त एक पुरुषाकारमें परिणत हो गया। वह प्रज्वलित अग्निके समान भयंकर पुरुष वीरभद्रके नामसे विख्यात हुआ। उसने सातों पातालोंका भेदन कर सातों सागरोंको भस्म कर दिया। पुनः दक्ष-यज्ञका विध्वंस कर वह भूतलपर आ धमका और त्रिलोकीको जला डालनेके लिये उद्यत हुआ। यह देखकर शिवजीने उसे रोक दिया॥ ५—१३॥

कृतं त्वया वीरभद्र दक्षयज्ञविनाशनम्। इदानीमलमेतेन लोकदाहेन कर्मणा॥ १४॥
शान्तिप्रदाता सर्वेषां ग्रहाणां प्रथमो भव। प्रेक्षिष्यन्ते जनाः पूजां करिष्यन्ति वरान्मम॥ १५॥
अङ्गारक इति ख्यातिं गमिष्यसि धरात्मज। देवलोकेऽद्वितीयं च तव रूपं भविष्यति॥ १६॥
ये च त्वां पूजयिष्यन्ति चतुर्थ्यां त्वद्दिने नराः। रूपमारोग्यमैश्वर्यं तेष्वनन्तं भविष्यति॥ १७॥
एवमुक्तस्तदा शान्तिमगमत् कामरूपधृक्। संजातस्तत्क्षणाद् राजन् ग्रहत्वमगमत् पुनः॥ १८॥
स कदाचिद् भवांस्तस्य पूजार्घ्यादिकमुत्तमम्। दृष्टवान् क्रियमाणं च शूद्रेण च व्यवस्थितः॥ १९॥
तेन त्वं रूपवाञ्जातः सुरशत्रुकुलोद्वह। विविधा च रुचिर्जाता यस्मात् नव विदूरगा॥ २०॥
विरोचन इति प्राहुस्तस्मात् त्वां देवदानवाः।

**शूद्रेण क्रियमाणस्य व्रतस्य तव दर्शनात्। ईदृशीं रूपसम्पत्तिं दृष्ट्वा विस्मितवानहम्॥ २१॥**
**साधु साध्विति तेनोक्तमहो माहात्म्यमुत्तमम्। पश्यतोऽपि भवेद् रूपमैश्वर्यं किमु कुर्वतः॥ २२॥**
**यस्माच्च भक्त्या धरणीसुतस्य विनिन्द्यमानेन गवादिदानम्।**
**आलोकितं तेन सुरारिगर्भे सम्भूतिरेषा तव दैत्य जाता॥ २३॥**

फिर उन्होंने उसे मना करते हुए कहा—'वीरभद्र! तुमने दक्ष-यज्ञका विनाश तो कर ही दिया, अब तुम अपने इस लोक-दहनरूप क्रूर कर्मको बंद कर दो। मेरे वरदानसे तुम सभी ग्रहोंके लिये शान्ति-प्रदायक बनो और सर्वप्रथम स्थान ग्रहण करो। लोग तुम्हारा दर्शन और पूजन करेंगे। पृथ्वी-नन्दन! तुम अङ्गारक नामसे ख्याति प्राप्त करोगे और देवलोकमें तुम्हारा अनुपम रूप होगा। जो मनुष्य तुम्हारा जन्मदिन चतुर्थी तिथि आनेपर तुम्हारी पूजा करेंगे, उन्हे अनन्त सौन्दर्य, नीरोगता और ऐश्वर्यकी प्राप्ति होगी।' शिवजीद्वारा इस प्रकार कहे जानेपर इच्छानुसार रूप धारण करनेवाला वीरभद्र तुरंत शान्त हो गया। राजन्! पुनः उसी क्षण (पृथ्वीसे) उत्पन्न होकर उसने ग्रहका स्थान प्राप्त कर लिया। असुरकुलोद्वह! किसी समय शूद्रद्वारा व्यवस्थितरूपसे की जाती हुई उसकी अर्घ्य आदिसे सम्पन्न श्रेष्ठ पूजाको तुमने देख लिया था, इसी कारण तुम सुन्दररूपसे युक्त होकर पैदा हुए हो और तुम्हारी रुचि—प्रतिभा विभिन्न प्रकारके ज्ञानोंवाली और दूरगामिनी है। इसी कारण देवता और दानव तुम्हे विरोचन नामसे पुकारते हैं। शूद्रद्वारा किये जाते हुए व्रतके दर्शनसे प्राप्त हुई तुम्हारी इस प्रकारकी रूप-सम्पत्तिको देखकर मै आश्चर्यचकित हो गया। इसी कारण मैने 'साधु-साधु' (तुम धन्य हो) ऐसा कहा है। अहो! यह कैसा उत्तम माहात्म्य है कि जब देखनेवालेको भी ऐसी सुन्दरता और ऐश्वर्यकी प्राप्ति हो जाती है, तब करनेवालेकी तो बात ही क्या है। दितिवंशज! चूँकि तुमने पृथ्वी-पुत्र वीरभद्रके व्रतमें भक्तिपूर्वक दिये जाते हुए गो-दान आदि दानोंको अवहेलनापूर्वक देखा था, इसीलिये तुम्हारी उत्पत्ति राक्षस-योनिमें हुई है॥ १४—२३॥

ईश्वर उवाच

**अथ तद् वचनं श्रुत्वा भार्गवस्य महात्मनः। प्रह्लादनन्दनो वीरः पुनः पप्रच्छ विस्मितः॥ २४॥**

**ईश्वरने कहा**—ब्रह्मन्! महात्मा शुक्राचार्यके उस वचनको सुनकर प्रह्लाद-नन्दन विरोचनने विस्मय-विमुग्ध हो पुनः प्रश्न किया॥ २४॥

विरोचन उवाच

**भगवंस्तद् व्रतं सम्यक् श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः। दीयमानं तु यद् दानं मया दृष्टं भवान्तरे॥ २५॥**
**माहात्म्यं च विधिं तस्य यथावद् वक्तुमर्हसि। इति तद्वचनं श्रुत्वा कविः प्रोवाच विस्तरात्॥ २६॥**

**विरोचनने पूछा**—भगवन्! जन्मान्तरमें मैने जिसके दिये जाते हुए दानको देखा था, उस व्रतको भलीभाँति आनुपूर्वी सुनना चाहता हूँ। आप मुझे उसके विधान और माहात्म्यको यथार्थ रूपसे बतलाइये। इस प्रकार विरोचनकी बात सुनकर शुक्राचार्यने विस्तारपूर्वक कहना प्रारम्भ किया॥ २५-२६॥

शुक्र उवाच

**चतुर्थ्यङ्गारकदिने यदा भवति दानव। मृदा स्नानं तदा कुर्यात् पद्मरागविभूषितः॥ २७॥**
**अग्निर्मूर्धा दिवो मन्त्रं जपंस्तिष्ठेदुदङ्मुखः। शूद्रस्तूष्णीं स्मरन् भौममास्ते भोगविवर्जितः॥ २८॥**
**अथास्तमित आदित्ये गोमयेनानुलेपयेत्। प्राङ्गणं पुष्पमालाभिरक्षताभिः समंततः॥ २९॥**

अभ्यर्च्याभिलिखेत् पद्मं कुङ्कुमेनाष्टपत्रकम्। कुङ्कुमस्याप्यभावे तु रक्तचन्दनमिष्यते॥ ३०॥
चत्वारः करकाः कार्या भक्ष्यभोज्यसमन्विताः। तण्डुलै रक्तशालीयैः पद्मरागैश्च संयुताः॥ ३१॥
चतुष्कोणेषु तान् कृत्वा फलानि विविधानि च। गन्धमाल्यादिकं सर्वं तथैव विनिवेशयेत्॥ ३२॥
सुवर्णशृङ्गीं कपिलामथार्च्य रौप्यैः खुरैः कांस्यदुहां सवत्साम्।
धुरंधरं रक्तखुरं च सौम्यं धान्यानि सप्ताम्बरसंयुतानि॥ ३३॥
अङ्गुष्ठमात्रं पुरुषं तथैव सौवर्णमत्यायतबाहुदण्डम्।
चतुर्भुजं हेममये निविष्टं पात्रे गुडस्योपरि सर्पिषा युतम्॥ ३४॥
सामस्वरज्ञाय जितेन्द्रियाय पात्राय शीलान्वयसंयुताय।
दातव्यमेतत् सकलं द्विजाय कुटुम्बिने नैव तु दाम्भिकाय।
समर्पयेद् विप्रवराय भक्त्या कृताञ्जलिः पूर्वमुदीर्य मन्त्रम्॥ ३५॥
भूमिपुत्र महातेजः स्वेदोद्भव पिनाकिनः। रूपार्थी त्वां प्रपन्नोऽहं गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते॥ ३६॥
मन्त्रेणानेन दत्त्वार्घ्यं रक्तचन्दनवारिणा। ततोऽर्चयेद् विप्रवरं रक्तमाल्याम्बरादिभिः॥ ३७॥
दद्यात् तेनैव मन्त्रेण भौमं गोमिथुनान्वितम्। शय्यां च शक्तितो दद्यात् सर्वोपस्करसंयुताम्॥ ३८॥
यद् यदिष्टतमं लोके यच्चास्य दयितं गृहे। तत्तद् गुणवते देयं तदेवाक्षय्यमिच्छता॥ ३९॥
प्रदक्षिणं ततः कृत्वा विसर्ज्य द्विजपुंगवम्। नक्तमक्षारलवणमश्नीयाद् घृतसंयुतम्॥ ४०॥
भक्त्या यस्तु पुनः कुर्यादेवमङ्गारकाष्टकम्। चतुरो वाथवा तस्य यत् पुण्यं तद् वदामि ते॥ ४१॥
रूपसौभाग्यसम्पन्नः पुनर्जन्मनि जन्मनि। विष्णौ वाथ शिवे भक्तः सप्तद्वीपाधिपो भवेत्॥ ४२॥
सप्तकल्पसहस्राणि रुद्रलोके महीयते। तस्मात् त्वमपि दैत्येन्द्र व्रतमेतत् समाचर॥ ४३॥

शुक्र बोले—दानव ! जब मंगलवारको चतुर्थी तिथि पड़ जाय तो उस दिन शरीरमें मिट्टी लगाकर स्नान करे और पद्मरागमणिकी अँगूठी आदि धारण करके उत्तराभिमुख बैठकर **'अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्—'** इस मन्त्रका जप करता रहे। यदि व्रती शूद्र हो तो उसे भोगसे दूर रहकर चुपचाप मंगलका स्मरण करते हुए दिन बिताना चाहिये। फिर सूर्यास्त हो जानेपर आँगनको गोबरसे लीपकर सर्वाङ्गसुन्दर पुष्पमाला आदिसे चारों ओर पूजा कर दे। आँगनके मध्यमें कुङ्कुमसे अष्टदल कमलकी रचना करे। कुङ्कुमका अभाव हो तो लाल चन्दनसे काम चलाना चाहिये। फिर आँगनके चारों कोनोंमें चार करवा स्थापित करे, जिन्हें लाल अगहनीके चावलसे भरकर उनके ऊपर पद्मराग मणि रख दे। वे भक्ष्य-भोज्य पदार्थोंसे भी संयुक्त रहें। उनके निकट नाना प्रकारके ऋतुफल, चन्दन, पुष्पमाला आदि सभी पूजन-सामग्री भी प्रस्तुत कर दे। तत्पश्चात् बछड़ेसहित एक कपिला गौका पूजन करे, जिसके सींग सोनेसे और खुर चाँदीसे मढ़े गये हों तथा उसके निकट काँसेकी दोहनी रखी हो। इसी प्रकार लाल खुरोंसे युक्त सौम्य स्वभाववाले हृष्ट-पुष्ट एक वृषभकी भी पूजा करे और उसके निकट सात वस्त्रोंसे युक्त धान्यराशि भी प्रस्तुत कर दे। फिर अँगूठेके बराबर लम्बाई-चौड़ाईवाली एक पुरुषाकार मूर्ति बनवाये, जो चार बड़ी भुजाओंसे संयुक्त हो। उसे गुड़के ऊपर रखे हुए स्वर्णमय पात्रमें स्थापित कर दे और उसके निकट घी भी प्रस्तुत कर दे। तत्पश्चात् मूर्तिसहित ये सारी वस्तुएँ ऐसे सुपात्र ब्राह्मणको दान करनी चाहिये, जो सामवेदके स्वर एवं अर्थका ज्ञाता, जितेन्द्रिय, सुशील, कुलीन और विशाल कुटुम्बवाला हो। दाम्भिकको कभी दान नहीं देना चाहिये। उस समय भक्तिपूर्वक हाथ जोड़कर वक्ष्यमाण मन्त्रका उच्चारण करते हुए ऐसे द्विजवरको सारा सामान समर्पित कर दे। (उस मन्त्रका भाव

इस प्रकार है—) 'महातेजस्वी भूमिपुत्र ! आप पिनाकधारी भगवान् शिवके स्वेदबिन्दुसे उद्भूत हुए हैं। मैं सौन्दर्यका अभिलाषी होकर आपकी शरणमें आया हूँ। आपको मेरा नमस्कार है। आप मेरेद्वारा दिया हुआ अर्घ्य ग्रहण कीजिये।' इस मन्त्रके उच्चारणपूर्वक लाल चन्दनमिश्रित जलसे अर्घ्य देनेके पश्चात् लाल पुष्पोंकी माला और लाल रंगके वस्त्र आदि उपकरणोंसे उन द्विजवरकी अर्चना करे और इसी मन्त्रको पढ़कर गौ एवं वृषभसहित मंगलकी स्वर्णमयी मूर्तिको उन्हें दान कर दे। उस समय अपनी शक्तिके अनुसार समस्त उपकरणोंसे युक्त शय्याका भी दान करना चाहिये। साथ ही दाताको लोकमें जो-जो वस्तुएँ अधिक इष्ट हों तथा अपने घरमें भी जो अधिक प्रिय हों, उन सबको अक्षय-रूपमें प्राप्त करनेकी अभिलाषासे गुणवान् (ब्राह्मण)को देना चाहिये। तदनन्तर उन द्विजश्रेष्ठकी प्रदक्षिणा करके उन्हें विदा कर दे तथा स्वयं रातमें एक बार क्षार-नमकरहित एवं घृतयुक्त अन्नका भोजन करे। इस प्रकार जो मनुष्य भक्तिपूर्वक पुनः इस अङ्गारक-व्रतका आठ अथवा चार बार अनुष्ठान करता है, उसे जो पुण्य प्राप्त होता है, वह मै तुम्हें बतला रहा हूँ। वह मनुष्य प्रत्येक जन्ममें सुन्दरता और सौभाग्यसे सम्पन्न होकर विष्णु अथवा शिवकी भक्तिमें लीन होता है और सातों द्वीपोंका अधीश्वर हो जाता है तथा सात हजार कल्पोंतक रुद्रलोकमें प्रतिष्ठित होता है। इसलिये दैत्येन्द्र ! तुम भी इस व्रतका अनुष्ठान करो ॥ २७-४३ ॥

पिप्पलाद उवाच

**इत्येवमुक्त्वा भृगुनन्दनोऽपि जगाम दैत्यश्च चकार सर्वम्।**
**त्वं चापि राजन् कुरु सर्वमेतद् यतोऽक्षयं वेदविदो वदन्ति ॥ ४४ ॥**

**पिप्पलादने कहा**—राजन् ! इस प्रकार व्रतका विधान बतलाकर शुक्राचार्य चले गये। तत्पश्चात् दैत्य विरोचनने पूरी विधिके साथ उस व्रतका अनुष्ठान किया। इसलिये आप भी इन सारे विधानोंके साथ इस व्रतका अनुष्ठान कीजिये; क्योंकि वेदवेत्तालोग इसका फल अक्षय बतलाते हैं ॥ ४४ ॥

ईश्वर उवाच

**तथेति सम्पूज्य स पिप्पलादं वाक्यं चकाराद्भुतवीर्यकर्मा।**
**शृणोति यश्चैनमनन्यचेतास्तस्यापि सिद्धिं भगवान् विधत्ते ॥ ४५ ॥**

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽङ्गारकव्रतं नाम द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥*

**ईश्वरने कहा**—ब्रह्मन् ! तब अद्भुत पराक्रमपूर्ण कर्मोंको करनेवाले युधिष्ठिरने 'तथेति—ऐसा ही करूँगा'—कहकर महर्षि पिप्पलादकी विधिवत् पूजा की और उनके वचनोंका पालन किया। जो मनुष्य अनन्य-चित्तसे इस व्रत-विधानका श्रवण करता है, भगवान् उसकी सिद्धिका भी विधान करते हैं ॥ ४५ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें अङ्गारक-व्रत नामक बहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ७२ ॥

# तिहत्तरवाँ अध्याय

## शुक्र और गुरुकी पूजा-विधि

पिप्पलाद उवाच

**अथातः शृणु भूपाल प्रतिशुक्रं प्रशान्तये। यात्रारम्भेऽवसाने च तथा शुक्रोदये त्विह ॥ १ ॥**
**राजते वाथ सौवर्णे कांस्यपात्रेऽथवा पुनः। शुक्लपुष्पाम्बरयुते सिततण्डुलपूरिते ॥ २ ॥**

विधाय राजतं शुक्रं शुचिमुक्ताफलान्वितम् । मन्त्रेणानेन तत् सर्वं सामगाय निवेदयेत् ॥ ३ ॥
नमस्ते सर्वलोकेश नमस्ते भृगुनन्दन । कवे सर्वार्थसिद्ध्यर्थं गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते ॥ ४ ॥
एवमस्योदये कुर्वन् यात्रादिषु च भारत । सर्वान् कामानवाप्नोति विष्णुलोके महीयते ॥ ५ ॥
यावच्छुक्रस्य न कृता पूजा समाल्यकैः शुभैः ।
वटकैः पूरिकाभिश्च गोधूमैश्चणकैरपि । तावदन्नं न चाश्नीयात् त्रिभिः कामार्थसिद्धये ॥ ६ ॥

पिप्पलादने कहा—भूपाल ! अब मैं विपरीत शुक्र*की शान्तिके लिये विधान बतला रहा हूँ, सुनिये । इस लोकमें शुक्रके उदयकालमें यात्राके आरम्भ अथवा समाप्तिके अवसरपर शुक्रकी एक चाँदीकी मूर्ति बनवाये, उसे श्वेत मुक्ताफल ( मोती )के साथ श्वेत चावलसे परिपूर्ण सुवर्ण, चाँदी अथवा काँसेके पात्रके ऊपर स्थापित करके श्वेत पुष्प और श्वेत वस्त्रसे आच्छादित कर दे । फिर इस वक्ष्यमाण मन्त्रका उच्चारण कर वह सारा सामान सामवेदके ज्ञाता ( सस्वर गान करनेवाले ) ब्राह्मणको निवेदित कर दे । ( वह मन्त्र इस प्रकार है—) 'सम्पूर्ण लोकोंके अधीश्वर ! आपको नमस्कार है । भृगुनन्दन ! आपको प्रणाम है । कवे ! मैं आपको अभिवादन करता हूँ । आप मेरी समस्त कामनाओंकी पूर्तिके लिये यह अर्घ्य ग्रहण करें ।' भारत ! जो मनुष्य शुक्रके विपरीत रहनेपर यात्रा आदि कार्योंमें इस प्रकार विधान करता है, वह समस्त कामनाओंको प्राप्त कर लेता है और अन्तमें विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है । शुक्रकी वह पूजा जबतक माङ्गलिक पुष्पमाला, वड़ा, पूरी, गेहूँ और चनाद्वारा सम्पन्न न कर ली जाय, तबतक धर्म, अर्थ और कामकी अभिलाषा रखनेवाले व्रतीको अपनी मनोरथ-सिद्धिके लिये भोजन नहीं करना चाहिये ॥ १—६ ॥

तद्वद् वाचस्पतेः पूजां प्रवक्ष्यामि युधिष्ठिर । सुवर्णपात्रे सौवर्णममरेशपुरोहितम् ॥ ७ ॥
पीतपुष्पाम्बरयुतं कृत्वा स्नात्वाथ सर्षपैः । पलाशाश्वत्थयोगेन पञ्चगव्यजलेन च ॥ ८ ॥
पीताङ्गरागवसनो घृतहोमं तु कारयेत् । प्रणम्य च गवा सार्धं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥ ९ ॥
नमस्तेऽङ्गिरसां नाथ वाक्पते च बृहस्पते । क्रूरग्रहैः पीडितानाममृताय नमो नमः ॥ १० ॥
संक्रान्तावस्य कौन्तेय यात्रास्वभ्युदयेषु च । कुर्वन् बृहस्पतेः पूजां सर्वान् कामान् समश्नुते ॥ ११ ॥

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे गुरुशुक्रपूजाविधिर्नाम त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥*

युधिष्ठिर ! इसी प्रकार मै बृहस्पतिकी भी पूजा-विधि बतला रहा हूँ । व्रतीको चाहिये कि वह सरसों, पलाश, पीपल और पञ्चगव्यसे युक्त जलसे स्नान करे, पीला वस्त्र पहनकर शरीरमें पीला अङ्गराग, चन्दन आदिका अनुलेप करे और ब्राह्मणद्वारा घीका हवन करावे । तत्पश्चात् मूर्तिको प्रणाम करके गौसहित उसे ब्राह्मणको दान कर दे । ( उस समय ऐसी प्रार्थना करे—) 'वाणीके अधीश्वर ! आप अङ्गिरा-वंशियोंके स्वामी हैं । बृहस्पते ! क्रूर ग्रहोंसे पीड़ित प्राणियोंके लिये आप अमृत-तुल्य फलदाता हैं, आपको बारंबार नमस्कार है ।' कुन्तीनन्दन ! सूर्यकी संक्रान्तिके दिन, यात्राओंमें तथा अन्यान्य आभ्युदयिक कार्योंके अवसरपर बृहस्पतिकी पूजा करनेवाला मनुष्य सभी कामनाओंको प्राप्त कर लेता है ॥ ७—११ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमे शुक्र-गुरु-पूजाविधि नामक तिहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ७३ ॥

---

* ज्योतिष्प्रकाश, रत्नमाला, गर्गसंहिता आदिमे शुक्रके सामने यात्रा अत्यन्त हानिकर कही गयी है । ज्योतिर्निबन्ध (पृ०१९६-९७) आदिमे भी 'प्रतिकूल शुक्र-शान्तिके लिये कई श्रेष्ठ स्तोत्र तथा 'रेवतीसे कृत्तिका' तकमे उन्हे अन्धा

# चौहत्तरवाँ अध्याय

## कल्याणसप्तमी-व्रतकी विधि और उसका माहात्म्य

ब्रह्मोवाच

भगवन् भवसंसारसागरोत्तारकारक । किंचिद् व्रतं समाचक्ष्व स्वर्गारोग्यसुखप्रदम् ॥ १ ॥

ब्रह्माने पूछा—भगवन्! आप तो भवसागररूपी संसारसे उद्धार करनेवाले हैं, अतः कोई ऐसा व्रत बतलाइये, जो स्वर्ग, नीरोगता और सुखका प्रदाता हो ॥ १ ॥

ईश्वर उवाच

सौरं धर्मं प्रवक्ष्यामि नाम्ना कल्याणसप्तमीम् । विशोकसप्तमीं तद्वत् फलाढ्यां पापनाशिनीम् ॥ २ ॥
शर्करासप्तमीं पुण्यां तथा कमलसप्तमीम् । मन्दारसप्तमीं तद्वच्छुभदां शुभसप्तमीम् ॥ ३ ॥
सर्वानन्तफलाः प्रोक्ताः सर्वा देवर्षिपूजिताः । विधानमासां वक्ष्यामि यथावदनुपूर्वशः ॥ ४ ॥

ईश्वरने कहा—ब्रह्मन्! अब मैं सूर्यसे सम्बन्धित धर्म ( व्रत ) का वर्णन कर रहा हूँ, जो लोकमें कल्याणसप्तमी, विशोकसप्तमी, पापनाशिनी फल-सप्तमी, पुण्यदायिनी शर्करासप्तमी, कमलसप्तमी, मन्दार-सप्तमी तथा मङ्गलप्रदायिनी शुभसप्तमीके नामसे प्रसिद्ध है। ये सभी सप्तमियाँ* देवर्षियोंद्वारा पूजित हैं तथा अनन्त फल देनेवाली कही गयी हैं। मै इनके विधानको आनुपूर्वी यथार्थरूपसे वर्णन कर रहा हूँ ॥ २—४ ॥

यदा तु शुक्लसप्तम्यामादित्यस्य दिनं भवेत् । सा तु कल्याणिनी नाम विजया च निगद्यते ॥ ५ ॥
प्रातर्गव्येन पयसा स्नानमस्यां समाचरेत् । ततः शुक्लाम्बरः पद्ममक्षताभिः प्रकल्पयेत् ॥ ६ ॥
प्राङ्मुखोऽष्टदलं मध्ये तद्वद् वृत्तां च कर्णिकाम् । पुष्पाक्षतैश्च देवेशं विन्यसेत् सर्वतः क्रमात् ॥ ७ ॥
पूर्वेण तपनायेति मार्तण्डायेति चानले । याम्ये दिवाकरायेति विधात्र इति नैर्ऋते ॥ ८ ॥
पश्चिमे वरुणायेति भास्करायेति चानिले । सौम्ये विकर्तनायेति रवये चाष्टमे दले ॥ ९ ॥
आदावन्ते च मध्ये च नमोऽस्तु परमात्मने । मन्त्रैरेभिः समभ्यर्च्य नमस्कारान्तदीपितैः ॥ १० ॥
शुक्लवस्त्रैः फलैर्भक्ष्यैर्धूपमाल्यानुलेपनैः । स्थण्डिले पूजयेद् भक्त्या गुडेन लवणेन च ॥ ११ ॥
ततो व्याहृतिमन्त्रेण विसृजे द्विजपुङ्गवान् ।
शक्तितः पूजयेद् भक्त्या गुडक्षीरघृतादिभिः । तिलपात्रं हिरण्यं च ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥ १२ ॥
एवं नियमकृत् सुप्त्वा प्रातरुत्थाय मानवः । कृतस्नानजपो विप्रैः सहैव घृतपायसम् ॥ १३ ॥
भुक्त्वा च वेदविदुषे विडालव्रतवर्जिते । घृतपात्रं सकनकं सोदकुम्भं निवेदयेत् ॥ १४ ॥
प्रीयतामत्र भगवान् परमात्मा दिवाकरः । अनेन विधिना सर्वं मासि मासि व्रतं चरेत् ॥ १५ ॥
ततस्त्रयोदशे मासि गा वै दद्यात् त्रयोदश । वस्त्रालंकारसंयुक्ताः सुवर्णास्याः पयस्विनीः ॥ १६ ॥
एकामपि प्रदद्याद् वा वित्तहीनो विमत्सरः । न वित्तशाठ्यं कुर्वीत यतो मोहात् पतत्यधः ॥ १७ ॥

जब शुक्लपक्षकी सप्तमी तिथिको रविवार पड़ जाय तो उस सप्तमीको कल्याणिनी ( नामसे ) कहा जाता है। उसीका दूसरा नाम विजया भी है। व्रतीको चाहिये कि वह उस दिन प्रातःकाल उठकर गोदुग्धयुक्त जलसे

---

बतलाकर यात्रा-विधान निर्दिष्ट है। वहाँ 'मत्स्यपुराण'के ही नामसे—'चतुःशालं चतुर्द्वारं' आदि श्लोकको उद्धृत कर ४ दरवाजेके मकानोंमे भी शुक्रदोष नही माना गया है। सम्भवतः वे श्लोक पहले मत्स्यपुराणमें यहाँ प्राप्त थे। ज्योतिर्निबन्ध पृ० १९७की विषयवस्तु इससे बहुधा मिलती है। वहाँ १०वे श्लोकमें इसी प्रकार अर्घ्यदानकी बात भी आयी है।

* प्रायः ये सभी सप्तमियाँ भविष्यपुराणमे अन्य कई अधिक सप्तमीव्रतोंके साथ निर्दिष्ट है।

स्नान करनेके पश्चात् श्वेत वस्त्र धारण करे। फिर पूर्वाभिमुख हो चावलोंद्वारा अष्टदल कमल बनावे। उसके मध्यभागमें उसी आकारवाली कर्णिकाकी भी रचना करे। तत्पश्चात् पुष्प और अक्षतद्वारा क्रमशः सब ओर देवेश्वर सूर्यकी स्थापना करते हुए इन मन्त्रोंका उच्चारण करे—'तपनाय नमः' से पूर्व-दलपर, 'मार्तण्डाय नमः' से अग्निकोणस्थित दलपर, 'दिवाकराय नमः' से दक्षिणदलपर, 'विधात्रे नमः' से नैर्ऋत्यकोणके दलपर, 'वरुणाय नमः' से पश्चिम-दलपर, 'भास्कराय नमः' से वायव्यकोणवाले दलपर, 'विकर्तनाय नमः' से उत्तरदलपर, 'रवये नमः' से ईशानकोणस्थित आठवें दलपर और 'परमात्मने नमः' से आदि, मध्य और अन्तमें सूर्यका आवाहन करके स्थापित कर दे। फिर नमस्कारान्तसे सुशोभित इन मन्त्रोंका उच्चारण कर श्वेत वस्त्र, फल, नैवेद्य, धूप, पुष्पमाला और चन्दनसे भलीभाँति पूजन करे। वेदीपर भी व्याहृति-मन्त्रोंके उच्चारणपूर्वक गुड़ और नमकसे भक्तिपूर्वक पूजा करनेका विधान है। इसके बाद विसर्जन करना चाहिये। फिर अपनी शक्तिके अनुसार भक्तिपूर्वक गुड़, दूध और घी आदिके द्वारा श्रेष्ठ ब्राह्मणोंकी पूजा करे और तिलसे भरा हुआ पात्र और सुवर्ण ब्राह्मणको दान कर दे। इस प्रकार विधानको पूरा करके व्रती मानव रात्रिमें शयन करे और प्रातःकाल उठकर स्नान-जप आदि नित्यकर्म पूरा करे। तत्पश्चात् उन ब्राह्मणोंके साथ ही घी और दूधसे बने हुए पदार्थों-का भोजन करे। अन्तमें बिडालव्रत ( छल-कपट ) से रहित वेदज्ञ ब्राह्मणको सुवर्णसहित घृतपूर्ण पात्र और जलसे भरा हुआ घट दान कर दे और उस समय इस प्रकार कहे—'मेरे इस व्रतसे परमात्मा भगवान् सूर्य प्रसन्न हों।' इसी विधिसे प्रत्येक मासमें सभी व्रतोंका अनुष्ठान करना चाहिये। तदनन्तर तेरहवाँ महीना आनेपर तेरह गौ दान करनेका विधान है, जो सभी दुधारू हों, वस्त्र और अलंकार आदिसे सुसज्जित हों और जिनके मुखपर सोनेका पत्र लगा हुआ हो। यदि व्रती निर्धन हो तो वह अहंकाररहित होकर एक ही गौका दान करे, किंतु कृपणता न करे; क्योंकि मोहवश कंजूसी करनेसे अधःपतन हो जाता है॥ ५—१७॥

अनेन विधिना यस्तु कुर्यात् कल्याणसप्तमीम्।
सर्वपापविनिर्मुक्तः सूर्यलोके महीयते। आयुरारोग्यमैश्वर्यमनन्तमिह जायते॥ १८॥
सर्वपापहरा नित्यं सर्वदैवतपूजिता। सर्वदुष्टोपशमनी सदा कल्याणसप्तमी॥ १९॥
इमामनन्तफलदां यस्तु कल्याणसप्तमीम्। शृणोति पठते चेह सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ २०॥

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे कल्याणसप्तमीव्रतं नाम चतुःसप्ततितमोऽध्यायः॥ ७४॥*

जो मनुष्य उपर्युक्त विधिके अनुसार इस कल्याण-सप्तमी-व्रतका अनुष्ठान करता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त होकर सूर्यलोकमें प्रतिष्ठित होता है। इस लोकमें भी उसे अनन्त आयु, आरोग्य और ऐश्वर्यकी प्राप्ति होती है; क्योंकि यह कल्याणसप्तमी सदा समस्त पापों-को हरनेवाली और सम्पूर्ण दुष्ट ग्रहोंका शमन करनेवाली है। सभी देवता नित्य इसकी पूजा करते हैं। जो मानव इस लोकमें इस अनन्त फलप्रदायिनी कल्याणसप्तमीकी चर्चा—कथाको सुनता अथवा पढ़ता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ १८—२०॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें कल्याणसप्तमी-व्रत नामक चौहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ७४॥
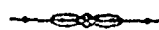
# पचहत्तरवाँ अध्याय

## विशोकसप्तमी-व्रतकी विधि और उसका माहात्म्य

ईश्वर उवाच

विशोकसप्तमीं तद्वद् वक्ष्यामि मुनिपुंगव। यामुपोष्य नरः शोकं न कदाचिदिहाश्नुते ॥ १ ॥
माघे कृष्णतिलैः स्नात्वा षष्ठ्यां वै शुक्लपक्षतः।
कृताहारः कृसरया दन्तधावनपूर्वकम्। उपवासव्रतं कृत्वा ब्रह्मचारी भवेन्निशि ॥ २ ॥
ततः प्रभात उत्थाय कृतस्नानजपः शुचिः।
कृत्वा तु काञ्चनं पद्ममर्कायेति च पूजयेत्। करवीरेण रक्तेन रक्तवस्त्रयुगेन च ॥ ३ ॥
यथा विशोकं भुवनं त्वयैवादित्य सर्वदा। तथा विशोकता मेऽस्तु त्वद्भक्तिः प्रतिजन्म च ॥ ४ ॥
एवं सम्पूज्य षष्ठ्यां तु भक्त्या सम्पूजयेद् द्विजान्। सुप्त्वा सम्प्राश्य गोमूत्रमुत्थाय कृतनैत्यकः ॥ ५ ॥
सम्पूज्य विप्रानन्नेन गुडपात्रसमन्वितम्। तद्वस्त्रयुग्मं पद्मं च ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥ ६ ॥
अतैललवणं भुक्त्वा सप्तम्यां मौनसंयुतः। ततः पुराणश्रवणं कर्तव्यं भूतिमिच्छता ॥ ७ ॥
अनेन विधिना सर्वमुभयोरपि पक्षयोः। कृत्वा यावत् पुनर्माघशुक्लपक्षस्य सप्तमी ॥ ८ ॥

ईश्वरने कहा—मुनिपुंगव ! अब मैं उसी प्रकार विशोकसप्तमी-व्रतका वर्णन कर रहा हूँ, जिसका अनुष्ठान करके मनुष्य इस लोकमें कभी शोकको नहीं प्राप्त होता। व्रतीको चाहिये कि वह माघमासमें शुक्ल-पक्षकी षष्ठी तिथिको दातूनसे दाँतोंको साफ करनेके बाद काले तिलमिश्रित जलसे स्नान करे और ( तिल-चावलकी ) खिचड़ीका भोजन करे। फिर उपवासका व्रत लेकर ब्रह्मचर्यपूर्वक रातमें शयन करे। प्रातःकाल उठकर स्नान, जप आदि नित्यकर्म करके पवित्र हो ले, फिर स्वर्णनिर्मित कमलको स्थापित कर 'अर्काय नमः'— इस मन्त्रका उच्चारण करते हुए लाल कनेरके पुष्प और दो लाल रंगके वस्त्रोंद्वारा सूर्यकी पूजा करे और ऐसा कहे—'आदित्य ! जैसे आपके द्वारा यह सारा जगत् सदा शोकरहित बना रहता है, उसी प्रकार मुझे भी प्रत्येक जन्ममें विशोकता और आपकी भक्ति प्राप्त हो।' इस प्रकार षष्ठी तिथिको भगवान् सूर्यकी पूजा कर ब्राह्मणोंका भी भक्तिपूर्वक पूजन करना चाहिये। फिर रात्रिमें गोमूत्रका प्राशन कर शयन करे और प्रातःकाल उठकर नित्यकर्मसे निवृत्त हो जाय। तत्पश्चात् अन्नद्वारा ब्राह्मणोंका पूजन करके दो वस्त्र और गुड़पूर्ण पात्रसहित वह स्वर्णमय कमल ब्राह्मणको निवेदित कर दे। स्वयं सप्तमीको तेल और नमकरहित अन्नका भोजन करके मौन धारण कर ले। वैभवकी इच्छा रखनेवाले व्रतीको उस दिन पुराणोंकी कथाएँ सुननी चाहिये। इस विधिसे दोनों पक्षोंमें सारा कार्य तबतक करते रहना चाहिये जबतक पुनः माघमासमें शुक्लपक्षकी सप्तमी न आ जाय ॥ १–८ ॥

व्रतान्ते कलशं दद्यात् सुवर्णकमलान्वितम्। शय्यां सोपस्करां दद्यात् कपिलां च पयस्विनीम् ॥ ९ ॥
अनेन विधिना यस्तु वित्तशाठ्यविवर्जितः। विशोकसप्तमीं कुर्यात् स याति परमां गतिम् ॥ १० ॥
यावज्जन्मसहस्राणां साग्रं कोटिशतं भवेत्। तावन्न शोकमभ्येति रोगदौर्गत्यवर्जितः ॥ ११ ॥
यं यं प्रार्थयते कामं तं तमाप्नोति पुष्कलम्। निष्कामः कुरुते यस्तु स परं ब्रह्म गच्छति ॥ १२ ॥
यः पठेच्छृणुयाद् वापि विशोकाख्यां च सप्तमीम्। सोऽपीन्द्रलोकमाप्नोति न दुःखी जायते क्वचित् ॥ १३ ॥

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे विशोकसप्तमीव्रतं नाम पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥*

व्रतके अन्तमें स्वर्णनिर्मित कमलसमेत कलश, समस्त उपकरणोंसहित शय्या और दुधारू कपिला गौका दान करना चाहिये। इस प्रकार जो मनुष्य कृपणता छोड़कर उपर्युक्त विधिके अनुसार विशोकसप्तमी-व्रतका अनुष्ठान करता है, वह परमगतिको प्राप्त होता है तथा करोड़ों जन्मतक उसे शोककी प्राप्ति नहीं होती। वह रोग और दुर्गतिसे रहित हो जाता है तथा जिस-जिस मनोरथकी प्रार्थना करता है, उसे-उसे वह प्रचुरमात्रामें प्राप्त करता है। जो व्रती निष्काम-भावसे अनुष्ठान करता है, वह परब्रह्मको प्राप्त होता है। जो मनुष्य इस विशोक-सप्तमी-व्रतकी कथा या विधानको पढ़ता अथवा श्रवण करता है, वह भी इस लोकमें कभी दुःखी नहीं होता और अन्तमें इन्द्रलोकको प्राप्त होता है॥ ९—१३॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें विशोकसप्तमी-व्रत नामक पचहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ७५॥

# छिहत्तरवाँ अध्याय

## फलसप्तमी-व्रतकी विधि और उसका माहात्म्य

ईश्वर उवाच

अन्यामपि प्रवक्ष्यामि नाम्ना तु फलसप्तमीम्। यामुपोष्य नरः पापाद् विमुक्तः स्वर्गभाग् भवेत्॥ १॥
मार्गशीर्षे शुभे मासि सप्तम्यां नियतव्रतः। तामुपोष्याथ कमलं कारयित्वा तु काञ्चनम्॥ २॥
शर्करासंयुतं दद्याद् ब्राह्मणाय कुटुम्बिने।
रविं काञ्चनकं कृत्वा पलस्यैकस्य धर्मवित्। दद्याद् द्विकालवेलायां भानुर्मे प्रीयतामिति॥ ३॥
भक्त्या तु विप्रान् सम्पूज्य चाष्टम्यां क्षीरभोजनम्। दत्त्वा कुर्यात् फलयुतं यावत् स्यात् कृष्णसप्तमी॥ ४॥
तामप्युपोष्य विधिवदनेनैव क्रमेण तु। तद्वद्धेमफलं दत्त्वा सुवर्णकमलान्वितम्॥ ५॥
शर्करापात्रसंयुक्तं वस्त्रमाल्यसमन्वितम्। संवत्सरं च तेनैव विधिनोभयसप्तमीम्॥ ६॥
उपोष्य दत्त्वा क्रमशः सूर्यमन्त्रमुदीरयेत्।
भानुरर्को रविर्ब्रह्मा सूर्यः शक्रो हरिः शिवः। श्रीमान् विभावसुस्त्वष्टा वरुणः प्रीयतामिति॥ ७॥
प्रतिमासं च सप्तम्यामेकैकं नाम कीर्तयेत्। प्रतिपक्षं फलत्यागमेतत् कुर्वन् समाचरेत्॥ ८॥

ईश्वरने कहा—ब्रह्मन्! अब मैं फलसप्तमी नामक एक अन्य व्रतका वर्णन कर रहा हूँ, जिसका अनुष्ठान करके मनुष्य पापोंसे विमुक्त हो स्वर्गभागी हो जाता है। व्रतनिष्ठ मनुष्यको चाहिये कि वह मार्गशीर्ष नामक शुभ मासमें शुक्लपक्षकी सप्तमी तिथिको सोनेका एक कमल बनवाये और उस दिन उपवास कर उसे शक्करसमेत कुटुम्बी ब्राह्मणको दान कर दे। इसी प्रकार धर्मवेत्ता व्रती एक पल सोनेकी सूर्यकी मूर्ति बनवाकर उसे सायंकालके समय 'भगवान् सूर्य मुझपर प्रसन्न हों'—यों कहकर ब्राह्मणको दान करे। फिर अष्टमीके दिन ब्राह्मणोंको फलसहित दूधसे बने हुए अन्नका भोजन कराकर भक्तिपूर्वक उनकी पूजा करे। ऐसा तबतक करते रहना चाहिये, जबतक पुनः कृष्णपक्षकी सप्तमी न आ जाय। उस दिन भी उसी क्रमसे विधिपूर्वक उपवास करके स्वर्णमय कमलके साथ स्वर्णनिर्मित फलका दान करना चाहिये। उसके साथ शक्करसे भरा हुआ पात्र, वस्त्र और पुष्पमाला भी होना आवश्यक है। इस प्रकार एक वर्षतक दोनों पक्षोंकी सप्तमीके दिन उपवास और दान कर क्रमशः सूर्य-मन्त्रका उच्चारण करना चाहिये। भानु, अर्क, रवि, ब्रह्मा, सूर्य, शक्र, हरि, शिव, श्रीमान्, विभावसु, त्वष्टा और वरुण—ये मुझपर प्रसन्न हों। मार्गशीर्षसे आरम्भ कर प्रत्येक मासकी सप्तमी

तिथिको उपर्युक्त नामोंमें क्रमशः एक-एकका कीर्तन करना चाहिये। प्रत्येक पक्षमें फलदान करनेका भी विधान है। इस प्रकार सारा कार्य करते हुए व्रतका अनुष्ठान करना चाहिये॥ १—८॥

व्रतान्ते विप्रमिथुनं पूजयेद् वस्त्रभूषणैः। शर्कराकलशं दद्याद्धेमपद्मदलान्वितम्॥ ९॥
यथा न विफलाः कामास्त्वद्भक्तानां सदा रवे। तथानन्तफलावाप्तिरस्तु मे सप्तजन्मसु॥ १०॥
इमामनन्तफलदां यः कुर्यात् फलसप्तमीम्। सर्वपापविशुद्धात्मा सूर्यलोके महीयते॥ ११॥
सुरापानादिकं किञ्चिद् यदत्रामुत्र वा कृतम्। तत् सर्वं नाशमायाति यः कुर्यात् फलसप्तमीम्॥ १२॥
कुर्वाणः सप्तमीं चेमां सततं रोगवर्जितः।
भूतान् भव्यांश्च पुरुषांस्तारयेदेकविंशतिम्। यः शृणोति पठेद् वापि सोऽपि कल्याणभाग् भवेत्॥ १३॥

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे फलसप्तमीव्रतं नाम पट्सप्ततितमोऽध्यायः॥ ७६॥*

व्रतकी समाप्तिपर वस्त्र और आभूषण आदिद्वारा सपत्नीक ब्राह्मणकी पूजा करे और स्वर्णमय कमलसहित शक्करसे भरा हुआ कलश दान करे। उस समय ऐसा कहे—'सूर्यदेव! जिस प्रकार आपके भक्तोंकी कामनाएँ कभी विफल नहीं होतीं, उसी प्रकार मुझे भी सात जन्मोंतक अनन्त फलकी प्राप्ति होती रहे।' जो मनुष्य इस अनन्त फलदायिनी फलसप्तमीका व्रत करता है, उसका आत्मा समस्त पापोंसे विशुद्ध हो जाता है और वह सूर्यलोकमें प्रतिष्ठित होता है। फलसप्तमी-व्रतका अनुष्ठान करनेवाले मनुष्यद्वारा इस लोकमें अथवा परलोकमें मद्यपान आदि जो कुछ भी दुष्कर्म किया गया है, वह सारा-का-सारा विनष्ट हो जाता है। इस फल-सप्तमी-व्रत*का निरन्तर अनुष्ठान करनेवाले मनुष्यके पास रोग नहीं फटकते और वह अपनी भूत एवं भविष्यकी इक्कीस पीढ़ियोंको तार देता है। जो इस व्रत-विधानको सुनता अथवा पढ़ता है, वह भी कल्याणभागी हो जाता है॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें फलसप्तमी-व्रत नामक छिहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ७६॥

## सतहत्तरवाँ अध्याय

### शर्करासप्तमी-व्रतकी विधि और उसका माहात्म्य

ईश्वर उवाच

शर्करासप्तमीं वक्ष्ये तद्वत् कल्मषनाशिनीम्। आयुरारोग्यमैश्वर्यं ययानन्तं प्रजायते॥ १॥
माधवस्य सिते पक्षे सप्तम्यां नियतव्रतः। प्रातः स्नात्वा तिलैः शुक्लैः शुक्लमाल्यानुलेपनैः॥ २॥
स्थण्डिले पद्ममालिख्य कुङ्कुमेन सकर्णिकम्। तस्मिन् नमः सवित्रे तु गन्धधूपौ निवेदयेत्॥ ३॥
स्थापयेदुदकुम्भं च शर्करापात्रसंयुतम्।
शुक्लवस्त्रैरलंकृत्य शुक्लमाल्यानुलेपनैः। सुवर्णेन समायुक्तं मन्त्रेणानेन पूजयेत्॥ ४॥
विश्ववेदमयो यस्माद् वेदवादीति पठ्यसे। त्वमेवामृतसर्वस्वमतः शान्तिं प्रयच्छ मे॥ ५॥
पञ्चगव्यं ततः पीत्वा स्वपेत् तत्पार्श्वतः क्षितौ। सौरसूक्तं जपंस्तिष्ठेत् पुराणश्रवणेन वा॥ ६॥
अहोरात्रे गते पश्चादष्टम्यां कृतनैत्यकः। तत् सर्वं वेद विदुषे ब्राह्मणाय निवेदयेत्॥ ७॥
भोजयेच्छक्तितो विप्रान् शर्कराघृतपायसैः। भुञ्जीतातैललवणं स्वयमप्यथ वाग्यतः॥ ८॥
अनेन विधिना सर्वं मासि मासि समाचरेत्। संवत्सरान्ते शयनं शर्कराकलशान्वितम्॥ ९॥

* व्रतकल्पद्रुम पृ० २६९ पर इसके अतिरिक्त दो और भिन्न फलसप्तमियाँ निर्दिष्ट हुई हैं।

सर्वोपस्करसंयुक्तं तथैकां गां पयस्विनीम् । गृहं च शक्तिमान् दद्यात् समस्तोपस्करान्वितम् ॥ १० ॥
सहस्रेणाथ निष्काणां कृत्वा दद्याच्छतेन वा । दशभिर्वाथ निष्केण तदर्धेनापि शक्तितः ॥ ११ ॥
सुवर्णाश्वः प्रदातव्यः पूर्ववन्मन्त्रवादनम् । न वित्तशाठ्यं कुर्वीत कुर्वन् दोषं समश्नुते ॥ १२ ॥

ईश्वरने कहा—ब्रह्मन् ! अब मैं उसी प्रकार पापनाशिनी शर्करासप्तमीका वर्णन कर रहा हूँ, जिसका अनुष्ठान करनेसे मनुष्यको अनन्त आयु, आरोग्य और ऐश्वर्यकी प्राप्ति होती है । व्रतनिष्ठ पुरुष वैशाख मासमें शुक्लपक्षकी सप्तमी तिथिको प्रातःकाल श्वेत तिलोंसे युक्त जलसे स्नान करके श्वेत पुष्पोंकी माला और श्वेत चन्दन धारण कर ले । फिर वेदीपर कुङ्कुमसे कर्णिका-सहित कमलका चित्र बनावे । उसपर 'सवित्रे नमः' कहकर गन्ध और धूप निवेदित करे । फिर उसपर शक्करसे परिपूर्ण पात्रसहित जलपूर्ण कलश स्थापित करे, उसपर स्वर्णमयी मूर्ति रख दे और उसे श्वेत वस्त्रसे सुशोभित करके श्वेत पुष्पमाला और चन्दनद्वारा वक्ष्यमाण मन्त्रके उच्चारणपूर्वक पूजन करे । ( वह मन्त्र इस प्रकार है—) 'सूर्यदेव ! विश्व और वेद आपके स्वरूप हैं, आप वेदवादी कहे जाते हैं और सभी प्राणियोंके लिये अमृत-तुल्य फलदायक हैं, अतः मुझे शान्ति प्रदान कीजिये ।' तत्पश्चात् पञ्चगव्य पान कर उसी कलशके पार्श्वभागमें भूमिपर शयन करे । उस समय सूर्यसूक्तका जप* अथवा पुराणका श्रवण करते रहना चाहिये । इस प्रकार दिन-रात बीत जानेपर अष्टमीके दिन प्रातःकाल नित्यकर्मसे निवृत्त होकर पहलेकी तरह वह सारा सामान वेदज्ञ ब्राह्मणको दान कर दे । पुनः अपनी शक्तिके अनुसार ब्राह्मणोंको शक्कर, घी और दूधसे बने हुए पदार्थ भोजन करावे और स्वयं भी मौन रहकर तेल और नमकसे रहित पदार्थोंका भोजन करे । इसी विधिसे प्रत्येक मासमें सारा कार्य करना चाहिये । एक वर्ष व्यतीत हो जानेपर शक्करसे पूर्ण कलशसमेत समग्र उपकरणोंसे युक्त शय्या तथा एक दुधारू गौ दान करनेका विधान है । व्रती यदि धन-सम्पत्तिसे युक्त हो तो उसे समस्त उपकरणोंसे युक्त गृहका भी दान करना चाहिये । तदनन्तर अपनी सामर्थ्यके अनुकूल एक हजार अथवा एक सौ अथवा पाँच निष्क ( सोलह माशेका एक निष्क होता है जिसे दीनार भी कहते हैं । ) सोनेका एक घोड़ा बनवाकर पहलेकी ही भाँति मन्त्रोच्चारण-पूर्वक दान करना चाहिये । इसमें कृपणता न करे, यदि करता है तो दोष-भागी होना पड़ता है ॥ १—१२ ॥

अमृतं पिबतो वक्त्रात् सूर्यस्यामृतबिन्दवः । निष्पेतुर्ये धरण्यां ते शालिमुद्गेक्षवः स्मृताः ॥ १३ ॥
शर्करा तु परा तस्मादिक्षुसारोऽमृतात्मवान् । इष्टा रवेरतः पुण्या शर्करा हव्यकव्ययोः ॥ १४ ॥
शर्करासप्तमी चेयं वाजिमेधफलप्रदा । सर्वदुष्टप्रशमनी पुत्रपौत्रप्रवर्धिनी ॥ १५ ॥
यः कुर्यात् परया भक्त्या स वै सद्गतिमाप्नुयात् । कल्पमेकं वसेत् स्वर्गे ततो याति परं पदम् ॥ १६ ॥
इदमनघं शृणोति यः स्मरेद् वा परिपठतीह दिवाकरस्य लोके ।
मतिमपि च ददाति सोऽपि देवैरमरवधूजनमालयाभिपूज्यः ॥ १७ ॥

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे शर्कराव्रतं नाम सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥*

अमृत-पान करते समय सूर्यके मुखसे जो अमृत-बिन्दु भूतलपर गिर पड़े थे, वे ही शालि ( अगहनी धान ), मूँग और ईख नामसे कहे जाते हैं । इनमें ईखका सारभूत शक्कर अमृत-तुल्य सुस्वादु है, इसलिये यह तीनोंमें श्रेष्ठ है । इसी कारण यह पुण्यवती शर्करा सूर्यके हव्य एवं कव्य—दोनों हवनीय पदार्थोंमें

* ऋग्वेदके प्रथम मण्डलका ५०वाँ सूक्त सूर्यसूक्त है ।

उन्हें अत्यन्त प्रिय है। यह शर्करासप्तमी अश्वमेध-यज्ञके समान फलदायिनी, समस्त दुष्ट ग्रहोंको शान्त करनेवाली और पुत्र-पौत्रोंकी प्रवर्धिनी है। जो मानव उत्कृष्ट श्रद्धाके साथ इसका अनुष्ठान करता है, उसे सद्गतिकी प्राप्ति होती है। वह एक कल्पतक स्वर्गमें निवास कर अन्तमें परमपदको प्राप्त हो जाता है। जो मनुष्य इस निष्पाप व्रतका श्रवण, स्मरण अथवा पाठ करता है, वह सूर्यलोकमें जाता है। साथ ही जो इसका अनुष्ठान करनेके लिये सम्मति देता है, वह भी देवगणों एवं देवाङ्गनाओंके समूहसे पूजित होता है ॥ १३—१७ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें शर्करासप्तमी-व्रत नामक सतहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥७७॥

# अठहत्तरवाँ अध्याय

## कमलसप्तमी-व्रतकी विधि और उसका माहात्म्य

ईश्वर उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि तद्वत् कमलसप्तमीम्। यस्याः संकीर्तनादेव तुष्यतीह दिवाकरः ॥ १ ॥
वसन्तामलसप्तम्यां स्नातः सन् गौरसर्षपैः। तिलपात्रे च सौवर्णं निधाय कमलं शुभम् ॥ २ ॥
वस्त्रयुग्मावृतं कृत्वा गन्धपुष्पैः समर्चयेत्। नमस्ते पद्महस्ताय नमस्ते विश्वधारिणे ॥ ३ ॥
दिवाकर नमस्तुभ्यं प्रभाकर नमोऽस्तु ते। ततो विकालवेलायामुदकुम्भसमन्वितम् ॥ ४ ॥
विप्राय दद्यात् सम्पूज्य वस्त्रमाल्यविभूषणैः। शक्त्या च कपिलां दद्यादलंकृत्य विधानतः ॥ ५ ॥
अहोरात्रे गते पश्चादष्टम्यां भोजयेद् द्विजान्। यथाशक्त्यथ भुञ्जीत मांसतैलविवर्जितम् ॥ ६ ॥
अनेन विधिना शुक्लसप्तम्यां मासि मासि च। सर्वं समाचरेद् भक्त्या वित्तशाठ्यविवर्जितः ॥ ७ ॥
व्रतान्ते शयनं दद्यात् सुवर्णकमलान्वितम्। गां च दद्यात् स्वशक्त्या तु सुवर्णाढ्यां पयस्विनीम् ॥ ८ ॥
भोजनासनदीपादीन् दद्यादिष्टानुपस्करान्।
अनेन विधिना यस्तु कुर्यात् कमलसप्तमीम्। लक्ष्मीमनन्तामभ्येति सूर्यलोके महीयते ॥ ९ ॥
कल्पे कल्पे ततो लोकान् सप्त गत्वा पृथक् पृथक्। अप्सरोभिः परिवृतस्ततो याति परां गतिम् ॥ १० ॥
यः पश्यतीदं शृणुयाच्च मर्त्यः पठेच्च भक्त्याथ मतिं ददाति।
सोऽप्यत्र लक्ष्मीमचलामवाप्य गन्धर्वविद्याधरलोकभाक् स्यात् ॥ ११ ॥

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे कमलसप्तमीव्रतं नामाष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥*

**ईश्वरने कहा—**ब्रह्मन्! इसके बाद अब मैं कमल-सप्तमीव्रतका वर्णन कर रहा हूँ, जिसका नाम लेनेमात्रसे भी भगवान् सूर्यदेव प्रसन्न हो जाते हैं। व्रती मनुष्य वसन्त ऋतुमें शुक्लपक्षकी सप्तमीको पीली सरसोंयुक्त जलसे स्नान करके शुद्ध हो जाय और किसी तिलसे पूर्ण पात्रमें एक सुन्दर स्वर्णमय कमल स्थापित कर दे। फिर उसे दो वस्त्रोंसे आच्छादित कर गन्ध, पुष्प आदिद्वारा उसकी अर्चना करे। पूजनके समय 'पद्महस्ताय ते नमः', 'विश्वधारिणे ते नमः', 'दिवाकर तुभ्यं नमः', 'प्रभाकर ते नमोऽस्तु'—इन मन्त्रोंका उच्चारण (कर सूर्यको प्रणाम) करे। तदनन्तर सायंकाल वस्त्र, पुष्पमाला और आभूषण आदिसे ब्राह्मणका पूजन कर उन्हें जलपूर्ण कलशसहित कमल दान कर दे। साथ ही एक कपिला गौको भी शक्तिके अनुसार विधि-पूर्वक सुसज्जित करके दान करे। पुनः दिन-रात बीत जानेके बाद अष्टमी तिथिको अपनी सामर्थ्यके अनुसार ब्राह्मणोंको भोजन करावे। उसके बाद स्वयं भी मांस और तेलसे रहित अन्नका भोजन करे। प्रत्येक मासमें

शुक्लपक्षकी सप्तमीको इसी विधिके अनुसार कंजूसी छोड़कर भक्तिपूर्वक सारा कार्य सम्पन्न करना चाहिये। ( एक वर्ष पूर्ण होनेपर ) व्रतकी समाप्तिके समय स्वर्णमय कमलके साथ एक शय्याका भी दान करना चाहिये। साथ ही अपनी शक्तिके अनुसार सुवर्णसे सुसज्जित एक दूधारू गौ तथा भोजन, आसन, दीप आदि अभीष्ट सामग्रियोंके भी दान करनेका विधान है। जो मनुष्य उपर्युक्त विधिके अनुसार कमलसप्तमी-व्रतका अनुष्ठान करता है, उसे अनन्त लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है और वह सूर्यलोकमें प्रतिष्ठित होता है। वह प्रत्येक कल्पमें अप्सराओंसे घिरा हुआ पृथक्-पृथक् सातों लोकोंमें भ्रमण करनेके पश्चात् परमगतिको प्राप्त हो जाता है। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इस व्रतको देखता, सुनता, पढ़ता और इसे करनेके लिये सम्मति देता है, वह भी इस लोकमें अचल लक्ष्मीका उपभोग कर अन्तमें गन्धर्व-विद्याधरलोकका भागी होता है॥ १-११॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें कमलसप्तमी-व्रत नामक अठहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ७८॥

# उन्यासीवाँ अध्याय

## मन्दारसप्तमी-व्रतकी विधि और उसका माहात्म्य

ईश्वर उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि सर्वपापप्रणाशिनीम्। सर्वकामप्रदां पुण्यां नाम्ना मन्दारसप्तमीम्॥ १॥
माघस्यामलपक्षे तु पञ्चम्यां लघुभुङ्नरः। दन्तकाष्ठं ततः कृत्वा षष्ठीमुपवसेद् बुधः॥ २॥
विप्रान् सम्पूजयित्वा तु मन्दारं प्राशयेन्निशि। ततः प्रभात उत्थाय कृत्वा स्नानं पुनर्द्विजान्॥ ३॥
भोजयेच्छक्तितः कुर्याद् मन्दारकुसुमाष्टकम्। सौवर्णं पुरुषं तद्वत् पद्महस्तं सुशोभनम्॥ ४॥
पद्मं कृष्णतिलैः कृत्वा ताम्रपात्रेऽष्टपत्रकम्। हेममन्दारकुसुमैर्भास्करायेति पूर्वतः॥ ५॥
नमस्कारेण तद्वच्च सूर्यायेत्यानले दले। दक्षिणे तद्वदर्काय तथार्यम्णेति नैर्ऋते॥ ६॥
पश्चिमे वेदधाम्ने च वायव्ये चण्डभानवे। पूष्णेत्युत्तरतः पूज्यमानन्दायेत्यतः परम्॥ ७॥
कर्णिकायां च पुरुषं स्थाप्य सर्वात्मनेति च। शुक्लवस्त्रैः समावेष्ट्य भक्ष्यैर्माल्यफलादिभिः॥ ८॥

ईश्वरने कहा—ब्रह्मन्! अब मैं परम पुण्यप्रदायिनी मन्दारसप्तमीका वर्णन करता हूँ, जो समस्त पापोंकी विनाशिनी एवं सम्पूर्ण कामनाओंकी प्रदात्री है। बुद्धिमान् व्रतीको चाहिये कि वह माघ मासमें शुक्लपक्षकी पञ्चमी तिथिको थोड़ा आहार करके ( रात्रिमें शयन करे )। पुनः षष्ठी तिथिको प्रातःकाल दातून कर दिनभर उपवास करे। रातमें ब्राह्मणोंकी पूजा कर मन्दार-पुष्पका भक्षण करे और सो जाय। तत्पश्चात् सप्तमी* तिथिको प्रातःकाल उठकर स्नान आदि नित्यकर्म सम्पादन कर अपनी शक्तिके अनुसार पुनः ब्राह्मणोंको भोजन करावे। तदनन्तर सोनेके आठ मन्दार-पुष्प और एक पुरुषाकार सुन्दर मूर्ति बनवाये, जिसके हाथमें कमल सुशोभित हो। पुनः ताँबेके पात्रमें काले तिलोंसे अष्टदल कमलकी रचना करे। तदनन्तर स्वर्णमय मन्दार-पुष्पोंद्वारा ( कमलके आठो दलोंपर वक्ष्यमाण मन्त्रोंका उच्चारण करके सूर्यका आवाहन करे। यथा—)'भास्कराय नमः'से पूर्वदलपर, 'सूर्याय नमः'से अग्निकोणस्थित दलपर, 'अर्काय नमः'से दक्षिणदलपर, 'अर्यम्णे नमः'से नैर्ऋत्यकोणवाले दलपर, 'वेदधाम्ने नमः'से पश्चिमदलपर, 'चण्डभानवे नमः'

* पाद्म, वायव्यादि विविध माघमाहात्म्यों एवं 'व्रतरत्न' ( पृ० २७२-८० ) आदि व्रतनिबन्धोंमें इसी तिथिको अचला-सप्तमी, रथसप्तमी, रथाङ्गसप्तमी, महासप्तमी आदि कहकर अन्य व्रत भी निर्दिष्ट हैं।

*

से वायव्यकोणस्थित दलपर, 'पूर्णे नमः'से उत्तरदलपर, उसके बाद 'आनन्दाय नमः'से ईशानकोणवाले दलपर स्थापना करके कर्णिकाके मध्यमें 'सर्वात्मने नमः' कहकर पुरुषाकार मूर्तिको स्थापित कर दे तथा उसे श्वेत वस्त्रोंसे ढँककर खाद्य पदार्थ ( नैवेद्य ), पुष्पमाला, फल आदिसे उसकी अर्चना करे ॥ १–८ ॥

एवमभ्यर्च्य तत् सर्वं दद्याद् वेदविदे पुनः। भुञ्जीतातैललवणं वाग्यतः प्राङ्मुखो गृही ॥ ९ ॥
अनेन विधिना सर्वं सप्तम्यां मासि मासि च। कुर्यात् संवत्सरं यावद् वित्तशाठ्यविवर्जितः ॥ १० ॥
एतदेव व्रतान्ते तु निधाय कलशोपरि। गोभिर्विभवतः सार्धं दातव्यं भूतिमिच्छता ॥ ११ ॥
नमो मन्दारनाथाय मन्दारभवनाय च। त्वं रवे तारयस्वास्मानस्मात् संसारसागरात् ॥ १२ ॥
अनेन विधिना यस्तु कुर्यान्मन्दारसप्तमीम्। विपाप्मा स सुखी मर्त्यः कल्पं च दिवि मोदते ॥ १३ ॥
इमामघौघपटलभीषणध्वान्तदीपिकाम्। गच्छन् संगृह्य संसारशर्वर्यां न स्खलेन्नरः ॥ १४ ॥
मन्दारसप्तमीमेतामीप्सितार्थफलप्रदाम्। यः पठेच्छृणुयाद् वापि सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १५ ॥

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे मन्दारसप्तमीव्रतं नामैकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥*

इस प्रकार गृहस्थ व्रती उस मूर्तिका पूजन कर पुनः वह सारा सामान वेदज्ञ ब्राह्मणको दान कर दे और स्वयं पूर्वाभिमुख बैठकर मौन हो तेल और नमकरहित अन्नका भोजन करे। इस प्रकार एक वर्षतक प्रत्येक मासमें शुक्लपक्षकी सप्तमी तिथिको इसी विधिके अनुसार सारा कार्य सम्पन्न करनेका विधान है। इसमें कृपणता नहीं करनी चाहिये। व्रतकी समाप्तिके समय वैभवकी अभिलाषा रखनेवाला व्रती उस मूर्तिको कलशके ऊपर रखकर अपनी धन-सम्पत्तिके अनुसार प्रस्तुत की गयी गौओंके साथ दान कर दे। ( उस समय सूर्य भगवान्से यों प्रार्थना करे— ) 'सूर्यदेव ! आप मन्दारके स्वामी हैं और मन्दार आपका भवन है, आपको नमस्कार है। आप हमलोगोंका इस संसाररूपी सागरसे उद्धार कीजिये।' जो मानव उपर्युक्त विधिके अनुसार इस मन्दारसप्तमी-व्रतका अनुष्ठान करता है, वह पापरहित हो सुखपूर्वक एक कल्पतक स्वर्गमें आनन्दका उपभोग करता है। यह सप्तमी-व्रत पाप-समूहरूप परदेसे आच्छादित होनेके कारण प्रकट हुए भयंकर अन्धकारके लिये दीपकके समान है, जो मनुष्य इसे हाथमें लेकर संसाररूपी रात्रिमें यात्रा करता है, वह कहीं पथभ्रष्ट नहीं होता। जो मनुष्य अभीष्ट फल प्रदान करनेवाली इस मन्दारसप्तमीके व्रतको पढ़ता अथवा श्रवण करता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है ॥ ९–१५ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें मन्दारसप्तमी-व्रत नामक उन्यासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ७९ ॥

# अस्सीवाँ अध्याय

## शुभसप्तमी-व्रतकी विधि और उसका माहात्म्य

श्रीभगवानुवाच

अथान्यामपि वक्ष्यामि शोभनां शुभसप्तमीम्। यामुपोष्य नरो रोगशोकदुःखैः प्रमुच्यते ॥ १ ॥
पुण्ये चाश्वयुजे मासि कृतस्नानजपः शुचिः। वाचयित्वा ततो विप्रानारभेच्छुभसप्तमीम् ॥ २ ॥
कपिलां पूजयेद् भक्त्या गन्धमाल्यानुलेपनैः।
नमामि सूर्यसम्भूतामशेषभुवनालयाम्। त्वामहं शुभकल्याणशरीरां सर्वसिद्धये ॥ ३ ॥
अथ कृत्वा तिलप्रस्थं ताम्रपात्रेण संयुतम्। काञ्चनं वृषभं तद्वद् गन्धमाल्यगुडान्वितम् ॥ ४ ॥
फलैर्नानाविधैर्भक्ष्यैर्घृतपायससंयुतैः। दद्याद् विकालवेलायामर्यमा प्रीयतामिति ॥ ५ ॥

पञ्चगव्यं च सम्प्राश्य स्वपेद् भूमावसंस्तरे। ततः प्रभाते संजाते भक्त्या सम्पूजयेद् द्विजान्॥ ६॥
अनेन विधिना दद्यान्मासि मासि सदा नरः। वाससी वृषभं हैमं तद्वद् गां काञ्चनोद्भवाम्॥ ७॥
संवत्सरान्ते शयनमिक्षुदण्डगुडान्वितम्। सोपधानकविश्रामं भाजनासनसंयुतम्॥ ८॥
ताम्रपात्रे तिलप्रस्थं सौवर्णं वृषभं तथा। दद्याद् वेदविदे सर्वं विश्वात्मा प्रीयतामिति॥ ९॥

श्रीभगवान्ने कहा—ब्रह्मन्! अब मैं एक अन्य सुन्दर शुभसप्तमी-व्रतका वर्णन कर रहा हूँ, जिसका अनुष्ठान करके मनुष्य रोग, शोक और दुःखसे मुक्त हो जाता है। पुण्यप्रद आश्विन मासमें (शुक्लपक्षकी सप्तमी तिथिको) व्रती स्नान, जप आदि नित्यकर्म करके पवित्र हो जाय, तब ब्राह्मणोंद्वारा स्वस्तिवाचन कराकर शुभसप्तमी-व्रत आरम्भ करे। उस समय सुगन्धित पदार्थ, पुष्पमाला और चन्दन आदिसे भक्तिपूर्वक कपिला गौकी पूजा करके यों प्रार्थना करे—'देवि! आप सूर्यसे उत्पन्न हुई हैं और सम्पूर्ण लोकोंकी आश्रयभूता हैं तथा आपका शरीर सुशोभन मङ्गलोंसे युक्त है, आपको मैं समस्त सिद्धियोंकी प्राप्तिके निमित्त नमस्कार करता हूँ।' तदनन्तर एक ताँबेके पात्रमें एक सेर तिल भर दे और एक बड़े आसनपर स्वर्णमय वृषभको स्थापित कर उसकी चन्दन, माला, गुड़, फल, घी एवं दूधसे बने हुए नाना प्रकारके नैवेद्य आदिसे पूजा करे। फिर सायंकाल 'अर्यमा प्रसन्न हों' यों कहकर उसे दान कर दे। रातमें पञ्चगव्य खाकर बिना बिछावनके ही भूमिपर शयन करे। प्रातःकाल होनेपर भक्तिपूर्वक ब्राह्मणोंकी पूजा करे। व्रती मनुष्यको प्रत्येक मासमें सदा इसी विधिसे दो वस्त्र, स्वर्णमय बैल और स्वर्णनिर्मित गौका दान करना चाहिये। इस प्रकार वर्षकी समाप्तिमें विश्राम-हेतु गद्दा, तकिया आदिसे युक्त एवं ईख, गुड़, बर्तन, आसन आदिसे सम्पन्न शय्या तथा एक सेर तिलसे परिपूर्ण ताँबेके पात्रके ऊपर स्थापित स्वर्णमय वृषभ आदि सारा उपकरण वेदज्ञ ब्राह्मणको दान कर दे और यों कहे—'विश्वात्मा मुझपर प्रसन्न हो'॥ १—९॥

अनेन विधिना विद्वान् कुर्याद् यः शुभसप्तमीम्। तस्य श्रीर्विपुला कीर्तिर्भवेज्जन्मनि जन्मनि॥ १०॥
अप्सरोगणगन्धर्वैः पूज्यमानः सुरालये।
वसेद् गणाधिपो भूत्वा यावदाभूतसम्प्लवम्। कल्पादाववतीर्णस्तु सप्तद्वीपाधिपो भवेत्॥ ११॥
ब्रह्महत्यासहस्रस्य भ्रूणहत्याशतस्य च। नाशायालमियं पुण्या पठ्यते शुभसप्तमी॥ १२॥
इमां पठेद् यः शृणुयान्मुहूर्तं पश्येत् प्रसङ्गादपि दीयमानम्।
सोऽप्यत्र सर्वाघविमुक्तदेहः प्राप्नोति विद्याधरनायकत्वम्॥ १३॥
यावत् समाः सप्त नरः करोति यः सप्तमीं सप्तविधानयुक्ताम्।
स सप्तलोकाधिपतिः क्रमेण भूत्वा पदं याति परं मुरारेः॥ १४॥

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे शुभसप्तमीव्रतं नामाशीतितमोऽध्यायः॥ ८०॥*

जो विद्वान् पुरुष उपर्युक्त विधिके अनुसार इस शुभसप्तमी-व्रतका अनुष्ठान करता है, उसे प्रत्येक जन्ममें विपुल लक्ष्मी और कीर्ति प्राप्त होती है। वह देवलोकमें गणाधीश्वर होकर अप्सराओं और गन्धर्वोंद्वारा पूजित होता हुआ प्रलयपर्यन्त निवास करता है। पुनः कल्पके आदिमें उत्पन्न होकर सातों द्वीपोंका अधिपति होता है। यह पुण्यप्रद शुभसप्तमी एक हजार ब्रह्महत्या और एक सौ भ्रूणहत्याके पापोंका नाश करनेके लिये समर्थ कही जाती है। जो मनुष्य इस व्रत-विधिको पढ़ता अथवा दो घड़ीतक सुनता है तथा प्रसङ्गवश दिये जाते हुए दानको देखता है, वह भी इस लोकमें समस्त पापोंसे विमुक्त होकर परलोकमें विद्याधरोंके

अधिनायक-पदको प्राप्त करता है। जो मनुष्य उपर्युक्त सात विधानोंसे युक्त इस सप्तमी-व्रतका सात वर्षोंतक अनुष्ठान करता है, वह क्रमशः सातों लोकोंका अधिपति होकर अन्तमें भगवान् विष्णुके परमपदको प्राप्त हो जाता है॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें शुभसप्तमी-व्रत नामक अस्सीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ८०॥

# इक्यासीवाँ अध्याय

## विशोकद्वादशी-व्रतकी विधि

मनुरुवाच

किमभीष्टवियोगशोकसंघादलमुद्धर्तुमुपोषणं व्रतं वा।
विभवोद्भवकारि भूतलेऽस्मिन् भवभीतेरपि सूदनं च पुंसः॥ १॥

**मनुने पूछा**—भगवन्! इस भूतलपर कौन ऐसा उपवास या व्रत है, जो मनुष्यके अभीष्ट वस्तुओंके वियोगसे उत्पन्न शोकसमूहसे उद्धार करनेमें समर्थ, धन-सम्पत्तिकी वृद्धि करनेवाला और संसार-भयका नाशक है॥ १॥

मत्स्य उवाच

परिपृष्टमिदं जगत्प्रियं ते विबुधानामपि दुर्लभं महत्त्वात्।
तव भक्तिमतस्तथापि वक्ष्ये व्रतमिन्द्रासुरमानवेषु गुह्यम्॥ २॥
पुण्यमाश्वयुजे मासि विशोकद्वादशीव्रतम्। दशम्यां लघुभुग्विद्वानारभेन्नियमेन तु॥ ३॥
उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा दन्तधावनपूर्वकम्।
एकादश्यां निराहारः सम्यगभ्यर्च्य केशवम्। श्रियं वाभ्यर्च्य विधिवद् भोक्ष्येऽहं चापरेऽहनि॥ ४॥
एवं नियमकृत् सुप्त्वा प्रातरुत्थाय मानवः।
स्नानं सर्वौषधैः कुर्यात् पञ्चगव्यजलेन तु। शुक्लमाल्याम्बरधरः पूजयेच्छ्रीशमुत्पलैः॥ ५॥
विशोकाय नमः पादौ जङ्घे च वरदाय वै। श्रीशाय जानुनी तद्वदूरू च जलशायिने॥ ६॥
कंदर्पाय नमो गुह्यं माधवाय नमः कटिम्। दामोदरायेत्युदरं पार्श्वे च विपुलाय वै॥ ७॥
नाभिं च पद्मनाभाय हृदयं मन्मथाय वै। श्रीधराय विभोर्वक्षः करौ मधुजिते नमः॥ ८॥
चक्रिणे वामबाहुं च दक्षिणं गदिने नमः। वैकुण्ठाय नमः कण्ठमास्यं यज्ञमुखाय वै॥ ९॥
नासामशोकनिधये वासुदेवाय चक्षुषी। ललाटं वामनायेति हरयेति पुनर्भ्रुवौ॥ १०॥
अलकान् माधवायेति किरीटं विश्वरूपिणे। नमः सर्वात्मने तद्वच्छिर इत्यभिपूजयेत्॥ ११॥

**मत्स्यभगवान्‌ने कहा**—राजर्षे! तुमने जिस व्रतके विषयमें प्रश्न किया है, यह समस्त जगत्को प्रिय तथा इतना महत्त्वशाली है कि देवताओंके लिये भी दुर्लभ है। यद्यपि इन्द्र, असुर और मानव भी उसे नहीं जानते, तथापि तुम-जैसे भक्तिमान्‌के प्रति मैं अवश्य इसका वर्णन करूँगा। उस पुण्यप्रद व्रतका नाम विशोकद्वादशी-व्रत है। विद्वान् व्रतीको आश्विन मासमें दशमी तिथिको अल्प आहार करके नियमपूर्वक इस व्रतका आरम्भ करना चाहिये। पुनः एकादशीके दिन व्रती मानव उत्तराभिमुख अथवा पूर्वाभिमुख बैठकर दातून करे, फिर (स्नान आदिसे निवृत्त होकर) निराहार रहकर भगवान् केशव और लक्ष्मीकी विधिपूर्वक भलीभाँति पूजा करे और 'दूसरे दिन भोजन करूँगा'—ऐसा नियम लेकर रात्रिमें शयन करे। प्रातःकाल उठकर सर्वौषधि और पञ्चगव्य मिले हुए जलसे स्नान करे तथा श्वेत वस्त्र और श्वेत पुष्पोंकी माला धारण करके भगवान् विष्णुकी कमल-पुष्पों-

द्वारा पूजा करे। ( पूजनकी विधि इस प्रकार है—) 'विशोकाय नमः' से दोनों चरणोंका, 'वरदाय नमः' से दोनों जङ्घाओंका, 'श्रीशाय नमः' से दोनों जानुओंका, 'जलशायिने नमः' से दोनों ऊरुओंका, 'कंदर्पाय नमः' से गुह्यप्रदेशका, 'माधवाय नमः'से कटिप्रदेशका, 'दामोदराय नमः'से उदरका, 'विपुलाय नमः' से दोनों पार्श्वभागोंका, 'पद्मनाभाय नमः' से नाभिका, 'मन्मथाय नमः' से हृदयका, 'श्रीधराय नमः' से विष्णुके वक्षःस्थलका, 'मधुजिते नमः' से दोनों हाथोंका, 'चक्रिणे नमः' से बायीं भुजाका, 'गदिने नमः' से दाहिनी भुजाका, 'वैकुण्ठाय नमः' से कण्ठका, 'यज्ञमुखाय नमः' से मुखका, 'अशोकनिधये नमः' से नासिकाका, 'वासुदेवाय नमः' से दोनों नेत्रोंका, 'वामनाय नमः' से ललाटका, 'हरये नमः' से दोनों भौंहोंका, 'माधवाय नमः' से बालोंका, 'विश्वरूपिणे नमः' से किरीटका और 'सर्वात्मने नमः' से सिरका पूजन करना चाहिये ॥ २—११ ॥

एवं सम्पूज्य गोविन्दं फलमाल्यानुलेपनैः। ततस्तु मण्डलं कृत्वा स्थण्डिलं कारयेन्मुदा ॥ १२ ॥
चतुरस्रं समन्ताच्च रत्निमात्रमुदक्प्लवम्। श्लक्ष्णं हृद्यं च परितो वप्रत्रयसमावृतम् ॥ १३ ॥
त्र्यङ्गुलेनोच्छ्रिता वप्रास्तद्विस्तारस्तु द्व्यङ्गुलः। स्थण्डिलस्योपरिष्टाच्च भित्तिरष्टाङ्गुला भवेत् ॥ १४ ॥
नदीवालुकया शूर्पे लक्ष्म्याः प्रतिकृतिं न्यसेत्। स्थण्डिले शूर्पमारोप्य लक्ष्मीमित्यर्चयेद् बुधः ॥ १५ ॥
नमो देव्यै नमः शान्त्यै नमो लक्ष्म्यै नमः श्रियै। नमः पुष्ट्यै नमस्तुष्ट्यै वृष्ट्यै हृष्ट्यै नमो नमः ॥ १६ ॥
विशोका दुःखनाशाय विशोका वरदास्तु मे। विशोका चास्तु सम्पत्त्यै विशोका सर्वसिद्धये ॥ १७ ॥
ततः शुक्लाम्बरैः शूर्पं वेष्ट्य सम्पूजयेत् फलैः। वस्त्रैर्नानाविधैस्तद्वत् सुवर्णकमलेन च ॥ १८ ॥
रजनीषु च सर्वासु पिबेद् दर्भोदकं बुधः। ततस्तु गीतनृत्यादि कारयेत् सकलां निशाम् ॥ १९ ॥
यामत्रये व्यतीते तु सुप्त्वाप्युत्थाय मानवः। अभिगम्य च विप्राणां मिथुनानि तदार्चयेत् ॥ २० ॥
शक्तितस्त्रीणि चैकं वा वस्त्रमाल्यानुलेपनैः। शयनस्थानि पूज्यानि नमोऽस्तु जलशायिने ॥ २१ ॥
ततस्तु गीतवाद्येन रात्रौ जागरणे कृते। प्रभाते च ततः स्नानं कृत्वा दाम्पत्यमर्चयेत् ॥ २२ ॥
भोजनं च यथाशक्त्या वित्तशाठ्यविवर्जितः। भुक्त्वा श्रुत्वा पुराणानि तद् दिनं चातिवाहयेत् ॥ २३ ॥
अनेन विधिना सर्वं मासि मासि समाचरेत्।

इस प्रकार हर्षपूर्वक फल, पुष्पमाला और चन्दन आदिसे भगवान् गोविन्दका पूजन करनेके पश्चात् मण्डल बनाकर वेदीका निर्माण कराये। वह वेदी बीस अंगुल लम्बी-चौड़ी, चारों ओरसे चौकोर, उत्तरकी ओर ढालू, चिकनी, सुन्दर और तीन ओर वप्र ( परिधि ) से युक्त हो। वे वप्र तीन अङ्गुल ऊँचे और दो अङ्गुल चौड़े होने चाहिये। वेदीके ऊपर आठ अङ्गुलकी दीवाल बनायी जाय। तत्पश्चात् बुद्धिमान् व्रती सूपमें नदीकी वालुकासे लक्ष्मीकी मूर्ति अङ्कित करे और उस सूपको वेदीपर रखकर 'देव्यै नमः,' 'शान्त्यै नमः,' 'लक्ष्म्यै नमः,' 'श्रियै नमः', 'पुष्ट्यै नमः,' 'तुष्ट्यै नमः,' 'वृष्ट्यै नमः,' 'हृष्ट्यै नमः'के उच्चारणपूर्वक लक्ष्मीकी अर्चना करे और यों प्रार्थना करे—'विशोका (लक्ष्मीदेवी) मेरे दुःखोंका नाश करें, विशोका मेरे लिये वरदायिनी हों, विशोका मुझे धन-सम्पत्ति दें और विशोका मुझे सम्पूर्ण सिद्धियाँ प्रदान करें।' तदनन्तर श्वेत वस्त्रोंसे सूपको परिवेष्टित कर नाना प्रकारके फलों, वस्त्रों और स्वर्णमय कमलसे लक्ष्मीकी पूजा करे। चतुर व्रती सभी रात्रियोंमें कुशोदक पान करे और सारी रात नाच-गान आदिका आयोजन करावे। तीन पहर रात व्यतीत होनेपर व्रती मनुष्य स्वयं नींद त्यागकर उठ पड़े और अपनी शक्तिके अनुसार शय्यापर सोते हुए तीन या एक द्विज-दम्पतिके पास जाकर वस्त्र, पुष्पमाला और चन्दन आदिसे 'जलशायिने नमोऽस्तु'—जलशायी भगवान्को नमस्कार है—यों कहकर उनकी पूजा करे। इस प्रकार रातमें गीत-वाद्य आदि कराकर जागरण करे तथा प्रातःकाल स्नान कर पुनः द्विज-दम्पतिका पूजन करे और कृपणता

छोड़कर अपनी सामर्थ्यके अनुकूल उन्हें भोजन करावे। फिर स्वयं भोजन करके पुराणोंकी कथाएँ सुनते हुए वह दिन व्यतीत करे। प्रत्येक मासमें इसी विधिसे सारा कार्य सम्पन्न करना चाहिये ॥ १२—२३ ॥

व्रतान्ते शयनं दद्याद् गुडधेनुसमन्वितम्। सोपधानकविश्रामं सास्तरावरणं शुभम् ॥ २४ ॥
यथा न लक्ष्मीर्देवेश त्वां परित्यज्य गच्छति। तथा सुरूपतारोग्यमशोकश्चास्तु मे सदा ॥ २५ ॥
यथा देवेन रहिता न लक्ष्मीर्जायते क्वचित्। तथा विशोकता मेऽस्तु भक्तिरग्र्या च केशवे ॥ २६ ॥
मन्त्रेणानेन शयनं गुडधेनुसमन्वितम्। शूर्पं च लक्ष्म्या सहितं दातव्यं भूतिमिच्छता ॥ २७ ॥
उत्पलं करवीरं च बाणमम्लानकुङ्कुमम्।
केतकी सिन्धुवारं च मल्लिका गन्धपाटला। कदम्बं कुब्जकं जातिः शस्तान्येतानि सर्वदा ॥ २८ ॥

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे विशोकद्वादशीव्रतं नामैकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥*

इस प्रकार व्रतकी समाप्तिके अवसरपर गद्दा, चादर, तकिया आदि उपकरणोंसे युक्त एक सुन्दर शय्या गुड-धेनुके साथ दान करके यो प्रार्थना करे—'देवेश! जिस प्रकार लक्ष्मी आपका परित्याग करके अन्यत्र नहीं जातीं, उसी प्रकार मुझे सदा सौन्दर्य, नीरोगता और निःशोकता प्राप्त हो। जैसे लक्ष्मी कहीं भी आपसे वियुक्त होकर नहीं प्रकट होतीं, वैसे ही मुझे भी विशोकता और भगवान् केशवके प्रति उत्तम भक्ति प्राप्त हो।' वैभवकी अभिलाषा रखनेवाले व्रतीको इस मन्त्रके उच्चारणके साथ गुड-धेनुसहित शय्या और लक्ष्मीसहित सूप दान कर देना चाहिये। इस व्रतमें कमल, करवीर (कनेर), बाण (नीलकुसुम या अगस्त्य वृक्षका पुष्प), ताजा (बिना कुम्हलाया हुआ) कुङ्कुम, केतकी (केवड़ा), सिन्दुवार, मल्लिका, गन्धपाटला, कदम्ब, कुब्जक और जाती—ये पुष्प सदा प्रशस्त माने गये हैं ॥ २४—२८ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें विशोकद्वादशी-व्रत नामक इक्यासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ८१ ॥

# बयासीवाँ अध्याय

## गुड-धेनुके* दानकी विधि और उसकी महिमा

मनुरुवाच

गुडधेनुविधानं मे समाचक्ष्व जगत्पते। किं रूपं केन मन्त्रेण दातव्यं तदिहोच्यताम् ॥ १ ॥

**मनुने पूछा**—जगत्पते! अब आप मुझे (अभी विशोक द्वादशीके प्रसङ्गमें निर्दिष्ट) गुड-धेनुका विधान बतलाइये। साथ ही उस गुड-धेनुका कैसा रूप होता है और उसे किस मन्त्रका पाठ करके दान करना चाहिये—यह भी बतलानेकी कृपा कीजिये ॥ १ ॥

मत्स्य उवाच

गुडधेनुविधानस्य यद् रूपमिह यत् फलम्। तदिदानीं प्रवक्ष्यामि सर्वपापविनाशनम् ॥ २ ॥
कृष्णाजिनं चतुर्हस्तं प्राग्ग्रीवं विन्यसेद् भुवि। गोमयेनानुलिप्तायां दर्भानास्तीर्य सर्वतः ॥ ३ ॥
लघ्वेणकाजिनं तद्वद् वत्सं च परिकल्पयेत्। प्राङ्मुखीं कल्पयेद् धेनुमुदक्पादां सवत्सकाम् ॥ ४ ॥
उत्तमा गुडधेनुः स्यात् सदा भारचतुष्टयम्। वत्सं भारेण कुर्वीत द्वाभ्यां वै मध्यमा स्मृता ॥ ५ ॥

* यह अध्याय पद्मपु० १। २१, वराहपुराण १०२, कृत्यकल्पतरु ५, दानकाण्ड पृ० १४१ तथा दानमयूख, दानसागरादिमें विशेष शुद्धरूपसे उद्धृत है। तदनुसार इसे भी शुद्ध किया गया है।

अर्धभारेण वत्सः स्यात् कनिष्ठा भारकेण तु । चतुर्थांशेन वत्सः स्याद् गृहवित्तानुसारतः ॥ ६ ॥
धेनुवत्सौ घृतास्यौ तौ सितसूक्ष्माम्बरावृतौ । शुक्तिकर्णाविक्षुपादौ शुचिमुक्ताफलेक्षणौ ॥ ७ ॥
सितसूत्रशिरालौ तौ सितकम्बलकम्बलौ । ताम्रगण्डकपृष्ठौ तौ सितचामररोमकौ ॥ ८ ॥
विद्रुमभ्रूयुगोपेतौ नवनीतस्तनावुभौ । क्षौमपुच्छौ कांस्यदोहाविन्द्रनीलकतारकौ ॥ ९ ॥
सुवर्णशृङ्गाभरणौ राजतैः खुरसंयुतौ ।
नानाफलसमायुक्तौ घ्राणगन्धकरण्डकौ । इत्येवं रचयित्वा तौ धूपदीपैरथार्चयेत् ॥ १० ॥

मत्स्यभगवान्ने कहा—राजर्षे ! इस लोकमें गुड-धेनुके विधानका जो रूप है और उसका दान करनेसे जो फल प्राप्त होता है, उसका मैं अब वर्णन कर रहा हूँ । वह समस्त पापोंका विनाशक है । गोबरसे लिपी-पुती भूमिपर सब ओरसे कुश बिछाकर उसपर चार हाथ लम्बा काला मृगचर्म स्थापित कर दे, जिसका अग्रभाग पूर्व दिशाकी ओर हो । उसी प्रकार एक छोटे मृगचर्म-में बछड़ेकी कल्पना करके उसीके निकट रख दे । फिर उसमें पूर्व मुख और उत्तर पैरवाली सवत्सा गौकी कल्पना करनी चाहिये । चार भार* गुडसे बनी हुई गुड-धेनु सदा उत्तम मानी गयी है । उसका बछड़ा एक भार गुडका बनाना चाहिये । दो भार गुडकी बनी हुई धेनु मध्यम कही गयी है । उसका बछड़ा आधा भार गुडका होना चाहिये । एक भार गुडकी बनी धेनु कनिष्ठा होती है, उसका बछड़ा चौथाई भार गुडका बनता है । तात्पर्य यह है कि अपने गृहकी सम्पत्तिके अनुसार इस ( गौ )का निर्माण कराना चाहिये । इस प्रकार गौ और बछड़ेकी कल्पना करके उन्हें श्वेत एवं महीन वस्त्रसे आच्छादित कर दे । फिर घीसे उनके मुखकी, सीपसे कानोंकी, गन्नेसे पैरोंकी, श्वेत मोतीसे नेत्रोंकी, श्वेत सूतसे नाड़ियोंकी, श्वेत कम्बलसे गल-कम्बलकी, लाल रंगके चिह्नसे पीठकी, श्वेत रंगके मृगपुच्छके बालोंसे रोएँकी, मूँगेसे दोनों भौंहोंकी, मक्खनसे दोनों स्तनोंकी, रेशमके धागेसे पूँछकी, काँसासे दोहनीकी, इन्द्रनीलमणिसे आँखोंकी तारिकाओं-की, सुवर्णसे सींगके आभूषणोंकी, चाँदीसे खुरोंकी और नाना प्रकारके फलोंसे नासापुटोंकी रचना कर धूप, दीप आदिद्वारा उनकी अर्चना करनेके पश्चात् यों प्रार्थना करे ॥ २—१० ॥

या लक्ष्मीः सर्वभूतानां या च देवेष्ववस्थिता । धेनुरूपेण सा देवी मम शान्तिं प्रयच्छतु ॥ ११ ॥
देहस्था या च रुद्राणी शंकरस्य सदा प्रिया । धेनुरूपेण सा देवी मम पापं व्यपोहतु ॥ १२ ॥
विष्णोर्वक्षसि या लक्ष्मीः स्वाहा या च विभावसोः । चन्द्रार्कशक्रशक्तिर्या धेनुरूपास्तु सा श्रिये ॥ १३ ॥
चतुर्मुखस्य या लक्ष्मीर्या लक्ष्मीर्धनदस्य च । लक्ष्मीर्या लोकपालानां सा धेनुर्वरदास्तु मे ॥ १४ ॥
स्वधा या पितृमुख्यानां स्वाहा यज्ञभुजां च या । सर्वपापहरा धेनुस्तस्माच्छान्तिं प्रयच्छ मे ॥ १५ ॥
एवमामन्त्र्य तां धेनुं ब्राह्मणाय निवेदयेत् । विधानमेतद् धेनूनां सर्वासामभिपठ्यते ॥ १६ ॥
यास्ताः पापविनाशिन्यः पठ्यन्ते दश धेनवः । तासां स्वरूपं वक्ष्यामि नामानि च नराधिप ॥ १७ ॥
प्रथमा गुडधेनुः स्याद् घृतधेनुस्तथापरा । तिलधेनुस्तृतीया तु चतुर्थी जलसंज्ञिता ॥ १८ ॥
क्षीरधेनुश्च विख्याता मधुधेनुस्तथापरा ।
सप्तमी शर्कराधेनुर्दधिधेनुस्तथाष्टमी । रसधेनुश्च नवमी दशमी स्यात् स्वरूपतः ॥ १९ ॥
कुम्भाः स्युर्द्रवधेनूनामितरासां तु राशयः । सुवर्णधेनुमप्यत्र केचिदिच्छन्ति मानवाः ॥ २० ॥
नवनीतेन रत्नैश्च तथान्ये तु महर्षयः । एतदेवं विधानं स्यात्त एवोपस्कराः स्मृताः ॥ २१ ॥
मन्त्रावाहनसंयुक्ताः सदा पर्वणि पर्वणि । यथाश्रद्धं प्रदातव्या भुक्तिमुक्तिफलप्रदाः ॥ २२ ॥

* दो हजार पल अर्थात् तीन मनके वजनको 'भार' कहते हैं ।

'जो समस्त प्राणिय तथा देवताओंमें निवास करने-वाली लक्ष्मी है, धेनुरूपसे वही देवी मुझे शान्ति प्रदान करें। जो सदा शंकरजीके वामाङ्गमें विराजमान रहती हैं तथा उनकी प्रिय पत्नी हैं, वे रुद्राणीदेवी धेनुरूपसे मेरे पापोंका विनाश करें। जो लक्ष्मी विष्णुके वक्षःस्थलपर विराजमान हैं, जो स्वाहारूपसे अग्निकी पत्नी हैं तथा जो चन्द्र, सूर्य और इन्द्रकी शक्तिरूपा हैं, वे ही धेनुरूपसे मेरे लिये सम्पत्तिदायिनी हो। जो ब्रह्माकी लक्ष्मी हैं, जो कुबेरकी लक्ष्मी हैं तथा जो लोकपालोंकी लक्ष्मी हैं, वे धेनुरूपसे मेरे लिये वरदायिनी हो। जो लक्ष्मी प्रधान पितरोके लिये स्वधारूपा हैं, जो यज्ञभोजी अग्नियोंके लिये स्वाहारूपा हैं, समस्त पापोंको हरनेवाली वे ही धेनुरूपा हैं, अतः मुझे शान्ति प्रदान करें।' इस प्रकार उस गुड-धेनुको आमन्त्रित कर उसे ब्राह्मणको निवेदित कर दे। यही विधान घृत-तिल आदि सम्पूर्ण धेनुओंके दानके लिये कहा जाता है। नरेश्वर! अब जो दस पापविनाशिनी गौएँ बतलायी जाती हैं, उनका नाम और स्वरूप बतला रहा हूँ। पहली गुड-धेनु, दूसरी घृत-धेनु, तीसरी तिल-धेनु, चौथी जल-धेनु, पाँचवीं सुप्रसिद्ध क्षीर-धेनु, छठी मधु-धेनु, सातवीं शर्करा-धेनु, आठवीं दधि-धेनु, नवीं रस-धेनु और दसवीं स्वरूपतः प्रत्यक्ष धेनु है। द्रव (बहनेवाले) पदार्थोंसे बननेवाली गौओंका स्वरूप घट है और अद्रव पदार्थोंसे बननेवाली गौओका उन-उन पदार्थोंकी राशि है। इस लोकमें कुछ मानव सुवर्ण-धेनुकी तथा अन्य महर्षिगण नवनीत (मक्खन) और रत्नोसे भी गौकी रचनाकी इच्छा करते हैं। परंतु सभीके लिये यही विधान है और ये ही सामग्रियाँ भी हैं। सदा पर्व-पर्वपर अपनी श्रद्धाके अनुसार मन्त्रोच्चारणपूर्वक आवाहन-सहित इन गौओका दान करना चाहिये; क्योंकि ये सभी भोग और मोक्षरूप फल प्रदान करनेवाली हैं॥ ११—२२॥

गुडधेनुप्रसङ्गेन सर्वास्तावन्मयोदिताः। अशेषयज्ञफलदाः सर्वाः पापहराः शुभाः॥ २३॥
व्रतानामुत्तमं यस्माद् विशोकद्वादशीव्रतम्। तदङ्गत्वेन चैवात्र गुडधेनुः प्रशस्यते॥ २४॥
अयने विषुवे पुण्ये व्यतीपातेऽथवा पुनः। गुडधेन्वादयो देयास्तूपरागादिपर्वसु॥ २५॥
विशोकद्वादशी चैषा पुण्या पापहरा शुभा। यामुपोष्य नरो याति तद् विष्णोः परमं पदम्॥ २६॥
इह लोके च सौभाग्यमायुरारोग्यमेव च। वैष्णवं पुरमाप्नोति मरणे च स्मरन् हरिम्॥ २७॥
नवार्बुदसहस्राणि दश चाष्टौ च धर्मवित्। न शोकदुःखदौर्गत्यं तस्य संजायते नृप॥ २८॥
नारी वा कुरुते या तु विशोकद्वादशीव्रतम्। नृत्यगीतपरा नित्यं सापि तत्फलमाप्नुयात्॥ २९॥
तस्मादग्रे हरेर्नित्यमनन्तं गीतवादनम्। कर्तव्यं भूतिकामेन भक्त्या तु परया नृप॥ ३०॥
इति पठति य इत्थं यः शृणोतीह सम्यङ् मधुमुरनरकारेरर्चनं यश्च पश्येत्।
मतिमपि च जनानां यो ददातीन्द्रलोके वसति स विबुधौघैः पूज्यते कल्पमेकम्॥ ३१॥

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे विशोकद्वादशीव्रतं नाम द्व्यशीतितमोऽध्यायः॥ ८२॥*

इस प्रकार गुड-धेनुके वर्णन-प्रसङ्गसे मैंने सभी धेनुओंका वर्णन कर दिया। ये सभी सम्पूर्ण यज्ञोंका फल प्रदान करनेवाली, कल्याणकारिणी और पापहारिणी हैं। चूँकि इस लोकमें विशोकद्वादशी-व्रत सभी व्रतोंमें श्रेष्ठ माना गया है, इसलिये उसका अङ्ग होनेके कारण गुड-धेनु भी प्रशस्त मानी गयी है। उत्तरायण और दक्षिणायनके दिन, पुण्यप्रद विषुव योग, व्यतीपातयोग अथवा सूर्य-चन्द्रके ग्रहण आदि पर्वोंपर इन गुड-धेनु आदि गौओका दान करना चाहिये। यह विशोकद्वादशी पुण्यदायिनी, पापहारिणी और मङ्गलकारिणी है। इसका व्रत करके मनुष्य विष्णुके परमपदको प्राप्त हो जाता है तथा इस लोकमें सौभाग्य, नीरोगता और दीर्घायुका

उपभोग करके मरनेपर श्रीहरिका स्मरण करता हुआ विष्णुलोकको चला जाता है। धर्मज्ञ नरेश! उसे नौ अरब अठारह हजार वर्षोंतक शोक, दुःख और दुर्गतिकी प्राप्ति नहीं होती। अथवा जो स्त्री नित्य नाच-गानमें तत्पर रहकर इस विशोकद्वादशी-व्रतका अनुष्ठान करती है, उसे भी वही पूर्वोक्त फल प्राप्त होता है। राजन्! इसलिये वैभवकी अभिलाषा रखनेवाले पुरुषको उत्कृष्ट भक्तिके साथ श्रीहरिके समक्ष नित्य-निरन्तर गायन-वादनका आयोजन करना चाहिये। इस प्रकार जो मनुष्य इस व्रत-विधानको पढ़ता अथवा श्रवण करता है एवं मधु, मुर और नरक नामक राक्षसोंके शत्रु श्रीहरिके पूजनको भलीभाँति देखता है तथा वैसा करनेके लिये लोगोंको सम्मति देता है, वह इन्द्रलोकमें वास करता है और एक कल्पतक देवगणोंद्वारा पूजित होता है ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें विशोकद्वादशीव्रत नामक बयासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ८२ ॥

# तिरासीवाँ अध्याय

## पर्वतदानके दस भेद, धान्यशैलके दानकी विधि और उसका माहात्म्य

नारद उवाच

**भगवञ् श्रोतुमिच्छामि दानमाहात्म्यमुत्तमम्। यदक्षयं परे लोके देवर्षिगणपूजितम् ॥ १ ॥**

नारदजीने पूछा—भगवन्! अब मैं विविध दानोंके उत्तम माहात्म्यको श्रवण करना चाहता हूँ, जो देवगणों एवं ऋषिसमूहोंद्वारा पूजित और परलोकमें अक्षय फल देनेवाला है ॥ १ ॥

उमापतिरुवाच

**मेरोः प्रदानं वक्ष्यामि दशधा मुनिपुङ्गव। यत्प्रदानान्नरो लोकानाप्नोति सुरपूजितान् ॥ २ ॥**
**पुराणेषु च वेदेषु यज्ञेष्वायतनेषु च। न तत्फलमधीतेषु कृतेष्विह यदश्नुते ॥ ३ ॥**
**तस्माद् विधानं वक्ष्यामि पर्वतानामनुक्रमात्। प्रथमो धान्यशैलः स्याद् द्वितीयो लवणाचलः ॥ ४ ॥**
**गुडाचलस्तृतीयस्तु चतुर्थो हेमपर्वतः। पञ्चमस्तिलशैलः स्यात् षष्ठः कार्पासपर्वतः ॥ ५ ॥**
**सप्तमो घृतशैलश्च रत्नशैलस्तथाष्टमः। राजतो नवमस्तद्वद् दशमः शर्कराचलः ॥ ६ ॥**
**वक्ष्ये विधानमेतेषां यथावदनुपूर्वशः। अयने विषुवे पुण्ये व्यतीपाते दिनक्षये ॥ ७ ॥**
**शुक्लपक्षे तृतीयायामुपरागे शशिक्षये। विवाहोत्सवयज्ञेषु द्वादश्यामथ वा पुनः ॥ ८ ॥**
**शुक्लायां पञ्चदश्यां वा पुण्यर्क्षे वा विधानतः। धान्यशैलादयो देया यथाशास्त्रं विजानता ॥ ९ ॥**
**तीर्थेष्वायतने वापि गोष्ठे वा भवनाङ्गणे।**
**मण्डपं कारयेद् भक्त्या चतुरस्रमुदङ्मुखम्। प्रागुदक्प्रवणं तद्वत् प्राङ्मुखं च विधानतः ॥ १० ॥**
**गोमयेनानुलिप्तायां भूमावास्तीर्य वै कुशान्। तन्मध्ये पर्वतं कुर्याद् विष्कम्भपर्वतान्वितम् ॥ ११ ॥**
**धान्यद्रोणसहस्रेण भवेद् गिरिरिहोत्तमः। मध्यमः पञ्चशतिकः कनिष्ठः स्यात् त्रिभिः शतैः ॥ १२ ॥**

उमापतिने कहा—मुनिपुङ्गव! मैं मेरु-( पर्वत ) दानके दस भेदोंको बतला रहा हूँ, जिनका दान करनेसे मनुष्य देवपूजित लोकोंको प्राप्त करता है। उसे इस लोकमें जिस फलकी प्राप्ति होती है, वह वेदों और पुराणोंके अध्ययनसे, यज्ञानुष्ठानसे और देव-मन्दिर आदिके निर्माणसे भी नहीं प्राप्त होता। इसलिये अब मैं पर्वतोंके क्रमसे उनके विधानका वर्णन कर रहा हूँ। ( उनके नाम हैं—) पहला धान्यशैल, दूसरा लवणाचल, तीसरा गुडाचल, चौथा हेमपर्वत, पाँचवाँ तिलशैल, छठा कार्पासपर्वत, सातवाँ घृतशैल, आठवाँ

रत्नशैल, नवाँ रजतशैल और दसवाँ शर्कराचल । इनका विधान यथार्थरूपसे क्रमशः बतला रहा हूँ । सूर्यके उत्तरायण और दक्षिणायनके समय, पुण्यमय विषुवयोगमें, व्यतीपातयोगमें, ग्रहणके समय सूर्य अथवा चन्द्रमाके अदृश्य हो जानेपर, शुक्लपक्षकी तृतीया, द्वादशी अथवा पूर्णिमा तिथिके दिन, विवाह, उत्सव और यज्ञके अवसरोंपर तथा पुण्यप्रद शुभ नक्षत्रके योगमें विद्वान् दाताको शास्त्रादेशानुसार विधिपूर्वक धान्यशैल आदि पर्वतदानोंको करना चाहिये । इसके लिये तीर्थोंमें, देवमन्दिरमें, गोशालामें अथवा अपने घरके आँगनमें ही भक्तिपूर्वक विधि-विधानके साथ एक चौकोर मण्डपका निर्माण करावे; उसमें उत्तर और पूर्व दिशामें दो दरवाजे हों और उसकी भूमि पूर्वोत्तर दिशामें ढालू हो । उस मण्डपकी गोबरसे लिपी-पुती भूमिपर कुश बिछाकर उसके बीचमें विष्कम्भपर्वतसहित* देय पदार्थकी पर्वताकार राशि लगा दे । इस विषयमें एक हजार द्रोण† अन्नका पर्वत उत्तम, पाँच सौ द्रोणका मध्यम और तीन सौ द्रोणका कनिष्ठ माना जाता है ॥ २—१२ ॥

मेरुर्महाव्रीहिमयस्तु मध्ये सुवर्णवृक्षत्रयसंयुतः स्यात् ।
पूर्वेण मुक्ताफलवज्रयुक्तो याम्येन गोमेदकपुष्परागैः ॥ १३ ॥
पश्चाच्च गारुत्मतनीलरत्नैः सौम्येन वैदूर्यसरोजरागैः ।
श्रीखण्डखण्डैरभितः प्रवालैर्लतान्वितः शुक्तिशिलातलः स्यात् ॥ १४ ॥
ब्रह्माथ विष्णुर्भगवान् पुरारिर्दिवाकरोऽप्यत्र हिरण्मयः स्यात् ।
मूर्धन्यवस्थानममत्सरेण कार्यं त्वनेकैश्च पुनर्द्विजौघैः ॥ १५ ॥
चत्वारि शृङ्गाणि च राजतानि नितम्बभागेष्वपि राजतः स्यात् ।
तथेक्षुवंशावृतकन्दरस्तु घृतोदकप्रस्रवणैश्च दिक्षु ॥ १६ ॥
शुक्लाम्बराण्यम्बुधरावली स्यात् पूर्वेण पीतानि च दक्षिणेन ।
वासांसि पश्चादथ कर्बुराणि रक्तानि चैवोत्तरतो घनाली ॥ १७ ॥
रौप्यान् महेन्द्रप्रमुखांस्तथाष्टौ संस्थाप्य लोकाधिपतीन् क्रमेण ।
नानाफलाली च समन्ततः स्यान्मनोरमं माल्यविलेपनं च ॥ १८ ॥
वितानकं चोपरि पञ्चवर्णमम्लानपुष्पाभरणं सितं च ।
इत्थं निवेश्यामरशैलमग्र्यं मेरोस्तु विष्कम्भगिरीन् क्रमेण ॥ १९ ॥
तुरीयभागेन चतुर्दिशं च संस्थापयेत् पुष्पविलेपनाढ्यान् ।
पूर्वेण मन्दरमनेकफलावलीभिर्युक्तं यवैः कनकभद्रकदम्बचिह्नैः ॥ २० ॥
कामेन काञ्चनमयेन विराजमानमाकारयेत् कुसुमवस्त्रविलेपनाढ्यम् ।
क्षीरारुणोदसरसाथ वनेन चैवं रौप्येण शक्तिघटितेन विराजमानम् ॥ २१ ॥

महान् धान्यराशिसे बने हुए मेरु पर्वतको मध्यमें तीन स्वर्णमय वृक्षोंसे युक्त कर, पूर्व दिशामें मोती और हीरेसे, दक्षिण दिशामें गोमेद और पुष्पराग ( पुखराज ) से, पश्चिम दिशामें गारुत्मत ( पन्ना ) और नीलम मणिसे, उत्तर दिशामें वैदूर्य और पद्मराग मणिसे तथा चारों ओर चन्दनके टुकड़ों और मूँगेसे सुशोभित कर दे । उसे लताओंसे परिवेष्टित तथा सीपीके शिला-खण्डोसे सुसज्जित कर दिया जाय । पुनः यजमान गर्वरहित होकर अनेकों द्विजसमूहोंके साथ उस पर्वतके मूर्धा-स्थानपर ब्रह्मा, भगवान् विष्णु, शंकर और सूर्यकी

*—सुमेरुगिरिके चारों ओर स्थित मन्दर, गन्धमादन, विपुल और सुपार्श्व नामक पर्वतोंको 'विष्कम्भ-पर्वत' कहा जाता है । †—बत्तीस सेरका एक प्राचीन मान ।

स्वर्णमयी मूर्ति स्थापित करे। उसमें चाँदीके चार शिखर बनाये जायँ, जिनके नितम्बभाग भी चाँदीके ही बने हों। उसी प्रकार चारों दिशाओंमें गन्ना और बाँससे ढकी हुई कन्दराएँ तथा घी और जलके झरने भी बनाये जायँ। पुनः पूर्व दिशामें श्वेत वस्त्रोंसे, दक्षिण दिशामें पीले वस्त्रोंसे, पश्चिम दिशामें चितकबरे वस्त्रोंसे और उत्तर दिशामें लाल वस्त्रोसे बादलोंकी पङ्क्तियाँ बनायी जायँ। फिर चाँदीके बने हुए महेन्द्र आदि आठों लोकपालोंको क्रमशः स्थापित करे और उस पर्वतके चारों ओर अनेकों प्रकारके फल, मनोरम पुष्पमालाएँ और चन्दन भी रख दे। उसके ऊपर पँचरंगा चँदोवा लगा दे और उसे खिले हुए श्वेत पुष्पोंसे विभूषित कर दे। इस प्रकार श्रेष्ठ अमरशैल ( सुमेरुगिरि ) की स्थापना कर उसके चतुर्थांशसे इसकी चारों दिशाओंमें क्रमशः विष्कम्भ ( मर्यादा ) पर्वतोंकी स्थापना करनी चाहिये। ये सभी पुष्प और चन्दनसे सुशोभित हों। पूर्व दिशामें यवसे मन्दराचलका आकार बनावे, उसके निकट अनेकों प्रकारके फलोंकी कतारें लगा दे, उसे कनकभद्र ( देवदारु ) और कदम्ब-वृक्षोंके चिह्नोंसे सुशोभित कर दे, उसपर कामदेवकी स्वर्णमयी प्रतिमा स्थापित कर दे। फिर उसे अपनी शक्तिके अनुसार चाँदीके बने हुए वन और दूधनिर्मित अरुणोद नामक सरोवरसे सुशोभित कर दे। तत्पश्चात् वस्त्र, पुष्प और चन्दन आदिसे उसे भरपूर सुसज्जित कर देना चाहिये ॥ १३—२१ ॥

याम्येन गन्धमदनश्च विवेशनीयो गोधूमसंचयमयः कलधौतवृक्षः।
हैमेन यक्षपतिना घृतमानसेन वस्त्रैश्च राजतवनेन च संयुतः स्यात् ॥ २२ ॥
पश्चात् तिलाचलमनेकसुगन्धिपुष्पसौवर्णपिप्पलहिरण्मयहंसयुक्तम्।
आकारयेद् रजतपुष्पवनेन तद्वद् वस्त्रान्वितं दधिसितोदसरस्तथाग्रे ॥ २३ ॥
संस्थाप्य तं विपुलशैलमथोत्तरेण शैलं सुपार्श्वमपि माषमयं सुवस्त्रम्।
पुष्पैश्च हेमवटपादपशेखरं तमाकारयेत् कनकधेनुविराजमानम् ॥ २४ ॥
माक्षीकभद्रसरसाथ वनेन तद्वद् रौप्येण भास्वरवता च युतं निधाय।
होमश्चतुर्भिरथ वेदपुराणविद्भिर्दान्तैरनिन्द्यचरिताकृतिभिर्द्विजेन्द्रैः ॥ २५ ॥
पूर्वेण हस्तमितमत्र विधाय कुण्डं कार्यस्तिलैर्यवघृतेन समित्कुशैश्च।
रात्रौ च जागरमनुद्धतगीततूर्यैरावाहनं च कथयामि शिलोच्चयानाम् ॥ २६ ॥
त्वं सर्वदेवगणधामनिधे विरुद्धमस्मद्गृहेष्वमरपर्वत नाशयाशु।
क्षेमं विधत्स्व कुरु शान्तिमनुत्तमां नः सम्पूजितः परमभक्तिमता मया हि ॥ २७ ॥
त्वमेव भगवानीशो ब्रह्मा विष्णुर्दिवाकरः। मूर्तामूर्तात् परं बीजमतः पाहि सनातन ॥ २८ ॥
यस्मात् त्वं लोकपालानां विश्वमूर्तेश्च मन्दिरम्। रुद्रादित्यवसूनां च तस्माच्छान्तिं प्रयच्छ मे ॥ २९ ॥
यस्मादशून्यममरैर्नारीभिश्च शिवेन च। तस्मान्मामुद्धराशेषदुःखसंसारसागरात् ॥ ३० ॥

दक्षिण दिशामें गेहूँकी राशिसे गन्धमादनकी रचना करनी चाहिये। उसे स्वर्णपत्रसे सुशोभित कर दे। उसपर यक्षपतिकी स्वर्णमयी मूर्ति स्थापित कर दे और उसे वस्त्रोंसे परिवेष्टित कर दे। फिर उसे घीके सरोवर और चाँदीके वनसे सुशोभित कर देना चाहिये। पश्चिम दिशामें अनेकों सुगन्धित पुष्पों, स्वर्णमय पीपल-वृक्ष और सुवर्णनिर्मित हंससे युक्त तिलाचलकी स्थापना करनी चाहिये। उसी प्रकार इसे भी वस्त्रसे परिवेष्टित तथा चाँदीके पुष्पवनसे सुशोभित कर दे। इसके अग्रभागमें दहीसे सितोद सरोवरकी भी रचना कर दे। इस प्रकार उस विपुल शैलकी स्थापना करके उत्तर दिशामें उड़दसे सुपार्श्व नामक पर्वतकी स्थापना करे। इसे भी सुन्दर वस्त्र और पुष्पोंसे सुसज्जित कर दे, इसके शिखरपर स्वर्णमय

वट-वृक्ष रख दे और सुवर्णनिर्मित गौसे सुशोभित कर दे। उसी प्रकार मधुसे बने हुए भद्रसर नामक सरोवर और चमकीली चाँदीसे निर्मित वनसे संयुक्त कर देना चाहिये। तत्पश्चात् पूर्व दिशामें एक हाथ लम्बा-चौड़ा और गहरा कुण्ड बनाकर तिल, यव, घी, समिधा और कुशोंद्वारा चार श्रेष्ठ ब्राह्मणोंसे हवन करावे। वे सभी ब्राह्मण वेदों और पुराणोंके ज्ञाता, जितेन्द्रिय, अनिन्द्य चरित्रवान् और सुरूप हों। रातमें मधुर शब्दमें गायन और तुरही आदि बाद्योंका वादन कराते हुए जागरण करना चाहिये। अब मैं इन पर्वतोंके आवाहनका प्रकार बतला रहा हूँ। ( उन्हें इस प्रकार आवाहित करे—) 'अमरपर्वत! तुम समस्त देवगणोंके निवासस्थान और रत्नोंकी निधि हो। मैंने परम भक्तिके साथ तुम्हारी पूजा की है, इसलिये तुम हमारे घरोंमें स्थित विरुद्धभाव अर्थात् वैरभावको शीघ्र ही नष्ट कर दो, हमारे कल्याणका विधान करो और हमें श्रेष्ठ शान्ति प्रदान करो। सनातन! तुम्हीं ब्रह्मा, भगवान् विष्णु, शंकर और सूर्य हो तथा मूर्त ( साकार ) और अमूर्त ( निराकार )से परे संसारके बीज ( कारणरूप ) हो, अतः हमारी रक्षा करो। चूँकि तुम लोकपालों, विश्वमूर्ति भगवान् विष्णु, रुद्र, सूर्य और वसुओंके निवासस्थान हो, इसलिये मुझे शान्ति प्रदान करो। चूँकि तुम देवताओं, देवाङ्गनाओं और शिवजीसे अशून्य अर्थात् संयुक्त रहते हो, इसलिये इस निखिल दुःखोंसे भरे हुए संसार-सागरसे मेरा उद्धार करो ॥ २२—३० ॥

एवमभ्यर्च्य तं मेरुं मन्दरं चाभिपूजयेत्। यस्माच्चैत्ररथेन त्वं भद्राश्वेन च वर्षतः ॥ ३१ ॥
शोभसे मन्दर क्षिप्रमतस्तुष्टिकरो भव। यस्माच्चूडामणिर्जम्बूद्वीपे त्वं गन्धमादन ॥ ३२ ॥
गन्धर्ववनशोभावानतः कीर्तिर्दृढास्तु मे। यस्मात् त्वं केतुमालेन वैभ्राजेन वनेन च ॥ ३३ ॥
हिरण्मयाश्वत्थशिरास्तस्मात् पुष्टिर्ध्रुवास्तु मे। उत्तरैः कुरुभिर्यस्मात् सावित्रेण वनेन च ॥ ३४ ॥
सुपार्श्व राजसे नित्यमतः श्रीरक्षयास्तु मे। एवमामन्त्र्य तान् सर्वान् प्रभाते विमले पुनः ॥ ३५ ॥
स्नात्वाथ गुरवे दद्यान्मध्यमं पर्वतोत्तमम्। विष्कम्भपर्वतान् दद्याद् ऋत्विग्भ्यः क्रमशो मुने ॥ ३६ ॥
गाश्च दद्याच्चतुर्विंशत्यथवा दश नारद। नव सप्त तथाष्टौ वा पञ्च दद्यादशक्तिमान् ॥ ३७ ॥
एकापि गुरवे देया कपिला च पयस्विनी। पर्वतानामशेषाणामेष एव विधिः स्मृतः ॥ ३८ ॥
त एव पूजने मन्त्रास्त एवोपस्करा मताः। ग्रहाणां लोकपालानां ब्रह्मादीनां च सर्वदा ॥ ३९ ॥
स्वमन्त्रेणैव सर्वेषु होमः शैलेषु पठ्यते। उपवासी भवेन्नित्यमशक्ते नक्तमिष्यते ॥ ४० ॥
विधानं सर्वशैलानां क्रमशः शृणु नारद। दानकाले च ये मन्त्राः पर्वतेषु च यत्फलम् ॥ ४१ ॥
अन्नं ब्रह्म यतः प्रोक्तमन्ने प्राणाः प्रतिष्ठिताः। अन्नाद् भवन्ति भूतानि जगदन्नेन वर्तते ॥ ४२ ॥
अन्नमेव ततो लक्ष्मीरन्नमेव जनार्दनः। धान्यपर्वतरूपेण पाहि तस्मान्नगोत्तम ॥ ४३ ॥
अनेन विधिना यस्तु दद्याद् धान्यमयं गिरिम्। मन्वन्तरशतं साग्रं देवलोके महीयते ॥ ४४ ॥
अप्सरोगणगन्धर्वैराकीर्णेन विराजता।
विमानेन दिवः पृष्ठमायाति स निषेवितः। धर्मक्षये राजराज्यमाप्नोतीह न संशयः ॥ ४५ ॥

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे दानमाहात्म्यं नाम त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥*

इस प्रकार उस मेरुगिरिकी अर्चना करनेके पश्चात् मन्दराचलकी पूजा करनी चाहिये—'मन्दराचल! चूँकि तुम चैत्ररथ नामक वन और भद्राश्व नामक वर्षसे सुशोभित हो रहे हो, इसलिये शीघ्र ही मेरे लिये तुष्टिकारक बनो।' 'गन्धमादन! चूँकि तुम जम्बूद्वीपमें शिरोमणिके समान सुशोभित और गन्धर्वोंके वनोंकी शोभासे सम्पन्न हो, इसलिये मेरी कीर्तिको सुदृढ़ कर दो।' 'विपुल! चूँकि तुम केतुमाल वर्ष और वैभ्राज

नामक वनसे सुशोभित हो और तुम्हारे शिखरपर स्वर्णमय पीपलका वृक्ष विराजमान है, इसलिये (तुम्हारी कृपासे) मुझे निश्चला पुष्टि प्राप्त हो।' 'सुपार्श्व! चूँकि तुम उत्तर कुरुवर्ष और सावित्र नामक वनसे नित्य शोभित हो रहे हो, अतः मुझे अक्षय लक्ष्मी प्रदान करो।' इस प्रकार उन सभी पर्वतोंको आमन्त्रित करके पुनः निर्मल प्रभात होनेपर स्नान आदिसे निवृत्त हो बीचवाला श्रेष्ठ पर्वत गुरु (यज्ञ करानेवाले) को दान कर दे। मुने! इसी प्रकार क्रमशः विष्कम्भपर्वतोंको ऋत्विजोंको दान कर देना चाहिये। नारद! इसके बाद चौबीस, दस, नौ, आठ, सात अथवा पाँच गौ दान करनेका विधान है। यदि यजमान निर्धन हो तो वह एक ही दुधारू कपिला गौ गुरुको दान कर दे। सभी पर्वतदानोंके लिये यही विधि कही गयी है। उनके पूजनमें ग्रहों, लोकपालों और ब्रह्मा आदि देवताओंके वे ही मन्त्र हैं और वे ही सामग्रियाँ भी मानी गयी हैं। सभी पर्वत-पूजनोंमें उन-उनके मन्त्रोंके उच्चारणपूर्वक हवन करना चाहिये। यजमानको सदा व्रतमें उपवास करना चाहिये। यदि असमर्थ हो तो रातमें एक बार भोजन किया जा सकता है। नारद! अब तुम सभी पर्वतदानोंकी विधि, दानकालमें प्रयुक्त होनेवाले मन्त्र और उन दानोंसे प्राप्त होनेवाला जो फल है, वह सब क्रमशः सुनो। (दान देते समय धान्यशैलसे यों प्रार्थना करनी चाहिये—) 'पर्वतश्रेष्ठ! अन्नको ही ब्रह्म कहा जाता है; क्योंकि अन्नमें प्राणियोंके प्राण प्रतिष्ठित हैं। अन्नसे ही प्राणी उत्पन्न होते हैं, अन्नसे जगत् वर्तमान है, इसलिये अन्न ही लक्ष्मी है, अन्न ही भगवान् जनार्दन है, इसलिये धान्यशैलके रूपसे तुम मेरी रक्षा करो।' जो मनुष्य उपर्युक्त विधिसे धान्यमय पर्वतका दान करता है, वह सौ मन्वन्तरसे भी अधिक कालतक देवलोकमें प्रतिष्ठित होता है। अप्सराओं और गन्धर्वोंद्वारा व्याप्त सुन्दर विमानसे वह स्वर्गलोकमें आता है और उनके द्वारा पूजित होता है। पुनः पुण्य-क्षय होनेपर वह इस लोकमें निस्संदेह राजाधिराज होता है॥ ३१—४५॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें दानमाहात्म्य नामक तिरासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ८३॥

# चौरासीवाँ अध्याय

## लवणाचलके दानकी विधि और उसका माहात्म्य

ईश्वर उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि लवणाचलमुत्तमम्। यत्प्रदानान्नरो लोकानाप्नोति शिवसंयुतान्॥ १॥
उत्तमः षोडशद्रोणैः कर्तव्यो लवणाचलः। मध्यमः स्यात् तदर्धेन चतुर्भिरधमः स्मृतः॥ २॥
वित्तहीनो यथाशक्त्या द्रोणादूर्ध्वं तु कारयेत्। चतुर्थांशेन विष्कम्भपर्वतान् कारयेत् पृथक्॥ ३॥
विधानं पूर्ववत् कुर्याद् ब्रह्मादीनां च सर्वदा। तद्वद्धेममयान् सर्वाँल्लोकपालान् निवेशयेत्॥ ४॥
सरांसि कामदेवार्दींस्तद्वदत्रापि कारयेत्। कुर्याज्जागरणं चापि दानमन्त्रान् निबोधत॥ ५॥
सौभाग्यरससम्भूतो यतोऽयं लवणाचलः। तद्दानकर्तृकत्वेन त्वं मां पाहि नगोत्तम॥ ६॥
यस्मादन्नरसाः सर्वे नोत्कटा लवणं विना। प्रियं च शिवयोर्नित्यं तस्माच्छान्तिं प्रयच्छ मे॥ ७॥
विष्णुदेहसमुद्भूतं यस्मादारोग्यवर्धनम्। तस्मात् पर्वतरूपेण पाहि संसारसागरात्॥ ८॥
अनेन विधिना यस्तु दद्याल्लवणपर्वतम्। उमालोके वसेत् कल्पं ततो याति परां गतिम्॥ ९॥

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे लवणाचलकीर्तनं नाम चतुरशीतितमोऽध्यायः॥ ८४॥*

**ईश्वरने कहा**—नारद ! अब मैं श्रेष्ठ लवणाचलके* दानकी विधि बतला रहा हूँ, जिसका दान करनेसे मनुष्य शिव-संयुक्त लोकोंको अर्थात् शिवलोकोंको प्राप्त करता है। सोलह द्रोण नमकसे लवणाचल बनाना चाहिये; क्योंकि यही उत्तम है। उसके आधे आठ द्रोणसे मध्यम और ( चार† ) द्रोणसे बना हुआ अधम माना गया है। निर्धन मनुष्यको अपनी शक्तिके अनुसार एक द्रोणसे कुछ अधिकका बनवाना चाहिये। इसके अतिरिक्त ( पर्वत-परिमाणके ) चौथाई द्रोणसे पृथक्-पृथक् (चार) विष्कम्भपर्वतोंका निर्माण कराना उचित है। ब्रह्मा आदि देवताओंके पूजनका विधान सदा पूर्ववत् होना चाहिये। उसी प्रकार सभी स्वर्णमय लोकपालोंके स्थापनका विधान है। पहलेकी तरह इसमें भी कामदेव आदि देवों और सरोवरोंका निर्माण कराना चाहिये तथा रातमें जागरण भी करना चाहिये। अब दान-मन्त्रोको सुनो—'पर्वतश्रेष्ठ ! चूँकि यह नमकरूप रस सौभाग्य-सरोवरसे‡ प्रादुर्भूत हुआ है, इसलिये उसके दानसे तुम मेरी रक्षा करो। चूँकि सभी प्रकारके अन्न एवं रस नमकके बिना उत्कृष्ट नहीं होते, अर्थात् स्वादिष्ट नहीं लगते तथा तुम शिव और पार्वतीको सदा परम प्रिय हो, अतः मुझे शान्ति प्रदान करो। चूँकि तुम भगवान् विष्णुके शरीरसे उत्पन्न हुए हो और आरोग्यकी वृद्धि करनेवाले हो, इसलिये तुम पर्वत-रूपसे मेरा संसार-सागरसे उद्धार करो।' जो मनुष्य उपर्युक्त विधिसे लवणपर्वतका दान करता है, वह एक कल्पतक पार्वतीलोकमें निवास करता है और अन्तमें परमगति—मोक्षको प्राप्त हो जाता है॥ १—९॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें लवणाचलकीर्तन नामक चौरासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ८४॥

# पचासीवाँ अध्याय

## गुडपर्वतके दानकी विधि और उसका माहात्म्य

ईश्वर उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि गुडपर्वतमुत्तमम्। यत्प्रदानान्नरः श्रीमान् स्वर्गमाप्नोति पूजितम्॥ १॥
उत्तमो दशभिर्भारैर्मध्यमः पञ्चभिर्मतः। त्रिभिर्भारैः कनिष्ठः स्यात् तदर्धेनाल्पवित्तवान्॥ २॥
तद्वदामन्त्रणं पूजां हेमवृक्षसुरार्चनम्। विष्कम्भपर्वतांस्तद्वत् सरांसि वनदेवताः॥ ३॥
होमं जागरणं तद्वल्लोकपालाधिवासनम्। धान्यपर्वतवत् कुर्यादिमं मन्त्रमुदीरयेत्॥ ४॥
यथा देवेषु विश्वात्मा प्रवरोऽयं जनार्दनः। सामवेदस्तु वेदानां महादेवस्तु योगिनाम्॥ ५॥
प्रणवः सर्वमन्त्राणां नारीणां पार्वती यथा। तथा रसानां प्रवरः सदैवेक्षुरसो मतः॥ ६॥
मम तस्मात् परां लक्ष्मीं ददस्व गुडपर्वत।
यस्मात् सौभाग्यदायिन्या भ्राता त्वं गुडपर्वत। निवासश्चापि पार्वत्यास्तस्माच्छान्तिं प्रयच्छ मे॥ ७॥
अनेन विधिना यस्तु दद्याद् गुडमयं गिरिम्। पूज्यमानः स गन्धर्वैर्गौरीलोके महीयते॥ ८॥
ततः कल्पशतान्ते तु सप्तद्वीपाधिपो भवेत्। आयुरारोग्यसम्पन्नः शत्रुभिश्चापराजितः॥ ९॥

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे गुडपर्वतकीर्तनं नाम पञ्चाशीतितमोऽध्यायः॥ ८५॥*

---

* बल्लालसेनने 'दानसागर' पृष्ठ २०२-३ पर इसे मत्स्य अ० ८४का कहकर 'विष्णुदैवत दान' माना है। यह वर्णन पद्मपु० १। १२१। ११७-३५, भविष्योत्तरपु० १२६ और महाभारत आदिमें भी आता है। † यह 'विधानपारिजात'कार मदनभूपालका मत है। उन्होंने सर्वत्र लम्बी टिप्पणियाँ लिखी है। ‡ यह वर्णन पहले सौभाग्यशयनमें आ चुका है।

ईश्वरने कहा—नारद ! अब मैं (उस) उत्तम गुडपर्वतके दानकी विधि बतला रहा हूँ, जिसका दान करनेसे धनी मनुष्य देवपूजित हो स्वर्गलोकको प्राप्त कर लेता है। दस भार गुडसे बना हुआ गुडपर्वत उत्तम, पाँच भारसे बना हुआ मध्यम और तीन भारसे बना हुआ कनिष्ठ कहा जाता है। स्वल्प वित्तवाला मनुष्य इसके आधे परिमाणसे भी काम चला सकता है। इसमें भी देवताओंका आमन्त्रण, पूजन, स्वर्णमय वृक्ष, देव-पूजन, विष्कम्भपर्वत, सरोवर, वन-देवता, हवन, जागरण और लोकपालोंकी स्थापना आदि धान्यपर्वतकी ही भाँति करना चाहिये। उस समय यह मन्त्र उच्चारण करे—'जिस प्रकार देवगणोंमें ये विश्वात्मा जनार्दन, वेदोंमें सामवेद,* योगियोंमें महादेव, समस्त मन्त्रोंमें ॐकार और नारियोंमें पार्वती श्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार रसोंमें इक्षुरस सदा श्रेष्ठ माना गया है। इसलिये गुडपर्वत ! तुम मुझे उत्कृष्ट लक्ष्मी प्रदान करो। गुडपर्वत ! चूँकि तुम सौभाग्यदायिनी पार्वतीके भ्राता और निवासस्थान हो, अतः मुझे शान्ति प्रदान करो।' जो मनुष्य उपर्युक्त विधिके अनुसार गुडपर्वतका दान करता है, वह गन्धर्वोंद्वारा पूजित होकर गौरीलोकमें प्रतिष्ठित होता है तथा सौ कल्प व्यतीत होनेपर दीर्घायु एवं नीरोगतासे सम्पन्न होकर भूतलपर जन्म ग्रहण करता है और शत्रुओंके लिये अजेय होकर सातों द्वीपोंका अधीश्वर होता है ॥ १–९ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें गुडपर्वतकीर्तन नामक पचासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ८५ ॥

# छियासीवाँ अध्याय

## सुवर्णाचलके दानकी विधि और उसका माहात्म्य

ईश्वर उवाच

अथ पापहरं वक्ष्ये सुवर्णाचलमुत्तमम्। यस्य प्रदानाद् भवनं वैरिञ्च्यं याति मानवः ॥ १ ॥
उत्तमः पलसाहस्रो मध्यमः पञ्चभिः शतैः।
तदर्धेनाधमस्तद्वदल्पवित्तोऽपि शक्तितः। दद्यादेकपलादूर्ध्वं यथाशक्त्या विमत्सरः ॥ २ ॥
धान्यपर्वतवत् सर्वं विदध्यान्मुनिपुंगव। विष्कम्भशैलास्तद्वच्च ऋत्विग्भ्यः प्रतिपादयेत् ॥ ३ ॥
नमस्ते ब्रह्मबीजाय ब्रह्मगर्भाय ते नमः। यस्मादनन्तफलदस्तस्मात् पाहि शिलोच्चय ॥ ४ ॥
यस्मादग्नेरपत्यं† त्वं यस्मात् तेजो जगत्पतेः। हेमपर्वतरूपेण तस्मात् पाहि नगोत्तम ॥ ५ ॥
अनेन विधिना यस्तु दद्यात् कनकपर्वतम्।
स याति परमं ब्रह्मलोकमानन्दकारकम्। तत्र कल्पशतं तिष्ठेत् ततो याति परां गतिम् ॥ ६ ॥

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सुवर्णाचलकीर्तनं नाम षडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥*

ईश्वरने कहा—नारद ! अब मैं पापहारी एवं श्रेष्ठ सुवर्णाचलका वर्णन कर रहा हूँ, जिसका दान करनेसे मनुष्य ब्रह्मलोकको प्राप्त करता है। एक हजार पलका सुवर्णाचल उत्तम, पाँच सौ पलका मध्यम और ढाई सौ पलका अधम (साधारण) माना गया है। अल्प वित्तवाला भी अपनी शक्तिके अनुसार गर्वरहित होकर एक पलसे कुछ अधिक सोनेका पर्वत बनवा सकता है। मुनिश्रेष्ठ ! शेष सारे कार्योंका विधान धान्यपर्वतकी भाँति ही करना चाहिये। उसी प्रकार विष्कम्भपर्वतोंकी भी स्थापना कर उन्हें ऋत्विजोंको दान करनेका विधान है।

* इस पुराणमें सामवेदकी सर्वत्र प्रमुख रूपसे चर्चा है, यह ध्येय है।

† सुवर्णकी अग्नि-अपत्यता (अग्निकी पुत्रता) प्रसिद्ध है। इस विषयमें एक श्लोक सर्वत्र मिलता है, जो इस प्रकार है—'अग्नेरपत्यं प्रथमं सुवर्णं भूर्वैष्णवी सूर्यसुताश्च गावः। लोकत्रयं तेन भवेत् प्रदत्तं यः काञ्चनं गां च महीं प्रदद्यात् ॥

( प्रार्थना-मन्त्र इस प्रकार है— ) 'शिलोच्चय ! तुम ब्रह्मके बीजरूप हो, तुम्हें नमस्कार है। तुम्हारे गर्भमें ब्रह्मा स्थित रहते हैं, अतः तुम्हें प्रणाम है। तुम अनन्त फलके दाता हो, इसलिये मेरी रक्षा करो। जगत्पति पर्वतोत्तम ! तुम अग्निकी संतान और जगदीश्वर शिवके तेजःस्वरूप हो, अतः सुवर्णाचलके रूपसे मेरा पालन करो।' जो मनुष्य उपर्युक्त विधिसे सुवर्णाचलका दान करता है, वह परम आनन्ददायक ब्रह्मलोकमें जाता है और वहाँ सौ कल्पोंतक निवास करनेके पश्चात् परम-गतिको प्राप्त होता है ॥ १—६ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें सुवर्णाचलकीर्तन नामक छियासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ८६ ॥

---

# सतासीवाँ अध्याय

## तिलशैलके दानकी विधि और उसका माहात्म्य

ईश्वर उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि तिलशैलं विधानतः। यत्प्रदानान्नरो याति विष्णुलोकं सनातनम् ॥ १ ॥
उत्तमो दशभिर्द्रोणैर्मध्यमः पञ्चभिः स्मृतः। त्रिभिः कनिष्ठो विप्रेन्द्र तिलशैलः प्रकीर्तितः ॥ २ ॥
पूर्ववच्चापरान् सर्वान् विष्कम्भानभितो गिरीन्। दानमन्त्रान् प्रवक्ष्यामि यथावन्मुनिपुंगव ॥ ३ ॥
यस्मान्मधुवधे विष्णोर्देहस्वेदसमुद्भवाः। तिलाः कुशाश्च माषाश्च तस्माच्छान्त्यै भवत्विह ॥ ४ ॥
हव्ये कव्ये च यस्माच्च तिलैरेवाभिरक्षणम्। भवादुद्धर शैलेन्द्र तिलाचल नमोऽस्तु ते ॥ ५ ॥
इत्यामन्त्र्य च यो दद्यात् तिलाचलमनुत्तमम्। स वैष्णवं पदं याति पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥ ६ ॥
दीर्घायुष्यमवाप्नोति पुत्रपौत्रैश्च मोदते। पितृभिर्देवगन्धर्वैः पूज्यमानो दिवं व्रजेत् ॥ ७ ॥

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे तिलाचलकीर्तनं नाम सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥*

ईश्वरने कहा—नारद ! इसके बाद मैं तिलशैलका वर्णन कर रहा हूँ, जिसका विधिपूर्वक दान करनेसे मनुष्य सनातन विष्णुलोकको प्राप्त होता है। विप्रवर ! दस द्रोण तिलका बना हुआ तिलशैल उत्तम, पाँच द्रोणका मध्यम और तीन द्रोणका कनिष्ठ बतलाया गया है। इसके चारों दिशाओंमें विष्कम्भपर्वतोंकी स्थापना तथा अन्यान्य सारा कार्य पूर्ववत् करना चाहिये। मुनिपुंगव ! अब मैं दानके मन्त्रोंको यथार्थरूपसे बतला रहा हूँ। 'चूँकि मधुदैत्यके वधके समय भगवान् विष्णुके शरीरसे उत्पन्न हुए पसीनेकी बूँदोंसे तिल, कुश और उड़दकी उत्पत्ति हुई थी, इसलिये तुम इस लोकमें मुझे शान्ति प्रदान करो। शैलेन्द्र तिलाचल ! चूँकि देवताओंके हव्य और पितरोंके कव्य—दोनोंमें सम्मिलित होकर तिल ही सब ओरसे ( भूत-प्रेतादिसे ) रक्षा करता है, इसलिये तुम मेरा भवसागरसे उद्धार करो, तुम्हें नमस्कार है। इस प्रकार आमन्त्रित कर जो मनुष्य श्रेष्ठ तिलाचलका दान करता है, वह पुनरागमनरहित विष्णुपदको प्राप्त हो जाता है। उसे इस लोकमें दीर्घायुकी प्राप्ति होती है, वह पुत्र एवं पौत्रोंको प्राप्तकर उनके साथ आनन्द मनाता है तथा अन्तमें देवताओं, गन्धर्वों और पितरोंद्वारा पूजित होकर स्वर्गलोकको चला जाता है ॥ १—७ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमे तिलाचलकीर्तन नामक सतासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ८७ ॥

---

# अठासीवाँ अध्याय

## कार्पासाचलके दानकी विधि और उसका माहात्म्य

ईश्वर उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि कार्पासाचलमुत्तमम् । यत्प्रदानान्नरः श्रीमान् प्राप्नोति परमं पदम् ॥ १ ॥
कार्पासपर्वतस्तद्वद् विंशद्भारैरिहोत्तमः ।
दशभिर्मध्यमः प्रोक्तः पञ्चभिस्त्वधमः स्मृतः । भारेणाल्पधनो दद्याद् वित्तशाठ्यविवर्जितः ॥ २ ॥
धान्यपर्वतवत् सर्वमासाद्य मुनिपुङ्गव । प्रभातायां तु शर्वर्यां दद्यादिदमुदीरयन् ॥ ३ ॥
त्वमेवावरणं यस्माल्लोकानामिह सर्वदा । कार्पासाद्रे नमस्तुभ्यमघौघध्वंसनो भव ॥ ४ ॥
इति कार्पासशैलेन्द्रं यो दद्याच्छर्वसंनिधौ । रुद्रलोके वसेत् कल्पं ततो राजा भवेदिह ॥ ५ ॥

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे कार्पासशैलकीर्तनं नामाष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥*

ईश्वरने कहा—नारद ! इसके पश्चात् मैं श्रेष्ठ कार्पासाचलका वर्णन कर रहा हूँ, जिसका दान करनेसे मनुष्य धनवाला परमपदको प्राप्त कर लेता है। इस लोकमें बीस भार रूईसे बना हुआ कार्पासपर्वत उत्तम, दस भारसे बना हुआ मध्यम और पाँच भारसे बना हुआ अधम ( साधारण ) कहा गया है । अल्प सम्पत्तिवाला मनुष्य कृपणता छोड़कर एक भार कपाससे बने हुए पर्वतका दान कर सकता है। मुनिश्रेष्ठ ! धान्यपर्वतकी भाँति सारी सामग्री एकत्र कर रात्रिके व्यतीत होनेपर प्रातःकाल इसे दान करनेका विधान है । उस समय ऐसा मन्त्र उच्चारण करना चाहिये—'कार्पासाचल ! चूँकि इस लोकमें तुम्हीं सदा सभी लोगोंके शरीरके आच्छादन हो, इसलिये तुम्हें नमस्कार है। तुम मेरे पापसमूहका विनाश कर दो।' इस प्रकार जो मनुष्य भगवान् शिवके संनिधानमें कार्पासाचलका दान करता है, वह एक कल्पतक रुद्रलोकमें निवास करनेके पश्चात् भूतलपर राजा होता है ॥ १—५ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें कार्पासशैलकीर्तन नामक अठासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ८८ ॥

# नवासीवाँ अध्याय

## घृताचलके दानकी विधि और उसका माहात्म्य

ईश्वर उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि घृताचलमनुत्तमम् । तेजोऽमृतमयं दिव्यं महापातकनाशनम् ॥ १ ॥
विंशत्या घृतकुम्भानामुत्तमः स्याद् घृताचलः । दशभिर्मध्यमः प्रोक्तः पञ्चभिस्त्वधमः स्मृतः ॥ २ ॥
अल्पवित्तः प्रकुर्वीत द्वाभ्यामिह विधानतः । विष्कम्भपर्वतांस्तद्वच्चतुर्थांशेन कल्पयेत् ॥ ३ ॥
शालितण्डुलपात्राणि कुम्भोपरि निवेशयेत् । कारयेत् संहतानुच्चान् यथाशोभं विधानतः ॥ ४ ॥
वेष्टयेच्छुक्लवासोभिरिक्षुदण्डफलादिकैः । धान्यपर्वतवच्छेषं विधानमिह पठ्यते ॥ ५ ॥
अधिवासनपूर्वं च तद्वद्धोमसुरार्चनम् ।
प्रभातायां तु शर्वर्यां गुरवे तन्निवेदयेत् । विष्कम्भपर्वतांस्तद्वदृत्विग्भ्यः शान्तमानसः ॥ ६ ॥
संयोगाद् घृतमुत्पन्नं यस्मादमृततेजसोः । तस्माद् घृतार्चिर्विश्वात्मा प्रीयतामत्र शंकरः ॥ ७ ॥
यस्मात् तेजोमयं ब्रह्म घृते तद्धि व्यवस्थितम् । घृतपर्वतरूपेण तस्मात् त्वं पाहि नोऽनिशम् ॥ ८ ॥

अनेन विधिना दद्याद् घृताचलमनुत्तमम्। महापातकयुक्तोऽपि लोकमाप्नोति शाम्भवम् ॥ ९ ॥
हंससारसयुक्तेन किङ्किणीजालमालिना।
विमानेनाप्सरोभिश्च सिद्धविद्याधरैर्वृतः। विहरेत् पितृभिः सार्धं यावदाभूतसम्प्लवम् ॥ १० ॥

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे घृताचलकीर्तनं नामैकोननवतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥*

ईश्वरने कहा—नारद ! इसके बाद मैं दिव्य तेजसे सम्पन्न, अमृतमय और महान्-से-महान् पापोंके विनाशक श्रेष्ठ घृताचलका वर्णन कर रहा हूँ। बीस घड़े* घीसे बना हुआ घृताचल उत्तम, दससे मध्यम और पाँचसे अधम ( साधारण ) कहा गया है। अल्प वित्तवाला भी यदि करना चाहे तो वह दो ही घड़े घृतसे विधिपूर्वक घृताचलकी रचना करके दान कर सकता है। पुनः उसके चतुर्थांशसे विष्कम्भपर्वतोंकी भी कल्पना करनी चाहिये। उन सभी घड़ोंके ऊपर अगहनी चावलसे परिपूर्ण पात्र रखा जाय और उन्हें विधिपूर्वक शोभाका ध्यान रखते हुए एकके ऊपर एक रखकर ऊँचा कर दिया जाय। उन्हें श्वेत वस्त्रोंसे परिवेष्टित कर दिया जाय और उनके निकट गन्ना और फल आदि रख दिये जायँ। इसमें शेष सारा विधान धान्यपर्वतकी ही भाँति बतलाया गया है। देवताओंकी स्थापना, हवन और देवार्चन भी उसी प्रकार करना चाहिये। रात्रिके व्यतीत होनेपर प्रातःकाल ( यजमान ) शान्तमनसे वह घृताचल गुरुको निवेदित कर दे। उसी प्रकार विष्कम्भ-पर्वतोंको ऋत्विजोंको दान कर देनेका विधान है। ( उस समय इस अर्थवाले मन्त्रका पाठ करना चाहिये—) 'चूँकि अमृत और अग्निके संयोगसे घृत उत्पन्न हुआ है, इसलिये अग्निस्वरूप विश्वात्मा शङ्कर इस व्रतसे प्रसन्न हों। चूँकि ब्रह्म तेजोमय है और घीमें विद्यमान है, ऐसा जानकर तुम घृतपर्वतरूपसे रात-दिन हमारी रक्षा करो।' जो मनुष्य उपर्युक्त विधिसे इस श्रेष्ठ घृताचलका दान करता है, वह महापापी होनेपर भी शिवलोकको प्राप्त होता है। वहाँ वह हंस और सारस पक्षियोंकी चित्रकारी क्षुद्र घंटिका-( किङ्किणीजाल-) से सुशोभित तथा विमानपर आरूढ़ होकर अप्सराओं, सिद्धों और विद्याधरोंसे घिरा हुआ पितरोंके साथ प्रलय-कालतक विहार करता है ॥ १—१० ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें घृताचलकीर्तन नामक नवासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ८९ ॥

## नब्बेवाँ अध्याय

### रत्नाचलके दानकी विधि और उसका माहात्म्य

ईश्वर उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि रत्नाचलमनुत्तमम्। मुक्ताफलसहस्रेण पर्वतः स्यादनुत्तमः ॥ १ ॥
मध्यमः पञ्चशतिकस्त्रिशतेनाधमः स्मृतः। चतुर्थांशेन विष्कम्भपर्वताः स्युः समंततः ॥ २ ॥
पूर्वेण वज्रगोमेदैर्दक्षिणेनेन्द्रनीलकैः। पद्मरागयुतः कार्यो विद्वद्भिर्गन्धमादनः ॥ ३ ॥
वैदूर्यविद्रुमैः पश्चात् सम्मिश्रो विपुलाचलः। पुष्परागैः ससौवर्णैरुत्तरेण च विन्यसेत् ॥ ४ ॥
धान्यपर्वतवत् सर्वमत्रापि परिकल्पयेत्। तद्वदावाहनं कुर्याद् वृक्षान् देवांश्च काननान् ॥ ५ ॥
पूजयेत् पुष्पगन्धाद्यैः प्रभाते च विमत्सरः। पूर्ववद् गुरुऋत्विग्भ्य इमान् मन्त्रानुदीरयेत् ॥ ६ ॥
यदा देवगणाः सर्वे सर्वरत्नेष्ववस्थिताः। त्वं च रत्नमयो नित्यं नमस्तेऽस्तु सदाचल ॥ ७ ॥
यस्माद् रत्नप्रदानेन तुष्टिं प्रकुरुते हरिः। सदा रत्नप्रदानेन तस्मान्नः पाहि पर्वत ॥ ८ ॥

* मदन, नीलकण्ठ आदि व्याख्याता यहाँ कुम्भसे पात्रका ही अर्थ लेते हैं—'कुम्भः पात्ररूप एव द्रवत्वेन घृतधारणयोग्यपरिमाणः।'

अनेन विधिना यस्तु दद्याद् रत्नमयं गिरिम्। स याति विष्णुसालोक्यममरेश्वरपूजितः ॥ ९ ॥
यावत्कल्पशतं साग्रं वसेच्चेह नराधिप। रूपारोग्यगुणोपेतः सप्तद्वीपाधिपो भवेत् ॥ १० ॥
ब्रह्महत्यादिकं किंचिद् यदत्रामुत्र वा कृतम्। तत् सर्वं नाशमायाति गिरिर्वज्रहतो यथा ॥ ११ ॥

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे रत्नाचलकीर्तनं नाम नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥*

ईश्वरने कहा—नारद ! इसके पश्चात् मैं श्रेष्ठ रत्नाचलका वर्णन कर रहा हूँ। एक हजार मुक्ताफल- ( मोतियों ) द्वारा बना हुआ पर्वत उत्तम, पाँच सौसे बना हुआ मध्यम और तीन सौसे बना हुआ अधम ( साधारण ) माना गया है। कल्पित पर्वतके चतुर्थांश-से उसके चारों दिशाओंमें विष्कम्भपर्वतोंको स्थापित करना चाहिये। विद्वानोंको पूर्व दिशामें हीरा और गोमेदसे मन्दराचलकी, दक्षिणमें पद्मराग ( माणिक्य) और इन्द्रनील ( नीलम ) मणिके संयोगसे गन्धमादनकी, पश्चिममें वैदूर्य और मूँगेके सम्मिश्रणसे विपुलाचलकी और उत्तरमें गारुत्मतमणिसहित पुष्पराग ( पोखराज ) मणिसे सुपार्श्व पर्वतकी स्थापना करनी चाहिये।* इस दानमें भी धान्य-पर्वतकी तरह सारे उपकरणोंकी कल्पना करे। उसी प्रकार स्वर्णमय देवताओं, वनों और वृक्षोंका स्थापन एवं आवाहन करे तथा पुष्प, गन्ध आदिसे उनका पूजन करे। प्रातःकाल मत्सररहित होकर वह सारा सामान गुरु और ऋत्विजोंको दान कर दे। उस समय इन मन्त्रोंका उच्चारण करे—'अचल ! जब सभी देवगण सम्पूर्ण रत्नोंमें निवास करते हैं, तब तुम तो नित्य रत्नमय ही हो; अतः तुम्हें सदा हमारा नमस्कार प्राप्त हो। पर्वत ! चूँकि सदा रत्नका दान करनेसे श्रीहरि संतुष्ट हो जाते हैं, अतः तुम हमारी रक्षा करो।' नराधिप ! जो मनुष्य उपर्युक्त विधिसे रत्नमय पर्वतका दान करता है, वह इन्द्रसे सत्कृत हो विष्णु-सालोक्यको प्राप्त कर लेता है और वहाँ सौ कल्पोंसे भी अधिक कालतक निवास करता है। पुनः इस लोकमें जन्म लेनेपर वह सौन्दर्य, नीरोगता और सद्गुणोंसे युक्त होकर सातों द्वीपोंका अधीश्वर होता है। साथ ही उसके द्वारा इहलोक अथवा परलोकमें जो कुछ भी ब्रह्महत्या आदि पाप किये गये होते हैं, वे सभी उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं, जैसे वज्रद्वारा प्रहार किया गया हुआ पर्वत ॥ १—११ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें रत्नाचलकीर्तन नामक नब्बेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ९० ॥

## इक्यानबेवाँ अध्याय

### रजताचलके दानकी विधि और उसका माहात्म्य

ईश्वर उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि रौप्याचलमनुत्तमम्। यत्प्रदानान्नरो याति सोमलोकमनुत्तमम् ॥ १ ॥
दशभिः पलसाहस्रैरुत्तमो रजताचलः। पञ्चभिर्मध्यमः प्रोक्तस्तदर्धेनाधमः स्मृतः ॥ २ ॥
अशक्तो विंशतेरूर्ध्वं कारयेच्छक्तितस्तदा। विष्कम्भपर्वतांस्तद्वत् तुरीयांशेन कल्पयेत् ॥ ३ ॥
पूर्ववद् राजतान् कुर्वन् मन्दरादीन् विधानतः। कलधौतमयांस्तद्वल्लोकेशानर्चयेद् बुधः ॥ ४ ॥
ब्रह्मविष्ण्वर्कवान् कार्यो नितम्बोऽत्र हिरण्मयः। राजतं स्याद् यदन्येषां कार्यं तदिह काञ्चनम् ॥ ५ ॥
शेषं तु पूर्ववत् कुर्याद्धोमजागरणादिकम्। दद्यात् ततः प्रभाते तु गुरवे रौप्यपर्वतम् ॥ ६ ॥
विष्कम्भशैलानृत्विग्भ्यः पूज्य वस्त्रविभूषणैः†। इमं मन्त्रं पठन् दद्याद् दर्भपाणिर्विमत्सरः ॥ ७ ॥

* इन रत्नोंकी स्थापनामें नारदपुराण १। ५६। २८२, शुक्रनी० ४। २ आदिमें निर्दिष्ट दिक्पालों तथा दिगीश ग्रहोंके प्रिय रत्नोंका भी ध्यान रखा गया है।

† हेमाद्रि, कल्पतरु, पद्मपुराणादिमें—यहाँ 'विलेपनैः' पाठ है।

पितॄणां वल्लभो यस्माद्धरीन्द्राणां शिवस्य च । पाहि राजत तस्मान्न शोकसंसारसागरात् ॥ ८ ॥
इत्थं निवेद्य यो दद्याद् रजताचलमुत्तमम् । गवामयुतदानस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥ ९ ॥
सोमलोके स गन्धर्वैः किंनराप्सरसां गणैः । पूज्यमानो वसेद् विद्वान् यावदाभूतसम्प्लवम् ॥ १० ॥

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे रौप्याचलकीर्तनं नामैकनवतितमोऽध्यायः ॥ ९१ ॥*

ईश्वरने कहा—नारद ! इसके बाद मैं सर्वश्रेष्ठ रौप्याचल अर्थात् रजतशैलका वर्णन कर रहा हूँ, जिसका दान करनेसे मनुष्य सर्वश्रेष्ठ चन्द्रलोकको प्राप्त करता है । दस हजार पल चाँदीसे बना हुआ रजताचल उत्तम, पाँच हजार पलसे बना हुआ मध्यम और ढाई हजार पलसे बना हुआ अधम कहा गया है । यदि दाता ऐसा करनेमें असमर्थ हो तो उसे अपनी शक्तिके अनुसार बीस पलसे कुछ अधिक चाँदीद्वारा पर्वतका निर्माण कराना चाहिये । उसी प्रकार प्रधान पर्वतके चतुर्थांशसे विष्कम्भपर्वतोंकी भी कल्पना करनेका विधान है । पहलेकी तरह चाँदीके द्वारा मन्दर आदि पर्वतोंका निर्माण कर उनके नितम्बभागको सोनेसे सुशोभित कर दे । उनपर लोकपालोंकी स्वर्णमयी मूर्ति स्थापित कर उन्हें ब्रह्मा, विष्णु और सूर्यकी मूर्तियोंसे भी संयुक्त कर दे । तत्पश्चात् बुद्धिमान् दाता इन सबकी विधि-पूर्वक अर्चना करे । सारांश यह है कि अन्य पर्वतोंमें जो उपकरण चाँदीके होते हैं, वे सभी इसमें सुवर्णके होने चाहिये । शेष हवन, जागरण आदि सारे कार्य धान्यपर्वतकी भाँति ही करे । तत्पश्चात् प्रातःकाल वस्त्र और आभूषण आदिके द्वारा गुरु और ऋत्विजोंका पूजन कर रजताचल गुरुको और विष्कम्भपर्वत ऋत्विजोंको दान कर दे । उस समय मत्सररहित हो हाथमें कुश लेकर इस मन्त्रका पाठ करे—'रजताचल ! तुम पितरोंको तथा श्रीहरि, सूर्य, इन्द्र और शिवको परम प्रिय हो, इसलिये शोकरूपी संसार-सागरसे मेरी रक्षा करो ।' जो मानव इस प्रकार निवेदन कर श्रेष्ठ रजताचलका दान करता है, वह दस हजार गो-दानका फल प्राप्त करता है । वह विद्वान् चन्द्रलोकमें गन्धर्वों, किंनरों और अप्सराओंके समूहोंसे पूजित होकर प्रलयकालतक निवास करता है ॥ १—१० ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें रौप्याचलकीर्तन नामक इक्यानबेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ९१ ॥

# बानबेवाँ अध्याय

## शर्कराशैलके दानकी विधि और उसका माहात्म्य तथा राजा धर्ममूर्तिके वृत्तान्त-प्रसङ्गमें लवणाचलदानका महत्त्व

ईश्वर उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि शर्कराशैलमुत्तमम् । यस्य प्रदानाद् विष्ण्वर्करुद्रास्तुष्यन्ति सर्वदा ॥ १ ॥
अष्टभिः शर्कराभारैरुत्तमः स्यान्महाचलः । चतुर्भिर्मध्यमः प्रोक्तो भाराभ्यामवरः स्मृतः ॥ २ ॥
भारेण चार्धभारेण कुर्याद् यः स्वल्पवित्तवान् । विष्कम्भपर्वतान् कुर्यात् तुरीयांशेन मानवः ॥ ३ ॥
धान्यपर्वतवत् सर्वमासाद्यामरसंयुतम् । मेरोरुपरि तद्वच्च स्थाप्य हेमतरुत्रयम् ॥ ४ ॥
मन्दारः पारिजातश्च तृतीयः कल्पपादपः । एतद् वृक्षत्रयं मूर्ध्नि सर्वेष्वपि निवेशयेत् ॥ ५ ॥
हरिचन्दनसंतानौ पूर्वपश्चिमभागयोः । निवेश्यौ सर्वशैलेषु विशेषाच्छर्कराचले ॥ ६ ॥
मन्दरे कामदेवस्तु प्रत्यग्वक्त्रः सदा भवेत् । गन्धमादनशृङ्गे च धनदः स्यादुदङ्मुखः ॥ ७ ॥
प्राङ्मुखो वेदमूर्तिश्च हंसः स्याद् विपुलाचले । हैमी सुपार्श्वे सुरभिर्दक्षिणाभिमुखी भवेत् ॥ ८ ॥

भगवान् शंकरने कहा—नारदजी ! इसके पश्चात् मैं परमोत्तम शर्कराशैलका वर्णन कर रहा हूँ, जिसका दान करनेसे भगवान् विष्णु, रुद्र और सूर्य सदा संतुष्ट रहते हैं । आठ भार शक्करसे बना हुआ शर्कराचल उत्तम, चार भारसे बना हुआ मध्यम और दो भारसे बना हुआ अधम कहा गया है । जो मानव स्वल्प सम्पत्तिवाला हो, वह एक भार अथवा आधे भारसे भी शर्कराचल बनवा सकता है । प्रधान पर्वतके चतुर्थांशसे विष्कम्भपर्वतोंका भी निर्माण करना चाहिये । पुनः धान्यपर्वतकी तरह सारी सामग्री प्रस्तुत करके मेरुपर्वतकी भाँति इसके ऊपर भी स्वर्णमयी देवमूर्तिके साथ मन्दार, पारिजात और कल्पवृक्ष—इन तीनों वृक्षोंकी भी स्वर्णनिर्मित मूर्ति स्थापित करे । इन तीनों वृक्षोंको तो प्रायः सभी पर्वतोंपर स्थापित कर देना चाहिये । सभी पर्वतोंके पूर्व और पश्चिम भागमें हरिचन्दन और कल्पवृक्षको निविष्ट करना चाहिये । शर्कराचलमें तो इसका विशेषरूपसे ध्यान रखना चाहिये । मन्दराचलपर कामदेवकी मूर्ति सदा पश्चिमाभिमुखी, गन्धमादनके शिखरपर कुबेरकी मूर्ति उत्तराभिमुखी, विपुलाचलपर वेदमूर्ति—ब्रह्मा और हंसकी मूर्ति पूर्वाभिमुखी और सुपार्श्व पर्वतपर स्वर्णमयी गौकी मूर्ति दक्षिणाभिमुखी होनी चाहिये ॥ १—८ ॥

धान्यपर्वतवत् सर्वमावाहनविधानकम् ।
कृत्वा तु गुरवे दद्यान्मध्यमं पर्वतोत्तमम् । ऋत्विग्भ्यश्चतुरः शैलानिमान् मन्त्रानुदीरयन् ॥ ९ ॥
सौभाग्यामृतसारोऽयं पर्वतः शर्करायुतः । तस्मादानन्दकारी त्वं भव शैलेन्द्र सर्वदा ॥ १० ॥
अमृतं पिबतां ये तु निपेतुर्भुवि शीकराः । देवानां तत्समुत्थस्त्वं पाहि नः शर्कराचल ॥ ११ ॥
मनोभवधनुर्मध्यादुद्भूता शर्करा यतः । तन्मयोऽसि महाशैल पाहि संसारसागरात् ॥ १२ ॥
यो दद्याच्छर्कराशैलमनेन विधिना नरः । सर्वपापैर्विनिर्मुक्तः स याति परमं पदम् ॥ १३ ॥
चन्द्रतारार्कसंकाशमधिरुह्यानुजीविभिः । सहैव यानमातिष्ठेत् तत्र विष्णुप्रचोदितः ॥ १४ ॥
ततः कल्पशतान्ते तु सप्तद्वीपाधिपो भवेत् । आयुरारोग्यसम्पन्नो यावज्जन्मार्बुदत्रयम् ॥ १५ ॥
भोजनं शक्तितः दद्यात् सर्वशैलेष्वमत्सरः ।
सर्वत्राक्षारलवणमश्नीयात् तदनुज्ञया । पर्वतोपस्करान् सर्वान् प्रापयेद् ब्राह्मणालयम् ॥ १६ ॥

तत्पश्चात् आवाहन आदि सारा विधान धान्यपर्वतकी भाँति करके अन्तमें इन वक्ष्यमाण मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए बिचला प्रधान पर्वत गुरुको और चारों विष्कम्भपर्वत ऋत्विजोंको दान कर दे । ( वे मन्त्र इस प्रकारके अर्थवाले हैं—) 'शैलेन्द्र ! यह शक्करद्वारा निर्मित पर्वत सौभाग्य और अमृतका सार है, इसलिये तुम मेरे लिये सदा आनन्द-कारक होओ । शर्कराचल ! देवताओंके अमृत-पान करते समय जो बूँदें भूतलपर टपक पड़ी थीं, उन्हींसे तुम्हारी उत्पत्ति हुई है; अतः तुम हमारी रक्षा करो । महाशैल ! चूँकि शर्करा कामदेवके धनुषके मध्यभागसे प्रादुर्भूत हुई है और तुम शर्करामय हो, इसलिये संसारसागरसे मुझे बचाओ ।' जो मनुष्य उपर्युक्त विधिके अनुसार शर्कराशैलका दान करता है, वह समस्त पापोंसे विमुक्त होकर परमपदको प्राप्त हो जाता है । वहाँ वह भगवान् विष्णुकी आज्ञासे अपने आश्रितोंके साथ ही सूर्य, चन्द्र और तारकाओंके समान कान्तिमान् विमानपर आरूढ़ होकर सुशोभित होता है । पुनः सौ कल्पोंके बाद तीन अरब जन्मोंतक भूतलपर दीर्घायु और नीरोगतासे युक्त होकर सातों द्वीपोंका अधिपति होता है । सभी पर्वतदानोंमें मत्सररहित होकर अपनी शक्तिके अनुसार भोजन करानेका विधान है । सर्वत्र गुरुकी आज्ञासे अपनी शक्तिके अनुकूल क्षार ( नमक )-रहित भोजन करना चाहिये । पुनः पर्वतदानकी सारी सामग्री ब्राह्मणके घर स्वयं भेजवा देनी चाहिये ॥ ९—१६ ॥

ईश्वर उवाच

आसीत् पुरा बृहत्कल्पे धर्ममूर्तिर्जनाधिपः। सुहृच्छक्रस्य निहता येन दैत्याः सहस्रशः॥ १७॥
सोमसूर्यादयो यस्य तेजसा विगतप्रभाः।
अभवञ्छतशो येन शत्रवश्च पराजिताः। यथेच्छारूपधारी च मनुष्योऽप्यपराजितः॥ १८॥
तस्य भानुमती नाम भार्या त्रैलोक्यसुन्दरी। लक्ष्मीवद् दिव्यरूपेण निर्जितामरसुन्दरी॥ १९॥
राज्ञस्तस्याग्र्यमहिषी प्राणेभ्योऽपि गरीयसी। दशनारीसहस्राणां मध्ये श्रीरिव राजते॥ २०॥
नृपकोटिसहस्रेण न कदाचित् स मुच्यते।
कदाचिदास्थानगतं पप्रच्छ स पुरोधसम्। विस्मयेनावृतो राजा वसिष्ठमृषिसत्तमम्॥ २१॥

ईश्वरने कहा—नारद! पहले बृहत्कल्पमें धर्ममूर्ति नामक एक राजा हुआ था। उसके तेजके सामने सूर्य और चन्द्रमा आदि भी कान्तिहीन हो जाते थे। वह इन्द्रका मित्र था। उसने हजारों दैत्योंका वध किया था। वह इच्छानुकूल रूप धारण करनेवाला मनुष्य होनेपर भी किसीसे परास्त नहीं हुआ था, अपितु उसके द्वारा सैकड़ों शत्रु पराजित हो चुके थे। उसकी पत्नीका नाम भानुमती था। वह त्रिलोकीमें सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी थी। उसने लक्ष्मीके समान अपने दिव्य रूपसे देवाङ्गनाओंको भी पराजित कर दिया था। वह दस हजार नारियोंके बीचमें लक्ष्मीकी तरह सुशोभित होती थी। राजा धर्ममूर्तिकी वह पटरानी उसे प्राणोंसे भी अधिक प्रिय थी। उसे असंख्य राजा सदा घेरे रहते थे। एक बार सभामण्डपमें आये हुए अपने पुरोहित महर्षि वसिष्ठसे उस राजाने विस्मयविमुग्ध हो ऐसा प्रश्न किया॥ १७—२१॥

राजोवाच

भगवन् केन धर्मेण मम लक्ष्मीरनुत्तमा। कस्माच्च विपुलं तेजो मच्छरीरे सदोत्तमम्॥ २२॥

राजाने पूछा—भगवन्! किस धर्मके प्रभावसे मुझे सर्वश्रेष्ठ लक्ष्मीकी प्राप्ति हुई है? तथा किस धर्मके फलस्वरूप मेरे शरीरमें सदा प्रचुरमात्रामें उत्तम तेज विराजमान रहता है?॥ २२॥

वसिष्ठ उवाच

पुरा लीलावती नाम वेश्या शिवपरायणा।
तया दत्तश्चतुर्दश्यां गुरवे लवणाचलः। हेमवृक्षादिभिः सार्धं यथावद् विधिपूर्वकम्॥ २३॥
शूद्रः सुवर्णकारश्च नाम्ना शौण्डोऽभवत् तदा। भृत्यो लीलावतीगेहे तेन हेम्ना विनिर्मिताः॥ २४॥
तरवः सुरमुख्याश्च श्रद्धायुक्तेन पार्थिव।
अतिरूपेण सम्पन्ना घटयित्वा विना भृतिम्। धर्मकार्यमिति ज्ञात्वा न गृह्णाति कथञ्चन॥ २५॥
उज्ज्वालिताश्च तत्पत्न्या सौवर्णामरपादपाः। लीलावती गिरेः पार्श्वे परिचर्यां च पार्थिव॥ २६॥
कृत्वा ताभ्यामशाठ्येन गुरुशुश्रूषणादिकम्। सा च लीलावती वेश्या कालेन महतापि च॥ २७॥
कालधर्ममनुप्राप्ता कर्मयोगेन नारद। सर्वपापविनिर्मुक्ता जगाम शिवमन्दिरम्॥ २८॥
योऽसौ सुवर्णकारस्तु दरिद्रोऽप्यतिसत्त्ववान्। न मौल्यमादाद् वेश्यातः स भवानिह साम्प्रतम्॥ २९॥
सप्तद्वीपपतिर्जातः सूर्यायुतसमप्रभः।
यथा सुवर्णकारस्य तरवो हेमनिर्मिताः [illegible] ज्वालिताः पत्न्या सेयं भानुमती तव॥ ३[illegible]

वसिष्ठजीने कहा—राजन्! पूर्वकालमें लीला[illegible] नामकी एक वेश्या थी। वह शिवजीकी भक्ता थी। [illegible] [illegible]शीके दिन विधिपूर्वक अपने [illegible] [illegible]क्ष आदि उपकरणोंसहित

दान किया था। उन दिनों लीलावतीके घर एक शूद्र-जातीय शौण्ड नामक सोनार नौकर था। भूपाल! उसने ही श्रद्धापूर्वक सुवर्णद्वारा वृक्षों और प्रधान देवताओंकी मूर्तियोंका निर्माण किया था। उसने बिना कुछ पारिश्रमिक लिये उन मूर्तियोंको गढ़कर अत्यन्त सुन्दर बनाया था और यह धर्मका कार्य है—ऐसा जानकर किसी भी प्रकारका कुछ वेतन भी नहीं लिया था। पृथ्वीपते! उस स्वर्णकारकी पत्नीने भी उन सुवर्णनिर्मित देवों एवं वृक्षोंकी मूर्तियोंको रगड़कर चमकीला बनाया था और लीलावतीके पर्वत-दानमें बड़ी परिचर्या की थी। उन दोनोंकी सहायतासे लीलावतीने गुरु-शुश्रूषा आदि कार्योंको सम्पन्न किया था। नारद! अधिक कालके व्यतीत होनेपर वह वेश्या लीलावती कर्मयोगके अनुसार जब कालधर्म ( मृत्यु )को प्राप्त हुई, तब समस्त पापोंसे मुक्त होकर शिवलोकको चली गयी। वह सोनार, जो दरिद्र होते हुए भी अत्यन्त सामर्थ्यशाली था और जिसने वेश्यासे कुछ भी मूल्य नहीं लिया था, इस समय इस जन्ममें तुम हो, जो दस हजार सूर्योंके समान कान्तिमान् और सातों द्वीपोंके अधीश्वररूपसे उत्पन्न हुए हो। सोनारकी जिस पत्नीने स्वर्णनिर्मित वृक्षों एवं देव-मूर्तियोंको अत्यन्त चमकीला बनाया था, वही यह भानुमती तुम्हारी पटरानी है॥ २२—३०॥

उज्ज्वालनादुज्ज्वलरूपमस्याः संजातमस्मिन् भुवनाधिपत्यम्।
यस्मात् कृतं तत् परिकर्म रात्रावनुद्धताभ्यां लवणाचलस्य॥ ३१॥
तस्माच्च लोकेष्वपराजितत्वमारोग्यसौभाग्ययुता च लक्ष्मीः।
तस्मात्त्वमप्यत्र विधानपूर्वं धान्याचलादीन् दशधा कुरुष्व॥ ३२॥
तथेति सत्कृत्य स धर्ममूर्तिर्वचो वसिष्ठस्य ददौ च सर्वान्।
धान्याचलादीञ्शतशो मुरारेर्लोकं जगामामरपूज्यमानः॥ ३३॥
पश्येदपीमानधनोऽतिभक्त्या स्पृशेन्मनुष्यैरपि दीयमानान्।
शृणोति भक्त्याथ मतिं ददाति विकल्मषः सोऽपि दिवं प्रयाति॥ ३४॥
दुःस्वप्नं प्रशममुपैति पाठ्यमानैः शैलेन्द्रैर्भवभयभेदनैर्मनुष्यैः।
यः कुर्यात् किमु मुनिपुंगवेह सम्यक् शान्तात्मा सकलगिरीन्द्रसम्प्रदानम्॥ ३५॥

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे पर्वतप्रदानमाहात्म्यं नाम द्विनवतितमोऽध्यायः॥ ९२॥*

मूर्तियोंको उज्ज्वल करनेके कारण इसे इस जन्ममें सुन्दर गौरवर्णका शरीर और भुवनेश्वरीका पद प्राप्त हुआ है। चूँकि तुम दोनोंने दत्तचित्त होकर रात्रिमें लवणाचलके दान-प्रसंगमें सहायक रूपसे कर्म किया था, इसीलिये तुम्हें लोकमें अजेयता, नीरोगता और सौभाग्य-सम्पन्नता लक्ष्मीकी प्राप्ति हुई है। इस कारण तुम भी इस जन्ममें विधानपूर्वक दस प्रकारके धान्याचल आदि पर्वतोंका दान करो। तब राजा धर्ममूर्तिने 'तथेति—ऐसा ही करूँगा' कहकर वसिष्ठजीके वचनोंका आदर किया और सैकड़ों बार धान्याचल आदि सभी पर्वतोंका दान किया, जिसके फलस्वरूप देवगणोंद्वारा पूजित होकर भगवान् मुरारिके लोकको प्राप्त हुआ। निर्धन मनुष्य भी यदि उत्कृष्ट भक्तिपूर्वक इन पर्वत-दानोंको देखता है, मनुष्योंद्वारा दान करते समय उनका स्पर्श कर लेता है, उनकी कथाएँ सुनता है और उन्हें करनेके लिये सम्मति देता है तो वह भी पापरहित होकर स्वर्गलोकको चला जाता है। मुनिपुंगव! जब इस लोकमें मनुष्यद्वारा भव-भयको विदीर्ण करनेवाले इन शैलेन्द्रोंके प्रसङ्गका पाठ करनेसे दुःस्वप्न शान्त हो जाते हैं, तब जो मनुष्य स्वयं शान्तचित्तसे विधिपूर्वक इन सम्पूर्ण पर्वतदानोंको करता है, उसके लिये तो कहना ही क्या है?॥ ३१—३५॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें पर्वतप्रदानमाहात्म्य नामक बानबेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ९२॥

# तिरानबेवाँ अध्याय

## शान्तिक एवं पौष्टिक कर्मों तथा नवग्रह-शान्तिकी विधिका वर्णन*

सूत उवाच

वैशम्पायनमासीनमपृच्छच्छौनकः पुरा। सर्वकामाप्तये नित्यं कथं शान्तिकपौष्टिकम्॥ १ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! पूर्वकालकी बात है, एक बार सुखपूर्वक बैठे हुए वैशम्पायनजीसे शौनकने पूछा—'महर्षे! सम्पूर्ण कामनाओंकी अविचल सिद्धिके लिये शान्तिक एवं पौष्टिक कर्मोंका अनुष्ठान किस प्रकार करना चाहिये?' ॥ १ ॥

वैशम्पायन उवाच

श्रीकामः शान्तिकामो वा ग्रहयज्ञं समारभेत्।
वृष्ट्यायुःपुष्टिकामो वा तथैवाभिचरन् पुनः। येन ब्रह्मन् विधानेन तन्मे निगदतः शृणु॥ २ ॥
सर्वशास्त्राण्यनुक्रम्य संक्षिप्य ग्रन्थविस्तरम्। ग्रहशान्तिं प्रवक्ष्यामि पुराणश्रुतिचोदिताम्॥ ३ ॥
पुण्येऽह्नि विप्रकथिते कृत्वा ब्राह्मणवाचनम्। ग्रहान् ग्रहाधिदेवांश्च स्थाप्य होमं समारभेत्॥ ४ ॥
ग्रहयज्ञस्त्रिधा प्रोक्तः पुराणश्रुतिकोविदैः। प्रथमोऽयुतहोमः स्याल्लक्षहोमस्ततः परम्॥ ५ ॥
तृतीयः कोटिहोमस्तु सर्वकामफलप्रदः। अयुतेनाहुतीनां च नवग्रहमखः स्मृतः॥ ६ ॥
तस्य तावद्विधिं वक्ष्ये पुराणश्रुतिभाषितम्। गर्तस्योत्तरपूर्वेण वितस्तिद्वयविस्तृताम्॥ ७ ॥
वप्रद्वयावृतां वेदिं वितस्त्युच्छ्रितसम्मिताम्। संस्थापनाय देवानां चतुरस्रामुदङ्मुखाम्॥ ८ ॥
अग्निप्रणयनं कृत्वा तस्यामावाहयेत् सुरान्। देवतानां ततः स्थाप्या विंशतिर्द्वादशाधिका॥ ९ ॥

वैशम्पायनजीने कहा—ब्रह्मन्! लक्ष्मीकी कामनावाले अथवा शान्तिके अभिलाषी तथा वृष्टि, दीर्घायु और पुष्टिकी इच्छासे युक्त मनुष्यको ग्रहयज्ञका समारम्भ करना चाहिये। वह ग्रहयज्ञ जिस विधानसे करना चाहिये, उसे मै बतला रहा हूँ, सुनिये। मै सम्पूर्ण शास्त्रोंका अवलोकन करनेके पश्चात् विस्तृत ग्रन्थको संक्षिप्तकर पुराणो एवं श्रुतियोंद्वारा आदिष्ट इस ग्रह-शान्तिका वर्णन कर रहा हूँ। इसके लिये ज्योतिषी ब्राह्मणद्वारा बतलाये गये पुण्यमय दिनमें ब्राह्मणद्वारा स्वस्तिवाचन कराकर ग्रहो एव ग्रहाधिदेवोंकी स्थापना करके हवन प्रारम्भ करना चाहिये। पुराणो एवं श्रुतियोंके ज्ञाता विद्वानोने तीन प्रकारका ग्रहयज्ञ बतलाया है। पहला दस हजार आहुतियोंका, उससे बढकर दूसरा एक लाख आहुतियोंका तथा सम्पूर्ण कामनाओंका फल प्रदान करनेवाला तीसरा एक करोड़ आहुतियोंका होता है। दस हजार आहुतियोवाला ग्रहयज्ञ नवग्रहयज्ञ कहलाता है। इसकी विधिका, जो पुराणों एवं श्रुतियोंमें बतलायी गयी है, मै वर्णन कर रहा हूँ। (यजमान मण्डपनिर्माणके बाद) हवनकुण्डकी पूर्वोत्तर दिशामें देवताओंकी स्थापनाके लिये एक वेदीका निर्माण कराये, जो दो बीता लम्बी-चौड़ी, एक बीता ऊँची, दो परिधियोंसे सुशोभित और चौकोर हो। उसका मुख उत्तरकी ओर हो। पुनः कुण्डमें अग्निकी स्थापना करके उस वेदीपर देवताओंका आवाहन करे। इस प्रकार उसपर बत्तीस देवताओंकी स्थापना करनी चाहिये॥ २—९॥

* यह पाँच आथर्वण कल्पों—नक्षत्र, वैतान, संहिताविधि, अङ्गिरस एव शान्तिकल्पमेंसे प्रथम एवं पाँचवे शान्तिकल्पका समन्वित रूप है और अथर्वपरिशिष्ट, याज्ञवल्क्यस्मृति १।२९५—३०८, वृद्धपाराशर ११, पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड ८२—८६, नारदपुराण १।५१, भविष्यपुराण, अग्निपुराण २६४—७४ आ[illegible] प्राप्त है। मत्स्यका पाठ बहुत अशुद्ध है। उपर्युक्त ग्रन्थोंकी सहायतासे इसे पूर्णतया शुद्ध कर[illegible] है। [illegible] शान्ति-संग्रहों और ज्योतिषग्रन्थोंमें भी आयी हैं।

सूर्यः सोमस्तथा भौमो बुधजीवसितार्कजाः। राहुः केतुरिति प्रोक्ता ग्रहा लोकहितावहाः ॥ १० ॥
मध्ये तु भास्करं विद्याल्लोहितं दक्षिणेन तु। उत्तरेण गुरुं विद्याद् बुधं पूर्वोत्तरेण तु ॥ ११ ॥
पूर्वेण भार्गवं विद्यात् सोमं दक्षिणपूर्वके।
पश्चिमेन शनिं विद्याद् राहुं पश्चिमदक्षिणे। पश्चिमोत्तरतः केतुं स्थापयेच्छुक्लतण्डुलैः ॥ १२ ॥
भास्करस्येश्वरं विद्यादुमां च शशिनस्तथा। स्कन्दमङ्गारकस्यापि बुधस्य च तथा हरिम् ॥ १३ ॥
ब्रह्माणं च गुरोर्विद्याच्छुक्रस्यापि शचीपतिम्। शनैश्चरस्य तु यमं राहोः कालं तथैव च ॥ १४ ॥
केतोर्वै चित्रगुप्तं च सर्वेषामधिदेवताः। अग्निरापः क्षितिर्विष्णुरिन्द्र ऐन्द्री च देवता ॥ १५ ॥
प्रजापतिश्च सर्पाश्च ब्रह्मा प्रत्यधिदेवताः।
विनायकं तथा दुर्गां वायुराकाशमेव च। आवाहयेद् व्याहृतिभिस्तथैवाश्विकुमारकौ ॥ १६ ॥
संस्मरेद् रक्तमादित्यमङ्गारकसमन्वितम्।
सोमशुक्रौ तथा श्वेतौ बुधजीवौ च पिङ्गलौ। मन्दराहू तथा कृष्णौ धूम्रं केतुगणं विदुः ॥ १७ ॥
ग्रहवर्णानि देयानि वासांसि कुसुमानि च।
धूपामोदोऽत्र सुरभिरुपरिष्टाद् वितानकम्। शोभनं स्थापयेत् प्राज्ञः फलपुष्पसमन्वितम् ॥ १८ ॥
गुडौदनं रवेर्दद्यात् सोमाय घृतपायसम्। अङ्गारकाय संयावं बुधाय क्षीरषष्टिकम् ॥ १९ ॥
दध्योदनं च जीवाय शुक्राय च घृतौदनम्।
शनैश्चराय कृसरामजामांसं च राहवे। चित्रौदनं च केतुभ्यः सर्वैर्भक्ष्यैरथार्चयेत् ॥ २० ॥

सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु, केतु—ये लोगोंके हितकारी ग्रह कहे गये हैं। श्वेत चावलोंद्वारा वेदीके मध्यमें सूर्यकी, दक्षिणमें मंगलकी, उत्तरमें बृहस्पतिकी, पूर्वोत्तरकोणपर बुधकी, पूर्वमें शुक्रकी, दक्षिणपूर्वकोणपर चन्द्रमाकी, पश्चिममें शनिकी, पश्चिम-दक्षिणकोणपर राहुकी और पश्चिमोत्तर-कोणपर केतुकी स्थापना करनी चाहिये। इन सभी ग्रहोंमें सूर्यके शिव, चन्द्रमाके पार्वती, मंगलके स्कन्द, बुधके भगवान् विष्णु, बृहस्पतिके ब्रह्मा, शुक्रके इन्द्र, शनैश्चरके यम, राहुके काल और केतुके चित्रगुप्त अधिदेवता माने गये हैं। अग्नि, जल, पृथ्वी, विष्णु, इन्द्र, ऐन्द्री देवता, प्रजापति, सर्प और ब्रह्मा—ये सभी क्रमशः प्रत्यधिदेवता हैं। इनके अतिरिक्त विनायक, दुर्गा, वायु, आकाश और अश्विनीकुमारोंका भी व्याहृतियों-के उच्चारणपूर्वक आवाहन करना चाहिये। उस समय मंगलसहित सूर्यको लाल वर्णका, चन्द्रमा और शुक्रको श्वेतवर्णका, बुध और बृहस्पतिको पीतवर्णका, शनि और राहुको कृष्णवर्णका तथा केतुको धूम्रवर्णका जानना और ध्यान करना चाहिये। बुद्धिमान् यज्ञकर्ता जो ग्रह जिस रंगका हो, उसे उसी रंगका वस्त्र और फूल समर्पित करे, सुगन्धित धूप दे, ऊपर सुन्दर चँदोवा लगा दे। पुनः फल, पुष्प आदिके साथ सूर्यको गुड़ और चावलसे बने हुए अन्न ( खीर ) का, चन्द्रमाको घी और दूधसे बने हुए पदार्थका, मंगलको गोझियाका, बुधको क्षीरषष्टिक ( दूधमें पके हुए साठीके चावल )का, बृहस्पतिको दही-भातका, शुक्रको घी-भातका, शनैश्चरको खिचड़ीका, राहुको अजा नामक वृक्षके फलके गूदाका और केतुको विचित्र रंगवाले भातका नैवेद्य अर्पण करके सभी प्रकारके भक्ष्य पदार्थोंद्वारा पूजन करे ॥ १०—२० ॥

प्रागुत्तरेण तस्माच्च दध्यक्षतविभूषितम्। चूतपल्लवसंछन्नं फलवस्त्रयुगान्वितम् ॥ २१ ॥
पञ्चरत्नसमायुक्तं पञ्चभङ्गसमन्वितम्। स्थापयेदव्रणं कुम्भं वरुणं तत्र विन्यसेत् ॥ २२ ॥
गङ्गाद्याः सरितः सर्वाः समुद्रांश्च सरांसि च। गजाश्वरथ्यावल्मीकसङ्गमाद्ध्रदगोकुलात् ॥ २३ ॥
मृदमानीय विप्रेन्द्र सर्वौषधिजलान्विताम्। स्नानार्थं विन्यसेत् तत्र यजमानस्य धर्मवित् ॥ २४ ॥

सर्वे समुद्राः सरितः सरांसि जलदा नदाः। आयान्तु यजमानस्य दुरितक्षयकारकाः॥ २५॥
एवमावाहयेदेतानमरान् मुनिसत्तम। होमं समारभेत् सर्पिर्यवव्रीहितिलादिभिः॥ २६॥
अर्कः पलाशखदिरावपामार्गोऽथ पिप्पलः। औदुम्बरः शमी दूर्वा कुशाश्च समिधः क्रमात्॥ २७॥
एकैकस्याष्टकशतमष्टाविंशतिरेव वा। होतव्या मधुसर्पिर्भ्यां दध्ना चैव समन्विताः॥ २८॥
प्रादेशमात्रा अशिफा अशाखा अपलाशिनीः। समिधः कल्पयेत् प्राज्ञः सर्वकर्मसु सर्वदा॥ २९॥
देवानामपि सर्वेषामुपांशुः परमार्थवित्। स्वेन स्वेनैव मन्त्रेण होतव्याः समिधः पृथक्॥ ३०॥

वेदीके पूर्वोत्तरकोणपर एक छिद्ररहित कलशकी स्थापना करे, उसे दही और अक्षतसे सुशोभित, आमके पल्लवसे आच्छादित और दो वस्त्रोंसे परिवेष्टित करके उसके निकट फल रख दे। उसमें पञ्चरत्न डाल दे और उसे पञ्चभंग ( पीपल, बरगद, पाकड़, गूलर और आमके पल्लव ) से युक्त कर दे। उसपर वरुण, गङ्गा आदि नदियों, सभी समुद्रों और सरोवरोंका आवाहन तथा स्थापन करे। विप्रेन्द्र! धर्मज्ञ पुरोहितको चाहिये कि वह हाथीसार, घुड़साल, चौराहे, बिमवट, नदीके संगम, कुण्ड और गोशालेकी मिट्टी लाकर उसे सर्वौषधमिश्रित जलसे अभिषिक्त कर यजमानके स्नानके लिये वहाँ प्रस्तुत कर दे तथा 'यजमानके पापको नष्ट करनेवाले सभी समुद्र, नदी, नद, बादल और सरोवर यहाँ पधारें' यों कहकर इन देवताओंका आवाहन करे। मुनिसत्तम! तत्पश्चात् घी, यव, चावल, तिल आदिसे हवन प्रारम्भ करे। मदार, पलाश, खैर, चिचिंडा, पीपल, गूलर, शमी, दूब और कुश—ये क्रमशः नवों ग्रहोंकी समिधाएँ हैं। इनमें प्रत्येक ग्रहके लिये मधु, घी और दहीसे युक्त एक सौ आठ अथवा अट्ठाईस आहुतियाँ हवन करनी चाहिये। बुद्धिमान् पुरुषको सदा सभी कर्मोंमें अंगूठेके सिरेसे तर्जनीके सिरेतककी मापवाली तथा बरोंह, शाखा और पत्तोंसे रहित समिधाओं-की कल्पना करनी चाहिये। परमार्थवेत्ता यजमान सभी देवताओंके लिये उन-उनके पृथक्-पृथक् मन्त्रोंका मन्द स्वरसे उच्चारण करते हुए समिधाओंका हवन करे॥

होतव्यं च घृताभ्यक्तं चरुभक्ष्यादिकं पुनः। मन्त्रैर्दशाहुतीर्हुत्वा होमं व्याहृतिभिस्ततः॥ ३१॥
उदङ्मुखाः प्राङ्मुखा वा कुर्युर्ब्राह्मणपुंगवाः। मन्त्रवन्तश्च कर्तव्याश्चरवः प्रतिदैवतम्॥ ३२॥
दत्त्वा च तांश्चरून् सम्यक् ततो होमं समाचरेत्। आकृष्णेनेति सूर्याय होमः कार्यो द्विजन्मना॥ ३३॥
आप्यायस्वेति सोमाय मन्त्रेण जुहुयात् पुनः। अग्निर्मूर्धा दिवो मन्त्र इति भौमाय कीर्तयेत्॥ ३४॥
अग्ने विवस्वदुषस इति सोमसुताय वै। बृहस्पते परिदीया रथेनेति गुरोर्मतः॥ ३५॥
शुक्रं ते अन्यदिति च शुक्रस्यापि निगद्यते। शनैश्चरायेति पुनः शं नो देवीति होमयेत्॥ ३६॥
कयानश्चित्र आभुव इति राहोरुदाहृतः। केतुं कृण्वन्नपि ब्रूयात् केतूनामपि शान्तये॥ ३७॥

पुनः चरु आदि हवनीय पदार्थोंमें घी मिलाकर मन्त्रोच्चारणपूर्वक हवन करना चाहिये। तत्पश्चात् व्याहृतियोंका उच्चारण करके घीकी दस आहुतियाँ अग्निमें डाले। पुनः श्रेष्ठ ब्राह्मण उत्तराभिमुख अथवा पूर्वाभिमुख बैठकर प्रत्येक देवताके मन्त्रोच्चारणपूर्वक चरु आदि पदार्थोंका हवन करें। इस प्रकार उन चरुओंका भलीभाँति हवन करनेके पश्चात् ( प्रत्येक देवताके लिये उसके मन्त्रद्वारा ) हवन करना चाहिये। ब्राह्मणको 'आकृष्णेन रजसा०' ( शुक्लयजुर्वाजसने० सं० ३३। ४३ )—इस मन्त्रका उच्चारण कर सूर्यके लिये हवन करना चाहिये। पुनः 'आप्यायस्व०' (वही १२। ११४) इस मन्त्रसे चन्द्रमाके लिये आहुति डाले। मंगलके लिये 'अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्०' (वही० १३। १४ ) इस मन्त्रका पाठ करे। बुधके लिये 'अग्ने विवस्वदुषस०'—(ऋ० सं० १। ४४। १) और देवगुरु बृहस्पतिके लिये

'परिद्वीया रथेन०' ( ऋक् ५ । ८३ । ७ )—ये मन्त्र माने गये हैं।* शुक्रके लिये 'शुक्रं ते अन्यद्०' ( ऋ० सं० ६ । ५८ । १, कृष्णय० तैत्तिरी० सं० ४ । १ । ११ । २ )—यह मन्त्र बतलाया गया है। शनैश्चरके लिये 'शं नो देवीरभीष्टये०' ( शुक्लयजु० वाज ३६ । १२ )—इस मन्त्रसे हवन करना चाहिये। राहुके लिये 'कया नश्चित्र आभुव०' ( वही २७ । ३९ )—यह मन्त्र कहा गया है तथा केतुकी शान्तिके लिये—'केतुं कृण्वन्०' ( वही २९ । ३७ ) इस मन्त्रका उच्चारण करना चाहिये ॥ ३१-३७ ॥

आवो राजेति रुद्रस्य बलिहोमं समाचरेत्। आपो हिष्ठेत्युमायास्तु स्योनेति स्वामिनस्तथा ॥ ३८ ॥
विष्णोरिदं विष्णुरिति तमीशेति स्वयम्भुवः। इन्द्रमिद्देवतायेति इन्द्राय जुहुयात् ततः ॥ ३९ ॥
तथा यमस्य चायं गौरिति होमः प्रकीर्तितः। कालस्य ब्रह्म जज्ञानमिति मन्त्रः प्रशस्यते ॥ ४० ॥
चित्रगुप्तस्य चाज्ञातमिति मन्त्रविदो विदुः। अग्निं दूतं वृणीमह इति वह्नेरुदाहृतः ॥ ४१ ॥
उदुत्तमं वरुणमित्यपां मन्त्रः प्रकीर्तितः। भूमेः पृथिव्यन्तरिक्षमिति वेदेषु पठ्यते ॥ ४२ ॥
सहस्रशीर्षा पुरुष इति विष्णोरुदाहृतः। इन्द्रायेन्द्रो मरुत्वत इति शक्रस्य शस्यते ॥ ४३ ॥
उत्तानपर्णे सुभगे इति देव्याः समाचरेत्। प्रजापतेः पुनर्होमः प्रजापतिरिति स्मृतः ॥ ४४ ॥
नमोऽस्तु सर्पेभ्य इति सर्पाणां मन्त्र उच्यते। एष ब्रह्मा य ऋत्विग्भ्य इति ब्रह्मण उदाहृतः ॥ ४५ ॥
विनायकस्य चानूनमिति मन्त्रो बुधैः स्मृतः। जातवेदसे सुनवामिति दुर्गोऽयमुच्यते ॥ ४६ ॥
आदित्प्रत्नस्य रेतस आकाशस्य उदाहृतः। काणा शिशुर्महीनां च वायोर्मन्त्रः प्रकीर्तितः ॥ ४७ ॥
एषो उषा अपूर्व्या इत्यश्विनोर्मन्त्र उच्यते। पूर्णाहुतिस्तु मूर्धानं दिव इत्यभिपातयेत् ॥ ४८ ॥

फिर 'आ वो राजानमध्वरस्य रुद्रम्' ( ऋक्सं० ४ । ३ । १; कृष्णयजुः तै० सं० १ । ३ । १४ । १ )—इस मन्त्रका उच्चारण कर रुद्रके लिये हवन और बलि देना चाहिये। तत्पश्चात् उमाके लिये 'आपो हि ष्ठा०' ( वाजस-सं० ११ । ५० )—इस मन्त्रसे, स्वामिकार्तिकके लिये 'स्योना०'—इस मन्त्रसे, विष्णुके लिये'इदं विष्णुः०' ( शुक्लयजु० वाज० ५ । १५ )—इस मन्त्रसे, ब्रह्माके लिये 'तमीशानम्०' ( वाजस० २५ । १८ )—इस मन्त्रसे और इन्द्रके लिये 'इन्द्रमिद्देवताय०'—इस मन्त्रसे आहुति डाले। उसी प्रकार यमके लिये 'अयं गौः०' ( वही ३ । ६ )—इस मन्त्रसे हवन बतलाया गया है। कालके लिये—'ब्रह्मजज्ञानम्०' ( वही १३ । ३ ) यह मन्त्र प्रशस्त माना गया है। मन्त्रवेत्तालोग चित्रगुप्तके लिये 'अज्ञातम्०'—यह मन्त्र बतलाते हैं। अग्निके लिये 'अग्निं दूतं वृणीमहे' ( ऋक्सं० १ । १२ । १; अथर्व २० । १०१ । १ )—यह मन्त्र बतलाया गया है। वरुणके लिये 'उदुत्तमं वरुणपाशम्' ( ऋक्सं० १ । २४ । १५ )—यह मन्त्र कहा गया है। वेदोंमें पृथ्वीके लिये 'पृथिव्यन्तरिक्षम्०—इस मन्त्रका पाठ है। विष्णुके लिये 'सहस्रशीर्षा पुरुषः०' ( वाजस० सं० ३१ । १ )—यह मन्त्र कहा गया है। इन्द्रके लिये 'इन्द्रायेन्द्रो मरुत्वत०'—यह मन्त्र प्रशस्त माना गया है। देवीके लिये 'उत्तानपर्णे सुभगे०'—यह मन्त्र जानना चाहिये। पुनः प्रजापतिके लिये 'प्रजापतिः०' ( वाजस० सं० ३१ । १७ )—यह हवन-मन्त्र कहा जाता है। सर्पोंके लिये 'नमोऽस्तु सर्पेभ्यः०' ( वही १३ । ६ )—यह मन्त्र बतलाया जाता है। ब्रह्माके लिये 'एष ब्रह्मा य ऋत्विग्भ्यः०'—यह मन्त्र कहा गया है। विनायकके लिये विद्वानोंने 'अनूनम्०'—यह मन्त्र बतलाया है। 'जातवेदसे सुनवाम०' ( ऋक्० १ । ९९ । १ )—यह दुर्गा-मन्त्र कहा जाता है। 'आदित्प्रत्नस्य रेतस०'—

* यहाँ ग्रहों और देवताओंके कुछ मन्त्र अन्य पुराणों, स्मृतियों तथा पद्धतियोंसे भिन्न निर्दिष्ट हुए हैं।

यह आकाशका मन्त्र बतलाया जाता है। 'कया शिशुर्महीनां च०'—यह वायुका मन्त्र कहा गया है। 'एषो उषाअपूर्व्यात्०'—यह अश्विनी-कुमारोंका मन्त्र कहा जाता है। 'मूर्धानं दिव०' (ऋ० ६। ७। १; वाज० ७। २४)—इस मन्त्रसे हवनकुण्डमें पूर्णाहुति डालनी चाहिये॥ ३८—४८॥

अथाभिषेकमन्त्रेण वाद्यमङ्गलगीतकैः। पूर्णकुम्भेन तेनैव होमान्ते प्रागुदङ्मुखम्॥ ४९॥
अव्यङ्गावयवैर्ब्रह्मन् हेमस्रग्दामभूषितैः। यजमानस्य कर्तव्यं चतुर्भिः स्नपनं द्विजैः॥ ५०॥
सुरास्त्वामभिषिञ्चन्तु ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।
वासुदेवो जगन्नाथस्तथा संकर्षणो विभुः। प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च भवन्तु विजयाय ते॥ ५१॥
आखण्डलोऽग्निर्भगवान् यमो वै निर्ऋतिस्तथा।
वरुणः पवनश्चैव धनाध्यक्षस्तथा शिवः। ब्रह्मणा सहितः शेषो दिक्पालास्त्वामवन्तु ते॥ ५२॥
कीर्तिर्लक्ष्मीर्धृतिर्मेधा पुष्टिः श्रद्धा क्रिया नतिः।
बुद्धिर्लज्जा वपुः शान्तिस्तुष्टिः कान्तिश्च मातरः। एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु धर्मपत्न्यः समागताः॥ ५३॥
आदित्यश्चन्द्रमा भौमो बुधो जीवः सितोऽर्कजः। ग्रहास्त्वामभिषिञ्चन्तु राहुः केतुश्च तर्पिताः॥ ५४॥
देवदानवगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः। ऋषयो मुनयो गावो देवमातर एव च॥ ५५॥
देवपत्न्यो द्रुमा नागा दैत्याश्चाप्सरसां गणाः। अस्त्राणि सर्वशस्त्राणि राजानो वाहनानि च॥ ५६॥
औषधानि च रत्नानि कालस्यावयवाश्च ये।
सरितः सागराः शैलास्तीर्थानि जलदा नदाः। एते त्वामभिषिञ्चन्तु सर्वकामार्थसिद्धये॥ ५७॥

ब्रह्मन्! इस प्रकार हवन समाप्त हो जानेपर माङ्गलिक गायन और वादनके साथ-साथ अभिषेक-मन्त्रों-द्वारा उसी जलपूर्ण कलशसे पूर्व अथवा उत्तर मुख करके बैठे हुए यजमानका चार ब्राह्मण, जो सुडौल अङ्गोंवाले तथा सुवर्णनिर्मित जंजीरसे सुशोभित हों, अभिषेक करें और ऐसा कहें—'ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर—ये देवता तुम्हारा अभिषेक करें। जगदीश्वर वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण, सामर्थ्यशाली संकर्षण (बलराम), प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—ये सभी तुम्हें विजय प्रदान करें। इन्द्र, अग्नि, ऐश्वर्यशाली यम, निर्ऋति, वरुण, पवन, कुबेर, ब्रह्मासहित शिव, शेषनाग और दिक्पालगण—ये सभी तुम्हारी रक्षा करें। कीर्ति, लक्ष्मी, धृति, मेधा, पुष्टि, श्रद्धा, क्रिया, नति (नम्रता), बुद्धि, लज्जा, वपु, शान्ति, तुष्टि, कान्ति—ये सभी माताएँ जो धर्मकी पत्नियाँ हैं, आकर तुम्हारा अभिषेक करें। सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनैश्चर, राहु और केतु—ये सभी ग्रह तृप्त होकर तुम्हारा अभिषेक करें। देवता, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, सर्प, ऋषि, मुनि, गौ, देवमाताएँ, देवपत्नियाँ, वृक्ष, नाग, दैत्य, अप्सराओंके समूह, अस्त्र, सभी शस्त्र, नृपगण, वाहन, औषध, रत्न, (कला, काष्ठा आदि) कालके अवयव, नदियाँ, सागर, पर्वत, तीर्थस्थान, बादल, नद—ये सभी सम्पूर्ण कामनाओंकी सिद्धिके लिये तुम्हारा अभिषेक करें' ॥ ४९—५७॥

ततः शुक्लाम्बरधरः शुक्लगन्धानुलेपनः। सर्वौषधैः सर्वगन्धैः स्नापितो द्विजपुङ्गवैः॥ ५८॥
यजमानः सपत्नीक ऋत्विजः सुसमाहितान्। दक्षिणाभिः प्रयत्नेन पूजयेद् गतविस्मयः॥ ५९॥
सूर्याय कपिलां धेनुं शङ्खं दद्यात् तथेन्दवे। रक्तं धुरंधरं दद्याद् भौमाय च ककुद्मिनम्॥ ६०॥
बुधाय जातरूपं तु गुरवे पीतवाससी। श्वेताश्वं दैत्यगुरवे कृष्णां गामर्कसूनवे॥ ६१॥
आयसं राहवे दद्यात् केतुभ्यश्छागमुत्तमम्। सुवर्णेन समा कार्या यजमानेन दक्षिणा॥ ६२॥
सर्वेषामथवा गावो दातव्या हेमभूषिताः।
सुवर्णमथवा दद्याद् गुरुर्वा येन तुष्यति। समन्त्रेणैव दातव्याः सर्वाः सर्वत्र दक्षिणाः॥ ६३॥

इस प्रकार श्रेष्ठ ब्राह्मणोंद्वारा सर्वौषध एवं सम्पूर्ण सुगन्धित पदार्थोंसे युक्त जलसे स्नान करा दिये जानेके पश्चात् सपत्नीक यजमान श्वेत वस्त्र धारण करके श्वेत चन्दनका अनुलेप करे और विस्मयरहित होकर शान्त-चित्तवाले ऋत्विजोंका प्रयत्नपूर्वक दक्षिणा आदि देकर पूजन करे तथा सूर्यके लिये कपिला गौका, चन्द्रमाके लिये शङ्खका, मंगलके लिये भार वहन करनेमें समर्थ एवं ऊँचे डीलवाले लाल रंगके बैलका, बुधके लिये सुवर्णका, बृहस्पतिके लिये एक जोड़ा पीले वस्त्रका, शुक्रके लिये श्वेत रंगके घोड़ेका, शनैश्चरके लिये काली गौका, राहुके लिये लोहेकी बनी हुई वस्तुका और केतुके लिये उत्तम बकरेका दान करे। यजमानको ये सारी दक्षिणाएँ सुवर्णके साथ अथवा स्वर्णनिर्मित मूर्तिके रूपमें देनी चाहिये अथवा जिस प्रकार गुरु ( पुरोहित ) प्रसन्न हों, उनके आज्ञानुसार सभी ब्राह्मणोंको सुवर्णसे अलंकृत गौएँ अथवा केवल सुवर्ण दान करना चाहिये। किंतु सर्वत्र मन्त्रोच्चारणपूर्वक ही इन सभी दक्षिणाओंके देनेका विधान है ॥ ५८—६३ ॥

कपिले सर्वदेवानां पूजनीयासि रोहिणी। तीर्थदेवमयी यस्मादतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥ ६४ ॥
पुण्यस्त्वं शङ्ख पुण्यानां मङ्गलानां च मङ्गलम्। विष्णुना विधृतश्चासि ततः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥ ६५ ॥
धर्मस्त्वं वृषरूपेण जगदानन्दकारक। अष्टमूर्तेरधिष्ठानमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥ ६६ ॥
हिरण्यगर्भगर्भस्त्वं हेमबीजं विभावसोः। अनन्तपुण्यफलदमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥ ६७ ॥
पीतवस्त्रयुगं यस्माद् वासुदेवस्य वल्लभम्। प्रदानात् तस्य मे विष्णो ह्यतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥ ६८ ॥
विष्णुस्त्वमश्वरूपेण यस्मादमृतसम्भवः। चन्द्रार्कवाहनो नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥ ६९ ॥
यस्मात् त्वं पृथिवी सर्वा धेनुः केशवसंनिभा। सर्वपापहरा नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥ ७० ॥
यस्मादायसकर्माणि तवाधीनानि सर्वदा। लाङ्गलाद्यायुधादीनि तस्माच्छान्तिं प्रयच्छ मे ॥ ७१ ॥
छाग त्वं सर्वयज्ञानामङ्गत्वेन व्यवस्थितः। यानं विभावसोर्नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥ ७२ ॥
गवामङ्गेषु तिष्ठन्ति भुवनानि चतुर्दश। यस्मात् तस्माच्छ्रियै मे स्यादिह लोके परत्र च ॥ ७३ ॥
यस्मादशून्यं शयनं केशवस्य च सर्वदा। शय्या ममाप्यशून्यास्तु दत्ता जन्मनि जन्मनि ॥ ७४ ॥
यथा रत्नेषु सर्वेषु सर्वे देवाः प्रतिष्ठिताः। तथा रत्नानि यच्छन्तु रत्नदानेन मे सुराः ॥ ७५ ॥
यथा भूमिप्रदानस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्। दानान्यन्यानि मे शान्तिर्भूमिदानाद् भवत्विह ॥ ७६ ॥

( दान देते समय सभी देय वस्तुओंसे पृथक्-पृथक् इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—) 'कपिले! तुम रोहिणीरूपा हो, तीर्थ एवं देवता तुम्हारे स्वरूप हैं तथा तुम सम्पूर्ण देवोंकी पूजनीया हो, अतः मुझे शान्ति प्रदान करो।* शङ्ख! तुम पुण्योंके भी पुण्य और मङ्गलोंके भी मङ्गल हो। भगवान् विष्णुने तुम्हें अपने हाथमें धारण किया है, इसलिये तुम मुझे शान्ति प्रदान करो। जगत्को आनन्दित करनेवाले वृषभ! तुम वृषरूपसे धर्म और अष्टमूर्ति शिवजीके वाहन हो, अतः मुझे शान्ति प्रदान करो। सुवर्ण! तुम ब्रह्माके आत्मस्वरूप, अग्निके स्वर्ण-मय बीज और अनन्त पुण्यफलके प्रदाता हो, अतः मुझे शान्ति प्रदान करो। दो पीला वस्त्र अर्थात् पीताम्बर भगवान् श्रीकृष्णको परम प्रिय हैं, इसलिये विष्णो! उसका दान करनेसे आप मुझे शान्ति प्रदान करें। अश्व! तुम अश्वरूपसे विष्णु हो, अमृतसे उत्पन्न हुए हो तथा सूर्य एवं चन्द्रमाके नित्य वाहन हो, अतः मुझे शान्ति प्रदान करो। पृथ्वी! तुम समस्त धेनुस्वरूपा, केशवके सदृश फलदायिनी और सदा सम्पूर्ण पापोंको हरण करनेवाली हो, इसलिये मुझे शान्ति प्रदान करो।

* तुलनीय—"इडे रन्ते हव्ये काम्ये चन्द्रे" आदि ( यजुः ८। ४३ और उसके उवट-महीधरादिभाष्य )।

लौह ! चूँकि विश्वके सभी सम्पादित होनेवाले लौह कर्म हल एवं अस्त्र आदि सारे कार्य सदा तुम्हारे ही अधीन हैं, इसलिये तुम मुझे शान्ति प्रदान करो। छाग ! चूँकि तुम सम्पूर्ण यज्ञोंके मुख्य अङ्गरूपसे निर्धारित हो और अग्निदेवके नित्य वाहन हो, इसलिये मुझे शान्ति प्रदान करो। गौ ! चूँकि गौओंके अङ्गोंमें चौदहों भुवन निवास करते हैं, इसलिये तुम मेरे लिये इहलोक एवं परलोकमें भी लक्ष्मी प्रदान करो। जिस प्रकार भगवान् केशवकी शय्या सदा अशून्य ( लक्ष्मीसे युक्त ) रहती है, वैसे ही मेरे द्वारा भी दान की गयी शय्या जन्म-जन्ममें अशून्य बनी रहे। जैसे सभी रत्नोंमें समस्त देवता निवास करते हैं, वैसे ही रत्न-दान करनेसे वे देवता मुझे भी रत्न प्रदान करें। जिस प्रकार अन्य सभी दान भूमिदानकी सोलहवीं कलाकी भी समता नहीं कर सकते, अतः भूमि-दान करनेसे मुझे इस लोकमें शान्ति प्राप्त हो' ॥ ६४—७६ ॥

एवं सम्पूजयेद् भक्त्या वित्तशाठ्येन वर्जितः। रत्नकाञ्चनवस्त्रौघैर्धूपमाल्यानुलेपनैः ॥ ७७ ॥
अनेन विधिना यस्तु ग्रहपूजां समाचरेत्। सर्वान् कामानवाप्नोति प्रेत्य स्वर्गे महीयते ॥ ७८ ॥
यस्तु पीडाकरो नित्यमल्पवित्तस्य वा ग्रहः। तं च यत्नेन सम्पूज्य शेषानप्यर्चयेद् बुधः ॥ ७९ ॥
ग्रहा गावो नरेन्द्राश्च ब्राह्मणाश्च विशेषतः। पूजिताः पूजयन्त्येते निर्दहन्त्यवमानिताः ॥ ८० ॥
यथा बाणप्रहाराणां कवचं भवति वारणम्। तद्वद् दैवोपघातानां शान्तिर्भवति वारिका ॥ ८१ ॥
तस्मान्न दक्षिणाहीनं कर्तव्यं भूतिमिच्छता। सम्पूर्णया दक्षिणया यस्माद् देवोऽपि तुष्यति ॥ ८२ ॥
सदैवायुतहोमोऽयं नवग्रहमखे स्थितः। विवाहोत्सवयज्ञेषु प्रतिष्ठादिषु कर्मसु ॥ ८३ ॥
निर्विघ्नार्थं मुनिश्रेष्ठ तथोद्वेगाद्भुतेषु च। कथितोऽयुतहोमोऽयं लक्षहोममतः शृणु ॥ ८४ ॥
सर्वकामाप्तये यस्माल्लक्षहोमं विदुर्बुधाः। पितृणां वल्लभं साक्षाद् भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥ ८५ ॥
ग्रहताराबलं लब्ध्वा कृत्वा ब्राह्मणवाचनम्। गृहस्योत्तरपूर्वेण मण्डपं कारयेद् बुधः ॥ ८६ ॥
रुद्रायतनभूमौ वा चतुरस्रमुदङ्मुखम्। दशहस्तमथाष्टौ वा हस्तान् कुर्याद् विधानतः ॥ ८७ ॥
प्रागुदक्प्लवनां भूमिं कारयेद् यत्नतो बुधः।

इस प्रकार कृपणता छोड़कर भक्तिपूर्वक रत्न, सुवर्ण, वस्त्रसमूह, धूप, पुष्पमाला और चन्दन आदिसे ग्रहोंकी पूजा करनी चाहिये। जो मनुष्य उपर्युक्त विधिसे ग्रहोंकी पूजा करता है, वह इस लोकमें सभी कामनाओंको प्राप्त कर लेता है तथा मरनेपर स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। यदि किसी निर्धन मनुष्यको कोई ग्रह नित्य पीडा पहुँचा रहा हो तो उस बुद्धिमान्‌को चाहिये कि उस ग्रहकी यत्नपूर्वक भलीभाँति पूजा करके तत्पश्चात् शेष ग्रहोंकी भी अर्चना करे; क्योंकि ग्रह, गौ, राजा और ब्राह्मण—ये विशेषरूपसे पूजित होनेपर रक्षा करते हैं, अन्यथा अवहेलना किये जानेपर जलाकर भस्म कर देते हैं। जैसे बाणोंके आघातका प्रतिरोध करनेवाला कवच होता है, उसी प्रकार दुर्दैवद्वारा किये गये उपघातोंको निवारण करनेवाली शान्ति ( ग्रह-यज्ञ ) होती है। इसलिये वैभवकी अभिलाषा रखनेवाले मनुष्यको दक्षिणासे रहित यज्ञ नहीं करना चाहिये; क्योंकि भरपूर दक्षिणा देनेसे ( यज्ञका प्रधान ) देवता भी संतुष्ट हो जाता है। मुनिश्रेष्ठ ! नवग्रहोंके यज्ञमें यह दस हजार आहुतियोंवाला हवन ही होता है। इसी प्रकार विवाह, उत्सव, यज्ञ, देवप्रतिष्ठा आदि कर्मोंमें तथा चित्तकी उद्विग्नता एवं आकस्मिक विपत्तियोंमें भी यह दस हजार आहुतियोंवाला हवन ही बतलाया गया है। इसके बाद अब मैं एक लाख आहुतियोंवाला हवन बतला रहा हूँ, सुनिये। विद्वानोंने सम्पूर्ण कामनाओंकी सिद्धिके लिये लक्ष-होमका विधान किया है, क्योंकि यह पितरोंको परम प्रिय और साक्षात् भोग एवं मोक्षरूपी फलका प्रदाता है। बुद्धिमान् यजमानको चाहिये कि ग्रहबल और

तारावलको अपने अनुकूल पाकर ब्राह्मणद्वारा स्वस्तिवाचन कराये और अपने गृहके पूर्वोत्तर दिशामें अथवा शिवमन्दिरकी समीपवर्ती भूमिपर विधानपूर्वक एक मण्डपका निर्माण कराये, जो दस हाथ अथवा आठ हाथ लम्बा-चौड़ा चौकोर हो तथा उसका मुख ( प्रवेशद्वार ) उत्तर दिशाकी ओर हो। उसकी भूमिको यत्नपूर्वक पूर्वोत्तर दिशाकी ओर ढालू बना देना चाहिये ॥ ७७—८७½ ॥

प्रागुत्तरं समासाद्य प्रदेशं मण्डपस्य तु ॥ ८८ ॥
शोभनं कारयेत् कुण्डं यथावल्लक्षणान्वितम् । चतुरस्रं समन्तात्तु योनिवक्त्रं समेखलम् ॥ ८९ ॥
चतुरङ्गुलविस्तारा मेखला तद्वदुच्छ्रिता । प्रागुदक्प्लवना कार्या सर्वतः समवस्थिता ॥ ९० ॥
शान्त्यर्थं सर्वलोकानां नवग्रहमखः स्मृतः ।
मानहीनाधिकं कुण्डमनेकभयदं भवेत् । यस्मात् तस्मात् सुसम्पूर्णं शान्तिकुण्डं विधीयते ॥ ९१ ॥
अस्माद् दशगुणः प्रोक्तो लक्षहोमः स्वयम्भुवा । आहुतीभिः प्रयत्नेन दक्षिणाभिस्तथैव च ॥ ९२ ॥
द्विहस्तविस्तृतं तद्वच्चतुर्हस्तायतं पुनः । लक्षहोमे भवेत् कुण्डं योनिवक्त्रं त्रिमेखलम् ॥ ९३ ॥
तस्य चोत्तरपूर्वेण वितस्तित्रयसंस्थितम् । प्रागुदक्प्लवनं तच्च चतुरस्रं समन्ततः ॥ ९४ ॥
विष्कम्भार्धोच्छ्रितं प्रोक्तं स्थण्डिलं विश्वकर्मणा । संस्थापनाय देवानां वप्रत्रयसमावृतम् ॥ ९५ ॥
द्व्यङ्गुलो ह्युच्छ्रितो वप्रः प्रथमः स उदाहृतः । अङ्गुलोच्छ्रयसंयुक्तं वप्रद्वयमथोपरि ॥ ९६ ॥
त्र्यङ्गुलस्य च विस्तारः सर्वेषां कथ्यते बुधैः ।
दशाङ्गुलोच्छ्रिता भित्तिः स्थण्डिले स्यात् तथोपरि । तस्मिन्नावाहयेद् देवान् पूर्ववत् पुष्पतण्डुलैः ॥ ९७ ॥
आदित्याभिमुखाः सर्वाः साधिप्रत्यधिदेवताः । स्थापनीया मुनिश्रेष्ठ नोत्तरेण पराङ्मुखाः ॥ ९८ ॥
गरुत्मानधिकस्तत्र सम्पूज्यः श्रियमिच्छता ।
सामध्वनिशरीरस्त्वं वाहनं परमेष्ठिनः । विषपापहरो नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥ ९९ ॥

तदनन्तर मण्डपके पूर्वोत्तर भागमें यथार्थ लक्षणोंसे युक्त एक सुन्दर कुण्ड* तैयार कराये, जो चारों ओरसे चौकोर हो, जिसमें योनिरूप मुख बना हो और जो मेखलासे युक्त हो। यह मेखला चार अङ्गुल चौड़ी और उतनी ही ऊँची, कुण्डको चारों ओरसे घेरे हुए और पूर्वोत्तर दिशाकी ओर ढालू हो। सभी लोगोंके लिये ग्रह-शान्तिके निमित्त नवग्रह-यज्ञ बतलाया गया है। चूँकि उपर्युक्त परिमाणसे कम अथवा अधिक परिमाणमें बना हुआ कुण्ड अनेकों प्रकारका भय देनेवाला हो जाता है, इसलिये शान्तिकुण्डको परिमाणके अनुकूल ही बनाना चाहिये। ब्रह्माने लक्षहोमको अयुतहोमसे दसगुना अधिक फलदायक बतलाया है, इसलिये इसे प्रयत्नपूर्वक आहुतियों और दक्षिणाओंद्वारा सम्पन्न करना चाहिये। लक्षहोममें कुण्ड चार हाथ लम्बा और दो हाथ चौड़ा होता है, उसके भी मुखस्थानपर योनि बनी होती है और वह तीन मेखलाओंसे युक्त होता है। विश्वकर्माने कुण्डके पूर्वोत्तर दिशामें तीन वित्तेकी दूरीपर देवताओंकी स्थापनाके लिये एक वेदीका भी विधान बतलाया है, जो चारों ओरसे चौकोर, पूर्वोत्तर दिशाकी ओर ढालू, विष्कम्भ ( कुण्डके व्यास )के आधे परिमाणके बराबर ऊँची और तीन परिधियोंसे युक्त हो। इनमें पहली परिधि दो अङ्गुल ऊँची तथा शेष दो एक अङ्गुल ऊँची होनी चाहिये। विद्वानोंने इन सबकी चौड़ाई तीन अङ्गुलकी बतलायी है। वेदीके ऊपर दस अङ्गुल ऊँची एक दीवाल बनायी जाय, उसीपर पहलेकी ही भाँति फूल और अक्षतोंसे देवताओंका आवाहन किया जाय। मुनिश्रेष्ठ! अधिदेवताओं एवं प्रत्यधिदेवताओंसहित सभी ग्रहोंको सूर्यके सम्मुख ही स्थापित करना चाहिये, उत्तराभिमुख अथवा पराङ्मुख नहीं। लक्ष्मीकामी मनुष्यको इस यज्ञमें ( सभी देवताओंके अतिरिक्त ) गरुडकी भी पूजा करनी चाहिये। ( उस समय ऐसी

* कल्याण अग्निपुराणाङ्क अ० २४ की टिप्पणीमें कुण्ड-मण्डप-निर्माणकी पूरी विधि द्रष्टव्य है।

प्रार्थना करनी चाहिये——) 'गरुड ! तुम्हारे शरीरसे सामवेदकी ध्वनि निकलती रहती है, तुम भगवान् विष्णु- के वाहन और नित्य त्रिपरूप पापको हरनेवाले हो, अतः मुझे शान्ति प्रदान करो' ॥ ८८—९९ ॥

पूर्ववत् कुम्भमामन्त्र्य तद्वद्धोमं समाचरेत्।
सहस्राणां शतं हुत्वा समित्संख्याधिकं पुनः। घृतकुम्भवसोर्धारां पातयेदनलोपरि ॥१००॥
औदुम्बरीं तथार्द्रां च ऋज्वीं कोटरवर्जिताम्।
बाहुमात्रां स्रुचं कृत्वा ततः स्तम्भद्वयोपरि। घृतधारां तया सम्यगग्नेरुपरि पातयेत् ॥१०१॥
श्रावयेत् सूक्तमाग्नेयं वैष्णवं रौद्रमैन्दवम्। महावैश्वानरं साम ज्येष्ठसाम च वाचयेत् ॥१०२॥
स्नानं च यजमानस्य पूर्ववत् स्वस्तिवाचनम्। दातव्या यजमानेन पूर्ववद् दक्षिणाः पृथक् ॥१०३॥
कामक्रोधविहीनेन ऋत्विग्भ्यः शान्तचेतसा। नवग्रहमखे विप्राश्चत्वारो वेदवेदिनः ॥१०४॥
अथवा ऋत्विजौ शान्तौ द्वावेव श्रुतिकोविदौ। कार्यावयुतहोमे तु न प्रसज्येत विस्तरे ॥१०५॥

तत्पश्चात् पहलेकी तरह कलशकी स्थापना करके हवन आरम्भ करे। एक लाख आहुतियोंसे हवन करनेके पश्चात् पुन. समिधाओंकी संख्याके बराबर और अधिक आहुतियाँ डाले। फिर अग्निके ऊपर घृतकुम्भसे वसोर्धारा गिराये। ( वसोर्धाराकी विधि यह है——) भुजा-बराबर लम्बी गूलरकी लकड़ीसे, जो खोखली न हो तथा सीधी एवं गीली हो, स्रुवा बनवाकर उसे दो खम्भोंपर रखकर उसके द्वारा अग्निके ऊपर सम्यक् प्रकारसे घीकी धारा गिराये। उस समय अग्निसूक्त ( ऋ० सं० १ । १ ), विष्णुसूक्त ( वाजसं० ५ । १-२२ ), रुद्रसूक्त ( वही १६ ), और इन्दु (सोम) सूक्त ( ऋ० १ । ९१ ) सुनाना चाहिये तथा महावैश्वानर साम और ज्येष्ठसामका पाठ कराना चाहिये। तदुपरान्त पूर्ववत् यजमान स्नान कर स्वस्तिवाचन कराये तथा काम-क्रोधरहित होकर शान्तचित्तसे पूर्ववत् ऋत्विजोंको पृथक्-पृथक् दक्षिणा प्रदान करे। नवग्रह-यज्ञके अयुतहोममें चार वेदवेत्ता ब्राह्मणोंको अथवा श्रुतिके जानकार एवं शान्तस्वभाववाले दो ही ऋत्विजों-को नियुक्त करना चाहिये। विस्तारमें नहीं फँसना चाहिये ॥ १००—१०५ ॥

तद्वच्च दश चाष्टौ च लक्षहोमे तु ऋत्विजः। कर्तव्याः शक्तितस्तद्वच्चत्वारो वा विमत्सरः ॥१०६॥
नवग्रहमखात् सर्वं लक्षहोमे दशोत्तरम्। भक्ष्यान् दद्यान्मुनिश्रेष्ठ भूषणान्यपि शक्तितः ॥१०७॥
शयनानि सवस्त्राणि हैमानि कटकानि च। कर्णाङ्गुलिपवित्राणि कण्ठसूत्राणि शक्तिमान् ॥१०८॥
न कुर्याद् दक्षिणाहीनं वित्तशाठ्येन मानवः। अददन् लोभतो मोहात् कुलक्षयमवाप्नुते ॥१०९॥
अन्नदानं यथाशक्त्या कर्तव्यं भूतिमिच्छता। अन्नहीनः कृतो यस्माद् दुर्भिक्षफलदो भवेत् ॥११०॥
अन्नहीनो दहेद् राष्ट्रं मन्त्रहीनस्तु ऋत्विजः। यष्टारं दक्षिणाहीनो नास्ति यज्ञसमो रिपुः ॥१११॥
न वाप्यल्पधनः कुर्याल्लक्षहोमं नरः क्वचित्। यस्मात् पीडाकरो नित्यं यज्ञे भवति विग्रहः ॥११२॥
तमेव पूजयेद् भक्त्या द्वौ वा त्रीन् वा यथाविधि।
एकमप्यर्चयेद् भक्त्या ब्राह्मणं वेदपारगम्। दक्षिणाभिः प्रयत्नेन न बहूनल्पवित्तवान् ॥११३॥
लक्षहोमस्तु कर्तव्यो यदा वित्तं भवेद् बहु। यतः सर्वानवाप्नोति कुर्वन् कामान् विधानतः॥११४॥
पूज्यते शिवलोके च वस्वादित्यमरुद्गणैः। यावत् कल्पशतान्यष्टावथ मोक्षमवाप्नुयात् ॥११५॥
सकामो यस्त्विमं कुर्याल्लक्षहोमं यथाविधि। स तं काममवाप्नोति पदमानन्त्यमश्नुते ॥११६॥
पुत्रार्थी लभते पुत्रान् धनार्थी लभते धनम्। भार्यार्थी शोभनां भार्यां कुमारी च शुभं पतिम् ॥११७॥
भ्रष्टराज्यस्तथा राज्यं श्रीकामः श्रियमाप्नुयात्।
यं यं प्रार्थयते कामं स वै भवति पुष्कलः। निष्कामः कुरुते यस्तु स परं ब्रह्म गच्छति ॥११८॥

उसी प्रकार लक्षहोममें अपनी सामर्थ्यके अनुकूल मत्सररहित होकर दस, आठ अथवा चार ऋत्विजोंको नियुक्त करना चाहिये। मुनिश्रेष्ठ! सम्पत्तिशाली यजमानको यथाशक्ति भक्ष्य पदार्थ, आभूषण, वस्त्रोंसहित शय्या, स्वर्णनिर्मित कडे, कुण्डल, अँगूठी और कण्ठसूत्र ( हार ) आदि सभी वस्तुएँ लक्षहोममें नवग्रह-यज्ञसे दसगुनी अधिक देनी चाहिये। मनुष्यको कृपणतावश दक्षिणारहित यज्ञ नहीं करना चाहिये। जो लोभ अथवा अज्ञानसे भरपूर दक्षिणा नहीं देता, उसका कुल नष्ट हो जाता है। समृद्धिकामी मनुष्यको अपनी शक्तिके अनुसार अन्नका दान करना चाहिये; क्योंकि अन्नदानरहित किया हुआ यज्ञ दुर्भिक्षरूप फलका दाता हो जाता है। अन्नहीन यज्ञ राष्ट्रको, मन्त्रहीन ऋत्विजको और दक्षिणारहित यज्ञकर्ताको जलाकर नष्ट कर देता है। इस प्रकार ( विधिहीन ) यज्ञके समान अन्य कोई शत्रु नहीं है। अल्प धनवाले मनुष्यको कभी लक्षहोम नहीं करना चाहिये; क्योंकि यज्ञमें ( दक्षिणा आदिके लिये ) प्रकट हुआ विग्रह सदाके लिये कष्टकारक हो जाता है। स्वल्प सम्पत्तिवाला मनुष्य केवल पुरोहितकी अथवा दो या तीन ब्राह्मणोंकी भक्तिके साथ विधिपूर्वक पूजा करे अथवा एक ही वेदज्ञ ब्राह्मणकी भक्तिके साथ दक्षिणा आदिसे प्रयत्नपूर्वक अर्चना करे, बहुतोंके चक्करमें न पड़े। अधिक सम्पत्ति होनेपर लक्षहोम करना चाहिये; क्योंकि यह अधिक लाभदायक है। इसका विधिपूर्वक अनुष्ठान करनेवाला मनुष्य सभी कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। वह आठ सौ कल्पोंतक शिवलोकमें वसुगण, आदित्यगण और मरुद्गणोंद्वारा पूजित होता है तथा अन्तमें मोक्षको प्राप्त हो जाता है। जो मनुष्य किसी विशेष कामनासे इस लक्षहोमको विधिपूर्वक सम्पन्न करता है, उसे उस कामनाकी प्राप्ति तो हो ही जाती है, साथ ही वह अविनाशी पदको भी प्राप्त कर लेता है। इसका अनुष्ठान करनेसे पुत्रार्थीको पुत्रकी प्राप्ति होती है, धनार्थी धन लाभ करता है, भार्यार्थी सुन्दरी पत्नी, कुमारी कन्या सुन्दर पति, राज्यसे भ्रष्ट हुआ राजा राज्य और लक्ष्मीका अभिलाषी लक्ष्मी प्राप्त करता है। इस प्रकार मनुष्य जिस-जिस वस्तुकी अभिलाषा करता है, उसे वह प्रचुरमात्रामें प्राप्त हो जाती है। जो निष्कामभावसे इसका अनुष्ठान करता है, वह परब्रह्मको प्राप्त हो जाता है॥ १०६—११८॥

**अस्माच्छतगुणः प्रोक्तः कोटिहोमः स्वयम्भुवा। आहुतीभिः प्रयत्नेन दक्षिणाभिः फलेन च॥११९॥**
**पूर्ववद् ग्रहदेवानामावाहनविसर्जनैः।**
**होममन्त्रास्त एवोक्ताः स्नाने दाने तथैव च। कुण्डमण्डपवेदीनां विशेषोऽयं निबोध मे॥१२०॥**
**कोटिहोमे चतुर्हस्तं चतुरस्रं तु सर्वतः। योनिवक्त्रद्वयोपेतं तदप्याहुस्त्रिमेखलम्॥१२१॥**
**द्व्यङ्गुलाभ्युच्छ्रिता कार्या प्रथमा मेखला बुधैः। त्र्यङ्गुलाभ्युच्छ्रिता तद्वद् द्वितीया परिकीर्तिता॥१२२॥**
**उच्छ्रायविस्तराभ्यां च तृतीया चतुरङ्गुला। द्व्यङ्गुलश्चेति विस्तारः पूर्वयोरेव शस्यते॥१२३॥**
**वितस्तिमात्रा योनिः स्यात् षट्सप्ताङ्गुलविस्तृता। कूर्मपृष्ठोन्नता मध्ये पार्श्वयोश्चाङ्गुलोच्छ्रिता॥१२४॥**
**गजोष्ठसदृशी तद्वदायता छिद्रसंयुता। एतत् सर्वेषु कुण्डेषु योनिलक्षणमुच्यते॥१२५॥**
**मेखलोपरि सर्वत्र अश्वत्थदलसंनिभम्। वेदी च कोटिहोमे स्याद् वितस्तीनां चतुष्टयम्॥१२६॥**
**चतुरस्रा समन्ताच्च त्रिभिर्वप्रैस्तु संयुता। वप्रप्रमाणं पूर्वोक्तं वेदीनां च तथोच्छ्रयः॥१२७॥**
**तथा षोडशहस्तः स्यान्मण्डपश्च चतुर्मुखः। पूर्वद्वारे च संस्थाप्य बह्वृचं वेदपारगम्॥१२८॥**
**यजुर्विदं तथा याम्ये पश्चिमे सामवेदिनम्। अथर्ववेदिनं तद्वदुत्तरे स्थापयेद् बुधः॥१२९॥**
**अष्टौ तु होमकाः कार्या वेदवेदाङ्गवेदिनः।**
**एवं द्वादश विप्राः स्युर्वस्त्रमाल्यानुलेपनैः। पूर्ववत् पूजयेद् भक्त्या वस्त्रालंकारभूषणैः॥१३०॥**

*

मुने! प्रयत्नपूर्वक दी गयी आहुतियों, दक्षिणाओं और फलकी दृष्टिसे ब्रह्माने कोटिहोमको इस लक्षहोमसे सौगुना अधिक फलदायक बतलाया है। इसमें भी ग्रहों एवं देवोंके आवाहन, विसर्जन, स्नान तथा दानमें प्रयुक्त होनेवाले होममन्त्र पहलेके ही हैं। केवल कुण्ड, मण्डप और वेदीमें कुछ विशेषता है, वह मैं बतला रहा हूँ, सुनिये। इस कोटिहोममें सब ओरसे चौकोर चार हाथके परिमाणवाला कुण्ड बनाना चाहिये। वह दो योनिमुखों और तीन मेखलाओंसे युक्त हो। विद्वानोंको पहली मेखला दो अङ्गुल ऊँची बनानी चाहिये। उसी प्रकार दूसरी मेखला तीन अङ्गुल ऊँची बतलायी गयी है और तीसरी मेखला ऊँचाई और चौड़ाईमें चार अङ्गुलकी होनी चाहिये। पहली दोनों मेखलाओंकी चौड़ाई तो दो अङ्गुलकी ही ठीक मानी गयी है। इनके ऊपर एक बित्ता लम्बी और छः-सात अङ्गुल चौड़ी योनि होनी चाहिये। उसका मध्य-भाग कछुवेकी पीठकी तरह ऊँचा और दोनों पार्श्वभाग एक अङ्गुल ऊँचा हो। वह हाथीके होठके समान लम्बी और छिद्र (घी गिरनेका मार्ग) युक्त हो। सभी कुण्डोंमें यही योनिका लक्षण बतलाया जाता है। योनि सभी मेखलाओंके ऊपर पीपलके पत्तेके सदृश होनी चाहिये। कोटिहोममें चार बित्ता लम्बी, चारों ओरसे चौकोर और तीन परिधियोंसे युक्त एक वेदी होनी चाहिये। परिधियोंका प्रमाण तथा वेदियोंकी ऊँचाई पहले कही जा चुकी है। पुनः सोलह हाथ लम्बे-चौड़े मण्डपकी स्थापना करे, जिसमें चारों दिशाओंमें दरवाजे हों। बुद्धिसम्पन्न यजमान उसके पूर्वद्वारपर ऋग्वेदके पारगामी ब्राह्मणको, दक्षिण द्वारपर यजुर्वेदके ज्ञाताको, पश्चिमद्वारपर सामवेदीको और उत्तरद्वारपर अथर्ववेदीको नियुक्त करे। इनके अतिरिक्त वेद एवं वेदाङ्गोंके ज्ञाता आठ ब्राह्मणोंको हवन करनेके लिये नियुक्त करना चाहिये। इस प्रकार इस कार्यमें बारह ब्राह्मणोंको नियुक्त करनेका विधान है। इन सभी ब्राह्मणोंका वस्त्र, आभूषण, पुष्पमाला, चन्दन आदि सामग्रियोंद्वारा पूर्ववत् भक्तिपूर्वक पूजन करना चाहिये॥

रात्रिसूक्तं च रौद्रं च पावमानं सुमङ्गलम्। पूर्वतो बह्वृचः शान्तिं पठन्नास्ते ह्युदङ्मुखः॥ १३१॥
शाक्तं शाक्रं च सौम्यं च कौष्माण्डं शान्तिमेव च। पाठयेद् दक्षिणद्वारि यजुर्वेदिनमुत्तमम्॥ १३२॥
सुपर्णमथ वैराजमाग्नेयं रुद्रसंहिताम्। ज्येष्ठसाम तथा शान्तिं छन्दोगः पश्चिमे जपेत्॥ १३३॥
शान्तिसूक्तं च सौरं च तथा शाकुनकं शुभम्। पौष्टिकं च महाराज्यमुत्तरेणाप्यथर्ववित्॥ १३४॥
पञ्चभिः सप्तभिर्वापि होमः कार्योऽत्र पूर्ववत्। स्नाने दाने च मन्त्राः स्युस्त एव मुनिसत्तम॥ १३५॥
वसोर्धाराविधानं च लक्षहोमे विशिष्यते।
अनेन विधिना यस्तु कोटिहोमं समाचरेत्। सर्वान् कामानवाप्नोति ततो विष्णुपदं व्रजेत्॥ १३६॥
यः पठेच्छृणुयाद् वापि ग्रहयज्ञत्रयं नरः। सर्वपापविशुद्धात्मा पदमिन्द्रस्य गच्छति॥ १३७॥
अश्वमेधसहस्राणि दश चाष्टौ च धर्मवित्। कृत्वा यत् फलमाप्नोति कोटिहोमात् तदश्नुते॥ १३८॥
ब्रह्महत्यासहस्राणि भ्रूणहत्यार्बुदानि च। कोटिहोमेन नश्यन्ति यथावच्छिवभाषितम्॥ १३९॥

(कार्यारम्भ होनेपर) पूर्वद्वारपर स्थित ऋग्वेदी ब्राह्मण उत्तराभिमुख हो परम माङ्गलिक रात्रिसूक्त, रुद्रसूक्त, पवमानसूक्त तथा अन्यान्य शान्ति-सूक्तोंका पाठ करता रहे। दक्षिणद्वारपर स्थित श्रेष्ठ यजुर्वेदी ब्राह्मणसे शक्तिसूक्त, शक्रसूक्त, सोमसूक्त, कूष्माण्डसूक्त तथा शान्ति सूक्तका पाठ करवाना चाहिये। पश्चिमद्वारपर स्थित सामवेदी ब्राह्मण सुपर्ण, वैराज, आग्नेय—इन ऋचाओं, रुद्रसंहिता, ज्येष्ठसाम तथा शान्तिपाठोंका गान करे। उत्तरद्वारपर नियुक्त अथर्ववेदी ब्राह्मण शान्ति (शंतातीय १९) सूक्त, सूर्यसूक्त, माङ्गलिक शकुनिसूक्त, पौष्टिक एवं महाराज्य (सूक्त)का पाठ करे। मुनिश्रेष्ठ! इसमें भी पूर्ववत् पाँच अथवा सात ब्राह्मणोंद्वारा हवन कराना चाहिये। स्नान और

दानके लिये वे ही पूर्वकथित मन्त्र इसमें भी हैं। लक्षहोममें केवल वसोर्धाराका विधान विशेष होता है। जो मनुष्य उपर्युक्त विधिसे कोटिहोमका विधान करता है, वह इस लोकमें सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर लेता है और मरनेपर विष्णुलोकमें चला जाता है। जो मनुष्य तीनों प्रकारके ग्रहयज्ञोंका पाठ अथवा श्रवण करता है, उसका आत्मा समस्त पापोंसे विशुद्ध हो जाता है और अन्तमें वह इन्द्रलोकमें चला जाता है। धर्मज्ञ मनुष्य अठारह हजार अश्वमेधयज्ञोंके अनुष्ठानसे जो फल प्राप्त करता है, वह फल कोटिहोम नामक यज्ञसे प्राप्त हो जाता है। शिवजीने यथार्थरूपसे कहा है कि कोटिहोमके अनुष्ठानसे हजारों ब्रह्महत्या और अरबों भ्रूणहत्या-जैसे महापातक नष्ट हो जाते हैं ॥ १३१—१३९ ॥

वश्यकर्माभिचारादि तथैवोच्चाटनादिकम्। नवग्रहमखं कृत्वा ततः काम्यं समाचरेत् ॥ १४० ॥
अन्यथा फलदं पुंसां न काम्यं जायते क्वचित्। तस्मादयुतहोमस्य विधानं पूर्वमाचरेत् ॥ १४१ ॥
वृत्तं चोच्चाटने कुण्डं तथा च वशकर्मणि। त्रिमेखलैश्चैकवक्त्रमरत्निविस्तरेण तु ॥ १४२ ॥
पलाशसमिधः शस्ता मधुगोरोचनान्विताः। चन्दनागुरुणा तद्वत् कुङ्कुमेनाभिषिञ्चिताः ॥ १४३ ॥
होमयेन्मधुसर्पिर्भ्यां बिल्वानि कमलानि च। सहस्राणि दशैवोक्तं सर्वदैव स्वयम्भुवा ॥ १४४ ॥
वश्यकर्मणि बिल्वानां पद्मानां चैव धर्मवित्। सुमित्रिया न आप ओषधय इति होमयेत् ॥ १४५ ॥
न चात्र स्थापनं कार्यं न च कुम्भाभिषेचनम्। स्नानं सर्वौषधैः कृत्वा शुक्लपुष्पाम्बरो गृही ॥ १४६ ॥
कण्ठसूत्रैः सकनकैर्विप्रान् समभिपूजयेत्। सूक्ष्मवस्त्राणि देयानि शुक्ला गावः सकाञ्चनाः ॥ १४७ ॥
अवशानि वशीकुर्यात् सर्वशत्रुबलान्यपि। अमित्राण्यपि मित्राणि होमोऽयं पापनाशनः ॥ १४८ ॥

नारद! यदि वशीकरण, अभिचार तथा उच्चाटन आदि काम्य कर्मोंका अनुष्ठान करना हो तो पहले नवग्रह-यज्ञ सम्पन्न कर तत्पश्चात् काम्य कर्म करना चाहिये, अन्यथा वह काम्य कर्म मनुष्योंको कहीं भी फलदायक नहीं हो सकता। अतः पहले अयुत-होमका सम्पादन कर लेना उचित है। उच्चाटन और वशीकरण कर्ममें कुण्डको गोलाकार बनाना चाहिये। उसका विस्तार अर्थात् व्यास एक अरत्नि हो। वह तीन मेखलाओं और एक मुखसे युक्त हो। इन कार्योंमें मधु, गोरोचन, चन्दन, अगुरु और कुङ्कुमसे अभिषिक्त की हुई पलाशकी समिधाएँ प्रशस्त मानी गयी हैं। मधु और घीसे चुपड़े हुए बेल और कमल-पुष्पके हवनका विधान है। ब्रह्माने सदा दस हजार आहुतियोंका ही विधान बतलाया है। धर्मज्ञ यजमानको वशीकरण-कर्ममें 'सुमित्रिया न आप ओषधयः—' इस मन्त्रसे हवन करना चाहिये। इस कार्यमें कलशका स्थापन और अभिषेचन नहीं किया जाता। गृहस्थ यजमान सर्वौषधमिश्रित जलसे स्नान करके श्वेत वस्त्र और श्वेत पुष्पोंकी माला धारण कर ले और स्वर्णनिर्मित कण्ठहारोंसे ब्राह्मणोंकी पूजा करे तथा उन्हें महीन वस्त्र एवं स्वर्णसे विभूषित श्वेत रंगकी गौएँ प्रदान करे। (इस प्रकार विधिपूर्वक सम्पन्न किया गया) यह पापनाशक हवन वशमें न आनेवाली शत्रुओंकी सारी सेनाओंको वशीभूत कर देता है और शत्रुओंको मित्र बना देता है ॥ १४०—१४८ ॥

विद्वेषणेऽभिचारे च त्रिकोणं कुण्डमिष्यते। त्रिमेखलं कोणमुखं हस्तमात्रं च सर्वशः ॥ १४९ ॥
होमं कुर्युस्ततो विप्रा रक्तमाल्यानुलेपनाः। निवीतलोहितोष्णीषा लोहिताम्बरधारिणः ॥ १५० ॥
नववायसरक्ताढ्यपात्रत्रयसमन्विताः।
समिधो वामहस्तेन श्येनास्थिवलसंयुताः। होतव्या मुक्तकेशैस्तु ध्यायद्भिरशिवं रिपोः ॥ १५१ ॥
दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु तथा हुंफडितीति च। श्येनाभिचारमन्त्रेण क्षुरं समभिमन्त्र्य च ॥ १५२ ॥

प्रतिरूपं रिपोः कृत्वा क्षुरेण परिकर्तयेत् । रिपुरूपस्य शकलान्यथैवाग्नौ विनिःक्षिपेत् ॥ १५३ ॥
ग्रहयज्ञविधानान्ते सदैवाभिचरन् पुनः । विद्वेषणं तथा कुर्वन्नेतदेव समाचरेत् ॥ १५४ ॥
इहैव फलदं पुंसामेतन्नामुत्र शोभनम् । तस्माच्छान्तिकमेवात्र कर्तव्यं भूतिमिच्छता ॥ १५५ ॥
ग्रहयज्ञत्रयं कुर्याद् यस्त्वकाम्येन मानवः । स विष्णोः पदमाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥ १५६ ॥
य इदं शृणुयान्नित्यं श्रावयेद् वापि मानवः । न तस्य ग्रहपीडा स्यान्न च बन्धुजनक्षयः ॥ १५७ ॥
ग्रहयज्ञत्रयं गेहे लिखितं यत्र तिष्ठति । न पीडा तत्र बालानां न रोगो न च बन्धनम् ॥ १५८ ॥
अशेषयज्ञफलदं निःशेषाघविनाशनम् । कोटिहोमं विदुः प्राज्ञा भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥ १५९ ॥
अश्वमेधफलं प्राहुर्लक्षहोमं सुरोत्तमाः । द्वादशाहमखस्तद्वन्नवग्रहमखः स्मृतः ॥ १६० ॥
इति कथितमिदानीमुत्सवानन्दहेतोः सकलकलुषहारी देवयज्ञाभिषेकः ।
परिपठति य इत्थं यः शृणोति प्रसङ्गादभिभवति स शत्रूनायुरारोग्ययुक्तः ॥ १६१ ॥

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे नवग्रहहोमशान्तिविधानं नाम त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥ ९३ ॥*

समृद्धिकामी पुरुषको इन कर्मोंमेंसे केवल शान्ति-कर्मका ही अनुष्ठान करना चाहिये । जो मानव निष्काम-भावसे इन तीनों ग्रहयज्ञोंका अनुष्ठान करता है, वह पुनरागमनरहित विष्णुपदको प्राप्त हो जाता है । जो मनुष्य इस ग्रहयज्ञको नित्य सुनता अथवा दूसरेको सुनाता है, उसे न तो ग्रहजनित पीडा होती है और न उसके बन्धुजनोंका विनाश ही होता है । जिस घरमें ये तीनों (ग्रह, लक्ष एवं कोटि होम) यज्ञ-विधान लिखकर रखे रहते हैं, वहाँ न तो बालकोंको कोई कष्ट होता है, न रोग तथा बन्धन भी नहीं होता । विद्वानोंका कहना है कि कोटिहोम सम्पूर्ण यज्ञोंके फलका प्रदाता, अखिल पापोंका विनाशक और भोग एवं मोक्षरूप फल प्रदान करनेवाला है । श्रेष्ठ देवगण लक्षहोमको अश्वमेध-यज्ञके समान फलदायक बतलाते हैं । उसी प्रकार नवग्रह-यज्ञ, द्वादशाह-यज्ञके सदृश फलकारक बतलाया जाता है । इस प्रकार मैंने इस समय उत्सवके आनन्दकी प्राप्तिके लिये सम्पूर्ण पापोंका विनाश करनेवाले इस देवयज्ञाभिषेकका वर्णन कर दिया । जो मनुष्य प्रसङ्गवश इसका इसी रूपमें पाठ अथवा श्रवण करता है, वह दीर्घायु एवं नीरोगतासे युक्त होकर अपने शत्रुओंको पराजित कर देता है ॥ १४०–१६१ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें नवग्रहहोमशान्तिविधान नामक तिरानबेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ९३ ॥

## चौरानबेवाँ अध्याय

### नवग्रहोंके स्वरूपका वर्णन

शिव उवाच

पद्मासनः पद्मकरः पद्मगर्भसमद्युतिः । सप्ताश्वः सप्तरज्जुश्च द्विभुजः स्यात् सदा रविः ॥ १ ॥
श्वेतः श्वेताम्बरधरः श्वेताश्वः श्वेतवाहनः । गदापाणिर्द्विबाहुश्च कर्तव्यो वरदः शशी ॥ २ ॥
रक्तमाल्याम्बरधरः शक्तिशूलगदाधरः । चतुर्भुजः रक्तरोमा वरदः स्याद् धरासुतः ॥ ३ ॥
पीतमाल्याम्बरधरः कर्णिकारसमद्युतिः । खड्गचर्मगदापाणिः सिंहस्थो वरदो बुधः ॥ ४ ॥
देवदैत्यगुरू तद्वत् पीतश्वेतौ चतुर्भुजौ । दण्डिनौ वरदौ कार्यौ साक्षसूत्रकमण्डलू ॥ ५ ॥
इन्द्रनीलद्युतिः शूली वरदो गृध्रवाहनः । बाणबाणासनधरः कर्तव्योऽर्कसुतस्तथा ॥ ६ ॥
करालवदनः खड्गचर्मशूली वरप्रदः । नीलसिंहासनस्थश्च राहुरत्र प्रशस्यते ॥ ७ ॥
धूम्रा द्विबाहवः सर्वे गदिनो विकृताननाः । गृध्रासनगता नित्यं केतवः स्युर्वरप्रदाः ॥ ८ ॥
सर्वे किरीटिनः कार्या ग्रहा लोकहितावहाः । ह्यङ्गुलेनोच्छ्रिताः सर्वे शतमष्टोत्तरं सदा ॥ ९ ॥

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे ग्रहरूपाख्यानं नाम चतुर्णवतितमोऽध्यायः ॥ ९४ ॥*

शिवजीने कहा—नारद ! ( चित्र-प्रतिमादिमें ) सूर्यदेवकी दो भुजाएँ निर्दिष्ट हैं, वे कमलके आसनपर विराजमान रहते हैं, उनके दोनों हाथोंमें कमल सुशोभित रहते हैं। उनकी कान्ति कमलके भीतरी भागकी-सी है और वे सात घोड़ों तथा सात रस्सियोंसे जुते रथपर आरूढ़ रहते हैं। चन्द्रमा गौरवर्ण, श्वेतवस्त्र, और श्वेत अश्वयुक्त हैं। उनका वाहन—श्वेत अश्वयुक्त रथ है। उनके दोनों हाथ गदा और वरदमुद्रासे युक्त बनाना चाहिये। धरणीनन्दन मंगलके चार भुजाएँ हैं। उनके शरीरके रोएँ लाल हैं, वे लाल रंगकी पुष्पमाला और वस्त्र धारण करते हैं और उनके चारों हाथ क्रमशः शक्ति, त्रिशूल, गदा एवं वरमुद्रासे सुशोभित रहते हैं। बुध पीले रंगकी पुष्पमाला और वस्त्र धारण करते हैं। उनकी शरीर-कान्ति कनेरके पुष्प-सरीखी है। वे भी चारो हाथोंमें क्रमशः तलवार, ढाल, गदा और वरमुद्रा धारण किये रहते हैं तथा सिंहपर सवार होते हैं। देवताओं और दैत्योंके गुरु बृहस्पति और शुक्रकी प्रतिमाएँ क्रमशः पीत और श्वेत वर्णकी करनी चाहिये। उनके चार भुजाएँ हैं, जिनमें वे दण्ड, रुद्राक्षकी माला, कमण्डलु और वरमुद्रा धारण किये रहते हैं। शनैश्चरकी शरीर-कान्ति इन्द्र-नीलमणिकी-सी है। वे गीधपर सवार होते हैं और हाथमें धनुष-बाण, त्रिशूल और वरमुद्रा धारण किये रहते हैं। राहुका मुख भयंकर है। उनके हाथोंमें तलवार, ढाल, त्रिशूल और वरमुद्रा शोभा पाती हैं तथा वे नील रंगके सिंहासनपर आसीन होते हैं। ध्यान ( प्रतिमा ) में ऐसे ही राहु प्रशस्त माने गये हैं। केतु बहुतेरे हैं। उन सबोंके दो भुजाएँ हैं। उनके शरीर आदि धूम्रवर्णके हैं। उनके मुख विकृत हैं। वे दोनो हाथोंमें गदा एवं वरमुद्रा धारण किये हैं और नित्य गीधपर समासीन रहते हैं। इन सभी लोक-हितकारी ग्रहोंको किरीटसे सुशोभित कर देना चाहिये तथा इन सबकी ऊँचाई एक सौ आठ अङ्गुल ( ४॥ हाथ )की होनी चाहिये ॥ १—९ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें ग्रहरूपाख्यान नामक चौरानबेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ९४ ॥

---

# पंचानबेवाँ अध्याय

## माहेश्वर-व्रतकी विधि और उसका माहात्म्य

नारद उवाच

भगवन् भूतभव्येश तथान्यदपि यच्छ्रुतम्। भुक्तिमुक्तिफलायालं तत् पुनर्वक्तुमर्हसि ॥ १ ॥
एवमुक्तोऽब्रवीच्छम्भुरयं वाङ्मयपारगः। मत्समस्तपसा ब्रह्मन् पुराणश्रुतिविस्तरैः ॥ २ ॥
धर्मोऽयं वृषरूपेण नन्दी नाम गणाधिपः। धर्मान् माहेश्वरान् वक्ष्यत्यतः प्रभृति नारद ॥ ३ ॥

नारदजीने पूछा—भूत और भविष्यके स्वामी भगवन् ! इनके अतिरिक्त भोग और मोक्षरूप फल प्रदान करनेमें समर्थ यदि कोई अन्य व्रत सुना गया हो तो उसे पुनः कहनेकी कृपा करें। ऐसा पूछे जानेपर भगवान् शम्भुने कहा—'ब्रह्मन् ! यह नन्दी शब्दशास्त्रका पारगामी विद्वान् और तपस्या तथा पुराणो एवं श्रुतियोंकी विस्तृत जानकारीमें मेरे समान है। यह वृषरूपसे साक्षात् धर्म और गणका अधीश्वर है। नारद ! अब यही इससे आगे माहेश्वर-धर्मोंका वर्णन करेगा ॥ १—३ ॥

मत्स्य उवाच

इत्युक्त्वा देवदेवेशस्तत्रैवान्तरधीयत।
नारदोऽपि हि शुश्रूषुरपृच्छन्नन्दिकेश्वरम्। आदिष्टस्त्वं शिवेनेह वद माहेश्वरं व्रतम् ॥ ४ ॥

मत्स्यभगवान्‌ने कहा—ऐसा कहकर देवाधिदेव शम्भु वहीं अन्तर्हित हो गये। तब श्रवण करनेकी उत्कट इच्छावाले नारदने नन्दिकेश्वरसे पूछा—'नन्दी! शिवजीने आपको इसके लिये जैसा आदेश दिया है, आप उस प्रकार माहेश्वर-व्रतका वर्णन कीजिये'॥ ४॥

नन्दिकेश्वर उवाच

शृणुष्वावहितो ब्रह्मन् वक्ष्ये माहेश्वरं व्रतम्। त्रिषु लोकेषु विख्याता नाम्ना शिवचतुर्दशी॥ ५॥
मार्गशीर्षत्रयोदश्यां सितायामेकभोजनः। प्रार्थयेद् देवदेवेशं त्वामहं शरणं गतः॥ ६॥
चतुर्दश्यां निराहारः सम्यगभ्यर्च्य शंकरम्। सुवर्णवृषभं दत्त्वा भोक्ष्यामि च परेऽहनि॥ ७॥
एवं नियमकृत् सुप्त्वा प्रातरुत्थाय मानवः।
कृतस्नानजपः पश्चादुमया सह शंकरम्। पूजयेत् कमलैः शुभ्रैर्गन्धमाल्यानुलेपनैः॥ ८॥
पादौ नमः शिवायेति शिरः सर्वात्मने नमः। त्रिनेत्रायेति नेत्राणि ललाटं हरये नमः॥ ९॥
मुखमिन्दुमुखायेति श्रीकण्ठायेति कन्धराम्। सद्योजाताय कर्णौ तु वामदेवाय वै भुजौ॥ १०॥
अघोरहृदयायेति हृदयं चाभिपूजयेत्। स्तनौ तत्पुरुषायेति तथेशानाय चोदरम्॥ ११॥
पार्श्वौ चानन्तधर्माय ज्ञानभूताय वै कटिम्। ऊरू चानन्तवैराग्यसिंहायेत्यभिपूजयेत्॥ १२॥
अनन्तैश्वर्यनाथाय जानुनी चार्चयेद् बुधः। प्रधानाय नमो जङ्घे गुल्फौ व्योमात्मने नमः॥ १३॥
व्योमकेशात्मरूपाय केशान् पृष्ठं च पूजयेत्। नमः पुष्ट्यै नमस्तुष्ट्यै पार्वतीं चापि पूजयेत् १४॥
ततस्तु वृषभं हैममुदकुम्भसमन्वितम्।
शुक्लमाल्याम्बरधरं पञ्चरत्नसमन्वितम्। भक्ष्यैर्नानाविधैर्युक्तं ब्राह्मणाय निवेदयेत्॥ १५॥
प्रीयतां देवदेवोऽत्र सद्योजातः पिनाकधृक्।
ततो विप्रान् समाहूय तर्पयेद् भक्तितः शुभान्। पृषदाज्यं च सम्प्राश्य स्वपेद् भूमावुदङ्मुखः॥ १६॥
पञ्चदश्यां च सम्पूज्य विप्रान् भुञ्जीत वाग्यतः। तद्वत् कृष्णचतुर्दश्यामेतत् सर्वं समाचरेत्॥ १७॥

नन्दिकेश्वर बोले—ब्रह्मन्! मैं माहेश्वर-व्रतका वर्णन कर रहा हूँ, आप समाहितचित्तसे श्रवण कीजिये। वह व्रत तीनों लोकोंमें शिवचतुर्दशीके नामसे विख्यात है। (इस व्रतके आरम्भमें) व्रती मानव मार्गशीर्ष मासके शुक्लपक्षकी त्रयोदशी तिथिको एक बार भोजन कर देवाधिदेव शंकरजीसे इस प्रकार प्रार्थना करे—'भगवन्! मैं आपके शरणागत हूँ। मैं चतुर्दशी तिथिको निराहार रहकर भगवान् शंकरकी भलीभाँति अर्चना करनेके पश्चात् स्वर्ण-निर्मित वृषभका दान करके दूसरे दिन भोजन करूँगा।' इस प्रकारका नियम ग्रहण कर रात्रिमें शयन करे। प्रातःकाल उठकर स्नान-जप आदि नित्यकर्मसे निवृत्त होकर सुन्दर कमल-पुष्पों, सुगन्धित पुष्पमालाओं और चन्दन आदिसे पार्वती-सहित शंकरजीकी वक्ष्यमाण रीतिसे पूजा करे—'शिवाय नमः' से दोनों चरणोंका, 'सर्वात्मने नमः' से सिरका, 'त्रिनेत्राय नमः' से नेत्रोंका, 'हरये नमः'से ललाटका, 'इन्दुमुखाय नमः'से मुखका, 'श्रीकण्ठाय नमः' से कंधोंका, 'सद्योजाताय नमः' से कानोंका, 'वामदेवाय नमः'से भुजाओंका और 'अघोरहृदयाय नमः' से हृदयका पूजन करे। 'तत्पुरुषाय नमः'से स्तनोंकी, 'ईशानाय नमः' से उदरकी, 'अनन्तधर्माय नमः' से दोनों पार्श्वभागोंकी, 'ज्ञानभूताय नमः'से कटिकी और 'अनन्तवैराग्यसिंहाय नमः'से ऊरुओंकी अर्चना करे। बुद्धिमान् व्रतीको 'अनन्तैश्वर्यनाथाय नमः' से जानुओंका, 'प्रधानाय नमः'से जङ्घाओंका और 'व्योमात्मने नमः' से गुल्फोंका पूजन करना चाहिये। फिर 'व्योमकेशात्मरूपाय नमः' से बालों और पीठकी अर्चना करे। 'पुष्ट्यै नमः' एवं 'तुष्ट्यै नमः'

से पार्वतीका भी पूजन करे । तत्पश्चात् जलपूर्ण कलश-सहित, श्वेत पुष्पमाला और वस्त्रसे सुशोभित, पञ्चरत्न-युक्त स्वर्णमय वृषभको नाना प्रकारके खाद्य पदार्थोंके साथ ब्राह्मणको दान कर दे और यों प्रार्थना करे—'पिनाकधारी देवाधिदेव सद्योजात मेरे ऊपर प्रसन्न हों ।' तदनन्तर माङ्गलिक ब्राह्मणोंको बुलाकर उन्हें भक्तिपूर्वक भोजन एवं दक्षिणा आदि देकर तृप्त करे और स्वयं दधिमिश्रित भो... रात्रिमें उत्तराभिमुख हो भूमिपर शयन करे । पूर्णिमा तिथिको प्रातःकाल उठकर वृषभ-की पूजा करनेके पश्चात् मौन होकर भोजन करे । इसी प्रकार कृष्णपक्षकी चतुर्दशीमें भी यह सब सम्पन्न करना चाहिये ॥ ९—१७ ॥

चतुर्दशीषु सर्वासु कुर्यात् पूर्ववदर्चनम् । ये तु मासे विशेषाः स्युस्तान् निबोध क्रमादिह ॥ १८ ॥
मार्गशीर्षादिमासेषु क्रमादेतदुदीरयेत् । शंकराय नमस्तेऽस्तु नमस्ते करवीरक ॥ १९ ॥
त्र्यम्बकाय नमस्तेऽस्तु महेश्वरमतः परम् । नमस्तेऽस्तु महादेव स्थाणवे च ततः परम् ॥ २० ॥
नमः पशुपते नाथ नमस्ते शम्भवे पुनः । नमस्ते परमानन्द नमः सोमार्धधारिणे ॥ २१ ॥
नमो भीमाय इत्येवं त्वामहं शरणं गतः । गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् ॥ २२ ॥
पञ्चगव्यं ततो बिल्वं कर्पूरं चागुरुं यवाः ।
तिलाः कृष्णाश्च विधिवत् प्राशनं क्रमशः स्मृतम् । प्रतिमासं चतुर्दश्योरेकैकं प्राशनं स्मृतम् ॥ २३ ॥
मन्दारमालतीभिश्च तथा धत्तूरकैरपि । सिन्धुवारैरशोकैश्च मल्लिकाभिश्च पाटलैः ॥ २४ ॥
अर्कपुष्पैः कदम्बैश्च शतपत्र्या तथोत्पलैः । एकैकेन चतुर्दश्योरर्चयेत् पार्वतीपतिम् ॥ २५ ॥

इसी प्रकार सभी चतुर्दशी तिथियोंमें पूर्ववत् शिव-पार्वतीका पूजन करना चाहिये। अब प्रत्येक मासमें जो विशेषताएँ हैं, उन्हें क्रमशः ( बतला रहा हूँ, ) सुनिये। मार्ग-शीर्ष आदि प्रत्येक मासमें क्रमशः इन मन्त्रोंका उच्चारण करना चाहिये—'शंकराय नमस्तेऽस्तु'—आप शंकरके लिये मेरा नमस्कार प्राप्त हो। 'नमस्ते करवीरक'—करवीरक ! आपको नमस्कार है । 'त्र्यम्बकाय नमस्तेऽस्तु'—आप त्र्यम्बकके लिये प्रणाम है । इसके बाद 'महेश्वराय नमः'—महेश्वरको अभिवादन है । 'महादेव नमस्तेऽस्तु'—महादेव ! आपको मेरा नमस्कार प्राप्त हो । उसके बाद 'स्थाणवे नमः'—स्थाणुको प्रणाम है । 'पशुपतये नमः'—पशुपतिको अभिवादन है । 'नाथ नमस्ते'—नाथ ! आपको नमस्कार है । पुनः 'शम्भवे नमः'—शम्भुको प्रणाम है । 'परमानन्द नमस्ते'—परमानन्द ! आपको अभिवादन है । 'सोमार्धधारिणे नमः'—ललाटमें अर्धचन्द्र धारण करनेवालेको नमस्कार है । 'भीमाय नमः'—भयंकर रूपधारीको प्रणाम है । ऐसा कहकर अन्तमें कहे कि 'मैं आपके शरणागत हूँ ।' प्रत्येक मासकी दोनों चतुर्दशी तिथियोंमें गोमूत्र, गोबर, दूध, दही, घी, कुशोदक, पञ्चगव्य, बेल, कपूर, अगुरु, यव और काला तिल—इनमेंसे क्रमशः एक-एक पदार्थ-का प्राशन बतलाया गया है । इसी प्रकार प्रत्येक मासकी दोनों चतुर्दशी तिथियोंमें मन्दार ( पारिभद्र ), मालती, धतूरा, सिन्दुवार, अशोक, मल्लिका, पाटल ( पाँडर पुष्प या लाल गुलाब ), मन्दार-पुष्प ( सूर्यमुखी ), कदम्ब, शतपत्री ( श्वेत कमल या गुलाब ) और कमल—इनमेंसे क्रमशः एक-एकके द्वारा पार्वतीपति शंकरकी अर्चना करनी चाहिये ॥ १८—२५ ॥

पुनश्च कार्तिके मासे प्राप्ते संतर्पयेद् द्विजान् । अन्नैर्नानाविधैर्भक्ष्यैर्वस्त्रमाल्यविभूषणैः ॥ २६ ॥
कृत्वा नीलवृषोत्सर्गं श्रुत्युक्तविधिना नरः । उमामहेश्वरं हैमं वृषभं च गवा सह ॥ २७ ॥
मुक्ताफलाष्टकयुतं सितनेत्रपटावृताम् । सर्वोपस्करसंयुक्तां शय्यां दद्यात् सकुम्भकाम् ॥ २८ ॥
ताम्रपात्रोपरि पुनः शालितण्डुलसंयुतम् । स्थाप्य विप्राय शान्ताय वेदव्रतपराय च ॥ २९ ॥

ज्येष्ठसामविदे देयं न बकव्रतिने क्वचित्। गुणज्ञे श्रोत्रिये दद्यादाचार्ये तत्त्ववेदिनि ॥ ३० ॥
अव्यङ्गाङ्गाय सौम्याय सदा कल्याणकारिणे। सपत्नीकाय सम्पूज्य वस्त्रमाल्यविभूषणैः ॥ ३१ ॥
गुरौ सति गुरोर्देयं तदभावे द्विजातये। न वित्तशाठ्यं कुर्वीत कुर्वन् दोषात् पतत्यधः ॥ ३२ ॥

पुनः कार्तिक मास आनेपर अन्न, नाना प्रकारके खाद्य पदार्थ, वस्त्र, पुष्पमाला और आभूषणोंसे ब्राह्मणोंको पूर्णरूपसे तृप्त करे। व्रती मनुष्यको वेदोक्त विधिके अनुसार नील वृषका भी उत्सर्ग करनेका विधान है। तत्पश्चात् अगहनीके चावलसे परिपूर्ण ताँबेके पात्रपर स्वर्णनिर्मित उमा, महेश्वर और वृषभकी मूर्तिको स्थापित कर दे और उसके निकट आठ मोती रख दे, फिर उसे गौके साथ ब्राह्मणको दान कर दे। साथ ही दो श्वेत चादरोंसे आच्छादित तथा समस्त उपकरणोंसे युक्त घटसहित एक शय्या भी दान करनी चाहिये। यह दान ऐसे ब्राह्मणको देना चाहिये, जो शान्तस्वभाव, वेदव्रतपरायण और ज्येष्ठसामका ज्ञाता हो। बगुलाव्रती ( कपटी ) ब्राह्मणको कभी भी दान नहीं देना चाहिये। वस्तुतस्तु गुणज्ञ, वेदपाठी, तत्त्ववेत्ता, सुडौल अङ्गोंवाले, सौम्यस्वभाव, कल्याणकारक एवं सपत्नीक आचार्यकी वस्त्र, पुष्पमाला और आभूषण आदिसे भलीभाँति पूजा करके यह दान उन्हींको देना चाहिये। यदि गुरु ( आचार्य ) उस समय उपस्थित हों तो उन्हींको दान देनेका विधान है। उनकी अनुपस्थितिमें अन्य ब्राह्मणको दान दिया जा सकता है। इस दानमें कृपणता नहीं करनी चाहिये। यदि करता है तो उसके दोषसे कर्ताका अधःपतन हो जाता है ॥ २६—३२ ॥

अनेन विधिना यस्तु कुर्याच्छिवचतुर्दशीम्। सोऽश्वमेधसहस्रस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥ ३३ ॥
ब्रह्महत्यादिकं किंचिद् यदत्रामुत्र वा कृतम्। पितृभिर्भ्रातृभिर्वापि तत् सर्वं नाशमाप्नुयात् ॥ ३४ ॥
दीर्घायुरारोग्यकुलान्नवृद्धिरत्राक्षयामुत्र चतुर्भुजत्वम्।
गणाधिपत्यं दिवि कल्पकोटिशतान्युषित्वा पदमेति शम्भोः ॥ ३५ ॥
न बृहस्पतिरप्यनन्तमस्याः फलमिन्द्रो न पितामहोऽपि वक्तुम्।
न च सिद्धगणोऽप्यलं न चाहं यदि जिह्वायुतकोटयोऽपि वक्त्रे ॥ ३६ ॥
भवत्यमरवल्लभः पठति यः स्मरेद् वा सदा
शृणोत्यपि विमत्सरः सकलपापनिर्मोचनीम्।
इमां शिवचतुर्दशीममरकामिनीकोटयः
स्तुवन्ति तमनिन्दितं किमु समाचरेद् यः सदा ॥ ३७ ॥
या वाथ नारी कुरुतेऽतिभक्त्या भर्तारमापृच्छ्य सुतान् गुरून् वा।
सापि प्रसादात् परमेश्वरस्य परं पदं याति पिनाकपाणेः ॥ ३८ ॥

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे शिवचतुर्दशीव्रतं नाम पञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥ ९५ ॥*

जो मानव उपर्युक्त विधिके अनुसार इस शिवचतुर्दशी-व्रतका अनुष्ठान करता है, उसे एक हजार अश्वमेध-यज्ञका फल प्राप्त होता है। उसके द्वारा अथवा उसके पिता या भाईद्वारा इस जन्ममें अथवा जन्मान्तरमें जो कुछ ब्रह्महत्या आदि पाप घटित हुए रहते हैं, वे सभी नष्ट हो जाते हैं। इस लोकमें वह दीर्घायु, नीरोगता, कुल और अन्नकी समृद्धिसे युक्त होता है और मरणोपरान्त स्वर्गलोकमें चार भुजाधारी होकर गणाधिप हो जाता है। वहाँ सौ करोड़ कल्पोंतक निवास कर शम्भु-पद—शिवलोकको चला जाता है। यदि मुखमें दस हजार करोड़ जिह्वाएँ हो जायँ तो भी इस चतुर्दशीके अनन्त फलका वर्णन करनेमें न तो

बृहस्पति समर्थ हैं न इन्द्र, न ब्रह्मा समर्थ हैं न सिद्ध-गण तथा मैं भी इसका वर्णन नहीं कर सकता। जो मनुष्य मत्सररहित हो सम्पूर्ण पापोंसे विमुक्त करनेवाली इस शिवचतुर्दशीके माहात्म्यको सदा पढ़ता, स्मरण करता अथवा श्रवण करता है, उस पुण्यात्माका करोड़ों देवाङ्गनाएँ स्तवन करती हैं, फिर जो सदा इसका अनुष्ठान करता है, उसकी तो बात ही क्या है! स्त्री भी यदि अपने पति, पुत्र और गुरुजनोंकी आज्ञा लेकर अत्यन्त भक्तिपूर्वक इस व्रतका अनुष्ठान करती है तो वह भी परमेश्वरकी कृपासे पिनाकपाणि भगवान् शंकरके परमपदको प्राप्त हो जाती है* ॥ ३३—३८ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें शिवचतुर्दशी-व्रत नामक पंचानबेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ९५ ॥

# छानबेवाँ अध्याय

## सर्वफलत्याग-व्रतका विधान और उसका माहात्म्य

नन्दिकेश्वर उवाच

फलत्यागस्य माहात्म्यं यद् भवेच्छृणु नारद। यदक्षयं परं लोके सर्वकामफलप्रदम् ॥ १ ॥
मार्गशीर्षे शुभे मासि तृतीयायां मुने व्रतम्।
द्वादश्यामथवाष्टम्यां चतुर्दश्यामथापि वा। आरभेच्छुक्लपक्षस्य कृत्वा ब्राह्मणवाचनम् ॥ २ ॥
अन्येष्वपि हि मासेषु पुण्येषु मुनिसत्तम। सदक्षिणं पायसेन भोजयेच्छक्तितो द्विजान् ॥ ३ ॥
अष्टादशानां धान्यानामवर्ज्यं फलमूलकैः।
वर्जयेदब्दमेकं तु ऋते औषधकारणम्। सवृषं काञ्चनं रुद्रं धर्मराजं च कारयेत् ॥ ४ ॥
कूष्माण्डं मातुलुङ्गं च वार्ताकं पनसं तथा। आम्राम्रातकपित्थानि कलिङ्गमथ वालुकम् ॥ ५ ॥
श्रीफलाश्वत्थबदरं जम्बीरं कदलीफलम्। काश्मरं दाडिमं शक्त्या कलधौतानि षोडश ॥ ६ ॥
मूलकामलकं जम्बूतिन्तिडी करमर्दकम्। कङ्कोलैलाकतुण्डीरकरीरकुटजं शमी ॥ ७ ॥
औदुम्बरं नारिकेलं द्राक्षाथ बृहतीद्वयम्। रौप्याणि कारयेच्छक्त्या फलानीमानि षोडश ॥ ८ ॥

नन्दिकेश्वर बोले—नारदजी! अब कर्म-'फलत्याग' नामक व्रतका जो महत्त्व है, उसे सुनिये। वह इस लोकमें सम्पूर्ण कामनाओंके फलका प्रदाता और परलोकमें अक्षय फलदायक है। मुने! मङ्गलमय मार्गशीर्ष मासमें शुक्लपक्षकी तृतीया, अष्टमी, द्वादशी अथवा चतुर्दशी तिथिको ब्राह्मणद्वारा स्वस्तिवाचन कराकर इस व्रतको आरम्भ करना चाहिये। मुनिसत्तम! इसी प्रकार यह व्रत अन्य पुण्यप्रद महीनोंमें भी किया जा सकता है। उस समय अपनी शक्तिके अनुसार ब्राह्मणोंको खीरका भोजन कराकर दक्षिणा देनी चाहिये। इस व्रतमें औषधके अतिरिक्त सामान्यरूपसे निन्द्य फल और मूलके साथ अठारह† प्रकारके धान्य त्याज्य—वर्जनीय माने गये हैं, अतः उन्हें

* मन्वादिके अनुसार पति आदिकी आज्ञाके बिना स्त्रीको व्रत करनेका अधिकार नहीं है।

† अठारह प्रकारके धान्योंकी बात यहाँके अतिरिक्त मत्स्यपुराणके अगले दानप्रकरणमें ( विशेषकर २७६। ७, २७७। ११ आदिमें ) भी आयी है, पर इसमें उनका पूर्ण विवरण कहीं नहीं आया है। ये अठारह धान्य-याज्ञवल्क्य-स्मृ० १। २०८ की अपरार्क व्याख्या, व्याकरणमहाभाष्य ५। २। ४, वाजसने० संहिता १८। १२, दानमयूख तथा विधानपारिजात आदिके अनुसार इस प्रकार हैं—सावाँ, धान, जौ, मूँग, तिल, अणु ( कँगनी ), उड़द, गेहूँ, कोदो, कुलथी, सतीन ( छोटी मटर ), सेम, आढ़की ( अरहर ) या मयुष्ट ( उजली मटर ), चना, कलाय, मटर, प्रियङ्गु ( सरसों, राई या टाँगून ) और मसूर। अन्य मतसे मयुष्टादिकी जगह अतसी और नीवार ग्राह्य हैं।

क वर्षतक त्याग देना चाहिये। पुनः रुद्र, धर्मराज और वृषभकी स्वर्णमयी मूर्ति बनवायी जाय। इसी प्रकार यथाशक्ति कूष्माण्ड, मातुलुङ्ग ( बिजौरा नींबू ), वार्ताक ( भाँटा ), पनस ( कटहल ), आम, आम्रातक ( आमड़ा ), कपित्थ ( कैथ ), कलिङ्ग ( तरबूज ), वालुक ( पनियाला ), बेल, पीपल, बेर, जम्बीर ( जमीरी नींबू ), केला, काश्मर ( गम्भारी ) और दाडिम ( अनार )—ये सोलह प्रकारके फल भी सोनेके बनवाये जायँ। मूली, आँवला, जामुन, इमली, करमर्दक ( करौंदा ), कङ्कोल ( शीतलचीनीकी जातिके एकवृक्षका फल ), इलायची, तुण्डीर ( कुँदरू ), करीर ( करील ), कुटज ( इन्द्रयव ), शमी, गूलर, नारियल, अंगूर और दोनों बृहती ( बनभंटा, भटकटैया )—इन सोलहोंको अपनी शक्तिके अनुसार चाँदीका बनवाना चाहिये॥

ताम्रं तालफलं कुर्यादगस्तिफलमेव च। पिण्डारकाश्मर्यफलं तथा सूरणकन्दकम्॥ ९॥
रक्तालुकाकन्दकं च कनकाह्वं च चिर्भिटम्। चित्रवल्लीफलं तद्वत् कूटशाल्मलिजं फलम्॥ १०॥
आम्रनिष्पावमधुकवटमुद्गपटोलकम्। ताम्राणि षोडशैतानि कारयेच्छक्तितो नरः॥ ११॥
उदकुम्भद्वयं कुर्याद् धान्योपरि सवस्त्रकम्। ततश्च कारयेच्छय्यां यथोपरि सुवाससी॥ १२॥
भक्ष्यपात्रत्रयोपेतं यमरुद्रवृषान्वितम्।
धेन्वा सहैव शान्ताय विप्रायाथ कुटुम्बिने। सपत्नीकाय सम्पूज्य पुण्येऽह्नि विनिवेदयेत्॥ १३॥
यथा फलेषु सर्वेषु वसन्त्यमरकोटयः। तथा सर्वफलत्यागव्रताद् भक्तिः शिवेऽस्तु मे॥ १४॥
यथा शिवश्च धर्मश्च सदानन्तफलप्रदौ। तद्युक्तफलदानेन तौ स्यातां मे वरप्रदौ॥ १५॥
यथा फलान्यनन्तानि शिवभक्तेषु सर्वदा। तथानन्तफलावाप्तिरस्तु जन्मनि जन्मनि॥ १६॥
यथा भेदं न पश्यामि शिवविष्ण्वर्कपद्मजान्। तथा ममास्तु विश्वात्मा शंकरः शंकरः सदा॥ १७॥

व्रती मनुष्य सम्पत्तिके अनुकूल ताड़-फल, अगस्तफल, पिण्डारक ( विकंकत या पिंडार ), काश्मर्य ( गम्भारी )-फल, सूरणकन्द ( जमीकन्द ), रताळू, धतूरा, चिर्भिट ( ककड़ी या पिहटिया ), चित्रवल्ली ( तेजपात )-फल, काले सेमलका फल, आम, निष्पाव ( सेम या मटर ), महुआ, बरगद, मूँग और परवल—इन सोलहोंका ताँबेसे निर्माण कराये। तत्पश्चात् वस्त्रसे सुशोभित दो कलश सप्तधान्यके ऊपर स्थापित करे। वह तीन भोजन-पात्रोंसे युक्त हो और उसपर धर्मराज, रुद्र और वृषकी स्वर्णमयी मूर्ति स्थापित करे। साथ ही दो सुन्दर वस्त्रोंसे सुशोभित एक शय्या भी प्रस्तुत करे। फिर उस पुण्यप्रद दिनमें यह सारा उपकरण एक गौके साथ किसी शान्त स्वभाववाले एवं कुटुम्बी सपत्नीक ब्राह्मणकी पूजा करके उसे दान कर दे और इस प्रकार प्रार्थना करे—'जिस प्रकार सभी फलोंमें करोड़ों देवता निवास करते हैं, उसी प्रकार सर्वफलत्याग-व्रतके अनुष्ठानसे शिवजीमें मेरी भक्ति हो। जैसे शिव और धर्म—दोनों सदा अनन्त फलके दाता कहे गये हैं, अतः उनसे युक्त फलका दान करनेसे वे दोनों मेरे लिये भी वरदायक हों। जिस प्रकार शिवभक्तोंको सदा अनन्त फलकी प्राप्ति होती रहती है, उसी तरह मुझे प्रत्येक जन्ममें अनन्त फलकी प्राप्ति हो। जैसे मैं ब्रह्मा, विष्णु, शंकर और सूर्यमें कोई भेद नहीं मानता, वैसे ही विश्वात्मा भगवान् शंकर सदा मेरे लिये कल्याणकारक हों'॥

इति दत्त्वा च तत् सर्वमलंकृत्य च भूषणैः। शक्तिश्चेच्छयनं दद्यात् सर्वोपस्करसंयुतम्॥ १८॥
अशक्तस्तु फलान्येव यथोक्तानि विधानतः। तथोदकुम्भसंयुक्तौ शिवधर्मौ च काञ्चनौ॥ १९॥
विप्राय दत्त्वा भुञ्जीत वाग्यतस्तैलवर्जितम्। अन्यानपि यथाशक्त्या भोजयेच्छक्तितो द्विजान्॥ २०॥
एतद् भागवतानां तु सौरवैष्णवयोगिनाम्। शुभं सर्वफलत्यागव्रतं वेदविदो विदुः॥ २१॥

नारीभिश्च यथाशक्त्या कर्तव्यं द्विजपुंगव।
एतस्मान्नापरं किंचिदिह लोके परत्र च। व्रतमस्ति मुनिश्रेष्ठ यदनन्तफलप्रदम्॥ २२॥
सौवर्णरौप्यताम्रेषु यावन्तः परमाणवः।
भवन्ति चूर्ण्यमानेषु फलेषु मुनिसत्तम। तावद् युगसहस्राणि रुद्रलोके महीयते॥ २३॥
एतत् समस्तकलुषापहरं जनानामाजीवनाय मनुजेषु च सर्वदा स्यात्।
जन्मान्तरेष्वपि न पुत्रवियोगदुःखमाप्नोति धाम च पुरंदरलोकजुष्टम्॥ २४॥
यो वा शृणोति पुरुषोऽल्पधनः पठेद् वा देवालयेषु भवनेषु च धार्मिकाणाम्।
पापैर्वियुक्तवपुरत्र पुरं मुरारेरानन्दकृत् पदमुपैति मुनीन्द्र सोऽपि॥ २५॥

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सर्वफलत्यागमाहात्म्यं नाम षण्णवतितमोऽध्यायः॥ ९६॥*

इस प्रकार आभूषणोंसे अलंकृत कर वह सारा सामान ब्राह्मणको दान कर दे। यदि सम्पत्तिरूपी शक्ति हो तो समस्त उपकरणोंसे युक्त शय्या भी देनी चाहिये। यदि असमर्थ हो तो पूर्वोक्त फलोंका ही विधिपूर्वक दान करे। तत्पश्चात् शिव और धर्मराजकी स्वर्णमयी मूर्तिको दोनो कलशोंके साथ ब्राह्मणको दान करके स्वयं मौन होकर तेलरहित पदार्थोंका भोजन करे। इसके बाद यथाशक्ति अन्य ब्राह्मणोंको भी भोजन करानेका विधान है। वेदवेत्तालोग सूर्य, विष्णु और शिवके उपासक भक्तोंके लिये इस मङ्गलमय सर्वफलत्याग-व्रतको बतलाते है। द्विजपुंगव! स्त्रियोंको भी यथाशक्ति इस व्रतका अनुष्ठान करना चाहिये। मुनिश्रेष्ठ! इस लोक या परलोकमें इससे बढ़कर कोई दूसरा ऐसा व्रत नहीं है, जो अनन्त फलका प्रदायक हो। मुनिसत्तम! फलोंको चूर्ण कर देनेपर उनमें लगे हुए सोने, चाँदी और ताँबेके जितने परमाणु होते हैं, उतने सहस्र युगोंतक व्रती रुद्रलोकमें प्रतिष्ठित होता है। इस व्रतका जीवनपर्यन्त अनुष्ठान करनेवाले मनुष्योंके समस्त पापोंको यह विनष्ट कर देता है, उन्हें जन्मान्तरमें भी पुत्र-वियोगका कष्ट नहीं भोगना पड़ता और मरणोपरान्त वे इन्द्रलोकमें चले जाते हैं। मुनीश्वर! जो निर्धन पुरुष देव-मन्दिरों अथवा धर्मात्मा पुरुषोंके गृहोंमें इस व्रत-माहात्म्यको सुनता अथवा पढ़ता है, उसका शरीर इस लोकमें पापसे मुक्त हो जाता है और मरणोपरान्त वह विष्णुलोकमें आनन्ददायक स्थान प्राप्त कर लेता है॥ १८—२५॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें सर्वफलत्याग-माहात्म्य नामक छानबेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ९६॥

# सत्तानबेवाँ अध्याय

## आदित्यवार-कल्पका विधान और माहात्म्य

नारद उवाच

यदारोग्यकरं पुंसां यदनन्तफलप्रदम्। यच्छान्त्यै च मर्त्यानां वद नन्दीश तद् व्रतम्॥ १॥

नारदजीने पूछा—नन्दीश्वर! अब जो व्रत मृत्युलोकवासी पुरुषोंके लिये आरोग्यकारी, अनन्त फलका प्रदाता और शान्तिकारक हो, उसका वर्णन कीजिये॥ १॥

नन्दिकेश्वर उवाच

यत् तद् विश्वात्मनो धाम परं ब्रह्म सनातनम्। सूर्याग्निचन्द्ररूपेण तत् त्रिधा जगति स्थितम्॥ २॥
तदाराध्य पुमान् विप्र प्राप्नोति कुशलं सदा। तस्मादादित्यवारेण सदा नक्ताशनो भवेत्॥ ३॥
यदा हस्तेन संयुक्तमादित्यस्य च वासरम्। तदा शनिदिने कुर्यादेकभक्तं विमत्सरः॥ ४॥

नक्तमादित्यवारेण भोजयित्वा द्विजोत्तमान्। पत्रैर्द्वादशसंयुक्तं रक्तचन्दनपङ्कजम् ॥ ५ ॥
विलिख्य विन्यसेत् सूर्यं नमस्कारेण पूर्वतः। दिवाकरं तथाग्नेये विवस्वन्तमतः परम् ॥ ६ ॥
भगं तु नैर्ऋते देवं वरुणं पश्चिमे दले। महेन्द्रमनिले तद्वदादित्यं च तथोत्तरे ॥ ७ ॥
शान्तमीशानभागे तु नमस्कारेण विन्यसेत्। कर्णिकापूर्वपत्रे तु सूर्यस्य तुरगान् न्यसेत् ॥ ८ ॥
दक्षिणेऽर्यमनामानं मार्तण्डं पश्चिमे दले। उत्तरे तु रविं देवं कर्णिकायां च भास्करम् ॥ ९ ॥
रक्तपुष्पोदकेनार्घ्यं सतिलारुणचन्दनम्। तस्मिन् पद्मे ततो दद्यादिमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥ १० ॥
कालात्मा सर्वभूतात्मा वेदात्मा विश्वतोमुखः। यस्मादग्नीन्द्ररूपस्त्वमतः पाहि दिवाकर ॥ ११ ॥
अग्निमीले नमस्तुभ्यमिषे त्वोर्जे च भास्कर। अग्न आयाहि वरद नमस्ते ज्योतिषाम्पते ॥ १२ ॥

नन्दिकेश्वर बोले—नारदजी! विश्वात्मा भगवान्‌का जो परब्रह्मस्वरूप सनातन तेज है, वह जगत्‌में सूर्य, अग्नि और चन्द्ररूपसे तीन भागोंमें विभक्त होकर स्थित है। विप्रवर! उनकी आराधना करके मनुष्य सदा कुशलताका भागी हो जाता है। इसलिये रविवारको रात्रिमें एक बार भोजन करना चाहिये। जब रविवार हस्त नक्षत्रसे युक्त हो तो शनिवारको मत्सररहित हो एक ही बार भोजन करना चाहिये। रविवारको श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको भोजन कराकर नक्तभोजन ( रात्रिमें एक बार भोजन करने ) का विधान है। तदनन्तर लाल चन्दनसे द्वादश दलोंसे युक्त कमलकी रचना कर उसके पूर्वदलपर सूर्यकी, अग्निकोणवाले दलपर दिवाकरकी, दक्षिणदलपर विवस्वान्‌की, नैर्ऋत्यकोणस्थित दलपर भगकी, पश्चिमदलपर वरुणदेवकी, वायव्यकोण-वाले दलपर महेन्द्रकी, उत्तरदलपर आदित्यकी और ईशानकोणस्थित दलपर शान्तकी नमस्कारपूर्वक स्थापना करे। पुनः कर्णिकाके पूर्वदलपर सूर्यके घोड़ोंको, दक्षिणदलपर अर्यमाको, पश्चिमदलपर मार्तण्डको, उत्तर-दलपर रविदेवको और कर्णिकाके मध्यभागमें भास्करको स्थित कर दे। तदनन्तर लाल पुष्प, लाल चन्दन और तिलमिश्रित जलसे उस कमलपर अर्घ्य प्रदान करे। उस समय इस मन्त्रका उच्चारण करना चाहिये—'दिवाकर! काल आपका ही स्वरूप है, आप समस्त प्राणियोंके आत्मा और वेदस्वरूप हैं, आपका मुख चारों दिशाओंमें है अर्थात् आप सर्वद्रष्टा हैं तथा अग्नि और इन्द्रके रूपमें आप ही वर्तमान हैं, अतः मेरी रक्षा कीजिये। भास्कर! ऋग्वेदके प्रथम मन्त्र '**अग्निमीले**', यजुर्वेदके 'इषे त्वोर्जे' तथा सामवेदके प्रथम मन्त्र 'अग्न आयाहि'के रूपमें आप ही वर्तमान हैं, आपको नमस्कार है। वरदायक! आप ज्योतिःपुञ्जोंके अधीश्वर हैं, आपको प्रणाम है ॥ २—१२ ॥

अर्घ्यं दत्त्वा विसृज्याथ निशि तैलविवर्जितम्।
भुञ्जीत वत्सरान्ते तु काञ्चनं कमलोत्तमम्। पुरुषं च यथाशक्त्या कारयेद् द्विभुजं तथा ॥ १३ ॥
सुवर्णशृङ्गीं कपिलां महार्घ्यां रौप्यैः खुरैः कांस्यदोहां सवत्साम्।
पूर्णे गुडस्योपरि ताम्रपात्रे निधाय पद्मं पुरुषं च दद्यात् ॥ १४ ॥
सम्पूज्य रक्ताम्बरमाल्यधूपैर्द्विजं च रक्तैरथ हेमशृङ्गैः।
संकल्पयित्वा पुरुषं सपद्मं दद्यादनेकव्रतदानकाय।
अव्यङ्गरूपाय जितेन्द्रियाय कुटुम्बिने देयमनुद्धताय ॥ १५ ॥
नमो नमः पापविनाशनाय विश्वात्मने सप्ततुरंगमाय।
सामर्ग्यजुर्धामनिधे विधात्रे भवाब्धिपोताय जगत्सवित्रे ॥ १६ ॥
इत्यनेन विधिना समाचरेदब्दमेकमिह यस्तु मानवः।
सोऽधिरोहति विनष्टकल्मषः सूर्यधाम धुतचामरावलिः ॥ १७ ॥

धर्मसंक्षयमवाप्य भूपतिः शोकदुःखभयरोगवर्जितः ।
द्वीपसप्तकपतिः पुनः पुनर्धर्ममूर्तिरमितौजसा युतः ॥ १८ ॥
या च भर्तृगुरुदेवतत्परा वेदमूर्तिदिननक्तमाचरेत् ।
सापि लोकममरेशवन्दिता याति नारद रवेर्न संशयः ॥ १९ ॥
यः पठेदपि शृणोति मानवः पठ्यमानमथ वानुमोदते ।
सोऽपि शक्रभुवनस्थितोऽमरैः पूज्यते वसति चाक्षयं दिवि ॥ २० ॥

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे आदित्यवारकल्पो नाम सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥ ९७ ॥*

इस प्रकार अर्घ्य देकर विसर्जन कर रातमें तेलरहित भोजन करना चाहिये । एक वर्ष पूरा होनेपर अपनी शक्तिके अनुसार सुवर्णसे एक उत्तम कमल और एक दो भुजाधारी पुरुषकी मूर्ति बनवाये । फिर गुड़के ऊपर स्थित ताँबेके पूर्णपात्रपर उस कमल और पुरुषको रख दे । उस समय एक सवत्सा कपिला गौ भी प्रस्तुत करे, जो अधिक मूल्यवाली हो, जिसके सींग सुवर्णसे और खुर चाँदीसे मढ़े गये हों तथा जिसके निकट कांसदोहनी भी रखी हो । तत्पश्चात् लाल रंगके स्वर्णनिर्मित सिवा बाजाके साथ लाल वस्त्र, पुष्पमाला और धूपसे ब्राह्मणकी पूजा करके संकल्प-पूर्वक गौ एवं कमलसहित उस पुरुष-मूर्तिको ऐसे ब्राह्मणको दान कर दे, जो अनेकों श्रेष्ठ व्रतोंमें दान लेनेका अधिकारी, सुडौल रूपसे सम्पन्न, जितेन्द्रिय, शान्त-स्वभाव और विशाल कुटुम्बवाला हो । ( उस समय ऐसी प्रार्थना करनी चाहिये—) 'जो पापके विनाशक, विश्वके आत्मस्वरूप, सात घोड़ोंसे जुते रथपर आरूढ होनेवाले, ऋक्, यजुः, साम—तीनों वेदोंके तेजकी निधि, विधाता, भवसागरके लिये नौकास्वरूप और जगत्स्रष्टा हैं, उन सूर्यदेवको बारंबार नमस्कार है ।' जो मानव इस लोकमें उपर्युक्त विधिके अनुसार एक वर्षतक इस व्रतका अनुष्ठान करता है, वह पाप-रहित होकर सूर्यलोकको चला जाता है । उस समय उसके ऊपर चँवर डुलाये जाते हैं । पुण्य क्षीण होनेपर वह इस लोकमें शोक, दुःख, भय और रोगसे रहित होकर बारंबार अमित ओजस्वी एवं धर्मात्मा भूपाल होता है, उस समय सातों द्वीप उसके अधिकारमें रहते हैं । नारदजी ! पति, गुरुजन और देवताओंकी शुश्रूषामें तत्पर रहनेवाली जो नारी रविवारको इस नक्तव्रतका अनुष्ठान करती है, वह भी इन्द्रद्वारा पूजित होकर निस्संदेह सूर्यलोकको चली जाती है । जो मानव इस व्रतको पढ़ता या सुनता है अथवा पढ़नेवालेका अनुमोदन करता है, वह भी इन्द्रलोकमें स्थित होकर देवताओंद्वारा पूजित होता है और अक्षय कालतक स्वर्गलोकमें निवास करता है ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें आदित्यवार-कल्प नामक सत्तानबेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ९७ ॥

---

# अट्ठानबेवाँ अध्याय

## संक्रान्ति-व्रतके उद्यापनकी विधि

नन्दिकेश्वर उवाच

अथान्यदपि वक्ष्यामि संक्रान्त्युद्यापने फलम् । यदक्षयं परे लोके सर्वकामफलप्रदम् ॥ १ ॥
अयने विषुवे वापि संक्रान्तिव्रतमाचरेत् ।
पूर्वेद्युरेकभुक्तेन दन्तधावनपूर्वकम् । संक्रान्तिवासरे प्रातस्तिलैः स्नानं विधीयते ॥ २ ॥
रविसंक्रमणे भूमौ चन्दनेनाष्टपत्रकम् । पद्मं सकर्णिकं कुर्यात् तस्मिन्नावाहयेद् रविम् ॥ ३ ॥

कर्णिकायां न्यसेत् सूर्यमादित्यं पूर्वतस्ततः। नम उष्णार्चिषे याम्ये नमो ऋङ्मण्डलाय च ॥ ४ ॥
नमः सवित्रे नैर्ऋत्ये वारुणे तपनं पुनः। वायव्ये तु भगं न्यस्य पुनः पुनरथार्चयेत् ॥ ५ ॥
मार्तण्डमुत्तरे विष्णुमीशाने विन्यसेत् सदा। गन्धमाल्यफलैर्भक्ष्यैः स्थण्डिले पूजयेत् ततः ॥ ६ ॥
द्विजाय सोदकुम्भं च घृतपात्रं हिरण्मयम्। कमलं च यथाशक्त्या कारयित्वा निवेदयेत् ॥ ७ ॥
चन्दनोदकपुष्पैश्च देवायार्घ्यं न्यसेद् भुवि।
विश्वाय विश्वरूपाय विश्वधाम्ने स्वयम्भुवे। नमोऽनन्त नमो धात्रे ऋक्सामयजुषाम्पते ॥ ८ ॥
अनेन विधिना सर्वं मासि मासि समाचरेत्। वत्सरान्तेऽथवा कुर्यात् सर्वं द्वादशधा नरः ॥ ९ ॥

नन्दिकेश्वर बोले—नारदजी ! अब मैं संक्रान्तिके समय किये जानेवाले उद्यापन-रूप अन्य व्रतका वर्णन कर रहा हूँ, जो इस लोकमें समस्त कामनाओंके फलका प्रदाता और परलोकमें अक्षय फलदायक है। सूर्यके उत्तरायण या दक्षिणायनके दिन अथवा विषुवयोगमें इस संक्रान्तिव्रतका अनुष्ठान करना चाहिये। इस व्रतमें संक्रान्तिके पहले दिन एक बार भोजन करके ( रात्रिमें शयन करे। ) संक्रान्तिके दिन प्रातःकाल दाँतुन करनेके पश्चात् तिलमिश्रित जलसे स्नान करनेका विधान है। सूर्य-संक्रान्तिके दिन भूमिपर चन्दनसे कर्णिकासहित अष्टदल कमलकी रचना करे और उसपर सूर्यका आवाहन करे। कर्णिकामें **'सूर्याय नमः'**, पूर्वदलपर **'आदित्याय नमः'**, अग्निकोणस्थित दलपर **'उष्णार्चिषे नमः'**, दक्षिणदलपर **'ऋङ्मण्डलाय नमः'**, नैर्ऋत्यकोणवाले दलपर **'सवित्रे नमः'**, पश्चिमदलपर **'तपनाय नमः'**, वायव्यकोणस्थित दलपर **'भगाय नमः'**, उत्तरदलपर **'मार्तण्डाय नमः'** और ईशानकोणवाले दलपर **'विष्णवे नमः'**से सूर्यदेवको स्थापित कर उनकी बारंबार अर्चना करे। तत्पश्चात् वेदीपर भी चन्दन, पुष्पमाला, फल और खाद्य पदार्थोंसे उनकी पूजा करनी चाहिये। पुनः अपनी शक्तिके अनुसार सोनेका कमल बनवाकर उसे घृतपूर्ण पात्र और कलशके साथ ब्राह्मणको दान कर दे। तत्पश्चात् चन्दन और पुष्पयुक्त जलसे भूमिपर सूर्यदेवको अर्घ्य प्रदान करे। ( अर्घ्यका मन्त्रार्थ इस प्रकार है—) 'अनन्त ! आप ही विश्व हैं, विश्व आपका स्वरूप है, आप विश्वमें सर्वाधिक तेजस्वी, स्वयं उत्पन्न होनेवाले, धाता और ऋग्वेद, सामवेद एवं यजुर्वेदके स्वामी हैं, आपको बारंबार नमस्कार है।' इसी विधिसे मनुष्यको प्रत्येक मासमें सारा कार्य सम्पन्न करना चाहिये अथवा ( यदि ऐसा करनेमें असमर्थ हो तो ) वर्षकी समाप्तिके दिन यह सारा कार्य बारह बार करे ( दोनोंका फल समान ही है ) ॥ १—९ ॥

संवत्सरान्ते घृतपायसेन संतर्प्य वह्निं द्विजपुंगवांश्च।
कुम्भान् पुनर्द्वादशधेनुयुक्तान् सरत्नहैरण्यमयपद्मयुक्तान् ॥ १० ॥
पयस्विनीः शीलवतीश्च दद्याद्धैमैः शृङ्गै रौप्यखुरैश्च युक्ताः।
गावोऽष्ट वा सप्त सकांस्यदोहा माल्याम्बरा वा चतुरोऽप्यशक्तः।
दौर्गत्ययुक्तः कपिलामथैकां निवेदयेद् ब्राह्मणपुंगवाय ॥ ११ ॥
हैमीं च दद्यात् पृथिवीं सशेषामाकार्य रूप्यामथ वा च ताम्रीम्।
पैष्टीमशक्तः प्रतिमां विधाय सौवर्णसूर्येण समं प्रदद्यात्।
न वित्तशाठ्यं पुरुषोऽत्र कुर्यात् कुर्वन्नधो याति न संशयोऽत्र ॥ १२ ॥
यावन्महेन्द्रप्रमुखैर्नगेन्द्रैः पृथ्वी च सप्ताब्धियुतेह तिष्ठेत्।
तावत् स गन्धर्वगणैरशेषैः सम्पूज्यते नारद नाकपृष्ठे ॥ १३ ॥

ततस्तु कर्मक्षयमाप्य सप्तद्वीपाधिपः स्यात् कुलशीलयुक्तः।
सृष्टेर्मुखेऽव्यङ्गवपुः सभार्यः प्रभूतपुत्रान्वयवन्दिताङ्घ्रिः॥ १४॥
इति पठति शृणोति वाथ भक्त्या विधिमखिलं रविसंक्रमस्य पुण्यम्।
मतिमपि च ददाति सोऽपि देवैरमरपतेर्भवने प्रपूज्यते च॥ १५॥

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे संक्रान्त्युद्यापनविधिर्नामाष्टनवतितमोऽध्यायः॥ ९८॥*

एक वर्ष व्यतीत होनेपर घृतमिश्रित खीरसे अग्नि और श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको भलीभाँति संतुष्ट करे और बारह गौ एवं रत्नसहित स्वर्णमय कमलके साथ कलशोंको दान कर दे। वे गौएँ दूध देनेवाली, सीधी-सादी एवं पुष्प-माला और वस्त्रसे सुसज्जित हों, उनके सींग सोनेसे और खुर चाँदीसे मढ़े गये हों तथा उनके साथ काँसेकी दोहनी भी हो। जो इस प्रकारकी बारह गौओंका दान करनेमें असमर्थ हो, उसके लिये आठ, सात अथवा चार ही गौ दान करनेका विधान है। जो दुर्गतिमें पड़ा हुआ निर्धन हो, वह किसी श्रेष्ठ ब्राह्मणको एक ही कपिला गौका दान कर सकता है। इसी प्रकार सोने, चाँदी अथवा ताँबेकी शेषनागसहित पृथ्वीकी प्रतिमा बनवाकर दान करना चाहिये। जो ऐसा करनेमें असमर्थ हो, वह आटेकी शेषसहित पृथ्वीकी प्रतिमा बनाकर स्वर्णनिर्मित सूर्यके साथ दान कर सकता है। पुरुषको इस दानमें कंजूसी नहीं करनी चाहिये। यदि करता है तो उसका अधःपतन हो जाता है, इसमें कुछ भी संशय नहीं है। नारदजी! जबतक इस मृत्युलोकमें महेन्द्र आदि देवगणों, हिमालय आदि पर्वतों और सातों समुद्रोंसे युक्त पृथ्वीका अस्तित्व है, तबतक स्वर्गलोकमें अखिल गन्धर्वसमूह उस व्रतीकी भलीभाँति पूजा करते हैं। पुण्य क्षीण होनेपर वह सृष्टिके आदिमें उत्तम कुल और शीलसे सम्पन्न होकर भूतलपर सातों द्वीपोंका अधीश्वर होता है। वह सुन्दर रूप और सुन्दरी पत्नीसे युक्त होता है, बहुत-से पुत्र और भाई-बन्धु उसके चरणोंकी वन्दना करते हैं। इस प्रकार जो मनुष्य सूर्य-संक्रान्तिकी इस पुण्यमयी अखिल विधिको भक्तिपूर्वक पढ़ता या श्रवण करता है अथवा इसे करनेकी सम्मति देता है, वह भी इन्द्रलोकमें देवताओंद्वारा पूजित होता है॥ १०—१५॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें संक्रान्त्युद्यापनविधि नामक अट्ठानबेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ९८॥

# निन्यानबेवाँ अध्याय

## विभूतिद्वादशी-व्रतकी विधि और उसका माहात्म्य

नन्दिकेश्वर उवाच

शृणु नारद वक्ष्यामि विष्णोर्व्रतमनुत्तमम्। विभूतिद्वादशीनाम सर्वदेवनमस्कृतम्॥ १॥
कार्तिके चैत्रवैशाखे मार्गशीर्षे च फाल्गुने।
आषाढे वा दशम्यां तु शुक्लायां लघुभुङ्नरः। कृत्वा सायन्तनीं संध्यां गृह्णीयान्नियमं बुधः॥ २॥
एकादश्यां निराहारः समभ्यर्च्य जनार्दनम्। द्वादश्यां द्विजसंयुक्तः करिष्ये भोजनं विभो॥ ३॥
तदविघ्नेन मे यातु सफलं स्याच्च केशव। नमो नारायणायेति वाच्यं च स्वपता निशि॥ ४॥
ततः प्रभात उत्थाय कृतस्नानजपः शुचिः। पूजयेत् पुण्डरीकाक्षं शुक्लमाल्यानुलेपनैः॥ ५॥
विभूतये नमः पादावशोकाय च जानुनी। नमः शिवायेत्यूरू च विश्वमूर्ते नमः कटिम्॥ ६॥
कंदर्पाय नमो मेढ्रमादित्याय नमः करौ। दामोदरायेत्युदरं वासुदेवाय च स्तनौ॥ ७॥

माधवायेत्युरो विष्णोः कण्ठमुत्कण्ठिने नमः। श्रीधराय मुखं केशान् केशवायेति नारद ॥ ८ ॥
पृष्ठं शार्ङ्गधरायेति श्रवणौ वरदाय वै।
स्वनाम्ना शङ्खचक्रासिगदाजलजपाणये। शिरः सर्वात्मने ब्रह्मन् नम इत्यभिपूजयेत् ॥ ९ ॥
मत्स्यमुत्पलसंयुक्तं हैमं कृत्वा तु शक्तितः। उदकुम्भसमायुक्तमग्रतः स्थापयेद् बुधः ॥ १० ॥
गुडपात्रं तिलैर्युक्तं सितवस्त्राभिवेष्टितम्। रात्रौ जागरणं कुर्यादितिहासकथादिना ॥ ११ ॥

नन्दिकेश्वर बोले—नारदजी ! सुनिये, अब मैं भगवान् विष्णुके विभूतिद्वादशी नामक सर्वोत्तम व्रतका वर्णन कर रहा हूँ, जो सम्पूर्ण देवगणोंद्वारा अभिवन्दित है। बुद्धिमान् मनुष्य कार्तिक, चैत्र, वैशाख, मार्गशीर्ष, फाल्गुन अथवा आषाढ मासमें शुक्लपक्षकी दशमी तिथिको स्वल्पाहार कर सायंकालिक संध्योपासनासे निवृत्त होकर इस प्रकारका नियम ग्रहण करे—'प्रभो ! मैं एकादशीको निराहार रहकर भगवान् जनार्दनकी भलीभाँति अर्चना करूँगा और द्वादशीके दिन ब्राह्मणके साथ बैठकर भोजन करूँगा। केशव ! मेरा यह नियम निर्विघ्नतापूर्वक निभ जाय और फलदायक हो।' फिर रातमें 'ॐ नमो नारायणाय' मन्त्रका जप करते हुए सो जाय। प्रातःकाल उठकर स्नान-जप आदि करके पवित्र हो जाय और श्वेत पुष्पोंकी माला एवं चन्दन आदिसे भगवान् पुण्डरीकाक्षका पूजन करे। (पूजनके मन्त्र इस प्रकार हैं—) 'विभूतये नमः'से दोनों चरणोंकी, 'अशोकाय नमः'से जानुओंकी, 'शिवाय नमः'से ऊरुओंकी, 'विश्वमूर्तये नमः'से कटिकी, 'कंदर्पाय नमः'से जननेन्द्रियकी, 'आदित्याय नमः'से हाथोंकी, 'दामोदराय नमः'से उदरकी, 'वासुदेवाय नमः'से दोनों स्तनोंकी, 'माधवाय नमः'से विष्णुके वक्षःस्थलकी, 'उत्कण्ठिने नमः'से कण्ठकी, 'श्रीधराय नमः'से मुखकी, 'केशवाय नमः'से केशोंकी, 'शार्ङ्गधरायनमः'से पीठकी, 'वरदाय नमः'से दोनों कानोंकी और 'सर्वात्मने नमः'से सिरकी पूजा करनी चाहिये। ब्राह्मण देवता नारदजी !' तत्पश्चात् 'शङ्खचक्रासिगदाजलजपाणये नमः' कहकर अपने नामका उच्चारण करते हुए चरणोंमें प्रणिपात करे। तदुपरान्त बुद्धिमान् व्रती मूर्तिके अग्रभागमें एक जलपूर्ण कलश स्थापित करे। उसपर तिलसे युक्त गुड़से भरा हुआ पात्र, जो श्वेत वस्त्रसे परिवेष्टित हो, रख दे। उसके ऊपर अपनी शक्तिके अनुसार सोनेका कमलसहित मत्स्य बनवाकर स्थापित करे और रात्रिमें इतिहास-पुराण आदिकी कथाओंको सुनते हुए जागरण करे ॥ १—११ ॥

प्रभातायां तु शर्वर्यां ब्राह्मणाय कुटुम्बिने। सकाञ्चनोत्पलं देवं सोदकुम्भं निवेदयेत् ॥ १२ ॥
यथा न मुच्यसे देव सदा सर्वविभूतिभिः। तथा मामुद्धराशेषदुःखसंसारकर्दमात् ॥ १३ ॥
दशावताररूपाणि प्रतिमासं क्रमान्मुने।
दत्तात्रेयं तथा व्यासमुत्पलेन समन्वितम्। दद्यादेवं समा यावत् पाषण्डानभिवर्जयेत् ॥ १४ ॥
समाप्यैवं यथाशक्त्या द्वादश द्वादशीः पुनः।
संवत्सरान्ते लवणपर्वतेन समन्वितम्। शय्यां दद्यान्मुनिश्रेष्ठ गुरवे धेनुसंयुताम् ॥ १५ ॥
ग्रामं च शक्तिमान् दद्यात् क्षेत्रं वा भवनान्वितम्। गुरुं सम्पूज्य विधिवद् वस्त्रालंकारभूषणैः ॥ १६ ॥
अन्यानपि यथाशक्त्या भोजयित्वा द्विजोत्तमान्।
तर्पयेद् वस्त्रगोदानै रत्नौघधनसंचयैः। अल्पवित्तो यथाशक्त्या स्तोकं स्तोकं समाचरेत् ॥ १७ ॥
यश्चाप्यतीव निःस्वः स्याद् भक्तिमान् माधवं प्रति। पुष्पार्चनविधानेन स कुर्याद् वत्सरद्वयम् ॥ १८ ॥
अनेन विधिना यस्तु विभूतिद्वादशीव्रतम्। कुर्यात् पापविनिर्मुक्तः पितॄणां तारयेच्छतम् ॥ १९ ॥
जन्मनां शतसाहस्रं न शोकफलभाग् भवेत्।

न च व्याधिर्भवेत् तस्य न दारिद्र्यं न बन्धनम् । वैष्णवो वाथ शैवो वा भवेज्जन्मनि जन्मनि ॥ २० ॥
यावद् युगसहस्राणां शतमष्टोत्तरं भवेत् । तावत् स्वर्गे वसेद् ब्रह्मन् भूपतिश्च पुनर्भवेत् ॥ २१ ॥

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे विष्णुव्रतं नाम नवनवतितमोऽध्यायः ॥ ९९ ॥*

रात्रि व्यतीत होनेपर प्रातःकाल स्वर्णमय कमल और कलशके साथ वह देव-मूर्ति कुटुम्बी ब्राह्मणको दान कर देनी चाहिये । ( उस समय ऐसी प्रार्थना करे—) 'देव ! जिस प्रकार आप सदा सम्पूर्ण विभूतियोंसे वियुक्त नहीं होते, उसी प्रकार इस निखिल कष्टोंसे परिपूर्ण संसाररूपी कीचड़से मेरा उद्धार कीजिये ।' मुने ! इस प्रकार एक वर्षतक प्रतिमास क्रमशः भगवान्‌के दस अवतारों तथा दत्तात्रेय और व्यासकी स्वर्णमयी प्रतिमा स्वर्णनिर्मित कमलके साथ दान करनी चाहिये । उस समय छल, कपट, पाखण्ड आदिसे दूर रहना चाहिये । मुनिश्रेष्ठ ! इस प्रकार यथाशक्ति बारहों द्वादशी-व्रतोंको समाप्त कर वर्षके अन्तमें गुरुको लवणपर्वतके साथ-साथ गौसहित शय्या दान करनी चाहिये । व्रती यदि सम्पत्तिशाली हो तो उसे वस्त्र, शृङ्गार-सामग्री और आभूषण आदिसे गुरुकी विधिपूर्वक पूजा कर ग्राम अथवा गृहके साथ-साथ खेतका दान करना चाहिये । साथ ही अपनी शक्तिके अनुसार अन्यान्य ब्राह्मणोंको भी भोजन कराकर उन्हें वस्त्र, गोदान, रत्नसमूह और धनराशियोंद्वारा संतुष्ट करनेका विधान है । स्वल्प धनवाला व्रती अपनी सामर्थ्यके अनुकूल थोड़ा-थोड़ा ही दान कर सकता है तथा जो व्रती परम निर्धन हो, किंतु भगवान् माधवके प्रति उसकी प्रगाढ़ निष्ठा हो तो उसे दो वर्षतक पुष्पार्चनकी विधिसे इस व्रतका पालन करना चाहिये । जो मनुष्य उपर्युक्त विधिसे विभूतिद्वादशी-व्रतका अनुष्ठान करता है, वह स्वयं पापसे मुक्त होकर अपने सौ पीढ़ियोंतकके पितरोंको तार देता है । उसे एक लाख जन्मोंतक न तो शोकरूप फलका भागी होना पड़ता है, न व्याधि और दरिद्रता ही घेरती है तथा न बन्धनमें ही पड़ना पड़ता है । वह प्रत्येक जन्ममें विष्णु अथवा शिवका भक्त होता है । ब्रह्मन् ! जबतक एक सौ आठ सहस्र युग नहीं बीत जाते, तबतक वह स्वर्गलोकमें निवास करता है और पुण्य क्षीण होनेपर पुनः भूतलपर राजा होता है ॥ १२—२१ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें विभूतिद्वादशी-सम्बन्धी विष्णु-व्रत नामक निन्यानवेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ९९ ॥

# सौवाँ अध्याय

## विभूतिद्वादशी*के प्रसङ्गमें राजा पुष्पवाहनका वृत्तान्त

नन्दिकेश्वर उवाच

पुरा रथन्तरे कल्पे राजाऽऽसीत् पुष्पवाहनः । नाम्ना लोकेषु विख्यातस्तेजसा सूर्यसंनिभः ॥ १ ॥
तपसा तस्य तुष्टेन चतुर्वक्त्रेण नारद । कमलं काञ्चनं दत्तं यथाकामगमं मुने ॥ २ ॥
लोकैः समस्तैर्नगरवासिभिः सहितो नृपः । द्वीपानि सुरलोकं च यथेष्टं व्यचरत् तदा ॥ ३ ॥
कल्पादौ सप्तमं द्वीपं तस्य पुष्करवासिनः । लोकेन पूजितं यस्मात् पुष्करद्वीपमुच्यते ॥ ४ ॥
देवेन ब्रह्मणा दत्तं यानमस्य यतोऽम्बुजम् । पुष्पवाहनमित्याहुस्तस्मात् तं देवदानवाः ॥ ५ ॥
नागम्यमस्यास्ति जगत्त्रयेऽपि ब्रह्माम्बुजस्थस्य तपोऽनुभावात् ।
पत्नी च तस्याप्रतिमा मुनीन्द्र नारीसहस्रैरभितोऽभिनन्द्या ।
नाम्ना च लावण्यवती बभूव सा पार्वतीवेष्टतमा भवस्य ॥ ६ ॥

---

* इस व्रतका वर्णन पद्म० सृष्टिखं० २० । १-४२, भविष्योत्तर, विष्णुधर्मो०, व्रतरत्न, व्रतराज, व्रतकल्पद्रुम आदिमें भी यों ही प्राप्त होता है । प्राचीय कथामें तीर्थगुरु पुष्करक्षेत्रका भी सम्बन्ध प्रदृष्ट है ।

*

तस्यात्मजानामयुतं बभूव धर्मात्मनामग्र्यधनुर्धराणाम्।
तदात्मनः सर्वमवेक्ष्य राजा मुहुर्मुहुर्विस्मयमाससाद।
सोऽभ्यागतं वीक्ष्य मुनिप्रवीरं प्राचेतसं वाक्यमिदं बभाषे॥ ७॥

**नन्दिकेश्वर बोले**—नारदजी! बहुत पहले रथन्तर-कल्पमें पुष्पवाहन नामका एक राजा हुआ था, जो सम्पूर्ण लोकोंमें विख्यात तथा तेजमें सूर्यके समान था। मुने! उसकी तपस्यासे संतुष्ट होकर ब्रह्माने उसे एक सोनेका कमल (रूप विमान) प्रदान किया था, जो इच्छानुसार जहाँ-कहीं भी आ-जा सकता था। उसे पाकर उस समय राजा पुष्पवाहन अपने नगर एवं जनपद-वासियोंके साथ उसपर आरूढ होकर स्वेच्छानुसार देवलोकों तथा सातों द्वीपोंमें विचरण किया करता था। कल्पके आदिमें पुष्करनिवासी उस पुष्पवाहनका सातवें द्वीपपर अधिकार था, इसीलिये लोकमें उसकी प्रतिष्ठा थी और आगे चलकर वह द्वीप पुष्करद्वीप नामसे कहा जाने लगा। चूँकि देवेश्वर ब्रह्माने इसे कमलरूप विमान प्रदान किया था, इसलिये देवता एवं दानव उसे पुष्पवाहन कहा करते थे। तपस्याके प्रभावसे ब्रह्माद्वारा प्रदत्त कमलरूप विमानपर आरूढ होनेपर उसके लिये त्रिलोकीमें भी कोई स्थान अगम्य न था। मुनीन्द्र! उसकी पत्नीका नाम लावण्यवती था। वह अनुपम सुन्दरी थी तथा हजारों नारियोंद्वारा चारों ओरसे समादृत होती रहती थी। वह राजाको उसी प्रकार अत्यन्त प्यारी थी, जैसे शंकरजीको पार्वती परम प्रिय हैं। उसके दस हजार पुत्र थे, जो परम धार्मिक और धनुर्धारियोंमें अग्रगण्य थे। अपनी इन सारी विभूतियोंपर बारंबार विचारकर राजा पुष्पवाहन विस्मयविमुग्ध हो जाता था। एक बार (प्रचेताके पुत्र) मुनिवर वाल्मीकि* राजाके यहाँ पधारे। उन्हें आया देख राजाने उनसे इस प्रकार प्रश्न किया॥

राजोवाच

कस्माद् विभूतिरमलामरमर्त्यपूज्या जाता च सर्वविजितामरसुन्दरीणाम्।
भार्या ममाल्पतपसा परितोषितेन दत्तं ममाम्बुजगृहं च मुनीन्द्र धात्रा॥ ८॥
यस्मिन् प्रविष्टमपि कोटिशतं नृपाणां सामात्यकुञ्जररथौघजनावृतानाम्।
नो लभ्यते क्व गतमम्बरगामिभिश्च तारागणेन्दुरविरश्मिभिरप्यगम्यम्॥ ९॥
तस्मात् किमन्यजननीजठरोद्भवेन धर्मादिकं कृतमशेषफलाप्तिहेतुः।
भगवन् मयाथ तनयैरथवानयापि भद्रं यदेतदखिलं कथय प्रचेतः॥ १०॥

**राजाने पूछा**—मुनीन्द्र! किस कारणसे मुझे यह देवों तथा मानवोंद्वारा पूजनीय निर्मल विभूति तथा अपने सौन्दर्यसे समस्त देवाङ्गनाओंको पराजित कर देनेवाली सुन्दरी भार्या प्राप्त हुई है? मेरे थोड़े-से तपसे संतुष्ट होकर ब्रह्माने मुझे ऐसा कमल-गृह क्यों प्रदान किया, जिसमें अमात्य, हाथी, रथसमूह और जनपदवासियों-सहित यदि सौ करोड़ राजा बैठ जायँ तो वे जान नहीं पड़ते कि कहाँ चले गये। वह विमान भी आकाशगामी देवताओंद्वारा केवल चमकीले ताराओंसे घिरे हुए चन्द्रमाकी भाँति दीख पड़ता है। इसलिये इस सम्पूर्ण फलकी प्राप्तिके लिये अन्य माताके उदरसे उत्पन्न होकर अर्थात् पूर्वजन्ममें मैंने अथवा मेरे पुत्रोंने या मेरी इस पत्नीने कौन-सा ऐसा शुभ धर्म आदि कार्य किया है? प्रचेतः! यह सारा-का-सारा विषय मुझे बतलाइये॥ ८—१०॥

मुनिरभ्यधादथ भवान्तरितं समीक्ष्य पृथ्वीपतेः प्रसभमद्भुतहेतुवृत्तम्।
जन्माभवत् तव तु लुब्धकुलेऽतिघोरे जातस्त्वमप्यनुदिनं किल पापकारी॥ ११॥
वपुरप्यभूत् तव पुनः परुषाङ्गसंधिदुर्गन्धसत्त्वकुनखाभरणं समंतात्।
न च ते सुहृन्न सुतबन्धुजनो न तातस्त्वादृक् स्वसा न जननी च तदाभिशस्ता॥ १२॥

* वाल्मीकि-रामायण, उत्तरकाण्ड ९३। १७, ९६। १०, १११। ११ तथा अध्यात्म-रामायण ७। ७। ३१, बालरामायण, उत्तर-रामचरित आदिके अनुसार 'प्राचेतस' शब्द महर्षि वाल्मीकिका ही वाचक है।

अतिसम्मता परमभीष्टतमाभिमुख्यी जाता महीश तव योषिदियं सुरूपा ।
अभूदनावृष्टिरतीव रौद्रा कदाचिदाहारनिमित्तमस्मिन् ।
क्षुत्पीडितेनाथ तदा न किंचिदास्वादितं वन्यफलादि खाद्यम् ॥ १३ ॥
अथाभिदृष्टं महदम्बुजाढ्यं सरोवरं पङ्कजखण्डमण्डितम् ।
पद्मान्यथादाय ततो बहूनि गतः पुरं वैदिशनामधेयम् ॥ १४ ॥

तदनन्तर महर्षि वाल्मीकि राजाके इस आकस्मिक एवं अद्भुत प्रभावपूर्ण वृत्तान्तको जन्मान्तरसे सम्बन्धित जानकर इस प्रकार कहने लगे—राजन् ! तुम्हारा पूर्वजन्म अत्यन्त भीषण व्याधके कुलमें हुआ था । एक तो तुम उस कुलमें पैदा हुए, फिर दिन-रात पापकर्ममें भी निरत रहते थे । तुम्हारा शरीर भी कठोर अङ्गसंधि-युक्त तथा बेडौल था । तुम्हारी त्वचा दुर्गन्धयुक्त और नख बहुत बढ़े हुए थे । उससे दुर्गन्ध निकलती थी और वह बड़ा कुरूप था । उस जन्ममें न तो तुम्हारा कोई हितैषी मित्र था, न पुत्र और भाई-बन्धु ही थे, न पिता-माता और बहन ही थी । भूपाल ! केवल तुम्हारी यह परम प्रियतमा पत्नी ही तुम्हारी अभीष्ट परमानुकूल संगिनी थी । एक बार कभी बड़ी भयंकर अनावृष्टि हुई, जिसके कारण अकाल पड़ गया । उस समय भूखसे पीड़ित होकर तुम आहारकी खोजमें निकले, परंतु तुम्हें कोई जंगली ( कन्द-मूल) फल आदि कुछ भी खाद्य वस्तु प्राप्त न हुई । इतनेमें ही तुम्हारी दृष्टि एक सरोवरपर पड़ी, जो कमलसमूहसे मण्डित था । उसमें बड़े-बड़े कमल खिले हुए थे । तब तुम उसमें प्रविष्ट होकर बहुसंख्यक कमल-पुष्पोंको लेकर वैदिश* नामक नगर (विदिशा नगरी)में चले गये ॥ ११–१४ ॥

तन्मूल्यलाभाय पुरं समस्तं भ्रान्तं त्वयाशेषमहस्तदासीत् ।
क्रेता न कश्चित् कमलेषु जातः क्लान्तो भृशं क्षुत्परिपीडितश्च ॥ १५ ॥
उपविष्टस्त्वमेकस्मिन् सभार्यो भवनाङ्गणे । अथ मङ्गलशब्दश्च त्वया रात्रौ महाञ्छ्रुतः ॥ १६ ॥
सभार्यस्तत्र गतवान् यत्रासौ मङ्गलध्वनिः । तत्र मण्डपमध्यस्था विष्णोरर्चा विलोकिता ॥ १७ ॥
वेश्यानङ्गवती नाम विभूतिद्वादशीव्रतम् । समाप्तौ माघमासस्य लवणाचलमुत्तमम् ॥ १८ ॥
निवेदयन्ती गुरवे शय्यां चोपस्करान्विताम् । अलंकृत्य हृषीकेशं सौवर्णामरपादपम् ॥ १९ ॥
तां तु दृष्ट्वा ततस्ताभ्यामिदं च परिचिन्तितम् । किमेभिः कमलैः कार्यं वरं विष्णुरलंकृतः ॥ २० ॥
इति भक्तिस्तदा जाता दम्पत्योस्तु नराधिप ।
तत्प्रसङ्गात् समभ्यर्च्य केशवं लवणाचलम् । शय्या च पुष्पप्रकरैः पूजिताभूच्च सर्वतः ॥ २१ ॥

वहाँ तुमने उन कमल-पुष्पोंको बेचकर मूल्य-प्राप्तिके हेतु पूरे नगरमें चक्कर लगाया । सारा दिन बीत गया, पर उन कमल-पुष्पोंका कोई खरीददार न मिला । उस समय तुम भूखसे अत्यन्त व्याकुल और थकावटसे अतिशय क्लान्त चूर होकर पत्नीसहित एक महलके प्राङ्गणमें बैठ गये । वहाँ रात्रिमें तुम्हें महान् मङ्गल शब्द सुनायी पड़ा । उसे सुनकर तुम पत्नीसहित उस स्थानपर गये, जहाँ वह मङ्गल शब्द हो रहा था । वहाँ मण्डपके मध्यभागमें भगवान् विष्णुकी पूजा हो रही थी । तुमने उसका अवलोकन किया । वहाँ अनङ्गवती नामकी वेश्या माघ-मासकी विभूतिद्वादशी-व्रतकी समाप्ति कर अपने गुरुको भगवान् हृषीकेशका विधिवत् शृङ्गार कर स्वर्णमय कल्पवृक्ष, श्रेष्ठ लवणाचल और समस्त उपकरणोंसहित शय्याका दान कर रही थी । इस प्रकार पूजा करती

* यह इतिहास-पुराणादिमें अति प्रसिद्ध विदिशा नामकी नदीके तटपर बसा मध्यप्रदेशके मध्यकालीन इतिहासका बेसनगर, आजकलका भेलसा नगर है । इसपर कनिंघमका Bhelsa-Topes ग्रन्थ प्रसिद्ध है ।

हुई अनङ्गवतीको देखकर तुम दोनोंके मनमें यह विचार जाग्रत् हुआ कि इन कमलपुष्पोंसे क्या लेना है। अच्छा तो यह होता कि इनसे भगवान् विष्णुका शृङ्गार किया जाता। नरेश्वर! उस समय तुम दोनों पति-पत्नीके मनमें ऐसी भक्ति उत्पन्न हुई और इसी अर्चाके प्रसङ्गमें तुम्हारे उन पुष्पोंसे भगवान् केशव और लवणाचलकी अर्चना सम्पन्न हुई तथा शेष पुष्प-समूहोंसे तुम दोनोंद्वारा शय्या-को भी सब ओरसे सुसज्जित किया गया॥

अथानङ्गवती तुष्टा तयोर्धनशतत्रयम्। दीयतामादिदेशाथ कलधौतशतत्रयम्॥ २२॥
न गृहीतं ततस्ताभ्यां महासत्त्वावलम्बनात्।
अनङ्गवत्या च पुनस्तयोरन्नं चतुर्विधम्। आनीय व्याहृतं चात्र भुज्यतामिति भूपते॥ २३॥
ताभ्यां तु तदपि त्यक्तं भोक्ष्यावः श्वो वरानने। प्रसङ्गादुपवासेन तवाद्य सुखमावयोः॥ २४॥
जन्मप्रभृति पापिष्ठौ कुकर्माणौ दृढव्रते। प्रसङ्गात् तव सुश्रोणि धर्मलेशोऽस्तु नाविह॥ २५॥
इति जागरणं ताभ्यां तत्प्रसङ्गादनुष्ठितम्। प्रभाते च तया दत्ता शय्या सलवणाचला॥ २६॥
ग्रामाश्च गुरवे भक्त्या विप्रेभ्यो द्वादशैव तु। वस्त्रालंकारसंयुक्ता गावश्च कनकान्विताः॥ २७॥
भोजनं च सुहृन्मित्रदीनान्धकृपणैः समम्। तच्च लुब्धकदाम्पत्यं पूजयित्वा विसर्जितम्॥ २८॥

तुम्हारी इस क्रियासे अनङ्गवती बहुत प्रसन्न हुई। उस समय उसने तुम दोनोंको इसके बदले तीन सौ अशर्फियाँ देनेका आदेश दिया, पर तुम दोनोंने बड़ी दृढ़तासे उस धन-राशिको अस्वीकार कर दिया—नहीं लिया। भूपते! तब अनङ्गवतीने तुम्हें (भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, चोष्य) चार प्रकारका अन्न लाकर दिया और कहा—'इसे भोजन कीजिये', किंतु तुम दोनोंने उसका भी त्याग कर दिया और कहा—'वरानने! हमलोग कल भोजन कर लेंगे। दृढव्रते! हम दोनों जन्मसे ही पापपरायण और कुकर्म करनेवाले हैं, पर इस समय तुम्हारे उपवासके प्रसङ्गसे हम दोनोंको भी विशेष आनन्द प्राप्त हो रहा है।' उसी प्रसङ्गमें तुम दोनोंको धर्मका लेशांश प्राप्त हुआ था और उसी प्रसङ्गमें तुम दोनोंने रातभर जागरण भी किया। (दूसरे दिन) प्रातःकाल अनङ्गवतीने भक्तिपूर्वक अपने गुरुको लवणाचलसहित शय्या और अनेकों गाँव प्रदान किये। उसी प्रकार उसने अन्य बारह ब्राह्मणोंको भी सुवर्ण, वस्त्र, अलंकारादि सहित बारह गायें प्रदान कीं। तदनन्तर सुहृद्, मित्र, दीन, अन्धे और दरिद्रोंके साथ तुम लुब्धक-दम्पतिको भोजन कराया और विशेष आदर-सत्कारके साथ तुम्हें विदा किया॥ २२—२८॥

स भवाँल्लुब्धको जातः सपत्नीको नृपेश्वरः। पुष्करप्रकरात् तस्मात् केशवस्य च पूजनात्॥ २९॥
विनष्टाशेषपापस्य तव पुष्करमन्दिरम्। तस्य सत्त्वस्य माहात्म्यादलोभतपसा नृप॥ ३०॥
प्रादात्तु कामगं यानं लोकनाथश्चतुर्मुखः। संतुष्टस्तव राजेन्द्र ब्रह्मरूपी जनार्दनः॥ ३१॥
साप्यनङ्गवती वेश्या कामदेवस्य साम्प्रतम्।
पत्नी सपत्नी संजाता रत्याः प्रीतिरिति श्रुता। लोकेष्वानन्दजननी सकलामरपूजिता॥ ३२॥
तस्मादुत्सृज्य राजेन्द्र पुष्करं तन्महीतले।
यत्नात्त्वं समाश्रित्य विभूतिद्वादशीव्रतम्। कुरु राजेन्द्र निर्वाणमवश्यं समवाप्स्यसि॥ ३३॥

राजेन्द्र! वह सपत्नीक लुब्धक तुम्हीं थे, जो इस समय राजराजेश्वरके रूपमें उत्पन्न हुए हो। उस कमल-समूहसे भगवान् केशवका पूजन होनेके कारण तुम्हारे सारे पाप नष्ट हो गये तथा दृढ़ त्याग, तप एवं निर्लोभिताके कारण तुम्हें इस कमलमन्दिरकी भी प्राप्ति हुई है। राजन्! तुम्हारी उसी सात्त्विक भावनाके माहात्म्यसे, तुम्हारे थोड़े-से ही तपसे ब्रह्मरूपी भगवान् जनार्दन तथा लोकेश्वर ब्रह्मा भी संतुष्ट हुए हैं। इसीसे

तुम्हारा पुष्कर-मन्दिर स्वेच्छानुसार जहाँ-कहीं भी जानेकी शक्तिसे युक्त है। वह अनङ्गवती वेश्या भी इस समय कामदेवकी पत्नी रति*के सौतरूपमें उत्पन्न हुई है। यह इस समय प्रीति नामसे विख्यात है और समस्त लोकोंमें सबको आनन्द प्रदान करती तथा सम्पूर्ण देवताओंद्वारा सत्कृत है। इसलिये राजराजेश्वर! तुम उस पुष्कर-गृहको भूतलपर छोड़ दो और गङ्गातटका आश्रय लेकर विभूतिद्वादशी-व्रतका अनुष्ठान करो। उससे तुम्हें निश्चय ही मोक्षकी प्राप्ति हो जायगी ॥ २९-३३ ॥

नन्दिकेश्वर उवाच

इत्युक्त्वा स मुनिर्ब्रह्मंस्तत्रैवान्तरधीयत। राजा यथोक्तं च पुनरकरोत् पुष्पवाहनः ॥ ३४ ॥
इदमाचरतो ब्रह्मन्नखण्डव्रतमाचरेत्। यथाकथंचित् कमलैर्द्वादश द्वादशीर्मुने ॥ ३५ ॥
कर्तव्याः शक्तितो देया विप्रेभ्यो दक्षिणानघ। न वित्तशाठ्यं कुर्वीत भक्त्या तुष्यति केशवः ॥ ३६ ॥
इति कलुषविदारणं जनानामपि पठतीह शृणोति चाथ भक्त्या।
मतिमपि च ददाति देवलोके वसति स कोटिशतानि वत्सराणाम् ॥ ३७ ॥

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे विभूतिद्वादशीव्रतं नाम शततमोऽध्यायः ॥ १०० ॥*

नन्दिकेश्वर बोले—ब्रह्मन्! ऐसा कहकर प्रचेता मुनि वहीं अन्तर्हित हो गये। तब राजा पुष्पवाहनने मुनिके कथनानुसार सारा कार्य सम्पन्न किया। ब्रह्मन्! इस विभूतिद्वादशी-व्रतका अनुष्ठान करते समय अखण्ड व्रतका पालन करना आवश्यक है। मुने! जिस किसी भी प्रकारसे हो सके, बारहों द्वादशियोंका व्रत कमल-पुष्पोंद्वारा सम्पन्न करना चाहिये। अनघ! अपनी शक्तिके अनुसार ब्राह्मणोंको दक्षिणा भी देनेका विधान है। इसमें कृपणता नहीं करनी चाहिये; क्योंकि भक्तिसे ही भगवान् केशव प्रसन्न होते हैं। जो मनुष्य लोगोंके पापोंको विदीर्ण करनेवाले इस व्रतको पढ़ता या श्रवण करता है अथवा इसे करनेके लिये सम्मति प्रदान करता है, वह भी सौ करोड़ वर्षोंतक देवलोकमें निवास करता है ॥ ३४-३७ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें विभूतिद्वादशी-व्रत नामक सौवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १०० ॥

# एक सौ एकवाँ अध्याय

## साठ व्रतोंका विधान और माहात्म्य

नन्दिकेश्वर उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि व्रतषष्टिमनुत्तमाम्। रुद्रेणाभिहितां दिव्यां महापातकनाशिनीम् ॥ १ ॥
नक्तमब्दं चरित्वा तु गवा सार्धं कुटुम्बिने। हैमं चक्रं त्रिशूलं च दद्याद् विप्राय वाससी ॥ २ ॥
शिवरूपस्ततोऽस्माभिः शिवलोके स मोदते। एतद्देवव्रतं नाम महापातकनाशनम् ॥ ३ ॥
यस्त्वेकभक्तेन क्षिपेत् समां हैमवृषान्वितम्।
धेनुं तिलमयीं दद्यात् स पदं याति शांकरम्। एतद् रुद्रव्रतं नाम पापशोकविनाशनम् ॥ ४ ॥
यस्तु नीलोत्पलं हैमं शर्करापात्रसंयुतम्।
एकान्तरितनक्ताशी समान्ते वृषसंयुतम्। स वैष्णवं पदं याति नीलव्रतमिदं स्मृतम् ॥ ५ ॥

* हरिवंश, अन्य पुराणों तथा कथासरित्सागरादिमें भी रति और प्रीति—ये कामदेवकी दो पत्नियाँ कही गयी हैं। किंतु उसकी दूसरी पत्नी प्रीतिकी उत्पत्तिकी पूरी कथा यहीं है।

आषाढादिचतुर्मासमभ्यङ्गं वर्जयेन्नरः ।
भोजनोपस्करं दद्यात् स याति भवनं हरेः । जनप्रीतिकरं नृणां प्रीतिव्रतमिहोच्यते ॥ ६ ॥
वर्जयित्वा मधौ यस्तु दधिक्षीरघृतैक्षवम् । दद्याद् वस्त्राणि सूक्ष्माणि रसपात्रैश्च संयुतम् ॥ ७ ॥
सम्पूज्य विप्रमिथुनं गौरी मे प्रीयतामिति । एतद् गौरीव्रतं नाम भवानीलोकदायकम् ॥ ८ ॥

नन्दिकेश्वर बोले—नारदजी ! अब मैं उन साठ सर्वोत्तम व्रतोंका वर्णन कर रहा हूँ, जो साक्षात् शंकरजीद्वारा कथित, दिव्य एवं महापातकोंके विनाशक है। जो मनुष्य एक वर्षतक रात्रिमें एक बार भोजन कर स्वर्णनिर्मित चक्र और त्रिशूल तथा दो वस्त्र गौके साथ कुटुम्बी ब्राह्मणको दान करता है, वह शिवस्वरूप होकर शिवलोकमें हमलोगोंके साथ आनन्द मनाता है। यह महापातकोंका विनाश करनेवाला 'देवव्रत' है। जो मनुष्य एक वर्षतक दिनमें एक बार भोजन कर स्वर्णनिर्मित वृषसहित तिलमयी धेनुका दान करता है, वह शिवलोकको प्राप्त होता है। यह पाप एवं शोकका क्षयकारक 'रुद्रव्रत' है। जो मनुष्य एक दिनके अन्तरसे रातमें एक बार भोजन करके वर्षकी समाप्तिके अवसरपर शक्करसे पूर्ण पात्रसहित स्वर्णनिर्मित नील कमलको वृषभके साथ दान करता है, वह विष्णुलोकको जाता है; यह 'नीलव्रत' कहा जाता है। जो मनुष्य आषाढ़से लेकर चार मासतक शरीरमें तेल नहीं लगाता और भोजनकी सामग्री दान करता है, वह श्रीहरिके लोकको जाता है। इस लोकमें यह मनुष्योंमें प्रत्येक व्यक्तिको प्रिय लगनेवाला 'प्रीतिव्रत' नामसे कहा जाता है। जो मनुष्य चैत्र मासमें दही, दूध, घी और शक्करका त्याग कर देता है और 'गौरी मुझपर प्रसन्न हो'—इस भावनासे ब्राह्मण-दम्पतिकी भलीभाँति पूजा करके रसपूर्ण पात्रोंके साथ महीन वस्त्रोंका दान करता है, ( वह गौरीलोकमें जाता है )। गौरीलोककी प्राप्ति करानेवाला यह 'गौरीव्रत' है ॥ १–८ ॥

पुष्यादौ यस्त्रयोदश्यां कृत्वा नक्तमथो पुनः । अशोकं काञ्चनं दद्यादिक्षुयुक्तं दशाङ्गुलम् ॥ ९ ॥
विप्राय वस्त्रसंयुक्तं प्रद्युम्नः प्रीयतामिति ।
कल्पं विष्णुपदे स्थित्वा विशोकः स्यात् पुनर्नरः । एतत् कामव्रतं नाम सदा शोकविनाशनम् ॥ १० ॥
आषाढादिव्रतं यस्तु वर्जयेन्नखकर्तनम् । वार्त्ताकं च चतुर्मासं मधुसर्पिर्घटान्वितम् ॥ ११ ॥
कार्तिक्यां तत्पुनर्हैमं ब्राह्मणाय निवेदयेत् । स रुद्रलोकमाप्नोति शिवव्रतमिदं स्मृतम् ॥ १२ ॥
वर्जयेद् यस्तु पुष्पाणि हेमन्तशिशिरावृतू । पुष्पत्रयं च फाल्गुन्यां कृत्वा शक्त्या च काञ्चनम् ॥ १३ ॥
दद्याद् विकालवेलायां प्रीयेतां शिवकेशवौ । दत्त्वा परं पदं याति सौम्यव्रतमिदं स्मृतम् ॥ १४ ॥
फाल्गुन्यादितृतीयायां लवणं यस्तु वर्जयेत् । समान्ते शयनं दद्याद् गृहं चोपस्करान्वितम् ॥ १५ ॥
सम्पूज्य विप्रमिथुनं भवानी प्रीयतामिति । गौरीलोके वसेत् कल्पं सौभाग्यव्रतमुच्यते ॥ १६ ॥
संध्यामौनं नरः कृत्वा समान्ते घृतकुम्भकम् । वस्त्रयुग्मं तिलान् घण्टां ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥ १७ ॥
सारस्वतं पदं याति पुनरावृत्तिदुर्लभम् । एतत् सारस्वतं नाम रूपविद्याप्रदं व्रतम् ॥ १८ ॥

पुनः जो मनुष्य पुष्य नक्षत्रसे युक्त त्रयोदशी तिथिको रातमें एक वार भोजन कर ( दूसरे दिन ) दस अङ्गुल लम्बा सोनेका अशोक-वृक्ष बनवाकर उसे वस्त्र और गन्नेके साथ 'प्रद्युम्न मुझपर प्रसन्न हों' इस भावनासे ब्राह्मणको दान करता है, वह एक कल्पतक विष्णुलोकमें निवास करके पुनः शोकरहित हो जाता है। सदा शोकका विनाश करनेवाला यह 'कामव्रत' है। जो मनुष्य चौमासेमें—आषाढ पूर्णिमासे लेकर कार्तिकतक नख ( बाल ) नहीं कटवाता और भाँटा नहीं खाता, पुनः कार्तिकी पूर्णिमाको मधु और घीसे

भरे हुए घडेके साथ स्वर्णनिर्मित भॉटा ब्राह्मणको दान करता है, वह रुद्रलोकको प्राप्त होता है। इसे 'शिवव्रत' कहा जाता है। जो मनुष्य हेमन्त और शिशिर ऋतुओंमें पुष्पोंको काममें नहीं लेता और फाल्गुन मासकी पूर्णिमा तिथिको अपनी शक्तिके अनुकूल सोनेके तीन पुष्प बनवाकर उन्हे सायंकालमें 'भगवान् शिव और केशव मुझपर प्रसन्न हो'—इस भावनासे दान करता है, वह परमपदको प्राप्त होता है। यह 'सौम्यव्रत' कहलाता है। जो मनुष्य फाल्गुन मासकी आदि तृतीया तिथिको नमक खाना छोड़ देता है तथा वर्षान्तके दिन 'भवानी मुझपर प्रसन्न हों'—इस भावनासे द्विज-दम्पतिकी भलीभॉति पूजा करके गृहस्थीके उपकरणोंसे युक्त गृह और शय्या दान करता है, वह एक कल्पतक गौरीलोकमें निवास करता है। इसे 'सौभाग्यव्रत' कहा जाता है। जो मनुष्य संध्याकी वेलामें मौन रहनेका नियम पालन कर वर्षकी समाप्तिमें घृतपूर्ण घट, दो वस्त्र, तिल और घंटा ब्राह्मणको दान करता है, वह पुनरागमनरहित सारस्वत-पदको प्राप्त होता है। सौन्दर्य और विद्या प्रदान करनेवाला यह 'सारस्वत' नामक व्रत है ॥ ९—१८ ॥

लक्ष्मीमभ्यर्च्य पञ्चम्यामुपवासी भवेन्नरः। समान्ते हेमकमलं दद्याद् धेनुसमन्वितम् ॥ १९ ॥
स वैष्णवं पदं याति लक्ष्मीवाञ् जन्मजन्मनि। एतत् सम्पद्व्रतं नाम दुःखशोकविनाशनम् ॥ २० ॥
कृत्वोपलेपनं शम्भोरग्रतः केशवस्य च। यावदब्दं पुनर्दद्याद् धेनुं जलघटान्विताम् ॥ २१ ॥
जन्मायुतं स राजा स्यात् ततः शिवपुरं व्रजेत्। एतदायुर्व्रतं नाम सर्वकामप्रदायकम् ॥ २२ ॥
अश्वत्थं भास्करं गङ्गां प्रणम्यैकत्र वाग्यतः। एकभक्तं नरः कुर्यादब्दमेकं विमत्सरः ॥ २३ ॥
व्रतान्ते विप्रमिथुनं पूज्यं धेनुत्रयान्वितम्।
वृक्षं हिरण्मयं दद्यात् सोऽश्वमेधफलं लभेत्। एतत् कीर्तिव्रतं नाम भूतिकीर्तिफलप्रदम् ॥ २४ ॥
घृतेन स्नपनं कुर्याच्छम्भोर्वा केशवस्य च। अक्षताभिः सपुष्पाभिः कृत्वा गोमयमण्डलम् ॥ २५ ॥
तिलधेनुसमोपेतं समान्ते हेमपङ्कजम्।
शुद्धमष्टाङ्गुलं दद्याच्छिवलोके महीयते। सामगाय ततश्चैतत् सामव्रतमिहोच्यते ॥ २६ ॥

जो मनुष्य पञ्चमी तिथिको निराहार रहकर लक्ष्मीकी पूजा करता है और वर्षकी समाप्तिके दिन गौके साथ स्वर्ण-निर्मित कमलका दान करता है, वह विष्णुलोकको जाता है और प्रत्येक जन्ममें लक्ष्मीसे सम्पन्न रहता है। यह 'सम्पद्व्रत' है, जो दुःख और शोकका विनाश करनेवाला है। जो मनुष्य एक वर्षतक भगवान् शिव और केशवकी मूर्तिके सामनेकी भूमिको लीपकर वहॉ जलपूर्ण घटसहित गौका दान करता है, वह दस हजार वर्षोंतक राजा होता है और मरणोपरान्त शिवलोकमें जाता है। यह 'आयुव्रत' है, जो सभी मनोरथोंको सिद्ध करनेवाला है। जो मनुष्य एक वर्षतक मत्सररहित हो दिनमें एक बार भोजन कर मौन-धारणपूर्वक एक ही स्थानपर पीपल, सूर्य और गङ्गाको प्रणाम करता है तथा व्रतकी समाप्तिमें पूजनीय ब्राह्मण-दम्पतिको तीन गौओंके साथ स्वर्णनिर्मित वृक्षका दान करता है, उसे अश्वमेध-यज्ञके फलकी प्राप्ति होती है। यह 'कीर्तिव्रत' है, जो वैभव और कीर्तिरूपी फलका प्रदाता है। जो मनुष्य एक वर्षतक गोबरसे मण्डल बनाकर वहॉ भगवान् शिव अथवा केशवको घीसे स्नान कराकर पुष्प, अक्षत आदिसे पूजा करता है और वर्षान्तमें तिल-धेनुसहित आठ अङ्गुल लम्बा शुद्ध स्वर्णनिर्मित कमल सामवेदी ब्राह्मणको दान करता है, वह शिवलोकमें प्रतिष्ठित होता है। इसे इस लोकमें 'सामव्रत' कहा जाता है ॥ १९—२६ ॥

नवम्यामेकभक्तं तु कृत्वा कन्याश्च शक्तितः। भोजयित्वाऽऽसनं दद्याद्धैमकञ्चुकवाससी ॥ २७ ॥
हैमं सिंहं च विप्राय दत्त्वा शिवपदं व्रजेत्।
जन्मार्बुदं सुरूपः स्याच्छत्रुभिश्चापराजितः। एतद् वीरव्रतं नाम नारीणां च सुखप्रदम् ॥ २८ ॥
यावत्समा भवेद् यस्तु पञ्चदश्यां पयोव्रतः। समान्ते श्राद्धकृद् दद्यात् पञ्च गास्तु पयस्विनीः॥ २९ ॥
वासांसि च पिशङ्गानि जलकुम्भयुतानि च।
स याति वैष्णवं लोकं पितॄणां तारयेच्छतम्। कल्पान्ते राजराजः स्यात् पितृव्रतमिदं स्मृतम्॥ ३० ॥
चैत्रादिचतुरो मासाञ् जलं दद्यादयाचितम्। व्रतान्ते मणिकं दद्यादन्नवस्त्रसमन्वितम् ॥ ३१ ॥
तिलपात्रं हिरण्यं च ब्रह्मलोके महीयते। कल्पान्ते भूपतिर्नूनमानन्दव्रतमुच्यते ॥ ३२ ॥

जो मनुष्य नवमी तिथिको दिनमें एक बार भोजन करके अपनी शक्तिके अनुसार कन्याओंको भोजन कराकर उन्हें आसन और सोनेके तारोंसे खचित चोली एवं साड़ी तथा ब्राह्मणको स्वर्णनिर्मित सिंह दान करता है, वह शिवलोकमें जाता है और एक अरब जन्मोंतक सौन्दर्यसम्पन्न एवं शत्रुओंके लिये अजेय हो जाता है। यह 'वीरव्रत' है, जो नारियोंके लिये सुख-दायक है। जो मनुष्य एक वर्षतक पूर्णिमा तिथिको केवल दूध पीकर व्रत करता है और वर्षकी समाप्तिके दिन श्राद्ध करके लालिमायुक्त भूरे रंगके वस्त्र और जलपूर्ण घटोंके साथ पाँच दुधारू गायें दान करता है, वह विष्णुलोकको जाता है और अपने सौ पीढ़ीतकके पितरोंको तार देता है। पुनः एक कल्प व्यतीत होनेपर वह भूतलपर राजराजेश्वर होता है। यह 'पितृव्रत' कहलाता है। जो मनुष्य चैत्रसे आरम्भकर चार मासतक बिना याचना किये जलका दान देता है अर्थात् पौसला चलाता है तथा व्रतके अन्तमें अन्न एवं वस्त्रसे युक्त मिट्टीका घड़ा, तिलसे भरा पात्र और सुवर्णका दान करता है, वह ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठित होता है। एक कल्पके व्यतीत होनेपर वह निश्चय ही भूपाल होता है। यह 'आनन्दव्रत' कहा जाता है॥

पञ्चामृतेन स्नपनं कृत्वा संवत्सरं विभोः। वत्सरान्ते पुनर्दद्याद् धेनुं पञ्चामृतेन हि ॥ ३३ ॥
विप्राय दद्याच्छङ्खं च स पदं याति शांकरम्। राजा भवति कल्पान्ते धृतिव्रतमिदं स्मृतम् ॥ ३४ ॥
वर्जयित्वा पुमान् मांसमब्दान्ते गोप्रदो भवेत्।
तद्वद्धेममृगं दद्यात् सोऽश्वमेधफलं लभेत्। अहिंसाव्रतमित्युक्तं कल्पान्ते भूपतिर्भवेत् ॥ ३५ ॥
माघमास्युषसि स्नानं कृत्वा दाम्पत्यमर्चयेत्।
भोजयित्वा यथाशक्त्या माल्यवस्त्रविभूषणैः। सूर्यलोके वसेत् कल्पं सूर्यव्रतमिदं स्मृतम् ॥ ३६ ॥
आषाढादि चतुर्मासं प्रातःस्नायी भवेन्नरः।
विप्रेभ्यो भोजनं दद्यात् कार्तिक्यां गोप्रदो भवेत्। स वैष्णवं पदं याति विष्णुव्रतमिदं शुभम् ॥ ३७ ॥
अयनादयनं यावद् वर्जयेत् पुष्पसर्पिषी। तदन्ते पुष्पदामानि घृतधेन्वा सहैव तु ॥ ३८ ॥
दत्त्वा शिवपदं गच्छेद् विप्राय घृतपायसम्। एतच्छीलव्रतं नाम शीलारोग्यफलप्रदम् ॥ ३९ ॥
संध्यादीपप्रदो यस्तु घृतं तैलं विवर्जयेत्। समान्ते दीपिकां दद्याच्चक्रशूले च काञ्चने ॥ ४० ॥
वस्त्रयुग्मं च विप्राय तेजस्वी स भवेदिह। रुद्रलोकमवाप्नोति दीप्तिव्रतमिदं स्मृतम् ॥ ४१ ॥

जो एक वर्षतक पञ्चामृत ( दूध, दही, घी, मधु, शक्कर ) से भगवान्‌की मूर्तिको स्नान कराता है, पुनः वर्षान्तमें पञ्चामृतसहित गौ और शङ्ख ब्राह्मणको दान करता है, वह शिवलोकमें जाता है और एक कल्पके बाद भूतलपर राजा होता है। यह 'धृतिव्रत' कहा जाता है। जो मनुष्य एक वर्षतक मांस खाना छोड़कर वर्षान्तमें गौ दान करता है तथा उसके साथ स्वर्णनिर्मित मृग भी देता है, वह अश्वमेधयज्ञके फलका

भागी होता है और कल्पान्तमें राजा होता है। यह 'अहिंसाव्रत' कहलाता है। जो मनुष्य माघमासमें ब्राह्मवेलामें स्नान कर अपनी शक्तिके अनुसार एक द्विज-दम्पतिको भोजन कराकर पुष्पमाला, वस्त्र और आभूषण आदिसे उनकी पूजा करता है, वह एक कल्पतक सूर्यलोकमें निवास करता है। यह 'सूर्यव्रत' कहा जाता है। जो मनुष्य आषाढ़से आरम्भकर चार महीनेतक नित्य प्रातःकाल स्नान करता है और ब्राह्मणोंको भोजन देता है तथा कार्तिकी पूर्णिमाको गो-दान करता है, वह विष्णुलोकको जाता है। यह मङ्गलमय 'विष्णुव्रत' है। जो मनुष्य एक अयनसे दूसरे अयनतक ( उत्तरायणसे दक्षिणायन अथवा दक्षिणायनसे उत्तरायणतक ) पुष्प और घीका त्याग कर देता है और व्रतान्तके दिन घृत-धेनुसहित पुष्पोंकी मालाएँ एवं घी और दूधसे बने हुए खाद्य पदार्थ ब्राह्मणको दान करता है, वह शिवलोकको जाता है। यह 'शीलव्रत' है, जो सुशीलता एवं नीरोगतारूप फल प्रदान करता है। जो एक वर्षतक नित्य सायंकाल दीप-दान करता है और तेल-घी खाना छोड़ देता है, पुनः वर्षान्तमें ब्राह्मणको स्वर्ण-निर्मित चक्र, त्रिशूल और दो वस्त्रके साथ दीपकका दान देता है, वह इस लोकमें तेजस्वी होता है और मरणोपरान्त रुद्रलोकको प्राप्त होता है। यह 'दीप्तिव्रत' कहलाता है ॥ ३३—४१ ॥

कार्तिक्यादितृतीयायां प्राश्य गोमूत्रयावकम्। नक्तं चरेदब्दमेकमब्दान्ते गोप्रदो भवेत् ॥ ४२ ॥
गौरीलोके वसेत् कल्पं ततो राजा भवेदिह। एतद् रुद्रव्रतं नाम सदा कल्याणकारकम् ॥ ४३ ॥
वर्जयेच्चैत्रमासे च यश्च गन्धानुलेपनम्।
शुक्तिं गन्धभृतां दत्त्वा विप्राय सितवाससी। वारुणं पदमाप्नोति दृढव्रतमिदं स्मृतम् ॥ ४४ ॥
वैशाखे पुष्पलवणं वर्जयित्वाथ गोप्रदः।
भूत्वा विष्णुपदे कल्पं स्थित्वा राजा भवेदिह। एतत् कान्तिव्रतं नाम कान्तिकीर्तिफलप्रदम् ॥ ४५ ॥
ब्रह्माण्डं काञ्चनं कृत्वा तिलराशिसमन्वितम्। त्र्यहं तिलप्रदो भूत्वा वह्निं संतर्प्य सद्द्विजम् ॥ ४६ ॥
सम्पूज्य विप्रदाम्पत्यं माल्यवस्त्रविभूषणैः। शक्तितस्त्रिपलादूर्ध्वं विश्वात्मा प्रीयतामिति ॥ ४७ ॥
पुण्येऽह्नि दद्यात् स परं ब्रह्म यात्यपुनर्भवम्। एतद् ब्रह्मव्रतं नाम निर्वाणपददायकम् ॥ ४८ ॥
यश्चोभयमुखीं दद्यात् प्रभूतकनकान्विताम्।
दिनं पयोव्रतस्तिष्ठेत् स याति परमं पदम्। एतद् धेनुव्रतं नाम पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥ ४९ ॥
त्र्यहं पयोव्रते स्थित्वा काञ्चनं कल्पपादपम्।
पलादूर्ध्वं यथाशक्त्या तण्डुलैस्तूपसंयुतम्। दत्त्वा ब्रह्मपदं याति कल्पव्रतमिदं स्मृतम् ॥ ५० ॥
मासोपवासी यो दद्याद् धेनुं विप्राय शोभनाम्। स वैष्णवं पदं याति भीमव्रतमिदं स्मृतम् ॥ ५१ ॥

जो एक वर्षतक कार्तिक माससे प्रारम्भ कर तृतीया तिथिको गोमूत्र एवं जौसे बने हुए खाद्य पदार्थोंको खाकर नक्तव्रतका पालन करता है और वर्षान्तमें गोदान करता है, वह एक कल्पतक गौरीलोकमें निवास करता है और ( पुण्य क्षीण होनेपर ) भूतलपर राजा होता है। यह 'रुद्रव्रत' है, जो सदाके लिये कल्याणकारी है। जो चैत्र मासमें सुगन्धित वस्तुओंका अनुलेपन छोड़ देता है अर्थात् शरीरमें सुगन्धित पदार्थ नहीं लगाता और व्रतान्तमें ब्राह्मणको दो श्वेत वस्त्रोंके साथ गन्ध-धारियोंकी शुक्ति ( गन्धद्रव्यविशेष ) का दान करता है, वह वरुणलोकको प्राप्त होता है। यह 'दृढव्रत' कहलाता है। जो वैशाख मासमें पुष्प और नमकका परित्याग कर व्रतान्तमें गोदान करता है, वह एक कल्पतक विष्णु-लोकमें निवास करके ( पुण्य क्षीण होनेपर ) इस

लोकमें राजा होता है। यह 'कान्तिव्रत' है, जो कान्ति और कीर्तिरूपी फलका प्रदाता है। जो किसी पुण्यप्रद दिनमें अपनी शक्तिके अनुसार तीन पलसे अधिक सोनेका ब्रह्माण्ड बनवाकर तिलकी राशिपर स्थापित कर देता है और तीन दिनतक ब्राह्मणसहित अग्निको संतुष्ट करके तिलका दान देता रहता है, पुनः चौथे दिन एक विप्र-दम्पतिकी पुष्पमाला, वस्त्र और आभूषण आदिसे विधिपूर्वक पूजा करके 'विश्वात्मा मुझपर प्रसन्न हों'—इस भावनासे वह ब्रह्माण्ड दान कर देता है, वह पुनर्जन्म-रहित परब्रह्मको प्राप्त हो जाता है। यह 'ब्रह्मव्रत' है, जो मोक्षपदका दाता है। जो दिनभर पयोव्रतका पालन (दूधका आहार) करके अधिक-से-अधिक सोनेकी बनी हुई उभयमुखी (दो मुखवाली अथवा सवत्सा) गौका दान करता है, वह पुनरागमनरहित परमपदको प्राप्त हो जाता है। यह 'धेनुव्रत' है। जो तीन दिनतक पयोव्रतका पालन करके अपनी शक्तिके अनुसार एक पलसे अधिक सोनेका कल्पवृक्ष बनवाकर उसे चावलकी राशिपर स्थापित करके दान कर देता है, वह ब्रह्मपदको प्राप्त हो जाता है। इसे 'कल्पव्रत' कहा जाता है। जो एक मासतक निराहार रहकर ब्राह्मणको सुन्दर गौका दान करता है, वह विष्णुलोकको जाता है। यह 'भीम-व्रत' कहलाता है॥ ४२—५१॥

दद्याद् विंशत्पलादूर्ध्वं महीं कृत्वा तु काञ्चनीम्।
दिनं पयोव्रतस्तिष्ठेद् रुद्रलोके महीयते। धराव्रतमिदं प्रोक्तं सप्तकल्पशतानुगम्॥ ५२॥
माघे मासेऽथवा चैत्रे गुडधेनुप्रदो भवेत्।
गुडव्रतस्तृतीयायां गौरीलोके महीयते। महाव्रतमिदं नाम परमानन्दकारकम्॥ ५३॥
पक्षोपवासी यो दद्याद् विप्राय कपिलाद्वयम्।
ब्रह्मलोकमवाप्नोति देवासुरसुपूजितम्। कल्पान्ते राजराजः स्यात् प्रभाव्रतमिदं स्मृतम्॥ ५४॥
वत्सरं त्वेकभक्ताशी सभक्ष्यजलकुम्भदः। शिवलोके वसेत् कल्पं प्राप्तिव्रतमिदं स्मृतम्॥ ५५॥
नक्ताशी चाष्टमीषु स्याद् वत्सरान्ते च धेनुदः। पौरन्दरं पुरं याति सुगतिव्रतमुच्यते॥ ५६॥
विप्रायेन्धनदो यस्तु वर्षादिचतुरो ऋतून्।
घृतधेनुप्रदोऽन्ते च स परं ब्रह्म गच्छति। वैश्वानरव्रतं नाम सर्वपापविनाशनम्॥ ५७॥
एकादश्यां च नक्ताशी यश्चक्रं विनिवेदयेत्
समान्ते वैष्णवं हैमं स विष्णोः पदमाप्नुयात्। एतत् कृष्णव्रतं नाम कल्पान्ते राज्यभाग् भवेत्॥ ५८॥
पायसाशी समान्ते तु दद्याद् विप्राय गोयुगम्। लक्ष्मीलोकमवाप्नोति ह्येतद् देवीव्रतं स्मृतम्॥ ५९॥
सप्तम्यां नक्तभुग् दद्यात् समान्ते गां पयस्विनीम्। सूर्यलोकमवाप्नोति भानुव्रतमिदं स्मृतम्॥ ६०॥
चतुर्थ्यां नक्तभुग्दद्यादब्दान्ते हेमवारणम्। व्रतं वैनायकं नाम शिवलोकफलप्रदम्॥ ६१॥
महाफलानि यस्त्यक्त्वा चतुर्मासं द्विजातये।
हैमानि कार्तिके दद्याद् गोयुगेन समन्वितम्। एतत् फलव्रतं नाम विष्णुलोकफलप्रदम्॥ ६२॥
यश्चोपवासी सप्तम्यां समान्ते हेमपङ्कजम्।
गाश्च वै शक्तितो दद्याद्धेमान्नघटसंयुताः। एतत् सौरव्रतं नाम सूर्यलोकफलप्रदम्॥ ६३॥

जो दिनभर पयोव्रतका पालन कर बीस पलसे अधिक सोनेसे पृथ्वीकी मूर्ति बनवाकर दान करता है, वह रुद्रलोकमें प्रतिष्ठित होता है। इसे 'धराव्रत' कहते हैं, जो सात सौ कल्पोंतक दाताका अनुगमन करता रहता है। जो माघ अथवा चैत्र मासमें तृतीया तिथिको गुडव्रतका पालन कर गुडधेनुका दान करता है, वह गौरीलोकमें प्रतिष्ठित होता है। यह परमानन्द प्रदान करनेवाला 'महाव्रत' है। जो एक पक्षतक निराहार रहकर

ब्राह्मणको दो कपिला गौका दान करता है, वह देवताओं एवं असुरोंद्वारा सुपूजित ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है और एक कल्प बीतनेपर भूतलपर राजाधिराज होता है। इसे 'प्रभाव्रत' कहते हैं। जो एक वर्षतक दिनमें एक ही बार भोजन करके व्रतान्तमें खाद्य पदार्थोंसहित जलपूर्ण घटका दान करता है, वह एक कल्पतक शिवलोकमें निवास करता है। इसे 'प्राप्तिव्रत' कहा जाता है। जो प्रत्येक मासकी अष्टमी तिथियोंमें रातमें एक बार भोजन करता है और वर्षके अन्तमें गोदान करता है, वह इन्द्रलोकमें जाता है। इसे 'सुगतिव्रत' कहा जाता है। जो वर्षा-ऋतुसे लेकर चार ऋतुओंतक ब्राह्मणको ईंधनका दान देता है और व्रतान्तमें घृत-धेनु प्रदान करता है, वह परब्रह्मको प्राप्त हो जाता है। सम्पूर्ण पापोंका विनाश करनेवाला यह 'वैश्वानरव्रत' है। जो एकादशी तिथिको रातमें एक बार भोजन करते हुए वर्षके अन्तमें सोनेका विष्णु-चक्र बनवाकर दान करता है, वह विष्णुलोकको प्राप्त होता है और एक कल्पके बीतनेपर भूतलपर राज्यका भागी होता है। यह 'कृष्णव्रत' है। जो खीरका भोजन करते हुए वर्षके अन्तमें ब्राह्मणको दो गौ दान करता है, वह लक्ष्मीलोकको प्राप्त होता है। इसे 'देवीव्रत' कहा जाता है। जो सप्तमी तिथिको रातमें एक बार भोजन करते हुए वर्षकी समाप्तिमें दुधारू गौका दान करता है, वह सूर्यलोकको प्राप्त होता है। यह 'भानुव्रत' कहलाता है। जो चतुर्थी तिथिको रातमें एक बार भोजन करते हुए वर्षकी समाप्तिके अवसरपर सोनेका हाथी दान करता है, वह शिवलोकको प्राप्त होता है। शिवलोक-रूप फल प्रदान करनेवाला यह 'विनायकव्रत' है। जो चौमासेमें ( बेल, जामुन, बेर, कैथ और बीजपुर नीबू ) इन पाँच महाफलोंका परित्याग कर कार्तिक मासमें सोनेसे इन फलोंका निर्माण कराकर दो गौओंके साथ दान करता है, वह विष्णुलोकको जाता है। विष्णुलोकरूप फल प्रदान करनेवाला यह 'फलव्रत' है। जो सप्तमी तिथिको निराहार रहते हुए वर्षके अन्तमें अपनी शक्तिके अनुसार स्वर्णनिर्मित कमल तथा सुवर्ण, अन्न और घटसहित गौओंका दान करता है, वह सूर्यलोकमें जाता है। सूर्यलोकरूप फलका प्रदाता यह 'सौरव्रत' है॥ ५२—६३ ॥

द्वादश द्वादशीर्यस्तु समाप्योपोषणेन च।
गोवस्त्रकाञ्चनैर्विप्रान् पूजयेच्छक्तितो नरः। परमं पदमाप्नोति विष्णुव्रतमिदं स्मृतम्॥ ६४॥
कार्तिक्यां च वृषोत्सर्गं कृत्वा नक्तं समाचरेत्। शैवं पदमवाप्नोति वार्षव्रतमिदं स्मृतम्॥ ६५॥
कृच्छ्रान्ते गोप्रदः कुर्याद् भोजनं शक्तितः पदम्। विप्राणां शांकरं याति प्राजापत्यमिदं व्रतम्॥ ६६॥
चतुर्दश्यां तु नक्ताशी समान्ते गोधनप्रदः। शैवं पदमवाप्नोति त्रैयम्बकमिदं व्रतम्॥ ६७॥
सप्तरात्रोषितो दद्याद् घृतकुम्भं द्विजातये। घृतव्रतमिदं प्राहुर्ब्रह्मलोकफलप्रदम्॥ ६८॥
आकाशशायी वर्षासु धेनुमन्ते पयस्विनीम्। शक्रलोके वसेन्नित्यमिन्द्रव्रतमिदं स्मृतम्॥ ६९॥
अनग्निपक्वमश्नाति तृतीयायां तु यो नरः।
गां दत्त्वा शिवमभ्येति पुनरावृत्तिदुर्लभम्। इह चानन्दकृत् पुंसां श्रेयोव्रतमिदं स्मृतम्॥ ७०॥
हैमं पलद्वयादूर्ध्वं रथमश्वयुगान्वितम्।
दद्यत् कृतोपवासः स्याद् दिवि कल्पशतं वसेत्। कल्पान्ते राजराजः स्यादश्वव्रतमिदं स्मृतम्॥ ७१॥
तद्वद्धेमरथं दद्यात् करिभ्यां संयुतं नरः।
सत्यलोके वसेत् कल्पं सहस्रमथ भूपतिः। भवेदुपोषितो भूत्वा करिव्रतमिदं स्मृतम्॥ ७२॥
उपवासं परित्यज्य समान्ते गोप्रदो भवेत्। यक्षाधिपत्यमाप्नोति सुखव्रतमिदं स्मृतम्॥ ७३॥
निशि कृत्वा जले वासं प्रभाते गोप्रदो भवेत्। वारुणं लोकमाप्नोति वरुणव्रतमुच्यते॥ ७४॥

चान्द्रायणं च यः कुर्याद्धेमचन्द्रं निवेदयेत् । चन्द्रव्रतमिदं प्रोक्तं चन्द्रलोकफलप्रदम् ॥ ७५ ॥
ज्येष्ठे पञ्चतपाः सायं हेमधेनुप्रदो दिवम् । यात्यष्टमीचतुर्दश्यो रुद्रव्रतमिदं स्मृतम् ॥ ७६ ॥

जो मनुष्य बारहों द्वादशियोंको उपवास करके यथाशक्ति गौ, वस्त्र और सुवर्णसे ब्राह्मणोंकी पूजा करता है, वह परमपदको प्राप्त हो जाता है । इसे 'विष्णुव्रत' कहा जाता है । जो कार्तिककी पूर्णिमा तिथिको वृषोत्सर्ग करके नक्तव्रतका पालन करता है, वह शिवलोकको प्राप्त होता है । यह 'वार्षव्रत' कहलाता है । जो कृच्छ्र-चान्द्रायण-व्रतकी समाप्तिपर गोदान करके यथाशक्ति ब्राह्मणोंको भोजन कराता है, वह शिवलोकको जाता है । यह 'प्राजापत्यव्रत' है । जो चतुर्दशी तिथिको रातमें एक बार भोजन करता है और वर्ष समाप्त होनेपर गोधनका दान करता है, वह शिवलोकको प्राप्त होता है । यह 'त्र्यम्बकव्रत' है । जो सात राततक उपवास कर ब्राह्मणको घृतपूर्ण घटका दान करता है, वह ब्रह्मलोकमें जाता है । यह ब्रह्मलोकरूप फल प्रदान करनेवाला 'घृतव्रत' है । जो वर्षा-ऋतुमें आकाशके नीचे ( खुले मैदानमें ) शयन करता है और व्रतान्तमें दुधारू गौका दान करता है, वह सदाके लिये इन्द्रलोकमें निवास करता है । इसे 'इन्द्रव्रत' कहा जाता है । जो मनुष्य तृतीया तिथिको विना अग्निमें पकाया हुआ पदार्थ भोजन करता है और व्रतान्तमें गौ-दान देता है, वह पुनरागमनरहित शिवलोकको प्राप्त होता है । मनुष्योंको इस लोकमें आनन्द प्रदान करनेवाला यह 'श्रेयोव्रत' कहलाता है । जो निराहार रहकर दो पलसे अधिक सोनेसे दो घोड़ोंसे जुता हुआ रथ बनवाकर दान करता है, वह सौ कल्पोंतक स्वर्गलोकमें वास करता है और कल्पान्तमें भूतलपर राजाधिराज होता है । इसे 'अश्वव्रत' कहते हैं । इसी प्रकार जो मनुष्य निराहार रहकर दो हाथियोंसे जुता हुआ सोनेका रथ दान करता है, वह एक हजार कल्पोंतक सत्यलोकमें निवास करता है और ( पुण्य-क्षीण होनेपर भूतलपर ) राजा होता है । यह 'करिव्रत' कहलाता है । इसी प्रकार जो मनुष्य वर्षके अन्तमें उपवासका परित्याग कर गोदान करता है, वह यक्षोंका अधीश्वर होता है । इसे 'सुखव्रत' कहा जाता है । जो रातभर जलमें निवास कर प्रातःकाल गोदान करता है, वह वरुणलोकको प्राप्त करता है । इसे 'वरुणव्रत' कहते हैं । जो मनुष्य चान्द्रायण-व्रतका अनुष्ठान कर स्वर्णनिर्मित चन्द्रमाका दान करता है, वह चन्द्रलोकको जाता है । चन्द्रलोक-रूप फलका प्रदाता यह 'चन्द्रव्रत' कहलाता है । जो ज्येष्ठ मासकी अष्टमी तथा चतुर्दशी तिथियोंमें पञ्चाग्नि तपकर सायंकाल स्वर्णनिर्मित गौका दान करता है, वह स्वर्गलोकको जाता है । यह 'रुद्रव्रत' नामसे विख्यात है ॥ ६४—७६ ॥

सकृद् वितानकं कुर्यात् तृतीयायां शिवालये । समान्ते धेनुदो याति भवानीव्रतमुच्यते ॥ ७७ ॥
माघे निश्यार्द्रवासाः स्यात् सप्तम्यां गोप्रदो भवेत् । दिवि कल्पमुषित्वेह राजा स्यात् पवनं व्रतम् ॥ ७८ ॥
त्रिरात्रोपोषितो दद्यात् फाल्गुन्यां भवनं शुभम् । आदित्यलोकमाप्नोति धामव्रतमिदं स्मृतम् ॥ ७९ ॥
त्रिसंध्यं पूज्य दाम्पत्यमुपवासी विभूषणैः । अन्नं गाश्च समाप्नोति मोक्षमिन्द्रव्रतादिह ॥ ८० ॥
दत्त्वा सितद्वितीयायामिन्दोर्लवणभाजनम् ।
समान्ते गोप्रदो याति विप्राय शिवमन्दिरम् । कल्पान्ते राजराजः स्यात् सोमव्रतमिदं स्मृतम् ॥ ८१ ॥
प्रतिपद्येकभक्ताशी समान्ते कपिलाप्रदः । वैश्वानरपदं याति शिवव्रतमिदं स्मृतम् ॥ ८२ ॥
दशम्यामेकभक्ताशी समान्ते दशधेनुदः ।
दिशश्च काञ्चनैर्दद्याद् ब्रह्माण्डाधिपतिर्भवेत् । एतद् विश्वव्रतं नाम महापातकनाशनम् ॥ ८३ ॥

य· पठेच्छृणुयाद् वापि व्रतषष्टिमनुत्तमाम्। मन्वन्तरशतं सोऽपि गन्धर्वाधिपतिर्भवेत्॥ ८४॥
षष्टिव्रतं नारद पुण्यमेतत् तवोदितं विश्वजनीनमन्यत्।
श्रोतुं तवेच्छा तदुदीरयामि प्रियेषु किं वाकथनीयमस्ति॥ ८५॥

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे षष्टिव्रतमाहात्म्यं नामैकाधिकशततमोऽध्यायः॥ १०१॥*

जो तृतीया तिथिको शिवालयमें एक बार चँदोवा या चाँदनी लगा देता है और वर्षके अन्तमें गोदान करता है, वह भवानीलोकको जाता है। इसे 'भवानीव्रत' कहते हैं। जो माघ मासमें सप्तमी तिथिको रातभर गीला वस्त्र धारण किये रहता है और प्रातःकाल गौका दान करता है, वह एक कल्पतक स्वर्गमें निवास करके भूतल-पर राजा होता है। यह 'पवनव्रत' है। जो तीन राततक उपवास करके फाल्गुन मासकी पूर्णिमा तिथिको सुन्दर गृह दान करता है, वह सूर्यलोकको प्राप्त होता है। यह 'धामव्रत' नामसे प्रसिद्ध है। जो निराहार रहकर तीनों ( प्रातः, मध्याह्न, सायं ) संध्याओंमें आभूषणोंद्वारा ब्राह्मण-दम्पतिकी पूजा करता है, उसे इस लोकमें इन्द्रव्रतसे भी बढ़कर अधिक मात्रामें अन्न एवं गोधनकी प्राप्ति होती है तथा अन्तमें वह मोक्षलाभ करता है। जो शुक्लपक्षकी द्वितीया तिथिको चन्द्रमाके उद्देश्यसे नमकसे परिपूर्ण पात्र ब्राह्मणको दान करता है और वर्षकी समाप्तिमें गोदान देता है, वह शिवलोकको जाता है और एक कल्प व्यतीत होनेपर भूतलपर राजराजेश्वर होता है। यह 'सोमव्रत' नामसे विख्यात है। जो प्रति-पदा तिथिको दिनमें एक बार भोजन करता है और वर्षान्तमें कपिला गौका दान देता है, वह वैश्वानर-लोकको जाता है। इसे 'शिवव्रत' कहते हैं। जो दशमी तिथिको दिनमें एक बार भोजन करता है और वर्षकी समाप्तिके अवसरपर स्वर्णनिर्मित दसों दिशाओंकी प्रतिमा-के साथ दस गायें दान करता है, वह ब्रह्माण्डका अधीश्वर होता है। यह 'विश्वव्रत' है, जो महापातकोंका विनाशक है। जो इस सर्वोत्तम 'षष्टिव्रत' ( ६० व्रतोंकी चर्चा )को पढ़ता अथवा श्रवण करता है, वह भी सौ मन्वन्तरतक गन्धर्वलोकका अधिपति होता है। नारद! यह षष्टिव्रत* परम पुण्यप्रद और सभी जीवोंके लिये लाभदायक है, मैंने आपसे इसका वर्णन कर दिया। अब यदि आपकी और भी कुछ सुननेकी इच्छा हो तो मै उसका वर्णन करूँगा; क्योंकि प्रियजनोके प्रति भला कौन-सी वस्तु अकथनीय हो सकती है॥ ७७—८५॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमे षष्टिव्रतमाहात्म्य नामक एक सौ एकवॉ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १०१॥

# एक सौ दोवाँ अध्याय

## स्नान† और तर्पणकी विधि

नन्दिकेश्वर उवाच

**नैर्मल्यं भावशुद्धिश्च विना स्नानं न विद्यते। तस्मान्मनोविशुद्ध्यर्थं स्नानमादौ विधीयते॥ १॥**
**अनुद्धृतैरुद्धृतैर्वा जलैः स्नानं समाचरेत्।**
**तीर्थं प्रकल्पयेद् विद्वान् मूलमन्त्रेण मन्त्रवित्। नमो नारायणायेति मन्त्र एष उदाहृतः॥ २॥**
**दर्भपाणिस्तु विधिना आचान्तः प्रयतः शुचिः।**

* स्थलान्तरसे ये सभी व्रत पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड, अ० २० श्लोक ४५से १४४ तकमें तथा भविष्योत्तरपुराणके १२०वें अध्यायमें भी निर्दिष्ट हैं। † स्नानविधिकी विस्तृत चर्चा 'स्नानव्यास' में है। यह सुन्दर प्रकरण बृहद्व्यासादि स्मृतियोंमें भी संगृहीत है।

चतुर्हस्तसमायुक्तं चतुरस्रं समंततः। प्रकल्प्यावाहयेद् गङ्गामेभिर्मन्त्रैर्विचक्षणः ॥ ३ ॥
विष्णुपादप्रसूतासि वैष्णवी विष्णुदेवता। त्राहि नस्त्वेनसस्तस्मादाजन्ममरणान्तिकात् ॥ ४ ॥
तिस्रः कोट्योऽर्धकोटी च तीर्थानां वायुरब्रवीत्। दिवि भूम्यन्तरिक्षे च तानि ते सन्ति जाह्नवि ॥ ५ ॥
नन्दिनीत्येव ते नाम देवेषु नलिनीति च। दक्षा पृथ्वी च विहगा विश्वकायामृता शिवा॥ ६ ॥
विद्याधरी सुप्रसन्ना तथा विश्वप्रसादिनी। क्षेमा च जाह्नवी चैव शान्ता शान्तिप्रदायिनी ॥ ७ ॥
एतानि पुण्यनामानि स्नानकाले प्रकीर्तयेत्। भवेत् संनिहिता तत्र गङ्गा त्रिपथगामिनी ॥ ८ ॥

नन्दिकेश्वर बोले—नारदजी! स्नान किये बिना शरीरकी निर्मलता और भाव-शुद्धि नहीं प्राप्त होती, अतः मनकी विशुद्धिके लिये ( सभी व्रतोंमें ) सर्वप्रथम स्नानका विधान है। कुएँ आदिसे निकाले हुए अथवा बिना निकाले हुए नदी-तालाब आदिके जलसे स्नान करना चाहिये। मन्त्रवेत्ता विद्वान् पुरुषको मूलमन्त्रद्वारा उस जलमें तीर्थकी कल्पना करनी चाहिये। 'ॐ नमो नारायणाय'—यह मूलमन्त्र कहा गया है। मनुष्य पहले हाथमें कुश लिये हुए विधिपूर्वक आचमन कर ले, फिर जितेन्द्रिय एवं शुद्ध भावसे अपने चारों ओर चार हाथका चौकोर मण्डल बनाकर उसमें तीर्थकी कल्पना कर इन ( वक्ष्यमाण ) मन्त्रोंद्वारा गङ्गाजीका आवाहन करे—'देवि! तुम भगवान् विष्णुके चरणोंसे प्रकट हुई हो, वैष्णवी कही जाती हो और विष्णु ही तुम्हारे देवता हैं, अतः तुम जन्मसे लेकर मरणान्ततक होनेवाले पापसे हमारी रक्षा करो। जह्नु-नन्दिनी! वायुदेवने स्वर्गलोक, मृत्युलोक और अन्तरिक्षलोक—इन तीनों लोकोंमें जिन साढ़े तीन करोड़ तीर्थोंको बतलाया है, वे सभी तुम्हारे भीतर निवास करते हैं। देवोंमें तुम नन्दिनी और नलिनी नामसे प्रसिद्ध हो। इसके अतिरिक्त दक्षा, पृथ्वी, विहगा, विश्वकाया, अमृता, शिवा, विद्याधरी, सुप्रशान्ता, विश्वप्रसादिनी, क्षेमा, जाह्नवी, शान्ता और शान्तिप्रदायिनी—ये भी तुम्हारे ही नाम हैं।' स्नानके समय इन पुण्यमय नामोंका कीर्तन करना चाहिये, इससे त्रिपथगामिनी गङ्गा वहाँ उपस्थित हो जाती हैं ॥ १—८ ॥

सप्तवाराभिजप्तेन करसम्पुटयोजितम्।
मूर्ध्नि कुर्याज्जलं भूयस्त्रिचतुःपञ्चसप्तकम्। स्नानं कुर्यान्मृदा तद्वदामन्त्र्य तु विधानतः ॥ ९ ॥
अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्ते वसुंधरे। मृत्तिके हर मे पापं यन्मया दुष्कृतं कृतम् ॥ १० ॥
उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना।
मृत्तिके ब्रह्मदत्तासि कश्यपेनाभिमन्त्रिता। आरुह्य मम गात्राणि सर्वं पापं प्रचोदय ॥ ११ ॥*
मृत्तिके देहि नः पुष्टिं सर्वं त्वयि प्रतिष्ठितम्। नमस्ते सर्वलोकानां प्रभवारणि सुव्रते ॥ १२ ॥
एवं स्नात्वा ततः पश्चादाचम्य च विधानतः। उत्थाय वाससी शुक्ले शुद्धे तु परिधाय वै ॥ १३ ॥
ततस्तु तर्पणं कुर्यात् त्रैलोक्याप्यायनाय वै। ब्रह्माणं तर्पयेत्पूर्वं विष्णुं रुद्रं प्रजापतिम् ॥ १४ ॥
देवा यक्षास्तथा नागा गन्धर्वाप्सरसोऽसुराः। क्रूराः सर्पाः सुपर्णाश्च तरवो जम्बुकाः खगाः ॥ १५ ॥
वाय्वाधारा जलाधारास्तथैवाकाशगामिनः। निराधाराश्च ये जीवाः पापे धर्मे रताश्च ये ॥ १६ ॥
तेषामाप्यायनायैतद् दीयते सलिलं मया। कृतोपवीती देवेभ्यो निवीती च भवेत् ततः ॥ १७ ॥

हाथोंको सम्पुटित करके सात बार इन नामोंका जप करनेके पश्चात् तीन, चार, पाँच अथवा सात बार जलको अपने मस्तकपर छिड़क ले। तत्पश्चात् विधिपूर्वक पृथ्वीको आमन्त्रित करके पहले शरीरमें मिट्टी लगाकर स्नान करना चाहिये। ( आमन्त्रण-मन्त्र इस प्रकार है )—'मृत्तिके! तुम अग्निचयन, उख संभरणादिके समय अश्वके द्वारा शुद्ध की जाती हो, तुम (शिवके) रथ और वामन-अवतारमें भगवान् विष्णुके पैरद्वारा भी आक्रान्त होकर शुद्ध

* ये दो मन्त्र तैत्तिरीयारण्यक १० । १ । ३—२४ मे भी प्राप्त हैं। उनपर सायणका भाष्य बहुत सुन्दर है।

हुई हो, सारा धन तुम्हारे ही भीतर वर्तमान है, इसलिये मेरेद्वारा जो कुछ भी पाप घटित हुए हैं, उन सभीको हर लो। मृत्तिके! शतबाहु भगवान् विष्णुने श्यामवर्णका वराहरूप धारण कर तुम्हारा पातालसे उद्धार किया है, पुनः महर्षि कश्यपद्वारा आमन्त्रित होकर तुम ब्राह्मणोंको प्रदान की गयी हो, अतः मेरे अङ्गोंपर आरूढ़ होकर मेरे सारे पापोंको दूर कर दो। मृत्तिके! विश्वके सारे पदार्थ तो तुम्हारे भीतर ही स्थित हैं, अतः तुम हमें पुष्टि प्रदान करो। सुव्रते! तुम समस्त जीवोंकी उत्पत्तिके लिये अरणिस्वरूपा हो, तुम्हें नमस्कार है।' इस प्रकार मिट्टी लगाकर स्नान करनेके पश्चात विधिपूर्वक आचमन करे। पुनः जलसे बाहर निकलकर दो श्वेत रंगके शुद्ध वस्त्र धारण करे। तत्पश्चात् त्रिलोकीको तृप्त करनेके लिये इस प्रकार तर्पण करना चाहिये। उस समय उपवीती होकर (जनेऊको जैसे पहनते हैं, बायें कंधेपर तथा दाहिने हाथके नीचे कर) सर्वप्रथम देवतर्पण करते हुए इन मन्त्रोंका उच्चारण करे—'देव, यक्ष, नाग, गन्धर्व, अप्सरा, असुर, क्रूर सर्प, गरुड आदि पक्षी, वृक्ष, शृगाल, अन्य पक्षिगण तथा जो जीव वायु एवं जलके आधारपर जीवित रहनेवाले हैं, आकाशचारी हैं, निराधार हैं और जो जीव पाप एवं धर्ममें लगे हुए हैं, उन सबकी तृप्तिके लिये मैं यह जल दे रहा हूँ।' तदनन्तर निवीती हो जाय (जनेऊको मालाकार कर ले)॥ १-१७॥

मनुष्यांस्तर्पयेद् भक्त्या ब्रह्मपुत्रानृषींस्तथा। सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातनः॥ १८॥
कपिलश्चासुरिश्चैव वोढुः पञ्चशिखस्तथा। सर्वे ते तृप्तिमायान्तु मद्दत्तेनाम्बुना सदा॥ १९॥
मरीचिमत्र्यङ्गिरसं पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम्।
प्रचेतसं वसिष्ठं च भृगुं नारदमेव च। देवब्रह्मऋषीन् सर्वांस्तर्पयेदक्षतोदकैः॥ २०॥
अपसव्यं ततः कृत्वा सव्यं जान्वाच्य भूतले। अग्निष्वात्तास्तथा सौम्या हविष्मन्तस्तथोष्मपाः॥ २१॥
सुकालिनो बर्हिषदस्तथा चैवाज्यपाः पुनः। संतर्प्याः पितरो भक्त्या सतिलोदकचन्दनैः॥ २२॥
यमाय धर्मराजाय मृत्यवे चान्तकाय च। वैवस्वताय कालाय सर्वभूतक्षयाय च॥ २३॥
औदुम्बराय दध्नाय नीलाय परमेष्ठिने।
वृकोदराय चित्राय चित्रगुप्ताय वै नमः। दर्भपाणिस्तु विधिना पितॄन् संतर्पयेद् बुधः॥ २४॥
पित्रादीन् नामगोत्रेण तथा मातामहानपि। संतर्प्य विधिना भक्त्या इमं मन्त्रमुदीरयेत्॥ २५॥
येऽबान्धवा बान्धवा वा येऽन्यजन्मनि बान्धवाः। ते तृप्तिमखिलां यान्तु यश्चास्मत्तोऽभिवाञ्छति॥ २६॥

फिर भक्तिपूर्वक मनुष्यों तथा ब्रह्मपुत्र ऋषियोंके तर्पणका विधान है—'सनक, सनन्दन, तीसरे सनातन, कपिल, आसुरि, वोढु तथा पञ्चशिख—ये सभी मेरेद्वारा दिये हुए जलसे सदा तृप्त हो जायँ।' तत्पश्चात् मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, प्रचेता, वसिष्ठ, भृगु और नारद—इन सभी देवर्षियों और ब्रह्मर्षियोंका अक्षत और जलसे तर्पण करनेका विधान है। तदनन्तर अपसव्य होकर (जनेऊको दाहिने कंधेपर रखकर) और बायें घुटनेको भूमिपर टेककर अग्निष्वात्त, सौम्य, हविष्मान्, ऊष्मप, सुकाली, बर्हिषद् तथा अन्य आज्यप नामक पितरोंको भक्तिपूर्वक तिल, जल, चन्दन आदिसे तृप्त करना चाहिये। पुनः बुद्धिमान् मनुष्य हाथमें कुश लेकर यम, धर्मराज, मृत्यु, अन्तक, वैवस्वत, काल, सर्वभूतक्षय, औदुम्बर, दध्न, नील, परमेष्ठी, वृकोदर, चित्र और चित्रगुप्त—इन चौदह दिव्य पितरोंका विधिपूर्वक तर्पण करके इन्हें नमस्कार करे। तत्पश्चात् अपने पिता आदि तथा नाना आदिके नाम और गोत्रका उच्चारण कर भक्तिपूर्वक विधानके साथ तर्पण करनेके पश्चात् इस मन्त्रका उच्चारण करे—'जो लोग इस जन्ममें मेरे भाई-बन्धु रहे हों या इनके अतिरिक्त कुटुम्बमें पैदा हुए हों अथवा जन्मान्तरमें भाई-बन्धु रहे हों तथा जो कोई भी मुझसे जलकी इच्छा रखते हों, वे सभी पूर्णतया तृप्त हो जायँ'॥ १८-२६॥

ततश्चाचम्य विधिवदालिखेत् पद्ममग्रतः ।
अक्षताभिः सपुष्पाभिः सजलारुणचन्दनम् । अर्घ्यं दद्यात् प्रयत्नेन सूर्यनामानि कीर्तयेत् ॥ २७ ॥
नमस्ते विष्णुरूपाय नमो विष्णुमुखाय वै । सहस्ररश्मये नित्यं नमस्ते सर्वतेजसे ॥ २८ ॥
नमस्ते रुद्रवपुषे नमस्ते सर्ववत्सल । जगत्स्वामिन् नमस्तेऽस्तु दिव्यचन्दनभूषित ॥ २९ ॥
पद्मासन नमस्तेऽस्तु कुण्डलाङ्गदभूषित । नमस्ते सर्वलोकेश जगत् सर्वं विबोधसे ॥ ३० ॥
सुकृतं दुष्कृतं चैव सर्वं पश्यसि सर्वग । सत्यदेव नमस्तेऽस्तु प्रसीद मम भास्कर ॥ ३१ ॥
दिवाकर नमस्तेऽस्तु प्रभाकर नमोऽस्तु ते ।
एवं सूर्यं नमस्कृत्य त्रिःकृत्वाथ प्रदक्षिणम् । द्विजं गां काञ्चनं स्पृष्ट्वा ततश्च स्वगृहं व्रजेत् ॥ ३२ ॥

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे स्नानविधिर्नाम द्व्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०२ ॥*

तदुपरान्त विधिपूर्वक आचमनकर अपने सामनेकी भूमिपर कमलका चित्र बनाकर अक्षत, पुष्प आदिसे सूर्यकी पूजा करे और प्रयत्नपूर्वक सूर्यके नामोंका कीर्तन करते हुए लाल चन्दनमिश्रित जलसे उन्हें अर्घ्य प्रदान करे । पुनः इस प्रकार प्रार्थना करे—'सूर्यदेव ! आप विष्णुरूप हैं, आपको नमस्कार है । विष्णुके मुखस्वरूप आपको प्रणाम है । सहस्रकिरणधारी एवं समस्त तेजोंके धामको नित्य अभिवादन है । सर्वेश्वर ! दिव्य चन्दनसे विभूषित देव ! आप रुद्र ( शिव ) रूप हैं । आप सम्पूर्ण जीवोंके कल्याणकारक तथा उनके प्रति पुत्रवत् प्रेमभाव रखनेवाले हैं, आपको बारंबार नमस्कार है । पद्मासन ! आप सदा कुण्डल और बाजूबंदसे सुसज्जित रहते हैं, आपको अभिवादन है । समस्त लोकोंके अधीश्वर ! आप सारे जगत्को उद्‌बुद्ध करनेवाले हैं, आपको नमस्कार है । सर्वत्र गमन करनेवाले सत्यदेव ! आप सम्पूर्ण प्राणियोंके सारे पुण्यों एवं पापोंको देखते रहते हैं, आपको प्रणाम है । भास्कर ! मुझपर प्रसन्न हो जाइये । दिवाकर ! आपको अभिवादन है । प्रभाकर ! आपको नमस्कार है ।' इस प्रकार प्रार्थना करनेके बाद तीन बार प्रदक्षिणा कर सूर्यको नमस्कार करे । पुनः ब्राह्मण, गौ और सुवर्णका स्पर्श करनेके पश्चात् अपने घर जाना चाहिये ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें स्नानविधि नामक एक सौ दोवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १०२ ॥

---

# एक सौ तीनवाँ अध्याय

## युधिष्ठिरकी चिन्ता, उनकी महर्षि मार्कण्डेयसे भेंट और महर्षिद्वारा प्रयाग-माहात्म्यका उपक्रम

नन्दिकेश्वर उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि प्रयागस्योपवर्णनम् । मार्कण्डेयेन कथितं यत् पुरा पाण्डुसूनवे ॥ १ ॥
भारते तु यदा वृत्ते प्राप्तराज्ये पृथासुते । एतस्मिन्नन्तरे राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ २ ॥
भ्रातृशोकेन संतप्तश्चिन्तयन् स पुनः पुनः । आसीत् सुयोधनो राजा एकादशचमूपतिः ॥ ३ ॥
अस्मान् संताप्य बहुशः सर्वे ते निधनं गताः । वासुदेवं समाश्रित्य पञ्च शेषास्तु पाण्डवाः ॥ ४ ॥
हत्वा भीष्मं च द्रोणं च कर्णं चैव महाबलम् । दुर्योधनं च राजानं पुत्रभ्रातृसमन्वितम् ॥ ५ ॥
राजानो निहताः सर्वे ये चान्ये शूरमानिनः । किं नो राज्येन गोविन्द किं भोगैर्जीवितेन वा ॥ ६ ॥
धिक् कष्टमिति संचिन्त्य राजा वैक्लव्यमागतः । निर्विचेष्टो निरुत्साहः किंचित् तिष्ठत्यधोमुखः ॥ ७ ॥
लब्धसंज्ञो यदा राजा चिन्तयन् स पुनः पुनः । कतमो विनियोगो वा नियमं तीर्थमेव च ॥ ८ ॥

येनाहं शीघ्रमामुच्ये महापातककिल्बिषात्। यत्र स्थित्वा नरो याति विष्णुलोकमनुत्तमम् ॥ ९ ॥
कथं पृच्छामि वै कृष्णं येनेदं कारितोऽस्म्यहम्। धृतराष्ट्रं कथं पृच्छे यस्य पुत्रशतं हतम् ॥ १० ॥
एवं वैक्लव्यमापन्ने धर्मराजे युधिष्ठिरे। रुदन्ति पाण्डवाः सर्वे भ्रातृशोकपरिप्लुताः ॥ ११ ॥
ये च तत्र महात्मानः समेताः पाण्डवाः स्मृताः।
कुन्ती च द्रौपदी चैव ये च तत्र समागताः। भूमौ निपतिताः सर्वे रुदन्तस्तु समंततः ॥ १२ ॥

नन्दिकेश्वर बोले—नारदजी ! इसके बाद मैं प्रयागके माहात्म्यका वर्णन कर रहा हूँ, जिसे पूर्वकालमें महर्षि मार्कण्डेयने पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरसे कहा था। जब महाभारत-युद्ध समाप्त हो गया और कुन्ती-पुत्र युधिष्ठिरको राज्य प्राप्त हो गया, इसी बीच कुन्ती-नन्दन महाराज युधिष्ठिर भाइयोंके शोकसे अत्यन्त दुःखी होकर बारंबार इस प्रकार चिन्तन करने लगे—'हाय ! जो राजा दुर्योधन ग्यारह अक्षौहिणी सेनाका स्वामी था, वह हमलोगोंको अनेको बार कष्टमें डालकर अपने सभी सहायकोंके साथ कालके गालमें चला गया। श्रीकृष्णका आश्रय लेनेके कारण केवल हम पाँच पाण्डव ही शेष रह गये हैं। गोविन्द ! हमलोगोंने भीष्म, द्रोण, महाबली कर्ण और पुत्रों एवं भाइयोसमेत राजा दुर्योधनको मारकर जो अन्य शूर, मानी नरेश थे, उन सबका भी संहार कर डाला, ऐसी परिस्थितिमें हमें राज्यसे क्या लेना है, अथवा भोगों एवं जीवनसे ही क्या प्रयोजन है ? 'हाय ! धिक्कार है, महान् कष्ट आ पड़ा'—ऐसा सोचकर राजा युधिष्ठिर व्याकुल हो गये और निश्चेष्ट एवं उत्साहरहित हो कुछ देरतक नीचे मुख किये बैठे ही रह गये। जब राजा युधिष्ठिरको पुनः चेतना प्राप्त हुई, तब वे इस प्रकार सोचने लगे—'ऐसा कौन-सा विनियोग ( प्रायश्चित्त ), नियम ( व्रतोपवास ) अथवा तीर्थ है, जिसका सेवन करनेसे मैं शीघ्र ही इस महापातकके पापसे मुक्त हो सकूँगा, अथवा जहाँ निवास कर मनुष्य सर्वोत्तम विष्णुलोकको प्राप्त कर सकता है। इसके लिये मैं श्रीकृष्णसे कैसे पूछूँ; क्योंकि उन्होंने ही तो मुझसे ऐसा कर्म करवाया है। दादा धृतराष्ट्रसे भी किसी प्रकार नहीं पूछ सकता; क्योंकि उनके सौ पुत्र मार डाले गये हैं।' ऐसा सोचकर धर्मराज युधिष्ठिर व्याकुल हो गये। उस समय सभी पाण्डव भ्रातृ-शोकमें निमग्न होकर रुदन कर रहे थे। उस समय राजा युधिष्ठिरके समीप जो अन्य महात्मा पुरुष आये थे तथा कुन्ती, द्रौपदी एवं अन्यान्य जो लोग आ गये थे, वे सभी रोते हुए युधिष्ठिरको घेरकर पृथ्वीपर पड़ गये ॥ १—१२ ॥

वाराणस्यां मार्कण्डेयस्तेन ज्ञातो युधिष्ठिरः। यथा वैक्लव्यमापन्नो रोदमानस्तु दुःखितः ॥ १३ ॥
अचिरेणैव कालेन मार्कण्डेयो महातपाः। सम्प्राप्तो ह्यस्तिनपुरं राजद्वारे ह्यतिष्ठत ॥ १४ ॥
द्वारपालोऽपि तं दृष्ट्वा राज्ञः कथितवान् द्रुतम्।
त्वां द्रष्टुकामो मार्कण्डो द्वारि तिष्ठत्यसौ मुनिः। त्वरितो धर्मपुत्रस्तु द्वारमागादतः परम् ॥ १५ ॥

उस समय महर्षि मार्कण्डेय वाराणसीमें निवास कर रहे थे। उन्हें जिस प्रकार युधिष्ठिर दुःखी और व्याकुल हो रो रहे थे, ये सारी बातें ( योगबलसे ) ज्ञात हो गयीं। तब महातपस्वी मार्कण्डेय थोड़े ही समयमें हस्तिनापुर जा पहुँचे और राजद्वारपर उपस्थित हुए। उन्हें आया हुआ देखकर द्वारपालने तुरंत राजाको सूचना देते हुए कहा—'महाराज ! ये महामुनि मार्कण्डेय आपसे मिलनेके लिये दरवाजेपर खड़े हैं।' यह सुनते ही धर्म-पुत्र युधिष्ठिर शीघ्रतापूर्वक दरवाजेपर आ पहुँचे ॥ १३—१५ ॥

*

युधिष्ठिर उवाच

**स्वागतं ते महाभाग स्वागतं ते महामुने। अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे तारितं कुलम्॥ १६॥**
**अद्य मे पितरस्तुष्टास्त्वयि दृष्टे महामुने। अद्याहं पूतदेहोऽस्मि यत् त्वया सह दर्शनम्॥ १७॥**

**युधिष्ठिरने कहा—**महाभाग! आपका स्वागत है। महामुने! आपका स्वागत है। महामुने! आपका दर्शन करके आज मेरा जन्म सफल हो गया। आज मैंने अपने कुलका उद्धार कर दिया तथा आज मेरे पितर संतुष्ट हो गये। आपका जो यह (आकस्मिक) दर्शन प्राप्त हुआ, इससे आज मेरा शरीर पवित्र हो गया॥

नन्दिकेश्वर उवाच

**सिंहासने समास्थाप्य पादशौचार्चनादिभिः। युधिष्ठिरो महात्मा वै पूजयामास तं मुनिम्॥ १८॥**
**ततः स तुष्टो मार्कण्डः पूजितश्चाह तं नृपम्।**
**आख्याहि त्वरितं राजन् किमर्थं रुदितं त्वया। केन वा विक्लवीभूतः का बाधा ते किमप्रियम्॥ १९॥**

**नन्दिकेश्वर बोले—**नारदजी! तत्पश्चात् महात्मा युधिष्ठिरने मार्कण्डेय मुनिको सिंहासनपर बैठाकर पाद-प्रक्षालन आदि अर्चाविधिके अनुसार उनकी पूजा की। तब पूजनसे संतुष्ट हुए मुनिवर मार्कण्डेयने राजा युधिष्ठिरसे पूछा—'राजन्! तुम किसलिये रो रहे थे? किसने तुम्हें व्याकुल कर दिया? तुम्हें कौन-सी बाधा सता रही है? तुम्हारा कौन-सा अमङ्गल हो गया? यह सब हमें शीघ्र बतलाओ॥ १८-१९॥

युधिष्ठिर उवाच

**अस्माकं चैव यद् वृत्तं राज्यस्यार्थे महामुने। एतत् सर्वं विदित्वा तु चिन्तावशमुपागतः॥ २०॥**

**युधिष्ठिरने कहा—**महामुने! राज्यकी प्राप्तिके लिये हमलोगोंने जैसा-जैसा व्यवहार किया है, वही सब सोचकर मैं चिन्ताके वशीभूत हो गया हूँ॥ २०॥

मार्कण्डेय उवाच

**शृणु राजन् महाबाहो क्षात्रधर्मव्यवस्थितिम्। नैव दृष्टं रणे पापं युध्यमानस्य धीमतः॥ २१॥**
**किं पुना राजधर्मेण क्षत्रियस्य विशेषतः। तदेवं हृदयं कृत्वा तस्मात् पापं न चिन्तयेत्॥ २२॥**
**ततो युधिष्ठिरो राजा प्रणम्य शिरसा मुनिम्। पप्रच्छ विनयोपेतः सर्वपातकनाशनम्॥ २३॥**

**मार्कण्डेयजी बोले—**महाबाहु राजन्! क्षात्र-धर्मकी व्यवस्था तो सुनो। इसके अनुसार रणस्थलमें युद्ध करते हुए बुद्धिमान्‌के लिये पाप नहीं बतलाया गया है, तब फिर राजधर्मके अनुसार विशेषरूपसे युद्ध करनेवाले क्षत्रियके लिये तो पापकी बात ही क्या है। हृदयमें ऐसा विचारकर युद्धसे उत्पन्न हुए पापकी भावनाको छोड़ दो। तदनन्तर राजा युधिष्ठिरने मुनिवर मार्कण्डेयको सिर झुकाकर प्रणाम किया और विनम्रता-पूर्वक समस्त पापोंका विनाश करनेवाले साधनके विषयमें प्रश्न किया॥ २१-२३॥

युधिष्ठिर उवाच

**पृच्छामि त्वां महाप्राज्ञ नित्यं त्रैलोक्यदर्शिनम्। कथय त्वं समासेन येन मुच्येत किल्बिषात्॥ २४॥**

**युधिष्ठिरने पूछा—**महाप्राज्ञ! आप तो नित्य त्रैलोक्यदर्शी हैं, अतः मैं आपसे पूछ रहा हूँ। आप संक्षेपमें कोई ऐसा साधन बतलाइये, जिसका पालन करनेसे पापसे छुटकारा मिल सके॥ २४॥

मार्कण्डेय उवाच

शृणु राजन् महाबाहो सर्वपातकनाशनम् । प्रयागगमनं श्रेष्ठं नराणां पुण्यकर्मणाम् ॥ २५ ॥

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रयागमाहात्म्ये त्र्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०३ ॥*

मार्कण्डेयजी बोले—महाबाहु राजन् ! सुनो, पापोंका विनाश करनेवाला सर्वश्रेष्ठ साधन पुण्यकर्मा मनुष्योंके लिये प्रयाग-गमन ही सम्पूर्ण है ॥ २५ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके प्रयागमाहात्म्य-वर्णन-प्रसङ्गमें एक सौ तीनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १०३ ॥

## एक सौ चारवाँ अध्याय

### प्रयाग*-माहात्म्य-प्रसङ्गमें प्रयाग-क्षेत्रके विविध तीर्थस्थानोंका वर्णन

युधिष्ठिर उवाच

भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि पुरा कल्पे यथास्थितम् । ब्रह्मणा देवमुख्येन यथावत् कथितं मुने ॥ १ ॥
कथं प्रयागे गमनं नराणां तत्र कीदृशम् । मृतानां का गतिस्तत्र स्नातानां तत्र किं फलम् ॥ २ ॥
ये वसन्ति प्रयागे तु ब्रूहि तेषां च किं फलम् । एतन्मे सर्वमाख्याहि परं कौतूहलं हि मे ॥ ३ ॥

युधिष्ठिरने पूछा—ऐश्वर्यशाली मुने ! प्राचीन कल्पमें प्रयाग-क्षेत्रकी जैसी स्थिति थी तथा देवश्रेष्ठ ब्रह्माने जिस प्रकार इसका वर्णन किया था, वह सब मै सुनना चाहता हूँ । मुने ! प्रयागकी यात्रा किस प्रकार करनी चाहिये ? वहाँ मनुष्योंको कैसा आचार-व्यवहार करनेका विधान है ? वहाँ मरनेवालेको कौन-सी गति प्राप्त होती है ? वहाँ स्नान करनेसे क्या फल मिलता है ? जो लोग सदा प्रयागमें निवास करते हैं, उन्हें किस फलकी प्राप्ति होती है ? यह सब मुझे बतलाइये; क्योंकि इसे जाननेकी मुझे बड़ी उत्कण्ठा है ॥१—३॥

मार्कण्डेय उवाच

कथयिष्यामि ते वत्स यच्छ्रेष्ठं तत्र यत् फलम् । पुरा ऋषीणां विप्राणां कथ्यमानं मया श्रुतम् ॥ ४ ॥
आप्रयागं प्रतिष्ठानादापुराद् वासुकेर्ह्रदात् ।
कम्बलाश्वतरौ नागौ नागाच्च बहुमूलकात् । एतत् प्रजापतेः क्षेत्रं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ॥ ५ ॥
तत्र स्नात्वा दिवं यान्ति ये मृतास्तेऽपुनर्भवाः । तत्र ब्रह्मादयो देवा रक्षां कुर्वन्ति संगताः ॥ ६ ॥
अन्ये च बहवस्तीर्थाः सर्वपापहराः शुभाः ।
न शक्याः कथितुं राजन् बहुवर्षशतैरपि । संक्षेपेण प्रवक्ष्यामि प्रयागस्य तु कीर्तनम् ॥ ७ ॥
षष्टिर्धनुःसहस्राणि यानि रक्षन्ति जाह्नवीम् । यमुनां रक्षति सदा सविता सप्तवाहनः ॥ ८ ॥
प्रयागं तु विशेषेण सदा रक्षति वासवः । मण्डलं रक्षति हरिर्दैवतैः सह संगतः ॥ ९ ॥
तं वटं रक्षति सदा शूलपाणिर्महेश्वरः । स्थानं रक्षन्ति वै देवाः सर्वपापहरं शुभम् ॥ १० ॥
अधर्मेणावृतो लोको नैव गच्छति तत्पदम् ।
अल्पमल्पतरं पापं यदा तस्य नराधिप । प्रयागं स्मरमाणस्य सर्वमायाति संक्षयम् ॥ ११ ॥
दर्शनात् तस्य तीर्थस्य नामसंकीर्तनादपि । मृत्तिकालम्भनाद् वापि नरः पापात् प्रमुच्यते ॥ १२ ॥

* भारतमें देव, रुद्र, कर्ण, नंदादि पञ्चप्रयाग प्रसिद्ध हैं । यह तीर्थराज उनमें भी सर्वश्रेष्ठ है । इसकी महिमापर प्रयागशताध्यायीके अतिरिक्त महाभारत, वनपर्व ८५-७, ऋकप० ७ । ५ । १, अग्नि, गरुड, नारद, कूर्म ३५, पद्म-स्कन्दसौरादि पुराणोंमें भी कई अध्याय हैं । इसके अतिरिक्त 'त्रिस्थलीसेतु', 'तीर्थकल्पतरु', 'तीर्थ-चिन्तामणि' आदिमें भी इनकी महामहिमा वर्णित है ।

मार्कण्डेयजीने कहा—वत्स ! पूर्वकालमें प्रयाग-क्षेत्रमें जो श्रेष्ठ स्थान हैं तथा वहाँकी यात्रासे जो फल प्राप्त होता है, इस विषयमें ऋषियों एवं ब्राह्मणोंके मुखसे मैंने जो कुछ सुना है, वह सब तुम्हें बतला रहा हूँ। प्रयागके प्रतिष्ठानपुर* ( झूँसी )से वासुकिह्रदतकका भाग, जहाँ कम्बल, अश्वतर और बहुमूलक नामवाले नाग निवास करते हैं, तीनों लोकोंमें प्रजापति-क्षेत्रके नामसे विख्यात है, वहाँ स्नान करनेसे लोग स्वर्ग-लोकमें जाते हैं और जो वहाँ मृत्युको प्राप्त होते हैं, उनका पुनर्जन्म नहीं होता। ब्रह्मा आदि देवता संगठित होकर ( वहाँ रहनेवालोंकी ) रक्षा करते हैं। राजन् ! इसके अतिरिक्त इस क्षेत्रमें मङ्गलमय एवं समस्त पापोंका विनाश करनेवाले और भी बहुत-से तीर्थ हैं, जिनका वर्णन सैकड़ों वर्षोंमें भी नहीं किया जा सकता, अतः मैं संक्षेपमें प्रयागका वर्णन कर रहा हूँ। यहाँ साठ हजार धनुर्धर वीर गङ्गाकी रक्षा करते हैं तथा सात घोड़ोंसे जुते हुए रथपर चलनेवाले सूर्य सदा यमुनाकी देख-भाल करते रहते हैं। इन्द्र विशेषरूपसे सदा प्रयागकी रक्षामें तत्पर रहते हैं। श्रीहरि देवताओंको साथ लेकर पूरे प्रयाग-मण्डलकी रखवाली करते है। महेश्वर हाथमें त्रिशूल लेकर सदा वट-वृक्षकी रक्षा करते रहते हैं। देवगण इस सर्वपापहारी मङ्गलमय स्थानकी रक्षामें तत्पर रहते हैं। इसलिये इस लोकमें अधर्मसे घिरा हुआ मनुष्य प्रयागक्षेत्रमें प्रवेश नहीं कर सकता। नरेश्वर ! यदि किसीका स्वल्प अथवा उससे भी थोड़ा पाप होगा तो वह सारा-का-सारा प्रयागका स्मरण करनेसे नष्ट हो जायगा; क्योंकि ( ऐसा विधान है कि ) प्रयागतीर्थके दर्शन, नाम-संकीर्तन अथवा मृत्तिकाका स्पर्श करनेसे मनुष्य पापसे मुक्त हो जाता है ॥ ४—१२ ॥

**पञ्च कुण्डानि राजेन्द्र येषां मध्ये तु जाह्नवी। प्रयागस्य प्रवेशे तु पापं नश्यति तत्क्षणात् ॥ १३ ॥**
**योजनानां सहस्रेषु गङ्गायाः स्मरणान्नरः। अपि दुष्कृतकर्मा तु लभते परमां गतिम् ॥ १४ ॥**
**कीर्तनान्मुच्यते पापाद् दृष्ट्वा भद्राणि पश्यति। अवगाह्य च पीत्वा तु पुनात्यासप्तमं कुलम् ॥ १५ ॥**
**सत्यवादी जितक्रोधो ह्यहिंसायां व्यवस्थितः। धर्मानुसारी तत्त्वज्ञो गोब्राह्मणहिते रतः ॥ १६ ॥**
**गङ्गायमुनयोर्मध्ये स्नातो मुच्येत किल्बिषात्। मनसा चिन्तयन् कामानवाप्नोति सुपुष्कलान्॥ १७ ॥**
**ततो गत्वा प्रयागं तु सर्वदेवाभिरक्षितम्।**
**ब्रह्मचारी वसेन्मासं पितॄन् देवांश्च तर्पयेत्। ईप्सितॉंल्लभते कामान् यत्र यत्राभिजायते ॥ १८ ॥**
**तपनस्य सुता देवी त्रिषु लोकेषु विश्रुता।**
**समागता महाभागा यमुना तत्र निम्नगा। तत्र संनिहितो नित्यं साक्षाद् देवो महेश्वरः ॥ १९ ॥**
**दुष्प्राप्यं मानुषैः पुण्यं प्रयागं तु युधिष्ठिर।**
**देवदानवगन्धर्वा ऋषयः सिद्धचारणाः। तदुपस्पृश्य राजेन्द्र स्वर्गलोकमुपासते ॥ २० ॥**

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रयागमाहात्म्ये चतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०४ ॥*

राजेन्द्र ! प्रयागक्षेत्रमें पाँच कुण्ड है, उन्हींके मध्यमें गङ्गा बहती हैं, इसलिये प्रयागमें प्रवेश करते ही उसी क्षण पाप नष्ट हो जाता है। मनुष्य कितना भी बड़ा पापी क्यों न हो, यदि वह हजारों योजन दूरसे भी गङ्गाका स्मरण करता है तो उसे परम गतिकी प्राप्ति होती है। गङ्गाका नाम लेनेसे मनुष्य पापसे छूट जाता है, दर्शन करनेसे उसे जीवनमें माङ्गलिक अवसर देखनेको मिलते हैं तथा स्नान और जलपान करके तो वह अपनी सात पीढ़ियोंको पावन बना देता है। जो मनुष्य सत्यवादी, क्रोधरहित, अहिंसापरायण, धर्मानुगामी, तत्त्वज्ञ और गौ एवं ब्राह्मणके हितमें तत्पर रहकर गङ्गा और यमुनाके संगममें स्नान करता है, वह

* प्रतिष्ठानपुर दो हैं—एक गोदावरी-तटका पैठन तथा दूसरा यह झूँसी। प्रयागमाहात्म्यमें सर्वत्र यही अभिप्रेत है।

पापसे मुक्त हो जाता है तथा जो मनसे चिन्तनमात्र करता है, वह अपने अधिक-से-अधिक मनोरथोंको प्राप्त कर लेता है। इसलिये समस्त देवताओंद्वारा सुरक्षित प्रयाग-क्षेत्रमें जाकर वहाँ एक मासतक ब्रह्मचर्यपूर्वक निवास करते हुए देवों और पितरोंका तर्पण करना चाहिये। वहाँ रहते हुए मनुष्य जहाँ-जहाँ जाता है, वहाँ-वहाँ उसे अभिलषित पदार्थोंकी प्राप्ति होती है। वहाँ सूर्य-कन्या महाभागा यमुना देवी, जो तीनों लोकोंमें विख्यात हैं, नदीरूपमें आयी हुई हैं और साक्षात् भगवान् शंकर वहाँ नित्य निवास करते हैं। इसलिये युधिष्ठिर! यह पुण्यप्रद प्रयाग मनुष्योंके लिये दुर्लभ है। राजेन्द्र! देव, दानव, गन्धर्व, ऋषि, सिद्ध, चारण आदि गङ्गा-जलका स्पर्श कर स्वर्गलोकमें विराजमान होते हैं॥ १३—२०॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें प्रयागमाहात्म्य-वर्णन नामक एक सौ चारवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १०४॥

# एक सौ पाँचवाँ अध्याय

## प्रयागमें मरनेवालोंकी गति और गो-दानका महत्त्व

मार्कण्डेय उवाच

शृणु राजन् प्रयागस्य माहात्म्यं पुनरेव च। यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः॥ १॥
आर्तानां हि दरिद्राणां निश्चितव्यवसायिनाम्। स्थानमुक्तं प्रयागं तु नाख्येयं तु कदाचन॥ २॥
व्याधितो यदि वा दीनो वृद्धो वापि भवेन्नरः। गङ्गायमुनयोर्मध्ये यस्तु प्राणान् परित्यजेत्॥ ३॥
दीप्तकाञ्चनवर्णाभैर्विमानैः सूर्यवर्चसैः।
गन्धर्वाप्सरसां मध्ये स्वर्गे मोदति मानवः। ईप्सिताँल्लभते कामान् वदन्ति ऋषिपुंगवाः॥ ४॥
सर्वरत्नमयैर्दिव्यैर्नानाध्वजसमाकुलैः। वराङ्गनासमाकीर्णैर्मोदते शुभलक्षणैः॥ ५॥
गीतवाद्यविनिर्घोषैः प्रसुप्तः प्रतिबुध्यते। यावन्न स्मरेज्जन्म तावत् स्वर्गे महीयते॥ ६॥
ततः स्वर्गात् परिभ्रष्टः क्षीणकर्मा दिवश्च्युतः।
हिरण्यरत्नसम्पूर्णे समृद्धे जायते कुले। तदेव स्मरते तीर्थं स्मरणात् तत्र गच्छति॥ ७॥
देशस्थो यदि वारण्ये विदेशस्थोऽथवा गृहे।
प्रयागं स्मरमाणोऽपि यस्तु प्राणान् परित्यजेत्। ब्रह्मलोकमवाप्नोति वदन्ति ऋषिपुंगवाः॥ ८॥

मार्कण्डेयजीने कहा—राजन्! पुनः प्रयागके माहात्म्यका ही वर्णन सुनो, जिसे सुनकर मनुष्य समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है, इसमें कोई संदेह नहीं है। दुःखियों, दरिद्रों और निश्चित व्यवसाय करनेवालोंके कल्याणके लिये प्रयागक्षेत्र ही प्रशस्त कहा गया है। इसे कभी (कहीं) प्रकट नहीं करना चाहिये। श्रेष्ठ ऋषियोंका कथन है कि जो मनुष्य रोगग्रस्त, दीन अथवा वृद्ध होकर गङ्गा और यमुनाके संगममें प्राणोंका त्याग करता है, वह तपाये हुए सुवर्णकी-सी कान्तिवाले एवं सूर्य-सदृश तेजस्वी विमानोंद्वारा स्वर्गमें जाकर गन्धर्वों और अप्सराओंके मध्यमें आनन्दका उपभोग करता है और अपने अभीष्ट मनोरथोंको प्राप्त कर लेता है। वहाँ वह सम्पूर्ण रत्नोंसे सुशोभित, अनेकों रंगोंकी ध्वजाओंसे मण्डित, अप्सराओंसे खचाखच भरे हुए शुभ लक्षणसम्पन्न दिव्य विमानोंमें बैठकर आनन्द मनाता है तथा माङ्गलिक गीतों और बाजोंके शब्दोंद्वारा नींदसे जगाया जाता है। इस प्रकार जबतक वह अपने जन्मका स्मरण नहीं करता, तबतक स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। तत्पश्चात् पुण्य क्षीण होनेपर उसका स्वर्गसे पतन हो जाता है। इस प्रकार स्वर्गसे भ्रष्ट हुआ वह जीव सुवर्ण-रत्नसे परिपूर्ण एवं समृद्ध कुल जन्म धारणमें

करता है और समयानुसार पुनः उसी तीर्थका स्मरण करता है तथा स्मरण आनेसे पुनः उस प्रयागक्षेत्रकी यात्रा करता है। ऋषिवरोंका कथन है कि मनुष्य चाहे देशमें हो अथवा विदेशमें, घरमें हो अथवा वनमें, यदि वह प्रयागका स्मरण करते हुए प्राणोंका परित्याग करता है तो ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है ॥ १—८ ॥

सर्वकामफला वृक्षा मही यत्र हिरण्मयी। ऋषयो मुनयः सिद्धास्तत्र लोके स गच्छति ॥ ९ ॥
स्त्रीसहस्रावृते रम्ये मन्दाकिन्यास्तटे शुभे। मोदते ऋषिभिः सार्धं सुकृतेनेह कर्मणा ॥ १० ॥
सिद्धचारणगन्धर्वैः पूज्यते दिवि दैवतैः। ततः स्वर्गात् परिभ्रष्टो जम्बूद्वीपपतिर्भवेत् ॥ ११ ॥
ततः शुभानि कर्माणि चिन्तयानः पुनः पुनः। गुणवान् वित्तसम्पन्नो भवतीह न संशयः ॥ १२ ॥
कर्मणा मनसा वाचा सत्यधर्मप्रतिष्ठितः।
गङ्गायमुनयोर्मध्ये यस्तु गां सम्प्रयच्छति। स गोरोमसमाब्दानि लभते स्वर्गमुत्तमम् ॥ १३ ॥
स्वकार्ये पितृकार्ये वा देवताभ्यर्चनेऽपि वा। यस्तु गां प्रतिगृह्णाति गङ्गायमुनसंगमे ॥ १४ ॥
सुवर्णमणिमुक्ताश्च यदि वान्यत् परिग्रहम्। विफलं तस्य तत्तीर्थं यावत् तद्धनमस्तु ते ॥ १५ ॥
एवं तीर्थे न गृह्णीयात् पुण्येष्वायतनेषु च। निमित्तेषु च सर्वेषु ह्यप्रमत्तो भवेद् द्विजः ॥ १६ ॥

वह ऐसे लोकमें जाता है, जहाँकी भूमि स्वर्णमयी है, जहाँके वृक्ष इच्छानुसार फल देनेवाले हैं और जहाँ ऋषि, मुनि तथा सिद्धलोग निवास करते हैं। वहाँ वह अपने इस जन्ममें किये हुए पुण्यकर्मोंके प्रभावसे सहस्रों स्त्रियोंसे युक्त, मङ्गलमय एवं रमणीय मन्दाकिनीके तटपर ऋषियोंके साथ सुख भोगता है। स्वर्गलोकमें देवताओंके साथ सिद्ध, चारण और गन्धर्व उसकी पूजा करते हैं। तत्पश्चात् ( पुण्य क्षीण होनेपर ) वह स्वर्गसे च्युत होकर भूतलपर जम्बूद्वीपका अधिपति होता है। इस जन्ममें उसे बारंबार अपने शुभकर्मोंका स्मरण होता है, जिससे वह निस्संदेह गुणवान् और धनसम्पन्न होता है तथा वह मनुष्य मन-वचन-कर्मसे सत्यधर्ममें स्थित रहता है। जो व्यक्ति गङ्गा-यमुनाके संगमपर कार्योंमें अपने मङ्गलके निमित्त या पितरोंके उद्देश्यसे किये जानेवाले अथवा देवपूजन आदि कार्योंमें गोदान करता है, वह उस गौके रोमतुल्य वर्षोंतक स्वर्गमें निवास करता है। यदि कोई वहाँ गोदान लेता है या स्वर्ण, मणि, मोती अथवा अन्य जो कुछ सामग्री दानरूपमें ग्रहण करता है, तो जबतक वह धन उसके पास रहता है, तबतक उसका वह तीर्थ विफल होता है। इस प्रकार ( तीर्थ-यात्रीको ) तीर्थमें, पुण्यमय देव-मन्दिरोंमें तथा सभी निमित्तों ( दानपर्वों ) में दान लेना कदापि उचित नहीं है। इसके लिये ब्राह्मणको विशेषरूपसे सावधान रहना चाहिये ॥ ९—१६ ॥

कपिलां पाटलावर्णां यस्तु धेनुं प्रयच्छति। स्वर्णशृङ्गीं रौप्यखुरां कांस्यदोहां पयस्विनीम् ॥ १७ ॥
प्रयागे श्रोत्रियं सन्तं ग्राहयित्वा यथाविधि। शुक्लाम्बरधरं शान्तं धर्मज्ञं वेदपारगम् ॥ १८ ॥
सा गौस्तस्मै प्रदातव्या गङ्गायमुनसंगमे। वासांसि च महार्हाणि रत्नानि विविधानि च ॥ १९ ॥
यावद् रोमाणि तस्या गोः सन्ति गात्रेषु सत्तम। तावद् वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ॥ २० ॥
यत्रासौ लभते जन्म सा गौस्तस्याभिजायते।
न च पश्यति तं घोरं नरकं तेन कर्मणा। उत्तरान् स कुरून् प्राप्य मोदते कालमक्षयम् ॥ २१ ॥
गवां शतसहस्रेभ्यो दद्यादेकां पयस्विनीम्। पुत्रान् दारांस्तथा भृत्यान् गौरेका प्रति तारयेत् ॥ २२ ॥
तस्मात् सर्वेषु दानेषु गोदानं तु विशिष्यते।
दुर्गमे विषमे घोरे महापातकसम्भवे। गौरेव कुरुते रक्षां तस्माद् देया द्विजोत्तमे ॥ २३ ॥

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रयागमाहात्म्ये पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०५ ॥*

जो मनुष्य प्रयागमें जिसके सींग सोनेसे और खुर चाँदीसे मढ़े हुए हों, निकटमें काँसेकी दोहनी भी रखी हो, ऐसी लाल रंगकी दुधारू कपिला* गौका दान करना चाहता हो तो उसे वह गौ गङ्गा-यमुनाके संगमपर विधिपूर्वक ऐसे ब्राह्मणको देनी चाहिये, जो श्रोत्रिय, साधुस्वभाव, श्वेत वस्त्र धारण करनेवाला, शान्त, धर्मज्ञ और वेदोंका पारगामी विद्वान् हो। उसके साथ बहुमूल्य वस्त्र और अनेकों प्रकारके रत्न भी दान करने चाहिये। राजसत्तम! ऐसा करनेसे उस गौके अङ्गोंमें जितने रोएँ होते हैं, उतने वर्षोंतक दाता स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। तत्पश्चात् जहाँ वह जन्म लेता है, वहीं वह गौ भी उसके घर उत्पन्न होती है। उस पुण्यकर्मके प्रभावसे उसे नरकका दर्शन नहीं होता, अपितु वह उत्तरकुरु-प्रदेशको पाकर अक्षय कालतक आनन्दका उपभोग करता है। लाखों गौओंकी अपेक्षा एक ही दुधारू गौका दान प्रशस्त माना गया है; क्योंकि वह एक ही गौ पुत्रों, स्त्रियों और नौकरोंतकका उद्धार कर देती है। यही कारण है कि समस्त दानोंमें गो-दानका विशेष महत्त्व बतलाया जाता है। दुर्गम स्थानपर, भयंकर विषम परिस्थितिमें और महापातकके घटित हो जानेपर केवल गौ ही रक्षा कर सकती है, अतः मनुष्यको श्रेष्ठ ब्राह्मणको गो-दान देना चाहिये ॥ १७-२३ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके प्रयाग-माहात्म्यमें एक सौ पाँचवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥१०५॥

# एक सौ छठा अध्याय

## प्रयाग-माहात्म्य-वर्णन-प्रसङ्गमें वहाँके विविध तीर्थोंका वर्णन

युधिष्ठिर उवाच

यथा यथा प्रयागस्य माहात्म्यं कथ्यते त्वया। तथा तथा प्रमुच्येऽहं सर्वपापैर्न संशयः ॥ १ ॥
भगवन् केन विधिना गन्तव्यं धर्मनिश्चयैः। प्रयागे यो विधिः प्रोक्तस्तन्मे ब्रूहि महामुने ॥ २ ॥

युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! आप ज्यों-ज्यों प्रयागके माहात्म्यका वर्णन कर रहे हैं, त्यों-त्यों मैं निःसंदेह समस्त पापोंसे मुक्त होता जा रहा हूँ। महामुने! धर्ममें सुदृढ़ बुद्धि रखनेवाले मनुष्योंको किस विधिसे प्रयागकी यात्रा करनी चाहिये? इसके लिये शास्त्रोंमें जिस विधिका वर्णन किया गया है, वह मुझे बतलाइये ॥ १-२ ॥

मार्कण्डेय उवाच

कथयिष्यामि ते राजंस्तीर्थयात्राविधिक्रमम्। आर्षेण विधिनानेन यथादृष्टं यथाश्रुतम् ॥ ३ ॥
प्रयागतीर्थं यात्रार्थी यः प्रयाति नरः क्वचित्। बलीवर्दसमारूढः शृणु तस्यापि यत् फलम् ॥ ४ ॥
नरके वसते घोरे गवां क्रोधो हि दारुणः। सलिलं न च गृह्णन्ति पितरस्तस्य देहिनः ॥ ५ ॥
यस्तु पुत्रांस्तथा बालान् स्नापयेत् पाययेत् तथा। यथात्मना तथा सर्वं दानं विप्रेषु दापयेत् ॥ ६ ॥
ऐश्वर्यलोभान्मोहाद् वा गच्छेद् यानेन यो नरः। निष्फलं तस्य तत् तीर्थं तस्माद् यानं विवर्जयेत् ॥ ७ ॥
गङ्गायमुनयोर्मध्ये यस्तु कन्यां प्रयच्छति। आर्षेणैव विवाहेन यथाविभवसम्भवम् ॥ ८ ॥
न स पश्यति तं घोरं नरकं तेन कर्मणा।
उत्तरान् स कुरून् गत्वा मोदते कालमक्षयम्। पुत्रान् दारांश्च लभते धार्मिकान् रूपसंयुतान् ॥ ९ ॥
तत्र दानं प्रकर्तव्यं यथाविभवसम्भवम्।
तेन तीर्थफलं चैव वर्धते नात्र संशयः। स्वर्गे तिष्ठति राजेन्द्र यावदाभूतसम्प्लवम् ॥ १० ॥

* कपिला गौ 'स्वर्णकपिला' आदिके भेदसे दस प्रकारकी होती है। इसका विस्तृत वर्णन महाभारत, आश्वमेधिक वैष्णवधर्म पर्व अ० ९५ गी० प्रेसमें दाक्षि० प्र० के श्लोकमें तथा वृद्ध गौतमस्मृतिमें अ० ९-१० में देखना चाहिये।

मार्कण्डेयजीने कहा—राजन् ! मैने ऋषिप्रणीत विधिके अनुसार जैसा देखा एवं जैसा सुना है, उसीके अनुरूप प्रयागतीर्थकी यात्रा-विधिका क्रम बतला रहा हूँ । जो मनुष्य कहींसे भी प्रयागतीर्थकी यात्राके लिये हृष्ट-पुष्ट बैलपर सवार होकर प्रस्थान करता है, उसे जो फल प्राप्त होता है, वह सुनो । गो-वंशको कष्ट देनेवाला वह मनुष्य अत्यन्त घोर नरकमें निवास करता है तथा उस प्राणीके पितर उसका दिया हुआ जल नहीं ग्रहण करते; क्योंकि गौओका क्रोध बडा भयानक होता है । जो विधिके अनुसार पुत्रों तथा बालकोंको प्रयागमें स्नान कराता है, गङ्गाजलका पान कराता है तथा अपनी ही तरह ब्राह्मणोको सारा दान दिलाता है ( वह तीर्थ-फलका भागी होता है ) । जो मनुष्य ऐश्वर्यके लोभसे अथवा मोहवश सवारीपर बैठकर प्रयागकी यात्रा करता है, उसका वह तीर्थफल नष्ट हो जाता है, इसलिये सवारीका परित्याग कर देना चाहिये । जो गङ्गा-यमुनाके संगमपर ऋषिप्रणीत विवाह-विधिसे अपनी सम्पत्तिके अनुसार कन्या-दान करता है, उसे उस पुण्यकर्मके फलस्वरूप पूर्वोक्त घोर नरकका दर्शन नहीं होता, अपितु वह उत्तरकुरुदेशमें जाकर अक्षय-कालतक आनन्दका उपभोग करता है और उसे धर्मात्मा एवं सौन्दर्यशाली स्त्री-पुत्रोकी भी प्राप्ति होती है । इसलिये राजेन्द्र ! अपनी सम्पत्तिके अनुकूल प्रयागमें दान अवश्य करना चाहिये । इससे तीर्थका फल बढ़ जाता है और वह दाता प्रलयपर्यन्त स्वर्ग-लोकमें निवास करता है, इसमें कुछ भी सदेह नहीं है ॥

**वटमूलं समासाद्य यस्तु प्राणान् विमुञ्चति । सर्वलोकानतिक्रम्य रुद्रलोकं स गच्छति ॥ ११ ॥**
**तत्र ते द्वादशादित्यास्तपन्ते रुद्रसंश्रिताः । निर्दहन्ति जगत् सर्वं वटमूलं न दह्यते ॥ १२ ॥**
**नष्टचन्द्रार्कभुवनं यदा चैकार्णवं जगत् । स्थीयते तत्र वै विष्णुर्यजमानः पुनः पुनः ॥ १३ ॥**
**देवदानवगन्धर्वा ऋषयः सिद्धचारणाः । सदा सेवन्ति तत् तीर्थं गङ्गायमुनसङ्गमम् ॥ १४ ॥**
**ततो गच्छेत राजेन्द्र प्रयागं संस्तुवंश्च यत् । यत्र ब्रह्मादयो देवा ऋषयः सिद्धचारणाः ॥ १५ ॥**
**लोकपालाश्च साध्याश्च पितरो लोकसम्मताः । सनत्कुमारप्रमुखास्तथैव परमर्षयः ॥ १६ ॥**
**अङ्गिरःप्रमुखाश्चैव तथा ब्रह्मर्षयः परे । तथा नागाः सुपर्णाश्च सिद्धाश्च खेचराश्च ये ॥ १७ ॥**
**सागराः सरितः शैला नागा विद्याधराश्च ये । हरिश्च भगवानास्ते प्रजापतिपुरःसरः ॥ १८ ॥**
**गङ्गायमुनयोर्मध्ये पृथिव्या जघनं स्मृतम् ।**

जो मनुष्य प्रयागस्थित अक्षयवटके नीचे पहुँचकर प्राणोका त्याग करता है, वह अन्य सभी पुण्यलोकोंका अतिक्रमण कर रुद्रलोकको चला जाता है । प्रलयकालमें जब बारहों सूर्य रुद्रके आश्रयमें स्थित होकर अपने प्रखर तेजसे तपने लगते है, उस समय वे सारे जगत्‌को तो जलाकर भस्म कर देते हैं, परंतु अक्षयवट-को वे भी नहीं जला पाते । प्रलयकालमें जब सूर्य, चन्द्रमा और चौदहो भुवन नष्ट हो जाते है तथा सारा जगत् एकार्णवके जलमें निमग्न हो जाता है, उस समय भी भगवान् विष्णु प्रयागमें यज्ञाराधनमें तत्पर होकर स्थित रहते हैं । देवता, दानव, गन्धर्व, ऋषि, सिद्ध और चारण आदि गङ्गा-यमुनाके संगमभूत तीर्थका सदा सेवन करते हैं । अतः राजेन्द्र ! जहाँ प्रयागकी स्तुति करते हुए ब्रह्मा आदि देवगण; ऋषि, सिद्ध, चारण, लोकपाल, साध्यगण, लोकसम्मत पितर; सनत्कुमार आदि परमर्षि; अङ्गिरा आदि महर्षि तथा अन्य ब्रह्मर्षि, नाग, एवं गरुड आदि पक्षी, सिद्ध, आकाशचारी जीव, सागर, नदियाँ, पर्वत, सर्प, विद्याधर तथा ब्रह्मासहित भगवान् श्रीहरि निवास करते हैं, उस प्रयागकी यात्रा अवश्य करनी चाहिये । राजसिंह ! यह गङ्गा-यमुनाके अन्तरालका प्रयाग क्षेत्र पृथ्वीका जघनस्थल कहा गया है ॥ ११—१८½ ॥

प्रयागं राजशार्दूल त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्। ततः पुण्यतमं नास्ति त्रिषु लोकेषु भारत ॥ १९ ॥
श्रवणात् तस्य तीर्थस्य नामसंकीर्तनादपि। मृत्तिकालम्भनाद् वापि नरः पापात् प्रमुच्यते ॥ २० ॥
तत्राभिषेकं यः कुर्यात् संगमे शंसितव्रतः। तुल्यं फलमवाप्नोति राजसूयाश्वमेधयोः ॥ २१ ॥
न वेदवचनात् तात न लोकवचनादपि। मतिरुत्क्रमणीया ते प्रयागमरणं प्रति ॥ २२ ॥
दश तीर्थसहस्राणि तिस्रः कोट्यस्तथापराः। तेषां सांनिध्यमत्रैव ततस्तु कुरुनन्दन ॥ २३ ॥
या गतिर्योगयुक्तस्य सत्यस्थस्य मनीषिणः। सा गतिस्त्यजतः प्राणान् गङ्गायमुनसङ्गमे ॥ २४ ॥
न ते जीवन्ति लोकेऽस्मिंस्तत्र तत्र युधिष्ठिर। ये प्रयागं न सम्प्राप्तास्त्रिषु लोकेषु वञ्चिताः ॥ २५ ॥
एवं दृष्ट्वा तु तत् तीर्थं प्रयागं परमं पदम्। मुच्यते सर्वपापेभ्यः शशाङ्क इव राहुणा ॥ २६ ॥

भारत ! यह प्रयाग तीनो लोकोंमें विख्यात है। इससे बढ़कर पुण्यप्रद तीर्थ तीनो लोकोंमें दूसरा नहीं है। इस प्रयागतीर्थका नाम सुननेसे, इसके नामोंका संकीर्तन करनेसे अथवा इसकी मिट्टीका स्पर्श करनेसे मनुष्य पापसे छूट जाता है। जो व्रतनिष्ठ मनुष्य उस संगममें स्नान करता है, उसे राजसूय और अश्वमेध-यज्ञोंके समान फलकी प्राप्ति होती है। तात ! इसलिये न तो किसी वेद-वचनसे, न लोगोंके आग्रहपूर्ण कथनसे ही तुम्हें प्रयाग-मरणके प्रति निश्चित की हुई अपनी बुद्धिमें किसी प्रकारका उलट-फेर करना चाहिये। कुरुनन्दन ! इस भूतलपर जो दस हजार बड़े तीर्थ हैं तथा इनके अतिरिक्त जो तीन करोड़ अन्य तीर्थ हैं, उन सबका प्रयागमें ही निवास है। गङ्गा-यमुनाके संगमपर प्राण छोड़नेवालेको वही गति प्राप्त होती है, जो गति योगनिष्ठ एवं सत्यपरायण विद्वान्‌को मिलती है। युधिष्ठिर ! जिन लोगोंने प्रयागकी यात्रा नहीं की, वे तो मानो तीनों लोकोंमें ठग लिये गये और उनका जीवन इस लोकमें नहींके समान है। इस प्रकार परमपदस्वरूप इस प्रयागतीर्थका दर्शन करके मनुष्य उसी प्रकार समस्त पापोंसे छूट जाता है, जैसे ( ग्रहणकालके बाद ) राहुग्रस्त चन्द्रमा ॥ १९–२६ ॥

कम्बलाश्वतरौ नागौ यमुना दक्षिणे तटे। तत्र स्नात्वा च पीत्वा च सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २७ ॥
तत्र गत्वा च संस्थानं महादेवस्य विश्रुतम्। नरस्तारयते सर्वान् दश पूर्वान् दशापरान् ॥ २८ ॥
कृत्वाभिषेकं तु नरः सोऽश्वमेधफलं लभेत्। स्वर्गलोकमवाप्नोति यावदाभूतसम्प्लवम् ॥ २९ ॥
पूर्वपार्श्वे तु गङ्गायास्त्रिषु लोकेषु भारत। कूपं चैव तु सामुद्रं प्रतिष्ठानं च विश्रुतम् ॥ ३० ॥
ब्रह्मचारी जितक्रोधस्त्रिरात्रं यदि तिष्ठति। सर्वपापविशुद्धात्मा सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥ ३१ ॥
उत्तरेण प्रतिष्ठानाद् भागीरथ्यास्तु पूर्वतः। हंसप्रपतनं नाम तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ ३२ ॥
अश्वमेधफलं तस्मिन् स्नानमात्रेण भारत। यावच्चन्द्रश्च सूर्यश्च तावत् स्वर्गे महीयते ॥ ३३ ॥
उर्वशीरमणे पुण्ये विपुले हंसपाण्डुरे। परित्यजति यः प्राणान् शृणु तस्यापि यत् फलम् ॥ ३४ ॥
षष्टिवर्षसहस्राणि षष्टिवर्षशतानि च। सेव्यते पितृभिः सार्धं स्वर्गलोके नराधिप ॥ ३५ ॥
उर्वशीं तु सदा पश्येत् स्वर्गलोके नरोत्तम। पूज्यते सततं पुत्र ऋषिगन्धर्वकिंनरैः ॥ ३६ ॥
ततः स्वर्गात् परिभ्रष्टः क्षीणकर्मा दिवश्च्युतः। उर्वशीसदृशीनां तु कन्यानां लभते शतम् ॥ ३७ ॥
मध्ये नारीसहस्राणां बहूनां च पतिर्भवेत्। दशग्रामसहस्राणां भोक्ता भवति भूमिपः ॥ ३८ ॥
काञ्चीनूपुरशब्देन सुप्तोऽसौ प्रतिबुध्यते। भुक्त्वा तु विपुलान् भोगांस्तत्तीर्थं भजते पुनः ॥ ३९ ॥

कम्बल और अश्वतर नामवाले दोनों नाग यमुनाके दक्षिण तटपर निवास करते हैं, अतः वहाँ स्नान और जलपान कर मनुष्य समस्त पापोंसे छूट जाता है। प्रयागक्षेत्रमें स्थित महादेवजीके सुप्रसिद्ध स्थानकी यात्रा करके मनुष्य अपनी दस आगेकी और दस पीछेकी पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है। जो मनुष्य वहाँ

स्नान करता है, उसे अश्वमेध-यज्ञके फलकी प्राप्ति होती है और वह प्रलयपर्यन्त स्वर्गलोकमें निवास करता है। भारत! गङ्गाके पूर्वी तटपर तीनों लोकोंमें विख्यात समुद्रकूप और प्रतिष्ठानपुर (झूँसी) है। वहाँ यदि मनुष्य तीन राततक क्रोधको वशमें कर ब्रह्मचर्यपूर्वक निवास करता है तो उसका आत्मा समस्त पापोंसे मुक्त होकर शुद्ध हो जाता है और उसे अश्वमेध-यज्ञके फलकी प्राप्ति होती है। भारत! भागीरथीके पूर्वतटपर प्रतिष्ठानपुर (झूँसी)से उत्तर दिशामें 'हंसप्रपतन' नामक तीर्थ है, जो तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध है। वहाँ स्नानमात्र कर लेनेसे अश्वमेध-यज्ञका फल प्राप्त होता है तथा वह यात्री सूर्य एवं चन्द्रमाकी स्थितिपर्यन्त स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। इसी प्रकार जो मनुष्य पुण्यप्रद उर्वशीरमण तथा विशाल हंसपाण्डुर नामक तीर्थमें अपने प्राणोंका परित्याग करता है, उसे जो फल प्राप्त होता है, वह सुनो। नरेश्वर! वह स्वर्गलोकमें छाछठ हजार वर्षोंतक पितरोंके साथ सेवित होता है और नरोत्तम! स्वर्गलोकमें वह सदा उर्वशीको देखता रहता है। पुत्र! साथ ही युधिष्ठिर ऋषि, गन्धर्व और किन्नर निरन्तर उसकी पूजा करते हैं। तदनन्तर पुण्य क्षीण हो जानेपर जब वह स्वर्गसे च्युत होता है, तब दस हजार गाँवोंका उपभोग करनेवाला भूपाल होता है। वह अनेकों सहस्र नारियोंके बीच रहता हुआ उनका पति होता है। उससे उर्वशी-सरीखी सौन्दर्यशालिनी सौ कन्याएँ उत्पन्न होती हैं। वह करधनी और नूपुरके झंकार-शब्दोंद्वारा नींदसे जगाया जाता है। इस प्रकार प्रचुर भोगोंका उपभोग करके वह पुनः प्रयागतीर्थकी यात्रा करता है॥ २७—३९॥

**शुक्लाम्बरधरो नित्यं नियतः संयतेन्द्रियः। एककालं तु भुञ्जानो मासं भूमिपतिर्भवेत्॥ ४०॥**
**सुवर्णालंकृतानां तु नारीणां लभते शतम्। पृथिव्यामासमुद्रायां महाभूमिपतिर्भवेत्॥ ४१॥**
**धनधान्यसमायुक्तो दाता भवति नित्यशः। भुक्त्वा तु विपुलान् भोगांस्तत्तीर्थं भजते पुनः॥ ४२॥**
**अथ संध्यावटे रम्ये ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः। उपवासी शुचिः संध्यां ब्रह्मलोकमवाप्नुयात्॥ ४३॥**
**कोटितीर्थं समासाद्य यस्तु प्राणान् परित्यजेत्। कोटिवर्षसहस्राणां स्वर्गलोके महीयते॥ ४४॥**
**ततः स्वर्गात् परिभ्रष्टः क्षीणकर्मा दिवश्च्युतः। सुवर्णमणिमुक्ताढ्यकुले जायेत रूपवान्॥ ४५॥**
**ततो भोगवतीं गत्वा वासुकेरुत्तरेण तु। दशाश्वमेधकं नाम तीर्थं तत्रापरं भवेत्॥ ४६॥**
**कृताभिषेकस्तु नरः सोऽश्वमेधफलं लभेत्। धनाढ्यो रूपवान् दक्षो दाता भवति धार्मिकः॥ ४७॥**
**चतुर्वेदेषु यत् पुण्यं यत् पुण्यं सत्यवादिषु। अहिंसायां तु यो धर्मो गमनादेव तत् फलम्॥ ४८॥**
**कुरुक्षेत्रसमा गङ्गा यत्र यत्रावगाह्यते। कुरुक्षेत्राद् दशगुणा यत्र विन्ध्येन संगता॥ ४९॥**

जो मनुष्य प्रयागतीर्थमें एक मासतक श्वेत वस्त्र धारण करके जितेन्द्रिय होकर नित्य नियमपूर्वक रहते हुए एक ही समय भोजन करता है, वह (जन्मान्तरमें) राजा होता है तथा समुद्रपर्यन्त पृथ्वीका चक्रवर्ती सम्राट् हो जाता है। उसे सुवर्णालंकारोंसे विभूषित सैकड़ों स्त्रियाँ प्राप्त होती हैं। वह धन-धान्यसे सम्पन्न होकर नित्य दान देता रहता है। इस प्रकार प्रचुर भोगोंका उपभोग करके वह पुनः प्रयागतीर्थकी यात्रा करता है। तदनन्तर रमणीय संध्यावटकी छायामें जो मनुष्य ब्रह्मचर्यपूर्वक जितेन्द्रिय एवं निराहार रहकर पवित्रभावसे संध्योपासन करता है, वह ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है। जो मनुष्य कोटितीर्थमें जाकर प्राणोंका परित्याग करता है, वह हजारों करोड़ वर्षोंतक स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। तत्पश्चात् पुण्य क्षीण होनेपर जब स्वर्गलोकसे नीचे गिरता है, तब सुन्दर रूप धारण कर सुवर्ण, मणि और मोतीसे भरे-पूरे कुलमें जन्म लेता है। इसके

बाद वासुकि-ह्रदकी उत्तर दिशामें स्थित भोगवती नामक तीर्थमें जानेपर वहाँ दशाश्वमेध नामवाला दूसरा तीर्थ मिलता है। वहाँ जो मनुष्य स्नान करता है, उसे अश्वमेध-यज्ञके फलकी प्राप्ति होती है। वह सम्पत्तिशाली, सौन्दर्य-सम्पन्न, चतुर, दानी और धर्मात्मा होता है। चारों वेदोंके अध्ययनसे जो पुण्य होता है, सत्य-भाषणसे जो पुण्य कहा गया है तथा अहिंसा-व्रतका पालन करनेसे जो धर्म बतलाया गया है, वह सारा फल प्रयागतीर्थकी यात्रासे ही प्राप्त हो जाता है। गङ्गामें जहाँ-कहीं भी स्नान किया जाय, वहाँ गङ्गा कुरुक्षेत्रके समान फलदायिका मानी गयी हैं, परंतु जहाँ वह विन्ध्य-पर्वतसे संयुक्त हुई हैं, वहाँ गङ्गा कुरुक्षेत्रसे दसगुना अधिक फलदायिनी हो जाती हैं। ॥ ४०—४९ ॥

यत्र गङ्गा महाभागा बहुतीर्था तपोधना। सिद्धक्षेत्रं हि तज्ज्ञेयं नात्र कार्या विचारणा ॥ ५० ॥
क्षितौ तारयते मर्त्यान् नागांस्तारयतेऽप्यधः। दिवि तारयते देवांस्तेन त्रिपथगा स्मृता ॥ ५१ ॥
यावदस्थीनि गङ्गायां तिष्ठन्ति हि शरीरिणः। तावद् वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ॥ ५२ ॥
ततः स्वर्गात् परिभ्रष्टो जम्बूद्वीपपतिर्भवेत्।
तीर्थानां तु परं तीर्थं नदीनां तु महानदी। मोक्षदा सर्वभूतानां महापातकिनामपि ॥ ५३ ॥
सर्वत्र सुलभा गङ्गा त्रिषु स्थानेषु दुर्लभा।
गङ्गाद्वारे प्रयागे च गङ्गासागरसंगमे। तत्र स्नात्वा दिवं यान्ति ये मृतास्तेऽपुनर्भवाः॥ ५४ ॥
सर्वेषामेव भूतानां पापोपहतचेतसाम्। गतिमन्विष्यमाणानां नास्ति गङ्गासमा गतिः ॥ ५५ ॥
पवित्राणां पवित्रं च मङ्गलानां च मङ्गलम्। महेश्वरशिरोभ्रष्टा सर्वपापहरा शुभा ॥ ५६ ॥

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रयागमाहात्म्ये षडधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०६ ॥*

जहाँ बहुतसे तीर्थोंसे युक्त, महाभाग्यशालिनी एवं तपस्विनी गङ्गा बहती हैं, उस स्थानको सिद्धक्षेत्र मानना चाहिये, इसमें अन्यथा विचार करना अनुचित है। गङ्गा भूतलपर मनुष्योंको, पातालमें नागोंको तथा स्वर्गलोकमें देवताओंको तारती हैं, इसी कारण उन्हें 'त्रिपथगा' कहा जाता है। मृत प्राणीकी हड्डियाँ जितने समयतक गङ्गामें वर्तमान रहती हैं, उतने वर्षोंतक वह स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। तत्पश्चात् स्वर्गसे च्युत होनेपर वह जम्बूद्वीपका स्वामी होता है। गङ्गा सभी तीर्थोंमें सर्वोत्तम तीर्थ, नदियोंमें महानदी और महान्-से-महान् पाप करनेवाले सभी प्राणियोंके लिये मोक्षदायिनी हैं। गङ्गा सर्वत्र तो सुलभ हैं, परंतु गङ्गाद्वार, प्रयाग और गङ्गासागरसंगममें दुर्लभ मानी गयी हैं। इन स्थानोंपर स्नान करनेसे मनुष्य स्वर्गलोकको चले जाते हैं और जो यहाँ शरीर-त्याग करते हैं, उनका तो पुनर्जन्म होता ही नहीं, अर्थात् वे मुक्त हो जाते हैं। जिनका चित्त पापसे आच्छादित है, अतः उद्धार पानेके लिये गतिकी खोजमें लगे हैं, उन सभी प्राणियोंके लिये गङ्गाके समान दूसरी गति नहीं है। महेश्वरके जटाजूटसे च्युत हुई मङ्गलमयी गङ्गा समस्त पापोंका हरण करनेवाली हैं। ये पवित्रोंमें परम पवित्र और मङ्गलोंमें मङ्गल-स्वरूपा हैं ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके प्रयागमाहात्म्यमें एक सौ छठा अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १०६ ॥

---

* तुलनीय वाल्मी० १ । ४३—त्रीन् पथो भावयन्त्येषा तस्मात् त्रिपथगा स्मृता ।

# एक सौ सातवाँ अध्याय

## प्रयाग-स्थित विविध तीर्थोंका वर्णन

मार्कण्डेय उवाच

शृणु राजन् प्रयागस्य माहात्म्यं पुनरेव तु । यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥ १ ॥
मानसं नाम तीर्थं तु गङ्गाया उत्तरे तटे । त्रिरात्रोपोषितो स्नात्वा सर्वकामानवाप्नुयात् ॥ २ ॥
गोभूहिरण्यदानेन यत् फलं प्राप्नुयान्नरः । स तत्फलमवाप्नोति तत् तीर्थं स्मरते पुनः ॥ ३ ॥
अकामो वा सकामो वा गङ्गायां यो विपद्यते । मृतस्तु लभते स्वर्गं नरकं च न पश्यति ॥ ४ ॥
अप्सरोगणसंगीतैः सुप्तोऽसौ प्रतिबुद्ध्यते ।
हंससारसयुक्तेन विमानेन स गच्छति । बहुवर्षसहस्राणि स्वर्गं राजेन्द्र भुञ्जते ॥ ५ ॥
ततः स्वर्गात् परिभ्रष्टः क्षीणकर्मा दिवश्च्युतः । सुवर्णमणिमुक्ताढ्ये जायते विपुले कुले ॥ ६ ॥
षष्टितीर्थसहस्राणि षष्टितीर्थशतानि च । माघमासे गमिष्यन्ति गङ्गायमुनसंगमम् ॥ ७ ॥
गवां शतसहस्रस्य सम्यग् दत्तस्य यत् फलम् । प्रयागे माघमासे तु त्र्यहःस्नानात्तु तत् फलम् ॥ ८ ॥
गङ्गायमुनयोर्मध्ये कर्षाग्निं यस्तु साधयेत् । अहीनाङ्गो ह्यरोगश्च पञ्चेन्द्रियसमन्वितः ॥ ९ ॥
यावन्ति रोमकूपाणि तस्य गात्रेषु देहिनः । तावद् वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ॥ १० ॥
ततः स्वर्गात् परिभ्रष्टो जम्बूद्वीपपतिर्भवेत् । स भुक्त्वा विपुलान् भोगांस्तत् तीर्थं स्मरते पुनः ॥ ११ ॥

मार्कण्डेयजीने कहा—राजन् ! पुनः प्रयागका ही माहात्म्य श्रवण करो, जिसे सुनकर मनुष्य निस्संदेह समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है । गङ्गाके उत्तरी तटपर मानस नामक तीर्थ है, जहाँ तीन राततक निराहार रहकर निवास करनेसे मनुष्य अपनी सारी कामनाओंको प्राप्त कर लेता है । गौ, पृथ्वी और सुवर्ण दान करनेसे मनुष्यको जिस फलकी प्राप्ति होती है, वही फल उसे मानस-तीर्थके स्मरणसे प्राप्त हो जाता है । जो मनुष्य निष्कामभावसे अथवा किसी कामनाको लेकर गङ्गाकी धारामें डूबकर मर जाता है, वह स्वर्गमें चला जाता है । उसे नरकका दर्शन नहीं करना पड़ता; वह हंस और सारससे युक्त विमानपर चढ़कर देवलोकको जाता है । वहाँ वह अप्सरासमूहके सुमधुर गान-शब्दोंद्वारा नींदसे जगाया जाता है । राजेन्द्र ! इस प्रकार वह अनेकों हजार वर्षोंतक स्वर्ग-सुखका उपभोग करता है । पुनः पुण्य-कर्मके क्षीण हो जानेपर जब उसका स्वर्गसे पतन हो जाता है, तब वह सुवर्ण, मणि और मोतियोंसे सम्पन्न विशाल कुलमें जन्म लेता है । माघ मासमें गङ्गा-यमुनाके संगमपर छाछठ हजार तीर्थ एकत्र होते हैं । इसलिये विधिपूर्वक एक लाख गौओंका दान करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वही फल माघ मासमें प्रयाग-तीर्थमें तीन दिनतक स्नान करनेसे मिलता है । जो मनुष्य गङ्गा-यमुनाके संगमपर कर्षाग्नि ( कंडा जलाकर पञ्चाग्नि )की साधना करता है, वह सभी अङ्गोंसे सम्पन्न, नीरोग और पाँचों कर्मेन्द्रियोंसे स्वस्थ हो जाता है । उस प्राणीके अङ्गोंमें जितने रोमकूप होते हैं, उतने सहस्र वर्षोंतक वह स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है । पुण्य क्षीण हो जानेपर वह स्वर्गसे च्युत होकर भूतलपर जम्बूद्वीपका अधिपति होता है और वहाँ प्रचुर भोगोंका उपभोग करके पुनः प्रयागतीर्थका स्मरण करता तथा वहाँ पहुँचता है ॥ १–११ ॥

जलप्रवेशं यः कुर्यात् सङ्गमे लोकविश्रुते । राहुग्रस्ते तथा सोमे विमुक्तः सर्वकिल्बिषैः ॥ १२ ॥
सोमलोकमवाप्नोति सोमेन सह मोदते । षष्टिवर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ॥ १३ ॥

स्वर्गे च शक्रलोकेऽस्मिन्नृषिगन्धर्वसेविते। परिभ्रष्टस्तु राजेन्द्र समृद्धे जायते कुले ॥ १४ ॥
अधःशिरास्तु यो ज्वालामूर्ध्वपादः पिबेन्नरः। शतवर्षं सहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ॥ १५ ॥
परिभ्रष्टस्तु राजेन्द्र सोऽग्निहोत्री भवेन्नरः। भुक्त्वा तु विपुलान् भोगांस्तत् तीर्थं भजते पुनः॥ १६ ॥
यः स्वदेहं तु कर्तित्वा शकुनिभ्यः प्रयच्छति। विहगैरुपभुक्तस्य शृणु तस्यापि यत् फलम् ॥ १७ ॥
शतं वर्षसहस्राणां सोमलोके महीयते। तस्मादपि परिभ्रष्टो राजा भवति धार्मिकः ॥ १८ ॥
गुणवान् रूपसम्पन्नो विद्वांश्च प्रियवाचकः। भुक्त्वा तु विपुलान् भोगांस्तत् तीर्थं भजते पुनः ॥ १९ ॥
यामुने चोत्तरे कूले प्रयागस्य तु दक्षिणे। ऋणप्रमोचनं नाम तत् तीर्थं परमं स्मृतम् ॥ २० ॥
एकरात्रोषितः स्नात्वा ऋणैः सर्वैः प्रमुच्यते। स्वर्गलोकमवाप्नोति ह्यनृणश्च सदा भवेत् ॥ २१ ॥

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रयागमाहात्म्ये सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०७ ॥*

राहुद्वारा चन्द्रमाको ग्रस्त कर लिये जानेपर अर्थात् चन्द्रग्रहणके अवसरपर जो मनुष्य इस लोकप्रसिद्ध संगमके जलमें प्रवेश करता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त होकर सोमलोकको प्राप्त होता है और वहाँ चन्द्रमाके साथ आनन्द मनाता है। पुनः साठ हजार वर्षोंतक स्वर्गलोक तथा ऋषियों एवं गन्धर्वोंद्वारा सेवित इन्द्रलोकमें प्रतिष्ठित होता है। राजेन्द्र! स्वर्गसे च्युत होनेपर वह समृद्ध कुलमें जन्म धारण करता है। राजेन्द्र! जो मनुष्य प्रयागमें पैरोंको ऊपर और सिरको नीचे कर अग्निकी ज्वालाका पान करता है, वह एक लाख वर्षोंतक स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है तथा स्वर्गसे च्युत होनेपर भूतलपर अग्निहोत्री होता है। यहाँ प्रचुर भोगोंका उपभोग कर वह पुनः प्रयागतीर्थकी यात्रा करता है। जो मनुष्य प्रयागतीर्थमें अपने शरीरके मांसको काटकर पक्षियोंको खानेके लिये दे देता है, पक्षियोंद्वारा खाये गये शरीरवाले उस प्राणीको जो फल प्राप्त होता है, उसे सुनो। वह एक लाख वर्षोंतक सोमलोकमें प्रतिष्ठित होता है। वहाँसे च्युत होनेपर वह इस लोकमें धर्मात्मा, गुणसम्पन्न, सौन्दर्यशाली, विद्वान् और प्रियभाषी राजा होता है तथा यहाँ प्रचुर भोगोंका उपभोग कर पुनः प्रायगतीर्थकी यात्रा करता है। प्रयागके दक्षिण और यमुनाके उत्तर तटपर ऋणप्रमोचन नामक तीर्थ है, जो परम श्रेष्ठ कहा जाता है। वहाँ एक रात निवास कर स्नान करनेसे मनुष्य सभी ऋणोंसे मुक्त हो जाता है और सदाके लिये ऋणरहित होकर स्वर्गलोकमें चला जाता है॥ १२—२१ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके प्रयागमाहात्म्यमें एक सौ सातवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १०७ ॥

---

# एक सौ आठवाँ अध्याय

## प्रयागमें अनशन-व्रत तथा एक मासतकके निवास ( कल्पवास ) का महत्त्व

युधिष्ठिर उवाच

एतच्छ्रुत्वा प्रयागस्य यत् त्वया परिकीर्तितम्। विशुद्धं मेऽद्य हृदयं प्रयागस्य तु कीर्तनात् ॥ १ ॥
अनाशकफलं ब्रूहि भगवंस्तत्र कीदृशम्। यं च लोकमवाप्नोति विशुद्धः सर्वकिल्बिषैः ॥ २ ॥

**युधिष्ठिरने पूछा**—भगवन्! आपने जो प्रयागके माहात्म्यका वर्णन किया है, उसे सुनकर प्रयागका कीर्तन करनेसे अब मेरा हृदय विशुद्ध हो गया है। अब मुझे यह बतलाइये कि प्रयागमें अनशन ( उपवास ) करनेसे कैसा फल प्राप्त होता है और उसके प्रभावसे समस्त पापोंसे मुक्त होकर मनुष्य किस लोकमें जाता है? ॥

मार्कण्डेय उवाच

शृणु राजन् प्रयागे तु अनाशकफलं विभो। प्राप्नोति पुरुषो श्रीमाञ् श्रद्दधानो जितेन्द्रियः ॥ ३ ॥
अहीनाङ्गोऽप्यरोगश्च पञ्चेन्द्रियसमन्वितः। अश्वमेधफलं तस्य गच्छतस्तु पदे पदे ॥ ४ ॥
कुलानि तारयेद् राजन् दश पूर्वान् दशावरान्। मुच्यते सर्वपापेभ्यो गच्छेत् तु परमं पदम् ॥ ५ ॥

मार्कण्डेयजीने कहा—ऐश्वर्यशाली राजन्! प्रयाग-तीर्थमें जो श्रद्धालु विद्वान् इन्द्रियोंको वशमें करके अनशन-व्रतका पालन करता है, उसे जो फल प्राप्त होता है, वह सुनो। राजेन्द्र! वह सर्वाङ्गसे सम्पन्न, नीरोग और पाँचो कर्मेन्द्रियोंसे स्वस्थ रहता है। चलते समय उसे पग-पगपर अश्वमेध-यज्ञके फलकी प्राप्ति होती है। वह अपने पहलेके दस और पीछे होनेवाले दस कुलोंका उद्धार कर देता है तथा सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होकर परमपदको प्राप्त हो जाता है ॥ ३—५ ॥

युधिष्ठिर उवाच

महाभाग्यं हि धर्मस्य यत् त्वं वदसि मे प्रभो। अल्पेनैव प्रयत्नेन बहून् धर्मानवाप्नुते ॥ ६ ॥
अश्वमेधैस्तु बहुभिः प्राप्यते सुव्रतैरिह। इमं मे संशयं छिन्धि परं कौतूहलं हि मे ॥ ७ ॥

युधिष्ठिरने पूछा—प्रभो! आप मुझे जो धर्मका माहात्म्य बतला रहे हैं, उसके अनुसार एक ओर तो थोड़े ही प्रयत्नसे महान् धर्मकी प्राप्ति होती है और दूसरी ओर वह धर्म अश्वमेध-सदृश अनेकों उत्तम व्रतोंके अनुष्ठानसे मिलता है। (इस विषमताको लेकर मेरे मनमें महान् संदेह उत्पन्न हो गया है, अतः) मेरे इस सदेहका निवारण कीजिये; क्योंकि मेरे मनमें महान् आश्चर्य हो रहा है ॥ ६-७ ॥

मार्कण्डेय उवाच

शृणु राजन् महावीर यदुक्तं पद्मयोनिना। ऋषीणां संनिधौ पूर्वं कथ्यमानं मया श्रुतम् ॥ ८ ॥
पञ्चयोजनविस्तीर्णं प्रयागस्य तु मण्डलम्। प्रविष्टमात्रे तद्भूमावश्वमेधः पदे पदे ॥ ९ ॥
व्यतीतान् पुरुषान् सप्त भविष्यांश्च चतुर्दश। नरस्तारयते सर्वान् यस्तु प्राणान् परित्यजेत् ॥ १० ॥
एवं ज्ञात्वा तु राजेन्द्र सदा श्रद्धापरो भवेत्।
अश्रद्दधानाः पुरुषाः पापोपहतचेतसः। प्राप्नुवन्ति न तत्स्थानं प्रयागं देवरक्षितम् ॥ ११ ॥

मार्कण्डेयजीने कहा—राजन्! पूर्वकालमें पद्म-योनि ब्रह्माने ऋषियोंके निकट जिसका वर्णन किया था, उसे कहते समय मैने भी सुना था। (वही इस समय बतला रहा हूँ।) प्रयागका मण्डल पाँच योजन (बीस मील) विस्तारवाला है। उसकी भूमिमें प्रवेश करते ही पग-पगपर अश्वमेध-यज्ञका फल प्राप्त होता है। जो मनुष्य प्रयागमण्डलमें अपने प्राणोंका परित्याग करता है, वह बीती हुई सात पीढ़ियोंका तथा आनेवाली चौदह पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है। ऐसा जानकर मनुष्यको सदा प्रयागके सेवनमें तत्पर होना चाहिये। राजेन्द्र! जिनमे श्रद्धा नहीं है तथा जिनका चित्त पापोंसे आच्छादित हो गया है, ऐसे पुरुष देवताओंद्वारा सुरक्षित उस प्रयागतीर्थमें नहीं पहुँच पाते ॥ ८—११ ॥

युधिष्ठिर उवाच

स्नेहाद् वा द्रव्यलोभाद् वा ये तु कामवशं गताः। कथं तीर्थफलं तेषां कथं पुण्यफलं भवेत् ॥ १२ ॥
विक्रयी सर्वभाण्डानां कार्याकार्यमजानतः। प्रयागे का गतिस्तस्य तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १३ ॥

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! प्रयागमें जाकर जो लोग स्नेहसे अथवा धनके लोभसे वासनाके वशीभूत हो जाते है, उन्हे कैसे तीर्थ-फलकी प्राप्ति होती है तथा किस प्रकारका पुण्यफल मिलता है? जो

कर्तव्य और अकर्तव्यके ज्ञानसे विहीन पुरुष वहाँ सभी प्रकारके पात्रोंका व्यापार करता है, उसकी क्या गति होती है ? यह सब मुझे बतलाइये ॥ १२-१३ ॥

मार्कण्डेय उवाच

शृणु राजन् महागुह्यं सर्वपापप्रणाशनम्। मासमेकं तु यः स्नायात् प्रयागे नियतेन्द्रियः ॥ १४ ॥
शुचिस्तु प्रयतो भूत्वाहिंसकः श्रद्धयान्वितः। मुच्यते सर्वपापेभ्यः स गच्छेत् परमं पदम् ॥ १५ ॥
विश्रम्भघातकानां तु प्रयागे शृणु यत् फलम्।
त्रिकालमेव स्नायीत आहारं भैक्ष्यमाचरेत्। त्रिभिर्मासैः स मुच्येत प्रयागे नात्र संशयः ॥ १६ ॥
अज्ञानेन तु यस्येह तीर्थयात्रादिकं भवेत्।
सर्वकामसमृद्धस्तु स्वर्गलोके महीयते। स्थानं च लभते नित्यं धनधान्यसमाकुलम् ॥ १७ ॥
एवं ज्ञानेन सम्पूर्णः सदा भवति भोगवान्। तारिताः पितरस्तेन नरकात् सपितामहाः ॥ १८ ॥
धर्मानुसारि तत्त्वज्ञ पृच्छतस्ते पुनः पुनः। त्वत्प्रियार्थं समाख्यातं गुह्यमेतत् सनातनम् ॥ १९ ॥

मार्कण्डेयजीने कहा—राजन् ! यह प्रसङ्ग तो परम गोपनीय एवं समस्त पापोंका विनाशक है, इसे बतला रहा हूँ, सुनो। जो मनुष्य जितेन्द्रिय, श्रद्धायुक्त और अहिंसाव्रती होकर पवित्रभावसे नियमपूर्वक एक मासतक प्रयागमें स्नान करता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है और परमपदको प्राप्त कर लेता है। अब विश्वासघात ( रूप पाप ) करनेवालोंको प्रयागमें आनेपर जो फल मिलता है, उसे सुनो। वह यदि प्रयागमें तीनों ( प्रातः, मध्याह्न, सायं ) वेलामें स्नान करे और भिक्षा माँगकर भोजन करे तो निस्संदेह तीन महीनेमें उस पापसे मुक्त हो सकता है। जो मनुष्य अनजानमें ही प्रयागकी यात्रा आदि कार्य कर बैठता है, वह भी सम्पूर्ण कामनाओंसे परिपूर्ण होकर स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है तथा धनधान्यसे परिपूर्ण अविनाशी पदको प्राप्त कर लेता है। इसी प्रकार जो जान-बूझकर नियमानुसार प्रयागकी यात्रा करता है, वह भोगोंसे सम्पन्न हो जाता है तथा अपने प्रपितामह आदि पितरोंका नरकसे उद्धार कर देता है। तत्त्वज्ञ ! तुम्हारे बारंबार पूछनेके कारण मैंने तुम्हारा प्रिय करनेके लिये इस धर्मानुकूल परम गोपनीय एवं सनातन ( अविनाशी ) विषयका वर्णन किया है ॥ १४—१९ ॥

युधिष्ठिर उवाच

अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे तारितं कुलम्। प्रीतोऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि दर्शनादेव ते मुने ॥ २० ॥
त्वद्दर्शनात् तु धर्मात्मन् मुक्तोऽहं चाद्य किल्बिषात्। इदानीं वेद्मि चात्मानं भगवन् गतकल्मषम् ॥ २१ ॥

युधिष्ठिर बोले—मुने ! आपके दर्शनसे आज मेरा जन्म सफल हो गया और आज मैंने अपने कुलका उद्धार कर दिया। मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुई है तथा मैं अनुगृहीत हो गया हूँ। धर्मात्मन् ! आपके दर्शनसे आज पापसे मुक्त हो गया हूँ। भगवन् ! अब मैं अपनेको पापरहित अनुभव कर रहा हूँ ॥ २०-२१ ॥

मार्कण्डेय उवाच

दिष्ट्या ते सफलं जन्म दिष्ट्या ते तारितं कुलम्। कीर्तनाद् वर्धते पुण्यं श्रुतात् पापप्रणाशनम् ॥ २२ ॥

मार्कण्डेयजीने कहा—राजन् ! तुम्हारे सौभाग्यसे तुम्हारा जन्म सफल हुआ है और सौभाग्यसे ही तुम्हारे कुलका उद्धार हुआ है। प्रयागतीर्थका नाम लेनेसे पुण्यकी वृद्धि होती है और श्रवण करनेसे पापका नाश होता है ॥ २२ ॥

युधिष्ठिर उवाच

यमुनायां तु किं पुण्यं किं फलं तु महामुने। एतन्मे सर्वमाख्याहि यथादृष्टं यथाश्रुतम् ॥ २३ ॥

युधिष्ठिरने पूछा—महामुने! यमुनामें स्नान करनेपर कैसा पुण्य होता है और कैसा फल प्राप्त होता है, इस विषयमें आपने जैसा देखा एवं सुना हो, वह सब मुझे बतलाइये ॥ २३ ॥

मार्कण्डेय उवाच

तपनस्य सुता देवी त्रिषु लोकेषु विश्रुता। समाख्याता महाभागा यमुना तत्र निम्नगा ॥ २४ ॥
येनैव निःसृता गङ्गा तेनैव यमुनाऽऽगता। योजनानां सहस्रेषु कीर्तनात् पापनाशिनी ॥ २५ ॥
तत्र स्नात्वा च पीत्वा च यमुनायां युधिष्ठिर। कीर्तनाल्लभते पुण्यं दृष्ट्वा भद्राणि पश्यति ॥ २६ ॥
अवगाह्याथ पीत्वा च पुनात्यासप्तमं कुलम्। प्राणांस्त्यजति यस्तत्र स याति परमां गतिम् ॥ २७ ॥
अग्नितीर्थमिति ख्यातं यमुनादक्षिणे तटे। पश्चिमे धर्मराजस्य तीर्थं तु नरकं स्मृतम् ॥ २८ ॥
तत्र स्नात्वा दिवं यान्ति ये मृतास्तेऽपुनर्भवाः। एवं तीर्थसहस्राणि यमुनादक्षिणे तटे ॥ २९ ॥
उत्तरेण प्रवक्ष्यामि आदित्यस्य महात्मनः। तीर्थं नीरुजकं* नाम यत्र देवा सवासवाः ॥ ३० ॥
उपासते सदा संध्यां त्रिकालं हि युधिष्ठिर। देवाः सेवन्ति तत् तीर्थं ये चान्ये विदुषो जनाः ॥ ३१ ॥
श्रद्दधानपरो भूत्वा कुरु तीर्थाभिषेचनम्।
अन्ये च बहवस्तीर्थाः सर्वपापहराः स्मृताः। तेषु स्नात्वा दिवं यान्ति ये मृतास्तेऽपुनर्भवाः ॥ ३२ ॥
गङ्गा च यमुना चैव उभे तुल्यफले स्मृते। केवलं ज्येष्ठभावेन गङ्गा सर्वत्र पूज्यते ॥ ३३ ॥
एवं कुरुष्व कौन्तेय सर्वतीर्थाभिषेचनम्। यावज्जीवकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ॥ ३४ ॥
यस्त्विमं कल्य उत्थाय पठते च शृणोति च। मुच्यते सर्वपापेभ्यः स्वर्गलोकं स गच्छति ॥ ३५ ॥

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रयागमाहात्म्येऽष्टाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०८ ॥*

मार्कण्डेयजीने कहा—राजन्! महाभागा यमुनादेवी सूर्यकी कन्या हैं। ये तीनों लोकोंमें विख्यात हैं। प्रयागमें (संगम-स्थलपर) ये नदीरूपसे विशेष ख्याति प्राप्त कर रही हैं। जहाँसे गङ्गाका प्रादुर्भाव हुआ है, वहींसे यमुना भी उद्भूत हुई हैं। ये हजार योजन (चार हजार मील) दूरसे भी नाम लेनेसे पापोंका नाश करनेवाली हैं। युधिष्ठिर! यमुनामें स्नान, जलपान और यमुनाका नाम-कीर्तन करनेसे महान् पुण्यकी प्राप्ति होती है तथा दर्शन करनेसे मनुष्य-को अपने जीवनमें कल्याणकारी अवसर देखनेको मिलते हैं। यमुनामें स्नान और जलपान करके मनुष्य अपने सात कुलोंको पावन बना देता है, परंतु जो यमुना-तटपर अपने प्राणोंका त्याग करता है, वह परमगतिको प्राप्त हो जाता है। यमुनाके दक्षिण तटपर सुप्रसिद्ध अग्नितीर्थ है और उससे पश्चिम दिशामें धर्मराजका तीर्थ है, जो नरक नामसे प्रसिद्ध है। वहाँ स्नान करके मनुष्य स्वर्गलोकको चले जाते हैं तथा जो लोग वहाँ प्राण-त्याग करते हैं, उनका पुनर्जन्म नहीं होता अर्थात् वे मुक्त हो जाते हैं। इस प्रकार यमुनाके दक्षिण तटपर हजारों तीर्थ हैं। युधिष्ठिर! अब मैं यमुनाके उत्तर तटपर महात्मा सूर्यके नीरुजक-(निरंजन) नामक तीर्थका वर्णन कर रहा हूँ, जहाँ इन्द्रसहित सभी देवता त्रिकाल संध्योपासन करते हैं। देवता तथा अन्यान्य विद्वज्जन सदा उस तीर्थका सेवन करते हैं। इसी प्रकार और भी बहुत-से तीर्थ हैं, जो समस्त पापोंके विनाशक बतलाये जाते हैं। इसलिये तुम भी श्रद्धापरायण होकर उन तीर्थोंमें स्नान करो; क्योंकि उन तीर्थोंमें स्नान करके मनुष्य स्वर्गलोकमें चले जाते हैं और जो वहाँ मरते हैं, उनका पुनर्जन्म नहीं होता। गङ्गा और यमुना—ये दोनों समान फल देनेवाली बतलायी जाती हैं। केवल ज्येष्ठ होनेके कारण गङ्गाकी सर्वत्र पूजा होती है। कुन्तीनन्दन! इस प्रकार तुम सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान करो; क्योंकि ऐसा करनेसे जीवन-पर्यन्त किया हुआ सारा पाप तत्काल ही नष्ट हो

* इसका—'विरुजकं' तथा 'निरञ्जनं नाम' पाठान्तर भी मिलता है।

जाता है। जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर इस प्रसङ्गका पाठ अथवा श्रवण करता है, वह सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है तथा उसे स्वर्गलोककी प्राप्ति होती है ॥ २४—२५ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके प्रयागमाहात्म्यमें एक सौ आठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १०८ ॥

## एक सौ नवाँ अध्याय

### अन्य तीर्थोंकी अपेक्षा प्रयागकी महत्ताका वर्णन

मार्कण्डेय उवाच

श्रुतं मे ब्रह्मणा प्रोक्तं पुराणे ब्रह्मसम्भवे।
तीर्थानां तु सहस्राणि शतानि नियुतानि च। सर्वे पुण्याः पवित्राश्च गतिश्च परमा स्मृता ॥ १ ॥
सोमतीर्थं महापुण्यं महापातकनाशनम्।
स्नानमात्रेण राजेन्द्र पुरुषांस्तारयेच्छतम्। तस्मात् सर्वप्रयत्नेन तत्र स्नानं समाचरेत् ॥ २ ॥

मार्कण्डेयजीने कहा—राजेन्द्र ! मैंने ब्रह्माके मुखसे प्रादुर्भूत हुए पुराणोंमें ब्रह्माद्वारा कहे जाते हुए सुना है कि तीर्थोंकी संख्या कहीं सौ, कहीं हजार और कहीं लाखोंतक बतलायी गयी है। ये सभी पुण्यप्रद एवं परम पवित्र हैं। ( इनमें स्नान करनेसे ) परम गतिकी प्राप्ति बतलायी गयी है। इन्हीं तीर्थोंमें सोमतीर्थ महान् पुण्यप्रद एवं महापातकोंका विनाशक है। वहाँ केवल स्नान करनेसे वह स्नानकर्ताके सौ पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है, अतः सभी उपायोंद्वारा वहाँ स्नान अवश्य करना चाहिये ॥ १-२ ॥

युधिष्ठिर उवाच

पृथिव्यां नैमिशं पुण्यमन्तरिक्षे च पुष्करम्। त्रयाणामपि लोकानां कुरुक्षेत्रं विशिष्यते ॥ ३ ॥
सर्वाणि तानि संत्यज्य कथमेकं प्रशंससि। अप्रमाणं तु तत्रोक्तमश्रद्धेयमनुत्तमम् ॥ ४ ॥
गतिं च परमां दिव्यां भोगांश्चैव यथेप्सितान्।
किमर्थमल्पयोगेन बहु धर्मं प्रशंससि। एतन्मे संशयं ब्रूहि यथादृष्टं यथाश्रुतम् ॥ ५ ॥

युधिष्ठिरने पूछा—महामुने ! भूतलपर नैमिशारण्य और अन्तरिक्षमें पुष्कर पुण्यप्रद माने गये हैं तथा तीनों लोकोंमें कुरुक्षेत्रकी विशेषता बतलायी जाती है, परंतु आप इन सबको छोड़कर एक प्रयागकी ही प्रशंसा क्यों कर रहे हैं ? साथ ही वहाँ जानेसे परम दिव्य गति और अभीष्ट मनोरथोंकी प्राप्ति भी बतला रहे हैं, आपका यह कथन मुझे प्रमाणरहित, अश्रद्धेय और अनुचित प्रतीत हो रहा है। आप थोड़े-से परिश्रमसे बहुत बड़े धर्मकी प्राप्तिकी प्रशंसा किसलिये कर रहे हैं ? अतः इस विषयमें आपने जैसा देखा अथवा सुना हो, उसके अनुसार कहकर मेरे इस संशयको दूर कीजिये ॥ ३—५ ॥

मार्कण्डेय उवाच

अश्रद्धेयं न वक्तव्यं प्रत्यक्षमपि यद् भवेत्। नरस्याश्रद्दधानस्य पापोपहतचेतसः ॥ ६ ॥
अश्रद्दधानो ह्यशुचिर्दुर्मतिस्त्यक्तमङ्गलः। एते पातकिनः सर्वे तेनेदं भाषितं त्वया ॥ ७ ॥
शृणु प्रयागमाहात्म्यं यथादृष्टं यथाश्रुतम्। प्रत्यक्षं च परोक्षं च यथान्यस्तं भविष्यति ॥ ८ ॥
शास्त्रं प्रमाणं कृत्वा च युज्यते योगमात्मनः। क्लिश्यते चापरस्तत्र नैव योगमवाप्नुयात् ॥ ९ ॥
जन्मान्तरसहस्रेभ्यो योगो लभ्येत वा न वा। तथा युगसहस्रेण योगो लभ्येत मानवैः ॥ १० ॥

*

यस्तु सर्वाणि रत्नानि ब्राह्मणेभ्यः प्रयच्छति । तेन दानेन दत्तेन योगं नाभ्येति मानवः ॥ ११ ॥
प्रयागे तु मृतस्येदं सर्वं भवति नान्यथा । प्रधानहेतुं वक्ष्यामि श्रद्दधत्स्व च भारत ॥ १२ ॥

**मार्कण्डेयजीने कहा**—राजन् ! जो श्रद्धाहीन है तथा जिसके चित्तपर पापने अपना स्वत्व जमा लिया है, ऐसे मनुष्यकी आँखोके सामने जो बात घटित हो रही है, उसे 'अश्रद्धेय' तो नहीं कहना चाहिये । अश्रद्धालु, अपवित्र, दुर्बुद्धि और माङ्गलिक कार्योसे विमुख—ये सभी पापी कहलाते हैं । ( ऐसा प्रतीत होता है कि मानो तुम्हारे सिरपर भी कोई पाप सवार है ) जिसके कारण तुमने ऐसी बात कही है । अब प्रयागका माहात्म्य जैसा मैने देखा अथवा सुना है, उसे बतला रहा हूँ, सुनो । जगत्में जो बात प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूपमें देखी अथवा सुनी गयी हो, उसे शास्त्रोंद्वारा प्रमाणित कर अपने कल्याण-कार्यमें लगाना चाहिये । जो ऐसा नहीं करता, वह कष्टभागी होता है और उसे योगकी प्राप्ति नहीं होती । यह योग हजारों युगो या जन्मोंमें किन्हीं मनुष्योको सुलभ होता या नहीं भी होता है । जो मनुष्य सभी प्रकारके रत्न ब्राह्मणोको दान करता है, परंतु उस दानके प्रभावसे भी उसे उस योगकी प्राप्ति नहीं होती । किंतु प्रयागमें मरनेवालेको वह सब कुछ सुलभ हो जाता है, उसमें कुछ भी विपरीतता नहीं होती । भारत ! मै इसका प्रधान कारण बतला रहा हूँ, उसे श्रद्धापूर्वक सुनो ॥ ७–१६ ॥

यथा सर्वेषु भूतेषु ब्रह्म सर्वत्र दृश्यते । ब्राह्मणे चास्ति यत्किंचित्तद् ब्राह्ममिति चोच्यते ॥ १३ ॥
एवं सर्वेषु भूतेषु ब्रह्म सर्वत्र पूज्यते । तथा सर्वेषु लोकेषु प्रयागं पूजयेद् बुधः ॥ १४ ॥
पूज्यते तीर्थराजस्तु सत्यमेव युधिष्ठिर । ब्रह्मापि स्मरते नित्यं प्रयागं तीर्थमुत्तमम् ॥ १५ ॥
तीर्थराजमनुप्राप्य न चान्यत् किंचिदर्हति । को हि देवत्वमासाद्य मनुष्यत्वं चिकीर्षति ॥ १६ ॥
अनेनैवोपमानेन त्वं ज्ञास्यसि युधिष्ठिर । यथा पुण्यतमं चास्ति तथैव कथितं मया ॥ १७ ॥

जैसे ब्रह्म सभी प्राणियोमें सर्वत्र विद्यमान रहता है, और ब्राह्मणमें उसका कुछ विशेष अंश रहता है, जिसके कारण वह सब ब्राह्म कहे जाते है । जिस प्रकार सभी प्राणियोंमें सर्वत्र ब्रह्मकी सत्ता मानकर उनकी पूजा होती है ( परंतु ब्राह्मण विशेषरूपसे पूजित होता है ), उसी प्रकार विद्वान् लोग सभी तीर्थोंमें प्रयागको विशेष मान्यता देते हैं । युधिष्ठिर ! सचमुच तीर्थराज पूजनीय है । ब्रह्मा भी इस उत्तम प्रयागतीर्थका नित्य स्मरण करते हैं । ऐसे तीर्थराजको पाकर मनुष्यको किसी अन्य वस्तुको प्राप्त करनेकी इच्छा नहीं रह जाती । भला कौन ऐसा मनुष्य होगा, जो देवत्वको पाकर मनुष्य बननेकी इच्छा करेगा । युधिष्ठिर ! इसी उपमानसे तुम समझ जाओगे ( कि प्रयागका इतना महत्त्व क्यो है ) । जिस प्रकार प्रयाग सभी तीर्थोंमें विशेष पुण्यप्रद है, वैसा मैने तुम्हे बतला दिया ॥ १३–१७ ॥

युधिष्ठिर उवाच

श्रुतं चेदं त्वया प्रोक्तं विस्मितोऽहं पुनः पुनः । कथं योगेन तत्प्राप्तिः स्वर्गवासस्तु कर्मणा ॥ १८ ॥
दाता वै लभते भोगान् गां च यत्कर्मणः फलम् । तानि कर्माणि पृच्छामि पुनस्तैः प्राप्यते मही ॥ १९ ॥

**युधिष्ठिरने पूछा**—महर्षे ! मैने आपके द्वारा कहा गया प्रयाग-माहात्म्य तो सुना, किंतु इस योगरूप कर्मसे वैसे महान् फलकी प्राप्ति कैसे होती है तथा स्वर्गमें निवास कैसे मिलता है, इस विषयको सोचकर मै बारंबार विस्मयविमुग्ध हो रहा हूँ; अतः जिन कर्मोंके फलस्वरूप दाताको ऐहलौकिक भोग और पृथ्वीकी प्राप्ति होती है तथा जन्मान्तरमें जिन कर्मोंके प्रभावसे पुनः पृथ्वीपर अधिकार प्राप्त होता है, उन्हीं कर्मोंको मैं जानना चाहता हूँ, अतः उन्हें बतलानेकी कृपा करें ॥ १८-१९ ॥

मार्कण्डेय उवाच

शृणु राजन् महाबाहो यथोक्तकरणं महीम्। गामग्निं ब्राह्मणं शास्त्रं काञ्चनं सलिलं स्त्रियः ॥ २० ॥
मातरं पितरं चैव ये निन्दन्ति नराधमाः। न तेषामूर्ध्वगमनमिदमाह प्रजापतिः ॥ २१ ॥
एवं योगस्य सम्प्राप्तिस्थानं परमदुर्लभम्। गच्छन्ति नरकं घोरं ये नराः पापकर्मिणः ॥ २२ ॥
हस्त्यश्वं गामनड्वाहं मणिमुक्तादिकाञ्चनम्। परोक्षं हरते यस्तु पश्चाद् दानं प्रयच्छति ॥ २३ ॥
न ते गच्छन्ति वै स्वर्गं दातारो यत्र भोगिनः। अनेककर्मणा युक्ताः पच्यन्ते नरके पुनः ॥ २४ ॥
एवं योगं च धर्मं च दातारं च युधिष्ठिर।
यथा सत्यमसत्यं वा अस्ति नास्तीति यत्फलम्। निरुक्तं तु प्रवक्ष्यामि यथाह स्वयमंशुमान् ॥ २५ ॥

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रयागमाहात्म्ये नवाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०९ ॥*

मार्कण्डेयजीने कहा—महाबाहु राजन्! मैंने जैसा करनेके लिये कहा है, उस विषयमें पुनः सुनो। जो नीच मनुष्य पृथ्वी, गौ, अग्नि, ब्राह्मण, शास्त्र, काञ्चन, जल, स्त्री, माता और पिताकी निन्दा करते हैं, उनकी ऊर्ध्वगति नहीं होती—ऐसा प्रजापति ब्रह्माने कहा है। अतः इस प्रकारके कर्मोंद्वारा योगकी प्राप्तिका स्थान परम दुर्लभ है; क्योंकि जो मनुष्य पापकर्ममें निरत रहते हैं, वे घोर नरकमें जाते हैं। जो मनुष्य परोक्षमें दूसरेकी हाथी, घोड़ा, गौ, बैल, मणि, मुक्ता और सुवर्ण आदि वस्तुओंको चुरा लेता है और पीछे उसे दान कर देता है, ऐसे लोग उस स्वर्गलोकमें नहीं जाते, जहाँ (अपनी वस्तु दान करनेवाले) दाता सुख भोगते हैं, अपितु वे अनेकों पाप-कर्मोंसे युक्त होकर पुनः नरकमें कष्ट भोगते हैं। युधिष्ठिर! इस प्रकार योग, धर्म, दाता, सत्य, असत्य, अस्ति, नास्तिका जो फल कहा गया है तथा स्वयं सूर्यने जैसा बतलाया है, वही मैं तुमसे वर्णन कर रहा हूँ ॥ २०—२५ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके प्रयाग-माहात्म्यमें एक सौ नवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १०९ ॥
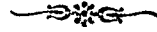
# एक सौ दसवाँ अध्याय

## जगत्के समस्त पवित्र तीर्थोंका प्रयागमें निवास

मार्कण्डेय उवाच

शृणु राजन् प्रयागस्य माहात्म्यं पुनरेव तु। नैमिशं पुष्करं चैव गोतीर्थं सिन्धुसागरम् ॥ १ ॥
गया च धेनुकं चैव गङ्गासागरमेव च। एते चान्ये च बहवो ये च पुण्याः शिलोच्चयाः ॥ २ ॥
दश तीर्थसहस्राणि तिस्रः कोट्यस्तथा पराः। प्रयागे संस्थिता नित्यमेवमाहुर्मनीषिणः ॥ ३ ॥
त्रीणि चाप्यग्निकुण्डानि येषां मध्ये तु जाह्नवी। प्रयागादभिनिष्क्रान्ता सर्वतीर्थनमस्कृता ॥ ४ ॥
तपनस्य सुता देवी त्रिषु लोकेषु विश्रुता। यमुना गङ्गया सार्धं संगता लोकभाविनी ॥ ५ ॥
गङ्गायमुनयोर्मध्ये पृथिव्या जघनं स्मृतम्। प्रयागं राजशार्दूल कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ ६ ॥
तिस्रः कोट्योऽर्धकोटी च तीर्थानां वायुरब्रवीत्। दिवि भुव्यन्तरिक्षे च तत् सर्वं तव जाह्नवि ॥ ७ ॥
प्रयागं सप्रतिष्ठानं कम्बलाश्वतरावुभौ। भोगवत्यथ या चैषा वेदिरेषा प्रजापतेः ॥ ८ ॥
तत्र वेदाश्च यज्ञाश्च मूर्तिमन्तो युधिष्ठिर। प्रजापतिमुपासन्ते ऋषयश्च तपोधनाः ॥ ९ ॥
यजन्ते क्रतुभिर्देवास्तथा चक्रधरा नृपाः। ततः पुण्यतमो नास्ति त्रिषु लोकेषु भारत ॥ १० ॥

मार्कण्डेयजीने कहा—राजन्! पुनः प्रयागका ही माहात्म्य सुनो। विद्वानोंका ऐसा कथन है कि नैमिशारण्य, पुष्कर, गोतीर्थ, सिन्धुसागर, गयातीर्थ, धेनुक (गयाके पासका एक तीर्थ) और गङ्गासागर—ये तथा इनके अतिरिक्त

तीन करोड़ दस हजार जो अन्य तीर्थ हैं, वे सभी एवं पुण्यप्रद पर्वत प्रयागमें नित्य निवास करते हैं। यहाँ तीन अग्निकुण्ड भी हैं, जिनके बीचसे सम्पूर्ण तीर्थोंद्वारा नमस्कृत गङ्गा प्रवाहित होती हुई प्रयागसे आगे निकलती हैं। उसी प्रकार तीनों लोकोंमें विख्यात लोकभाविनी सूर्य-पुत्री यमुनादेवी यहीं गङ्गाके साथ सम्मिलित हुई हैं। गङ्गा और यमुनाका यह मध्यभाग पृथ्वीका जघनस्थल कहा जाता है। राजसिंह! भूतल, अन्तरिक्ष और स्वर्गलोक—सभी जगहमें कुल मिलाकर साढ़े तीन करोड़ तीर्थ हैं, परंतु वे सभी प्रयागस्थित गङ्गाकी सोलहवीं कलाकी भी समता नहीं कर सकते—ऐसा वायुने कहा है। अतः गङ्गाकी ही प्रधानता मानी गयी है। प्रयागमें झूँसी है। यहाँ कम्बल और अश्वतर नामक दोनो नागोंका निवासस्थान है। यहाँ जो भोगवती तीर्थ है, वह प्रजापति ब्रह्माकी वेदी है। युधिष्ठिर! वहाँ शरीरधारी वेद एवं यज्ञ तथा तपोधन महर्षिगण ब्रह्माकी उपासना करते हैं। भारत! वहाँ देवगण तथा चक्रवर्ती सम्राट् यज्ञोंद्वारा यजन करते रहते हैं॥१—१०॥

प्रयागः सर्वतीर्थेभ्यः प्रभवत्यधिकं विभो। यत्र गङ्गा महाभागा स देशस्तत्तपोधनम्॥११॥
सिद्धक्षेत्रं च विज्ञेयं गङ्गातीरसमन्वितम्। इदं सत्यं विजानीयात् साधूनामात्मनश्च वै॥१२॥
सुहृदश्च जपेत् कर्णे शिष्यस्यानुगतस्य च। इदं धन्यमिदं स्वर्ग्यमिदं सत्यमिदं सुखम्॥१३॥
इदं पुण्यमिदं धर्मं पावनं धर्ममुत्तमम्। महर्षीणामिदं गुह्यं सर्वपापप्रणाशनम्॥१४॥
अधीत्य च द्विजोऽप्येतन्निर्मलः स्वर्गमाप्नुयात्। य इदं शृणुयान्नित्यं तीर्थं पुण्यं सदा शुचिः॥१५॥
जातिस्मरत्वं लभते नाकपृष्ठे च मोदते। प्राप्यन्ते तानि तीर्थानि सद्भिः शिष्टानुदर्शिभिः॥१६॥
स्नाहि तीर्थेषु कौरव्य न च वक्रमतिर्भव। त्वया च सम्यक् पृष्टेन कथितं वै मया विभो॥१७॥
पितरस्तारिताः सर्वे तथैव च पितामहाः। प्रयागस्य तु सर्वे ते कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥१८॥
एवं ज्ञानं च योगश्च तीर्थं चैव युधिष्ठिर।
बहुक्लेशेन युज्यन्ते तेन यान्ति परां गतिम्। त्रिकालं जायते ज्ञानं स्वर्गलोकं गमिष्यति॥१९॥

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रयागमाहात्म्ये दशाधिकशततमोऽध्यायः॥११०॥*

विभो! तीनो लोकोंमें प्रयागसे बढ़कर अन्य कोई तीर्थ नहीं है, सबसे अधिक प्रभावशालिनी महाभागा गङ्गा जहाँ वर्तमान हैं, वह देश तपोमय (श्रेष्ठ सत्त्वसे युक्त) है। इस गङ्गाके तटवर्ती क्षेत्रको सिद्धक्षेत्र जानना चाहिये। इस माहात्म्यको सत्य मानना चाहिये और साधुओं तथा अपने मित्रों एवं आज्ञाकारी शिष्योंके कानमें ही इसे बतलाना उचित है। यह प्रयाग-माहात्म्य धन्य, स्वर्गप्रद, सत्य, सुखदायक, पुण्यप्रद, धर्मसम्पन्न, परम पावन, श्रेष्ठ धर्मस्वरूप और समस्त पापोंका विनाशक है। यह महर्षियोंके लिये भी अत्यन्त गोपनीय है। इसका पाठकर द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) पापरहित हो स्वर्गको प्राप्त कर लेता है। जो मनुष्य पवित्रतापूर्वक इस अविनाशी एवं पुण्यप्रद तीर्थ-माहात्म्यको सदा सुनता है, उसे जातिस्मरत्व (जन्मान्तर-स्मरण) की प्राप्ति हो जाती है और वह स्वर्गलोकमें आनन्दका उपभोग करता है। कौरवकुलश्रेष्ठ युधिष्ठिर! शिष्ट पुरुषोंका अनुकरण करनेवाले सत्पुरुष ही इन तीर्थोंमें पहुँच पाते हैं, अतः तुम इन तीर्थोंमें स्नान करो, अश्रद्धा मत करो। सामर्थ्यशाली राजन्! तुम्हारे पूछनेपर ही मैंने सम्यक् रूपसे इसका वर्णन किया है। ऐसा प्रश्न कर तुमने अपने पितामह आदि सभी पितरोंका उद्धार कर दिया। (अन्य जितने तीर्थ हैं) वे सभी प्रयागकी सोलहवीं कलाकी बराबरी नहीं कर सकते। युधिष्ठिर! इस प्रकारके ज्ञान, योग और तीर्थकी प्राप्तिका संयोग बड़े कष्टसे मिलता है; क्योंकि उसके संयोगसे मनुष्यको परमगतिकी प्राप्ति हो जाती है, उसके हृदयमें तीनों कालोंका ज्ञान उत्पन्न हो जाता है और वह स्वर्गलोकको चला जाता है॥११—१९॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके प्रयाग-माहात्म्यमें एक सौ दसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥११०॥

# एक सौ ग्यारहवाँ अध्याय

## प्रयागमें ब्रह्मा, विष्णु और शिवके निवासका वर्णन

युधिष्ठिर उवाच

कथं सर्वमिदं प्रोक्तं प्रयागस्य महामुने। एतन्नः सर्वमाख्याहि यथा हि मम तारयेत्॥ १॥

युधिष्ठिरने पूछा—महामुने! आपने तो यह सारा महत्त्व प्रयागका ही बतलाया है, इसका क्या कारण है? यह सब मुझे बतलाइये, जिससे मेरा तथा मेरे कुटुम्बका उद्धार हो जाय॥ १॥

मार्कण्डेय उवाच

शृणु राजन् प्रयागे तु प्रोक्तं सर्वमिदं जगत्। ब्रह्मा विष्णुस्तथेशानो देवताः प्रभुरव्ययः॥ २॥
ब्रह्मा सृजति भूतानि स्थावरं जङ्गमं च यत्। तान्येतानि परं लोके विष्णुः संवर्धते प्रजाः॥ ३॥
कल्पान्ते तत् समग्रं हि रुद्रः संहरते जगत्। तदा प्रयागतीर्थं च न कदाचिद् विनश्यति॥ ४॥
ईश्वरं सर्वभूतानां यः पश्यति स पश्यति। यत्नेनानेन तिष्ठन्ति ते यान्ति परमां गतिम्॥ ५॥

मार्कण्डेयजीने कहा—राजन्! इसका कारण सुनो। प्रयागमें इस सारे जगत्का निवास बतलाया जाता है। यहाँ अविनाशी एवं सामर्थ्यशाली ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा सम्पूर्ण देवता वास करते हैं। ब्रह्मा जिन स्थावर-जङ्गमरूप प्राणियोंकी सृष्टि करते हैं, उन सभी प्रजाओंका इस लोकमें भगवान् विष्णु पालन करते हैं तथा कल्पान्तमें रुद्र इस सारे जगत्का संहार कर देते हैं, किंतु इस प्रयागतीर्थका कभी विनाश नहीं होता। सम्पूर्ण प्राणियोंका जो ईश्वर है, उसे जो देखता है, वही सचमुच देखनेवाला है। इस प्रयत्नसे जो लोग प्रयागमें निवास करते हैं, वे परमगतिको प्राप्त होते हैं॥ २—५॥

युधिष्ठिर उवाच

आख्याहि मे यथातथ्यं यथैषा तिष्ठति श्रुतिः। केन वा कारणेनैव तिष्ठन्ते लोकसत्तमाः॥ ६॥

युधिष्ठिरने पूछा—मुने! ये लोकश्रेष्ठ देवगण किस कारणवश प्रयागमें निवास करते हैं, इस विषयमें जैसा श्रुति-वचन हो, उसके अनुसार मुझे यथार्थरूपसे बतलाइये॥ ६॥

मार्कण्डेय उवाच

प्रयागे निवसन्त्येते ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः। कारणं तत् प्रवक्ष्यामि शृणु तत्त्वं युधिष्ठिर॥ ७॥
पञ्चयोजनविस्तीर्णं प्रयागस्य तु मण्डलम्। तिष्ठन्ति रक्षणायात्र पापकर्मनिवारणात्॥ ८॥
उत्तरेण प्रतिष्ठानाच्छद्मना ब्रह्म तिष्ठति। वेणीमाधवरूपी तु भगवांस्तत्र तिष्ठति॥ ९॥
महेश्वरो वटो भूत्वा तिष्ठते परमेश्वरः।
ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः। रक्षन्ति मण्डलं नित्यं पापकर्मनिवारणात्॥ १०॥
यस्मिञ्जुह्वन् स्वकं पापं नरकं च न पश्यति। एवं ब्रह्मा च विष्णुश्च प्रयागे समहेश्वरः॥ ११॥
सप्तद्वीपाः समुद्राश्च पर्वताश्च महीतले। रक्षमाणाश्च तिष्ठन्ति यावदाभूतसम्प्लवम्॥ १२॥
ये चान्ये बहवः सर्वे तिष्ठन्ति च युधिष्ठिर। पृथिवीं तत्समाश्रित्य निर्मिता दैवतैस्त्रिभिः॥ १३॥
प्रजापतेरिदं क्षेत्रं प्रयागमिति विश्रुतम्।
एतत् पुण्यं पवित्रं वै प्रयागं च युधिष्ठिर। स्वराज्यं कुरु राजेन्द्र भ्रातृभिः सहितोऽनघ॥ १४॥

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रयागमाहात्म्ये एकादशाधिकशततमोऽध्यायः॥ १११॥*

**मार्कण्डेयजीने कहा**—युधिष्ठिर ! ये ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर जिस प्रयोजनसे प्रयागमें निवास करते हैं, वह कारण बतला रहा हूँ; उसके तत्त्वको श्रवण करो। प्रयागका मण्डल पाँच योजन ( बीस मील ) में फैला हुआ है। यहाँ पापकर्मका निवारण तथा प्राणियोंकी रक्षा करनेके लिये उपर्युक्त देवगण निवास करते हैं। प्रतिष्ठानपुरसे उत्तरकी ओर गुप्तरूपसे ब्रह्माजी निवास करते हैं। भगवान् विष्णु प्रयागमें वेणीमाधवरूपसे विद्यमान हैं तथा परमेश्वर शिव अक्षयवटके रूपमें स्थित हैं। इनके अतिरिक्त गन्धर्वोंसहित देवगण, सिद्धसमूह तथा यूथ-के-यूथ परमर्षि पाप-कर्मसे निवारण करनेके निमित्त नित्य प्रयागमण्डलकी रक्षा करते हैं, जिस मण्डलमें अपने पापोंका हवन करके प्राणी नरकका दर्शन नहीं करता, इस प्रकार प्रयागमें ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, सातों द्वीप, सातों समुद्र और भूतलपर स्थित सभी पर्वत उसकी रक्षा करते हुए प्रलय-पर्यन्त स्थित रहते हैं। युधिष्ठिर ! इनके अतिरिक्त अन्य जो बहुत-से देवता पृथ्वीका आश्रय लेकर निवास करते हैं, उनके निवास-स्थानका निर्माण इन्हीं तीनो देवताओंद्वारा हुआ है। यह प्रयाग प्रजापति ब्रह्माका क्षेत्र है—ऐसी प्रसिद्धि है। युधिष्ठिर ! यह प्रयाग पुण्यप्रद एवं परम पवित्र है। निष्पाप राजेन्द्र ! तुम अपने भाइयोंके साथ अपना राज्य-कार्य सँभालो ॥ ७—१४ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके प्रयागमाहात्म्यमें एक सौ ग्यारहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥१११॥

---

# एक सौ बारहवाँ अध्याय

## भगवान् वासुदेवद्वारा प्रयागके माहात्म्यका वर्णन

नन्दिकेश्वर उवाच

भ्रातृभिः सहितः सर्वैर्द्रौपद्या सह भार्यया। ब्राह्मणेभ्यो नमस्कृत्य गुरून् देवानतर्पयत् ॥ १ ॥
वासुदेवोऽपि तत्रैव क्षणेनाभ्यागतस्तदा। पाण्डवैः सहितैः सर्वैः पूज्यमानस्तु माधवः ॥ २ ॥
कृष्णेन सहितैः सर्वैः पुनरेव महात्मभिः। अभिषिक्तः स्वराज्ये च धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ३ ॥
एतस्मिन्नन्तरे चैव मार्कण्डेयो महामुनिः। ततः स्वस्तीति चोक्त्वा तु क्षणादाश्रममागमत् ॥ ४ ॥
युधिष्ठिरोऽपि धर्मात्मा भ्रातृभिः सहितोऽवसत्। महादानं ततो दत्त्वा धर्मपुत्रो महामनाः ॥ ५ ॥
यस्त्विदं कल्य उत्थाय माहात्म्यं पठते नरः।
प्रयागं स्मरते नित्यं स याति परमं पदम्। मुच्यते सर्वपापेभ्यो रुद्रलोकं स गच्छति ॥ ६ ॥

**नन्दिकेश्वर बोले**—नारदजी ! तदनन्तर धर्मराज युधिष्ठिरने अपने सभी भाइयों तथा पत्नी द्रौपदीके साथ ब्राह्मणोंको नमस्कार कर देवताओं एवं अपने गुरुजनोंको तर्पणद्वारा तृप्त किया। भगवान् वासुदेव भी अकस्मात् उसी क्षण वहीं आ पहुँचे। तब सभी पाण्डवोंने मिलकर भगवान् श्रीकृष्णकी पूजा की। तत्पश्चात् सभी महात्माओंके साथ-साथ भगवान् श्रीकृष्णने धर्मपुत्र युधिष्ठिरको पुनः उनके राज्यपर अभिषिक्त कर दिया। इसी बीच महामुनि मार्कण्डेय 'स्वस्ति—तुम्हारा कल्याण हो'—यों कहकर क्षणमात्रमें अपने आश्रमको लौट गये। तदनन्तर महामना एवं धर्मात्मा धर्मपुत्र युधिष्ठिर भी बड़ा-बड़ा दान देकर भाइयोंके साथ वहाँ निवास करने लगे। जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर इस माहात्म्यका पाठ करता है तथा नित्य प्रयागका स्मरण करता है, वह परमपदको प्राप्त कर लेता है तथा समस्त पापोंसे मुक्त होकर रुद्रलोकको चला जाता है ॥ १—६ ॥

वासुदेव उवाच

मम वाक्यं च कर्तव्यं महाराज ब्रवीम्यहम् । नित्यं जपस्व जुहुस्व प्रयागे विगतज्वरः ॥ ७ ॥
प्रयागं स्मर वै नित्यं सहास्माभिर्युधिष्ठिर । स्वर्गं प्राप्स्यसि राजेन्द्र स्वर्गलोकं न संशयः ॥ ८ ॥
प्रयागमनुगच्छेद् वा वसते वापि यो नरः । सर्वपापविशुद्धात्मा रुद्रलोकं स गच्छति ॥ ९ ॥
प्रतिग्रहादुपावृत्तः संतुष्टो नियतः शुचिः । अहंकारनिवृत्तश्च स तीर्थफलमश्नुते ॥ १० ॥
अकोपनश्च सत्यश्च सत्यवादी दृढव्रतः । आत्मोपमश्च भूतेषु स तीर्थफलमश्नुते ॥ ११ ॥
ऋषिभिः क्रतवः प्रोक्ता देवैश्चापि यथाक्रमम् । न हि शक्या दरिद्रेण यज्ञाः प्राप्तुं महीपते ॥ १२ ॥
बहूपकरणा यज्ञा नानासम्भारविस्तराः । प्राप्यन्ते पार्थिवैरेतैः समृद्धैर्वा नरैः क्वचित् ॥ १३ ॥
यो दरिद्रैरपि विधिः शक्यः प्राप्तुं नरेश्वर । तुल्यो यज्ञफलैः पुण्यैस्तन्निबोध युधिष्ठिर ॥ १४ ॥
ऋषीणां परमं गुह्यमिदं भरतसत्तम । तीर्थानुगमनं पुण्यं यज्ञेभ्योऽपि विशिष्यते ॥ १५ ॥
दश तीर्थसहस्राणि तिस्रः कोट्यस्तथाऽऽपगाः । माघमासे गमिष्यन्ति गङ्गायां भरतर्षभ ॥ १६ ॥
स्वस्थो भव महाराज भुङ्क्ष्व राज्यमकण्टकम् । पुनर्द्रक्ष्यसि राजेन्द्र यजमानो विशेषतः ॥ १७ ॥

भगवान् वासुदेवने कहा—महाराज युधिष्ठिर ! मैं जैसा कह रहा हूँ, मेरे उस वचनका पालन कीजिये । आप प्रयागमें जाकर संतापरहित हो नित्य भगवन्नामका जप और हवन कीजिये तथा हमलोगोंके साथ नित्य प्रयागका स्मरण कीजिये । राजेन्द्र ! ऐसा करनेसे आप स्वयं स्वर्गलोकको प्राप्त कर लेंगे, इसमें तनिक भी संशय नहीं है । जो मनुष्य प्रयागकी यात्रा करता है अथवा वहाँ निवास करता है, उसका आत्मा समस्त पापोंसे विशुद्ध हो जाता है और वह रुद्रलोकको चला जाता है । जो प्रतिग्रह ( दान लेने ) से विमुख, संतुष्ट, जितेन्द्रिय, पवित्र और अहंकारसे दूर रहता है, उसे तीर्थफलकी प्राप्ति होती है । जो क्रोधरहित, ईमानदार, सत्यवादी, दृढव्रत और समस्त प्राणियोंके प्रति अपने समान ही व्यवहार करता है, वह तीर्थफलका भागी होता है । महीपते ! ऋषियों तथा देवताओंने क्रमशः जिन यज्ञोंका विधान बतलाया है, उन यज्ञोंका अनुष्ठान निर्धन मनुष्य नहीं कर सकता; क्योंकि उन यज्ञोंमें बहुत-से उपकरणों तथा नाना प्रकारकी सामग्रियोंकी आवश्यकता पड़ती है । इनका अनुष्ठान तो राजा अथवा कहीं-कहीं कुछ समृद्धिशाली मनुष्य ही कर सकते हैं । नरेश्वर युधिष्ठिर ! निर्धन मनुष्योंद्वारा भी जिस विधिका पालन किया जा सकता है और जो पुण्यमें यज्ञफलके समान है, उसे मैं बतला रहा हूँ, सुनो । भरतसत्तम ! यह पुण्यमयी तीर्थयात्रा ऋषियोंके लिये भी परम गोपनीय है तथा यज्ञोंसे भी बढ़कर फलदायक है । भरतर्षभ ! दस हजार तीर्थ तथा तीन करोड़ नदियाँ माघमासमें गङ्गामें आकर निवास करती हैं । महाराज ! आप स्वस्थ हो जायँ और निष्कण्टक राज्यका उपभोग करें । राजेन्द्र ! पुनः कभी विशेषरूपसे यज्ञ करते समय आप मुझे देख सकेंगे ॥ ७–१७ ॥

नन्दिकेश्वर उवाच

इत्युक्त्वा स महाभागो वासुदेवो महातपाः । युधिष्ठिरस्य नृपतेस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ १८ ॥
ततस्तत्र समाप्लाव्य गात्राणि सगणो नृपः । यथोक्तेनाथ विधिना परां निर्वृतिमागमत् ॥ १९ ॥
तथा त्वमपि देवर्षे प्रयागाभिमुखो भव । अभिषेकं तु कृत्वाद्य कृतकृत्यो भविष्यसि ॥ २० ॥

नन्दिकेश्वर बोले—नारदजी ! महान् भाग्यशाली एवं महान् तपस्वी वसुदेव-नन्दन श्रीकृष्ण महाराज युधिष्ठिरसे ऐसा कहकर वहीं अन्तर्हित हो गये । तदनन्तर महाराज युधिष्ठिरने सकुटुम्ब प्रयागमें जाकर यथोक्त विधिके अनुसार स्नान किया, जिससे उन्हें परम शान्ति प्राप्त हुई । देवर्षे ! इसलिये आप भी प्रयागकी ओर पधारिये और वहाँ स्नान कर आज ही कृतकृत्य हो जाइये ॥ १८–२० ॥

सूत उवाच

एवमुक्त्वाथ नन्दीशस्तत्रैवान्तरधीयत । नारदोऽपि जगामाशु प्रयागाभिमुखस्तथा ॥ २१ ॥
तत्र स्नात्वा च जप्त्वा च विधिदृष्टेन कर्मणा । दानं दत्त्वा द्विजाग्र्येभ्यो गतः स्वभवनं तदा ॥ २२ ॥

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रयागमाहात्म्यं नाम द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११२ ॥*

**सूतजी कहते हैं**—ऋषियो ! तदनन्तर नन्दिकेश्वर ऐसा कहकर वहीं अन्तर्हित हो गये तथा नारदजी भी शीघ्र ही प्रयागकी ओर चल दिये । वहाँ पहुँचकर उन्होंने शास्त्रोक्त विधिके अनुसार स्नान एवं जप आदि कार्य सम्पन्न किया । तत्पश्चात् श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको दान देकर वे अपने आश्रमकी ओर चले गये ॥ २१-२२ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें प्रयागमाहात्म्य नामक एक सौ बारहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ११२ ॥

## एक सौ तेरहवाँ अध्याय

### भूगोलका विस्तृत वर्णन

ऋषय ऊचुः

कति द्वीपाः समुद्रा वा पर्वता वा कति प्रभो । कियन्ति चैव वर्षाणि तेषु नद्यश्च काः स्मृताः ॥ १ ॥
महाभूमिप्रमाणं च लोकालोकस्तथैव च । पर्याप्तिः परिमाणं च गतिश्चन्द्रार्कयोस्तथा ॥ २ ॥
एतद् ब्रवीहि नः सर्वं विस्तरेण यथार्थवित् । त्वदुक्तमेतत् सकलं श्रोतुमिच्छामहे वयम् ॥ ३ ॥

**ऋषियोंने पूछा**—प्रभो ! इस भूतलपर कितने द्वीप हैं ? कितने समुद्र और पर्वत हैं ? कितने वर्ष ( पृथ्वीके खण्ड ) हैं ? उनमें कौन-कौन-सी नदियाँ बतलायी जाती हैं ? इस विस्तृत भूमिका प्रमाण कितना है ? लोकालोक पर्वत कैसा है ? तथा चन्द्रमा और सूर्यकी गति, अवस्थिति और परिमाण कितना है ? यह सब हमें विस्तारपूर्वक बतलाइये, क्योंकि आप यथार्थवेत्ता हैं । हमलोग यह सारा विषय आपके मुखसे सुनना चाहते है ॥ १—३ ॥

सूत उवाच

द्वीपभेदसहस्राणि सप्त चान्तर्गतानि च । न शक्यन्ते क्रमेणेह वक्तुं वै सकलं जगत् ॥ ४ ॥
सप्तैव तु प्रवक्ष्यामि चन्द्रादित्यग्रहैः सह । तेषां मनुष्यास्तर्केण प्रमाणानि प्रचक्षते ॥ ५ ॥
अचिन्त्याः खलु ये भावास्तांस्तु तर्केण साधयेत् । प्रकृतिभ्यः परं यत्तु तदचिन्त्यस्य लक्षणम् ॥ ६ ॥
सप्त वर्षाणि वक्ष्यामि जम्बूद्वीपं यथाविधम् । विस्तरं मण्डलं यच्च योजनैस्तन्निबोधत ॥ ७ ॥
योजनानां सहस्राणि शतं द्वीपस्य विस्तरः । नानाजनपदाकीर्णं पुरैश्च विविधैः शुभैः ॥ ८ ॥
सिद्धचारणसंकीर्णं पर्वतैरुपशोभितम् । सर्वधातुपिनद्धैस्तैः शिलाजालसमुद्गतैः ॥ ९ ॥
पर्वतप्रभवाभिश्च नदीभिस्तु समंततः । प्रागायता महापार्श्वाः षडिमे वर्षपर्वताः ॥ १० ॥
अवगाह्य ह्युभयतः समुद्रौ पूर्वपश्चिमौ । हिमप्रायश्च हिमवान् हेमकूटश्च हेमवान् ॥ ११ ॥
सर्वतः सुमुखश्चापि निषधः पर्वतो महान् ।

**सूतजी कहते हैं**—ऋषियो ! द्वीपोंके तो हजारों भेद हैं, परंतु वे सभी इन्हीं सात प्रधान द्वीपोंके अन्तर्गत हैं । इस सम्पूर्ण जगत्का क्रमशः वर्णन करना सम्भव नहीं है, अतः चन्द्रमा, सूर्य आदि ग्रहोंके साथ उन सात द्वीपोंका ही वर्णन कर रहा हूँ । साथ ही मनुष्यके अनुमानानुसार उनका प्रमाण भी बतला रहा हूँ, क्योंकि जो अचिन्त्य भाव हैं, उन्हे बुद्धि, ज्ञान एवं अनुमानद्वारा ही सिद्ध करनेकी चेष्टा नहीं करनी चाहिये* । जो प्रकृतिसे परे है,

* महाभारत ६ । ६ । १२ आदिका पाठ-अर्थ कुछ भिन्न होनेपर भी यहाँ वही पाठ एवं अर्थ युक्तियुक्त है ।

वही अचिन्त्यका लक्षण है। अब मैं सातों वर्षोंका वर्णन प्रारम्भ कर रहा हूँ। इनमें सर्वप्रथम योजनके परिमाणसे जम्बूद्वीपका जितना बड़ा विस्तृत मण्डल है, उसे बतला रहा हूँ, सुनिये। जम्बूद्वीपका विस्तार एक लाख योजन है। यह अनेकों प्रकारके सुन्दर देशों एवं नगरोंसे परिपूर्ण है। इसमें सिद्ध और चारण निवास करते हैं। यह सभी प्रकारकी धातुओंसे संयुक्त एवं शिलासमूहोंसे समन्वित पर्वतोंद्वारा सुशोभित है; उन पर्वतोंसे निकलनेवाली नदियोंसे यह चारों ओरसे व्याप्त है। इसमें पूर्वसे पश्चिमतक फैले हुए अत्यन्त विस्तृत छः वर्षपर्वत हैं। इसमें पूर्व और पश्चिम—दोनों ओरके समुद्रोंतक फैला हुआ हिमवान् नामक पर्वत है, जो सदा बर्फसे ढका रहता है। इसके बाद सुवर्णसे व्याप्त हेमकूट नामक पर्वत है। तत्पश्चात् जो चारों ओरसे देखनेमें अत्यन्त सुन्दर है, वह निषध नामक महान् पर्वत है ॥ ४—११½ ॥

चातुर्वर्ण्यस्तु सौवर्णो मेरुश्चोल्बमयः स्मृतः। चतुर्विंशत्सहस्राणि विस्तीर्णं च चतुर्दिशम् ॥ १२ ॥
वृत्ताकृतिप्रमाणश्च चतुरस्रः समाहितः। नानावर्णैः समः पार्श्वैः प्रजापतिगुणान्वितः ॥ १३ ॥
नाभीबन्धनसम्भूतो ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः। पूर्वतः श्वेतवर्णस्तु ब्राह्मण्यं तस्य तेन वै ॥ १४ ॥
पीतश्च दक्षिणेनासौ तेन वैश्यत्वमिष्यते।
भृङ्गिपत्रनिभश्चैव पश्चिमेन समन्वितः। तेनास्य शूद्रता सिद्धा मेरोर्नामार्थकर्मतः ॥ १५ ॥
पार्श्वमुत्तरतस्तस्य रक्तवर्णं स्वभावतः। तेनास्य क्षत्रभावः स्यादिति वर्णाः प्रकीर्तिताः ॥ १६ ॥
नीलश्च वैदूर्यमयः श्वेतः पीतो हिरण्मयः। मयूरबर्हवर्णश्च शातकौम्भः स शृङ्गवान् ॥ १७ ॥
एते पर्वतराजानः सिद्धचारणसेविताः। तेषामन्तरविष्कम्भो नवसाहस्रमुच्यते ॥ १८ ॥

इसके एक ओर सुवर्णमय मेरुपर्वत है, जिसके चारों पार्श्वभाग चार रंगोंके हैं और जो उल्बमय ( गर्भाशयके समान ) कहा जाता है। यह चारों दिशाओंमें चौबीस हजार योजनोंतक फैला हुआ है। इसका ऊपरी भाग वृत्तकी आकृतिका अर्थात् गोलाकार है तथा निचला भाग चौकोर है। इसके पार्श्वभाग नाना प्रकारकी रंग-बिरंगी समतल भूमियोंसे युक्त हैं, जिससे प्रजापतिके गुणोंसे युक्त-सा दीखता है। यह अव्यक्तजन्मा ब्रह्माके नाभि-बन्धनसे उद्भूत हुआ है। इसका पूर्वी भाग श्वेत रंगका है, इसीसे इसकी ब्राह्मणता झलकती है। इसका दक्षिणी भाग पीले रंगका है, इसीसे इसमें वैश्यत्वकी प्रतीति होती है। इसका पश्चिमी भाग भँवरेके पंख-सरीखा काला है, इसीसे इसकी शूद्रता तथा अर्थ और काम—दोनों दृष्टियोंसे मेरुके नामकी सार्थकता सिद्ध होती है। इसका उत्तरी भाग स्वभावसे ही लाल रंगका है, इसीसे इसका क्षत्रियत्व सूचित होता है। इस प्रकार मेरुके चारों रंगोंका विवरण बतलाया गया है। तदनन्तर नील पर्वत है, जो वैदूर्यमणिसे व्याप्त है। पुनः श्वेत पर्वत है, जो सुवर्णमय होनेके कारण पीले रंगका है तथा सुवर्णमय शिखरोंसे सुशोभित शृङ्गवान् पर्वत है, जो मयूर-पिच्छ-सरीखे चित्र-विचित्र रंगोंवाला है। ये सभी पर्वतराज सदा सिद्धों एवं चारणोंसे सेवित होते रहते हैं। उनका भीतरी व्यास नौ हजार योजन बतलाया जाता है। ॥ १२—१८ ॥

मध्ये त्विलावृतं नाम महामेरोः समंततः। चतुर्विंशत्सहस्राणि विस्तीर्णो योजनैः समः ॥ १९ ॥
मध्ये तस्य महामेरुर्विधूम इव पावकः। वेद्यर्धं दक्षिणं मेरोरुत्तरार्धं तथोत्तरम् ॥ २० ॥
वर्षाणि यानि सप्तात्र तेषां वै वर्षपर्वताः। द्वे द्वे सहस्रे विस्तीर्णा योजनैर्दक्षिणोत्तरम् ॥ २१ ॥
जम्बूद्वीपस्य विस्तारस्तेषामायाम उच्यते। नीलश्च निषधश्चैव तेषां हीनाश्च ये परे ॥ २२ ॥

श्वेतश्च हेमकूटश्च हिमवाञ्छृङ्गवांश्च यः। जम्बूद्वीपप्रमाणेन ऋषभः परिकीर्त्यते ॥ २३ ॥
तस्माद् द्वादशभागेन हेमकूटोऽपि हीयते।
हिमवान् विंशभागेन तस्मादेव प्रहीयते। अष्टाशीतिसहस्राणि हेमकूटो महागिरिः ॥ २४ ॥
अशीतिर्हिमवाञ्शैल आयतः पूर्वपश्चिमे। द्वीपस्य मण्डलीभावाद् ह्रासवृद्धी प्रकीर्तिते ॥ २५ ॥
वर्षाणां पर्वतानां च यथाभेदं तथोत्तरम्। तेषां मध्ये जनपदास्तानि वर्षाणि सप्त वै ॥ २६ ॥
प्रपातविषमैस्तैस्तु पर्वतैरावृतानि तु। सप्त तानि नदीभेदैरगम्यानि परस्परम् ॥ २७ ॥
वसन्ति तेषु सत्त्वानि नानाजातीनि सर्वशः। इदं हैमवतं वर्षं भारतं नाम विश्रुतम् ॥ २८ ॥

पृथ्वीके मध्य भागमें इलावृत नामक वर्ष है, जो महामेरु पर्वतके चारों ओर फैला हुआ है। यह चौबीस हजार योजनकी समतल भूमिमें विस्तृत है। इसके मध्य भागमें महामेरु नामक पर्वत है, जो धूमरहित अग्निके समान चमकता रहता है। मेरु पर्वतका आधा दक्षिणी भाग दक्षिण मेरु और आधा उत्तरी भाग उत्तरमेरुके नामसे प्रसिद्ध है। इस प्रकार जो सात वर्ष बतलाये गये हैं, उनमें पृथक्-पृथक् सात वर्षपर्वत हैं, जो दक्षिणसे उत्तरतक दो-दो हजार योजनके परिमाणमें फैले हुए हैं। जम्बूद्वीपका विस्तार इन्हीं वर्षों तथा पर्वतोंके विस्तारके बराबर कहा जाता है। इनमें नील और निषध—ये दोनों विशाल पर्वत हैं तथा श्वेत, हेमकूट, हिमवान् और शृङ्गवान्—ये अपेक्षाकृत उनसे छोटे हैं। ऋषभ पर्वत जम्बूद्वीपके समान ही विस्तारवाला बतलाया जाता है। हेमकूट पर्वत ऋषभ पर्वतके बारहवें भागसे न्यून है और हिमवान् उसके बीसवें अंशसे कम है। हेमकूट नामक महान् पर्वत अठासी हजार योजनके परिमाणवाला कहा जाता है तथा हिमवान् पर्वत पूर्वसे पश्चिमतक अस्सी हजार योजनमें फैला हुआ है। जम्बूद्वीपके मण्डलाकारमें स्थित होनेके कारण इन पर्वतोंका न्यूनाधिक्य बतलाया गया है। पर्वतोकी ही भाँति वर्षोंमें भी भिन्नता है। वे सभी एक-दूसरेसे उत्तर दिशाकी ओर फैले हुए हैं। इनके बीचमें देश बसे हुए हैं, जो सात वर्षोंमें विभक्त हैं। ये सभी वर्ष ऐसे पर्वतोंसे घिरे हुए हैं, जो झरनोंके कारण अगम्य हैं। इसी प्रकार सात नदियोंके विभाजनसे ये परस्पर गमनागमनरहित हैं। इन वर्षोंमें सब ओर अनेकों जातियोके प्राणी निवास करते हैं। यह हिमवान् पर्वतसे सम्बन्धित वर्ष भारतवर्षके नामसे विख्यात है ॥ १९—२८ ॥

हेमकूटं परं तस्मान्नाम्ना किम्पुरुषं स्मृतम्। हेमकूटाच्च निषधं हरिवर्षं तदुच्यते ॥ २९ ॥
हरिवर्षात् परं चापि मेरोस्तु तदिलावृतम्। इलावृतात्परं नीलं रम्यकं नाम विश्रुतम् ॥ ३० ॥
रम्यकादपरं श्वेतं विश्रुतं तद्धिरण्यकम्। हिरण्यकात् परं चैव शृङ्गशाकं कुरुं स्मृतम् ॥ ३१ ॥
धनुःसंस्थे तु विज्ञेये द्वे वर्षे दक्षिणोत्तरे। दीर्घाणि तस्य चत्वारि मध्यमं तदिलावृतम् ॥ ३२ ॥
पूर्वतो निषधस्येदं वेद्यर्धं दक्षिणं स्मृतम्। परं त्विलावृतं पश्चाद् वेद्यर्धं तू तदुत्तरम् ॥ ३३ ॥
तयोर्मध्ये तु विज्ञेयो मेरुर्यत्र त्विलावृतम्। दक्षिणेन तु नीलस्य निषधस्योत्तरेण तु ॥ ३४ ॥
उदगायतो महाशैलो माल्यवान् नाम पर्वतः। द्वात्रिंशता सहस्रेण प्रतीच्यां सागरानुगः ॥ ३५ ॥
माल्यवान् वै सहस्रैक आनीलनिषधायतः। द्वात्रिंशत् त्वेवमप्युक्तः पर्वतो गन्धमादनः ॥ ३६ ॥
परिमण्डलयोर्मध्ये मेरुः कनकपर्वतः। चातुर्वर्ण्यसमो वर्णैश्चतुरस्रः समुच्छ्रितः ॥ ३७ ॥

हिमवान्के बाद हेमकूटतकका प्रदेश किम्पुरुष नामसे कहा जाता है तथा हेमकूटसे आगे निषध पर्वततक हरिवर्ष कहलाता है। हरिवर्षके बाद मेरुपर्वत-तकका प्रदेश इलावृतवर्षके नामसे तथा इलावृतके बाद नीलपर्वततकका प्रदेश रम्यकवर्षके नामसे विख्यात है। रम्यकवर्षके बाद श्वेतपर्वततकका जो

प्रदेश है, वह हिरण्यक-वर्षके नामसे प्रसिद्ध है। हिरण्यकवर्षके बाद शृङ्गशाक नामक वर्ष है, जिसे कुरुवर्ष भी कहते हैं। मेरुपर्वतके दक्षिण और उत्तर दिशामें धनुषके आकारमें दो वर्ष स्थित हैं। उन्हींके मध्यमें इलावृतवर्ष है। निषध पर्वतके पूर्व दिशामें मेरुकी वेदीका अर्धभाग दक्षिणवेदी और इलावृतसे पश्चिमकी ओर वेदीका आधा भाग उत्तरवेदीके नामसे विख्यात है। इन्हीं दोनोंके बीचमें मेरुकी स्थिति समझनी चाहिये, जहाँ इलावृतवर्ष अवस्थित है। नील पर्वतके दक्षिण और निषध पर्वतके उत्तर माल्यवान् नामक पर्वत है, जिसकी गणना विशाल पर्वतोंमें है। यह उत्तरसे दक्षिणकी ओर लम्बा है। यह पश्चिम दिशामें सागर-पर्यन्त बत्तीस हजार योजनमें फैला हुआ है। इस प्रकार माल्यवान् पर्वत नील और निषध पर्वतोंके बीचमें एक हजार योजनके विस्तारमें स्थित है। इसी तरह गन्ध-मादन पर्वत भी बत्तीस हजार योजन विस्तृत बतलाया गया है। इन दोनोंके मण्डलके मध्यमें मेरु नामक स्वर्णमय पर्वत है। यह चार प्रकारके रंगोंसे युक्त, चौकोर और अत्यन्त ऊँचा है॥ २९—३७॥

नानावर्णः स पार्श्वेषु पूर्वान्ते श्वेत उच्यते।
पीतं तु दक्षिणं तस्य भृङ्गिपत्रनिभं परम्। उत्तरं तस्य रक्तं वै इति वर्णसमन्वितः॥ ३८॥
मेरुस्तु शुशुभे दिव्यो राजवत् स तु वेष्टितः। आदित्यतरुणाभासो विधूम इव पावकः॥ ३९॥
योजनानां सहस्राणि चतुराशीति सूच्छ्रितः। प्रविष्टः षोडशाधस्ताद्ष्टाविंशतिविस्तृतः॥ ४०॥
विस्तराद् द्विगुणश्चास्य परीणाहः समंततः। स पर्वतो महादिव्यो दिव्यौषधिसमन्वितः॥ ४१॥
भुवनैरावृतः सर्वैर्जातरूपपरिष्कृतैः।
तत्र देवगणाश्चैव गन्धर्वासुरराक्षसाः। शैलराजे प्रमोदन्ते सर्वतोऽप्सरसां गणैः॥ ४२॥
स तु मेरुः परिवृतो भुवनैर्भूतभावनैः। यस्येमे चतुरो देशा नानापार्श्वेषु संस्थिताः॥ ४३॥
भद्राश्वं भारतं चैव केतुमालं च पश्चिमे। उत्तराश्चैव कुरवः कृतपुण्यप्रतिश्रयाः॥ ४४॥
विष्कम्भपर्वतास्तद्वन्मन्दरो गन्धमादनः। विपुलश्च सुपार्श्वश्च सर्वरत्नविभूषिताः॥ ४५॥
अरुणोदं मानसं च सितोदं भद्रसंज्ञितम्। तेषामुपरि चत्वारि सरांसि च वनानि च॥ ४६॥
तथा भद्रकदम्बस्तु पर्वते गन्धमादने। जम्बूवृक्षस्तथाश्वत्थो विपुलेऽथ वटः परम्॥ ४७॥

उसके पार्श्वभाग अनेक प्रकारके रंगोंसे विभूषित हैं। इसका पूर्वीय भाग श्वेत, दक्षिणी भाग पीला, पश्चिमका भाग भ्रमरके पंखके समान काला और उत्तरी हिस्सा लाल है। इस प्रकार यह चार रंगोंसे युक्त कहा जाता है। इस तरह चारो ओरसे पर्वतोंसे घिरा हुआ दिव्य पर्वत मेरु राजाकी भाँति सुशोभित होता है। इसकी कान्ति तरुण सूर्य अर्थात् मध्याह्नकालिक सूर्यकी-सी है। यह धूमरहित अग्निके सदृश चमकता रहता है। पृथ्वीके ऊपर इसकी ऊँचाई चौरासी हजार योजन है। यह सोलह हजार योजन-तक पृथ्वीके नीचे धँसा हुआ है और अट्ठाईस हजार योजनतक फैला हुआ है। चारों ओरसे इसका फैलाव विस्तारसे दुगुना है। यह महान् दिव्य पर्वत मेरु दिव्य ओषधियोंसे परिपूर्ण तथा सभी सुवर्णमय भुवनोंसे घिरा हुआ है। इस पर्वतराजपर देवगण, गन्धर्व, असुर और राक्षस सर्वत्र अप्सराओंके साथ रहकर आनन्दका अनुभव करते हैं। यह मेरु प्राणियोंके निमित्त-कारण-भूत भुवनोंसे घिरा हुआ है। इसके विभिन्न पार्श्वभागोंमें चार देश अवस्थित हैं। उनके नाम हैं—( पूर्वमें ) भद्राश्व, ( दक्षिणमें ) भारत, ( पश्चिममें ) केतुमाल और ( उत्तरमें ) किये हुए पुण्योंके आश्रयस्थानरूप उत्तरकुरु। इसी प्रकार उसके चारों दिशाओंमें सभी प्रकारके रत्नोंसे विभूषित मन्दर, गन्धमादन, विपुल और सुपार्श्व नामक विष्कम्भ पर्वत भी विद्यमान हैं। उनके ऊपर अरुणोद,

मानस, सितोद और भद्र नामक सरोवर और अनेकों वन हैं तथा मन्दर पर्वतपर भद्रकदम्ब, गन्धमादनपर जामुन, विपुलपर पीपल और सुपार्श्वपर वरगदका वृक्ष है ॥ ३८—४७ ॥

गन्धमादनपार्श्वे तु पश्चिमेऽमरगण्डिकः। द्वात्रिंशतिसहस्राणि योजनैः सर्वतः समः ॥ ४८ ॥
तत्र ते शुभकर्माणः केतुमालाः परिश्रुताः। तत्र कालानलाः सर्वे महासत्त्वा महाबलाः ॥ ४९ ॥
स्त्रियश्चोत्पलवर्णाभाः सुन्दर्यः प्रियदर्शनाः। तत्र दिव्यो महावृक्षः पनसः पत्रभासुरः ॥ ५० ॥
तस्य पीत्वा फलरसं संजीवन्ति समायुतम्।
तस्य माल्यवतः पार्श्वे पूर्वे पूर्वा तु गण्डिका। द्वात्रिंशच्च सहस्राणि तत्रापि शतमुच्यते ॥ ५१ ॥
भद्राश्वस्तत्र विज्ञेयो नित्यं मुदितमानसः। भद्रमालवनं तत्र कालाम्रश्च महाद्रुमः ॥ ५२ ॥
तत्र ते पुरुषाः श्वेता महासत्त्वा महाबलाः। स्त्रियः कुमुदवर्णाभाः सुन्दर्यः प्रियदर्शनाः ॥ ५३ ॥
चन्द्रप्रभाश्चन्द्रवर्णाः पूर्णचन्द्रनिभाननाः। चन्द्रशीतलगात्राश्च स्त्रियो ह्युत्पलगन्धिकाः ॥ ५४ ॥
दशवर्षसहस्राणि आयुस्तेषामनामयम्। कालाम्रस्य रसं पीत्वा ते सर्वे स्थिरयौवनाः ॥ ५५ ॥

गन्धमादनके पश्चिम भागमें अमरगण्डिक नामक पर्वत है, जो सब ओरसे बत्तीस हजार योजनकी समतल भूमिसे सम्पन्न है। वहाँके शुभ कर्म करनेवाले निवासी केतुमाल नामसे विख्यात हैं। वे सभी कालाग्निके समान भयानक, महान् सत्त्वसम्पन्न एवं महाबली होते हैं। वहाँकी स्त्रियोंके शरीरका रंग लाल कमलके समान होता है। वे परम सुन्दरी एवं देखनेमें आह्लादकारिणी होती हैं। उसपर कटहलका एक महान् दिव्य वृक्ष है, जिसके पत्ते अत्यन्त चमकीले हैं। उसके फलोंका रस पीकर वहाँके निवासी दस हजार वर्षोंतक जीवित रहते हैं। माल्यवान्‌के पूर्वी भागमें पूर्वगण्डिका नामक पर्वत है, जो बत्तीस हजार योजन लम्बा और सौ योजन चौड़ा कहा जाता है। उसकी तलहटीमें भद्राश्व नामक देश है, जहाँके निवासी सदा प्रसन्न-मन रहते हैं। वहाँ भद्रमाल नामक वन है, जिसमें कालाम्र नामक एक महान् वृक्ष है। वहाँके निवासी पुरुष गोरे, महान् सत्त्वसम्पन्न एवं महाबली होते हैं तथा कुछ स्त्रियाँ कुमुदिनीकी-सी कान्तिवाली, परम सुन्दरी एवं देखनेमें प्रिय लगनेवाली होती हैं। इसी प्रकार कुछ स्त्रियाँ गौर वर्णवाली होती हैं, उनकी कान्ति चन्द्रमा-सरीखी उज्ज्वल होती है और उनका मुख पूर्णिमाके चन्द्रमाके समान चमकदार होता है। उनका शरीर भी चन्द्रमाके समान शीतल होता है और उससे कमलकी-सी गन्ध निकलती है। कालाम्र वृक्षके फलोंका रस पान कर वहाँके सभी निवासियोंकी युवावस्था स्थिर बनी रहती है और वे नीरोग रहकर दस हजार वर्षोंतक जीवित रहते हैं ॥ ४८—५५ ॥

सूत उवाच

इत्युक्तवानृषीन् ब्रह्मा वर्षाणि च निसर्गतः। पूर्वं ममानुग्रहकृद् भूयः किं वर्णयामि वः ॥ ५६ ॥
एतच्छ्रुत्वा वचस्ते तु ऋषयः संशितव्रताः। जातकौतूहलाः सर्वे प्रत्यूचुस्ते मुदान्विताः ॥ ५७ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! पूर्वकालमें ब्रह्माने स्वभावतः मुझपर कृपा कर जिन वर्षोंका वर्णन किया था, उनका विवरण मैं आपलोगोंको बतला चुका। अब पुनः आपलोगोंसे किसका वर्णन करूँ? सूतजीकी यह बात सुनकर वे सभी व्रतनिष्ठ ऋषि विस्मयविमुग्ध हो गये। तत्पश्चात् वे प्रसन्नतापूर्वक बोले ॥ ५६-५७ ॥

ऋषय ऊचुः

पूर्वापरौ समाख्यातौ यौ देशौ तौ त्वया मुने। उत्तराणां च वर्षाणां पर्वतानां च सर्वशः ॥ ५८ ॥
आख्याहि नो यथातथ्यं ये च पर्वतवासिनः। एवमुक्तस्तु ऋषिभिस्तेभ्यस्त्वाख्यातवान् पुनः ॥ ५९ ॥

ऋषियोंने पूछा—मुने! पूर्व और पश्चिम दिशामें स्थित जो देश हैं; उनके विषयमें तो आप हमलोगोंको बतला चुके। अब उत्तर दिशामें स्थित वर्षों और पर्वतोंका वर्णन कीजिये। साथ ही उन पर्वतोंपर निवास करनेवाले लोगोंका चरित्र भी यथार्थ-रूपसे बतलाइये। ऋषियोंद्वारा इस प्रकार कहे जानेपर सूतजीने पुनः उनसे वर्णन करना आरम्भ किया॥ ५८-५९॥

सूत उवाच

शृणुध्वं यानि वर्षाणि पूर्वोक्तानि च वै मया। दक्षिणेन तु नीलस्य निषधस्योत्तरेण तु॥ ६०॥
वर्षं रमणकं नाम जायन्ते यत्र वै प्रजाः।
रतिप्रधाना विमला जायन्ते यत्र मानवाः। शुक्लाभिजनसम्पन्नाः सर्वे ते प्रियदर्शनाः॥ ६१॥
तत्रापि च महावृक्षो न्यग्रोधो रोहिणो महान्। तस्यापि ते फलरसं पिबन्तो वर्तयन्ति हि॥ ६२॥
दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च। जीवन्ति ते महाभागाः सदा हृष्टा नरोत्तमाः॥ ६३॥
उत्तरेण तु श्वेतस्य पार्श्वे शृङ्गस्य दक्षिणे। वर्षं हिरण्वतं नाम यत्र हैरण्वती नदी॥ ६४॥
महाबला महासत्त्वा नित्यं मुदितमानसाः। शुक्लाभिजनसम्पन्नाः सर्वे च प्रियदर्शनाः॥ ६५॥
एकादश सहस्राणि वर्षाणां ते नरोत्तमाः। आयुष्प्रमाणं जीवन्ति शतानि दश पञ्च च॥ ६६॥
तस्मिन् वर्षे महावृक्षो लकुचः पत्रसंश्रयः। तस्य पीत्वा फलरसं तत्र जीवन्ति मानवाः॥ ६७॥
शृङ्गसाह्वस्य शृङ्गाणि त्रीणि तानि महान्ति वै।
एकं मणियुतं तत्र एकं तु कनकान्वितम्। सर्वरत्नमयं चैकं भुवनैरुपशोभितम्॥ ६८॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! पहले मैं आपलोगोंसे जिन वर्षोंके विषयमें वर्णन कर चुका हूँ, ( उनके अतिरिक्त अन्य वर्षोंका वर्णन ) सुनिये। नीलपर्वतसे दक्षिण और निषध पर्वतसे उत्तर दिशामें रमणक नामक वर्ष है, जहाँकी प्रजाएँ विशेष विलासिनी एवं स्वच्छ गौर-वर्णवाली होती है। वहाँ उत्पन्न हुए सारे मानव गौर-वर्ण, कुलीन और देखनेमें प्रिय लगनेवाले होते हैं। वहाँ भी रोहिण नामक एक महान् बरगदका वृक्ष है, उसीके फलोंका रस पान करके वहाँके निवासी जीवन-निर्वाह करते हैं। वे सभी महान् भाग्यशाली श्रेष्ठ पुरुष सदा प्रसन्न रहते हुए ग्यारह हजार वर्षोंतक जीवित रहते हैं। श्वेत पर्वतके उत्तर और शृङ्गवान् पर्वतके दक्षिण पार्श्वमें हिरण्वत नामक वर्ष है, जहाँ हैरण्वती नामकी नदी प्रवाहित होती है। वहाँके निवासी श्रेष्ठ मानव, महाबली, महापराक्रमी, नित्य प्रसन्नचित्त, गौरवर्ण, कुलीन और देखनेमें मनोरम होते हैं। वे बारह हजार पाँच सौ वर्षोंकी आयुतक जीवित रहते हैं। उस वर्षमें पत्तोंसे आच्छादित लकुच ( बड़हर ) का एक महान् वृक्ष है, उसके फलोंका रस पीकर वहाँके मानव जीवन-यापन करते हैं। शृङ्गवान् पर्वतके तीन शिखर हैं, जो बड़े ऊँचे-ऊँचे हैं। उनमेंसे एक मणिसे परिपूर्ण, एक सुवर्णसे सम्पन्न और एक सर्वरत्नमय एवं भुवनोंसे सुशोभित है॥ ६०—६८॥

उत्तरे चास्य शृङ्गस्य समुद्रान्ते च दक्षिणे। कुरवस्तत्र तद्वर्षं पुण्यं सिद्धनिषेवितम्॥ ६९॥
तत्र वृक्षा मधुफला दिव्यामृतमयाऽऽपगाः। वस्त्राणि ते प्रसूयन्ते फलैश्चाभरणानि च॥ ७०॥
सर्वकामप्रदातारः केचिद् वृक्षा मनोरमाः।
अपरे क्षीरिणो नाम वृक्षास्तत्र मनोरमाः। ये क्षरन्ति सदा क्षीरं षड्रसं चामृतोपमम्॥ ७१॥
सर्वा मणिमयी भूमिः सूक्ष्मा काञ्चनवालुका। सर्वत्र सुखसंस्पर्शा निःशब्दाः पवनाः शुभाः॥ ७२॥
देवलोकच्युतास्तत्र जायन्ते मानवाः शुभाः। शुक्लाभिजनसम्पन्नाः सर्वे ते स्थिरयौवनाः॥ ७३॥
मिथुनानि प्रजायन्ते स्त्रियश्चाप्सरसोपमाः। तेषां ते क्षीरिणां क्षीरं पिबन्ति ह्यमृतोपमम्॥ ७४॥

**एकाहाज्जायते युग्मं समं चैव विवर्धते। समं रूपं च शीलं च समं चैव म्रियन्ति वै ॥ ७५ ॥**
**एकैकमनुरक्ताश्च चक्रवाकमिव ध्रुवम्। अनामया ह्यशोकाश्च नित्यं मुदितमानसाः ॥ ७६ ॥**
**दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च। जीवन्ति च महासत्त्वा न चान्या स्त्री प्रवर्तते ॥ ७७ ॥**

इस श्रृङ्गवान् पर्वतके उत्तर और दक्षिण समुद्र-तटतक उत्तरकुरु नामक वर्ष है, जो परम पुण्यप्रद एवं सिद्धोंद्वारा सुसेवित है। वहाँ नदियोंमें दिव्य अमृत-तुल्य जल प्रवाहित होता है। वृक्ष मधु-सदृश मीठे फलवाले होते हैं और उन्हींसे वस्त्र, फल और आभूषणोंकी उत्पत्ति होती है। उनमेंसे कुछ वृक्ष तो अत्यन्त सुन्दर और सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करने-वाले हैं तथा दूसरे कुछ ऐसे मनोहर वृक्ष हैं, जिनसे दूध निकलता है। वे सदा दूध और अमृत-तुल्य सुस्वादु छहों रसोंकी रक्षा करते हैं। वहाँकी सारी भूमि मणिमयी है, जिसपर सुवर्णकी महीन बालुका बिखरी रहती है। चारों ओर सुखस्पर्शवाली शब्दरहित शीतल-मंद-सुगन्ध वायु बहती रहती है। वहाँ देवलोकसे च्युत हुए धर्मात्मा मानव ही जन्म धारण करते हैं। वे सभी गौरवर्ण, कुलीन और स्थिर जवानीसे युक्त होते हैं। वे जोड़ेके रूपमें उत्पन्न होते हैं, उनमें स्त्रियाँ अप्सराओंकी भाँति सुन्दरी होती हैं। वे उन दूधसे भरे हुए वृक्षोंके अमृत-तुल्य दूधका पान करते हैं। वे प्राणी एक ही दिन जोड़ेके रूपमें उत्पन्न होते हैं, साथ-ही-साथ बढ़ते हैं, उनका रूप तथा शील-स्वभाव एक-सा होता है और वे एक साथ ही प्राण-त्याग भी करते हैं। वे चक्रवाककी तरह निश्चितरूपसे परस्पर अनुरक्त, नीरोग, शोकरहित और सदा प्रसन्नचित्त रहते हैं। वे महापराक्रमी मानव ग्यारह हजार वर्षोंतक जीवित रहते हैं। वहाँ कोई पुरुष दूसरा विवाह नहीं करता ॥ ६९—७७ ॥

सूत उवाच

**एवमेव निसर्गो वै वर्षाणां भारते युगे। दृष्टः परमधर्मज्ञाः किं भूयः कथयामि वः ॥ ७८ ॥**
**आख्यातास्त्वेवमृषयः सूतपुत्रेण धीमता। उत्तरश्रवणे भूयः पप्रच्छुः सूतनन्दनम् ॥ ७९ ॥**

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे द्वीपादिवर्णनं नाम त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११३ ॥*

**सूतजी कहते हैं**—परम धर्मज्ञ ऋषियो! इस प्रकार मैंने भारतीय युगमें वर्षोंकी सृष्टि देखी है ( जिसका वर्णन कर दिया ), अब पुनः आपलोगोंको क्या बतलाऊँ। बुद्धिमान् सूतपुत्रद्वारा इस प्रकार कहे जानेपर ऋषियोंने पुनः उत्तरवर्ती वर्षोंके विषयमें सुननेके लिये सूतनन्दनसे जिज्ञासा प्रकट की ॥ ७८-७९ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें द्वीपादिवर्णननामक एक सौ तेरहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ११३ ॥

# एक सौ चौदहवाँ अध्याय

## भारतवर्ष, किम्पुरुषवर्ष तथा हरिवर्षका वर्णन

ऋषय ऊचुः

**यदिदं भारतं वर्षं यस्मिन् स्वायम्भुवादयः। चतुर्दशैव मनवः प्रजासर्गं ससर्जिरे ॥ १ ॥**
**एतद् वेदितुमिच्छामः सकाशात् तव सुव्रत। उत्तरश्रवणं भूयः प्रब्रूहि वदतांवर ॥ २ ॥**

**ऋषियोंने पूछा**—सुव्रत! जो यह भारतवर्ष है, जिसमें स्वायम्भुव आदि चौदह मनु हुए हैं, जिन्होंने प्रजाओंकी सृष्टि की है, उनके विषयमें हमलोग आपके मुखसे सुनना चाहते हैं। साथ ही वक्ताओंमें श्रेष्ठ सूतजी! पुनः इसके बाद भारत आदि अन्य वर्षोंके विषयमें भी कुछ बतलाइये ॥ १-२ ॥

एतच्छ्रुत्वा ऋषीणां तु प्राब्रवील्लौमहर्षणिः । पौराणिकस्तदा सूत ऋषीणां भावितात्मनाम् ॥ ३ ॥
बुद्ध्या विचार्य बहुधा विमृश्य च पुनः पुनः । तेभ्यस्तु कथयामास उत्तरश्रवणं तदा ॥ ४ ॥

प्रसिद्ध पौराणिक लोमहर्षणके पुत्र सूतजीने उन पवित्रात्मा ऋषियोंका प्रश्न सुनकर अपनी बुद्धिसे बारंबार बहुधा विचार-विमर्श करके उन ऋषियोंसे 'उत्तरश्रवण' ( उत्तरवर्ती वर्षों ) के विषयमें कहना आरम्भ किया ॥

सूत उवाच

अथाहं वर्णयिष्यामि वर्षेऽस्मिन् भारते प्रजाः । भरणाच्च प्रजानां वै मनुर्भरत उच्यते ॥ ५ ॥
निरुक्तवचनाच्चैव वर्ष तद् भारतं स्मृतम् । यतः स्वर्गश्च मोक्षश्च मध्यमश्चापि हि स्मृतः ॥ ६ ॥
न खल्वन्यत्र मर्त्यानां भूमौ कर्मविधिः स्मृतः । भारतस्यास्य वर्षस्य नव भेदान् निबोधत ॥ ७ ॥
इन्द्रद्वीपः कशेरुश्च ताम्रपर्णो गभस्तिमान् । नागद्वीपस्तथा सौम्यो गन्धर्वस्त्वथ वारुणः ॥ ८ ॥
अयं तु नवमस्तेषां द्वीपः सागरसंवृतः । योजनानां सहस्रं तु द्वीपोऽयं दक्षिणोत्तरः ॥ ९ ॥
आयतस्तु कुमारीतो गङ्गायाः प्रवहावधिः । तिर्यगूर्ध्वं तु विस्तीर्णः सहस्राणि दशैव तु ॥ १० ॥
द्वीपो ह्युपनिविष्टोऽयं म्लेच्छैरन्तेषु सर्वशः । यवनाश्च किराताश्च तस्यान्ते पूर्वपश्चिमे ॥ ११ ॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या मध्ये शूद्राश्च भागशः । इज्यायुधवणिज्याभिर्वर्तयन्तो व्यवस्थिताः ॥ १२ ॥
तेषां संव्यवहारोऽयं वर्तते तु परस्परम् । धर्मार्थकामसंयुक्तो वर्णानां तु स्वकर्मसु ॥ १३ ॥
सकल्पपञ्चमानां तु आश्रमाणां यथाविधि । इह स्वर्गापवर्गार्थं प्रवृत्तिरिह मानुषे ॥ १४ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! अब मैं इस भारतवर्षमें उत्पन्न होनेवाली प्रजाओंका वर्णन कर रहा हूँ । इन प्रजाओंकी सृष्टि करने तथा इनका भरण-पोषण करनेके कारण मनुको भरत कहा जाता है। निरुक्त-वचनोंके आधारपर यह वर्ष ( उन्हींके नामपर ) भारतवर्ष*के नामसे प्रसिद्ध है। यहाँ स्वर्ग, मोक्ष तथा इन दोनोंके अन्तर्वर्ती ( भोग ) पदकी प्राप्ति होती है । इस भूतलपर भारतवर्षके अतिरिक्त अन्यत्र कहीं भी प्राणियोंके लिये कर्मका विधान नहीं सुना जाता । इस भारतवर्षके नौ भेद हैं, उनके नाम सुनिये— इन्द्रद्वीप, कशेरुमान्, ताम्रपर्ण, गभस्तिमान्, नागद्वीप, सौम्यद्वीप, गान्धर्वद्वीप और वारुण-द्वीप—ये आठ तथा उनमें नवाँ यह समुद्रसे घिरा हुआ भारतद्वीप† (या खण्ड ) है। यह द्वीप दक्षिणसे उत्तरतक एक हजार योजनमें फैला हुआ है। इसका विस्तार गङ्गाके उद्गम-स्थानसे लेकर कन्याकुमारी अथवा कुमारी अन्तरीपतक है । यह तिरछेरूपमें ऊपर-ही-ऊपर दस हजार योजन विस्तृत है । इस द्वीपके चारों ओर सीमावर्ती प्रदेशोंमें म्लेच्छ जातियोंकी बस्तियाँ हैं । इसकी पूर्व एवं पश्चिम दिशामें क्रमशः किरात और यवन निवास करते हैं । इसके मध्यभागमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र विभाग-पूर्वक यज्ञ, शस्त्र-ग्रहण और व्यवसाय आदिके द्वारा जीवन-यापन करते हुए निवास करते हैं । उन चारों वर्णोंका पारस्परिक व्यवहार धर्म, अर्थ और कामसे संयुक्त होता है और वे अपने-अपने कर्मोंमें ही लगे रहते हैं । यहाँ कल्पसहित पाँचो वर्णों ( ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, योगी और संन्यासी ) तथा आश्रमोंका विधिपूर्वक पालन होता है । इस द्वीपके मनुष्योंकी कर्म-प्रवृत्ति स्वर्ग और मोक्षके लिये होती है ॥ ५—१४ ॥

* सभी पुराणोंमें प्रायः सर्वत्र ऋषभ-पुत्र भरतके नामपर ही देशका नाम भारत कहा गया है । नाभिसे अजनाभ तथा उनके पोते भरतसे देशका भारत नाम पड़ा । मनु इनके भी पूर्वज थे, अतः यह कथन भी ठीक है । पर पाश्चात्योंने शकुन्तला-पुत्रके नामपर देशका नाम पड़ना गलत बतलाया है और भ्रमसे आज उसीका प्रचार है ( विशेष जानकारीके लिये देखिये कल्याण वर्ष ३० । ८ ) । यह अध्याय वायुपुराण ४५ । ७२-१३७ तथा ब्रह्माण्ड, मार्कण्डेय आदि पुराणोंमें भी प्राप्त है ।

† इस प्रकार आजका दीखनेवाला सारा भूमण्डल बृहत्तर भारतके ही अन्तर्गत सिद्ध होता है । इसीलिये हेमाद्रि संकल्पमें 'भारतवर्षे भरतखण्डे' पढ़ा जाता है ।

यस्त्वयं मानवो द्वीपस्तिर्यग्यामः प्रकीर्तितः। य एनं जयते कृत्स्नं स सम्राडिति कीर्तितः॥ १५॥
अयं लोकस्तु वै सम्राडन्तरिक्षजितां स्मृतः। स्वराडसौ स्मृतो लोकः पुनर्वक्ष्यामि विस्तरात्॥ १६॥
सप्त चास्मिन् महावर्षे विश्रुताः कुलपर्वताः। महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमानृक्षवानपि॥ १७॥
विन्ध्यश्च पारियात्रश्च इत्येते कुलपर्वताः। तेषां सहस्रशश्चान्ये पर्वतास्तु समीपतः॥ १८॥
अभिज्ञातास्ततश्चान्ये विपुलाश्चित्रसानवः। अन्ये तेभ्यः परिज्ञाता ह्रस्वा ह्रस्वोपजीविनः॥ १९॥
तैर्विमिश्रा जानपदा आर्या म्लेच्छाश्च सर्वतः। पीयन्ते यैरिमा नद्यो गङ्गा सिन्धुः सरस्वती*॥ २०॥
शतद्रुश्चन्द्रभागा च यमुना सरयूस्तथा। इरावती वितस्ता च विपाशा देविका कुहूः॥ २१॥
गोमती धूतपापा च वाहुदा च दृषद्वती।
कौशिकी च तृतीया च निश्चीरा गण्डकी तथा। चक्षुर्लौहित इत्येता हिमवत्पादनिःसृताः॥ २२॥
वेदस्मृतिर्वेत्रवती वृत्रघ्नी सिन्धुरेव च। पर्णाशा चन्दना चैव सदानीरा मही तथा॥ २३॥
पारा चर्मण्वती यूपा विदिशा वेणुमत्यपि। शिप्रा ह्यवन्ती कुन्ती च पारियात्राश्रिताः स्मृताः॥ २४॥

इस मानव द्वीपको, जो त्रिकोणाकार फैला हुआ है, जो सम्पूर्ण रूपमें जीत लेता है, वह सम्राट् कहलाता है। अन्तरिक्षपर विजय पानेवालोंके लिये यह लोक सम्राट् कहा गया है और यही लोक स्वराट्के नामसे भी प्रसिद्ध है। अब मैं इसका पुनः विस्तारपूर्वक वर्णन कर रहा हूँ। इस महान् भारतवर्षमें सात विश्वविख्यात कुलपर्वत हैं। महेन्द्र†, मलय, सह्य, शुक्तिमान्‡, ऋक्षवान्§, विन्ध्य और पारियात्र×—ये कुलपर्वत हैं। इनके समीप अन्य हजारों पर्वत हैं। इनके अतिरिक्त अन्य भी विशाल एवं चित्र-विचित्र शिखरोंवाले पर्वत हैं तथा दूसरे कुछ उनसे भी छोटे हैं, जो निम्न ( पर्वतीय ) जातियोके आश्रयभूत हैं। इन्हीं पर्वतोंसे संयुक्त जो प्रदेश हैं, उनमें चारों ओर आर्य एवं म्लेच्छ जातियाँ निवास करती हैं, जो इन आगे कही जानेवाली नदियोंका जल पान करती हैं। जैसे गङ्गा, सिन्धु, सरस्वती, शतद्रु ( सतलज ), चन्द्रभागा ( चिनाव ), यमुना, सरयू, इरावती ( रावी ), वितस्ता ( झेलम ), विपाशा (व्यास), देविका, कुहू, गोमती, धूतपापा (धोपाप), वाहुदा, दृषद्वती, कौशिकी ( कोसी ), तृतीया, निश्चीरा, गण्डकी, चक्षु, लौहित—ये सभी नदियाँ हिमालयकी उपत्यका ( तलहटी )से निकली हुई हैं। वेदस्मृति, वेत्रवती ( बेतवा ), वृत्रघ्नी, सिन्धु, पर्णाशा, चन्दना, सदानीरा, मही, पारा, चर्मण्वती, यूपा, विदिशा, वेणुमती, शिप्रा, अवन्ती तथा कुन्ती—इन नदियोंका उद्गमस्थान पारियात्र पर्वत है॥ १५—२४॥

शोणो महानदी चैव नर्मदा सुरसा क्रिया।
मन्दाकिनी दशार्णा च चित्रकूटा तथैव च। तमसा पिप्पली श्येनी करतोया पिशाचिका॥ २५॥
विमला चञ्चला चैव वञ्जुला वालुवाहिनी।
शुक्तिमन्ती शुनी लज्जा मुकुटा ह्रदिकापि च। ऋक्षवन्तप्रसूतास्ता नद्योऽमलजलाः शुभाः॥ २६॥
तापी पयोष्णी निर्विन्ध्या क्षिप्रा च निषधा नदी। वेण्वा वैतरणी चैव विश्वमाला कुमुद्वती॥ २७॥
तोया चैव महागौरी दुर्गा चान्तःशिला तथा। विन्ध्यपादप्रसूतास्ता नद्यः पुण्यजलाः शुभाः॥ २८॥
गोदावरी भीमरथी कृष्णवेणी च वञ्जुला।
तुङ्गभद्रा सुप्रयोगा वाह्या कावेर्यथापि च। दक्षिणापथनद्यस्ताः सह्यपादाद् विनिःसृताः॥ २९॥

* यह नदी-वर्णन ठीक इसी प्रकार ब्रह्मपु० १९। १०-२८, ब्रह्माण्ड १। १६। २४-३९, वायु ४५। ६३—७८ तथा शिवतत्त्वरत्नाकर पृ० १९८-९९ पर भी है। † उड़ीसाके दक्षिणपूर्वी भागका पर्वत।

‡ यह शक्ति पर्वत है, जो रायगढ़से लेकर मानभूम जिलेकी डालमा पहाड़ीतक फैला है।

§ यह विन्ध्य-पर्वतमालाका पूर्वी भाग है। × यह विन्ध्यपर्वतमालाका पश्चिमी भाग है।

कृतमाला ताम्रपर्णी पुष्पजा चोत्पलावती । मलयान्निःसृता नद्यः सर्वाः शीतजलाः शुभाः ॥ ३० ॥
त्रिपामा ऋषिकुल्या च इक्षुला त्रिदिवाचला । लाङ्गलिनी वंशधरा महेन्द्रतनयाः स्मृताः ॥ ३१ ॥
ऋषीका सुकुमारी च मन्दगा मन्दवाहिनी । कृपा पलाशिनी चैव शुक्तिमत्प्रभवाः स्मृताः ॥ ३२ ॥
सर्वाः पुण्यजलाः पुण्याः सर्वाश्चैव समुद्रगाः । विश्वस्य मातरः सर्वाः सर्वपापहराः शुभाः ॥ ३३ ॥

शोण, महानदी, नर्मदा, सुरसा, क्रिया, मन्दाकिनी, दशार्णा, चित्रकूटा, तमसा, पिप्पली, श्येनी, करतोया, पिशाचिका, त्रिमला, चञ्चला, वञ्जुला, वालुवाहिनी, शुक्तिमन्ती, शुनी, लज्जा, मुकुटा और हृदिका—ये स्वच्छसलिला कल्याणमयी नदियाँ ऋक्षवन्त ( ऋक्षवान् ) पर्वतसे उद्भूत हुई हैं। तापी, पयोष्णी ( पूर्णानदी या पैनगङ्गा ), निर्विन्ध्या, क्षिप्रा, निषधा, वेण्या, वैतरणी, विश्वमाला, कुमुद्वती, तोया, महागौरी, दुर्गा तथा अन्तःशिला—ये सभी पुण्यतोया मङ्गलमयी नदियाँ विन्ध्याचलकी उपत्यकाओंसे निकली हुई हैं। गोदावरी, भीमरथी, कृष्णवेणी, वञ्जुला ( मंजीरा ), कर्णाटककी तुङ्गभद्रा, सुप्रयोगा, वाह्या ( वर्धानदी ) और कावेरी—ये सभी दक्षिणापथमें प्रवाहित होनेवाली नदियाँ हैं, जो सह्यपर्वतकी शाखाओंसे प्रकट हुई हैं। कृतमाला ( वैगईन नदी ), ताम्रपर्णी, पुष्पजा ( कुसुमाङ्गा, पेम्बै या पेन्नार नदी ) और उत्पलावती—ये कल्याणमयी नदियाँ मलयाचलसे निकली हुई हैं। इनका जल बहुत शीतल होता है। त्रिपामा, ऋषिकुल्या, इक्षुला, त्रिदिवा, अचला, लाङ्गूलिनी और वंशधरा—ये सभी नदियाँ महेन्द्रपर्वतसे निकली हुई मानी जाती हैं। ऋषीका, सुकुमारी, मन्दगा, मन्दवाहिनी, कृपा और पलाशिनी—इन नदियोंका उद्गम शुक्तिमान् पर्वतसे हुआ है। ये सभी पुण्यतोया नदियाँ पुण्यप्रद, सर्वत्र बहनेवाली तथा साक्षात् या परम्परासे समुद्रगामिनी हैं। ये सब-की-सब विश्वके लिये माता-सदृश हैं तथा इन सबको कल्याणकारिणी एवं पापहारिणी माना गया है*॥ २५—३३ ॥

तासां नद्युपनद्यश्च शतशोऽथ सहस्रशः । तास्विमे कुरुपाञ्चालाः शाल्वाश्चैव सजाङ्गलाः ॥ ३४ ॥
शूरसेना भद्रकारा वाह्याः सहपटच्चराः । मत्स्याः किराताः कुल्याश्च कुन्तलाः काशिकोसलाः॥ ३५ ॥
आवन्ताश्च कलिङ्गाश्च मूकाश्चैवान्धकैः सह । मध्यदेशा जनपदाः प्रायशः परिकीर्तिताः ॥ ३६ ॥
सह्यस्यानन्तरे चैते यत्र गोदावरी नदी । पृथिव्यामपि कृत्स्नायां स प्रदेशो मनोरमः ॥ ३७ ॥
यत्र गोवर्धनो नाम मन्दरो गन्धमादनः । रामप्रियार्थं स्वर्गीया वृक्षा दिव्यास्तथौषधीः ॥ ३८ ॥
भरद्वाजेन मुनिना तत्प्रियार्थेऽवतारिताः । ततः पुष्पवरो देशस्तेन जज्ञे मनोरमः ॥ ३९ ॥
वाह्लीका वाटधानाश्च आभीराः कालतोयकाः । पुरंध्राश्चैव शूद्राश्च पल्लवाश्चात्तखण्डिकाः ॥ ४० ॥
गान्धारा यवनाश्चैव सिन्धुसौवीरभद्रकाः । शका द्रुह्याः पुलिन्दाश्च पारदाहारमूर्तिकाः ॥ ४१ ॥
रामठाः कण्टकाराश्च कैकेय्या दशनामकाः । क्षत्रियोपनिवेशाश्च वैश्याः शूद्रकुलानि च ॥ ४२ ॥
काम्बोजा दरदाश्चैव वर्वरा पह्लवा तथा । अत्रेयाश्च भरद्वाजाः प्रस्थलाश्च कसेरकाः ॥ ४३ ॥
लम्पकास्तलगानाश्च सैनिकाः सह जाङ्गलैः । एते देशा उदीच्यास्तु प्राच्यान् देशान् निबोधत ॥ ४४ ॥
अङ्गा वङ्गा मद्गुरका अन्तर्गिरिवहिर्गिरी ।
ततः प्लवङ्गमातङ्गा यमका मालवर्णकाः । सुह्मोत्तराः प्रविजया मार्गवागेयमालवाः ॥ ४५ ॥
प्राग्ज्योतिषाश्च पुण्ड्राश्च विदेहास्ताम्रलिप्तकाः । शाल्वमागधगोनर्दाः प्राच्या जनपदाः स्मृताः ॥ ४६ ॥

अथवा इनकी सैकड़ों-हजारों छोटी-बड़ी सहायक नदियाँ भी हैं, जिनके कछारोंमें कुरु, पाञ्चाल, शाल्व, सजाङ्गल, शूरसेन, भद्रकार, वाह्य, सहपटच्चर, मत्स्य†, किरात, कुन्ती, कुन्तल, काशी, कोसल, आवन्त, कलिङ्ग,

* इन नदियोंका पूरा परिचय कल्याण, वराहपुराणाङ्क, पृष्ठ ३८०—९० में द्रष्टव्य है।

† यहाँ पाणिनि अष्टाध्यायीके काशिका ( ४ । १ । १६० ) कौमुदि ( ४ । १ । १७० ) सम्प्रदायोंमें दो सूत्रोंका अन्तर होकर प्रतिलिपिकी भूलसे 'सूरमत्स्य' की जगह 'सूरमस' पाठ हो गया है। 'गणरत्नमहोदधि'में वर्द्धमानका पाठ ठीक है।

*

मूक और अन्धक—ये देश अवस्थित हैं, जो प्रायः मध्यदेशके जनपद कहलाते हैं। ये सह्यपर्वतके निकट बसे हुए हैं, यहाँ गोदावरी नदी प्रवाहित होती है। अखिल भूमण्डलमें यह प्रदेश अत्यन्त मनोरम है। तत्पश्चात् गोवर्धन, मन्दराचल और श्रीरामचन्द्रजीका प्रियकारक गन्धमादन पर्वत है, जिसपर मुनिवर भरद्वाजजीने श्रीरामके मनोरंजनके लिये स्वर्गीय वृक्षों और दिव्य ओषधियोंको अवतरित किया था। उन्हीं मुनिवरके प्रभावसे वह प्रदेश पुष्पोंसे परिपूर्ण होनेके कारण मनोमुग्धकारी हो गया था। वाह्लीक ( वलख ), वाटधान, आभीर, कालतोयक, पुरन्ध्र, शूद्र, पल्लव, आत्तखण्डिक, गान्धार, यवन, सिन्धु ( सिंध ), सौवीर ( सिन्धका उत्तरी भाग ), मद्रक ( पंजाबका उत्तरी भाग ), शक, द्रुह्य ( ययाति-पुत्र द्रुह्युका उत्तरीभाग—पश्चिमी पंजाब ), पुलिन्द, पारद, आहारमूर्तिक, रामठ, कण्टकार, कैकेय और दशनामक—ये क्षत्रियोंके उपनिवेश हैं तथा इनमें वैश्य और शूद्र-कुलके लोग भी निवास करते हैं। इनके अतिरिक्त कम्बोज ( अफगानिस्तान ), दरद, बर्बर, पह्लव ( ईरान ), अत्रि, भरद्वाज, प्रस्थल, कसेरुक, लम्पक, तलगान और जाङ्गलसहित सैनिक प्रदेश—ये सभी उत्तरापथके देश हैं। अब पूर्व दिशाके देशोंको सुनिये। अङ्ग ( भागलपुर ), वङ्ग ( बंगाल ), मद्गुरक, अन्तर्गिरि, बहिर्गिरि, प्लवङ्ग, मातङ्ग, यमक, मालवर्णक, सुह्म ( उत्तरी असम ), प्रविजय, मार्ग, वागेय, मालव, प्राग्ज्योतिष ( आसामका पूर्वीभाग ), पुण्ड्र ( बंगलादेश ), विदेह ( मिथिला ), ताम्रलिप्तक ( उड़ीसका उत्तरी भाग ), शाल्व, मागध और गोनर्द—ये पूर्व दिशाके जनपद हैं॥

**अथापरे जनपदा दक्षिणापथवासिनः। पाण्ड्याश्च केरलाश्चैव चोलाः कुल्यास्तथैव च॥ ४७॥**
**सेतुका मूषिकाश्चैव कुपथा वाजिवासिकाः। महाराष्ट्रा माहिषकाः कलिङ्गाश्चैव सर्वशः॥ ४८॥**
**आभीराश्च सहैषीका आटव्याः शबरास्तथा। पुलिन्दा विन्ध्यमुलिका वैदर्भा दण्डकैः सह॥ ४९॥**
**कुलीयाश्च सिरालाश्च अश्मका भोगवर्धनाः। तथा तैत्तिरिकाश्चैव दक्षिणापथवासिनः॥ ५०॥**
**नासिक्याश्चैव ये चान्ये ये चैवान्तरनर्मदाः। भारुकच्छाः समाहेयाः सह सारस्वतैस्तथा॥ ५१॥**
**काच्छीकाश्चैव सौराष्ट्रा आनर्ता अर्बुदैः सह। इत्येते अपरान्तास्तु शृणु ये विन्ध्यवासिनः॥ ५२॥**
**मालवाश्च करूषाश्च मेकलाश्चोत्कलैः सह। औण्ड्रा माषा दशार्णाश्च भोजाः किष्किन्धकैः सह॥ ५३॥**
**तोशलाः कोसलाश्चैव त्रैपुरा वैदिशास्तथा। तुमुरास्तुम्बराश्चैव पद्गमा नैषधैः सह॥ ५४॥**
**अरूपाः शौण्डिकेराश्च वीतिहोत्रा अवन्तयः। एते जनपदाः ख्याता विन्ध्यपृष्ठनिवासिनः॥ ५५॥**
**अतो देशान् प्रवक्ष्यामि पर्वताश्रयिणश्च ये। निराहाराः सर्वगाश्च कुपथा अपथास्तथा॥ ५६॥**
**कुथप्रावरणाश्चैव ऊर्णादर्वाः समुद्गकाः। त्रिगर्ता मण्डलाश्चैव किराताश्चामरैः सह॥ ५७॥**
**चत्वारि भारते वर्षे युगानि मुनयोऽब्रुवन्।**
**कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्चेति चतुर्युगम्। तेषां निसर्गं वक्ष्यामि उपरिष्टाच्च कृत्स्नशः॥ ५८॥**

इनके बाद अब दक्षिणापथके देश बतलाये जा रहे हैं। पाण्ड्य, केरल, चोल, कुल्य, सेतुक, मूषिक, कुपथ, वाजिवासिक, महाराष्ट्र, माहिषक, कलिंग ( उड़ीसाका दक्षिणी भाग ), आभीर, सहैषीक, आटव्य, शबर, पुलिन्द, विन्ध्यमुलिक, वैदर्भ ( विदर्भ ), दण्डक, कुलीय, सिराल, अश्मक ( महाराष्ट्रका दक्षिण भाग ), भोगवर्धन ( उड़ीसाका दक्षिणभाग), तैत्तिरिक, नासिक्य तथा नर्मदाके अन्तःप्रान्तमें स्थित अन्य प्रदेश—ये दक्षिणापथके अन्तर्गतके देश हैं। भारुकच्छ, माहेय, सारस्वत, काच्छीक, सौराष्ट्र, आनर्त और अर्बुद—ये सभी अपरान्त प्रदेश हैं। अब जो विन्ध्यवासियोंके प्रदेश हैं, उन्हें सुनिये। मालव, करूष, मेकल, उत्कल, औण्ड्र (उड़ीसा ), माष, दशार्ण, भोज, किष्किन्धक, तोशल, कोसल (दक्षिणकोसल), त्रैपुर, वैदिश (भेलसाराज्य), तुमुर, तुम्बर, पद्गम, नैषध, अरूप, शौण्डिकेर, वीतिहोत्र

तथा अवन्ति—ये सभी प्रदेश विन्ध्यपर्वतकी घाटियोंमें स्थित बतलाये जाते हैं। इसके बाद अब मैं उन देशों-का वर्णन कर रहा हूँ, जो पर्वतपर स्थित हैं। उनके नाम है—निराहार, सर्वग, कुपथ, अपथ, कुथप्रावरण, ऊर्णादर्व, समुद्गक, त्रिगर्त, मण्डल, किरात और चामर। मुनियोंका कथन है कि इस भारतवर्षमें सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग—इन चार युगोंकी व्यवस्था है। अब मैं उनके वृत्तान्तका पूर्णतया वर्णन कर रहा हूँ॥

मत्स्य उवाच

एतच्छ्रुत्वा तु ऋषय उत्तरं पुनरेव ते। शुश्रूषवस्तमूचुस्ते प्रकामं लौमहर्षणिम्॥ ५९॥

मत्स्यभगवान्ने कहा—राजर्षे! सूतजीद्वारा कहे हुए इस प्रकरणको सुनकर मुनियोंको और भी आगे सुननेकी उत्कट इच्छा उत्पन्न हो गयी, तब वे पुनः लोमहर्षण-पुत्र सूतजीसे बोले॥ ५९॥

ऋषय ऊचुः

यच्च किम्पुरुषं वर्षं हरिवर्षं तथैव च। आचक्ष्व नो यथातत्त्वं कीर्तितं भारतं त्वया॥ ६०॥
जम्बूखण्डस्य विस्तारं तथान्येषां विदांवर। द्वीपानां वासिनां तेषां वृक्षाणां प्रब्रवीहि नः॥ ६१॥
पृष्टस्त्वेवं तदा विप्रैर्यथाप्रश्नं विशेषतः। उवाच ऋषिभिर्दृष्टं पुराणाभिमतं तथा॥ ६२॥

ऋषियोंने पूछा—वेत्ताओंमें श्रेष्ठ सूतजी! आपने भारतवर्षका तो वर्णन कर दिया। अब हमें किम्पुरुषवर्ष तथा हरिवर्षके विषयमें बतलाइये। साथ ही जम्बूखण्डके विस्तारका तथा अन्य द्वीपोंके निवासियोंका एवं वहाँ उत्पन्न होनेवाले वृक्षोंका भी वर्णन हमें सुनाइये। उन महर्षियोंद्वारा इस प्रकार पूछे जानेपर सूतजीने उनके प्रश्नके अनुकूल जैसा देखा था तथा जो पुराण-सम्मत था, वैसा उत्तर देना प्रारम्भ किया॥ ६०—६२॥

सूत उवाच

शुश्रूषवस्तु यद् विप्राः शुश्रूषध्वमतन्द्रिताः। जम्बूवर्षः किम्पुरुषः सुमहान् नन्दनोपमः॥ ६३॥
दश वर्षसहस्राणि स्थितिः किम्पुरुषे स्मृता। जायन्ते मानवास्तत्र निष्टप्तकनकप्रभाः॥ ६४॥
वर्षे किम्पुरुषे पुण्ये प्लक्षो मधुवहः स्मृतः। तस्य किम्पुरुषाः सर्वे पिबन्ति रसमुत्तमम्॥ ६५॥
अनामया ह्यशोकाश्च नित्यं मुदितमानसाः। सुवर्णवर्णाश्च नराः स्त्रियश्चाप्सरसः स्मृताः॥ ६६॥
ततः परं किम्पुरुषाद्धरिवर्षं प्रचक्षते। महारजतसंकाशा जायन्ते यत्र मानवाः॥ ६७॥
देवलोकच्युताः सर्वे बहुरूपाश्च सर्वशः। हरिवर्षे नराः सर्वे पिबन्तीक्षुरसं शुभम्॥ ६८॥
न जरा बाधते तत्र तेन जीवन्ति ते चिरम्। एकादश सहस्राणि तेषामायुः प्रकीर्तितम्॥ ६९॥
मध्यमं यन्मया प्रोक्तं नाम्ना वर्षमिलावृतम्। न तत्र सूर्यस्तपति न च जीर्यन्ति मानवाः॥ ७०॥
चन्द्रसूर्यौ सनक्षत्रावप्रकाशाविलावृते। पद्मप्रभाः पद्मवर्णाः पद्मपत्रनिभेक्षणाः॥ ७१॥
पद्मगन्धाश्च जायन्ते तत्र सर्वे च मानवाः। जम्बूफलरसाहारा अनिष्पन्दाः सुगन्धिनः॥ ७२॥
देवलोकच्युताः सर्वे महारजतवाससः। त्रयोदश सहस्राणि वर्षाणां ते नरोत्तमाः॥ ७३॥
आयुष्प्रमाणं जीवन्ति ये तु वर्षे इलावृते।

सूतजी कहते हैं—ब्राह्मणो! आपलोग जिस विषय-को सुनना चाहते हैं, उसे बतला रहा हूँ, आलस्यरहित होकर श्रवण कीजिये। जम्बूवर्ष और किम्पुरुषवर्ष—ये दोनों अत्यन्त विशाल एवं नन्दन-वनकी भाँति शोभा-सम्पन्न हैं। इनमें किम्पुरुषवर्षमें मनुष्योंकी आयु दस हजार वर्षकी बतलायी जाती है। वहाँ जन्म लेनेवाले मनुष्य भलीभाँति तपाये हुए सुवर्णकी-सी कान्तिवाले होते हैं। उस पुण्यमय किम्पुरुषवर्षमें एक पाकड़का वृक्ष बतलाया जाता है, जिससे सदा मधु टपकता रहता है। उसके उस उत्तम रसको सभी किम्पुरुषनिवासी पान करते हैं, जिसके कारण वे नीरोग, शोकरहित और सदा प्रसन्नचित्त रहते हैं। वहाँ पुरुषोंके शरीरका

रंग सुवर्ण-जैसा होता है और स्त्रियाँ अप्सराओं-जैसी सुन्दरी कही गयी हैं। उस किम्पुरुषवर्षके बाद हरिवर्ष बतलाया जाता है। वहाँ सुवर्णकी-सी कान्तिसे युक्त शरीरवाले मानव उत्पन्न होते हैं। वे सभी देवलोकसे च्युत हुए जीव होते हैं और उनके विभिन्न प्रकारके रूप होते हैं। हरिवर्षमें सभी मनुष्य मङ्गलमय इक्षु-रसका पान करते हैं, जिससे उन्हें वृद्धावस्था बाधा नहीं पहुँचाती और वे चिरकालतक जीवित रहते हैं। उनकी आयुका प्रमाण ग्यारह हजार वर्ष बतलाया जाता है। इनके बीचमें इलावृत नामक वर्ष है, जिसका वर्णन मैं पहले ही कर चुका हूँ। वहाँ सूर्यका ताप नहीं होता। वहाँके मानव भी वृद्ध नहीं होते। इलावृतवर्षमें नक्षत्रोंसहित चन्द्रमा और सूर्यका प्रकाश नहीं होता। वहाँ पैदा होनेवाले सभी मानवोंके शरीर कमलके-से कान्तिमान् और उनका रंग कमल-जैसा लाल होता है। उनके नेत्र कमल-दलके समान विशाल होते हैं और उनके शरीरसे कमलकी-सी गन्ध निकलती है। जामुनके फलका रस उनका आहार है। वे निस्पन्द-रहित एवं सुगन्धयुक्त होते हैं। उनके वस्त्र सुवर्णके तारोंसे खचित होते हैं। देवलोकसे च्युत हुए जीव ही यहाँ जन्म धारण करते हैं। जो श्रेष्ठ पुरुष इलावृतवर्षमें पैदा होते हैं, वे तेरह हजार वर्षोंकी आयुतक जीवित रहते हैं ॥६६-७३३॥

मेरोस्तु दक्षिणे पार्श्वे निषधस्योत्तरेण वा ॥ ७४ ॥
सुदर्शनो नाम महाजम्बूवृक्षः सनातनः। नित्यपुष्पफलोपेतः सिद्धचारणसेवितः ॥ ७५ ॥
तस्य नाम्ना समाख्यातो जम्बूद्वीपो वनस्पतेः। योजनानां सहस्रं च शतधा च महान् पुनः ॥ ७६ ॥
उत्सेधो वृक्षराजस्य दिवमावृत्य तिष्ठति। तस्य जम्बूफलरसो नदी भूत्वा प्रसर्पति ॥ ७७ ॥
मेरुं प्रदक्षिणं कृत्वा जम्बूमूलगता पुनः। तं पिबन्ति सदा हृष्टा जम्बूरसमिलावृते ॥ ७८ ॥
जम्बूफलरसं पीत्वा न जरा बाधतेऽपि तान्। न क्षुधा न क्लमो वापि न दुःखं च तथाविधम् ॥ ७९ ॥
तत्र जाम्बूनदं नाम कनकं देवभूषणम्। इन्द्रगोपकसंकाशं जायते भासुरं च यत् ॥ ८० ॥
सर्वेषां वर्षवृक्षाणां शुभः फलरसस्तु सः। स्कन्नं तु काञ्चनं शुभ्रं जायते देवभूषणम् ॥ ८१ ॥
तेषां मूत्रं पुरीषं वा दिक्ष्वष्टासु च सर्वशः। ईश्वरानुग्रहाद् भूमिर्मृतांश्च ग्रसते तु तान् ॥ ८२ ॥
रक्षःपिशाचा यक्षाश्च सर्वे हैमवतास्तु ते। हेमकूटे तु विज्ञेया गन्धर्वाः साप्सरोगणाः ॥ ८३ ॥
सर्वे नागा निषेवन्ते शेषवासुकितक्षकाः। महामेरौ त्रयस्त्रिंशत् क्रीडन्ते यज्ञियाः शुभाः ॥ ८४ ॥
नीलवैदूर्ययुक्तेऽस्मिन् सिद्धा ब्रह्मर्षयोऽवसन्। दैत्यानां दानवानां च श्वेतः पर्वत उच्यते ॥ ८५ ॥
शृङ्गवान् पर्वतश्रेष्ठः पितॄणां प्रतिसंचरः। इत्येतानि मयोक्तानि नव वर्षाणि भारते ॥ ८६ ॥
भूतैरपि निविष्टानि गतिमन्ति ध्रुवाणि च।
तेषां वृद्धिर्बहुविधा दृश्यते देवमानुषैः। अशक्या परिसंख्यातुं श्रद्धेया च बुभूषता ॥ ८७ ॥

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे भुवनकोशे चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११४ ॥*

मेरुगिरिके दक्षिण तथा निषधपर्वतके उत्तर भागमें सुदर्शन नामका एक विशाल प्राचीन जामुनका वृक्ष है। वह सदा पुष्प और फलोंसे लदा रहता है। सिद्ध और चारण सदा उसका सेवन करते हैं। उसी वृक्षके नामपर यह द्वीप जम्बूद्वीपके नामसे विख्यात हुआ है। उस वृक्षराजकी ऊँचाई ग्यारह सौ योजन है। वह महान् वृक्ष स्वर्गलोकतक व्याप्त है। उसके फलोंका रस नदी-रूपमें प्रवाहित होता है। वह नदी मेरुकी प्रदक्षिणा करके पुनः उसी जम्बूवृक्षके मूलपर पहुँचती है। इलावृतवर्षमें वहाँके निवासी सदा हर्षपूर्वक उस जम्बूरसका पान करते हैं। उस जम्बूवृक्षके फलोंका रस पान करनेके कारण वहाँके निवासियोंको वृद्धावस्था

बाधा नहीं पहुँचाती। न उन्हे भूख लगती है और न थकावट ही प्रतीत होती है तथा न किसी प्रकारका दुःख ही होता है। वहाँ जाम्बूनद नामक सुवर्ण पाया जाता है, जो देवताओंके लिये आभूषणके काममें आता है। वह इन्द्रगोप ( बीरबहूटी ) के समान लाल और अत्यन्त चमकीला होता है। उस वर्षके सभी वृक्षोंमें इस जामुन-वृक्षके फलोंका रस परम शुभकारक है। वह वृक्षसे टपकनेपर निर्मल सुवर्ण बन जाता है, जिससे देवताओंके आभूषण बनते हैं। ईश्वरकी कृपासे वहाँकी भूमि आठों दिशाओंमें सब ओर इलावृत-निवासियोंके मूत्र, विष्ठा और मृत शरीरोंको आत्मसात् कर लेती है। राक्षस, पिशाच और यक्ष—ये सभी हिमालय पर्वतपर निवास करते हैं। हेमकूट पर्वतपर अप्सराओंसहित गन्धर्वोंका निवास जानना चाहिये तथा शेष, वासुकि और तक्षक आदि सभी प्रधान नाग भी उसपर स्थित रहते हैं। महामेरुपर यज्ञसम्बन्धी मङ्गलमय तैंतीस देवता क्रीडा करते रहते हैं। नीलम एवं वैदूर्य मणियोंसे सम्पन्न नीलपर्वतपर सिद्धों और ब्रह्मर्षियोंका निवास है। श्वेतपर्वत दैत्यों और दानवोंका निवासस्थान बतलाया जाता है। पर्वतश्रेष्ठ शृङ्गवान् पितरोंका विहारस्थल है। इस प्रकार मैंने भारतवर्षके अन्तर्गत इन नौ वर्षोंका वर्णन कर दिया। इनमें प्राणी निवास करते हैं। ये परस्पर गतिमान् और स्थिर हैं। देवताओ और मनुष्योंने अनेकों प्रकारसे इनकी वृद्धि देखी है। उनकी गणना करना असम्भव है, अतः मङ्गलार्थी मनुष्यको इनपर श्रद्धा रखनी चाहिये ॥ ७४—८७ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके भुवनकोष-वर्णनमें एक सौ चौदहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ११४ ॥

# एक सौ पंद्रहवाँ अध्याय

## राजा पुरूरवाके पूर्वजन्मका वृत्तान्त

मनुरुवाच

चरितं बुधपुत्रस्य जनार्दन मया श्रुतम्। श्रुतः श्राद्धविधिः पुण्यः सर्वपापप्रणाशनः ॥ १ ॥
धेन्वाः प्रसूयमानायाः फलं दानस्य मे श्रुतम्। कृष्णाजिनप्रदानं च वृषोत्सर्गस्तथैव च ॥ २ ॥
श्रुत्वा रूपं नरेन्द्रस्य बुधपुत्रस्य केशव। कौतूहलं समुत्पन्नं तन्ममाचक्ष्व पृच्छतः ॥ ३ ॥
केन कर्मविपाकेन स तु राजा पुरूरवाः। अवाप तादृशं रूपं सौभाग्यमपि चोत्तमम् ॥ ४ ॥
देवांस्त्रिभुवनश्रेष्ठान् गन्धर्वांश्च मनोरमान्। उर्वशी संगता त्यक्त्वा सर्वभावेन तं नृपम् ॥ ५ ॥

मनुने पूछा—जनार्दन! मैंने आपके मुखसे बुधपुत्र राजा पुरूरवाका जीवन-चरित्र तो सुना और समस्त पापोंका विनाश करनेवाली पुण्यमयी श्राद्धविधिका भी श्रवण किया तथा ब्याती हुई गौके दानका, काले मृग-चर्मके दानका एवं वृषोत्सर्गका भी फल सुन लिया, परंतु केशव! बुधपुत्र नरेश्वर पुरूरवाके रूपको सुनकर मुझे महान् कौतूहल उत्पन्न हो गया है, इसीलिये पूछ रहा हूँ। अब आप मुझे यह बतलाइये कि किस कर्मके परिणामस्वरूप राजा पुरूरवाको वैसा सुन्दर रूप और उत्तम सौभाग्य प्राप्त हुआ था? ( जिसपर मोहित होकर अप्सराओंमें श्रेष्ठ ) उर्वशी त्रिलोकीमें श्रेष्ठ देवताओं और सौन्दर्यशाली गन्धर्वोंका त्याग करके सब प्रकारसे राजा पुरूरवाकी सङ्गिनी बनी थी ॥ १—५ ॥

मत्स्य उवाच

शृणु कर्मविपाकेन येन राजा पुरूरवाः। अवाप तादृशं रूपं सौभाग्यमपि चोत्तमम् ॥ ६ ॥
अतीते जन्मनि पुरा योऽयं राजा पुरूरवाः। पुरूरवा इति ख्यातो मद्रदेशाधिपो हि सः ॥ ७ ॥
चाक्षुषस्यान्वये राजा चाक्षुषस्यान्तरे मनोः। स वै नृपगुणैर्युक्तः केवलं रूपवर्जितः ॥ ८ ॥

**मत्स्यभगवान्ने कहा**—राजन् ! राजा पुरूरवाको जिस कर्मके फलस्वरूप वैसे सुन्दर रूप और उत्तम सौभाग्यकी प्राप्ति हुई थी, वह बतला रहा हूँ, सुनो। यह राजा पुरूरवा पूर्वजन्ममें भी पुरूरवा नामसे ही विख्यात था। यह चाक्षुष मन्वन्तरमें चाक्षुष मनुके वंशमें उत्पन्न होकर मद्रदेश ( पंजाबका पश्चिमोत्तर भाग )का अधिपति था ( जहाँका राजा शल्य तथा पाण्डुपत्नी माद्री थी )। उस समय इसमें राजाओंके सभी गुण तो विद्यमान थे, पर वह केवल रूपरहित अर्थात् कुरूप था। ( मत्स्य भगवान्‌द्वारा आगे कहे जानेवाले प्रसङ्गको ऋषियोंके पूछनेपर सूतजीने वर्णन किया है, अतः इसके आगे पुनः वही प्रसङ्ग चलाया गया है ) ॥ ६—८ ॥

ऋषय ऊचुः

**पुरूरवा मद्रपतिः कर्मणा केन पार्थिवः। बभूव कर्मणा केन रूपवांश्चैव सूतज ॥ ९ ॥**

**ऋषियोंने पूछा**—सूतनन्दन ! राजा पुरूरवा किस कर्मके फलस्वरूप मद्रदेशका स्वामी हुआ तथा किस कर्मके परिणामस्वरूप परम सौन्दर्यशाली हुआ ? यह बतलाइये ॥ ९ ॥

सूत उवाच

**द्विजग्रामे द्विजश्रेष्ठो नाम्ना चासीत् पुरूरवाः। नद्याः कूले महाराजः पूर्वजन्मनि पार्थिवः ॥ १० ॥**
**स तु मद्रपती राजा यस्तु नाम्ना पुरूरवाः। तस्मिञ्जन्मन्यसौ विप्रो द्वादश्यां तु सदानघ ॥ ११ ॥**
**उपोष्य पूजयामास राज्यकामो जनार्दनम्। चकार सोपवासश्च स्नानमभ्यङ्गपूर्वकम् ॥ १२ ॥**
**उपवासफलात् प्राप्तं राज्यं मद्रेष्वकण्टकम्। उपोषितस्तथाभ्यङ्गाद् रूपहीनो व्यजायत ॥ १३ ॥**
**उपोषितैर्नरैस्तस्मात् स्नानमभ्यङ्गपूर्वकम् । वर्जनीयं प्रयत्नेन रूपघ्नं तत्परं नृप ॥ १४ ॥**
**एतद् वः कथितं सर्वं यद् वृत्तं पूर्वजन्मनि। मद्रेश्वरानुचरितं शृणु तस्य महीपतेः ॥ १५ ॥**
**तस्य राजगुणैः सर्वैः समुपेतस्य भूपतेः। जनानुरागो नैवासीद् रूपहीनस्य तस्य वै ॥ १६ ॥**
**रूपकामः स मद्रेशस्तपसे कृतनिश्चयः। राज्यं मन्त्रिगतं कृत्वा जगाम हिमपर्वतम् ॥ १७ ॥**
**व्यवसायद्वितीयस्तु पद्भ्यामेव महायशाः।**
**द्रष्टुं स तीर्थसदनं विषयान्ते स्वके नदीम्। ऐरावतीति विख्यातां ददर्शातिमनोरमाम् ॥ १८ ॥**
**तुहिनगिरिभवां महौघवेगां तुहिनगभस्तिसमानशीतलोदाम्।**
**तुहिनसदृशहैमवर्णपुञ्जां तुहिनयशाः सरितं ददर्श राजा ॥ १९ ॥**

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे मद्रेश्वरस्य तपोवनागमनं नाम पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११५ ॥*

**सूतजी कहते हैं**—ऋषियो ! पूर्वजन्ममें यह राजा पुरूरवा किसी नदीके तटवर्ती ब्राह्मणोंके एक गाँवमें श्रेष्ठ ब्राह्मण था। उस समय भी इसका नाम पुरूरवा ही था। अनघ ! वह मद्रदेशका स्वामी, जो राजा पुरूरवाके नामसे विख्यात था, उस जन्ममें ब्राह्मणरूपसे राज्यप्राप्तिकी कामनासे युक्त होकर सदा द्वादशी तिथिको उपवास कर भगवान् विष्णुका पूजन किया करता था। एक बार उसने व्रतोपवास करके शरीरमें तेल लगाकर स्नान कर लिया—जिस कारण उसे उपवासके फलस्वरूप मद्रदेशका निष्कण्टक राज्य तो प्राप्त हुआ, परंतु उपवासी होकर शरीरमें तेल लगानेके कारण वह कुरूप होकर पैदा हुआ। इसलिये व्रतोपवासी मनुष्यको प्रयत्नपूर्वक शरीरमें तेल लगाकर स्नान करना छोड़ देना चाहिये, क्योंकि यह सुन्दरताका विनाशक है। इस प्रकार उसके पूर्वजन्मका जो वृत्तान्त था, वह सब मैंने आप लोगोंको बतला दिया। अब उस भूपालके मद्रेश्वर हो जानेके बादका चरित्र सुनिये। यद्यपि राजा पुरूरवा सभी राज्यगुणोंसे सम्पन्न था, किंतु रूपहीन होनेके कारण उसके प्रति प्रजाओंका अनुराग नहीं ही था। अतः मद्र-नरेशने रूप-प्राप्तिकी कामनासे तपस्याका निश्चय करके राज्य-भार मन्त्रीको सौंपकर

हिमालय पर्वतकी ओर प्रस्थान किया। उस समय तपरूप व्यवसाय ही उसका सहायक था। वह महायशस्वी नरेश तीर्थस्थानोंका दर्शन करनेकी लालसासे पैदल ही चल रहा था। आगे बढ़नेपर उसने अपने देशकी सीमापर ऐरावती (रावी) नामसे विख्यात अत्यन्त मनोहारिणी नदीको देखा। वह नदी हिमालय पर्वतसे निकली हुई थी, अथाह जलके कारण गम्भीर वेगसे प्रवाहित हो रही थी, उसका जल चन्द्रमाके समान शीतल था और वह बर्फकी राशि-सरीखी उज्ज्वल प्रतीत हो रही थी। बर्फसदृश निर्मल यशवाले राजा पुरूरवाने उस नदीको देखा ॥ १०—१९ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें तपोवनागमन नामक एक सौ पंद्रहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ११५ ॥

# एक सौ सोलहवाँ अध्याय

## ऐरावती नदीका वर्णन

सूत उवाच

स ददर्श नदीं पुण्यां दिव्यां हैमवतीं शुभाम्। गन्धर्वैश्च समाकीर्णां नित्यं शक्रेण सेविताम्॥ १ ॥
सुरेभमदसंसिक्तां समंतात् तु विराजिताम्। मध्येन शक्रचापाभां तस्मिन्नहनि सर्वदा॥ २ ॥
तपस्विशरणोपेतां महाब्राह्मणसेविताम्। ददर्श तपनीयाभां महाराजः पुरूरवाः॥ ३ ॥
सितहंसावलिच्छन्नां काशचामरराजिताम्। साभिषिक्तामिव सतां पश्यन् प्रीतिं परां ययौ॥ ४ ॥
पुण्यां सुशीतलां हृद्यां मनसः प्रीतिवर्धिनीम्। क्षयवृद्धियुतां रम्यां सोममूर्तिमिवापराम्॥ ५ ॥
सुशीतशीघ्रपानीयां द्विजसंघनिषेविताम्। सुतां हिमवतः श्रेष्ठां चञ्चद्वीचिविराजिताम्॥ ६ ॥
अमृतस्वादुसलिलां तापसैरुपशोभिताम्। स्वर्गारोहणनिःश्रेणीं सर्वकल्मषनाशिनीम्॥ ७ ॥
अब्ध्यां समुद्रमहिषीं महर्षिगणसेविताम्। सर्वलोकस्य चौत्सुक्यकारिणीं सुमनोहराम्॥ ८ ॥
हितां सर्वस्य लोकस्य नाकमार्गप्रदायिकाम्। गोकुलाकुलतीरान्तां रम्यां शैवालवर्जिताम्॥ ९ ॥
हंससारससंघुष्टां जलजैरुपशोभिताम्। आवर्तनाभिगम्भीरां द्वीपोरुजघनस्थलीम्॥ १० ॥
नीलनीरजनेत्राभामुत्फुल्लकमलाननाम्।
हिमाभफेनवसनां चक्रवाकाधरां शुभाम्। बलाकापङ्क्तिदशनां चलन्मत्स्यावलिभ्रुवम्॥ ११ ॥
स्वजलोद्भूतमातङ्गरम्यकुम्भपयोधराम्। हंसनूपुरसंघुष्टां मृणालवलयावलीम्॥ १२ ॥

**सूतजी कहते हैं**—ऋषियो! वह मङ्गलकारिणी एवं पुण्यमयी दिव्य नदी ऐरावती हिमालयपर्वतसे निकली हुई थी। वह (जलक्रीडार्थ आये हुए) गन्धर्वोंसे भरी हुई, इन्द्रद्वारा सदा सेवित, चारों ओरसे ऐरावतके मद-जलसे अभिषिक्त होनेके कारण सुशोभित और मध्यमें इन्द्र-धनुषके समान चमक रही थी। उसके तटपर तपस्वियोंके आश्रम बने हुए थे। वह श्रेष्ठ ब्राह्मणोंद्वारा सुसेवित तथा तपाये हुए सुवर्णके समान चमक रही थी। ऐसी नदीको उस दिन महाराज पुरूरवाने देखा। वह श्वेत वर्णवाले हंसोंकी पङ्क्तियोंसे आच्छन्न, काश-पुष्परूपी चँवरसे सुशोभित और सत्पुरुषोंद्वारा नहलायी गयी-सी दीख रही थी। उसे देखकर राजाको परम प्रसन्नता प्राप्त हुई। वह पुण्यमयी नदी शीतल जलसे परिपूर्ण, मनोहारिणी, मनकी प्रसन्नता बढ़ानेवाली, ह्रास और वृद्धिसे संयुक्त, रमणीय, दूसरी चन्द्र-मूर्तिके समान उज्ज्वल, अत्यन्त शीतल और वेगसे बहनेवाले जलसे संयुक्त, ब्राह्मणों अथवा पक्षिसमूहोंद्वारा सुसेवित, हिमालयकी श्रेष्ठ पुत्रीभूत, लोल लहरोंसे सुशोभित, अमृतके समान सुस्वादु जलसे परिपूर्ण, तपस्वियोंद्वारा सुशोभित, स्वर्गपर चढ़नेके लिये सोपान-सदृश, समस्त

पापोंकी विनाशिनी, सर्वश्रेष्ठ, समुद्रकी पटरानी, महर्षिगणोंद्वारा सेवित, सभी लोगोंके मनमें उत्सुकता प्रकट करनेवाली, परम मनोहर, सभी लोगोंकी हित-कारिणी, स्वर्गका मार्ग प्रदान करनेवाली, गोसमूहोंसे व्याप्त तट-प्रान्तवाली, परम सुन्दर, सेवाररहित, हंस तथा सारस पक्षियोंके शब्दसे गूँजित, कमलोंसे सुशोभित, भँवररूपी गहरी नाभिसे युक्त, द्वीपरूपी ऊरु एवं जघन-भागवाली, नीले कमलरूपी नेत्रकी शोभासे युक्त, खिले हुए कमल-पुष्परूपी मुखवाली, हिम ( बर्फ )-तुल्य उज्ज्वल फेनरूपी वस्त्रसे युक्त, चक्रवाकरूपी होठोंवाली, कल्याणमयी, बगुलोंकी पङ्क्तिरूपी दाँतोंसे युक्त, चञ्चल मछलियोंकी कतारकी-सी भौंहोंवाली, अपने जलके घुमावसे बने हुए हाथीके रमणीय गण्डस्थलरूपी स्तनोंसे युक्त, हंसरूपी नूपुरके झंकारसे संयुक्त तथा कमलनालरूपी कंकणोंसे सुशोभित थी ॥ १–१२ ॥

तस्यां रूपमदोन्मत्ता गन्धर्वानुगताः सदा । मध्याह्नसमये राजन् क्रीडन्त्यप्सरसां गणाः ॥ १३ ॥
तामप्सरोविनिर्मुक्तं वहन्तीं कुङ्कुमं शुभम् । स्वतीरद्रुमसम्भूतनानावर्णसुगन्धिनीम् ॥ १४ ॥
तरङ्गव्रातसंक्रान्तसूर्यमण्डलदुर्दृशम् । सुरेभजनिताघातविकूलद्वयभूषिताम् ॥ १५ ॥
शक्रेभगण्डसलिलैर्देवस्त्रीकुचचन्दनैः । संयुक्तं सलिलं तस्याः षट्पदैरुपसेव्यते ॥ १६ ॥
तस्यास्तीरभवा वृक्षाः सुगन्धकुसुमाचिताः । तथापकृष्टसम्भ्रान्तभ्रमरस्तनिताकुला ॥ १७ ॥
यस्यास्तीरे रतिं यान्ति सदा कामवशा मृगाः । तपोवनाश्च ऋषयस्तथा देवाः सहाप्सराः ॥ १८ ॥
लभन्ते यत्र पूताङ्गा देवेभ्यः प्रतिमानिताः । स्त्रियश्च नाकबहुलाः पद्मेन्दुप्रतिमाननाः ॥ १९ ॥
या बिभर्त्ति सदा तोयं देवसङ्घैरपीडितम् । पुलिन्दैर्नृपसङ्घैश्च व्याघ्रवृन्दैरपीडितम् ॥ २० ॥
सतामरसपानीयां सतारगगनामलाम् । स तां पश्यन् ययौ राजा सतामीप्सितकामदाम् ॥ २१ ॥
यस्यास्तीररुहैः कान्तैः पूर्णैश्चन्द्रांशुसंनिभैः ।
राजते विविधाकारै रम्यं तीरं महाद्रुमैः । या सदा विविधैर्विप्रैर्देवैश्चापि निषेव्यते ॥ २२ ॥
या च सदा सकलौघविनाशं भक्तजनस्य करोत्यचिरेण ।
यानुगता सरितां हि कदम्बैर्यानुगता सततं हि मुनीन्द्रैः ॥ २३ ॥
या हि सुतानिव पाति मनुष्यान् या च युता सततं हिमसङ्घैः ।
या च युता सततं सुरवृन्दैर्या च जनैः स्वहिताय श्रिता वै ॥ २४ ॥
युक्ता च केसरिगणैः करिवृन्दजुष्टा संतानयुक्तसलिलापि सुवर्णयुक्ता ।
सूर्यांशुतापपरिवृद्धकदम्बवृक्षा शीतांशुतुल्ययशसा ददृशे नृपेण ॥ २५ ॥

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे भुवनकोषे सुरनदीवर्णनं नाम षोडशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११६ ॥*

राजन् ! उस नदीमें दोपहरके समय अपनी सुन्दरताके मदसे उन्मत्त हुई यूथ-की-यूथ अप्सराएँ गन्धर्वोंके साथ सदा क्रीडा करती थीं । उन अप्सराओंके शरीरसे गिरे हुए सुन्दर कुङ्कुमको बहानेवाली वह नदी अपने तटपर उगे हुए वृक्षोंसे गिरे हुए पुष्पोंके कारण रंग-बिरंगवाली तथा सुगन्धसे व्याप्त थी, उसके तरंग-समूहसे आच्छादित होनेके कारण सूर्यमण्डलका दीखना कठिन हो गया था । वह ऐरावतद्वारा किये गये आघातसे चिह्नित तटोंसे विभूषित थी । उसका जल ऐरावतके गण्डस्थलसे बहते हुए मद-जल तथा देवाङ्गनाओंके स्तनोंपर लगे हुए चन्दनोंसे युक्त था, जिसपर भौंरे मँडरा रहे थे । उसके तटपर उगे हुए वृक्ष सुगन्धित पुष्पोंसे लदे हुए तथा सुगन्धके लोभसे आकृष्ट हुए चञ्चल भौंरोंकी गुंजारसे व्याप्त थे । जिसके तटपर कामके वशीभूत हुए मृग हिरनियोंके साथ विहार करते थे तथा वहाँ तपोवन, ऋषिगण, अप्सराओंसमेत

देवगण, देवताओंके समान सुन्दर एवं पवित्र अङ्गोंवाले अन्य पुरुष एवं कमल और चन्द्रमाकी-सी मुखवाली स्वर्गवासिनी स्त्रियाँ भी पायी जाती थीं, जो देवगणो, पुलिन्दों ( जंगली जातियों ), नृपसमूहों और व्याघ्रदलोंसे अपीडित अर्थात् परम पवित्र जल धारण करती थी, जो कमलयुक्त जल धारण करनेके कारण तारिकाओं-सहित निर्मल आकाशके समान सुशोभित तथा सत्पुरुषोंकी अभीष्ट कामनाओंको पूर्ण करनेवाली थी, उसे देखते हुए राजा पुरूरवा आगे बढ़े । जिस नदीके रमणीय तट तीरभूमिमें उगे हुए पूर्णिमाके चन्द्रमाकी किरणोंके समान उज्ज्वल काश-पुष्पो तथा अनेकों प्रकारके विशाल वृक्षोंसे सुशोभित थे, जो सदा विविध मतावलम्बी ब्राह्मणों और देवताओंसे सुसेवित थी, जो सदा भक्तजनोंके सम्पूर्ण पापोंका शीघ्र ही विनाश कर देती थी, जिसमें बहुत-सी छोटी-छोटी नदियाँ आकर मिली थीं, जो निरन्तर मुनीश्वरोंद्वारा सेवित थी, जो पुत्रकी तरह मनुष्योंका पालन करती थी, जो सदा हिम (बर्फ) राशिसे आच्छादित रहती थी, जो निरन्तर देवगणोंसे संयुक्त रहती थी, अपना कल्याण करनेके लिये मनुष्य जिसका आश्रय लेते थे, जिसके किनारे झुंड-के-झुंड सिंह घूमते रहते थे, जो हाथी-समूहोंसे सेवित थी, जिसका जल कल्पवृक्षके पुष्पोंसे युक्त और सुवर्णके समान चमकीला था तथा जिसके तटवर्ती कदम्ब-वृक्ष सूर्यकी किरणोंके तापसे बढ़े हुए थे—ऐसी ऐरावती नदीको चन्द्रमा-सरीखे निर्मल यशवाले राजा पुरूरवाने देखा ॥ १३—२५ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके भुवनकोष-वर्णनप्रसंगमें सुरनदी-वर्णन नामक एक सौ सोलहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ११६ ॥
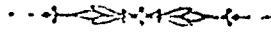
# एक सौ सत्रहवाँ अध्याय

## हिमालयकी अद्भुत छटाका वर्णन

सूत उवाच

आलोकयन् नदीं पुण्यां तत्समीरहृतश्रमः । स गच्छन्नेव ददृशे हिमवन्तं महागिरिम् ॥ १ ॥
खमुल्लिखद्भिर्बहुभिर्वृतं शृङ्गैस्तु पाण्डुरैः । पक्षिणामपि सञ्चारैर्विना सिद्धगतिं शुभाम् ॥ २ ॥
नदीप्रवाहसञ्जातमहाशब्दैः समन्ततः । असंश्रुतान्यशब्दं तं शीततोयं मनोरमम् ॥ ३ ॥
देवदारुवनै नीलैः कृताधोवसनं शुभम् । मेघोत्तरीयकं शैलं ददर्श स नराधिपः ॥ ४ ॥
श्वेतमेघकृतोष्णीषं चन्द्रार्कमुकुटं क्वचित् । हिमानुलिप्तसर्वाङ्गं क्वचिद् धातुविमिश्रितम् ॥ ५ ॥
चन्दनेनानुलिप्ताङ्गं दत्तपञ्चाङ्गुलं यथा ।
शीतप्रदं निदाघेऽपि शिलाविकटसङ्कटम् । सालक्तकैरप्सरसां मुद्रितं चरणैः क्वचित् ॥ ६ ॥
क्वचित् संस्पृष्टसूर्यांशुं क्वचिच्च तमसावृतम् । दरीमुखैः क्वचिद् भीमैः पिबन्तं सलिलं महत् ॥ ७ ॥
क्वचिद् विद्याधरगणैः क्रीडद्भिरुपशोभितम् । उपगीतं तथा मुख्यैः किन्नराणां गणैः क्वचित् ॥ ८ ॥
आपानभूमौ गलितैर्गन्धर्वाप्सरसां क्वचित् । पुष्पैः संतानकादीनां दिव्यैस्तमुपशोभितम् ॥ ९ ॥
सुप्तोत्थिताभिः शय्याभिः कुसुमानां तथा क्वचित् । मृदिताभिः समाकीर्णं गन्धर्वाणां मनोरमम् ॥ १० ॥
निरुद्धपवनैर्देशैर्नीलशाद्वलमण्डितैः । क्वचिच्च कुसुमैर्युक्तमत्यन्तरुचिरं शुभम् ॥ ११ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! ऐरावती नदीके जलका स्पर्श करके बहती हुई वायुके स्पर्शसे राजा पुरूरवाकी थकावट दूर हो गयी थी । वे उस पुण्यमयी नदीको देखते हुए आगे बढ़ रहे थे । इतनेमें उन्हें महान्

पर्वत हिमवान् दृष्टिगोचर हुआ। वह बहुत-से पीलापन लिये हुए उज्ज्वल वर्णवाले गगनचुम्बी शिखरोंसे युक्त था। वहाँ मङ्गलमयी सिद्ध-गतिके बिना पक्षियोंका भी संचार कठिन था अर्थात् वहाँ केवल सिद्धलोग ही जा सकते थे। वहाँ नदियोंके प्रवाहसे उत्पन्न हुआ महान् घर्घर शब्द चारों ओर गूँज रहा था, जिसके कारण दूसरा कोई शब्द सुनायी ही नहीं पड़ता था। वह शीतल जलसे परिपूर्ण एवं अत्यन्त मनोरम था। उसने देवदारुके नीले वनोंको अधोवस्त्रके स्थानपर और मेघोंको उत्तरीय वस्त्रके रूपमें धारण कर रखा था। ऐसे हिमालय पर्वतको राजा पुरूरवाने देखा। उसने कहीं तो श्वेत बादलोंकी पगड़ी बाँध रखी थी और कहीं सूर्य एवं चन्द्रमा उसके मुकुट-सरीखे दीख रहे थे। उसका सारा अङ्ग तो बर्फसे आच्छादित था, किंतु उसमें कहीं-कहीं गेरू आदि धातुएँ भी मिली हुई थीं, जिससे वह ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो श्वेत चन्दनसे लिपटे हुए शरीरपर पाँचों अङ्गुलियोंकी छाप लगा दी गयी हो। वह ग्रीष्म-ऋतुमें भी शीतलता प्रदान कर रहा था तथा बड़ी-बड़ी शिलाओंसे युक्त होनेके कारण अगम्य था। कहीं-कहीं अप्सराओंके महावरयुक्त चरणोंसे चिह्नित था, कहीं तो सूर्यकी किरणोंका स्पर्श हो रहा था, किंतु कहीं घोर अन्धकारसे आच्छादित था, कहीं भयानक गुफाओंके मुखोंमें जल गिर रहा था, जो ऐसा लगता था मानो वह अधिक-से-अधिक जल पी रहा हो। कहीं क्रीडा करते हुए यूथ-के-यूथ विद्याधरोंसे सुशोभित था, कहीं किंनरोंके प्रधान गणोंद्वारा गान हो रहा था, कहीं गन्धर्वों एवं अप्सराओंकी आपानभूमि ( मधुशाला ) में गिरे हुए कल्पवृक्ष आदि वृक्षोंके दिव्य पुष्पोंसे सुशोभित था और कहीं गन्धर्वोंकी शयन करके उठ जानेके पश्चात् मर्दित हुई शय्याओंके बिखरे हुए पुष्पोंसे आच्छादित होनेके कारण अत्यन्त मनोरम लग रहा था। कहीं ऐसे प्रदेश थे, जहाँ वायुकी पहुँच नहीं थी, किंतु वे हरी घासोंसे सुशोभित थे तथा उनपर फूल बिखरे हुए थे, जिससे वह अत्यन्त रुचिर एवं सुन्दर लग रहा था ॥ १—११ ॥

तपस्विशरणं शैलं कामिनामतिदुर्लभम्। मृगैर्यत्रानुचरितं दन्तिभिन्नमहाद्रुमम् ॥ १२ ॥
यत्र सिंहनिनादेन त्रस्तानां भैरवं रवम्। दृश्यते न च संभ्रान्तं गजानामाकुलं कुलम् ॥ १३ ॥
तटाश्च तापसैर्यत्र कुञ्जदेशैरलङ्कृताः। रत्नैर्यस्य समुत्पन्नैस्त्रैलोक्यं समलङ्कृतम् ॥ १४ ॥
अहीनशरणं नित्यमहीनजनसेवितम्। अहीनः पश्यति गिरिमहीनं रत्नसम्पदा ॥ १५ ॥
अल्पेन तपसा यत्र सिद्धिं प्राप्स्यन्ति तापसाः। यस्य दर्शनमात्रेण सर्वकल्मषनाशनम् ॥ १६ ॥
महाप्रपातसम्पातप्रपातादिगताम्बुभिः। वायुनीतैः सदा तृप्तिकृतदेशं क्वचित् क्वचित् ॥ १७ ॥
समालब्धजलैः शृङ्गैः क्वचिच्चापि समुच्छ्रितैः। नित्यार्कतापविषमैरगम्यैर्मनसा युतम् ॥ १८ ॥
देवदारुमहावृक्षव्रजशाखानिरन्तरैः। वंशस्तम्बवनाकारैः प्रदेशैरुपशोभितम् ॥ १९ ॥
हिमच्छत्रमहाशृङ्गं प्रपातशतनिर्झरम्। शाद्वलश्यामभुविषमं हिमसंरुद्धकन्दरम् ॥ २० ॥
दृष्ट्वैव तं चारुनितम्बभूमिं महानुभावः स तु मद्रनाथः।
बभ्राम तत्रैव मुदा समेतः स्थानं तदा किंचिदथाससाद ॥ २१ ॥

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे भुवनकोषे हिमवद्वर्णनं नाम सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११७ ॥*

वह पर्वत तपस्वियोंका आश्रयस्थान तथा कामीजनोंके लिये अत्यन्त दुर्लभ था, उसपर मृग आदि [illegible] पशु स्वच्छन्द विचरण [illegible] को हाथियोंने छिन्न-भिन्न कर दिया था. जहाँ सिंहकी गर्जनासे भयभीत हुए हाथियोंके दल व्याकुल होकर भयंकर चिग्घाड कर रहे थे, जिससे उनमें शान्ति नहीं

दीख रही थी, जिसके तटवर्ती प्रदेश निकुञ्जों और तपस्वियोंसे अलंकृत थे, जिससे उत्पन्न हुए रत्नोंसे त्रिलोकी अलंकृत होती है, वासुकि आदि बड़े-बड़े नागोंके आश्रयस्थान, सत्पुरुषोंद्वारा सेवित तथा रत्न-सम्पत्तियोंसे परिपूर्ण उस पर्वतको कोई सत्पुरुष ही देख सकता है। जहाँ तपस्वीलोग थोड़े ही तपसे सिद्धि प्राप्त कर लेते हैं, जिसके दर्शनमात्रसे सारा पाप नष्ट हो जाता है, जिसके किन्हीं-किन्हीं स्थलोंपर वायुद्वारा लाये गये बड़े-बड़े झरनोंके गिरनेसे उत्पन्न हुए छोटे-छोटे झरनोंके जलसे पर्वतीय प्रदेश तृप्त होते हैं। वहीं उसके ऊँचे-ऊँचे शिखर जलसे आप्लावित थे तथा कहीं सूर्यके तापसे संतप्त होनेके कारण अगम्य थे। वहाँ केवल मनसे ही जाया जा सकता था; जो कहीं-कहीं देवदारुके विशाल वृक्षोंकी शाखा-प्रशाखाओंसे घनीभूत हुए तथा कहीं बाँसोंकी झुरमुटरूपी वनोंके आकारसे युक्त प्रदेशोंसे सुशोभित था। कहीं छत्तेके समान बड़े-बड़े शिखर बर्फसे आच्छादित थे, कहीं सैकड़ों झरने झर रहे थे, कहीं जलके गिरनेसे उत्पन्न हुए शब्दोंसे ही जलकी प्रतीति होती थी, कहीं गुफाएँ बर्फसे ढकी हुई थीं। इस प्रकार सुन्दर नितम्बरूपी भूमिसे युक्त उस हिमालय पर्वतको देखकर महानुभाव मद्रेश्वर पुरूरवा हर्षपूर्वक वहीं ( अपने मनोऽनुकूल स्थानकी खोज करते हुए ) घूमने लगे। तब उन्हें एक स्थान प्राप्त हुआ ॥ १२—२१ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके भुवनकोपवर्णनमें हिमवद्वर्णन नामक एक सौ सत्रहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ११७ ॥

# एक सौ अठारहवाँ अध्याय

## हिमालयकी अनोखी शोभा तथा अत्रि-आश्रमका वर्णन

सूत उवाच

तस्यैव पर्वतेन्द्रस्य प्रदेशं सुमनोरमम्। अगम्यं मानुषैरन्यैर्दैवयोगादुपागतः ॥ १ ॥
ऐरावती सरिच्छ्रेष्ठा यस्माद् देशाद् विनिर्गता। मेघश्यामं च तं देशं द्रुमषण्डैरनेकशः ॥ २ ॥
शालैस्तालैस्तमालैश्च कर्णिकारैः सशामलैः। न्यग्रोधैश्च तथाश्वत्थैः शिरीषैः शिंशपाद्रुमैः ॥ ३ ॥
श्लेष्मातकैरामलकैर्हरीतकविभीतकैः। भूर्जैः समुञ्जकैर्बाणैर्वृक्षैः सप्तच्छदद्रुमैः ॥ ४ ॥
महानिम्बैस्तथा निम्बैर्निर्गुण्डीभिर्हरिद्रुमैः। देवदारुमहावृक्षैस्तथा कालेयकद्रुमैः ॥ ५ ॥
पद्मकैश्चन्दनैर्बिल्वैः कपित्थैः रक्तचन्दनैः। आम्रातारिष्टकाक्षोटैरन्दकैश्च तथार्जुनैः ॥ ६ ॥
हस्तिकर्णैः सुमनसैः कोविदारैः सुपुष्पितैः। प्राचीनामलकैश्चापि धनकैः समराटकैः ॥ ७ ॥
खर्जूरैर्नारिकेलैश्च प्रियालाम्रातकेङ्गुदैः। तन्तुमालैर्धवैर्भव्यैः काश्मीरीपर्णिभिस्तथा ॥ ८ ॥
जातीफलैः पूगफलैः कटुफलैर्लवलीफलैः। मन्दारैः कोविदारैश्च किंशुकैः कुसुमांशुकैः ॥ ९ ॥
यवासैः शमिपर्णासैर्वेतसैरम्बुवेतसैः। रक्तातिरङ्गनारङ्गैर्हिङ्गुभिः सप्रियङ्गुभिः ॥ १० ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! दैवयोगसे महाराज पुरूरवा उसी पर्वतराजके परम सुरम्य प्रदेशमें पहुँच गये, जो अन्य मनुष्योंके लिये अगम्य था। जहाँसे नदियोंमें श्रेष्ठ ऐरावती निकली हुई थी, वह देश मेघके समान श्यामल था तथा अनेकों प्रकारके वृक्षसमूहोंसे घिरा हुआ था। वहाँ शाल ( साखू ), ताल ( ताड़ ), तमाल, कर्णिकार ( कनेर ), शामल ( सेमल ), न्यग्रोध ( बरगद ), अश्वत्थ ( पीपल ), शिरीष ( सिरसा ),

शिंशपा ( सीसम ), श्लेष्मातक ( लहसोढ़ा ), आमलक ( आमला ), हरीतक ( हर्रे ), बिभीतक ( बहेड़ा ), भूर्ज ( भोजपत्र ), मुञ्जक ( मूँज ), बाणवृक्ष ( साखूका एक भेद ), सप्तच्छद ( छितवन ), महानिम्ब ( बकाइन ), नीम, निर्गुण्डी ( सिंदुवार या शेफाली ), हरिद्रुम ( दारु हल्दी ), विशाल वृक्ष देवदारु, कालेयक ( अगर ), पद्मक ( पद्माख ), चन्दन, बेल, कैथ, लाल चन्दन, आम्रात, ( एकलता ) अरिष्टक ( रीठा ), अक्षोट ( पीलू या अखरोट ), अब्जक ( नागरमोथा ), अर्जुन, सुन्दर पुष्पोंवाले हस्तिकर्ण ( पलाश ), खिले हुए फूलोंसे युक्त कोविदार ( कचनार ), प्राचीनामलक ( पुराने आमलकके वृक्ष ), धनक ( धनेश ), मराटक ( बाजरा ), खजूर, नारियल, प्रियाल ( पियार, इसके फलोंकी गिरी चिरौंजी होती है ), आम्रातक, ( आमड़ा ), इङ्गुद ( हिंगोट ), तन्तुमाल ( पटुआ ), सुन्दर धवके वृक्ष, काश्मरी, शालपर्णी, जातीफल ( जायफल ), पूगफल ( सुपारी ), कटुफल ( कायफर ), इलायचीकी लताओंके फल, मन्दार, कोविदार ( कचनार ), किंशुक ( पलाश ), कुसुमांशुक ( एक प्रकारका अशोक ), यवास ( जवासा ), शमी, तुलसी, बेंत, जलमें उगनेवाले बेंत, हल्के तथा गाढे लाल रंगवाले नारंगीके वृक्ष, हिंगु और प्रियङ्गु ( बड़ी पीपर )के वृक्ष भरे पडे थे ॥१-१०॥

रक्ताशोकैस्तथाशोकैराकल्लैरविचारकैः । मुचुकुन्दैस्तथा कुन्दैराटरूषपरूषकैः ॥ ११ ॥
किरातैः किंकिरातैश्च केतकैः श्वेतकेतकैः । शौभाञ्जनैरञ्जनैश्च सुकलिङ्गनिकोटकैः ॥ १२ ॥
सुवर्णचारुवसनैर्द्रुमश्रेष्ठैस्तथासनैः । मन्मथस्य शराकारैः सहकारैर्मनोरमैः ॥ १३ ॥
पीतयूथिकया चैव श्वेतयूथिकया तथा । जात्या चम्पकजात्या च तुम्बरैश्चाप्यतुम्बरैः ॥ १४ ॥
मोचैर्लोचैस्तु लकुचैस्तिलपुष्पकुशेशयैः । तथा सुपुष्पावरणैश्चव्यकैः कामिवल्लभैः ॥ १५ ॥
पुष्पाङ्कुरैश्च बकुलैः पारिभद्रहरिद्रकैः । धाराकदम्बैः कुटजैः कदम्बैर्गिरिकूटजैः ॥ १६ ॥
आदित्यमुस्तकैः कुम्भैः कुङ्कुमैः कामवल्लभैः । कटुफलैर्बदरैर्दीपैर्दीपैरिव महोज्ज्वलैः ॥ १७ ॥
रक्तैः पालीवनैः श्वेतैर्दाडिमैश्चम्पकद्रुमैः । बन्धूकैश्च सुबन्धूकैः कुञ्जकानां तु जातिभिः ॥ १८ ॥
कुसुमैः पाटलाभिश्च मल्लिकाकरवीरकैः । कुरवकैर्हिमवरैर्जम्बूभिर्नृपजम्बुभिः ॥ १९ ॥
बीजपूरैः सकर्पूरैर्गुरुभिश्चागुरुद्रुमैः । बिम्बैश्च प्रतिबिम्बैश्च संतानकवितानकैः ॥ २० ॥

साथ ही लाल अशोक, अशोक, आकल्ल ( अकरकरा ), अविचारक, मुचुकुन्द, कुन्द, आटरूष ( अडूसा ), परुपक ( फालसा ), किरात ( चिरायता ), किंकिरात ( बबूल ), केतकी, सफेद केतकी, शौभाञ्जन ( सहिजन ), अञ्जन, कलिंग ( सिरसा ), निकोटक ( अंकोल ), सुवर्णके-से चमकीले सुन्दर वल्कलसे युक्त विजयसालके वृक्ष, असना, कामदेवके बाणोंके-से आकारवाले सुन्दर आमके वृक्ष, पीली जूही, सफेद जूही, मालती, चम्पाके समूह, तुम्बर ( एक प्रकारकी धनिया ), अतुम्बर, मोच ( केला या सेमल ), लोच (गोरखमुण्डी), लकुच ( बड़हर ), तिल तथा कमलके फूल, कामियोंको प्रिय लगनेवाले पुष्पाङ्कुरों ( कुड्मलो ) तथा प्रफुल्ल पुष्पोंसे युक्त चव्य ( चाव नामक वृक्ष ), बकुल ( मौलसिरी ), पारिभद्र ( फरहद ), हरिद्रक, धाराकदम्ब ( कदम्बका एक भेद ), कुटज ( कुरैया ), पर्वत-शिखरोंपर उगनेवाले कदम्ब, आदित्यमुस्तक ( मदार ), कुम्भ ( गुग्गुलका वृक्ष ), कामदेवका प्रिय कुङ्कुम ( केसर ), कटुफल ( कायफर ), बेर, दीपककी भाँति अत्यन्त चमकीले कदम्ब, लाल रंगके पाली ( पालीवत )के वन, श्वेत अनार, चम्पाके वृक्ष, बन्धूक ( दुपहरिया ), सबन्धूक ( तिलका पौधा ), कुञ्जोंके समूह, लाल गुलाबके कुसुम, मल्लिका, करवीरक ( कनेर ), कुरबक ( लाल कटसरैया ), हिमवर, जम्बू

( छोटी जामुन या कठजामुन ), नृपजम्बू (बड़ी जामुन), बिजौरा, कपूर, गुरु, अगुरु, विम्ब ( एक फल ), प्रतिबिम्ब और संतानक वृक्ष ( कल्पवृक्ष ) वितानकी तरह फैले हुए थे ॥ ११—२० ॥

तथा गुग्गुलवृक्षैश्च हिन्तालधवलेक्षुभिः । तृणशून्यैः करवीरैरशोकैश्चक्रमर्दनैः ॥ २१ ॥
पीलुभिर्धातकीभिश्च चिरिविल्वैः समाकुलैः । तिन्तिडीकैस्तथा लोध्रैर्विडङ्गैः क्षीरिकाद्रुमैः ॥२२ ॥
अश्मन्तकैस्तथा कालैर्जम्बीरैः श्वेतकद्रुमैः । भल्लातकैरिन्द्रयवैर्वल्गुजैः सिन्दुवारकैः ॥ २३ ॥
करमर्दैः कासमर्दैरविष्टकवरिष्टकैः । रुद्राक्षैर्द्राक्षसम्भूतैः सप्ताह्वैः पुत्रजीवकैः ॥ २४ ॥
कङ्कोलकैर्लवङ्गैश्च त्वग्द्रुमैः पारिजातकैः । प्रतानैः पिप्पलीनां च नागवल्यश्च भागशः ॥ २५ ॥
मरीचस्य तथा गुल्मैर्नवमल्लिकया तथा । मृद्वीकामण्डपैर्मुख्यैरतिमुक्तकमण्डपैः ॥ २६ ॥
त्रपुषैर्नर्तिकानां च प्रतानैः सफलैः शुभैः । कूष्माण्डानां प्रतापैश्च अलाबूनां तथा क्वचित् ॥ २७ ॥
चिर्भिटस्य प्रतानैश्च पटोलीकारवेल्लकैः । कर्कोटकीवितानैश्च वर्ताकैर्बृहतीफलैः ॥ २८ ॥
कण्टकैर्मूलकैर्मूलशाकैस्तु विविधैस्तथा । कह्लारैश्च विदार्या च रुरूटैः स्वादुकण्टकैः ॥ २९ ॥
सभाण्डीरविदूसारराजजम्बूकवालुकैः । सुवर्चलाभिः सर्वाभिः सर्षपाभिस्तथैव च ॥ ३० ॥
काकोलीक्षीरकाकोली छत्रया चातिच्छत्रया । कासमर्दीसहासद्भिः सकन्दलसकाण्डकैः ॥ ३१ ॥
तथा क्षीरकशाकेन कालशाकेन चाप्यथ । शिम्बीधान्यैस्तथा धान्यैः सर्वैर्निरवशेषतः ॥ ३२ ॥

गुग्गुलवृक्ष, हिंताल, श्वेत ईख, केतकी, कनेर, अशोक, चक्रमर्दन ( चकवड़ ), पीलु, धातकी ( धव ), घने चिलविल, तिन्तिडीक ( इमली ), लोध, विडंग, क्षीरिकाद्रुम ( खिरनी ), अश्मन्तक ( लहसोड़ा ), काल ( रक्तचित्र-नामका एक वृक्ष ), जम्बीर, श्वेतक ( वरुण या वरना नामक एक वृक्षविशेष ), भल्लातक ( भिलावा ), इन्द्रयव, वल्गुज ( सोमराजी नामसे प्रसिद्ध ), सिन्दुवार, करमर्द ( करौंदा ), कासमर्द ( कसौंदी ), अविष्टक ( मिर्च ), वरिष्टक ( हुरहुर ), रुद्राक्षके वृक्ष, अंगूरकी लता, सप्तपर्ण, पुत्रजीवक ( पतजुग ), कंकोलक ( शीतलचीनी ), लौंग, त्वग्द्रुम ( दालचीनी ) और पारिजातके वृक्ष लहलहा रहे थे। कहीं पिप्पली ( पीपर ) तथा कहीं नागवल्लीकी लताएँ फैली हुई थीं। कहीं काली मिर्च और नवमल्लिकाकी लताओंके कुञ्ज बने हुए थे। कहीं अंगूर और माधवीकी लताओंके मण्डप शोभा पा रहे थे । कहीं फलोंसे लदी हुई नीले रंगके फलोंवाली लताएँ, कहीं कुम्हड़े तथा कदूकी लताएँ और कहीं घुँघुची, परवल, करैला एवं कर्कोटकी ( पीतघोषा ) की लताएँ शोभा दे रही थीं। कहीं बैगन और भटकटैयाके फल, मूली, जड़वाले शाक तथा अनेकों प्रकारके काँटेदार वृक्ष शोभा पा रहे थे। कहीं श्वेत कमल, कंदविदारी, रुरूट ( एक फलदार वृक्ष ), स्वादुकण्टक, ( सफेद पिंडालू ), भाण्डीर ( एक प्रकारका वट ), विदूसार ( विदारकन्द ), राजजम्बूक ( बड़ी जामुन ), वालुक ( एक प्रकारका आँवला ), सुवर्चला ( सूर्यमुखी ) तथा सभी प्रकारके सरसोंके पौधे भी विद्यमान थे । काकोली ( कंकोल ), क्षीरकाकोली ( कंकोलका एक भेद ), छत्रा ( छत्ता ), अतिच्छत्रा ( तालमखाना ), कासमर्दी ( अडूसा ), कन्दल ( केलेका एक भेद ), काण्डक ( करैला ), क्षीरशाक ( दूधी ), कालशाक ( करेमू ) नामक शाकों, सेमकी लताओं तथा सभी प्रकारके अन्नोंके पौधोंसे वह सारा प्रदेश सुशोभित हो रहा था ॥ २१—३२ ॥

औषधीभिर्विचित्राभिर्दीप्यमानाभिरेव च । आयुष्याभिर्यशस्याभिर्वल्याभिश्च नराधिप ॥ ३३ ॥
जरामृत्युभयघ्नीभिः क्षुद्भयघ्नीभिरेव च । सौभाग्यजननीभिश्च कृत्स्नाभिश्चाप्यनेकशः॥ ३४ ॥
तत्र वेणुलताभिश्च तथा कीचकवेणुभिः । काशैः शशाङ्कुकाशैश्च शरगुल्मैस्तथैव च ॥ ३५ ॥

कुशगुल्मैस्तथा रम्यैर्गुल्मैश्चेक्षोर्मनोरमैः। कार्पासजातिवर्गेण दुर्लभेन शुभेन च ॥ ३६ ॥
तथा च कदलीखण्डैर्मनोहारिभिरुत्तमैः। तथा मरकतप्रख्यैः प्रदेशैः शाद्वलान्वितैः ॥ ३७ ॥
इरापुष्पसमायुक्तैः कुङ्कुमस्य च भागशः। तगरातिविषामांसीग्रन्थिकैस्तु सुरागदैः ॥ ३८ ॥
सुवर्णपुष्पैश्च तथा भूमिपुष्पैस्तथापरैः। जम्बीरकैर्भूस्तृणकैः सरसैः सशुकैस्तथा ॥ ३९ ॥
शृङ्गवेराजमोदाभिः कुवेरकप्रियालकैः। जलजैश्च तथावर्णैर्नानावर्णैः सुगन्धिभिः ॥ ४० ॥
उदयादित्यसङ्काशैः सूर्यचन्द्रनिभैस्तथा। तपनीयसवर्णैश्च अतसीपुष्पसन्निभैः ॥ ४१ ॥
शुकपत्रनिभैश्चान्यैः स्थलपत्रैश्च भागशः। पञ्चवर्णैः समाकीर्णैर्बहुवर्णैस्तथैव च ॥ ४२ ॥
द्रष्टुर्दृष्ट्या हितमुदैः कुमुदैश्चन्द्रसन्निभैः। तथा वह्निशिखाकारैर्गजवक्त्रोत्पलैः शुभैः ॥ ४३ ॥
नीलोत्पलैः सकह्लारैर्गुञ्जातककसेरुकैः। शृङ्गाटकमृणालैश्च करटै राजतोत्पलैः ॥ ४४ ॥
जलजैः स्थलजैर्मूलैः फलैः पुष्पैर्विशेषतः। विविधैश्चैव नीवारैर्मुनिभोज्यैर्नराधिप ॥ ४५ ॥

नरेश्वर ! वहाँ आयु, यश और बल प्रदान करनेवाली, वृद्धावस्था और मृत्युके भयको दूर करनेवाली, भूख-प्यासके कष्टकी विनाशिका एवं सौभाग्य-प्रदायिनी सारी ओषधियाँ चित्र-विचित्ररूपमें देदीप्यमान हो रही थीं। वहाँ बाँसकी लताएँ फैली थीं तथा पोले बाँस हवाके संघर्षसे शब्द कर रहे थे। चन्द्रमाके समान उज्ज्वल कास-पुष्पों, सरपत, कुश और ईखके परम मनोहर रमणीय झाड़ियों तथा मनोरम एवं दुर्लभ कपास और मालतीके वृक्षों अथवा लताओंसे वह वन्य प्रदेश सुशोभित हो रहा था। वहाँ मनको चुरा लेनेवाले उत्तम जातिके केलेके वृक्ष भी लहलहा रहे थे। कोई-कोई प्रदेश मरकतमणिके तुल्य हरी-हरी घासोंसे हरे-भरे थे। कहीं कुङ्कुम और इरा ( एक प्रकारकी नशीली मीठी लता ) के पुष्प बिखरे हुए थे। कहीं तगर, अति-विषा ( अतीस नामकी जहरीली ओषधि ), जटामासी और गुग्गुलकी भीनी सुगन्ध फैल रही थी। कहीं कनेरके पुष्पों, भूमिपर फैली हुई लताओंके फूलों, जम्बीर-वृक्षों और घासोंसे भूमि सुहावनी लग रही थी, जिसपर तोते विचर रहे थे। कहीं शृङ्गवेर ( अदरख ), अजमोदा, कुवेरक ( तुनि ) और प्रियालक ( छोटी पियार ) के वृक्ष शोभा पा रहे थे तो कहीं अनेकों रंगोंके सुगन्धित कमलोंके पुष्प खिले हुए थे। उनमें कुछ पुष्प उगते हुए सूर्यके समान लाल, कुछ सूर्य-सरीखे चमकीले एवं चन्द्रमाके-से उज्ज्वल थे, कुछ सुवर्ण-सदृश पीतोज्ज्वल, कुछ अलसीके पुष्पके समान नीले तथा कुछ तोतेके पंखके सदृश हरे थे। इस प्रकार वहाँकी भूमि इन पाँचों रंगोंवाले तथा अन्यान्य रंग-बिरंगे स्थलपुष्पोंसे आच्छादित थी। वह वनस्थली देखनेवालेकी दृष्टिको आनन्ददायक एवं चन्द्रमा-सरीखे उज्ज्वल कुमुद-पुष्पों तथा अग्निकी शिखाके सदृश एवं हाथीके मुखमें संलग्न उज्ज्वल उत्पल, नीले उत्पल, कह्लार, गुंजातक ( घुँघुची ), कसेरुक ( कसेरा ), शृङ्गाटक ( सिंघाड़ा ), कमलनाल, करट ( कुसुम्भ ) तथा चाँदीके समान उज्ज्वल उत्पलोंसे सुशोभित थी। इस प्रकार वह प्रदेश जल-कमल एवं स्थलकमल तथा मूल, फल और पुष्पोंसे विशेष शोभायमान था। नरेश्वर ! वहाँ मुनियोंके खाने-योग्य अनेकों प्रकारके नीवार ( तिन्नी ) भी उगे हुए थे ॥ ३३—४५ ॥

न तद्धान्यं न तत्सस्यं न तच्छाकं न तत् फलम्। न तन्मूलं न तत् कन्दं न तत् पुष्पं नराधिप ॥ ४६ ॥
नागलोकोद्भवं दिव्यं नरलोकभवं च यत्। अनूपोत्थं वनोत्थं च तत्र यन्नास्ति पार्थिवः ॥ ४७ ॥
सदा पुष्पफलं सर्वमजर्यमृतुयोगतः। मद्रेश्वरः स ददृशे तपसा ह्यतियोगतः ॥ ४८ ॥
ददृशे च तथा तत्र नानारूपान् पतत्त्रिणः। मयूरान् शतपत्रांश्च कलविङ्कांश्च कोकिलान् ॥ ४९ ॥
तदा कादम्बकान् हंसान् कोयष्टीन् खञ्जरीटकान्। कुररान् कालकूटांश्च खट्वाङ्गाँल्लुब्धकांस्तथा ॥ ५० ॥

गोक्ष्वेडकांस्तथा कुम्भान् धार्तराष्ट्राञ्छुकान् बकान् । धातुर्काश्चक्रवाकांश्च कटाकुण्ठिट्टिभान् भटान्॥ ५१ ॥
पुत्रप्रियाँल्लोहपृष्ठान् गोचर्मगिरिवर्तकान् । पारावतांश्च कमलान् सारिकाञ्जीवजीवकान् ॥ ५२ ॥
लाववर्तकवार्ताकान् रक्तवर्त्मप्रभद्रकान् । ताम्रचूडान् स्वर्णचूडान्कुक्कुटान् काष्ठकुक्कुटान् ॥ ५३ ॥
कपिञ्जलान् कलविङ्कांस्तथा कुङ्कुमचूडकान् । भृङ्गराजान् सीरपादान् भूलिङ्गाण्डिण्डिमान् नवान् ॥ ५४ ॥
मञ्जुलीतकदात्यूहान् भारद्वाजांस्तथा चषान् । एतांश्चान्यांश्च सुबहून् पक्षिसङ्घान् मनोहरान् ॥ ५५ ॥

नरेन्द्र ! ( यहाँतक कि ) नागलोक, स्वर्गलोक, मृत्युलोक, जलप्रा स्थान तथा वनमें उत्पन्न होनेवाला ऐसा कोई भी अनाज, धान्य, शाक, फल, मूल, कन्द और फूल नहीं था, जो वहाँ विद्यमान न हो अर्थात् सभी प्राप्य थे। वहाँके वृक्ष ऋतुओंके अनुकूल सदा फूलों और फलोंसे लदे रहते थे। महेश्वर पुरूरवाने अपनी तपस्याके प्रभावसे उस वनप्रान्तको देखा। राजाको वहाँ अनेकों प्रकारके रूप-रंगवाले पक्षी भी दीख पड़े। जैसे मोर, शतपत्र ( कठफोरवा ), कलविंक ( गौरैया ), कोयल, कादम्बक ( कलहंस ), हंस, कोयष्टि ( जलकुक्कुट ), खंजरीट ( खिड़रिच ), कुरर ( कराँकुल ), कालकूट ( जलकौआ ), लोभी खट्वाङ्ग ( पक्षी विशेष ), गोक्ष्वेडक ( हारिल ), कुम्भ (डोम कौआ ), धार्तराष्ट्र ( काली चोंच और काले पैरोंवाले हंस ), तोते, बगुले, निष्ठुर चक्रवाक, कटाकू ( कर्कश ध्वनि करनेवाले विशेष पक्षी ), टिटिहिरी, भट ( तीतर ), पुत्रप्रिय ( शरभ ), लोहपृष्ठ ( श्वेत चील्ह ), गोचर्म ( चरसा ), गिरिवर्तक ( बतख ), कबूतर, कमल ( सारस), मैना, जीवजीवक ( चकोर ), लवा, वर्तक ( बटेर ), वार्ताक ( बटेरोंकी एक जाति ), रक्तवर्त्म ( मुर्गा ), प्रभद्रक ( हंसका एक भेद ), ताम्रचूड ( लाल शिखावाले मुर्गे ), स्वर्णचूड ( स्वर्ण-सदृश शिखावाले मुर्गे ), सामान्य मुर्गे, काष्ठकुक्कुट ( मुर्गेका एक भेद ), कपिञ्जल ( पपीहा ), कलविंक ( गौरैया ), कुङ्कुमचूड ( केसर-सरीखी शिखावाले पक्षी ), भृङ्गराज ( पक्षिविशेष ), सीरपाद ( बड़ा सारस ), भूलिंग ( भूमिमें रहनेवाले पक्षी), डिण्डिम ( हारिल पक्षीकी एक जाति ), नव ( काक ), मञ्जुलीतक ( चीलहकी जातिविशेष ), दात्यूह ( जलकाक ), भारद्वाज ( भरदूल ) तथा चाष ( नीलकण्ठ )—इन्हें तथा इनके अतिरिक्त अन्यान्य बहुत-से मनोहर पक्षिसमूहोंको राजाने देखा ॥ ४६—५५ ॥

श्वापदान् विविधाकारान् मृगांश्चैव महामृगान् । व्याघ्रान् केसरिणः सिंहान् द्वीपिनः शरभान् वृकान् ॥५६॥
ऋक्षांस्तरक्षूंश्च बहून् गोलाङ्गूलान् सवानरान् । शशलोमान् सकादम्बान् मार्जारान् वायुवेगिनः ॥ ५७ ॥
तथा मत्तांश्च मातङ्गान् महिषान् गवयान् वृषान् । चमरान् सृमरांश्चैव तथा गौरखरानपि ॥ ५८ ॥
उरभ्रांश्च तथा मेषान् सारङ्गानथ कूकुरान् । नीलांश्चैव महानीलान् करालान् मृगमातृकान्॥ ५९ ॥
सदंष्ट्रालोमशरभान् क्रौञ्चाकारकशम्बरान् । करालान् कृतमालांश्च कालपुच्छांश्च तोरणान् ॥ ६० ॥
उष्ट्रान् खड्गान् वराहांश्च तुरङ्गान् खरगर्दभान् । एतानद्विष्टान् महेशो विरुद्धांश्च परस्परम् ॥ ६१ ॥
अविरुद्धान् वने दृष्ट्वा विस्मयं परमं ययौ । तच्चाश्रमपदं पुण्यं बभूवात्रेः पुरा नृप ॥ ६२ ॥
तत्प्रसादात् प्रभायुक्तं स्थावरैर्जङ्गमैस्तथा । हिंसन्ति हि न चान्योन्यं हिंसकास्तु परस्परम् ॥ ६३ ॥

इसी प्रकार राजाको वहाँ विभिन्न रूप-रंगवाले जंगली जीव भी देखनेको मिले। जैसे—हिरन, बारह-सिंघे, बाघ, सिंह, शेर, चीता, शरभ ( अष्टपदी ), भेड़िया, रीछ, तरक्षु ( लकड़ा ), बहुत-से लाङ्गूली वानर, सामान्य वानर, वायु-सरीखे वेगशाली खरगोश, लोमड़ी, वनबिलाव, बिलाव, मतवाले हाथी, भैंसे, नीलगाय, बैल, चमर ( सुरा गाय ), सृमर ( बालमृग ), श्वेत रंगके गधे, भेंड़, मेढ, मृग, कुत्ते, नीले एवं गाढे नीले रंगवाले भयानक मृगमातृक ( कस्तूरी मृग ), बड़ी-बड़ी दाढ़ों एवं रोमोंसे युक्त शरभ ( अष्टपदी ), क्रौंच पक्षीके आकारवाले शम्बर ( साबर मृग ), भयानक कृतमाल ( एक प्रकारका हिरन ), काली पूँछोंवाले तोरण

( सियार ), ऊँट, गैंडे, सूअर, घोड़े, खच्चर, गधे* आदि जीवोंको उस वनमें परस्पर विरुद्धस्वभाववाले होनेपर भी द्वेषरहित होकर निवास करते देखकर मद्रेश्वर पुरूरवा विस्मयविमुग्ध हो गये । राजन् ! पूर्वकालमें उसी स्थानपर महर्षि अत्रिका पुण्यमय आश्रम था । उन ऋषिकी कृपासे वह प्रदेश स्थावर-जङ्गम प्राणियोंसे भरा हुआ अत्यन्त सुहावना था और वहाँ हिंसक जीव भी परस्पर एक दूसरेकी हिंसा नहीं करते थे ॥५६—६३॥

क्रव्यादाः प्राणिनस्तत्र सर्वे क्षीरफलाशनाः । निर्मितास्तत्र चात्यर्थमत्रिणा सुमहात्मना ॥ ६४ ॥
शैलानितम्बदेशेषु न्यवसच्च स्वयं नृपः । पयः क्षरन्ति ते दिव्यममृतस्वादुकण्टकम् ॥ ६५ ॥
क्वचिद् राजन् महिष्यश्च क्वचिदाजाश्च सर्वशः । शिलाः क्षीरेण सम्पूर्णा दध्ना चान्यत्र वा वहिः॥ ६६ ॥
सम्पश्यन् परमां प्रीतिमवाप वसुधाधिपः । सरांसि तत्र दिव्यानि नद्यश्च विमलोदकाः ॥ ६७ ॥
प्रणालिकानि चोष्णानि शीतलानि च भागशः । कन्दराणि च शैलस्य सुसेव्यानि पदे पदे ॥ ६८ ॥
हिमपातो न तत्रास्ति समन्तात् पञ्चयोजनम् । उपत्यका सुशैलस्य शिखरस्य न विद्यते ॥ ६९ ॥
तत्रास्ति राजञ्छिखरं पर्वतेन्द्रस्य पाण्डुरम् । हिमपातं घना यत्र कुर्वन्ति सहिताः सदा ॥ ७० ॥
तत्रास्ति चापरं शृङ्गं यत्र तोयघना घनाः । नित्यमेवाभिवर्षन्ति शिलाभिः शिखरं वरम् ॥ ७१ ॥
तदाश्रमं मनोहारि यत्र कामधरा धरा । सुरमुख्योपयोगित्वाच्छाखिनां सफलाः फलाः॥ ७२ ॥
सदोपगीतभ्रमरसुरस्त्रीसेवितं परम् । सर्वपापक्षयकरं शैलस्येव प्रहारकम् ॥ ७३ ॥
वानरैः क्रीडमानैश्च देशाद् देशान् नराधिप । हिमपुञ्जाः कृतास्तत्र चन्द्रबिम्बसमप्रभाः ॥ ७४ ॥
तदाश्रमं समंताच्च हिमसंरुद्धकन्दरैः । शैलवाटैः परिवृतमगम्यं मनुजैः सदा ॥ ७५ ॥
पूर्वाराधितभावोऽसौ महाराजः पुरूरवाः । तदाश्रमपदं प्राप्तो देवदेवप्रसादतः ॥ ७६ ॥
तदाश्रमं श्रमशमनं मनोहरं मनोहरैः कुसुमशतैरलंकृतम् ।
कृतं स्वयं रुचिरमथात्रिणा शुभं शुभावहं तद् ददृशे स मद्रराट् ॥ ७७ ॥

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे भुवनकोशेऽत्र्याश्रमवर्णन नामाष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११८ ॥*

महर्षि अत्रिने उस आश्रममें ऐसा उत्तम वातावरण बना दिया था कि वहाँके सभी मांसभोजी जीव दूध और फलका ही आहार करते थे । राजन् ! मद्रेश्वरने पर्वतके उसी नितम्बप्रदेश ( निचले भाग ) में अपना निवास-स्थान बनाया । वहाँ सब ओर कहीं भैंसो तो कहीं बकरियोंके स्तनोंसे अमृतके समान स्वादिष्ट दिव्य दूध झरता रहता था, जिससे वहाँकी शिलाएँ भीतर-बाहर—सब ओर दूध एवं दहीसे सराबोर रहती थीं । यह देखकर भूपाल पुरूरवाको परम हर्ष प्राप्त हुआ । वहाँ दिव्य सरोवर थे तथा निर्मल जलसे भरी हुई नदियाँ बह रही थीं । नालियोंमें कहीं गरम तो कहीं शीतल जल बह रहा था । उस पर्वतकी कन्दराएँ पग-पगपर सेवन करने योग्य थीं । उस आश्रमके चारों ओर पाँच योजनके घेरेमें हिम-पात नहीं होता था । उस सुन्दर पर्वतके शिखरके नीचे उपत्यका ( मैदानी भूमि ) नहीं थी ( जिसके कारण वह प्रदेश जनशून्य था ) । राजन् ! वहाँ उस पर्वतराजका एक पीले रंगका शिखर है, जिसपर बादल संगठित होकर सदा हिमकी वर्षा किया करते हैं । वहीं एक दूसरा शिखर भी है, उस सुन्दर शिखरपर जलसे बोझिल हुए बादल बड़ी-बड़ी शिलाओंके साथ नित्य बरसते रहते हैं । जहाँ वह मनको लुभानेवाला आश्रम स्थित है, वहाँकी पृथ्वी कामनाओंको पूर्ण करनेवाली है । प्रधान देवताओंके उपयोगमें आनेके कारण वहाँके वृक्षोंके

* नामावलिमें एक ही नाम कई बार आये हैं, अतः उनसे उस जातिके विभिन्न भेदोंको समझना चाहिये ।

फल भी सफलताको प्राप्त करते रहते हैं। वह श्रेष्ठ आश्रम सदा भ्रमरोंकी गुंजारसे गुंजायमान एवं देवाङ्गनाओंसे सुसेवित तथा उस पर्वतके प्रहरीकी तरह सम्पूर्ण पापोंका विनाशक था। नरेश्वर! एक स्थानसे दूसरे स्थानपर क्रीडा करते हुए बन्दरोंने वहाँकी वर्फराशिको चाँदनीके समान उज्ज्वल बना दिया था। वह आश्रम चारों ओरसे हिमाच्छादित कन्दराओं और कँकरीले-पथरीले मार्गोंसे घिरा हुआ था, इसलिये वह मनुष्योंके लिये सदा अगम्य था। पूर्वजन्मकी आराधनाके प्रभावसे युक्त महाराज पुरूरवा देवाधिदेव भगवान्‌की कृपासे उस आश्रमपर पहुँचे थे। वह आश्रम थकावटको दूर करनेवाला, मनोहर, मनोमोहक पुष्पोंसे अलंकृत, स्वयं महर्षिद्वारा सुन्दररूपमें निर्मित, मङ्गलमय एवं शुभकारक था, उसे महराज पुरूरवाने देखा॥ ६४—७७॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके भुवनकोश-वर्णन-प्रसङ्गमें अत्रि-आश्रमवर्णन नामक एक सौ अठारहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ११८॥

# एक सौ उन्नीसवाँ अध्याय

## आश्रमस्थ विवरमें पुरूरवा*का प्रवेश, आश्रमकी शोभाका वर्णन तथा पुरूरवाकी तपस्या

सूत उवाच

तत्र यौ तौ महाशृङ्गौ महावर्णौ महाहिमौ। तृतीयं तु तयोर्मध्ये शृङ्गमत्यन्तमुच्छ्रितम्॥ १॥
नित्यातप्तशिलाजालं सदाभ्रपरिवर्जितम्। तस्याधस्ताद् वृक्षगणो दिशां भागे च पश्चिमे॥ २॥
जातीलतापरिक्षिप्तं विवरं चारुदर्शनम्। दृष्ट्वैव कौतुकाविष्टस्तं विवेश महीपतिः॥ ३॥
तमसा चातिनिविडं नल्वमात्रं सुसंकटम्। नल्वमात्रमतिक्रम्य स्वप्रभाभरणोज्ज्वलम्॥ ४॥
तमुच्छ्रितमथात्यन्तं गम्भीरं परिवर्तुलम्। न तत्र सूर्यस्तपति न विराजति चन्द्रमाः॥ ५॥
तथापि दिवसाकारं प्रकाशं तदहर्निशम्। क्रोशाधिकपरीमाणं सरसा च विराजितम्॥ ६॥
समंतात् सरसस्तस्य शैललग्ना तु वेदिका। सौवर्णै राजतैर्वृक्षैर्विद्रुमैरुपशोभितम्॥ ७॥
नानामाणिक्यकुसुमैः सुप्रभाभरणोज्ज्वलैः। तस्मिन् सरसि पद्मानि पद्मरागच्छदानि तु॥ ८॥
वज्रकेशरजालानि सुगन्धीनि तथा युतम्। पत्रैर्मरकतैर्नीलैर्वैदूर्यस्य महीपते॥ ९॥
कर्णिकाश्च तथा तेषां जातरूपस्य पार्थिव।

**सूतजी कहते हैं—**ऋषियो! वहाँ सदा हिमाच्छादित तथा रंग-बिरंगे जो दो महान् शिखर थे, उनके बीचमें एक तीसरा शिखर था, जो अत्यन्त ऊँचा था। वह बादलोंसे सदा शून्य रहता था, जिससे उसकी शिलाएँ नित्य संतप्त बनी रहती थीं। उस शिखरके नीचे पश्चिम दिशामें वृक्षोंके समूह शोभा पा रहे थे। उन्हींके बीचमें एक अत्यन्त सुन्दर विवर (छिद्र) था, जो मालतीकी लताओंसे आच्छादित था। उसे देखते ही राजा पुरूरवा आश्चर्यचकित हो गये। तत्पश्चात् उन्होंने उस विवरमें प्रवेश किया। वह मार्ग चार सौ हाथ (एक फर्लांग) तक घने अन्धकारसे समावृत होनेके कारण अत्यन्त संकटमय था। उस चार सौ हाथकी दूरी पार कर लेनेपर राजा ऐसे स्थानपर पहुँचे, जो अपनी कान्तिसे ही उद्भासित हो रहा था। वह स्थान ऊँचा, अत्यन्त गम्भीर और गोलाकार था तथा एक कोसके विस्तारवाला था। यद्यपि वहाँ न सूर्य तपते थे न चन्द्रमा ही

* इस पुराणमें—यजुर्वेद ५। २, ऋग्वेद १०। ९५, शतपथ०ब्रा० ११। ५ आदिमें संकथित पुरूरवाके कथानकका सर्वाधिक विस्तारसे उपबृंहण हुआ है और कई बार उसकी पुनरुक्ति भी हुई है। इससे विक्रमोर्वशीयमें कालिदास एवं पार्जीटर आदि पाश्चात्त्य विद्वान् लेखक बहुत प्रभावित हुए हैं। निघण्टु ५। ४ तथा यास्कीय निरुक्त १०। ४६ एवं ऋग्वेद ८। ५। २। २ के अनुसार ये सूर्य या मूल प्राणतत्त्व हैं। पाणि० ६। ३। १३७ के अनुसार यहाँ 'पुरु' में दीर्घ हुआ है।

*

विराजमान थे, तथापि वह दिनकी भाँति रात-दिन प्रकाशयुक्त बना रहता था। वहाँ एक सरोवर भी था। जो सुवर्ण, चाँदी और मूँगेके समान रंग-बिरंगे वृक्षोंसे सुशोभित था। उन वृक्षोंमें नाना प्रकारके मणियोंके सदृश परमोत्कृष्ट कान्तिसे युक्त फूल खिले हुए थे। उस सरोवरके चारों ओर शिलाओंकी वेदी बनी हुई थी, भूपाल! उस सरोवरमें विभिन्न प्रकारके कमल खिले हुए थे, जिनके पुष्पदल पद्मरागमणि-सरीखे, केसर-समूह हीरेके-से और पत्ते नीले वैदूर्य मणिके समान चमक रहे थे और वे सुगन्धसे भरे हुए थे। उनकी कर्णिका ( छत्ता ) सुवर्णके समान चमकीली थी ॥ १—९½ ॥

तस्मिन् सरसि या भूमिः सा तु वज्रसमाकुला ॥ १० ॥
नानारत्नैरुपचिता जलजानां समाश्रया। कपर्दिकानां शुक्तीनां शङ्खानां च महीपते ॥ ११ ॥
मकराणां च मत्स्यानां चण्डानां कच्छपैः सह। तत्र मरकतखण्डानि वज्राणां च सहस्रशः ॥ १२ ॥
पद्मरागेन्द्रनीलानि महानीलानि पार्थिव। पुष्परागाणि सर्वाणि तथा कर्केतनानि च ॥ १३ ॥
तुत्थकस्य तु खण्डानि तथा शेषस्य भागशः। रा(ला)जावर्तस्य मुख्यस्य रुधिराक्षस्य चाप्यथ ॥ १४ ॥
सूर्येन्दुकान्तयश्चैव नीलो वर्णान्तिमश्च यः। ज्योतीरसस्य रम्यस्य स्यमन्तस्य च भागशः ॥ १५ ॥
सुरोरगवलक्षाणां स्फटिकस्य तथैव च। गोमेदपित्तकानां च धूलीमरकतस्य च ॥ १६ ॥
वैदूर्यसौगन्धिकयोस्तथा राजमणेर्नृप। वज्रस्यैव च मुख्यस्य तथा ब्रह्ममणेरपि ॥ १७ ॥
मुक्ताफलानि मुक्तानां ताराविग्रहधारिणीम् ॥ १८ ॥
सुखोष्णं चैव तत् तोयं स्नानाच्छीतविनाशनम्। वैदूर्यस्य शिला मध्ये सरसस्तस्य शोभना ॥ १९ ॥
प्रमाणेन तथा सा च द्वे च राजन् धनुःशते। चतुरस्रा तथा रम्या तपसा निर्मितात्रिणा ॥ २० ॥
बिलद्वारसमो देशो यत्र यत्र हिरण्मयः। प्रदेशः स तु राजेन्द्र द्वीपे तस्मिन् मनोहरे ॥ २१ ॥

उस सरोवरमें जो भूमि थी, वह हीरेसे आच्छादित थी, साथ ही वह नाना प्रकारके दूसरे रत्नोंसे भी मण्डित थी। महीपाल! वहाँ जलमें उत्पन्न होनेवाली कौड़ी, सीपी और शङ्ख भी वर्तमान थे। वह कछुओंके साथ-साथ भयानक घड़ियालों और मछलियोंका वासस्थान था। राजन्! उसमें कहीं मरकतमणि तथा हीरेके हजारों टुकडे पड़े थे। कहीं पद्मराग ( माणिक्य या लाल ), इन्द्रनील ( नीलम ), महानील, पुष्पराग ( पुखराज ), कर्केतन, तुत्थक तथा शेष मणियोंके खण्ड चमक रहे थे। कहीं लाजावर्त, मुख्य, रुधिराक्ष, सूर्यकान्त, चन्द्रकान्त, नीलवर्णान्तिक, ज्योतीरस, रम्य एवं स्यमन्तक मणियोंके टुकडे यत्र-तत्र बिखरे पडे थे। कहीं सुरमणि, सर्पमणि, वलक्षमणि और स्फटिकमणिकी चट्टानें चमक रही थीं, तो कहीं गोमेद, पित्तक, धूलीमणि, मरकत, वैदूर्य, सौगन्धिक, राजमणि, हीरा, मुख्य तथा ब्रह्ममणिके खण्ड दृष्टिगोचर हो रहे थे। कहीं-कहीं बिखरे हुए मोती* अपनी प्रभा फैला रहे थे, जो ताराओंके समान लग रहे थे। उस सरोवरका जल कुछ गुनगुना गरम था, जो स्नान करनेसे ठण्डकको दूर कर देता था। उस सरोवरके मध्यमें वैदूर्यमणिकी एक सुन्दर शिला थी। राजन्! उस रमणीय शिलाको महर्षि अत्रिने अपनी तपस्याके प्रभावसे निर्मित किया था। वह आठ सौ हाथ ( दो फर्लांग ) विस्तृत एवं चौकोर थी। राजेन्द्र! उस मनोहर द्वीपमें सारा प्रदेश बिलद्वारके समान स्वर्णमय था ॥ १०-२१ ॥

तथा पुष्करिणी रम्या तस्मिन् राजन् शिलातले। सुशीतामलपानीया जलजैश्च विराजिता ॥ २२ ॥
आकाशप्रतिमा राजंश्चतुरस्रा मनोहरा। तस्यास्तदुदकं स्वादु लघु शीतं सुगन्धिकम् ॥ २३ ॥

* यहाँ श्लोक ८ से लेकर १९ तकके—बारह श्लोकोंमें—३२ मुख्य मणियोंके उल्लेखपूर्वक सम्पूर्ण रत्नशास्त्रका संक्षेपमें निरूपण हुआ है। गरुडपुराण ६८—७८, विष्णुधर्मो० २। १५, युक्तिकल्पतरु, बृहत्संहिता, रत्नसारमें इनका विस्तृत परिचय है।

न क्षिणोति यथा कण्ठं कुक्षिं नापूरयत्यपि। तृप्तिं विधत्ते परमां शरीरे च महत् सुखम् ॥ २४ ॥
मध्ये तु तस्याः प्रासादं निर्मितं तपसात्रिणा। रुक्मसेतुप्रवेशान्तं सर्वरत्नमयं शुभम् ॥ २५ ॥
शशाङ्करश्मेः संकाशं प्रासादं राजतं हितम्। रम्यवैदूर्यसोपानं विद्रुमामलसारकम् ॥ २६ ॥
इन्द्रनीलमहास्तम्भं मरकतासक्तवेदिकम्। वज्रांशुजालैः स्फुरितं रम्यं दृष्टिमनोरमम् ॥ २७ ॥
प्रासादे तत्र भगवान् देवदेवो जनार्दनः। भोगिभोगावलीसुप्तः सर्वालंकारभूषितः ॥ २८ ॥
जान्वाच्य कुञ्चितस्त्वेको देवदेवस्य चक्रिणः। फणीन्द्रसंनिविष्टोऽङ्घ्रिर्द्वितीयश्च तथानघ ॥ २९ ॥
लक्ष्म्युत्सङ्गतोऽङ्घ्रिस्तु शेषभोगप्रशायिनः। फणीन्द्रभोगसंन्यस्तबाहुः केयूरभूषणः ॥ ३० ॥

राजन्! उस शिलातलपर एक रमणीय पुष्करिणी (पोखरी) थी, जो चौकोर, मनोमोहिनी तथा आकाशके समान निर्मल थी। वह अत्यन्त शीतल एवं निर्मल जलसे परिपूर्ण तथा कमलोंसे सुशोभित थी। उसका वह जल सुस्वादु, पचनेमें हल्का, शीतल और सुगन्धयुक्त था। वह जैसे गलेको कष्ट नहीं पहुँचाता था, उसी प्रकार कुक्षिको भी वायुसे परिपूर्ण नहीं करता था अर्थात् वायुविकार नहीं उत्पन्न करता था, अपितु शरीरमें पहुँचकर परम तृप्ति उत्पन्न करता तथा महान् सुख पहुँचाता था। उस पुष्करिणी (बावली)के मध्य-भागमें महर्षि अत्रिने अपनी तपस्याके बलसे एक महलका निर्माण किया था। वह सुन्दर प्रासाद चाँदीका बना हुआ था, जो चन्द्रमाकी किरणोंके समान चमक रहा था। उसमें सभी प्रकारके रत्न जडे गये थे तथा भीतर प्रवेश करनेके लिये सोनेकी सीढ़ियाँ बनी थीं, जिनमें रमणीय वैदूर्य एवं निर्मल मूँगे लगे हुए थे। उसमें इन्द्रनील मणिके विशाल खम्भे लगे थे। उसकी वेदिका अर्थात् फर्शपर मरकतमणि जड़ी हुई थी। हीरेकी किरणोंसे चमचमाता हुआ वह रमणीय महल देखते ही मनको लुभा लेता था। उस महलमें देवाधिदेव भगवान् जनार्दन (मूर्ति-रूपसे) सम्पूर्ण आभूषणोंसे विभूषित होकर शेषनागके फणोंपर शयन कर रहे थे। अनघ! देवाधिदेव चक्रधारी भगवान्का एक चरण घुटनेसे मुड़ा हुआ था और दूसरा चरण शेषनागके ऊपरसे होता हुआ लक्ष्मीकी गोदमें स्थित था। शेषनागके फणोंपर शयन करनेवाले भगवान्का बाजूबंदसे विभूषित एक हाथ शेषनागके फणोंपर स्थापित था ॥ २२—३० ॥

अङ्गुलीपृष्ठविन्यस्तदेवशीर्षधरं भुजम्। एकं वै देवदेवस्य द्वितीयं तु प्रसारितम् ॥ ३१ ॥
समाकुञ्चितजानुस्थमणिबन्धेन शोभितम्। किंचिदाकुञ्चितं चैव नाभिदेशकरस्थितम् ॥ ३२ ॥
तृतीयं तु भुजं तस्य चतुर्थं तु तथा शृणु। आत्तसंतानकुसुमं घ्राणदेशानुसर्पिणम् ॥ ३३ ॥
लक्ष्म्या संवाह्यमानाङ्घ्रिः पद्मपत्रनिभैः करैः। संतानमालामुकुटं हारकेयूरभूषितम् ॥ ३४ ॥
भूषितं च तथा देवमङ्गदैरङ्गुलीयकैः। फणीन्द्रफणविन्यस्तचारुरत्नशिखोज्ज्वलम् ॥ ३५ ॥
अज्ञातवस्तुचरितं प्रतिष्ठितमथात्रिणा। सिद्धानुपूज्यं सततं संतानकुसुमार्चितम् ॥ ३६ ॥
दिव्यगन्धानुलिप्ताङ्गं दिव्यधूपेन धूपितम्। सुरसैः सुफलैर्हृद्यैः सिद्धरुपहृतैः सदा ॥ ३७ ॥
शोभितोत्तमपार्श्वं तं देवमुत्पलशीर्षकम्।

उस हाथकी अङ्गुलियोंका पृष्ठभाग शेषके सिरपर रखा हुआ था। उनका दूसरा हाथ फैला हुआ था। तीसरे हाथका मणिबन्ध मुड़े हुए घुटनेपर सुशोभित था तथा कुछ मुड़कर नाभिदेशपर फैले हुए पहले हाथपर अवलम्बित था। अब उनके चौथे हाथकी दशा सुनो। चौथे हाथमें भगवान् कल्पवृक्षका पुष्प धारण किये हुए थे और उसे अपनी नासिकातक ले गये थे। उस समय लक्ष्मी अपने कमल-दलके समान कोमल हाथोंसे भगवान्का चरण दबा रही थीं। भगवान्के मस्तकपर कल्पवृक्षके पुष्पोंकी मालाओंका मुकुट शोभा दे रहा था। वे हार, केयूर, बाजूबंद और अँगूठीसे विभूषित तथा शेषनागके फणोंपर रखे हुए सुन्दर रत्नोंसे प्रकाशित हो रहे थे। इनकी

एवं विशेषता यह थी कि महर्षि अत्रिने उनकी स्थापना की थी। उनका चरित्र वस्तुतः जाना नहीं जा सकता। सिद्धगण सदा उनकी पूजा करते थे। कल्पवृक्षके पुष्पोंद्वारा उनकी अर्चना होती थी। उनके अङ्गोंमें दिव्य चन्दनका अनुलेप था तथा वे दिव्य धूपसे धूपित थे। सिद्धगण उन्हें सदा सरस एवं मनोहर फलोंका उपहार देते थे। वे उत्तम पार्श्वसे सुशोभित थे तथा उनके मस्तकपर कमल शोभा पा रहा था ॥ ३१—३७½ ॥

ततः सम्मुखमुद्वीक्ष्य ववन्दे स नराधिपः ॥ ३८ ॥

जानुभ्यां शिरसा चैव गत्वा भूमिं यथाविधि। नाम्नां सहस्रेण तथा तुष्टाव मधुसूदनम् ॥ ३९ ॥
प्रदक्षिणमथो चक्रे स तूत्थाय पुनः पुनः। रम्यमायतनं दृष्ट्वा तत्रोवासाश्रमे पुनः ॥ ४० ॥
विलाद् वहिर्गुहां कांचिदाश्रित्य सुमनोहराम्। तपश्चकार तत्रैव पूजयन् मधुसूदनम् ॥ ४१ ॥
नानाविधैस्तथा पुष्पैः फलमूलैः सगोरसैः। नित्यं त्रिषवणस्नायी वह्निपूजापरायणः ॥ ४२ ॥
देववापीजलैः कुर्वन् सततं प्राणधारणम्। सर्वाहारपरित्यागं कृत्वा तु मनुजेश्वरः ॥ ४३ ॥
अनास्तृतगुहाशायी कालं नयति पार्थिवः।
त्यक्ताहारक्रियश्चैव केवलं तोयतो नृपः। न तस्य ग्लानिमायाति शरीरं च तदद्भुतम् ॥ ४४ ॥
एवं स राजा तपसि प्रसक्तः सम्पूजयन् देववरं सदैव।
तत्राश्रमे कालमुवास कंचित् स्वर्गोपमे दुःखमविन्दमानः ॥ ४५ ॥

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे भुवनकोशे आयतनवर्णनं नामैकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११९ ॥*

ऐसे भगवान् (की मूर्ति) को अपने सम्मुख देखकर राजा पुरूरवाने विधिपूर्वक घुटने टेककर और मस्तकको भूमिपर रखकर भगवान्‌को प्रणाम किया तथा सहस्रनामोंद्वारा उन मधुसूदनका स्तवन किया और उठकर बारंबार उनकी प्रदक्षिणा की। पुनः उस रमणीय देव-मन्दिरको देखकर उसी आश्रममें निवास करनेका निश्चय किया। तत्पश्चात् उस बिलसे बाहर निकलकर वे किसी अतिशय मनोहारिणी गुफाका आश्रय लेकर नाना प्रकारके पुष्पों, फलों, मूलों तथा गोरसोंद्वारा भगवान् मधुसूदनकी पूजा करते हुए वहीं तपस्यामें संलग्न हो गये। वे नित्य त्रिकाल स्नान तथा अग्निहोत्र करते थे। वे नरेश सभी प्रकारके आहारका परित्याग कर सदा उस देववापी (पोखरी)के जलसे ही प्राणोंकी रक्षा करते थे। राजा बिना बिछौनेके ही गुफामें शयन करते हुए समय बिता रहे थे। यद्यपि राजाने भोजन करना छोड़ दिया था और केवल जलपर ही निर्भर थे, तथापि उन्हे किसी प्रकारकी ग्लानि नहीं होती थी, प्रत्युत उनका शरीर अद्भुत तेजोमय हो गया था। इस प्रकार राजा पुरूरवाने तपस्यामें दत्तचित्त होकर सदा देवश्रेष्ठ भगवान् विष्णुकी पूजा करते हुए दुःखकी कुछ भी परवा न कर उस स्वर्ग-तुल्य आश्रममें कुछ कालतक निवास किया ॥ ३८—४५ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके भुवनकोश-वर्णनमें आयतनवर्णन नामक एक सौ उन्नीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ११९ ॥

# एक सौ बीसवाँ* अध्याय

## राजा पुरूरवाकी तपस्या, गन्धर्वों और अप्सराओंकी क्रीडा, महर्षि अत्रिका आगमन तथा राजाको वर-प्राप्ति

सूत उवाच

स त्वाश्रमपदे रम्ये त्यक्ताहारपरिच्छदः। क्रीडाविहारं गन्धर्वैः पश्यत्यप्सरसां सह॥ १॥
कृत्वा पुष्पोच्चयं भूरि ग्रथयित्वा तथा स्रजः। अर्घ्यं निवेद्य देवाय गन्धर्वेभ्यस्तदा ददौ॥ २॥
पुष्पोच्चयप्रसक्तानां क्रीडन्तीनां यथासुखम्। चेष्टा नानाविधाकाराः पश्यन्नपि न पश्यति॥ ३॥
काचित् पुष्पोच्चये सक्ता लताजालेन वेष्टिता। सखीजनेन संत्यक्ता कान्तेनाभिसमुज्झिता॥ ४॥
काचित् कमलगन्धाभा निःश्वासपवनाहृतैः। मधुपैराकुलमुखी कान्तेन परिमोचिता॥ ५॥
मकरन्दसमाक्रान्तनयना काचिदङ्गना। कान्तनिःश्वासवातेन नीरजस्ककृतेक्षणा॥ ६॥
काचिदुच्चीय पुष्पाणि ददौ कान्तस्य भामिनी। कान्तसंग्रथितैः पुष्पै रराज कृतशेखरा॥ ७॥
उच्चीय स्वयमुद्ग्रथ्य कान्तेन कृतशेखरा। कृतकृत्यमिवात्मानं मेने मन्मथवर्धिनी॥ ८॥*

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! इस प्रकार राजकीय सामग्रियों तथा आहारका परित्याग कर राजा पुरूरवा उस रमणीय आश्रममें निवास करने लगे। वहाँ उन्हें गन्धर्वोंके साथ अप्सराओंका क्रीडाविहार भी देखनेको मिलता था। राजा बहुत-से फूलोंको तोड़कर उसकी माला गूँथते थे और उन्हे अर्घ्यसहित पहले भगवान् विष्णुको निवेदित कर पुनः गन्धर्वोंको दे देते थे। वे वहाँ पुष्प-चयनमें लगी हुई एवं सुखपूर्वक क्रीडा करती हुई अप्सराओंकी विभिन्न प्रकारकी चेष्टाओंको देखकर भी अनदेखी कर जाते थे। वहाँ पुष्प-चयनमें निरत कोई अप्सरा लता-समूहमें उलझ गयी और सखियाँ उसे उसी दशामें छोड़कर चलती बनीं, तब उसके पतिने आकर उसे बन्धन-मुक्त किया। किसी अप्सराके शरीरसे कमलकी-सी गन्ध निकल रही थी। इस कारण उसकी निःश्वासवायुसे आकृष्ट होकर भ्रमर उसके ऊपर मँडरा रहे थे। उन भ्रमरोंसे उसका मुख ढक-सा गया था; तब उसके पतिने उसे उस कष्टसे मुक्त किया। किसी अप्सराकी आँखें पुष्प-रजसे आक्रान्त हो गयीं, तब उसके पतिने अपनी श्वासवायुसे फूँककर उन्हें धूलरहित कर दिया। किसी सुन्दरीने पुष्पोंको एकत्रकर अपने पतिको दे दिया। तत्पश्चात् वह अपने पतिद्वारा गूँथी गयी पुष्प-मालाको अपने मस्तकपर रखकर सुशोभित होने लगी। तभी किसीके पतिने पुष्प-चयन करके अपने ही हाथों माला गूँथकर उसे अपनी पत्नीके मस्तकपर रखकर उसे सुसज्जित कर दिया, इससे उसने अपनेको कृतकृत्य मान लिया॥ १—८॥

अस्त्यस्मिन् गहने कुञ्जे विशिष्टकुसुमा लता। काचिदेवं रहो नीता रमणेन रिरंसुना॥ ९॥
कान्तसंनामितलता कुसुमानि विचिन्वती। सर्वाभ्यः काचिदात्मानं मेने सर्वगुणाधिकम्॥ १०॥
काश्चित् पश्यन्ति भूपालं नलिनीषु पृथक् पृथक्। क्रीडमानास्तु गन्धर्वैर्देवरामा मनोरमाः॥ ११॥
काचिदाताडयत् कान्तमुदकेन शुचिस्मिता। ताड्यमानाथ कान्तेन प्रीतिं काचिदुपाययौ॥ १२॥
कान्तं च ताडयामास जातखेदा वराङ्गना। अदृश्यत वरारोहा श्वासनृत्यत्पयोधरा॥ १३॥

* इस अध्यायके अनेक शब्दार्थालंकारोंसे उद्दीपित अधिकांश श्लोक भागवत १०। ३३ से मिलते हैं। कोई एक दूसरेसे अवश्य प्रभावित है। वैसे इस प्रकारका वर्णन गर्गसंहिता, ब्रह्मवैवर्तपुराणके रासप्रकरणोंमें तथा भागवतके रामनारायण-कृत भावविभाविका तथा किशोरीदासकृता विशुद्धरसदीपिकामें इनकी भी पूरी व्याख्या है।

कान्ताम्बुताडनाकृष्टकेशापाशनिवन्धना । केशाकुलमुखी भाति मधुपैरिव पद्मिनी ॥ १४ ॥
स्वचक्षुःसदृशैः पुष्पैः संच्छन्ने नलिनीवने । छन्ना काचिच्चिरात् प्राप्ता कान्तेनान्विष्य यत्नतः॥ १५ ॥
स्नाता शीतापदेशेन काचित् प्राहाङ्गना भृशम् । रमणालिङ्गनं चक्रे मनोऽभिलषितं चिरम् ॥ १६ ॥
जलार्द्रवसनं सूक्ष्ममङ्गलीनं शुचिस्मिता । धारयन्ती जनं चक्रे काचिन् तत्र समन्मथम् ॥ १७ ॥
कण्ठमाल्यगुणैः काचित् कान्तेन कृष्यताम्भसि । त्रुट्यत्स्रग्दामपतितं रमणं प्राहसच्चिरम् ॥ १८ ॥
काचिद्भुग्ना सखीदत्तजानुदेशे नखक्षता । सम्भ्रान्ता कान्तशरणं मग्ना काचिद् गता चिरम् ॥ १९ ॥
काचित् पृष्ठकृतादित्या केशनिस्तोयकारिणी । शिलातलगता भर्त्रा दृष्टा कामार्तचक्षुषा ॥ २० ॥
कृत्तमाल्यं विलुलितं संक्रान्तकुचकुङ्कुमम् । रतिक्रीडितकान्तेव रराज तत् सरोदकम् ॥ २१ ॥
सुस्नातदेवगंधर्वदेवरामागणेन च । पूज्यमानं च ददृशे देवदेवं जनार्दनम् ॥ २२ ॥
क्वचिच्च ददृशे राजा लतागृहगताः स्त्रियः । मण्डयन्तीः स्वगात्राणि कान्तसंन्यस्तमानसाः ॥ २३ ॥
काचिदादर्शनकरा व्यग्रा दूतीमुखोद्गतम् । शृण्वती कान्तवचनमधिका तु तथा बभौ ॥ २४ ॥
काचित् सत्वरिता दूत्या भूषणानां विपर्ययम् । कुर्वाणा नैव बुबुधे मन्मथाविष्टचेतना ॥ २५ ॥

कोई पतिद्वारा झुकायी गयी लतासे फूल तोड़ रही थी, जिससे वह अपनेको सभी सखियोंसे सम्पूर्ण गुणोंमें बढ़-चढ़कर मान रही थी। कुछ सुन्दरी देवाङ्गनाएँ गन्धर्वोंके साथ पृथक्-पृथक् क्रीडा करती हुई कमल-समूहोंके बीचसे राजाकी ओर देख रही थीं। कोई सुन्दरी अपने पतिके ऊपर जल उछाल रही थी और किसीके ऊपर उसका पति जल फेंक रहा था, जिससे उसे बड़ी प्रसन्नता हो रही थी। कोई देवाङ्गना खिन्न मनसे अपने पतिके ऊपर जल उछाल रही थी। पतिके ऊपर जल फेंकनेसे किसीकी चोटी खुल गयी थी, जिससे उसका मुख बालोंसे ढक गया था। उस समय वह ऐसी प्रतीत हो रही थी मानो भ्रमरोंसे घिरी हुई कमलिनी हो। कोई अपने नेत्रोंके समान कमल-पुष्पोंसे ढके हुए उस कमलिनीके वनमें छिप गयी थी, जिसे उसके पतिने बड़ी देरके बाद प्रयत्नपूर्वक खोजकर प्राप्त किया। किसीको उसका पति गलेमें पड़ी हुई मालाके धागेको पकड़कर जलमें खींच रहा था, किंतु उस धागेके टूट जानेपर जब वह गिर पड़ा, तब वह बड़ी देरतक हँसती रही। इस प्रकार राजाने स्नानसे निवृत्त हुई सभी देव-देवियों एवं गन्धर्व-अप्सराओंद्वारा भगवान् जनार्दनको पूजित होते हुए देखा ॥ ९—२५ ॥

वायुनुन्नातिसुरभिकुसुमोत्करमण्डिते । काचित् पिबन्ती ददृशे मैरेयं नीलशाद्वले ॥ २६ ॥
पाययामास रमणं स्वयं काचिद् वराङ्गना । काचित् पपौ वरारोहा कान्तपाणिसमर्पितम् ॥ २७ ॥
काचित् स्वनेत्रचपलनीलोत्पलयुतं पयः । पीत्वा पप्रच्छ रमणं क्व गतौ तौ ममोत्पलौ ॥ २८ ॥
त्वयैव पीतौ तौ नूनमित्युक्ता रमणेन सा । तथा विदित्वा मुग्धत्वाद् बभूव व्रीडिता भृशम् ॥ २९ ॥
काचित् कान्तार्पितं सुभ्रूः कान्तपीतावशेषितम् । सविशेषरसं पानं पपौ मन्मथवर्धनम् ॥ ३० ॥
आपानगोष्ठीषु तथा तासां स नरपुंगवः । शुश्राव विविधं गीतं तन्त्रीस्वरविमिश्रितम् ॥ ३१ ॥
प्रदोषसमये ताश्च देवदेवं जनार्दनम् । राजन् सदोपनृत्यन्ति नानावाद्यपुरःसराः ॥ ३२ ॥
याममात्रे गते रात्रौ विनिर्गत्य गुहामुखात् । आवसन् संयुताः कान्तैः परर्धिरचितां गुहाम् ॥ ३३ ॥
नानागन्धान्वितलतां नानागन्धसुगन्धिनीम् । नानाविचित्रशयनां कुसुमोत्करमण्डिताम् ॥ ३४ ॥
एवमप्सरसां पश्यन् क्रीडितानि स पर्वते । तपस्तेपे महाराजन् केशवार्पितमानसः ॥ ३५ ॥
तमूचुर्नृपतिं गत्वा गन्धर्वाप्सरसां गणाः । राजन् स्वर्गोपमं देशमिमं प्राप्तोऽस्यरिंदम ॥ ३६ ॥
वयं हि ते प्रदास्यामो मनसः काङ्क्षितान् वरान् । तानादाय गृहं गच्छ तिष्ठेह यदि वा पुनः ॥ ३७ ॥

राजन् ! वे अप्सराएँ सदा प्रदोषकालमें देवाधिदेव भगवान् जनार्दनके समक्ष नाना प्रकारके बाजोंके साथ नृत्य करती थीं । एक पहर रात बीत जानेपर वे गुफाके मुखद्वारसे बाहर निकलकर अपने पतियोंके साथ ऐसी सजी-सजायी गुफामें निवास करती थीं, जिसपर अनेकों प्रकारके गन्धोंवाली लताएँ फैली हुई थीं, जिसमेंसे विभिन्न प्रकारकी सुगन्ध निकल रही थी; जो पुष्प-समूहसे सुशोभित थी तथा जिसमें अनेकों विचित्र शय्याएँ बिछी थीं । महाराज ! इस प्रकार उस पर्वतपर अप्सराओंकी क्रीडाका अवलोकन करते हुए राजा पुरूरवा भगवान् केशवमें मनको एकाग्र करके तपस्या करते रहे । एक दिन यूथ-के-यूथ गन्धर्व और अप्सराएँ राजाके निकट जाकर उनसे बोलीं—'शत्रुओंका दमन करनेवाले नरेश ! ( बड़े सौभाग्यसे ) आप इस स्वर्ग-तुल्य देशमें आ गये हैं, अतः हमलोग आपको मनोऽभिलषित वर प्रदान करेंगी । उन्हें ग्रहणकर यदि आपकी इच्छा हो तो घर चले जाइये अथवा यहीं रहिये' ॥ २२—३७ ॥

राजोवाच

अमोघदर्शनाः सर्वे भवन्तस्त्वमितौजसः । वरं वितरताद्यैव प्रसादं मधुसूदनात् ॥ ३८ ॥
एवमस्त्वित्यथोक्तस्तैः स तु राजा पुरूरवाः । तत्रोवास सुखी मासं पूजयानो जनार्दनम् ॥ ३९ ॥
प्रिय एव सदैवासीद् गन्धर्वाप्सरसां नृपः । तुतोष स जनो राज्ञस्तस्यालौल्येन कर्मणा ॥ ४० ॥
मासस्य मध्ये स नृपः प्रविष्टस्तदाश्रमं रत्नसहस्रचित्रम् ।
तोयाशनस्तत्र हुवास मासं यावत्सितान्तो नृप फाल्गुनस्य ॥ ४१ ॥
फाल्गुनामलपक्षान्ते राजा स्वप्ने पुरूरवाः । तस्यैव देवदेवस्य श्रुतवान् गदितं शुभम् ॥ ४२ ॥
रात्र्यामस्यां व्यतीतायामत्रिणा त्वं समेष्यसि । तेन राजन् समागम्य कृतकृत्यो भविष्यसि ॥ ४३ ॥
स्वप्नमेवं स राजर्षिर्दृष्ट्वा देवेन्द्रविक्रमः । प्रत्यूषकाले विधिवत् स्नातः स प्रयतेन्द्रियः ॥ ४४ ॥
कृतकृत्यो यथाकामं पूजयित्वा जनार्दनम् । ददर्शात्रिं मुनिं राजा प्रत्यक्षं तपसां निधिम् ॥ ४५ ॥
स्वप्नं तु देवदेवस्य न्यवेदयत धार्मिकः । ततः शुश्राव वचनं देवतानां समीरितम् ॥ ४६ ॥
एवमेतन्महीपाल नात्र कार्या विचारणा । एवं प्रसादं सम्प्राप्य देवदेवाज्जनार्दनात् ॥ ४७ ॥
कृतदेवार्चनो राजा तथा हुतहुताशनः । सर्वान् कामानवाप्तोऽसौ वरदानेन केशवात् ॥ ४८ ॥

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे भुवनकोशे ऐलाश्रमवर्णनं नाम विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२० ॥*

**राजाने** कहा—गन्धर्वो एवं अप्सराओ ! आपलोग अमित तेजस्वी हैं, इससे आपलोगोंका दर्शन कभी निष्फल नहीं होता, इसलिये आपलोग आज ही मुझे ऐसा वरदान दें, जिससे भगवान् मधुसूदनकी कृपा प्राप्त हो जाय । यह सुनकर वे 'एवमस्तु—ऐसा ही होगा'—ऐसा कहकर वहाँसे चले गये । तत्पश्चात् राजा पुरूरवा वहाँ एक मासतक भगवान् जनार्दनकी पूजा करते हुए सुखपूर्वक निवास करते रहे । वे सदा गन्धर्वों एवं अप्सराओंके प्रेमपात्र बने रहे । वे लोग राजाके निर्लोभ कर्मसे परम संतुष्ट थे । राजन् ! उस मासके बीचमें ही राजा पुरूरवाने हजारों रत्नोंसे चित्रित उस आश्रममें प्रवेश किया । वहाँ वे एक मासतक केवल जल पीकर तबतक निवास करते रहे, जबतक फाल्गुनमासके शुक्लपक्षकी पूर्णिमा तिथि नहीं आ गयी । राजा पुरूरवाने फाल्गुनमास-के शुक्लपक्षकी पूर्णिमा तिथिकी रातमें स्वप्नमें उन्हीं देवाधिदेव भगवान् विष्णुद्वारा कहे जाते हुए इस प्रकारके मङ्गलमय शब्दोंको सुना—'राजन् ! इस रात्रिके व्यतीत हो जानेपर अत्रिसे तुम्हारी भेंट होगी और उनसे मिलकर तुम कृतकृत्य हो जाओगे ।

देवराजके समान पराक्रमी राजर्षि पुरूरवाको जब इस प्रकारका स्वप्न दीख पड़ा, तब उन्होंने प्रातःकाल उठकर इन्द्रियोंको संयत रखते हुए विधिपूर्वक स्नान क्रिया और इच्छानुसार भगवान् जनार्दनकी पूजा की। तत्पश्चात् उन्हें तपोधन महर्षि अत्रिका प्रत्यक्ष दर्शन प्राप्त हुआ, जिससे वे कृतकृत्य हो गये। तब धर्मात्मा राजाने महर्षि अत्रिसे देवाधिदेव भगवान्द्वारा दिखाये गये स्वप्नके वृत्तान्तको कह सुनाया। उसी समय उन्होंने देवताओंद्वारा कहे हुए इस वचनको फिर सुना—'महीपाल! यह ऐसा ही होगा, इसमें तुम्हें अन्यथा विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है।' इस प्रकार देवाधिदेव भगवान् जनार्दनकी कृपा प्राप्तकर राजाने देवार्चन क्रिया और अग्निमें आहुतियाँ डालीं। इस तरह भगवान् केशवके वरदानसे उनकी सारी कामनाएँ पूरी हो गयीं॥ २८—४८॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके भुवनकोशवर्णनमें ऐलाश्रम-वर्णन नामक एक सौ बीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥१२०॥

---

# एक सौ इक्कीसवाँ अध्याय

## कैलास पर्वतका वर्णन, गङ्गाकी सात धाराओंका वृत्तान्त तथा जम्बूद्वीपका विवरण

सूत उवाच

**तस्याश्रमस्योत्तरतस्त्रिपुरारिनिषेवितः। नानारत्नमयैः श्रृङ्गैः कल्पद्रुमसमन्वितैः॥ १॥**
**मध्ये हिमवतः पृष्ठे कैलासो नाम पर्वतः। तस्मिन् निवसति श्रीमान् कुबेरः सह गुह्यकैः॥ २॥**
**अप्सरोऽनुगतो राजा मोदते ह्यलकाधिपः। कैलासपादसम्भूतं पुण्यं शीतजलं शुभम्॥ ३॥**
**मन्दोदकं नाम सरः पयस्तु दधिसंनिभम्। तस्मात् प्रवहते दिव्या नदी मन्दाकिनी शुभा॥ ४॥**
**दिव्यं च नन्दनं तत्र तस्यास्तीरे महद्वनम्। प्रागुत्तरेण कैलासाद् दिव्यं सौगन्धिकं गिरिम्॥ ५॥**
**सर्वधातुमयं दिव्यं सुवेलं पर्वतं प्रति। चन्द्रप्रभो नाम गिरिः यः शुभ्रो रत्नसंनिभः॥ ६॥**
**तत्समीपे सरो दिव्यमच्छोदं नाम विश्रुतम्। तस्मात् प्रभवते दिव्या नदी ह्यच्छोदिका शुभा॥ ७॥**
**तस्यास्तीरे वनं दिव्यं महच्चैत्ररथं शुभम्। तस्मिन् गिरौ निवसति मणिभद्रः सहानुगः॥ ८॥**
**यक्षसेनापतिः शूरो गुह्यकैः परिवारितः। पुण्या मन्दाकिनी नाम नदी ह्यच्छोदिका शुभा॥ ९॥**
**महीमण्डलमध्ये तु प्रविष्टे तु महोदधिम्।**

**सूतजी कहते हैं**—ऋषियो! उस आश्रमकी उत्तर दिशामें हिमालय पर्वतके पृष्ठ-भागके मध्यमें कैलास नामक पर्वत स्थित है। उसपर त्रिपुरासुरके संहारक शंकरजी निवास करते हैं। उसके शिखर नाना प्रकारके रत्नोंसे सुशोभित हैं तथा उनपर कल्पवृक्ष शोभा पा रहे हैं। उस पर्वतपर श्रीमान् कुबेर गुह्यकोंके साथ निवास करते हैं। इस प्रकार अलकापुरीके अधीश्वर राजा कुबेर अप्सराओंद्वारा अनुगमन किये जाते हुए आनन्दका अनुभव करते हैं। कैलासके पाद ( उपत्यका )से एक मन्दोदक नामक सरोवर प्रकट हुआ है, जिसका जल बड़ा पवित्र, निर्मल एवं शीतल है। उसका जल दहीके समान उज्ज्वल है। उसी सरोवरसे मङ्गलमयी दिव्य मन्दाकिनी नदी प्रवाहित होती है। वहाँ उस नदीके तटपर नन्दन नामक दिव्य एवं महान् वन है। कैलासकी पूर्वोत्तर दिशामें चन्द्रप्रभ नामक पर्वत है, जो रत्न-सदृश चमकदार है। वह सभी प्रकारकी धातुओंसे विभूषित तथा अनेकों प्रकारकी सुगन्धसे सुवासित दिव्य सुवेल पर्वततक फैला हुआ है। उसके निकट अच्छोद (अच्छावत) नामसे विख्यात एक दिव्य सरोवर है, उससे अच्छोदिका (अच्छोदा) नामकी कल्याणमयी दिव्य नदी उद्भूत हुई है। उस नदीके तटपर चैत्ररथ नामक दिव्य एवं सुन्दर महान् वन है। उस पर्वतपर शूरवीर यक्ष-सेनापति मणिभद्र

गुह्यकोंसे घिरे हुए अपने अनुयायियोंके साथ निवास करते हैं। पुण्यमयी मन्दाकिनी तथा कल्याणकारिणी अच्छोदा—ये दोनों नदियाँ पृथ्वी-मण्डलके मध्यभागसे प्रवाहित होती हुई महासागरमें मिली हैं॥ १—९½॥

कैलासदक्षिणे प्राच्यां शिवं सर्वौषधिं गिरिम्॥ १०॥

मनःशिलामयं दिव्यं सुवेलं पर्वतं प्रति। लोहितो हेमशृङ्गस्तु गिरिः सूर्यप्रभो महान्॥ ११॥
तस्य पादे महद् दिव्यं लोहितं सुमहत्सरः। तस्मात् प्रभवते पुण्यो लौहित्यश्च नदो महान्॥ १२॥
दिव्यारण्यं विशोकं च तस्य तीरे महद् वनम्। तस्मिन् गिरौ निवसति यक्षो मणिधरो वशी॥ १३॥
सौम्यैः सुधार्मिकैश्चैव गुह्यकैः परिवारितः। कैलासात् पश्चिमोदीच्यां ककुद्मानौषधीगिरिः॥ १४॥
ककुद्मति च रुद्रस्य उत्पत्तिश्च ककुद्मिनः। तदञ्जनं त्रैककुदं शैलं त्रिककुदं प्रति॥ १५॥
सर्वधातुमयस्तत्र सुमहान् वैद्युतो गिरिः। तस्य पादे महद् दिव्यं मानसं सिद्धसेवितम्॥ १६॥
तस्मात् प्रभवते पुण्या सरयूर्लोकपावनी। यस्यास्तीरे वनं दिव्यं वैभ्राजं नाम विश्रुतम्॥ १७॥
कुवेरानुचरस्तस्मिन् प्रहेतितनयो वशी। ब्रह्मधाता निवसति राक्षसोऽनन्तविक्रमः॥ १८॥

कैलासके दक्षिण-पूर्व दिशामें लाल वर्णवाला हेमशृङ्ग नामक एक विशाल पर्वत है। वह दिव्य सुवेल पर्वततक फैला हुआ है। उसकी कान्ति सूर्यके समान है। वह मङ्गलप्रद पर्वत सभी प्रकारकी ओषधियोंसे सम्पन्न तथा मैनशिल नामक धातुसे परिपूर्ण है। उसके पाद-प्रान्तमें एक विशाल दिव्य सरोवर है, जिसका नाम लोहित है। वह पुण्यमय लौहित्य ( ब्रह्मपुत्र ) नामक महान् नदका उद्गमस्थान है। उस नदके तटपर विशोक नामक एक दिव्य एवं विस्तृत वन है। उस पर्वतपर मणिधर नामक यक्ष इन्द्रियोंको वशमें करके परम धार्मिक एवं सौम्य-स्वभाववाले गुह्यकोंके साथ निवास करता है। कैलासकी पश्चिमोत्तर दिशामें ककुद्मान् नामक पर्वत है, जिसपर सभी प्रकारकी ओषधियाँ सुलभ हैं। वह अञ्जन-जैसा काला तथा तीन शिखरोंसे सुशोभित है। उस ककुद्मान् पर्वतपर भगवान् रुद्रके गण ककुद्मी (नन्दिकेश्वर)की उत्पत्ति हुई है। वहीं समस्त धातुओंसे सम्पन्न वैद्युत नामक अत्यन्त महान् पर्वत है, जो त्रिककुद् पर्वततक विस्तृत है। उसके पाद-प्रान्तमें सिद्धोंद्वारा सेवित एक महान् दिव्य मानस सरोवर है। उस सरोवरसे लोकपावनी पुण्य-सलिला सरयू* निकली हुई हैं, जिनके तटपर ( वरुणका ) वैभ्राज नामक सुप्रसिद्ध दिव्य वन है। उस वनमें प्रहेतिका पुत्र ब्रह्मधाता नामक राक्षस निवास करता है। वह जितेन्द्रिय, अनन्तपराक्रमी और कुबेरका अनुचर है॥ १०—१८॥

कैलासात् पश्चिमामाशां दिव्यः सर्वौषधिर्गिरिः। वरुणः पर्वतश्रेष्ठो रुक्मधातुविभूषितः॥ १९॥
भवस्य दयितः श्रीमान् पर्वतो हैमसंनिभः। शातकौम्भमयैर्दिव्यैः शिलाजालैः समाचितः॥ २०॥
शतसंख्यैस्तापनीयैः शृङ्गैर्दिवमिवोल्लिखन्। शृङ्गवान् सुमहादिव्यो दुर्गः शैलो महाचितः॥ २१॥
तस्मिन् गिरौ निवसति गिरिशो धूम्रलोचनः। तस्य पादात् प्रभवति शैलोदं नाम तत्सरः॥ २२॥
तस्मात् प्रभवते पुण्या नदी शैलोदका शुभा। सा चक्षुषी तयोर्मध्ये प्रविष्टा पश्चिमोदधिम्॥ २३॥
अस्त्युत्तरेण कैलासाच्छिवः सर्वौषधो गिरिः। गौरं तु पर्वतश्रेष्ठं हरितालमयं प्रति॥ २४॥
हिरण्यशृङ्गः सुमहान् दिव्यौषधिमयो गिरिः। तस्य पादे महद् दिव्यं सरः काञ्चनवालुकम्॥ २५॥
रम्यं बिन्दुसरो नाम यत्र राजा भगीरथः। गङ्गार्थे स तु राजर्षिरुवास बहुलाः समाः॥ २६॥
दिवं यास्यन्तु मे पूर्वे गङ्गातोयाप्लुतास्थिकाः। तत्र त्रिपथगा देवी प्रथमं तु प्रतिष्ठिता॥ २७॥

* इस अध्यायका हिमालयसे सम्बद्ध भौगोलिक विवरण बड़े महत्त्वका है और यह वर्णन बहुत कुछ कालिका-पुराणसे मिलता है।

सोमपादात् प्रसूता सा सप्तधा प्रविभज्यते। यूपा मणिमयास्तत्र विमानाश्च हिरण्मयाः ॥ २८ ॥
तत्रेष्ट्वा क्रतुभिः सिद्धः शक्रः सुरगणैः सह। दिव्यश्छायापथस्तत्र नक्षत्राणां तु मण्डलम् ॥ २९ ॥
दृश्यते भासुरा रात्रौ देवी त्रिपथगा तु सा।

कैलासकी पश्चिम दिशामें सम्पूर्ण ओषधियोंसे सम्पन्न वरुण नामक दिव्य पर्वत है। वह पर्वतश्रेष्ठ सुवर्ण आदि धातुओंसे विभूषित, भगवान् शंकरका प्रियपात्र, शोभाशाली, स्वर्ण-सदृश चमकीला और स्वर्णमयी दिव्य शिलाओंसे सम्पन्न है। वह अपने स्वर्ण-सरीखे चमकदार सैकड़ों शिखरोंसे आकाशको छूता हुआ-सा दीख पड़ता है। वहीं शृङ्गवान् नामका एक महान् दिव्य पर्वत है, जो समृद्धिशाली एवं दुर्गम है। उस पर्वतपर धूम्रलोचन भगवान् शिव निवास करते हैं। उस पर्वतके पाद-प्रान्तमें शैलोद नामक सरोवर है। उसीसे मङ्गलमयी पुण्यतोया शैलोदका नामकी नदी प्रवाहित होती है। उसे चक्षुष्री भी कहते हैं। वह उन दोनों पर्वतोंके बीचसे बहती हुई पश्चिम-सागरमें जा मिली है। कैलासकी उत्तर दिशामें हिरण्यशृङ्ग नामका अत्यन्त विशाल पर्वत है, जो हरितालसे परिपूर्ण पर्वतश्रेष्ठ गौरतक फैला हुआ है। इस कल्याणकारी पर्वतपर दिव्य ओषधियाँ प्राप्त होती हैं। इसके पादप्रान्तमें बिन्दुसर नामक अत्यन्त रमणीय दिव्य सरोवर है, जो सुवर्णके समान बालुकासे युक्त है। यहींपर राजर्षि भगीरथने 'मेरे पूर्वज गङ्गा-जलसे हड्डियोंके अभिषिक्त हो जानेपर स्वर्गलोकको चले जायँ, इस भावनासे भावित होकर गङ्गाको भूतलपर लानेके लिये बहुत वर्षोंतक ( तप करते हुए ) निवास किया था। इसलिये त्रिपथगा* गङ्गादेवी सर्वप्रथम वहीं प्रतिष्ठित हुई थीं और सोम पर्वतके पादसे निकलकर सात भागोंमें विभक्त हो गयीं। उस सरोवरके तटपर अनेकों मणिमय यज्ञस्तम्भ तथा स्वर्णमय विमान शोभा पा रहे थे। वहाँ देवताओंके साथ इन्द्रने यज्ञोंका अनुष्ठान कर सिद्धि लाभ किया था। वहाँ दिव्य छायापथ तथा नक्षत्रोंका मण्डल विद्यमान है। वहाँ त्रिपथगा गङ्गादेवी रातमें चमकती हुई दीख पड़ती हैं ॥ १९–२९½ ॥

अन्तरिक्षं दिवं चैव भावयित्वा भुवं गता ॥ ३० ॥
भवोत्तमाङ्गे पतिता संरुद्धा योगमायया। तस्या ये बिन्दवः केचित् क्रुद्धायाः पतिता भुवि ॥ ३१ ॥
कृतं तु तैर्बिन्दुसरस्ततो बिन्दुसरः स्मृतम्। ततस्तस्या निरुद्धाया भवेन सहसा रुषा ॥ ३२ ॥
ज्ञात्वा तस्या ह्यभिप्रायं क्रूरं देव्याश्चिकीर्षितम्। भित्त्वा विशामि पातालं स्रोतसा गृह्य शंकरम् ॥ ३३ ॥
अथावलेपं तं ज्ञात्वा तस्याः क्रुद्धस्तु शंकरः। तिरोभावयितुं बुद्धिरासीदङ्गेषु तां नदीम् ॥ ३४ ॥
एतस्मिन्नेव काले तु दृष्ट्वा राजानमग्रतः। धमनीसंततं क्षीणं क्षुधाव्याकुलितेन्द्रियम् ॥ ३५ ॥
अनेन तोषितश्चाहं नद्यर्थे पूर्वमेव तु। बुद्ध्वास्य वरदानं तु ततः कोपं न्ययच्छत ॥ ३६ ॥
ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा यदुक्तं धारयन् नदीम्। ततो विसर्जयामास संरुद्धां स्वेन तेजसा ॥ ३७ ॥
नदीं भगीरथस्यार्थे तपसोग्रेण तोषितः। ततो विसर्जयामास सप्त स्रोतांसि गङ्गया ॥ ३८ ॥

गङ्गादेवी स्वर्गलोक और अन्तरिक्षलोकको पवित्र कर भूतलपर आयीं और वे शिवजीके मस्तकपर गिरीं। तब शिवजीने अपनी योगमायाके बलसे उन्हें वहीं रोक दिया। ( इससे गङ्गादेवी क्रुद्ध हो गयीं। ) उस समय उन कुपित हुई गङ्गादेवीकी जो कुछ बूँदे पृथ्वीपर गिरीं, उनसे 'बहुसर' नामक एक सरोवर बन गया, वही आगे चलकर 'बिन्दुसर' नामसे प्रसिद्ध हुआ। उस समय शिवजीके सहसा रोक लिये जानेपर गङ्गादेवी क्रुद्ध होकर ऐसा विचार करने लगीं कि मै अपनी धाराके साथ शंकरको बहाती हुई पृथ्वीको फोड़कर पातालमें प्रवेश कर

* वाल्मी० रामायण ( १। ४४। ६ ) के अनुसार गङ्गा भू, पाताल, स्वर्ग—इन तीन पथों-मार्गोंको भावित—पवित्र करनेके कारण 'त्रिपथगा' कही जाती हैं—'त्रीन् पथो भावयतीति तस्मात्त्रिपथगा स्मृता।

जाऊँगी। जब शंकरजीको गङ्गाकी यह कुचेष्टा और क्रूर अभिप्राय ज्ञात हुआ, तब वे उसे गङ्गाका अभिमान समझकर क्रुद्ध हो गये और उस नदी-रूपिणी गङ्गाको अपने अङ्गोंमें ही लीन कर लेनेका विचार करने लगे; परंतु ठीक इसी समय राजा भगीरथ, जिनकी इन्द्रियाँ भूखसे व्याकुल हो गयी थीं तथा जिनके शरीरमें नसेमात्र दीख रही थीं, शिवजीके सम्मुख आ गये। उन क्षीणकाय नरेशको देखकर शंकरजी विचारमें पड़ गये कि इसने तो पहले ही इस नदीको भूतलपर लानेके लिये तपस्याद्वारा मुझे संतुष्ट कर लिया है। फिर अपनेद्वारा राजाको दिये गये वरदानको यादकर उन्होंने अपने क्रोधको रोक लिया। तत्पश्चात् गङ्गा नदीको धारण करते समय ब्रह्माद्वारा कहे गये वचनोंको सुनकर तथा भगीरथकी उग्र तपस्यासे प्रसन्न हो भगवान् शंकरने अपने तेजसे रोकी हुई गङ्गा-नदीको छोड़ दिया। इसके बाद गङ्गा सात धाराओंमें विभक्त होकर प्रवाहित हुईं ॥ ३०-३८ ॥

**त्रीणि प्राचीमभिमुखं प्रतीचीं त्रीण्यथैव तु। स्रोतांसि त्रिपथायास्तु प्रत्यपद्यन्त सप्तधा ॥ ३९ ॥**
**नलिनी ह्लादिनी चैव पावनी चैव प्राच्यगाः। सीता चक्षुश्च सिन्धुश्च तिस्रस्ता वै प्रतीच्यगाः ॥ ४० ॥**
**सप्तमी त्वनुगा तासां दक्षिणेन भगीरथम्। तस्माद् भागीरथी सा वै प्रविष्टा दक्षिणोदधिम् ॥ ४१ ॥**
**सप्त चैताः प्लावयन्ति वर्षं तु हिमसाह्वयम्। प्रसूताः सप्त नद्यस्तु शुभा बिन्दुसरोद्भवाः ॥ ४२ ॥**
**तान् देशान् प्लावयन्ति स्म म्लेच्छप्रायांश्च सर्वशः। सशैलान् कुकुरान् रौध्रान् बर्बरान् यवनान् खसान्॥४३॥**
**पुलिन्दांश्च कुलत्थांश्च अङ्गलोक्यान् वरांश्च यान्। कृत्वा द्विधा हिमवन्तं प्रविष्टा दक्षिणोदधिम् ॥ ४४ ॥**
**अथ वीरमरूंश्चैव कालिकांश्चैव शूलिकान्। तुषारान् बर्बरान् कारान् पह्लवान् पारदाञ्छकान्॥ ४५ ॥**
**एताञ्जनपदांश्चक्षुः प्लावयित्वोदधिं गता। दरदोर्जगुडांश्चैव गान्धारानौरसान् कुहून् ॥ ४६ ॥**
**शिवपौरानिन्द्रमरून् वसतीन् समतेजसम्। सैन्धवानुर्वशान् बर्वान् कुपथान् भीमरोमकान् ॥ ४७ ॥**
**शुनामुखांश्चोर्दमरून् सिन्धुरेतान् निषेवते। गन्धर्वान् किंनरान् यक्षान् रक्षोविद्याधरोरगान् ॥ ४८ ॥**
**कलापग्रामकांश्चैव तथा किम्पुरुषान् नरान्। किरातांश्च पुलिन्दांश्च कुरून् वै भारतानपि ॥ ४९ ॥**
**पाञ्चालान् कौशिकान् मत्स्यान् मागधाङ्गांस्तथैव च। सुह्मोत्तरांश्च वङ्गांश्च ताम्रलिप्तांस्तथैव च ॥ ५० ॥**
**एताञ्जनपदानार्यान् गङ्गा भावयते शुभा। ततः प्रतिहता विन्ध्ये प्रविष्टा दक्षिणोदधिम् ॥ ५१ ॥**

त्रिपथगा गङ्गाकी तीन धाराएँ पूर्वाभिमुखी तथा तीन पश्चिमाभिमुखी प्रवाहित हुईं (और सातवीं धारा स्वयं भागीरथी गङ्गा थीं)। इस प्रकार वे सात धाराओंमें विभक्त हो गयीं। उनमें पूर्व दिशामें बहनेवाली धाराओंका नाम नलिनी, ह्लादिनी और पावनी है तथा पश्चिम दिशामें प्रवाहित होनेवाली तीनों धाराएँ सीता, चक्षु और सिंधु नामसे कही गयी हैं। उनमें सातवीं धारा भगीरथके पीछे-पीछे दक्षिण दिशाकी ओर चली और दक्षिणसागरमें प्रविष्ट हो गयी, इसी कारण वह भागीरथी नामसे प्रसिद्ध हुई। ये ही सातों धाराएँ हिमवर्षको आप्लावित करती हैं। इस प्रकार ये सातों नदियाँ बिन्दुसरसे निकली हुई हैं। ये सब ओरसे उन म्लेच्छप्राय देशोंको सींचती है, जो पर्वतीय कुकुर, रौध्र, बर्बर, यवन, खस, पुलिन्द, कुलत्थ, अङ्गलोक्य और वर नामसे कहे जाते हैं। इस प्रकार गङ्गा हिमवान्‌को दो भागोंमें विभक्त कर दक्षिणसमुद्रमें प्रवेश कर गयी हैं। इसके बाद चक्षु (वंक्षु) नदी वीरमरु, कालिक, शूलिक, तुषार, बर्बर, कार, पह्लव, पारद और शक— इन देशोंको आप्लावित कर समुद्रमें मिल गयी है। सिन्धु नदी दरद, उर्जगुड, गान्धार, औरस, कुहू, शिवपौर, इन्द्रमरु, वसति, सैन्धव, उर्वश, बर्व, कुपथ, भीमरोमक, शुनामुख और उर्दमरु—इन देशोंकी सेवा करती अर्थात् इन देशोंमें बहती है। मङ्गलमयी गङ्गा गन्धर्व, किंनर, यक्ष, राक्षस, विद्याधर, नाग, कलापग्राम-

वासी जन, किम्पुरुष, किरात, पुलिन्द, कुरु, भारत, पाञ्चाल, कौशिक मत्स्य (विराट), मगध, अङ्ग, उत्तरसुह्म, वङ्ग और ताम्रलिप्त—इन आर्य देशोंको पवित्र करती है। इस प्रकार वे (हिमालयसे निकलकर) विन्ध्यपर्वतसे अवरुद्ध होकर पूर्वकी ओर आगे बढती हुई दक्षिण-समुद्रमें मिल गयी हैं ॥ ३९—५१ ॥

ततस्तु ह्लादिनी पुण्या प्राचीनाभिमुखी ययौ। प्लावयन्त्युपकांश्चैव निषादानपि सर्वशः ॥ ५२ ॥
धीवरानृषिकांश्चैव तथा नीलमुखानपि। केकरानेककर्णांश्च किरातानपि चैव हि ॥ ५३ ॥
कालञ्जरान् विकर्णांश्च कुशिकान् स्वर्गभौमकान्। सा मण्डले समुद्रस्य तीरे भूत्वा तु सर्वशः ॥ ५४ ॥
ततस्तु नलिनी चापि प्राचीमेव दिशं ययौ। कुपथान् प्लावयन्ती सा इन्द्रद्युम्नसरांस्यपि ॥ ५५ ॥
तथा खरपथान् देशान् वेत्रशङ्कुपथानपि। मध्येनोज्जानकमरून् कुथप्रावरणान् ययौ ॥ ५६ ॥
इन्द्रद्वीपसमीपे तु प्रविश्य लवणोदधिम्। ततस्तु पावनी प्रायात् प्राचीमाशां जवेन तु ॥ ५७ ॥
तोमरान् प्लावयन्ती च हंसमार्गान् समूहकान्।
पूर्वान् देशांश्च सेवन्ती भित्त्वा सा बहुधा गिरिम्। कर्णप्रावरणान् प्राप्य गता साश्वमुखानपि ॥ ५८ ॥
सिक्त्वा पर्वतमेरुं सा गत्वा विद्याधरानपि। शैमिमण्डलकोष्ठं तु सा प्रविष्टा महत्सरः ॥ ५९ ॥
तासां नद्युपनद्योऽन्याः शतशोऽथ सहस्रशः। उपगच्छन्ति ता नद्यो यतो वर्षति वासवः ॥ ६० ॥

इसी प्रकार पुण्यतोया ह्लादिनी, जो पूर्वाभिमुखी प्रवाहित होती है, उपक, निषाद, धीवर, ऋषिक, नीलमुख, केकर, अनेककर्ण, किरात, कालंजर, विकर्ण, कुशिक और स्वर्गभौमक—इन सभी देशोंको सींचती हुई समुद्रमण्डलके तटपर पहुँचकर उसमें लीन हो गयी है। नलिनी नदी भी बिन्दुसरसे निकलकर पूर्व दिशाकी ओर प्रवाहित हुई है। वह कुपथ, इन्द्रद्युम्नसर, खरपथ, वेत्र (ट) द्वीप, शङ्कुपथ आदि प्रदेशोंको सींचती हुई उज्जानक (जूनागढ) मरुके मध्यभागसे बहती हुई कुथप्रावरणकी ओर चली गयी है तथा इन्द्रद्वीपके निकट लवणसागरमे मिल गयी है। उसी (मूल) सरोवरसे पावनी नदी बड़े वेगसे पूर्व दिशाकी ओर बहती है। वह तोमर, हसमार्ग और समूहक देशोंको सींचती हुई पूर्वी देशोंमें जा पहुँचती है। वहाँ अनेकों प्रकारसे पर्वतको विदीर्ण करके कर्णप्रावरणमें पहुँचकर अश्वमुख देशमें चली जाती है। इसके बाद मेरु पर्वतको सींचती हुई विद्याधरोंके लोकोंमें जाकर शैमिमण्डलकोष्ठ नामक महान् सरोवरमें प्रवेश कर जाती है। इनकी छोटी-बड़ी सैकडों-हजारों सहायक नदियाँ भी है, जो पृथक्-पृथक् इन्हींमें आकर मिली है। इन्हींके जलको ग्रहण कर इन्द्र वर्षा करते है ॥ ५२—६० ॥

तीरे वंशौकसारायाः सुरभिर्नाम तद् वनम्। हिरण्यशृङ्गो वसति विद्वान् कौबेरको वशी ॥ ६१ ॥
यज्ञादपेतः सुमहानमितौजाः सुविक्रमः। तत्रागस्त्यैः परिवृता विद्वद्भिर्ब्रह्मराक्षसैः ॥ ६२ ॥
कुबेरानुचरा ह्येते चत्वारस्तत्समाश्रिताः। एवमेव तु विज्ञेया सिद्धिः पर्वतवासिनाम् ॥ ६३ ॥
परस्परेण द्विगुणा धर्मतः कामतोऽर्थतः। हेमकूटस्य पृष्ठे तु सर्पाणां तत् सरः स्मृतम् ॥ ६४ ॥
सरस्वती प्रभवति तस्माज्ज्योतिष्मती तु या। अवगाढे ह्युभयतः समुद्रौ पूर्वपश्चिमौ ॥ ६५ ॥
सरो विष्णुपदं नाम निषधे पर्वतोत्तमे। यस्माद्ग्रे प्रभवति गन्धर्वानुकुले च ते ॥ ६६ ॥
मेरोः पार्श्वात् प्रभवति ह्रदश्चन्द्रप्रभो महान्। जम्बूश्चैव नदी पुण्या यस्यां जाम्बूनदं स्मृतम् ॥ ६७ ॥
पयोदस्तु ह्रदो नीलः स शुभः पुण्डरीकवान्। पुण्डरीकात् पयोदाच्च तस्माद् द्वे सम्प्रसूयताम् ॥ ६८ ॥
सरसस्तु सरस्त्वेतत् स्मृतमुत्तरमानसम्। मृग्या च मृगकान्ता च तस्माद् द्वे सम्प्रसूयताम् ॥ ६९ ॥
ह्रदाः कुरुषु विख्याताः पद्ममीनकुलाकुलाः। नाम्ना ते वैजया नाम द्वादशोदधिसंनिभाः ॥ ७० ॥
तेभ्यः शान्ती च मध्वी च द्वे नद्यौ सम्प्रसूयताम्। किम्पुरुषाद्यानि यान्यष्टौ तेषु देवो न वर्षति ॥ ७१ ॥

उद्भिदान्युदकान्यत्र प्रवहन्ति सरिद्वराः।

वंशौकसाराके तटपर सुरभि नामक वह वन है, जिसमें जितेन्द्रिय एवं विद्वान् हिरण्यशृङ्ग निवास करता है। वह कुबेरका अनुचर, यज्ञसे विमुख, अमित तेजस्वी एवं परम पराक्रमी है। वहीं अगस्त्यगोत्रीय विद्वान् ब्रह्मराक्षसोंका भी निवासस्थान है। ( उनकी संख्या चार है। ) वे चारो कुबेरके अनुचर हैं, जो उसी हिरण्यशृङ्गके आश्रममें रहते हैं। इसी प्रकार पर्वतनिवासियोंकी सिद्धि समझनी चाहिये। वह धर्म, काम और अर्थके अनुसार परस्पर दुगुना फल देनेवाली होती है। हेमकूट पर्वतके पृष्ठभागपर जो सर्पोंका सरोवर बतलाया जाता है, उसीसे सरस्वती और ज्योतिष्मती नामकी दो नदियाँ निकली हैं। वे क्रमशः पूर्व और पश्चिम समुद्रमें जाकर मिली हैं। पर्वतश्रेष्ठ निषधपर विष्णुपद नामक सरोवर है, जो उसी पर्वतके अग्रभागसे निकला हुआ है। वे दोनों ( नाग और विष्णुपद ) सरोवर गन्धर्वोंके अनुकूल हैं। मेरुके पार्श्वभागसे चन्द्रप्रभ नामक महान् सरोवर तथा पुण्यसलिला जम्बूनदी निकलती है। जम्बूनदीमें जाम्बूनद नामक सुवर्ण पाया जाता है। वहीं पयोद और पुण्डरीकवान् नामक दो सरोवर और हैं, जिनका जल क्रमशः नील और श्वेत है। इन पुण्डरीक और पयोद सरोवरोंसे दो सरोवर और प्रकट हुए हैं। उनमें एक सरोवरसे निकला हुआ सर उत्तरमानस नामसे प्रसिद्ध है। उससे मृग्या और मृगकान्ता नामकी दो नदियाँ निकली हैं। कुरुदेशमें सागरके समान अगाध एवं विस्तृत बारह ह्रद हैं, जो कमलों और मछलियोंसे भरे रहते हैं, वे 'वैजय' नामसे विख्यात हैं। उनसे शान्ती और मध्वी नामकी दो नदियाँ निकली हैं। किम्पुरुष आदि जो आठ वर्ष हैं, उनमें इन्द्रदेव वर्षा नहीं करते, अपितु वहाँकी बड़ी-बड़ी नदियाँ ही अन्नोत्पादक जलको प्रवाहित करती हैं॥ ६१—७१½ ॥

बलाहकश्च ऋषभो चक्रो मैनाक एव च ॥ ७२ ॥

विनिविष्टाः प्रतिदिशं निमग्ना लवणाम्बुधिम्। चन्द्रकान्तस्तथा द्रोणः सुमहांश्च शिलोच्चयः॥ ७३ ॥
उदगायता उदीच्यां तु अवगाढा महोदधिम्। चक्रो बधिरकश्चैव तथा नारदपर्वतः॥ ७४ ॥
प्रतीचीमायतास्ते वै प्रतिष्ठास्ते महोदधिम्। जीमूतो द्रावणश्चैव मैनाकश्चन्द्रपर्वतः॥ ७५ ॥
आयतास्ते महाशैलाः समुद्रं दक्षिणं प्रति। चक्रमैनाकयोर्मध्ये दिवि संदक्षिणापथे॥ ७६ ॥
तत्र संवर्तको नाम सोऽग्निः पिबति तज्जलम्। अग्निः समुद्रवासस्तु और्वोऽसौ वडवामुखः*॥ ७७ ॥
इत्येते पर्वताविष्टाश्चत्वारो लवणोदधिम्। छिद्यमानेषु पक्षेषु पुरा इन्द्रस्य वै भयात्॥ ७८ ॥
तेषां तु दृश्यते चन्द्रे शुक्ले कृष्णे समाप्लुतिः। ते भारतस्य वर्षस्य भेदा येन प्रकीर्तिताः॥ ७९ ॥
इहोदितस्य दृश्यन्ते अन्ये त्वन्यत्र चोदिताः। उत्तरोत्तरमेतेषां वर्षमुद्रिच्यते गुणैः॥ ८० ॥
आरोग्यायुःप्रमाणाभ्यां धर्मतः कामतोऽर्थतः। समन्वितानि भूतानि तेषु वर्षेषु भागशः॥ ८१ ॥
वसन्ति नानाजातीनि तेषु सर्वेषु तानि वै। इत्येतद् धारयद् विश्वं पृथ्वी जगदिदं स्थिता॥ ८२ ॥

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे भुवनकोशे जम्बूद्वीपवर्णनं नामैकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२१ ॥*

बलाहक, ऋषभ, चक्र और मैनाक—ये चारों पर्वत क्रमशः चारो दिशाओंमें लवणसागरतक फैले हुए हैं। चन्द्रकान्त, द्रोण तथा सुमहान्—इन पर्वतोंका विस्तार उत्तर दिशामें महासागरतक है। चक्र, बधिरक और नारद—ये पर्वत पश्चिम दिशामें फैले हुए हैं। इनका विस्तार महासागरतक है। जीमूत, द्रावण, मैनाक और चन्द्र—

* आर्यभट्टीय आदिके अनुसार वडवामुख दक्षिणीध्रुवके पास एक स्थान है, जिस मार्गसे लोग पातालमें प्रवेश करते थे। वडवाग्निको वडवाचक्र, वडवामुग्, हुत् आदि भी कहा गया है। महावीरचरितमें इसके रूप आदिका भी वर्णन है।

ये महापर्वत दक्षिण दिशामें दक्षिण समुद्रतक विस्तृत हैं। दक्षिणापथके समुद्रमें चक्र और मैनाक पर्वतके मध्यमें संवर्तक नामक अग्निका निवास है। वह उस सागरके जलको पीता है। समुद्रमें निवास करनेवाला और्व नामक अग्नि है, इसे बडवाग्नि कहते हैं। जिसका मुख घोड़ीके समान है। (वह भी समुद्रके जलको सोखता रहता है।) पूर्वकालमें जब इन्द्र पर्वतोंका पक्षच्छेदन कर रहे थे, उस समय ये चारों पर्वत इन्द्रके भयसे भीत होकर लवणसागरमें भागकर छिप गये थे। ये पर्वत चन्द्रमाके शुक्लपक्षमें आनेपर दीखते हैं एवं कृष्णपक्ष आनेपर समुद्रमें डूब जाते हैं। भारतवर्षके जो भेद दीख पड़ते हैं, उनका वर्णन यहाँ किया गया। अन्य वर्षोंका वर्णन अन्यत्र किया जा चुका है। इन वर्षोंमें प्रत्येक वर्ष एक-दूसरेकी अपेक्षा उत्तरोत्तर गुणोंमें अधिक है। इन वर्षोंमें सभी प्राणी विभागपूर्वक आरोग्य और आयुके प्रमाणसे तथा धर्म, काम और अर्थसे युक्त होकर निवास करते हैं। उन सभी वर्षोंमें उन प्राणियोंकी अनेकों जातियाँ भी हैं। इस प्रकार इस विश्व एवं इस जगत्‌को धारण करती हुई पृथ्वी स्थित है॥ ७२—८२॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके भुवनकोशवर्णनमें जम्बूद्वीप-वर्णन नामक एक सौ इक्कीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १२१॥

## एक सौ बाईसवाँ अध्याय

### शाकद्वीप, कुशद्वीप, क्रौञ्चद्वीप और शाल्मलद्वीपका वर्णन*

सूत उवाच

शाकद्वीपस्य वक्ष्यामि यथावदिह निश्चयम्। कथ्यमानं निबोधध्वं शाकं द्वीपं द्विजोत्तमाः॥ १॥
जम्बूद्वीपस्य विस्ताराद् द्विगुणस्तस्य विस्तरः। विस्तारात् त्रिगुणश्चापि परिणाहः समन्ततः॥ २॥
तेनावृतः समुद्रोऽयं द्वीपेन लवणोदधिः। तत्र पुण्या जनपदाश्चिराच्च म्रियते जनः॥ ३॥
कुत एव च दुर्भिक्षं क्षमातेजोयुतेष्विह। तत्रापि पर्वताः शुभ्राः सप्तैव मणिभूषिताः॥ ४॥
शाकद्वीपादिषु त्वेषु सप्त सप्त नगास्त्रिषु। ऋज्वायताः प्रतिदिशं निविष्टा वर्षपर्वताः॥ ५॥
रत्नाकराद्रिनामानः सानुमन्तो महाचिताः। समोदिताः प्रतिदिशं द्वीपविस्तारमानतः॥ ६॥
उभयत्रावगाढौ च लवणक्षीरसागरौ। शाकद्वीपे तु वक्ष्यामि सप्त दिव्यान् महाचलान्॥ ७॥
देवर्षिगन्धर्वयुतः प्रथमो मेरुरुच्यते। प्रागायतः स सौवर्ण उदयो नाम पर्वतः॥ ८॥
तत्र मेघास्तु वृष्ट्यर्थं प्रभवन्त्यपयान्ति च। तस्यापरेण सुमहाञ्जलधारो महागिरिः॥ ९॥
स वै चन्द्रः समाख्यातः सर्वौषधिसमन्वितः। तस्मान्नित्यमुपादत्ते वासवः परमं जलम्॥ १०॥

सूतजी कहते हैं—द्विजवरो! अब मैं शाकद्वीपका निश्चितरूपसे यथार्थ वर्णन कर रहा हूँ। आपलोग मेरे कथनानुसार शाकद्वीपके विषयमें जानकारी प्राप्त करें। शाकद्वीपका विस्तार जम्बूद्वीपके विस्तारसे दुगुना है और चारों ओरसे उसका फैलाव विस्तारसे भी तिगुना है। उस द्वीपसे यह लवणसागर घिरा हुआ है। शाकद्वीपमें अनेकों पुण्यमय जनपद हैं। वहाँके निवासी लम्बी आयु भोग कर मरते हैं। भला, उन क्षमाशील एवं तेजस्वी जनोंके प्रति दुर्भिक्षकी सम्भावना कहाँसे हो सकती है। इस द्वीपमें भी मणियोंसे विभूषित श्वेत रंगके सात पर्वत हैं। शाकद्वीप आदि तीन द्वीपोंमें सात-सात पर्वत हैं, जो चारों

*प्रायः सभी पुराणोंके भुवनको[illegible] ी द्वीपोंका वर्णन है, पर मत्स्यपुराणसे उनके नामक्रमादिमें [illegible] भेद है। W. Kirfelके भुवनकोश—(Das [illegible] [illegible]banden P, 111, f. Bharatvarsha 1 [illegible] सबका एकत्र सूक्ष्म तुलनात्मक अध्ययन वि[illegible]

दिशाओंमें सीधे फैले हुए हैं। ये ही वहाँ वर्षपर्वत कहलाते हैं। ये रत्नाकरादि नामवाले वर्षपर्वत ऊँचे शिखरोंसे युक्त तथा वृक्षोंसे सम्पन्न हैं। ये द्वीप विस्तारके परिमाणकी समानतामें चारों दिशाओंमें फैले हुए हैं और एक ओर क्षीरसागरतक तथा दूसरी ओर लवणसागरतक पहुँच गये हैं। अब मैं शाकद्वीपके सातों दिव्य महापर्वतोंका वर्णन कर रहा हूँ। उनमें पहला पर्वत मेरु कहा जाता है, जो देवों, ऋषियों और गन्धर्वोंसे सुसेवित है। वह स्वर्णमय पर्वत पूर्व दिशामें फैला हुआ है। उसका दूसरा नाम 'उदयगिरि' है। वहाँ मेघगण वृष्टि करनेके लिये आते हैं और ( जल बरसाकर ) चले जाते हैं। उसके पार्श्वभागमें सम्पूर्ण ओषधियोंसे सम्पन्न जलधार नामक अत्यन्त विशाल पर्वत है। वह चन्द्र नामसे भी विख्यात है। उसी पर्वतसे इन्द्र नित्य अधिक-से-अधिक जल ग्रहण करते हैं ॥ १—१० ॥

नारदो नाम चैवोक्तो दुर्गशैलो महाचितः। तत्राचलौ समुत्पन्नौ पूर्वं नारदपर्वतौ ॥ ११ ॥
तस्यापरेण सुमहाञ् श्यामो नाम महागिरिः। यत्र श्यामत्वमापन्नाः प्रजाः पूर्वमिमाः किल ॥ १२ ॥
स एव दुन्दुभिर्नाम श्यामपर्वतसंनिभः। शब्दमृत्युः पुरा तस्मिन् दुन्दुभिस्ताडितः सुरैः ॥ १३ ॥
रत्नमालान्तरमयः शाल्मलश्चान्तरालकृत्। तस्यापरेण रजतो महानस्तो गिरिः स्मृतः ॥ १४ ॥
स वै सोमक इत्युक्तो देवैर्यत्रामृतं पुरा। सम्भृतं च हृतं चैव मातुरर्थे गरुत्मता ॥ १५ ॥
तस्यापरे चाम्बिकेयः सुमनाश्चैव स स्मृतः। हिरण्याक्षो वराहेण तस्मिञ्शैले निषूदितः ॥ १६ ॥
आम्बिकेयात् परो रम्यः सर्वौषधिनिषेवितः। विभ्राजस्तु समाख्यातः स्फाटिकस्तु महान् गिरिः ॥ १७ ॥
यस्माद् विभ्राजते वह्निर्विभ्राजस्तेन स स्मृतः। सैवेह केशवेत्युक्तो यतो वायुः प्रवाति च ॥ १८ ॥

वहीं महान् समृद्धिशाली नारद नामक पर्वत है, जिसे दुर्गशैल भी कहते हैं। पूर्वकालमें ये दोनों नारद और दुर्गशैल पर्वत यहीं उत्पन्न हुए थे। उसके बाद श्याम नामक अत्यन्त विशाल पर्वत है, जहाँ पूर्वकालमें ये सारी प्रजाएँ श्यामलताको प्राप्त हो गयी थीं। श्यामपर्वतके सदृश काले रंगवाला वही दुन्दुभि पर्वत भी है, जिसपर प्राचीनकालमें देवताओंद्वारा दुन्दुभिके बजाये जानेपर उसके शब्दसे ही ( शत्रुओंकी ) मृत्यु हो जाती थी। इसके अन्तःप्रदेशमें रत्नोंके समूह भरे पड़े हैं और यह सेमलके वृक्षोंसे सुशोभित है। उसके बाद महान् अस्ताचल है, जो रजतमय है। उसे सोमक भी कहते हैं। इसी पर्वतपर पूर्वकालमें गरुड़ने अपनी माताके हितार्थ देवताओंद्वारा संचित किये गये अमृतका अपहरण किया था। उसके बाद आम्बिकेय नामक महापर्वत है, जिसे सुमना भी कहते हैं। इसी पर्वतपर वराह भगवान्‌ने हिरण्याक्षका वध किया था। आम्बिकेय पर्वतके बाद सम्पूर्ण ओषधियोंसे परिपूर्ण एवं स्फटिककी शिलाओंसे व्याप्त परम रमणीय महान् पर्वत है, जो विभ्राज नामसे विख्यात है। इससे अग्नि विशेष उद्दीप्त होती है, इसी कारण इसे विभ्राज कहते हैं। इसीको 'केशव' भी कहते हैं। यहींसे वायुकी गति प्रारम्भ होती है ॥ ११—१८ ॥

तेषां वर्षाणि वक्ष्यामि पर्वतानां द्विजोत्तमाः। शृणुध्वं नामतस्तानि यथावदनुपूर्वशः ॥ १९ ॥
द्विनामान्येव वर्षाणि यथैव गिरयस्तथा। उदयस्योदयं वर्षं जलधारेति विश्रुतम् ॥ २० ॥
नाम्ना गतभयं नाम वर्षं तत् प्रथमं स्मृतम्। द्वितीयं जलधारस्य सुकुमारमिति स्मृतम् ॥ २१ ॥
तदेव शैशिरं नाम वर्षं तत् परिकीर्तितम्। नारदस्य च कौमारं तदेव च सुखोदयम् ॥ २२ ॥
श्यामपर्वतवर्षं तदनीचक्रमिति स्मृतम्। आनन्दकमिति प्रोक्तं तदेव मुनिभिः शुभम् ॥ २३ ॥
सोमकस्य शुभं वर्षं विज्ञेयं कुसुमोत्करम्। तदेवासितमित्युक्तं वर्षं सोमकसंज्ञितम् ॥ २४ ॥
आम्बिकेयस्य मैनाकं क्षेमकं चैव तत्स्मृतम्। तदेव ध्रुवमित्युक्तं वर्षं विभ्राजसंज्ञितम् ॥ २५ ॥

द्विजवरो! अब मैं उन पर्वतोंके वर्षोंका यथार्थ-रूपसे नामनिर्देशानुसार आनुपूर्वी वर्णन कर रहा हूँ, सुनिये। जिस प्रकार वहाँके पर्वत दो नामवाले हैं, उसी तरह वर्षोंके भी दो-दो नाम हैं। उदयपर्वतके वर्ष उदय और जलधार नामसे प्रसिद्ध हैं। उनमें जो पहला उदय वर्ष है, वह गतभय नामसे अभिहित होता है। दूसरे जलधार पर्वतके वर्षको सुकुमार कहते हैं। वही शैशिर वर्षके नामसे भी विख्यात है। नारदपर्वतके वर्षका नाम कौमार है। उसीको सुखोदय भी कहते हैं। श्यामपर्वतका वर्ष अनीचक नामसे कहा जाता है। उसी मङ्गलमय वर्षको मुनिगण आनन्दक नामसे पुकारते हैं। सोमक पर्वतके कल्याणमय वर्षको कुसुमोत्कर नामसे जानना चाहिये। उसी सोमक नामवाले वर्षको असित भी कहा जाता है। आम्बिकेय पर्वतके वर्ष मैनाक और क्षेमक नामसे प्रसिद्ध हैं। (सातवें केसर पर्वतके वर्षका नाम) विभ्राज है। वही ध्रुव नामसे भी कहा जाता है॥ १७—२५॥

**द्वीपस्य परिणाहं च ह्रस्वदीर्घत्वमेव च। जम्बूद्वीपेन संख्यातं तस्य मध्ये वनस्पतिम्॥ २६॥**
**शाको नाम महावृक्षः प्रजास्तस्य महानुगाः। एतेषु देवगन्धर्वाः सिद्धाश्च सह चारणैः॥ २७॥**
**विहरन्ति रमन्ते च दृश्यमानाश्च तैः सह। तत्र पुण्या जनपदाश्चातुर्वर्ण्यसमन्विताः॥ २८॥**
**तेषु नद्यश्च सप्तैव प्रतिवर्षं समुद्रगाः। द्विनाम्ना चैव ताः सर्वा गङ्गाः सप्तविधाः स्मृताः॥ २९॥**
**प्रथमा सुकुमारीति गङ्गा शिवजला शुभा। अनुतप्ता च नाम्नैषा नदी सम्परिकीर्तिता॥ ३०॥**
**सुकुमारी तपःसिद्धा द्वितीया नामतः सती। नन्दा च पावनी चैव तृतीया परिकीर्तिता॥ ३१॥**
**शिबिका च चतुर्थी स्याद् द्विविधा च पुनः स्मृता। इक्षुश्च पञ्चमी ज्ञेया तथैव च पुनः कुहूः॥ ३२॥**
**वेणुका चामृता चैव षष्ठी सम्परिकीर्तिता। सुकृता च गभस्ती च सप्तमी परिकीर्तिता॥ ३३॥**
**एताः सप्त महाभागाः प्रतिवर्षं शिवोदकाः। भावयन्ति जनं सर्वं शाकद्वीपनिवासिनम्॥ ३४॥**
**अभिगच्छन्ति ताश्चान्या नदनद्यः सरांसि च। बहूदकपरिस्रावा यतो वर्षति वासवः॥ ३५॥**

शाकद्वीपका विस्तार तथा लम्बाई-चौड़ाई जम्बूद्वीपके परिमाणसे अधिक है। (यह ऊपर बतला चुके हैं।) इस द्वीपके मध्यभागमें शाक नामका एक महान् वनस्पति है। इस द्वीपकी प्रजाएँ महापुरुषोंका अनुगमन करनेवाली हैं। इन वर्षोंमें देवता, गन्धर्व, सिद्ध और चारण विहार करते हैं और उनकी रमणीयता देखते हुए प्रजाओंके साथ क्रीडा करते हैं। इस द्वीपमें चारों वर्णोंकी प्रजाओंसे सम्पन्न सुन्दर जनपद हैं। इनमें प्रत्येक वर्षमें समुद्र-गामिनी सात नदियाँ भी हैं और वे सभी दो नामोंवाली हैं। केवल गङ्गा सात प्रकारकी बतलायी जाती हैं। मङ्गलमयी एवं पुण्यसलिला प्रथमा गङ्गा सुकुमारी नामसे कही जाती हैं। यही नदी अनुतप्ता नामसे भी प्रसिद्ध है। दूसरी गङ्गा तपःसिद्धा सुकुमारी हैं। ये ही सती नामसे भी प्रसिद्ध हैं। तीसरी गङ्गा नन्दा और पावनी नाममे विख्यात हैं। चौथी गङ्गा शिबिका हैं, इन्हींको द्विविधा भी कहा जाता है। इक्षुको पाँचवीं गङ्गा समझना चाहिये। उसी प्रकार पुनः इन्हे कुहू भी कहते हैं। छठी गङ्गा वेणुका और अमृता नामसे प्रसिद्ध हैं। सातवीं गङ्गाको सुकृता और गभस्ती कहा जाता है। कल्याणमय जलसे परिपूर्ण एवं महान् भाग्यशालिनी ये सातों गङ्गाएँ शाकद्वीपके प्रत्येक वर्षके सभी प्राणियोंको पवित्र करती हैं। दूसरे बड़े-बड़े नद, नदियाँ और सरोवर भी इन्हीं गङ्गाकी धाराओंमें आकर मिलते हैं, जिसके कारण ये सभी अथाह जल बहानेवाली हैं। इन्हींसे जल ग्रहण कर इन्द्र वर्षा करते हैं॥ २६—३५॥

**तासां तु नामधेयानि परिमाणं तथैव च। न शक्यं परिसंख्यातुं पुण्यास्ताः सरिदुत्तमाः॥ ३६॥**
**ताः पिबन्ति सदा हृष्टा नदीर्जनपदास्तु ते। एते शान्तमयाः प्रोक्ताः प्रमोदा ये च वै शिवाः॥ ३७॥**

आनन्दाश्च सुखाश्चैव क्षेमकाश्च नवैः सह । वर्णाश्रमाचारयुता देशास्ते सप्त विश्रुताः ॥ ३८ ॥
आरोग्या बलिनश्चैव सर्वे मरणवर्जिताः । अवसर्पिणी न तेष्वस्ति तथैवोत्सर्पिणी पुनः ॥ ३९ ॥
न तत्रास्ति युगावस्था चतुर्युगकृता क्वचित् । त्रेतायुगसमः कालः सदा तत्र प्रवर्तते ॥ ४० ॥
शाकद्वीपादिपु ज्ञेयं पञ्चस्वेतेषु सर्वशः । देशस्य तु विचारेण कालः स्वाभाविकः स्मृतः ॥ ४१ ॥
न तेषु संकरः कश्चिद् वर्णाश्रमकृतः क्वचित् । धर्मस्य चाप्यभीचारादेकान्तसुखिनः प्रजाः ॥ ४२ ॥
न तेषु माया लोभो वा ईर्ष्यासूया भयं कुतः । विपर्ययो न तेष्वस्ति तद्धै स्वाभाविकं स्मृतम् ॥ ४३ ॥
कालो नैव च तेष्वस्ति न दण्डो न च दाण्डिकः । स्वधर्मेण च धर्मज्ञास्ते रक्षन्ति परस्परम् ॥ ४४ ॥

उन सहायक नदियोंके नाम और परिमाणकी गणना नहीं की जा सकती। ये सभी श्रेष्ठ नदियाँ पुण्यतोया हैं। इनके तटपर निवास करनेवाले जनपदवासी सदा हर्ष-पूर्वक इनका जल पीते हैं। उनके तटपर स्थित शान्तमय, प्रमोद, शिव, आनन्द, सुख, क्षेमक और नव—ये सात विश्व-विख्यात देश हैं। यहाँ वर्ण और आश्रमके धर्मोंका सुचारुरूपसे पालन होता है। यहाँके सभी निवासी नीरोग, बलवान् और मृत्युसे रहित होते हैं। उनमें अवसर्पिणी ( अधोगामिनी ) तथा उत्सर्पिणी ( ऊर्ध्वगामिनी ) क्रिया नहीं होती है। वहाँ कहीं भी चारों युगोंद्वारा की गयी युगव्यवस्था नहीं है। वहाँ सदा त्रेतायुगके समान ही समय वर्तमान रहता है। शाकद्वीप आदि इन पाँचों द्वीपोंमें ऐसी ही दशा जाननी चाहिये; क्योंकि देशके विचारसे ही कालकी स्वाभाविक गति जानी जाती है। उन द्वीपोंमें कहीं भी वर्ण एवं आश्रमजन्य संकर नहीं पाया जाता। इस प्रकार धर्मका परित्याग न करनेके कारण वहाँकी प्रजा एकान्त सुखका अनुभव करती है। उनमें न तो माया ( छल-कपट ) है, न लोभ, तब भला ईर्ष्या, असूया और भय कैसे हो सकते हैं ? उनमें धर्मका विपर्यय भी नहीं देखा जाता। धर्म तो उनके लिये स्वाभाविक कर्म माना गया है। उनपर कालका कोई प्रभाव नहीं पड़ता, वहाँ न तो दण्डका विधान है, न कोई दण्ड देनेवाला ही है। वहाँके निवासी धर्मके ज्ञाता हैं, अतः वे स्वधर्मानुसार परस्पर एक-दूसरेकी रक्षा करते रहते हैं ॥ ३६—४४ ॥

परिमण्डलस्तु सुमहान् द्वीपो वै कुशसंज्ञकः । नदीजलैः परिवृतः पर्वतैश्चाभ्रसंनिभैः ॥ ४५ ॥
सर्वधातुविचित्रैश्च मणिविद्रुमभूषितैः । अन्यैश्च विविधाकारै रम्यैर्जनपदैस्तथा ॥ ४६ ॥
वृक्षैः पुष्पफलोपेतैः सर्वतो धनधान्यवान् । नित्यं पुष्पफलोपेतः सर्वरत्नसमावृतः ॥ ४७ ॥
आवृतः पशुभिः सर्वैर्ग्राम्यारण्यैश्च सर्वशः । आनुपूर्व्यात् समासेन कुशद्वीपं निबोधत ॥ ४८ ॥
अथ तृतीयं वक्ष्यामि कुशद्वीपं च कृत्स्नशः । कुशद्वीपेन क्षीरोदः सर्वतः परिवारितः ॥ ४९ ॥
शाकद्वीपस्य विस्ताराद् द्विगुणेन समन्वितः । तत्रापि पर्वताः सप्त विज्ञेया रत्नयोनयः ॥ ५० ॥
रत्नाकरास्तथा नद्यस्तेषां नामानि मे शृणु । द्विनामानश्च ते सर्वे शाकद्वीपे यथा तथा ॥ ५१ ॥
प्रथमः सूर्यसंकाशः कुमुदो नाम पर्वतः । विद्रुमोच्चय इत्युक्तः स एव च महीधरः ॥ ५२ ॥
सर्वधातुमयैः शृङ्गैः शिलाजालसमन्वितैः । द्वितीयः पर्वतस्तत्र उन्नतो नाम विश्रुतः ॥ ५३ ॥
हेमपर्वत इत्युक्तः स एव च महीधरः ।

कुश नामक द्वीप अत्यन्त विशाल मण्डलवाला है। उसके चारो ओर नदियोंका जल प्रवाहित होता रहता है। वह बादल-सदृश रंगवाले, सम्पूर्ण धातुओंसे युक्त होनेके कारण रंगे-बिरंगे तथा मणियों और मूँगोंसे विभूषित पर्वतोंद्वारा घिरा हुआ है। उसमें चारों ओर विभिन्न आकारवाले रमणीय जनपद तथा फूल-फलोंसे लदे हुए वृक्षोंके समूह शोभायमान हो रहे हैं। वह धन-धान्यसे परिपूर्ण है। वह सदा पुष्पों और फलोंसे युक्त रहता है। उसमें सभी प्रकारके रत्न पाये जाते हैं। वह सर्वत्र ग्रामीण एवं जंगली पशुओंसे भरा हुआ है।

*

उस कुशद्वीपका संक्षेपमें आनुपूर्वी वर्णन सुनिये । अब मै तीसरे कुशद्वीपका समग्ररूपसे वर्णन कर रहा हूँ। कुशद्वीपसे क्षीरसागर चारो ओरसे घिरा हुआ है । यह शाकद्वीपके दुगुने विस्तारसे युक्त है । यहाँ भी रत्नोंकी खानोसे युक्त सात पर्वत जानना चाहिये । यहाँकी नदियाँ भी रत्नोंकी भण्डार हैं । अब मुझसे उनका नाम सुनिये । जैसे शाकद्वीपमें सभी पर्वतो और नदियोके दो नाम थे, वैसे ही यहाँके भी पर्वत एवं नदी दो नामवाली हैं । पहला सूर्यके समान चमकीला कुमुद नामक पर्वत है । वह पर्वत विद्रुमोच्चय नामसे भी कहा जाता है । वहाँ दूसरा पर्वत उन्नत नामसे विख्यात है । वह सम्पूर्ण धातुओंसे परिपूर्ण एवं शिला-समूहोंसे समन्वित शिखरोंसे युक्त है । वही पर्वत हेमपर्वत नामसे अभिहित होता है ॥ ४५–५३½ ॥

हरितालमयैः शृङ्गैर्द्वीपमावृत्य सर्वशः ॥ ५४ ॥
बलाहकस्तृतीयस्तु भात्यञ्जनमयो गिरिः । द्युतिमान् नामतः प्रोक्तः स एव च महीधरः ॥ ५५ ॥
चतुर्थः पर्वतो द्रोणो यत्रौषध्यो महाबलाः । विशल्यकरणी चैव मृतसंजीवनी तथा ॥ ५६ ॥
पुष्पवान् नाम सैवोक्तः पर्वतः सुमहाचितः । कङ्कस्तु पञ्चमस्तेषां पर्वतो नाम सारवान् ॥ ५७ ॥
कुशेशय इति प्रोक्तः पुनः स पृथिवीधरः । दिव्यपुष्पफलोपेतो दिव्यवीरुत्समन्वितः ॥ ५८ ॥
षष्ठस्तु पर्वतस्तत्र महिषो मेघसंनिभः । स एव तु पुनः प्रोक्तो हरिरित्यभिविश्रुतः ॥ ५९ ॥
तस्मिन् सोऽग्निर्निवसति महिषो नाम योऽप्सुजः । सप्तमः पर्वतस्तत्र ककुद्मान् स हि भाषते ॥ ६० ॥
मन्दरः सैव विज्ञेयः सर्वधातुमयः शुभः । मन्द इत्येष यो धातुरपामर्थे प्रकाशकः ॥ ६१ ॥
अपां विदारणाच्चैव मन्दरः स निगद्यते । तत्र रत्नान्यनेकानि स्वयं रक्षति वासवः ॥ ६२ ॥
प्रजापतिमुपादाय प्रजाभ्यो विदधत् स्वयम् । तेषामन्तरविष्कम्भो द्विगुणः समुदाहृतः ॥ ६३ ॥
इत्येते पर्वताः सप्त कुशद्वीपे प्रभाषिताः । तेषां वर्षाणि वक्ष्यामि सप्तैव तु विभागशः ॥ ६४ ॥
कुमुदस्य स्मृतः श्वेत उन्नतश्चैव स स्मृतः । उन्नतस्य तु विज्ञेयं वर्षं लोहितसंज्ञकम् ॥ ६५ ॥
वेणुमण्डलकं चैव तथैव परिकीर्तितम् । बलाहकस्य जीमूतः स्वैरथाकारमित्यपि ॥ ६६ ॥

तीसरा बलाहक पर्वत है, जो अञ्जनके समान काला है । यह अपने हरितालमय शिखरोसे सर्वत्र द्वीपको आवृत किये हुए है । यही पर्वत द्युतिमान् नामसे भी पुकारा जाता है । चौथा पर्वत द्रोण है । इस महान् गिरिपर विशल्यकरणी और मृतसंजीवनी आदि महाबलवती ओषधियाँ पायी जाती हैं । वही महान् समृद्धिशाली पर्वत पुष्पवान् नामसे विख्यात है । उनमें पाँचवाँ कङ्क पर्वत है, जो सारयुक्त पदार्थोंसे सम्पन्न है । इस पर्वतको कुशेशय भी कहते हैं । वहाँ छठा महिष पर्वत है, जो मेघ-सदृश काला है । वह दिव्य पुष्पों एवं फलोसे युक्त तथा दिव्य वृक्षोंसे सम्पन्न है । वही पुनः हरि नामसे विख्यात है । उस पर्वतपर महिष नामक अग्नि, जो जलसे उत्पन्न हुआ है, निवास करता है । वहाँ सातवें पर्वतको ककुद्मान् कहा जाता है । उसीको मन्दर जानना चाहिये । वह सम्पूर्ण धातुओंसे युक्त और अत्यन्त सुन्दर है । जो यह मंद ( १ । १३ ) धातु है, वह जलरूप अर्थको प्रकट करनेवाली है, अतः जलका विदारण करके निकलनेके कारण इस पर्वतको मन्दर कहा जाता है । उस पर्वतपर अनेको प्रकारके रत्न पाये जाते हैं, जिनकी रक्षा प्रजापतिको साथ लेकर स्वयं इन्द्र करते हैं । साथ ही स्वयं इन्द्र वहाँकी प्रजाओकी भी देख-भाल करते हैं । इनके अन्तर-विष्कम्भ पर्वत परिमाणमें दुगुने बतलाये जाते हैं । कुशद्वीपमें ये सात पर्वत कहे गये हैं । अब मैं इनके सात वर्षोंका विभागपूर्वक वर्णन कर रहा हूँ । कुमुद पर्वतके वर्षका नाम श्वेत है । इसे उन्नत नामसे भी पुकारते हैं । उन्नत पर्वतका लोहित नामक वर्ष जानना चाहिये । इसे वेणुमण्डलक भी कहते हैं । बलाहक पर्वतका वर्ष जीमूत है, इसीका नाम स्वैरथाकार भी है ॥ ५४–६६ ॥

द्रोणस्य हरिकं नाम लवणं च पुनः स्मृतम् । कङ्कस्यापि ककुन्नाम धृतिमच्चैव तत् स्मृतम्॥ ६७ ॥
महिषं महिषस्यापि पुनश्चापि प्रभाकरम् । ककुद्मिनस्तु तद्वर्षं कपिलं नाम विश्रुतम् ॥ ६८ ॥
एतान्यपि विशिष्टानि सप्त सप्त पृथक् पृथक् । वर्षाणि पर्वताश्चैव नदीस्तेषु निबोधत ॥ ६९ ॥
तत्रापि नद्यः सप्तैव प्रतिवर्षं हि ताः स्मृताः । द्विनामवत्यस्ताः सर्वाः सर्वाः पुण्यजलाः स्मृताः॥ ७० ॥
धूतपापा नदी नाम योनिश्चैव पुनः स्मृता । सीता द्वितीया विज्ञेया सा चैव हि निशा स्मृता॥ ७१ ॥
पवित्रा तृतीया विज्ञेया वितृष्णापि च या पुनः । चतुर्थी ह्रादिनीत्युक्ता चन्द्रभा इति च स्मृता ॥ ७२ ॥
विद्युच्च पञ्चमी प्रोक्ता शुक्ला चैव विभाव्यते । पुण्ड्रा षष्ठी तु विज्ञेया पुनश्चैव विभावरी ॥ ७३ ॥
महती सप्तमी प्रोक्ता पुनश्चैषा धृतिः स्मृता । अन्यास्ताभ्योऽपि संजाताः शतशोऽथ सहस्रशः॥ ७४ ॥
अभिगच्छन्ति ता नद्यो यतो वर्षति वासवः । इत्येष संनिवेशो वः कुशद्वीपस्य वर्णितः ॥ ७५ ॥
शाकद्वीपेन विस्तारः प्रोक्तस्तस्य सनातनः । कुशद्वीपः समुद्रेण घृतमण्डोदकेन च ॥ ७६ ॥
सर्वतः सुमहान् द्वीपश्चन्द्रवत् परिवेष्टितः । विस्तारान्मण्डलाच्चैव क्षीरोदाद् द्विगुणो मतः॥ ७७ ॥

द्रोणपर्वतके वर्षका नाम हरिक है, इसे लवण भी कहते हैं । कङ्क पर्वतका वर्ष ककुद् है, इसे धृतिमान् भी कहा जाता है । महिष पर्वतके वर्षका नाम महिष है, इसे प्रभाकर नामसे अभिहित किया जाता है । ककुद्मी पर्वतका जो वर्ष है, वह कपिल नामसे विख्यात है । कुशद्वीपमें ये सातों विशिष्ट वर्ष तथा सात पर्वत पृथक्-पृथक् हैं । अब उन वर्षोंकी नदियोंको सुनिये । वहाँ प्रत्येक वर्षमें नदियाँ भी सात ही बतलायी जाती हैं । वे सभी दो नामोंवाली तथा पुण्यसलिला हैं । उनमें पहली नदीका नाम धूतपापा है, उसे योनि भी कहते हैं । दूसरी नदीको सीता नामसे जानना चाहिये। वही निशा भी कही जाती है । पवित्राको तीसरी नदी समझना चाहिये । उसीका नाम वितृष्णा भी है । चौथी ह्रादिनी नामसे पुकारी जाती है, यही चन्द्रमा नामसे भी प्रसिद्ध है । पाँचवीं नदीको विद्युत् कहते हैं, यही शुक्ला नामसे भी अभिहित होती है । पुण्ड्राको छठी नदी जानना चाहिये, इसको विभावरी भी कहते हैं । सातवीं नदीका नाम महती है, यही धृति नामसे भी कही जाती है । इनके अतिरिक्त अन्य भी छोटी-बड़ी सैकड़ों-हजारों नदियाँ हैं, जो इन्हीं प्रमुख नदियोंमें जाकर मिली हैं । इन्हींसे जल ग्रहण करके इन्द्र यहाँ वर्षा करते हैं । इस प्रकार मैंने आपलोगोंसे कुशद्वीपकी संस्थितिका वर्णन कर दिया तथा उसके शाकद्वीपसे दुगुने सनातन विस्तारको भी बतला दिया । यह महान् कुशद्वीप चारों ओरसे चन्द्रमाकी भाँति घृत और मट्ठेसे भरे हुए सागरसे घिरा हुआ है । यह विस्तार एवं मण्डल ( घेराव )में क्षीरसागरसे दुगुना माना गया है ॥ ६७–७७ ॥

ततः परं प्रवक्ष्यामि क्रौञ्चद्वीपं यथा तथा । कुशद्वीपस्य विस्ताराद् द्विगुणस्तस्य विस्तरः ॥ ७८ ॥
घृतोदकः समुद्रो वै क्रौञ्चद्वीपेन संवृतः । चक्रनेमिप्रमाणेन वृतो वृत्तेन सर्वशः ॥ ७९ ॥
तस्मिन् द्वीपे नराः श्रेष्ठा देवनो गिरिरुच्यते । देवनात् परतश्चापि गोविन्दो नाम पर्वतः ॥ ८० ॥
गोविन्दात् परतश्चापि क्रौञ्चस्तु प्रथमो गिरिः । क्रौञ्चात् परः पावनकः पावनादन्धकारकः ॥ ८१ ॥
अन्धकारात् परेश्चापि देवावृन्नाम पर्वतः । देवावृतः परेणापि पुण्डरीको महान् गिरिः ॥ ८२ ॥
एते रत्नमयाः सप्त क्रौञ्चद्वीपस्य पर्वताः । परस्परस्य द्विगुणो विष्कम्भो वर्षपर्वतः ॥ ८३ ॥
वर्षाणि तस्य वक्ष्यामि नामतस्तु निबोधत । क्रौञ्चस्य कुशलो देशो वामनस्य मनोऽनुगः ॥ ८४ ॥
मनोऽनुगात् परे चोष्णस्तृतीयोऽपि स उच्यते । उष्णात् परे पावनकः पावनादन्धकारकः ॥ ८५ ॥
अन्धकारकदेशात् तु मुनिदेशस्तथापरः । मुनिदेशात् परे चापि प्रोच्यते दुन्दुभिस्वनः ॥ ८६ ॥
सिद्धचारणसंकीर्णो गौरप्रायः शुचिर्जनः । श्रुतास्तत्रैव नद्यस्तु प्रतिवर्षं गताः शुभाः ॥ ८७

गौरी कुमुद्वती चैव संध्या रात्रिर्मनोजवा। ख्यातिश्च पुण्डरीका च गङ्गा सप्तविधा स्मृता॥ ८८॥
तासां सहस्रशश्चान्या नद्यः पार्श्वसमीपगाः। अभिगच्छन्ति ता नद्यो बहुलाश्च बहूदकाः॥ ८९॥
तेषां निसर्गो देशानामानुपूर्व्येण सर्वशः। न शक्यो विस्तराद् वक्तुमपि वर्षशतैरपि॥ ९०॥
सर्गो यश्च प्रजानां तु संहारो यश्च तेषु वै।

इसके बाद अब मैं क्रौञ्चद्वीपका यथार्थरूपसे वर्णन कर रहा हूँ। इसका विस्तार कुशद्वीपके विस्तारसे दुगुना है। चक्केकी भाँति गोलाकार इस क्रौञ्चद्वीपसे घृतसागर चारों ओरसे घिरा हुआ है। श्रेष्ठ ऋषियो! इस क्रौञ्चद्वीपमें देवन नामक पर्वत बतलाया जाता है। देवनके बाद गोविन्द नामक पर्वत है। गोविन्दके बाद क्रौञ्च नामक पहला पर्वत है। क्रौञ्चके बाद पावनक, पावनकके बाद अन्धकारक और अन्धकारकके बाद देवावृत् नामक पर्वत है। देवावृत्के बाद पुण्डरीक नामक विशाल पर्वत है। क्रौञ्चद्वीपके ये सातो पर्वत रत्नमय हैं। इस द्वीपके वर्ष पर्वतके रूपमें स्थित विष्कम्भ पर्वत परस्पर एक-दूसरेसे दुगुने हैं। अब इस द्वीपके वर्षोंका नाम बतला रहा हूँ, सुनिये। क्रौञ्च पर्वतके प्रदेशका नाम कुशल है। वामन पर्वतका प्रदेश मनोऽनुग कहलाता है। मनोऽनुगके बाद तीसरा उष्ण प्रदेश कहा जाता है। उष्णके बाद पावनक, पावनकके बाद अन्धकारक और अन्धकारकके बाद दूसरा मुनिदेश है। मुनिदेशके बाद दुन्दुभिस्वन नामक देश कहा जाता है। यह द्वीप सिद्धों एवं चारणोंसे व्याप्त है। यहाँके निवासी प्रायः गौर वर्णके एवं परम पवित्र होते हैं। इस द्वीपके प्रत्येक वर्षमें मङ्गलमयी नदियाँ भी प्रवाहित होती हैं, ऐसा सुना गया है। वहाँ गौरी, कुमुद्वती, संध्या, रात्रि, मनोजवा, ख्याति और पुण्डरीका—ये सात प्रकारकी गङ्गा बतलायी जाती हैं। इनके अगल-बगलमें बहनेवाली अगाध जलसे भरी हुई हजारों अन्य नदियाँ भी हैं, जो इन्हीं प्रमुख नदियोंमें आकर मिली हैं। उन पर्वतीय प्रदेशोंकी सर्वथा आनुपूर्वी स्वाभाविकी स्थितिका तथा वहाँकी प्रजाओंकी सृष्टि एवं संहारका विस्तारपूर्वक वर्णन सैकड़ो वर्षोंमें भी नहीं किया जा सकता॥ ७८—९०½॥

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि शाल्मलस्य निबोधत॥ ९१॥
शाल्मलो द्विगुणो द्वीपः क्रौञ्चद्वीपस्य विस्तरात्। परिवार्य समुद्रं तु घृतमण्डोदकं स्थितः॥ ९२॥
तत्र पुण्या जनपदाश्चिराच्च म्रियते जनः। कुत एव तु दुर्भिक्षं क्षमातेजोयुता हि ते॥ ९३॥
प्रथमः सूर्यसङ्काशः सुमना नाम पर्वतः। पीतस्तु मध्यमश्चासीत् ततः कुम्भमयो गिरिः॥ ९४॥
नाम्ना सर्वसुखो नाम दिव्यौषधिसमन्वितः। तृतीयश्चैव सौवर्णो भृङ्गपत्रनिभो गिरिः॥ ९५॥
सुमहान् रोहितो नाम दिव्यो गिरिवरो हि सः। सुमनाः कुशलो देशः सुखोदर्कः सुखोदयः॥ ९६॥
रोहितो यस्तृतीयस्तु रोहिणो नाम विश्रुतः। तत्र रत्नान्यनेकानि स्वयं रक्षति वासवः॥ ९७॥
प्रजापतिमुपादाय प्रसन्नो विदधत् स्वयम्। न तत्र मेघा वर्षन्ति शीतोष्णं च न तद्विधम्॥ ९८॥
वर्णाश्रमाणां वार्ता वा त्रिषु द्वीपेषु विद्यते। न ग्रहो न च चन्द्रोऽस्ति ईर्ष्यासूया भयं तथा॥ ९९॥
उद्भिदान्युदकान्यत्र गिरिप्रस्रवणानि च। भोजनं षड्रसं तत्र तेषां स्वयमुपस्थितम्॥१००॥
अधमोत्तमं न तेष्वस्ति न लोभो न परिग्रहः। आरोग्यबलवन्तश्च एकान्तसुखिनो नराः॥१०१॥
त्रिंशद्वर्षसहस्राणि मानसीं सिद्धिमास्थिताः। सुखमायुश्च रूपं च धर्मैश्वर्यं तथैव च॥१०२॥
शाल्मलान्तेषु विज्ञेयं द्वीपेषु त्रिषु सर्वतः। व्याख्यातः शाल्मलान्तानां द्वीपानां तु विधिः शुभः॥
परिमण्डलस्तु द्वीपस्य चक्रवत् परिवेष्टितः। सुरोदेन समुद्रेण द्विगुणेन समन्वितः॥१०४॥

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे भुवनकोशे द्वीपवर्णनं नाम द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १२२॥*

इसके बाद मैं शाल्मलद्वीपका वर्णन कर रहा हूँ, सुनिये । शाल्मलद्वीप क्रौञ्चद्वीपके विस्तारसे दुगुना है । यह घृतमण्डोदसागरको घेरकर स्थित है । इसमें पुण्यमय जनपद हैं । वहाँके निवासी क्षमाशील एवं तेजस्वी होते हैं तथा दीर्घायुका उपभोग कर मृत्युको प्राप्त होते हैं । वहाँ अकालकी कोई सम्भावना ही नहीं है । वहाँ पहले पर्वतका नाम सुमना है, जो सूर्यके समान चमकीला होनेके कारण पीले रंगका है । उसके बाद दूसरा कुम्भमय नामक पर्वत है । उसका दूसरा नाम सर्वसुख है । वह दिव्य ओषधियोंसे सम्पन्न है । तीसरा स्वर्णसम्पन्न एवं भ्रमरके पंखके समान रंगवाला रोहित नामक विशाल पर्वत है । यह पर्वत-श्रेष्ठ दिव्य है । सुमना पर्वतका देश कुशल एवं दूसरे सर्वसुख पर्वतका देश सुखोदय है, जो सभी सुखोंको उत्पन्न करनेवाला है । तीसरे रोहित पर्वतका प्रदेश रोहिण नामसे विख्यात है । वहाँ अनेकों प्रकारके रत्नोंकी खानें हैं, जिनकी रक्षा प्रजापतिको साथ लेकर स्वयं इन्द्र करते हैं और वे ही प्रसन्नतापूर्वक वहाँकी प्रजाओंके लिये कार्यका विधान करते हैं । वहाँ न तो मेघ वर्षा करते हैं, न शीत एवं उष्णकी ही अधिकता रहती है । इन तीनों द्वीपोंमें वर्णाश्रमकी चर्चा चलती रहती है अर्थात् यहाँ वर्णाश्रमका पूर्णरूपसे प्रचार है । यहाँ न ग्रहगण हैं, न चन्द्रमा हैं और न यहाँके निवासियोंमें ईर्ष्या, असूया और भय ही देखा जाता है । यहाँ पर्वतोंसे झरते हुए जल ही अन्नके उत्पादक हैं । वहाँके निवासियोंके लिये षट्-रसयुक्त भोजन स्वयं ही प्राप्त हो जाता है । उनमें न तो ऊँच-नीचका भाव है, न लोभ है और न परिग्रह ( दान लेनेकी प्रवृत्ति ) ही है । वे नीरोग एवं बलवान् होते हैं तथा एकान्त सुखका उपभोग करते हैं । वे लोग तीस हजार वर्ष-तककी मानसी सिद्धिको प्राप्त होकर सुख, दीर्घायु, सुन्दर रूप, धर्म और ऐश्वर्यका उपभोग करते हुए जीवन-यापन करते हैं । कुश, क्रौञ्च और शाल्मल— इन तीनों द्वीपोंमें यही स्थिति समझनी चाहिये । इस प्रकार मैं इन तीनों द्वीपोंकी शुभमयी विधिका विवरण बतला चुका । इस शाल्मलद्वीपका मण्डल ( घेरा ) दुगुने परिमाणवाले सुरोदसागरसे चारों ओर चक्रकी भाँति गोलाकार घिरा हुआ है ॥ ९१—१०४ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके भुवनकोशवर्णनप्रसङ्गमें द्वीपवर्णन नामक एक सौ बाईसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥१२२॥

# एक सौ तेईसवाँ अध्याय

## गोमेदकद्वीप* और पुष्करद्वीपका वर्णन

सूत उवाच

गोमेदकं प्रवक्ष्यामि षष्ठं द्वीपं तपोधनाः । सुरोदकसमुद्रस्तु गोमेदेन समावृतः ॥ १ ॥
शाल्मलस्य तु विस्ताराद् द्विगुणस्तस्य विस्तरः । तस्मिन् द्वीपे तु विज्ञेयौ पर्वतौ द्वौ समाहितौ ॥ २ ॥
प्रथमः सुमना नाम भात्यञ्जनमयो गिरिः । द्वितीयः कुमुदो नाम सर्वौषधिसमन्वितः ॥ ३ ॥
शातकौम्भमयः श्रीमान् विज्ञेयः सुमहाचितः । समुद्रेक्षुरसोदेन वृतो गोमेदकश्च सः ॥ ४ ॥
षष्ठेन तु समुद्रेण सुरोदाद् द्विगुणेन च । धातकी कुमुदश्चैव हव्यपुत्रौ सुविस्तृतौ ॥ ५ ॥

* इस द्वीपका वर्णन प्रायः अन्य पुराणोंमें नहीं है । पर सिद्धान्तशिरोमणि गोलाध्याय ३ । २५ आदिमें इसका वर्णन है । अन्य पुराणमें गोमेद प्लक्षद्वीपमें एक मर्यादा पर्वत-मात्र है ।

सौमनं प्रथमं वर्षं धातकीखण्डमुच्यते। धातकिनः स्मृतं तद् वै प्रथमं प्रथमस्य तु ॥ ६ ॥
गोमेदं यत्स्मृतं वर्षं नाम्ना सर्वसुखं तु तत्। कुमुदस्य द्वितीयस्य द्वितीयं कुमुदं ततः ॥ ७ ॥
एतौ द्वौ पर्वतौ वृत्तौ शेषौ सर्वसमुच्छ्रितौ। पूर्वेण तस्य द्वीपस्य सुमनाः पर्वतः स्थितः ॥ ८ ॥
प्राक्पश्चिमायतैः पादैरासमुद्रादिति स्थितः। पश्चार्धे कुमुदस्तस्य एवमेव स्थितस्तु वै ॥ ९ ॥
एतैः पर्वतपादैस्तु स देशो वै द्विधा कृतः। दक्षिणार्धे तु द्वीपस्य धातकीखण्डमुच्यते ॥ १० ॥
कुमुदं तूत्तरे तस्य द्वितीयं वर्षमुत्तमम्। एतौ जनपदौ द्वौ तु गोमेदस्य तु विस्तृतौ ॥ ११ ॥

सूतजी कहते हैं—तपोधन ऋषियो ! अब मैं छठे गोमेदक द्वीपका वर्णन कर रहा हूँ। गोमेदक द्वीपसे सुरोदकसागर घिरा हुआ है। इसका विस्तार शाल्मल-द्वीपके विस्तारसे दुगुना है। उस द्वीपमें उच्च शिखरोंवाले दो पर्वत हैं—ऐसा जानना चाहिये। उनमें पहलेका नाम सुमना है। यह पर्वत अञ्जनके समान काले रंगसे सुशोभित है। दूसरा पर्वत कुमुद नामवाला है, जो सभी प्रकारकी ओषधियोंसे सम्पन्न, सुवर्णमय, शोभाशाली और वृक्षादिकी समृद्धियोंसे युक्त है। यह गोमेदक द्वीप छठे सुरोदसागरकी अपेक्षा दुगुने परिमाणवाले इक्षुरसोदसागरसे घिरा हुआ है। इसमें धातकी और कुमुद नामक दो अत्यन्त विस्तृत प्रदेश हैं, जो 'हव्यपुत्र' नामसे विख्यात हैं। सुमना पर्वतका जो प्रथम वर्ष है, उसीको धातकी-खण्ड कहते हैं। यही धातकी नामक प्रथम पर्वतका प्रथम वर्ष कहलाता है। गोमेद नामसे जो वर्ष कहा गया है, उसीको सर्वसुख भी कहते हैं। इसके बाद दूसरे कुमुद-पर्वतका प्रदेश भी कुमुद नामसे विख्यात है। ये दोनो पर्वत अन्य सभी पर्वतोंसे ऊँचे हैं। इस गोमेदक द्वीपके पूर्वभागमें सुमना नामक पर्वत स्थित है, जो पूर्वसे पश्चिम समुद्रतक फैला हुआ है। इसी प्रकार इस द्वीपके पश्चिमार्ध भागमें कुमुद नामक पर्वत स्थित है। इन पर्वतोंके चरण-प्रान्तोंसे वह देश दो भागोंमें विभक्त हो गया है। इस द्वीपका दक्षिणार्ध भाग धातकी-खण्ड कहलाता है तथा इसके उत्तरार्ध भागमें कुमुद नामक दूसरा श्रेष्ठ वर्ष है। गोमेदक द्वीपके ये दोनों प्रदेश अत्यन्त विस्तृत माने जाते हैं ॥ १–११ ॥

इतः परं प्रवक्ष्यामि सप्तमं द्वीपमुत्तमम्। समुद्रेक्षुरसं चैव गोमेदाद् द्विगुणं हि सः ॥ १२ ॥
आवृत्य तिष्ठति द्वीपः पुष्करः पुष्करैर्वृतः। पुष्करेण वृतः श्रीमांश्चित्रसानुर्महागिरिः ॥ १३ ॥
कूटैश्चित्रैर्मणिमयैः शिलाजालसमुद्भवैः। द्वीपस्यैव तु पूर्वार्धे चित्रसानुः स्थितो महान् ॥ १४ ॥
परिमण्डलसहस्राणि विस्तीर्णः सप्तविंशतिः। ऊर्ध्वं स वै चतुर्विंशद् योजनानां महाचलः ॥ १५ ॥
द्वीपार्धस्य परिक्षिप्तः पश्चिमे मानसो गिरिः। स्थितो वेलासमीपे तु पूर्वचन्द्र इवोदितः ॥ १६ ॥
योजनानां सहस्राणि सार्धं पञ्चाशदुच्छ्रितः। तस्य पुत्रो महावीतः पश्चिमार्धस्य रक्षिता ॥ १७ ॥
पूर्वार्धे पर्वतस्यापि द्विधा देशस्तु स स्मृतः। स्वादूदकेनोदधिना पुष्करः परिवारितः ॥ १८ ॥
विस्तारान्मण्डलाच्चैव गोमेदाद् द्विगुणेन तु। त्रिंशद्वर्षसहस्राणि तेषु जीवन्ति मानवाः ॥ १९ ॥
विपर्ययो न तेष्वस्ति एतत् स्वाभाविकं स्मृतम्। आरोग्यं सुखबाहुल्यं मानसीं सिद्धिमास्थिताः ॥ २० ॥

इसके बाद अब मैं सातवें सर्वोत्तम द्वीपका वर्णन कर रहा हूँ, जो पुष्करों ( कमलों ) से व्याप्त होनेके कारण पुष्कर नामसे प्रसिद्ध है। यह परिमाणमें गोमेदकद्वीपसे दुगुना है और इक्षुरसोदकसागरको घेरकर स्थित है। पुष्करद्वीपमें चित्रसानु ( विचित्र शिखरोंवाला ) नामक शोभाशाली महान् पर्वत है। यह अनेकों चित्र-विचित्र मणिमय शिखरों तथा शिलासमूहोंसे सुशोभित है। यह महान् पर्वत चित्रसानु द्वीपके पूर्वार्ध भागमें स्थित है।

यह महान् गिरि सत्ताईस योजन विस्तृत और चौबीस योजन ऊँचा है। इस द्वीपके पश्चिमार्ध भागमें समुद्र-तटपर मानस नामक पर्वत स्थित है, जो पूर्व दिशामें निकले हुए चन्द्रमाके समान शोभायमान है। यह साढ़े पचास हजार योजन ऊँचा है। मानस पर्वतके पूर्वार्धमें स्थित रहते हुए भी इसका पुत्र महावीत नामक पर्वत द्वीपके पश्चिमार्ध भागकी रक्षा करता है। इस प्रकार वह प्रदेश दो भागोंमें विभक्त कहा जाता है। पुष्करद्वीप स्वादिष्ट जलवाले महासागरसे घिरा हुआ है। यह विस्तार एवं मण्डल ( घेराव )में गोमेदक द्वीपसे दुगुना है। इस द्वीपके अन्तःस्थित प्रदेशोंके मानव तीस हजार वर्षतक जीवित रहते हैं। उनमें वृद्धावस्थाका प्रवेश नहीं होता। वे स्वाभाविक रूपसे युवावस्था, नीरोगता, अत्यधिक सुख और मानसी सिद्धिसे युक्त होते हैं॥ १२—२०॥

सुखमायुश्च रूपं च त्रिषु द्वीपेषु सर्वशः। अधमोत्तमौ न तेष्वास्तां तुल्यास्ते वीर्यरूपतः॥ २१॥
न तत्र वध्यवधकौ नेर्ष्यासूया भयं तथा। न लोभो न च दम्भो वा न च द्वेषः परिग्रहः॥ २२॥
सत्यानृते न तेष्वास्तां धर्माधर्मौ तथैव च। वर्णाश्रमाणां वार्ता च पाशुपाल्यं वणिक् कृषिः॥ २३॥
त्रयीविद्या दण्डनीतिः शुश्रूषा दण्ड एव च। न तत्र वर्षं नद्यो वा शीतोष्णं च न विद्यते॥ २४॥
उद्भिदान्युदकानि स्युर्गिरिप्रस्रवणानि च। तुल्योत्तरकुरूणां तु कालस्तत्र तु सर्वदा॥ २५॥
सर्वतः सुखकालोऽसौ जराक्लेशविवर्जितः। सर्गस्तु धातकीखण्डे महावीते तथैव च॥ २६॥
एवं द्वीपाः समुद्रैस्तु सप्त सप्तभिरावृताः। द्वीपस्यानन्तरो यस्तु समुद्रस्तत्समस्तु वै॥ २७॥
एवं द्वीपसमुद्राणां वृद्धिर्ज्ञेया परस्परम्। अपां चैव समुद्रेकात् समुद्र इति संज्ञितः॥ २८॥
ऋषद्रसन्त्यो वर्षेषु प्रजा यत्र चतुर्विधाः। ऋषिरित्येष गमने वर्षं त्वेतेन तेषु वै॥ २९॥
उदयतीन्दौ पूर्वे तु समुद्रः पूर्यते सदा। प्रक्षीयमाणे बहुले क्षीयतेऽस्तमिते च वै॥ ३०॥
आपूर्यमाणो ह्युदधिरात्मनैवाभिपूर्यते। ततो वै क्षीयमाणे तु स्वात्मन्येव ह्यपां क्षयः॥ ३१॥

तीनों द्वीपोंमें सर्वत्र सुख, दीर्घायु और सुन्दर रूपकी सुलभता रहती है। उनमें ऊँच-नीचका भाव नहीं होता। पराक्रम और रूपकी दृष्टिसे वे एक-तुल्य होते हैं। उनमें न कोई वध करनेयोग्य होता है और न मारनेवाला ही पाया जाता है। उनमें ईर्ष्या, असूया, भय, लोभ, दम्भ, द्वेष और संग्रहका नामतक नहीं है। उनमें सत्य-असत्य एवं धर्म-अधर्मका विवाद, वर्णाश्रमकी चर्चा, पशुपालन, व्यवसाय, खेती, त्रयीविद्या, दण्डनीति ( शत्रुओं या अपराधियोंको दण्ड देकर वशमें करनेकी नीति ), नौकरी और परस्पर दण्ड-विधान भी नहीं पाया जाता। वहाँ न तो वर्षा होती है, न नदियाँ ही हैं तथा सर्दी-गरमी भी नहीं पड़ती। पर्वतोंसे टपकते हुए जल ही अन्न और जलका काम पूरा करते हैं। वहाँ सर्वदा उत्तरकुरु देशके सदृश समय बना रहता है। वहाँ सब लोग सर्वत्र वृद्धावस्थाके कष्टसे रहित सुखमय समय व्यतीत करते हैं। यही स्थिति धातकीखण्ड तथा महावीत—दोनों प्रदेशोंमें पायी जाती है। इस प्रकार सातों द्वीप पृथक्-पृथक् सात समुद्रोंसे घिरे हुए हैं। जो समुद्र जिस द्वीपके बाद पड़ता है, वह परिमाणमें उसी द्वीपके बराबर माना गया है। इस प्रकार द्वीपों और समुद्रोंकी परस्पर वृद्धि समझनी चाहिये। जलकी सम्यक् प्रकारसे वृद्धि होनेके कारण इस जलराशिको समुद्र कहते हैं। 'ऋषि' धातुका अर्थ

गमन है, इसीसे 'वर्ष' शब्द बनता है। उन वर्षोंमें चार प्रकारकी प्रजाएँ सुखपूर्वक निवास करती हैं। पूर्व दिशामें चन्द्रमाके उदय होनेपर समुद्र सर्वदा जलसे पूर्ण हो जाता है अर्थात् उसमें ज्वार आ जाता है और वही चन्द्रमा जब अस्त हो जाते हैं तब समुद्रका बढ़ा हुआ जल अत्यन्त क्षीण हो जाता है अर्थात् भाटा हो जाता है। जलकी वृद्धिके समय समुद्र अपनी मर्यादाके भीतर ही बढ़ता है और क्षीण होते समय मर्यादाके अंदर ही उसके जलका क्षय होता है॥ २१–३१॥

**उदयात् पयसां योगात् पुष्णन्त्यापो यथा स्वयम्। तथा स तु समुद्रोऽपि वर्धते शशिनोदये॥ ३२॥**
**अन्यूनानतिरिक्तात्मा वर्धन्त्यापो ह्रसन्ति च। उदयेऽस्तमये चेन्दोः पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः॥ ३३॥**
**क्षयवृद्धी समुद्रस्य शशिवृद्धिक्षये तथा। दशोत्तराणि पञ्चाहुरङ्गुलानां शतानि च॥ ३४॥**
**अपां वृद्धिः क्षयो दृष्टः समुद्राणां तु पर्वसु। द्विरापत्वात् स्मृतो द्वीपो दधनाच्चोदधिः स्मृतः॥ ३५॥**
**निगीर्णत्वाच्च गिरयो पर्वबन्धाच्च पर्वताः। शाकद्वीपे तु वै शाकः पर्वतस्तेन चोच्यते॥ ३६॥**
**कुशद्वीपे कुशस्तम्बो मध्ये जनपदस्य तु। क्रौञ्चद्वीपे गिरिः क्रौञ्चस्तस्य नाम्ना विगद्यते॥ ३७॥**
**शाल्मलिः शाल्मलद्वीपे पूज्यते स महाद्रुमः। गोमेदके तु गोमेदः पर्वतस्तेन चोच्यते॥ ३८॥**
**न्यग्रोधः पुष्करद्वीपे पद्मवत् तेन स स्मृतः। पूज्यते स महादेवैर्ब्रह्मांशोऽव्यक्तसम्भवः॥ ३९॥**
**तस्मिन् स वसति ब्रह्मा साध्यैः सार्धं प्रजापतिः। तत्र देवा उपासन्ते त्रयस्त्रिंशन्महर्षिभिः॥ ४०॥**
**स तत्र पूज्यते देवो देवैर्महर्षिसत्तमैः। जम्बूद्वीपात् प्रवर्तन्ते रत्नानि विविधानि च॥ ४१॥**

जिस प्रकार चन्द्रमाके उदय होनेपर चन्द्र-किरणोंका जलके साथ संयोग होनेसे जल अपने-आप उछलने लगता है, उसी प्रकार समुद्र भी बढ़ने लगता है। यद्यपि शुक्लपक्ष और कृष्णपक्षमें चन्द्रमाके उदय और अस्त-कालमें जल बढ़ता और घटता है, तथापि समुद्रकी मर्यादामें न्यूनता या अधिकता नहीं दीख पड़ती। चन्द्रमाकी वृद्धि और क्षयके अवसरपर समुद्रका भी उत्कर्ष और अपकर्ष होता है। पानीका यह चढाव-उतार एक सौ पंद्रह अङ्गुलतक बतलाया जाता है। पर्वके अवसरोंपर समुद्रोंके जलोंका यह ज्वार-भाटा स्पष्ट दीखनेमें आता है। दो ओर जलसे घिरा होनेके कारण समुद्रस्थ प्रदेशको द्वीप कहते है और जलको धारण करनेके कारण समुद्रको उदधि कहा जाता है। ( सभी वस्तुओंको ) आत्मसात् कर लेनेके कारण 'गिरि' और ( पृथ्वीके ) संधिस्थानको बाँधनेके कारण 'पर्वत' नाम पड़ा है। शाकद्वीपमें शाक नामक पर्वत है, इसी कारण उसे शाकद्वीप कहते हैं। कुशद्वीपमें जनपदके मध्यभागमें विशाल कुशस्तम्ब ( कुशका गुल्म ) है ( इसीलिये वह कुशद्वीप कहा जाता है )। क्रौञ्चद्वीपमें क्रौञ्च नामक पर्वत है, अतः उसीके नामपर वह क्रौञ्चद्वीप कहलाता है। शाल्मलद्वीपमें सेमलका महान् वृक्ष है, उसकी वहाँके लोग पूजा करते हैं। ( इसीसे उसे शाल्मलद्वीप कहा जाता है। ) गोमेदकद्वीपमें गोमेद नामका पर्वत है, अतः उसीके नामपर द्वीपको गोमेदक नामसे पुकारते हैं। पुष्करद्वीपमें कमलके समान बरगदका वृक्ष है, इसी कारण उसे पुष्करद्वीप कहते हैं। वह वटवृक्ष अव्यक्त ब्रह्मके अंशसे समुद्भूत हुआ है, इसीलिये प्रधान-प्रधान देवगण उसकी पूजा करते हैं। उस द्वीपमें साध्यगणोंके साथ प्रजापति ब्रह्मा निवास करते हैं। वहाँ महर्षियोंके साथ तैंतीस देवता उपासना करते हैं। वहाँ श्रेष्ठ महर्षियों एवं देवताओंद्वारा देवाधिदेव ब्रह्माकी पूजा की जाती है। जम्बूद्वीपसे अनेकों प्रकारके रत्न ( अन्यान्य द्वीपोंमें ) प्रवर्तित होते हैं॥

द्वीपेषु तेषु सर्वेषु प्रजानां क्रमशस्तु वै। आर्जवाद् ब्रह्मचर्येण सत्येन च दमेन च ॥ ४२ ॥
आरोग्यायुष्प्रमाणाभ्यां द्विगुणं द्विगुणं ततः। द्वीपेषु तेषु सर्वेषु यथोक्तं वर्षकेषु च ॥ ४३ ॥
गोपायन्ते प्रजास्तत्र सर्वैः सहजपण्डितैः। भोजनं चाप्रयत्नेन सदा स्वयमुपस्थितम् ॥ ४४ ॥
षड्रसं तन्महावीर्यं तत्र ते भुञ्जते जनाः। परेण पुष्करस्याथ आवृत्यावस्थितो महान् ॥ ४५ ॥
स्वादूदकसमुद्रस्तु स समन्तादवेष्टयत्। स्वादूदकस्य परितः शैलस्तु परिमण्डलः ॥ ४६ ॥
प्रकाशश्चाप्रकाशश्च लोकालोकः स उच्यते। आलोकस्तत्र चार्वाक् च निरालोकस्ततः परम् ॥ ४७ ॥
लोकविस्तारमात्रं तु पृथिव्यर्धं तु बाह्यतः। प्रतिच्छन्नं समन्तात् तु उदकेनावृतं महत् ॥ ४८ ॥
भूमेर्दशगुणाश्चापः समन्तात् पालयन्ति गाम्। अद्भ्यो दशगुणश्चाग्निः सर्वतो धारयत्यपः ॥ ४९ ॥
अग्नेर्दशगुणो वायुर्धारयञ्ज्योतिरास्थितः। तिर्यक् च मण्डलो वायुर्भूतान्यावेष्ट्य धारयन् ॥ ५० ॥
दशाधिकं तथाऽऽकाशं वायोर्भूतान्यधारयत्। भूतादि धारयन् व्योम तस्माद् दशगुणस्तु वै ॥ ५१ ॥
भूतादितो दशगुणं महद्भूतान्यधारयत्। महत्तत्त्वं ह्यनन्तेन अव्यक्तेन तु धार्यते ॥ ५२ ॥
आधाराधेयभावेन विकारास्ते विकारिणाम्। पृथ्व्यादयो विकारास्ते परिच्छिन्नाः परस्परम् ॥ ५३ ॥
परस्पराधिकाश्चैव प्रविष्टाश्च परस्परम्। एवं परस्परोत्पन्ना धार्यन्ते च परस्परम् ॥ ५४ ॥

उपर्युक्त उन सभी द्वीपों और वर्षोंमें क्रमशः प्रजाओंकी सरलता, ब्रह्मचर्य, सत्यवादिता, इन्द्रियनिग्रह, नीरोगता और आयुका प्रमाण एक-दूसरेसे दुगुना बढ़ता जाता है। वे सभी स्वाभाविक ही पण्डित होते हैं, अतः उनके द्वारा स्वयं प्रजाओंकी रक्षा होती रहती है। वहाँ भोजन अनायास ही स्वयं उपस्थित हो जाता है, जो छहों रसोंसे युक्त और महान् बलदायक होता है। उसे ही वहाँके निवासी खाते हैं। पुष्करद्वीपके बाद स्वादिष्ट जलसे परिपूर्ण महासागर उस द्वीपको चारों ओरसे घेरकर अवस्थित है। उस स्वादिष्ट जलवाले सागरके चारों ओर एक मण्डलाकार पर्वत है, जो प्रकाश और अन्धकारसे युक्त है। उसीको 'लोकालोक' नामसे पुकारा जाता है। उसका अगला भाग प्रकाशयुक्त तथा पिछला भाग अन्धकारसे आच्छादित रहता है। उसका विस्तार लोकोंके विस्तारके बराबर है, किंतु वह बाहरसे पृथ्वीके अर्धभाग-जितना दीख पड़ता है। वह महान् पर्वत चारों ओर जल-राशिसे आच्छन्न एवं घिरा हुआ है। पृथ्वीसे दसगुना जल चारों ओरसे पृथ्वीकी रक्षा करता है। जलसे दसगुनी अग्नि सब ओरसे जलको धारण करती है। अग्निसे दसगुनी वायु तेजको धारण करके स्थित है। वह वायु-मण्डल तिरछा होकर समस्त प्राणियोंमें प्रविष्ट हो सबको धारण किये हुए है। वायुसे दसगुना आकाश भूतोंको धारण किये हुए है। उस आकाशसे दसगुना भूतादि अर्थात् तामस अहंकार है। उस भूतादिसे दसगुना महद्भूत ( महत्तत्त्व ) है और वह महत्तत्त्व अनन्त अव्यक्तद्वारा धारण किया जाता है। इन विकृतिशील तत्त्वोंके विकार आधाराधेयभावसे कल्पित हैं। ये पृथ्वी आदि विकार परस्पर विभक्त हैं, परस्पर एक दूसरेसे अधिक तथा एक-दूसरेमें घुसे हुए भी हैं। इसी प्रकार ये परस्पर उत्पन्न होते हैं और परस्पर एक-दूसरेको धारण भी करते हैं* ॥ ४२—५४ ॥

यस्मात् प्रविष्टास्तेऽन्योन्यं तस्मात् ते स्थिरतां गताः। आसंस्ते ह्यविशेषाश्च विशेषा अन्यवेशनात् ॥ ५५ ॥
पृथ्व्यादयस्तु वाय्वन्ताः परिच्छिन्नास्तु तत्र ते। भूतेभ्यः परतस्तेभ्यो ह्यलोकः सर्वतः स्मृतः ॥ ५६ ॥
तथा ह्यालोक आकाशे परिच्छिन्नानि सर्वशः। पात्रे महति पात्राणि यथा ह्यन्तर्गतानि च ॥ ५७ ॥

---

* यह वर्णन अन्यपुराणमें भी है। पर इन सबोंका आचार्य यामुनने 'स्तोत्ररत्नम्'में परमात्मसम्बन्धसहित—
'यदण्डमण्डान्तरगोचरं च यद्दशोत्तराण्यावरणानि यानि च। गुणाः प्रधानं पुरुषः परं पदं परात्परं ब्रह्म च ते विभूतयः ॥'
इस एक ही श्लोकमें बड़े संक्षेपमें, पर सुन्दर शब्दों तथा भावोंमें चित्रण कर दिया है।

भवन्त्यन्योन्यहीनानि परस्परसमाश्रयात्। तथा ह्यालोक आकाशे भेदास्त्वन्तर्गतागताः ॥ ५८ ॥
कृतान्येतानि तत्त्वानि अन्योन्यस्याधिकानि च। यावदेतानि तत्त्वानि तावदुत्पत्तिरुच्यते ॥ ५९ ॥
जन्तूनामिह संस्कारो भूतेष्वन्तर्गतेषु वै। प्रत्याख्यायेह भूतानि कार्योत्पत्तिर्न विद्यते ॥ ६० ॥
तस्मात् परिमिता भेदाः स्मृताः कार्यात्मकास्तु वै। ते कारणात्मकाश्चैव स्युर्भेदा महदादयः ॥ ६१ ॥
इत्येवं संनिवेशोऽयं पृथ्व्याक्रान्तस्तु भागशः। सप्तद्वीपसमुद्राणां याथातथ्येन वै मया ॥ ६२ ॥
विस्तारान्मण्डलाच्चैव प्रसंख्यानेन चैव हि। विश्वरूपं प्रधानस्य परिमाणैकदेशिनः ॥ ६३ ॥
एतावत् संनिवेशस्तु मया सम्यक् प्रकाशितः। एतावदेव श्रोतव्यं संनिवेशस्य पार्थिव ॥ ६४ ॥

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे भुवनकोशे सप्तद्वीपनिवेशनं नाम त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२३ ॥*

चूँकि ये सभी परस्पर एक-दूसरेमें प्रविष्ट-से हैं, इसीलिये स्थिरताको प्राप्त हुए हैं। पहले इनमें कोई विशेषता नहीं थी, परंतु एक-दूसरेमें प्रविष्ट हो जानेसे ये विशिष्ट हो गये हैं। पृथ्वीसे लेकर वायुतकके सभी तत्त्व परस्पर विभक्त हैं। इन तत्त्वोंसे परे सारा जगत् निर्जन है। (अन्य सभी तत्त्व) प्रकाशमान आकाशमें सर्वत्र व्याप्त हैं। जिस प्रकार छोटे-छोटे पात्र बड़े पात्रके अन्तर्गत समा जाते हैं और परस्पर समाश्रयण होनेके कारण एक-दूसरेसे छोटे होते जाते हैं, उसी प्रकार ये सारे भेद प्रकाशमान आकाशके अन्तर्गत विलीन हो जाते हैं। ये तत्त्व परस्पर एक दूसरेसे अधिक परिमाणवाले बनाये गये हैं। जबतक ये तत्त्व वर्तमान रहते हैं, तभीतक प्राणियोंकी उत्पत्ति होती है। इस जगत्में इन्हीं तत्त्वोंके अन्तर्गत प्राणियोंकी व्यवस्थिति होती है। इन तत्त्वोंका प्रत्याख्यान कर देनेपर किसी प्रकार कार्यकी उत्पत्ति नहीं हो सकती। इसीलिये वे परिमित (पृथ्वीसे वायुतक) तत्त्व कार्यात्मक कहे जाते हैं तथा महत्तत्त्व आदि भेद कारणात्मक हैं। इस प्रकार विभागपूर्वक पृथ्वीसे आच्छादित मण्डल, सातों द्वीपों और सातों समुद्रोंका यथार्थरूपसे गणनासहित विस्तार एवं मण्डल तथा परिमाणमें एकदेशी प्रधान तत्त्वका इस विश्वरूप जानना चाहिये। राजन्! मैंने इस मण्डलका यहाँतक सम्यक् प्रकारसे वर्णन कर दिया; क्योंकि मण्डलके वृत्तान्तको यहाँतक ही सुनना चाहिये ॥ ५५—६४ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके भुवनकोश-वर्णन-प्रसङ्गमें सप्तद्वीपनिवेशन नामक एक सौ तेईसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १२३ ॥

# मत्स्यावतार-कथा-प्रसंग

स्रुतिनि हित हरि मच्छ रूप धार्‌यौ। सदा ही भक्त-संकट निवार्‌यौ॥
चतुरमुख कह्यौ, सँख असुर स्रुति लै गयो, सत्यव्रत कह्यौ परलय दिखायौ।
भक्त-वत्सल, कृपाकरन, असरन-सरन, मत्स्यकौ रूप तव धारि आयौ॥
स्नान करि अंजली जल जवै नृप लियौ, मत्स्य जौ देखि कह्यो डारि दीजै।
मत्स्य कह्यौ, मैं गही आइ तुम्हरी सरन, करि कृपा मोहिं अव राखि लीजै॥
नृप सुनत वचन, चकित प्रथम ह्वै रह्यौ, कह्यौ, मछ वचन किहिं भाँति भाष्यौ।
पुनि कमंडल धर्‌यौ, तहाँ सो वढि गयौ, कुंभ धरि वहुरि पुनि माट राख्यौ॥
पुनि धर्‌यौ खाइ, तालाव मैं पुनि धर्‌यौ, नदी मैं वहुरि पुनि डारि दीन्हौ।
वहुरि जव वढ़ि गयौ, सिंधु तव लै गयौ, तहाँ हरि-रूप नृप चीन्हि लीन्हौ॥
कह्यौ करि विनय तुम ब्रह्म जो अनंत हौ, मत्स्यकौ रूप किहिं काज कीन्हौ।
वेद-विधि चहत, तुम प्रलय देखन कहत, तुम दुहुँनि हेत अवतार लीन्हो॥
कवहुँ वाराह, नरसिंह कवहूँ भयौ, कवहुँमें कच्छकौ रूप लीन्हो।
कवहुँ भयौ राम, वसुदेव-सुत कवहुँ भयौ, और वहु रूप हित-भक्त कीन्हो॥
सातवें दिवस दिखराइहौं प्रलय तोहिं सप्त-रिषि नाव मैं वैठि आवैं।
तोहिं वैठारिहौं नावमैं हाथ गहि, वहुरि हम ज्ञान तोहिं कहि सुनावैं॥
सर्प इक आइहै वहुरि तुम्हरे निकट, ताहि सौं नाव मम सृंग वाँधौ।
यहै कहि भए अँतरधान तव मत्स्य प्रभु, वहुरि नृप आपनौ कर्म साधौ॥
सातवें दिवस आयौ निकट जलधि जव, नृप कह्यौ अव कहाँ नाव पावैं।
आइ गइ नाव, तव रिषिन तासौं कह्यौ, आउ हम नृपति तुमकौं वचावैं॥
पुनि कह्यौ, मत्स्य हरि अव कहाँ पाइय, रिषिन कह्यौ, ध्यान चित माहिं धारौ।
मत्स्य अरु सर्प तिहिं ठौर परगट भए, वाँधि नृप नाव यौं कहि उचारौ॥
ज्यौं महाराज या जलधितैं पार कियौ, भव-जलधि पार त्यों करो स्वामी।
अहं-ममता हमैं सदा लागी रहै, मोह-मद-क्रोध-जुत मंद कामी॥
कर्म सुख-हित करत, होत तहँ दुःख नित, तऊ नर मूढ नाहीं सँभारत।
करन-कारन महराज हैं आप हो, ध्यान प्रभुकौ न मन माहिं धारत॥
विन तुम्हारी कृपा गति नहीं नरनिकी, जानि मोहिं आपनौ कृपा कीजै।
जनम अरु मरनमैं सदा दुःखित देहु मोहिं ज्ञान जिहिं सदा जीजै॥
मत्स्य भगवान कह्यौ ज्ञान पुनि नृपति सौं, भयो सो पुरान सव जगत जान्यौ।
लह्यो नृप ज्ञान, कह्यौ आँखि अव मीचि तू, मत्स्य कह्यौ सो नृपति मान्यौ॥
आँखिकौं खोलि जव नृपति देख्यौ वहुरि, कह्यौ, हरि प्रलय-माया दिखाई।
कह्यौ जो ज्ञान भगवान, सो आनि उर, नृपति निज आपु इहिं विधि विताई॥
वहुरि सँखासुरहि मारि, वेद आनि दिए, चतुरमुख विविध अस्तुति सुनाई।
सूरके प्रभूकी नित्य लीला नई, सकै कहि कौन, यह कछुक गाई॥

( 'सूरदास' १६ । ४४३ )

चतुर्भुज भगवान् मत्स्य

# नम्र निवेदन एवं क्षमा-प्रार्थना

'कल्याण'के विशेषाङ्कके रूपमें इस वर्ष 'श्रीमत्स्यपुराण' ( पूर्वार्ध ) प्रस्तुत है। पिछले कुछ वर्षोंसे कई धर्म-प्रेमी महानुभावोंकी यह रुचि रही है कि सम्पूर्ण पुराणोंका प्रकाशन 'कल्याण'के विशेषाङ्करूपमें किया जाय। विगत वर्षोंमें विशेषाङ्कके रूपमें जो भी पुराण प्रकाशित हुए, उनमें अधिकतर संक्षिप्तरूपमें ही प्रकाशित हो सके। इस बार विचार-विमर्शसे यह निर्णय लिया गया कि मत्स्यपुराणका मूल तथा अनुवादसहित प्रकाशन विशेषाङ्कके रूपमें किया जाय जिससे भगवान् वेद-व्यासकी आर्षवाणी अपने पाठक महानुभावोंतक पहुँचायी जा सके। इस कार्यमें यद्यपि कठिनाइयाँ तो बहुत थीं, पर इन सबका समाधान भी भगवत्कृपासे सम्भव हो गया।

भारतीय सांस्कृतिक-वाङ्मयमें पुराणोंका एक विशिष्ट स्थान है। मनुष्य कितना भी विद्वान् और बुद्धिमान् क्यों न हो, उसमें भ्रम और प्रमादकी सम्भावना रह सकती है। इसलिये मनुष्य-रचित ग्रन्थोंके द्वारा जो ज्ञान प्राप्त किया जाता है, वह प्रायः निर्भ्रान्त अथवा पूर्ण नहीं होता। अपने शास्त्रोंके अनुसार वेद अपौरुषेय और अनादि हैं। उनका कर्ता कोई नहीं है। सृष्टिके आरम्भमें आदिपुरुष भगवान् नारायण अपने नाभि-कमलसे जब ब्रह्माजीको उत्पन्न करते हैं, तब वे सबसे पहले उन्हें वेदोंका ही ज्ञान देते हैं—**'यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै।'** वे ही ज्ञान ब्रह्माके मुखसे वाङ्मयरूपमें प्रकट होते हैं। इस प्रकार भगवान् नारायणसे वेदोंका ज्ञान प्राप्त कर ब्रह्माजी अन्य शास्त्रोंका स्मरण करते हैं। उनमें भी सर्वप्रथम वे पुराणोंका ही स्मरण करते हैं। मत्स्यपुराणका वचन है—

**पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्।**

इससे यह स्पष्ट होता है कि वेदोंकी ही तरह 'पुराण' भी अनादि हैं। 'पुराण' शब्द भी प्राचीनताका ही बोधक है। पुराणोंका विस्तार सौ करोड़ श्लोकोंका माना गया है—**'शतकोटिप्रविस्तरम्'**। उसी प्रसङ्गमें यह भी कहा गया है कि समयके परिवर्तनसे जब मनुष्योंकी आयु कम हो जाती है और इतने बड़े पुराणोंका श्रवण और पठन एक जीवनमें उनके लिये असम्भव हो जाता है, तब स्वयं भगवान् प्रत्येक द्वापरयुगमें व्यासरूपसे अवतीर्ण होकर इनका संक्षिप्तीकरण करते हुए इन्हें चार लाख श्लोकोंमें निबद्ध करते हैं। पुराणोंका यह संक्षिप्त संस्करण ही भूलोकमें प्राप्त होता है। इस प्रकार भगवदवतार भगवान् वेदव्यास भी पुराणोंके रचयिता नहीं, अपितु संक्षेपक अथवा संग्राहक ही हैं। इसीलिये पुराणोंको पञ्चम वेद कहा गया है—

**इतिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदः।** ( छान्दोग्य उप० ७। १। २)

पुराणोंमें जो कुछ है, वह वेदोंका ही विस्तार—विशदीकरण है। जो बात वेदोंमें सूत्ररूपसे कही गयी है, वही पुराणोंमें विस्तारसे वर्णित है।

अपने शास्त्रोंमें तो पुराणोंको साक्षात् श्रीहरिका रूप ही माना गया है। जिस प्रकार सम्पूर्ण जगत्को आलोकित करनेके लिये भगवान् सूर्यरूपमें प्रकट होकर हमारे बाहरी अन्धकारको नष्ट करते

हैं, उसी प्रकार हमारे हृदयान्धकार—भीतरी अन्धकारको दूर करनेके लिये श्रीहरि ही पुराण-विग्रह धारण करते हैं।*

भारतीय संस्कृतिमें मनुष्य-जीवनका परम उद्देश्य भगवत्प्राप्ति है। भगवत्प्राप्तिके विविध मार्ग हैं। मार्गोंमें ज्ञान, कर्म, भक्ति तथा उनके विविध अवान्तर भेदोंके साथ ही कठिनता, सुगमताको भी लेकर अनेक भेद हैं। हमारा पवित्र पुराण-साहित्य विविध ज्ञानका भण्डार है। पुराण भगवत्प्राप्तिके लक्ष्यको सामने रखते हुए विभिन्न रुचि और अधिकारके अनुसार विभिन्न व्यक्तियोंके लिये उनके ग्रहण करने योग्य विभिन्न अनुभूत सत्य मार्गोंका, मार्गोंके विघ्नोका तथा विघ्नोसे छूटनेके उपायोंका बड़ा ही सुन्दर निरूपण करते हैं। मनुष्य अपने ऐहिक जीवनको किस प्रकार सुख-समृद्धि और शान्तिसे सम्पन्न कर सकता है और उसी जीवनके द्वारा जीवमात्रका कल्याण करनेमें सहायक होता हुआ कैसे अपने परम ध्येय भगवत्प्राप्तिके मार्गपर आसानीसे बढ़ सकता है—इसके विविध साधन बड़ी ही रोचक भाषामें सच्चे तथा उपदेशपूर्ण इतिवृत्त कथानकोंके साथ पुराणोंमें बताये गये हैं। पुराणोंके श्रवण और पठनसे स्वाभाविक ही पुण्यलाभ, अन्तःकरणकी परिशुद्धि, भगवान्‌में रति और विषयोंमें विरति तो होती ही है, साथ ही मनुष्यको ऐहिक और पारलौकिक हानि-लाभका यथार्थ ज्ञान भी हो जाता है। तदनुसार जीवनमें कर्तव्य निश्चय करनेकी अनुभूत शिक्षा मिलती है, साथ ही सभीको यथाधिकार समानरूपसे कल्याणकारी ज्ञान, साधन और सुन्दर तथा पवित्र जीवनयापनकी शिक्षा मिलती है।

मत्स्यपुराणमें ऐसे अनेक महान् साधन, उपदेश और आदर्श चरित्र भरे हैं, जिनसे मनुष्य सहज ही अपने अभ्युदय तथा निःश्रेयसका पथ प्राप्त कर सकता है। सर्वप्रथम मत्स्यावतारकी कथा है। फिर मनु महाराजका मत्स्य भगवान्‌से संवाद है। इसमें सृष्टिकी उत्पत्ति, पृथ्वीदोहन, सूर्यवंश, पितृवंशवर्णन, विविध श्राद्धोंका वर्णन, चन्द्रवंशके राजाओंका वर्णन, श्रीकृष्णचरित्र, ययाति-चरित्र एवं इनके अन्य पुत्रोंका वर्णन, विविध व्रत, दान, ग्रहशान्ति तथा स्नानका महत्त्व बताकर फिर तीर्थोंका माहात्म्य बतलाया गया है। इसके अन्तर्गत तीर्थराज प्रयागके माहात्म्यका विस्तारसे वर्णन मिलता है तथा त्रिपुरवध एवं तारक-वधकी कथा भी विस्तारसे कही गयी है। इसके उत्तरार्धमें भगवान् विष्णुके दशावतारवृत्त, शिव-चरित्र तथा उनका विवाह-मङ्गल, गो-महिमा, राजधर्म, देवासुर-संग्राम आदिकी ललित कथाएँ वर्णित हैं। भगवान् शंकर जगत्-प्रसिद्ध वाराणसीके सम्बन्धमें कहते हैं—'गिरिजे! मेरी परम प्रिय नगरी वाराणसी तीनों लोकोंमें सारभूता है। विविध दुष्कृत करनेवाले व्यक्तियोंको भी यहाँ आ जानेपर मैं तारक मन्त्र देकर उनके पापोंको नष्ट कर देता हूँ। अतः वे निर्मल अन्तःकरण होकर मरनेके बाद मोक्ष प्राप्तकर मुझमें तन्मय हो जाते हैं†।'

इसके अतिरिक्त पतिव्रता-माहात्म्य, तीर्थ-माहात्म्य, भगवद्भक्ति, ज्ञानयोग, सदाचार और लीलामय भगवान्‌के

---

* यथा सूर्यवपुर्भूत्वा प्रकाशाय चरेद्धरिः। सर्वेषां जगतामेव हरिरालोकहेतवे॥
तथैवान्तःप्रकाशाय पुराणावयवो हरिः। विचरेदिह भूतेषु पुराणं पावनं परम्॥
(पद्मपु० स्व० ६२। ६०-६१)

† वाराणसी तु भुवनत्रयसारभूता रम्या सदा मम पुरी गिरिराजपुत्रि।
अत्रागता विविधदुष्कृतकारिणोऽपि पापक्षयाद् विरजसः प्रतिभान्ति मर्त्याः॥ (मत्स्य० १८०। ८८

पवित्र चरित्रोंका बड़ा ही रोचक, मनोहर, गम्भीर और मार्मिक वर्णन इस पवित्र पुराणमें आया है। पाठकोंको विशेष मन लगाकर इनसे लाभ उठाना चाहिये।

इधर पिछले वर्षोंसे 'कल्याण'के अङ्क पाठकोंको कुछ विलम्बसे प्राप्त होते रहे हैं, जिसके कारण पाठकोंको असुविधा होनी भी स्वाभाविक ही रही है, पर अपरिहार्य कारणोंसे ही इस विलम्बको सम्भवतः उन दिनों टाला नहीं जा सका। इस बार यह प्रयत्न किया जा रहा है कि 'कल्याण'के सभी अङ्क पाठकोंको समयसे प्राप्त कराये जायँ। इसी क्रममें इस विशेषाङ्कको भी शीघ्रतापूर्वक प्रकाशित करनेकी चेष्टा की गयी। विशेषाङ्क तैयार करनेमें कई प्रकारकी कठिनाइयोंका आना स्वाभाविक था। मत्स्यपुराणके मूल पाठमें कई स्थानोंपर मतभेद होनेके कारण इसके शुद्ध पाठका निर्णय करना भी एक समस्या थी। यद्यपि आधाररूपमें तो प्रमुखतया आनन्दाश्रम, पूना तथा वेङ्कटेश्वर प्रेस बम्बईसे प्रकाशित संस्करणोंको लिया गया है, किंतु पाठनिर्धारणमें अन्य स्थानोंसे प्रकाशित प्रतियों, अन्य पुराणों एवं निबन्धग्रन्थोंसे भी यथास्थान सहायता ली गयी है। इन सबके प्रकाशक-स्वत्वाधिकारियोंके प्रति हम अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

मत्स्यपुराणमें २९१ अध्याय हैं, जिनमें लगभग १४ हजार श्लोक उपलब्ध हैं। वर्तमान परिस्थितिमें सम्पूर्ण मत्स्यपुराणको अनुवादसहित एक वर्षमें विशेषाङ्कके रूपमें निकालना कथमपि सम्भव नहीं था; अतः यह निर्णय भी लिया गया है कि मूल अनुवाद-सहित सम्पूर्ण पुराण दो वर्षोंके विशेषाङ्कके रूपमें निकाला जाय। पर इसका कलेवर इतना बढ़ता दिखायी देता है कि दोनों विशेषाङ्कोंके सिवाय साधारण अङ्कोंके कुछ परिशिष्टाङ्क भी निकालने पड़ेंगे, तब कहीं यह पूरा हो पायेगा। इस वर्ष फरवरी मासका द्वितीयाङ्क परिशिष्टाङ्कके रूपमें इस विशेषाङ्कके साथ ही संलग्न किया जा रहा है।

इस वर्ष विशेषाङ्कके लिये लेख न भेजनेका अनुरोध हमने अपने सम्मान्य लेखक महोदयोंसे किया था। इसके बाद भी कुछ लेखकोंने कृपापूर्वक कुछ लेख भेज ही दिये। पर हमें खेद है कि स्थानाभावके कारण उन लेखोंका प्रकाशन सम्भव नहीं हो सका। आशा है, विद्वान् लेखक हमें इसके लिये अवश्य क्षमा करेंगे। मूल अनुवादका कार्य भी शीघ्रतामें ही सम्पन्न करना पड़ा। भाषाको प्राञ्जल एवं बोधगम्य बनानेकी यथासाध्य चेष्टा तो की गयी है, पर समय कम होनेके कारण कुछ त्रुटियाँ भी अवश्य रह सकती हैं, जिसके लिये पाठकगण हमें क्षमा प्रदान करेंगे। अनुवादकार्यमें अधिक जोर भावोंको स्पष्ट करनेमें ही दिया गया है। अपने पुराणोंमें कुछ ऐसे भी स्थल हैं, जो गम्भीर और मार्मिक होनेके कारण सर्वसाधारणकी क्षमताके बाहर हैं और जिनसे आजके सामान्य मानवके मस्तिष्कमें संशय-विपर्ययकी स्थिति उत्पन्न हो सकती है। ऐसे कुछ स्थलोंको अनुवादमें संक्षेप करना ही हितकर समझा गया। कुछ महानुभावोंकी दृष्टिमें यह भी हमारी त्रुटि हो सकती है। अतः इस प्रकारकी त्रुटियोंके लिये भी हम क्षमाप्रार्थी हैं।

आज मैं सर्वप्रथम गीताप्रेस एवं 'कल्याण'के संस्थापक परम श्रद्धास्पद ब्रह्मलीन श्रीजयदयालजी गोयन्दकाको स्मरण करना चाहता हूँ, जो यहाँ ज्ञाननिष्ठा, भक्तिनिष्ठा और कर्मयोगनिष्ठाके आदर्शात्मक स्वरूपोंका निर्माण करना

चाहते थे। अपने मनोभावोंको व्यक्त करते हुए वे कहा करते थे कि 'गीताजीके १८ वें अध्यायके ६८ वें एवं ६९ वें श्लोकोंमें कही गयी भगवद्वाणीको (जिसमें यह कहा गया है कि भगवद्भावोंका प्रचार करनेवालेसे बढ़कर कोई मुझे प्रिय है नहीं, तथा भविष्यमें उससे बढ़कर कोई प्रिय होगा नहीं) जब मैंने पढ़ा, तबसे मेरे मनमें भगवद्भावोंका जोरोंसे प्रचार करनेकी बात आयी।' आज गीताप्रेस और 'कल्याण'का जो स्वरूप हमें दिखायी पड़ता है, वह श्रद्धेय श्रीगोयन्दकाजीको गीताके इन दो श्लोकोंसे प्राप्त—प्रेरणाका ही फल है।

'कल्याण'को अपनी गौरवमयी परम्परामें विकसित तथा प्रतिष्ठापित करनेका श्रेय 'कल्याण'के आदि-सम्पादक नित्यलीलालीन परमपूज्य भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारको है, जिनका सम्पूर्ण जीवन अध्यात्मनिष्ठ, भगवद्विश्वास एवं प्रेम तथा भगवद्भक्तिसे, युक्त था। पूज्य भाईजीका सम्पूर्ण जीवन 'कल्याण'की सेवामें ही समर्पित था। आज मैं इन दोनों भगवदर्पित मनीषियोंके पद-पद्मोंपर अपने श्रद्धासुमन अर्पित करता हूँ।

हम अपने उन सभी पूज्य आचार्यो, परम सम्मान्य पवित्र-हृदय सन्तों, महात्माओं, आदरणीय विद्वान् लेखक महानुभावोंके श्रीचरणोंमें श्रद्धा-भक्ति-सहित प्रणाम करते हुए जानते तथा न जानते हुए बने तथा बननेवाले सभी छोटे-बड़े अपराधोंके लिये हाथ जोड़कर क्षमा चाहते हैं। 'कल्याण'के प्रचार-प्रसारमें हम उन्हींको प्रधान कारण मानते हैं; क्योंकि उन्हींके सद्भावपूर्ण तथा उच्च विचारयुक्त लेखोंसे ही 'कल्याण'को सदा शक्तिस्रोत मिलता रहता है। इसी तरह हम अपने विभागके तथा प्रेसके अपने उन सभी सम्मान्य साथी-सहयोगियोंको भी सादर प्रणाम करते हैं, जिनके स्नेहभरे सहयोगसे यह पवित्र कार्य अबतक चला और चल रहा है। हम अपनी त्रुटियों तथा व्यवहारके दोषोंके लिये इन सबसे भी क्षमा चाहते हैं।

इस पुराणका अनुवाद कार्य पं० श्रीरामाधारजी शुक्ल-द्वारा सम्पन्न हुआ है तथा सम्पादन एवं संशोधन आदि कार्योंमें पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा तथा पं० श्रीराजबलिजी त्रिपाठीका हार्दिक योगदान प्राप्त हुआ है।

इसके अनुवाद, सम्पादन, चित्र-निर्माण, प्रूफसंशोधन आदि कार्योंमें जिन-जिन लोगोंसे हमें सहायता मिली है, वे सभी हमारे अपने हैं, उन्हें धन्यवाद देकर हम उनके महत्त्वको घटाना नहीं चाहते।

वास्तवमें 'कल्याण'का कार्य भगवान्‌का कार्य है। अपना कार्य भगवान् स्वयं करते हैं। हम तो केवल निमित्तमात्र हैं। कल्याण-सम्पादन-कार्यके अन्तर्गत भगवद्भक्ति एवं भगवन्नामका पवित्र संयोग सौभाग्यवश हम सबको प्राप्त हुआ है, पाठकोंको भी यह प्राप्त होगा, यह हम सबके लिये कम लाभकी बात नहीं है।

अन्तमें अपनी त्रुटियोंके लिये हम सबसे पुनः क्षमा माँगते हुए अपने इस लघु प्रयासको श्रीभगवान्‌के पावन चरण-कमलोंमें अर्पित करते हैं—**'त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये।'** और साथ ही अन्तमें भूतभावन भगवान् विश्वनाथके श्रीचरणोंमें प्रार्थना करते हैं—

**करचरणकृतं वा कायजं कर्मजं वा श्रवणनयनजं वा मानसं वापराधम्।**
**विहितमविहितं वा सर्वमेतत् क्षमस्व जय जय करुणाब्धे श्रीमहादेव शम्भो !!**

—राधेश्याम खेमका

( सम्पादक )

भगवान् भास्कर

# गीताभवन, स्वर्गाश्रमके सत्सङ्गकी सूचना

प्रतिवर्षकी भाँति इस वर्ष भी गीताभवन, स्वर्गाश्रममें सत्सङ्गके आयोजनकी व्यवस्था है। वहाँ वैशाखके प्रथम सप्ताहमें परम श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराजके पधारनेका विचार है। अन्य साधु एवं विद्वान् भी पधारनेवाले हैं।

यह नम्र निवेदन है कि सत्सङ्गी भाईलोग तथा माताएँ-बहनें अधिकाधिक संख्यामें सत्सङ्ग तथा भजनके पवित्र उद्देश्यसे ही गीताभवन पधारें। आमोद-प्रमोद ( मनोरञ्जन ) तथा केवल जलवायु-परिवर्तनकी दृष्टिसे न जाकर सत्सङ्ग-लाभके उद्देश्यसे ही वहाँ जाना चाहिये एवं यथासाध्य नियमित तथा संयमित साधक-जीवन बिताते हुए सत्सङ्ग, कथा-श्रवण आदिमें भाग लेना चाहिये।

जिन्हें नौकर, रसोइयाकी आवश्यकता हो, उन्हें यथासम्भव उनको अपने साथ लाना चाहिये। स्वर्गाश्रममें नौकर, रसोइयोंका मिलना कठिन है। माताएँ-बहनें पीहर या ससुरालवालोंके ( अथवा अन्य किसी खास निकटके सम्बन्धीके ) साथ ही वहाँ जायँ, अकेली न जायँ। अकेली जानेकी दशामें उन्हें स्थान मिलनेमें कठिनाई होगी।

गहने आदि जोखिमकी वस्तुएँ साथमें बिल्कुल नहीं ले जानी चाहिये। सत्सङ्गी भाइयोंको बहुत आवश्यक सामान ही साथमें लाना चाहिये तथा अपने सामानकी पूरी सँभाल स्वयं रखनी चाहिये। जहाँतक बन पड़े, छोटे बच्चोंको साथमें न ले जायँ। खान-पानकी वस्तुओंका प्रबन्ध यथासाध्य किया जा रहा है, परंतु दूधके प्रबन्धमें बहुत कठिनाई है।

व्यवस्थापक—गीताप्रेस

---

# 'कल्याण'नामक हिन्दी मासिकके सम्बन्धमें विवरण

१—प्रकाशनका स्थान—गीताप्रेस, गोरखपुर,

२—प्रकाशनकी आवृत्ति—मासिक,

३—मुद्रक एवं प्रकाशकका नाम—( गोविन्दभवन-कार्यालयके लिये ) जगदीशप्रसाद जालान,

राष्ट्रगत सम्बन्ध—भारतीय,

पता—गीताप्रेस, गोरखपुर,

४—सम्पादकका नाम—राधेश्याम खेमका,

राष्ट्रगत सम्बन्ध—भारतीय,

पता—गीताप्रेस, गोरखपुर,

५—उन व्यक्तियोंके नाम-पते जो इस पत्रिकाके मालिक हैं और जो इसकी पूँजीके भागीदार हैं। — श्रीगोविन्दभवन-कार्यालय, पता—नं० १५१, महात्मागांधी रोड, कलकत्ता, (सन् १८६० के विधान २१ के अनुसार ) रजिस्टर्ड धार्मिक संस्था।

मैं जगदीशप्रसाद जालान, गोविन्दभवन-कार्यालयके लिये इसके द्वारा यह घोषित करता हूँ कि ऊपर लिखी बातें मेरी जानकारी और विश्वासके अनुसार यथार्थ हैं।

दिनाङ्क २९—२—८४

जगदीशप्रसाद जालान
गोविन्दभवन-कार्यालयके लिये
प्रकाशक

---

| प्रत्येक साधारण अङ्कका मूल्य | | कल्याणका वार्षिक मूल्य |
|---|---|---|
| भारतमें १.००रु० | जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते ॥ | भारतमें २४.०० रु० |
| विदेशमें—१० पेन्स | | विदेशमें ५२.०० रु० (३ पौण्ड ५० पेंस) |

---

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका
गोविन्दभवन-कार्यालयके लिये जगदीशप्रसाद जालानद्वारा गीताप्रेस, गोरखपुरसे मुद्रित तथा प्रकाशित।

भगवान् शिवकी बारात

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

# कल्याण

वेदानुद्धरते जगन्निवहते भूगोलमुद्बिभ्रते दैत्यं दारयते बलिं छलयते क्षत्रक्षयं कुर्वते ।
पौलस्त्यं जयते हलं कलयते कारुण्यमातन्वते म्लेच्छान् मूर्च्छयते दशाकृतिकृते कृष्णाय तुभ्यं नमः ॥

वर्ष ५८ } गोरखपुर, सौर माघ, श्रीकृष्ण-संवत् ५२०९, फरवरी १९८४ ई० { संख्या २ पूर्ण संख्या ६८७

## भगवान् शिवकी बारात

बाजहिं निसान सुगान नभ चढ़ि बसह बिधु भूषन चले ।
बरषहिं सुमन जय जय करहिं सुर सगुन सुभ मंगल भले ॥
तुलसी बराती भूत प्रेत पिसाच पसुपति सँग लसे ।
गजछाल व्याल कपाल माल बिलोकि बर सुर हरि हँसे ॥
प्रमथ नाथके साथ प्रमथगन राजहिं ।
बिबिध भाँति मुख बाहन बेष बिराजहिं ॥

# एक सौ चौबीसवाँ अध्याय

## सूर्य और चन्द्रमाकी गतिका वर्णन

सूत उवाच

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि सूर्याचन्द्रमसोर्गतिम्। सूर्याचन्द्रमसावेतौ भ्रमन्तौ यावदेव तु ॥ १ ॥*
सप्तद्वीपसमुद्राणां द्वीपानां भाति विस्तरः। विस्तरार्धं पृथिव्यास्तु भवेदन्यत्र बाह्यतः ॥ २ ॥
पर्यासपरिमाणं च चन्द्रादित्यौ प्रकाशतः। पर्यासपारिमाण्यात्तु भूमेस्तुल्यं दिवः स्मृतम् ॥ ३ ॥
भवति त्रीनि माँल्लोकान् सूर्यो यस्मात् परिभ्रमन्। अव धातुः प्रकाशाख्यो अवनात्तु रविः स्मृतः ॥ ४ ॥
अतः परं प्रवक्ष्यामि प्रमाणं चन्द्रसूर्ययोः। महितत्वान्महीशब्दो ह्यस्मिन्नर्थे निगद्यते ॥ ५ ॥
अस्य भारतवर्षस्य विष्कम्भं तु सुविस्तरम्। मण्डलं भास्करस्याथ योजनैस्तन्निबोधत ॥ ६ ॥
नवयोजनसाहस्रो विस्तारो भास्करस्य तु। विस्तारात् त्रिगुणश्चापि परिणाहोऽत्र मण्डले ॥ ७ ॥
विष्कम्भान्मण्डलाच्चैव भास्कराद् द्विगुणः शशी। अतः पृथिव्या वक्ष्यामि प्रमाणं योजनैः पुनः ॥ ८ ॥
सप्तद्वीपसमुद्राया विस्तारो मण्डलस्य तु। इत्येतदिह संख्यातं पुराणे परिमाणतः ॥ ९ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! इसके बाद अब मैं सूर्य और चन्द्रमाकी गतिका वर्णन कर रहा हूँ*। ये सूर्य और चन्द्रमा सातो द्वीपों एवं सातों समुद्रोंके विस्तारको तथा समग्र भूतलके अर्धभागको और उसके बाहरके अन्य प्रदेशोंको ये अपने प्रकाशसे उद्भासित करते है। ये विश्वकी अन्तिम सीमातक प्रकाश फैलाते हैं। तुलना परिभ्रमणके प्रमाणको लेकर ही विद्वान् लोग आकाशकी करते हैं। सूर्य सामान्यतः तीनों लोकोंमें शीघ्रतापूर्वक भ्रमण करते हैं। 'अव्' धातु रक्षण और प्रकाशार्थक है। प्रकाश फैलाने तथा प्राणियोंकी रक्षा करनेके कारण सूर्यको 'रवि' कहा जाता है। पुनः सूर्य और चन्द्रमाका प्रमाण बतला रहा हूँ। महनीय होनेके कारण पृथ्वीके लिये 'मही' शब्दका प्रयोग किया जाता है। अब भारतवर्षका तथा सूर्य-मण्डलके व्यासका परिमाण योजनोंमें बतला रहा हूँ, उसे सुनिये। सूर्य-मण्डलका परिमाण नौ हजार योजन है। इस मण्डलमें परिणाह ( घेरा ) विस्तारसे तिगुना अर्थात् सत्ताईस हजार योजन है। व्यास और मण्डलकी दृष्टिसे भी सूर्यसे चन्द्रमा बहुत छोटे हैं। पुनः सातों द्वीपो और समुद्रोंसहित पृथ्वीमण्डलके विस्तारका प्रमाण, जिन्हें विद्वानोंने पुराणोमें बतलाया है, ( योजनोंकी संख्यामें ) बतला रहा हूँ ॥ १—९ ॥

तद्वक्ष्यामि प्रसंख्याय साम्प्रतं चाभिमानिभिः। अभिमानिनो ह्यतीता ये तुल्यास्ते साम्प्रतैस्त्विह ॥ १० ॥
देवा ये वै ह्यतीतास्तु रूपैर्नामभिरेव च। तस्माद्वै साम्प्रतैर्देवैर्वक्ष्यामि† वसुधातलम् ॥ ११ ॥
दिव्यस्य संनिवेशो वै साम्प्रतैरेव कृत्स्नशः। शतार्धकोटिविस्तारा पृथिवी कृत्स्नशः स्मृता ॥ १२ ॥
तस्याश्चार्धप्रमाणं च मेरोर्वै चातुरन्तरम्। मेरोर्मध्यात् प्रतिदिशं कोटिरेका तु सा स्मृता ॥ १३ ॥
तथा शतसहस्राणामेकोननवतिं पुनः। पञ्चाशच्च सहस्राणि पृथिव्याः स तु विस्तरः ॥ १४ ॥
पृथिव्या विस्तरं कृत्स्नं योजनैस्तन्निबोधत। तिस्रः कोट्यस्तु विस्तारात्संख्यातास्तु चतुर्दिशम् ॥ १५ ॥
विस्तारं त्रिगुणं चैव पृथिव्यन्तरमण्डलम्। गणितं योजनानां तु कोट्यस्त्वेकादश स्मृताः ॥ १६ ॥
तथा शतसहस्राणां सप्तत्रिंशाधिकास्तु ताः। इत्येतद्वै प्रसंख्यातं पृथिव्यन्तरमण्डलम् ॥ १७ ॥
तारकासंनिवेशस्य दिवि यावत्तु मण्डलम्। पर्यासः संनिवेशस्य भूमेस्तावत्तु मण्डलम् ॥ १८ ॥

* इस अध्यायके सभी श्लोक वायुपु० ५० । ५६—१६९ ( किसी प्रतिमें ५१ । १—११३ ) तथा ब्रह्माण्डपुराणसे सर्वांशमें मिल जाते है। उनके श्लोक विशेष शुद्ध हैं।

† यहाँ 'विद्वांसो ह वै देवाः' के अनुसार विद्वान् ही देवता है।

※

पर्याप्तपरिमाणं च भूमेस्तुल्यं दिवः स्मृतम् । सप्तानामपि लोकानामेतन्मानं प्रकीर्तितम् ॥ १९ ॥
ज्योतिर्गणप्रचारस्य प्रमाणं परिवक्ष्यते । मेरोः प्राच्यां दिशायां तु मानसोत्तरमूर्धनि ॥ २० ॥
वस्वौकसारा माहेन्द्री पुण्या हेमपरिष्कृता । दक्षिणेन पुनर्मेरोर्मानसस्य तु पृष्ठतः ॥ २१ ॥
वैवस्वतो निवसति यमः संयमने पुरे । प्रतीच्यां तु पुनर्मेरोर्मानसस्य तु मूर्धनि ॥ २२ ॥
सुखा नाम पुरी रम्या वरुणस्यापि धीमतः । दिश्युत्तरस्यां मेरोस्तु मानसस्यैव मूर्धनि ॥ २३ ॥
तुल्या महेन्द्रपुर्यापि सोमस्यापि विभावरी । मानसोत्तरपृष्ठे तु लोकपालाश्चतुर्दिशम् ॥ २४ ॥
स्थिता धर्मव्यवस्थार्थं लोकसंरक्षणाय च । लोकपालोपरिष्टात् तु सर्वतो दक्षिणायने ॥ २५ ॥

पूर्वकालमें जो पुराणोंके ज्ञाता हो चुके हैं, वे भी आजकलके पुराणोके तुल्य ही थे। पूर्वकालके विद्वान् एवं आधुनिक विद्वान्—दोनोके मत इस विषयमें समान हैं। अतः वर्तमानकालिक विद्वानोके अनुसार भूतलका परिमाण बतला रहा हूँ। आधुनिक विद्वानोंने दिव्य-लोककी स्थितिको भी पृथ्वीमण्डलके बराबर ही माना है। समूची पृथ्वी पचास करोड़ योजनोंमें विस्तृत मानी गयी है। उसका आधा भाग मेरु पर्वतके उत्तरोत्तर फैला हुआ है और मेरुपर्वतके मध्यभागमें वह चारों ओर एक करोड़ योजन विस्तारवाली कही जाती है। इसी तरह पृथ्वीके अर्धभागका विस्तार नवासी लाख, पचास हजार योजन बतलाया जाता है अब योजनके परिमाणसे पृथ्वीके समूचे विस्तारको सुनिये। इसका विस्तार चारो दिशाओंमें तीन करोड़ योजन माना गया है। यही सातो द्वीपो और समुद्रोसे घिरी हुई पृथ्वीका विस्तार है। पृथ्वीका आन्तरिक मण्डल बाह्य मण्डलसे तिगुना अधिक है। इस प्रकार उसका परिमाण ग्यारह करोड़ सैतीस लाख योजन माना गया है। यही पृथ्वीके आन्तरिक मण्डलकी गणना की गयी है। आकाश-मण्डलमें जितने तारा-गणोकी स्थिति है, उतना ही समग्र पृथ्वीमण्डलका विस्तार माना गया है। इस प्रकार पृथ्वीमण्डलके परिमाणके बराबर आकाशमण्डल भी है। अब ज्योतिर्गणके प्रचारकी बात सुनिये। मेरुपर्वतकी पूर्व दिशामें मानसोत्तर पर्वतके शिखरपर वस्वौकसारा नामकी महेन्द्रकी पुण्यमयी नगरी है, जो सुवर्णसे सुसज्जित है। पुनः मेरुकी दक्षिण दिशामें मानसपर्वतके पृष्ठभागपर संयमनी पुरी है, जिसमें सूर्यके पुत्र यमराज निवास करते है। पुनः मेरुकी पश्चिम दिशामें मानसपर्वतके शिखरपर बुद्धिमान् वरुणकी सुखा नामकी रमणीय पुरी है। मेरुकी उत्तर दिशामें मानसपर्वतके शिखरपर महेन्द्रपुरीके समान चन्द्रदेवकी विभावरी पुरी है। उसी मानसोत्तर पर्वतके पृष्ठभागकी चारो दिशाओमें लोकपालगण धर्मकी व्यवस्था और लोकोंकी रक्षा करनेके लिये स्थित हैं। दक्षिणायनके समय सूर्य उन लोकपालोंसे ऊपर होकर भ्रमण करते हैं ॥ १०–२५ ॥

काष्ठागतस्य सूर्यस्य गतिस्तत्र निबोधत । दक्षिणोपक्रमे सूर्यः क्षिप्तेषुरिव सर्पति ॥ २६ ॥
ज्योतिषां चक्रमादाय सततं परिगच्छति । मध्यगश्चामरावत्यां यदा भवति भास्करः ॥ २७ ॥
वैवस्वते संयमने उद्यन् सूर्यः प्रदृश्यते । सुखायामर्धरात्रस्तु विभावर्यास्तमेति च ॥ २८ ॥
वैवस्वते संयमने मध्याह्ने तु रविर्यदा । सुखायामथ वारुण्यामुत्तिष्ठन् स तु दृश्यते ॥ २९ ॥
विभावर्यामर्धरात्रं माहेन्द्र्यामस्तमेव च । सुखायामथ वारुण्यां मध्याह्ने तु रविर्यदा ॥ ३० ॥
विभावर्यां सोमपुर्यामुत्तिष्ठति विभावसुः । महेन्द्रस्यामरावत्यामुद्गच्छति दिवाकरः ॥ ३१ ॥
सुखायामथ वारुण्यां मध्याह्ने तु रविर्यदा । स शीघ्रमेव पर्येति भानुरालातचक्रवत् ॥ ३२ ॥

दक्षिण दिशाका आश्रय लेनेपर सूर्यकी जैसी गति होती है, उसे सुनिये। दक्षिणायनकालमें सूर्य छोड़े गये बाणकी तरह शीघ्रगतिसे चलते हैं। वे ज्योतिश्चक्रको सदा साथ लिये रहते हैं। (इस प्रकार भ्रमण करते हुए)

जिस समय सूर्य अमरावती पुरीमें पहुँचते हैं, उस समय वे गगनमण्डलके मध्यभागमें रहते हैं अर्थात् मध्याह्न होता है। उसी समय वे यमराजकी संयमनीपुरीमें उदित होते हुए और विभावरी नगरीमें अस्त होते हुए दीखते हैं तथा सुखा नगरीमें आधी रात होती है। इसी प्रकार जब सूर्य मध्याह्न-कालमें यमराजकी संयमनीपुरीमें पहुँचते हैं, तब वरुणकी सुखानगरीमें उगते हुए और महेन्द्रकी वस्वौकसारा ( अमरावती ) पुरीमें अस्त होते हुए दीखते हैं तथा विभावरी पुरीमें आधी रात होती है। जब दोपहरके समय सूर्य वरुणकी सुखानगरीमें पहुँचते हैं, तब चन्द्रदेवकी पुरी विभावरीमें उदय होते हैं। जब सूर्य महेन्द्रकी अमरावतीपुरीमें उदय होते हैं, तब वरुणकी सुखा नगरीमें अस्त होते ( दीखते ) हैं और संयमनीपुरीमें आधी रात होती है। इस प्रकार सूर्य अलातचक्र (जलती बनेटी )की भाँति बड़ी शीघ्रतासे चक्कर लगाते हैं॥ २१–३२ ॥

**भ्रमन् वै भ्रममाणानि ऋक्षाणि चरते रविः। एवं चतुर्षु पार्श्वेषु दक्षिणान्तेषु सर्पति ॥ ३३ ॥**
**उदयास्तमये वासावुत्तिष्ठति पुनः पुनः। पूर्वाह्णे चापराह्णे च द्वौ द्वौ देवालयौ तु सः ॥ ३४ ॥**
**पतत्येकं तु मध्याह्ने भाभिरेव च रश्मिभिः। उदितो वर्धमानाभिर्मध्याह्ने तपते रविः ॥ ३५ ॥**
**अतः परं ह्रसन्तीभिर्गोभिरस्तं स गच्छति। उदयास्तमयाभ्यां च स्मृते पूर्वापरे तु वै ॥ ३६ ॥**
**यादृक्पुरस्तात्तपति तादृक्पृष्ठे तु पार्श्वयोः। यत्रोदयस्तु दृश्येत तेषां स उदयः स्मृतः ॥ ३७ ॥**
**प्रणाशं गच्छते यत्र तेषामस्तः स उच्यते। सर्वेषामुत्तरे मेरुर्लोकालोकस्तु दक्षिणे ॥ ३८ ॥**
**विदूरभावादर्कस्य भूमेर्लेखावृतस्य च। ह्रियन्ते रश्मयो यस्मात्तेन रात्रौ न दृश्यते ॥ ३९ ॥**
**ऊर्ध्वं शतसहस्रांशुः स्थितस्तत्र प्रदृश्यते। एवं पुष्करमध्ये तु यदा भवति भास्करः ॥ ४० ॥**
**त्रिंशद्भागं च मेदिन्या मुहूर्तेन स गच्छति। योजनानां सहस्रस्य इमां संख्यां निबोधत ॥ ४१ ॥**
**पूर्णं शतसहस्राणामेकत्रिंशच्च सा स्मृता। पञ्चाशच्च सहस्राणि तथान्यान्यधिकानि च ॥ ४२ ॥**
**मौहूर्तिकी गतिर्ह्येषा सूर्यस्य तु विधीयते।**

इस प्रकार स्वयं भ्रमण करते हुए सूर्य नक्षत्रोंको भी भ्रमण कराते हैं। वे चारो दक्षिणान्त पार्श्व भागोंमें चलते रहते हैं। उदय और अस्तके समय वे पुनः-पुनः उदय और अस्त होते रहते हैं और पूर्वाह्ण एवं अपराह्णमें दो-दो देवपुरियोंमें तथा मध्याह्नके समय एक पुरीमें पहुँचते हैं। इस प्रकार सूर्य उदय होकर अपनी बढ़ती हुई तेजस्विनी किरणोंसे दोपहरके समय तपते हैं और उसके बाद धीरे-धीरे ह्रासको प्राप्त होती हुई उन्हीं किरणोंके साथ अस्त हो जाते हैं। सूर्यके इसी उदय और अस्तसे पूर्व और पश्चिम दिशाका ज्ञान होता है। यों तो सूर्य जैसे पूर्व दिशामें तपते हैं, उसी तरह पश्चिम तथा पार्श्वभाग ( उत्तर और दक्षिण ) में भी प्रकाश फैलाते हैं, परंतु उन दिशाओंमें जहाँ सूर्यका उदय दीखता है, वही उदय-स्थान कहलाता है तथा जिस दिशामें सूर्य अदृश्य हो जाते हैं, उसे अस्त-स्थान कहते हैं। मेरुपर्वत सभी पर्वतोंसे उत्तर तथा लोकालोक पर्वत दक्षिण दिशामें स्थित है, इसलिये सूर्यके बहुत दूर हो जाने तथा पृथ्वीकी छायासे आवृत होनेके कारण उनकी किरणें अवरुद्ध हो जाती हैं, इसी कारण सूर्य रातमें नहीं दीख पड़ते। इस प्रकार एक लाख किरणोंसे सुशोभित सूर्य जब पुष्करद्वीपके मध्यभागमें पहुँचते हैं, तब वहाँ ऊँचाईपर स्थित होनेके कारण दीख पड़ते हैं। सूर्य एक मुहूर्त ( दो घड़ी )में पृथ्वीके तीसवें भागतक पहुँच जाते हैं। उनकी गतिका प्रमाण योजनोंके हजारोंकी गणनामें सुनिये। सूर्यकी एक मुहूर्तकी गतिका परिमाण एकतीस लाख पचास हजार योजनसे भी अधिक बतलाया जाता है ॥ ३३–४२½ ॥

एतेन क्रमयोगेन यदा काष्ठां तु दक्षिणाम् ॥ ४३ ॥
परिगच्छति सूर्योऽसौ मासं काष्ठामुदग्दिनात् । मध्येन पुष्करस्याथ भ्रमते दक्षिणायने ॥ ४४ ॥
मानसोत्तरमेरोस्तु अन्तरं त्रिगुणं स्मृतम् । सर्वतो दक्षिणस्यां तु काष्ठायां तन्निबोधत ॥ ४५ ॥
नव कोट्यः प्रसंख्याता योजनैः परिमण्डलम् । तथा शतसहस्राणि चत्वारिंशच्च पञ्च च ॥ ४६ ॥
अहोरात्रात् पतङ्गस्य गतिरेषा विधीयते । दक्षिणादिङ्निवृत्तोऽसौ विषुवस्थो यदा रविः ॥ ४७ ॥
क्षीरोदस्य समुद्रस्योत्तरतोऽपि दिशं चरन् । मण्डलं विषुवच्चापि योजनैस्तन्निबोधत ॥ ४८ ॥
तिस्रः कोट्यस्तु सम्पूर्णा विषुवस्यापि मण्डलम् । तथा शतसहस्राणि विंशत्येकाधिकानि तु ॥ ४९ ॥
श्रवणे चोत्तरां काष्ठां चित्रभानुर्यदा भवेत् । गोमेदस्य परे द्वीपे उत्तरां च दिशं चरन् ॥ ५० ॥
उत्तरायाः प्रमाणं तु काष्ठाया मण्डलस्य तु । दक्षिणोत्तरमध्यानि तानि विद्याद् यथाक्रमम् ॥ ५१ ॥
स्थानं जरद्गवं मध्ये तथैरावतमुत्तरम् । वैश्वानरं दक्षिणतो निर्दिष्टमिह तत्त्वतः ॥ ५२ ॥
नागवीथ्युत्तरा वीथी ह्यजवीथिस्तु दक्षिणा ।

इसी क्रमसे जब सूर्य दक्षिण दिशामें जाते हैं, तब ( वहाँ छः महीनेतक भ्रमण करनेके पश्चात् पुनः ) सातवें मासमें उत्तर दिशाकी ओर लौटते हैं । दक्षिणायनके समय सूर्य पुष्करद्वीपके मध्यमें भ्रमण करते हैं । मानसोत्तर और मेरु पर्वतके बीचमें पुष्करद्वीपसे तिगुना अन्तर है । अब दक्षिण दिशामें सूर्यकी गतिका परिमाण सुनिये । यह (दक्षिणायन-) मण्डल नौ करोड़ पैंतालीस लाख योजन विस्तृत बतलाया गया है । यह सूर्यकी एक दिन-रातकी गति है । दक्षिणायनसे निवृत्त होकर जब सूर्य विषुव ( खगोलीय विषुवद्वृत्त और क्रान्तिवृत्तका कटान-बिन्दु ) स्थानपर स्थित होते हैं, तब वे क्षीर-सागरकी उत्तर दिशामें भ्रमण करते हैं । अब विषुवन्मण्डलका परिमाण योजनोंमें सुनिये । वह विषुवन्मण्डल तीन करोड़ इक्कीस लाख योजनके परिमाणवाला है । श्रवणनक्षत्रमें जब सूर्य उत्तर दिशामें चले जाते हैं, तब वे गोमेदद्वीपके बादवाले द्वीपकी उत्तर दिशामें भ्रमण करते हैं । अब उत्तर दिशाके मण्डलका तथा दक्षिण और उत्तरके मध्यभागका प्रमाण क्रमशः सुनिये । इनके मध्यमें जरद्गव, उत्तरमें ऐरावत और दक्षिणमें वैश्वानर नामक स्थान सिद्धान्ततः निर्दिष्ट किये गये हैं । उत्तर दिशामें सूर्यके मार्गको नागवीथी तथा दक्षिण-दिशाके मार्गको अजवीथी कहते हैं ॥ ४३—५२½ ॥

उभे आषाढमूलं तु अजवीथ्युदयास्त्रयः ॥ ५३ ॥
अभिजित्पूर्वतः स्वातिं नागवीथ्युदयास्त्रयः । अश्विनी कृत्तिका याम्या नागवीथ्यस्त्रयः स्मृताः ॥ ५४ ॥
रोहिण्यार्द्रा मृगशिरो नागवीथिरिति स्मृता । पुष्यश्लेषापुनर्वस्वां वीथी चैरावती स्मृता ॥ ५५ ॥
तिस्रस्तु वीथयो ह्येता उत्तरो मार्ग उच्यते । पूर्वउत्तरफाल्गुन्यौ मघा चैवार्षभी भवेत् ॥ ५६ ॥
पूर्वोत्तरप्रोष्ठपदौ गोवीथी रेवती स्मृता । श्रवणं च धनिष्ठा च वारुणं च जरद्गवम् ॥ ५७ ॥
एतास्तु वीथयस्तिस्रो मध्यमो मार्ग उच्यते । हस्तश्चित्रा तथा स्वाती ह्यजवीथिरिति स्मृता ॥ ५८ ॥
ज्येष्ठा विशाखा मैत्रं च मृगवीथी तथोच्यते । मूलं पूर्वोत्तराषाढे वीथी वैश्वानरी भवेत् ॥ ५९ ॥
स्मृतास्तिस्रस्तु वीथ्यस्ता मार्गे वै दक्षिणे पुनः । काष्ठयोरन्तरं चैतद् वक्ष्यते योजनैः पुनः ॥ ६० ॥
एतच्छतसहस्राणामेकत्रिंशत्तु वै स्मृतम् । शतानि त्रीणि चान्यानि त्रयस्त्रिंशत्तथैव च ॥ ६१ ॥
काष्ठयोरन्तरं ह्येतद् योजनानां प्रकीर्तितम् । काष्ठयोर्लेखयोश्चैव अयने दक्षिणोत्तरे ॥ ६२ ॥
ते वक्ष्यामि प्रसंख्याय योजनैस्तु निबोधत । एकैकमन्तरं तस्या नियुतान्येकसप्ततिः ॥ ६३ ॥
सहस्राण्यतिरिक्ता च ततोऽन्या पञ्चविंशतिः । लेखयोः काष्ठयोश्चैव बाह्याभ्यन्तरयोश्चरन् ॥ ६४ ॥
अभ्यन्तरं स पर्येति मण्डलान्युत्तरायणे । बाह्यतो दक्षिणेनैव सततं सूर्यमण्डलम् ॥ ६५ ॥
चरन्नसावुदीच्यां च ह्यशीत्या मण्डलाच्छतम् । अभ्यन्तरं स पर्येति क्रमते मण्डलानि तु ॥ ६६ ॥

दोनों आषाढ़ अर्थात् पूर्वाषाढ़, उत्तराषाढ़ और मूल—ये तीनों अजवीथी हैं। अभिजित, श्रवण और स्वाती—ये तीनो नागवीथी हैं। अश्विनी, भरणी और कृत्तिका—ये तीनों नागवीथी नामसे प्रसिद्ध हैं। रोहिणी, आर्द्रा और मृगशिरा भी नागवीथी कहलाते हैं। पुष्य, श्लेषा और पुनर्वसु—ये तीनों ऐरावती वीथी कहे जाते हैं। ये तीनों वीथियाँ उत्तर दिशाका मार्ग कहलाती हैं। पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी और मघा—ये तीनों 'आर्षभी' वीथी हैं। पूर्वभाद्रपद, उत्तरभाद्रपद और रेवती—ये तीनों 'गोवीथी' नामसे पुकारे जाते हैं। श्रवण, धनिष्ठा और शतभिषा—ये तीनों 'जरद्गववीथी' हैं। ये तीनों वीथियाँ मध्यम मार्ग कहलाती हैं। हस्त, चित्रा और स्वाती—ये तीनों 'अजवीथी' कहलाते हैं। ज्येष्ठा, विशाखा और अनुराधा—ये 'मृगवीथी' कहलाते हैं। मूल, पूर्वाषाढ़ और उत्तराषाढ—ये 'वैश्वानर'-वीथी हैं। ये तीनों वीथियाँ दक्षिण-मार्गमें बतलायी गयी हैं। अब उत्तर और दक्षिण—दोनो दिशाओंका अन्तर योजनोंमें बतला रहा हूँ। इन दोनों दिशाओंका अन्तर एकतीस लाख तीन हजार छः सौ योजन बतलाया जाता है। अब उत्तरायण और दक्षिणायन-कालमें दोनों दिशाओ और दोनों रेखाओंका अन्तर योजनोंमें परिगणित करके बतला रहा हूँ, सुनिये। उनमें एकसे दूसरीका अन्तर एकहत्तर लाख पचीस हजार योजन है। सूर्य दोनों दिशाओं और रेखाओंके बाहरी और भीतरी भागमें चक्कर लगाते हैं। यह सूर्यमण्डल सदा उत्तरायणमें मण्डलोंके भीतर और दक्षिणायनमें बाहरसे चक्कर लगाता है। उत्तर दिशामें विचरते हुए सूर्य एक सौ अस्सी मण्डलोंके भीतरसे गुजरते हुए उन्हें पार करते हैं ॥ ५३—६६ ॥

प्रमाणं मण्डलस्यापि योजनानां निबोधत। योजनानां सहस्राणि दश चाष्टौ तथा स्मृतम् ॥ ६७ ॥
अधिकान्यष्टपञ्चाशद्योजनानि तु वै पुनः। विष्कम्भो मण्डलस्यैव तिर्यक् स तु विधीयते ॥ ६८ ॥
अहस्तु चरते नाभेः सूर्यो वै मण्डलं क्रमात्। कुलालचक्रपर्यन्तो यथा चन्द्रो रविस्तथा ॥ ६९ ॥
दक्षिणे चक्रवत्सूर्यस्तथा शीघ्रं निवर्तते। तस्मात् प्रकृष्टां भूमिं तु कालेनाल्पेन गच्छति ॥ ७० ॥
सूर्यो द्वादशभिः शीघ्रं मुहूर्तैर्दक्षिणायने। त्रयोदशार्धमृक्षाणां मध्ये चरति मण्डलम् ॥ ७१ ॥
मुहूर्तैस्तानि ऋक्षाणि नक्तमष्टादशैश्चरन्। कुलालचक्रमध्यस्थो यथा मन्दं प्रसर्पति ॥ ७२ ॥
उदग्याने तथा सूर्यः सर्पते मन्दविक्रमः। तस्माद् दीर्घेण कालेन भूमिं सोऽल्पां प्रसर्पति ॥ ७३ ॥
सूर्योऽष्टादशभिरह्नो मुहूर्तैरुदगायने।
त्रयोदशानां मध्ये तु ऋक्षाणां चरते रविः। मुहूर्तैस्तानि ऋक्षाणि रात्रौ द्वादशभिश्चरन् ॥ ७४ ॥
ततो मन्दतरं नाभ्यां चक्रं तु भ्रमते पुनः। मृत्पिण्ड इव मध्यस्थो भ्रमतेऽसौ ध्रुवस्तथा ॥ ७५ ॥
मुहूर्तैस्त्रिंशता तावदहोरात्रं ध्रुवो भ्रमन्। उभयोः काष्ठयोर्मध्ये भ्रमते मण्डलानि तु ॥ ७६ ॥

अब मण्डलका प्रमाण योजनोंकी गणनामें सुनिये। इसका परिमाण अठारह हजार अट्ठावन योजन बतलाया जाता है। इस मण्डलका व्यास तिरछा जानना चाहिये। सूर्य दिनभर कुम्हारके चाककी तरह नाभि-मण्डलपर चक्कर लगाते हैं। सूर्यकी भाँति चन्द्रमा भी वैसा ही भ्रमण करते हैं। उसी प्रकार दक्षिणायनमें भी सूर्य चाककी तरह शीघ्रतापूर्वक चलते हुए उसे पार करते हैं। इसी कारण वे इतनी विस्तृत भूमिको थोड़े ही समयमें पार कर जाते हैं। दक्षिणायनके समय सूर्य साढ़े तेरह नक्षत्रोंके मण्डलको शीघ्रतापूर्वक मध्यभागसे गुजरते हुए बारह मुहूर्तोंमें पार करते हैं, किंतु रातके समय उन्हीं नक्षत्रोंको पार करनेमें उन्हें अठारह मुहूर्त लगता है। जैसे कुम्हारके चाकके मध्यभागमें स्थित वस्तुकी गति मन्द हो जाती है, वैसे

ही उत्तरायणके समय सूर्य मन्दगतिसे चलते हैं। इसी कारण थोड़ी-सी भूमि पार करनेमें उन्हें अधिक समय लगाना पड़ता है। उत्तरायणके समय सूर्य दिनके अठारह मुहूर्तोंमें तेरह नक्षत्रोंके मध्यमें विचरते हैं, किंतु रातमें उन्हीं नक्षत्रोंको पार करनेमें उन्हे बारह मुहूर्त लगते हैं। वह चक्र उन दोनों गतियोंसे मन्दतर गतिमें घूमता है। चाकके मध्यभागमें रखे हुए मृत्पिण्डकी तरह ध्रुव भी उस चक्रके मध्यमें स्थित होकर घूमते रहते हैं। ध्रुव तीस मुहूर्त अर्थात् दिन-रातभरमें दोनों दिशाओंके मध्यवर्ती मण्डलोंमें भ्रमण करते हैं।६७—७६।

उत्तरक्रमणेऽर्कस्य दिवा मन्दगतिः स्मृता। तस्यैव तु पुनर्नक्तं शीघ्रा सूर्यस्य वै गतिः ॥ ७७ ॥
दक्षिणप्रक्रमे चापि दिवा शीघ्रं विधीयते। गतिः सूर्यस्य वै नक्तं मन्दा चापि विधीयते ॥ ७८ ॥
एवं गतिविशेषेण विभजन् रात्र्यहानि तु। अजवीथ्यां दक्षिणायां लोकालोकस्य चोत्तरम्॥ ७९ ॥
लोकसंतानतो ह्येष वैश्वानरपथाद् बहिः। व्युष्टिर्यावत्प्रभा सौरी पुष्करात् सम्प्रवर्तते ॥ ८० ॥
पार्श्वेभ्यो बाह्यतस्तावल्लोकालोकश्च पर्वतः। योजनानां सहस्राणि दशोर्ध्वं चोच्छ्रितो गिरिः ॥ ८१ ॥
प्रकाशश्चाप्रकाशश्च पर्वतः परिमण्डलः। नक्षत्रचन्द्रसूर्याश्च ग्रहास्तारागणैः सह ॥ ८२ ॥
अभ्यन्तरे प्रकाशन्ते लोकालोकस्य वै गिरेः। एतावानेव लोकस्तु निरालोकस्ततः परम् ॥ ८३ ॥
लोक आलोकने धातुर्निरालोकस्त्वलोकता। लोकालोकौ तु संधत्ते तस्मात्सूर्यः परिभ्रमन् ॥ ८४ ॥
तस्मात् संध्येति तामाहुरुषाव्युष्ट्योर्यथान्तरम्। उषा रात्रिः स्मृता विप्रैर्व्युष्टिश्चापि अहः स्मृतम् ॥ ८५ ॥

उत्तरायणके समय दिनमें सूर्यकी गति मन्द और रात्रिके समय उन्हीं सूर्यकी गति तेज बतलायी गयी है। उसी तरह दक्षिणायन-कालमें सूर्यकी गति दिनमें तेज और रात्रिमें मन्द कही गयी है। इस प्रकार अपनी विशेष गतिसे रात-दिनका विभाजन करते हुए सूर्य दक्षिण दिशामें अजवीथीसे गुजरते हुए लोकालोक पर्वतकी उत्तर दिशामें पहुँचते हैं। वहाँसे लोक-संतानक और वैश्वानर नामक पर्वतोंके बाहरी मार्गसे चलते हुए वे पुष्करद्वीपपर पहुँचते हैं। वहाँ सूर्यकी प्रभात-कालिकी प्रभा होती है। इस मार्गके पार्श्वभागमें लोकालोक पर्वत पड़ता है, जो दस हजार योजन ऊँचा है। यह पर्वत मण्डलाकार है और इसका एक भाग प्रकाशयुक्त एवं दूसरा भाग तिमिराच्छन्न रहता है। इस लोकालोक पर्वतके भीतर सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र और तारागणोंके साथ सभी ग्रह प्रकाशित होते हैं। इस प्रकार जहाँतक प्रकाश होता है, उतनेको ही लोक माना गया है और शेष भाग निरालोक ( तमसाच्छन्न ) है। 'लोक' धातुका अर्थ दर्शन अर्थात् आलोकन है, इसलिये जो आलोक दृष्टिपथसे दूर है, वह अनालोकता है। सूर्य परिभ्रमण करते हुए जिस समय लोकालोकपर्वत ( प्रकाशित और अप्रकाशित प्रदेशकी संधि )पर पहुँचते हैं, उस समयको संध्या कहते हैं। उषःकाल और व्युष्टिमें अन्तर है। ब्राह्मणोंने उषःकालको रात्रिमें और व्युष्टिको दिनमें परिगणित किया है ॥ ७७—८५ ॥

त्रिंशत्कलो मुहूर्तस्तु अहस्ते दश पञ्च च। ह्रासो वृद्धिरहर्भागैर्दिवसानां यथा तु वै ॥ ८६ ॥
संध्यामुहूर्तमात्रायां ह्रासवृद्धी तु ते स्मृते। लेखाप्रभृत्यथादित्ये त्रिमुहूर्तागते तु वै ॥ ८७ ॥
प्रातः स्मृतस्ततः कालो भागांश्चाहुश्च पञ्च च। तस्मात् प्रातर्गतात् कालान्मुहूर्ताः सङ्गवस्त्रयः ॥ ८८ ॥
मध्याह्नस्त्रिमुहूर्तस्तु तस्मात् कालादनन्तरम्। तस्मान्मध्यंदिनात् कालादपराह्ण इति स्मृतः ॥ ८९ ॥
त्रय एव मुहूर्तास्तु काल एष स्मृतो बुधैः। अपराह्णव्यतीताच्च कालः सायं स उच्यते ॥ ९० ॥
दश पञ्च मुहूर्ताह्नो मुहूर्तास्त्रय एव च। दश पञ्चमुहूर्तं वै अहस्तु विषुवे स्मृतम् ॥ ९१ ॥
वर्धत्यतो ह्रसत्येव अयने दक्षिणोत्तरे। अहस्तु ग्रसते रात्रिं रात्रिस्तु ग्रसते अहः ॥ ९२ ॥
शरद्वसन्तयोर्मध्यं विषुवं तु विधीयते। आलोकान्तः स्मृतो लोको लोकाच्चालोक उच्यते ॥ ९३ ॥

लोकपालाः स्थितास्तत्र लोकालोकस्य मध्यतः। चत्वारस्ते महात्मानस्तिष्ठन्त्याभूतसम्प्लवम् ॥ ९४ ॥
सुधामा चैव वैराजः कर्दमश्च प्रजापतिः। हिरण्यरोमा पर्जन्यः केतुमान् राजसश्च सः ॥ ९५ ॥
निर्द्वन्द्वा निरभीमाना निस्तन्द्रा निष्परिग्रहाः। लोकपालाः स्थितास्त्वेते लोकालोके चतुर्दिशम् ॥ ९६ ॥

तीस कलाका एक मुहूर्त होता है और एक दिनमें पंद्रह मुहूर्त होते हैं। जिस प्रकार अहर्गणके हिसाबसे दिनोंकी ह्रास-वृद्धि होती है, उसी तरह संध्याके मुहूर्तमें भी ह्रास-वृद्धि माने गये हैं। तीन-तीन मुहूर्तोंके हिसाबसे दिनके पाँच भाग माने गये हैं। सूर्योदय होनेके पश्चात् तीन मुहूर्ततकका काल प्रातःकाल कहा जाता है। उस प्रातःकालके व्यतीत होनेपर तीन मुहूर्ततकका समय संगव-काल कहलाता है। उस संगव-कालके बाद तीन मुहूर्ततक मध्याह्न नामसे अभिहित होता है। उस मध्याह्नकालके बादका समय अपराह्न कहा जाता है। इसका भी समय विद्वानोंने तीन मुहूर्त ही माना है। अपराह्नके बीत जानेके बादका काल सायं कहलाता है। इस प्रकार पंद्रह मुहूर्तोंका दिन तीन-तीन मुहूर्तोंके हिसाबसे पाँच भागोंमें विभक्त है। इसी प्रकार (रातमें भी १५ मुहूर्त होती है) दोनोंविषुवोंमें (ठीक) पंद्रह मुहूर्तका दिन होता है—शरद् और वसन्त ऋतुओंके मध्य (मेष-तुलासंक्रान्ति) का समय विषुव कहलाता है, उत्तरायणमें दिन-रात्रिको दक्षिणायनमें रात्रि दिनको ग्रस करती है। जहाँतक सूर्यका प्रकाश पहुँचता है, उसे लोक कहते हैं और उस लोकके बाद जो तमसाच्छन्न प्रदेश है, उसे अलोक कहा जाता है। इसी लोक और अलोकके मध्यमें स्थित (लोकालोक) पर्वतपर चारों लोकपाल महाप्रलयपर्यन्त निवास करते हैं। उनके नाम हैं—वैराज सुधामा, प्रजापति कर्दम, पर्जन्य हिरण्यरोमा और राजस केतुमान्। ये सभी लोकपाल सुख-दुःख आदि द्वन्द्व, अभिमान, आलस्य और परिग्रहसे रहित होकर लोकालोकके चारों दिशाओंमें स्थित हैं ॥ ८६—९६ ॥

उत्तरं यदगस्त्यस्य शृङ्गं देवर्षिसेवितम्। पितृयाणः स्मृतः पन्था वैश्वानरपथाद् बहिः ॥ ९७ ॥
तत्रासते प्रजाकामा ऋषयो येऽग्निहोत्रिणः। लोकस्य संतानकराः पितृयाणे पथि स्थिताः ॥ ९८ ॥
भूतारम्भकृतं कर्म आशिषश्च विशाम्पते। प्रारभन्ते लोककास्तैतेषां पन्थाः स दक्षिणः ॥ ९९ ॥
चलितं ते पुनर्धर्मं स्थापयन्ति युगे युगे। संतप्ततपसा चैव मर्यादाभिः श्रुतेन च ॥१००॥
जायमानास्तु पूर्वे वै पश्चिमानां गृहेषु ते। पश्चिमाश्चैव पूर्वेषां जायन्ते निधनेष्विह ॥१०१॥
एवमावर्तमानास्ते वर्तन्त्याभूतसम्पलवम्। अष्टाशीतिसहस्राणि ऋषीणां गृहमेधिनाम् ॥१०२॥
सवितुर्दक्षिणं मार्गमाश्रित्याभूतसम्प्लवम्। क्रियावतां प्रसंख्यैषा ये श्मशानानि भेजिरे ॥१०३॥
लोकसंव्यवहारार्थं भूतारम्भकृतेन च। इच्छाद्वेषरताच्चैव मैथुनोपगमाच्च वै ॥१०४॥
तथा कामकृतेनेह सेवनाद् विषयस्य च। इत्येतैः कारणैः सिद्धाः श्मशानानीह भेजिरे ॥१०५॥

लोकालोक पर्वतका जो उत्तरी शिखर है, वह अगस्त्य-शिखर कहलाता है। देवर्षिगण उसका सेवन करते हैं। वह वैश्वानर-मार्गसे बाहर है और पितृयाण-मार्गके नामसे प्रसिद्ध है। उस पितृयाण-मार्गपर प्रजाभिलाषी अग्निहोत्री तथा लोगोंको संतान प्रदान करनेवाले ऋषिगण निवास करते हैं। राजन्! लौकिक कामनाओंसे युक्त वे ऋषिगण अपने आशीर्वादके प्रयोगसे प्राणियोंद्वारा आरम्भ किये गये कर्मको सफल बनाते हैं। उनका मार्ग दक्षिणायनमें है। वे प्रत्येक युगमें अपनी उग्र तपस्या तथा धर्मशास्त्रकी मर्यादाद्वारा मर्यादासे स्खलित हुए धर्मकी पुनः स्थापना करते हैं। इनमें जो पहले उत्पन्न हुए थे, वे अपनेसे पीछे उत्पन्न होनेवालोंके घरोंमें जन्म लेते हैं और पीछे उत्पन्न होनेवाले मृत्युके पश्चात् पूर्वजोंके गृहोंमें चले जाते हैं। इस प्रकार वे प्रलयपर्यन्त आवा-गमनके चक्करमें पड़े रहते हैं। इन क्रियानिष्ठ गृहस्थ ऋषियोंकी संख्या अठासी हजार है। ये सूर्यके दक्षिण

मार्गका आश्रय लेकर प्रलयपर्यन्त स्थित रहते हैं। उन्हें श्मशानकी शरण लेनी पड़ती है अर्थात् ये मृत्युभागी होते हैं। लोक-व्यवहारकी रक्षाके लिये प्राणियोंद्वारा आरम्भ किये गये कर्मोंकी पूर्ति, इच्छा, द्वेषपरता, स्त्री-सहवास तथा स्वेच्छापूर्वक सांसारिक विषयभोगोंका सेवन—इन्हीं कारणोंसे उन ऋषियोंको इस लोकमें सिद्ध होते हुए भी श्मशानमें जाना पड़ता है ॥ ९७–१०५ ॥

**प्रजैषिणः सप्तर्षयो द्वापरेष्विह जज्ञिरे। संततिं ते जुगुप्सन्ते तस्मान्मृत्युजितस्तु तैः ॥१०६॥**
**अष्टाशीतिसहस्राणि तेषामप्यूर्ध्वरेतसाम्। उदक्पन्थानमाश्रित्य तिष्ठन्त्याभूतसम्प्लवम् ॥१०७॥**
**ते सम्प्रयोगाल्लोकस्य मिथुनस्य च वर्जनात्। ईर्ष्याद्वेषनिवृत्त्या च भूतारम्भविवर्जनात् ॥१०८॥**
**ततोऽन्यकामसंयोगशब्दादेर्दोषदर्शनात्। इत्येतैः कारणैः शुद्धैस्तेऽमृतत्वं हि भेजिरे ॥१०९॥**
**आभूतसम्प्लवस्थानाममृतत्वं विभाव्यते। त्रैलोक्यस्थितिकालो हि न पुनर्मारगामिणाम् ॥११०॥**
**ब्रह्महत्याश्वमेधाभ्यां पुण्यपापकृतोऽपरम्। आभूतसम्प्लवान्ते तु क्षीयन्ते चोर्ध्वरेतसः ॥१११॥**
**ऊर्ध्वोत्तरमृषिभ्यस्तु ध्रुवो यत्रानुसंस्थितः। एतद् विष्णुपदं दिव्यं तृतीयं व्योम्नि भास्वरम् ॥११२॥**
**यत्र गत्वा न शोचन्ति तद्विष्णोः परमं पदम्। धर्मे ध्रुवस्य तिष्ठन्ति ये तु लोकस्य काङ्क्षिणः ॥११३॥**

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे भुवनकोशे चन्द्रसूर्यभुवनविस्तारो नाम चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२४ ॥*

द्वापरयुगमें प्रजाभिलाषी सात ऋषि इस मृत्युलोकमें उत्पन्न हुए थे, किंतु आगे चलकर उन्हें संततिसे घृणा हो गयी, जिससे उन्होंने मृत्युको जीत लिया। इन ऊर्ध्वरेता ऋषियोंकी संख्या अठासी हजार है। ये सूर्यके उत्तर मार्गका आश्रय लेकर प्रलयपर्यन्त विद्यमान रहते हैं। वे लोक-कल्याणकर्ता, स्त्री-पुरुष-सम्पर्करहित, ईर्ष्या, द्वेष आदिसे निवृत्त, प्राणियोंद्वारा आरम्भ किये गये कर्मोंके त्यागी तथा अन्यान्य कामसम्बन्धी वासनामय शब्दोंमें दोषदर्शी होते है। इन शुद्ध कारणोसे सम्पन्न होनेके कारण उन्हे अमरताकी प्राप्ति हुई। प्रलयपर्यन्त स्थित रहनेवाले नैष्ठिक ऋषियोंका त्रिलोकीकी स्थितितक वर्तमान रहना अमरत्व कहलाता है। यह कामासक्त व्यक्तियोंको नहीं प्राप्त होता। ब्रह्महत्याजन्य पाप और अश्वमेधजन्य पुण्यसे ही इनमें अन्तर आता है। ( भाव यह कि जैसे घोर पाप और महान् पुण्य प्रलयपर्यन्त जीवात्माके साथ लगे रहते हैं, बीचमें नष्ट नहीं होते, वैसे ही ऊर्ध्वरेताका शरीर भी तबतक स्थित रहता है। ) सप्तर्षिमण्डलके ऊपर उत्तर दिशामें जहाँ ध्रुवका निवास है, वही भगवान् विष्णुका तीसरा दिव्य पद स्थित हुआ था, जो ( अब भी ) आकाशमें उद्भासित होता रहता है। भगवान् विष्णुके उस परमपदको प्राप्त कर लेनेपर जीवोंको शोक नहीं करना पड़ता। इसलिये जिन्हें ध्रुव-लोक प्राप्त करनेकी आकाङ्क्षा होती है, वे सदा धर्म-सम्पादनमें ही लगे रहते हैं ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके भुवनकोश-वर्णन-प्रसङ्गमें चन्द्र-सूर्य-भुवन-विस्तार नामक एक सौ चौबीसवाँ अध्याय संपूर्ण हुआ ॥ १२४ ॥

# एक सौ पचीसवाँ अध्याय

## सूर्यकी गति और उनके रथका वर्णन

**एवं श्रुत्वा कथां दिव्यामब्रुवँल्लोमहर्षणिम्। सूर्याचन्द्रमसोश्चारं ग्रहाणां चैव सर्वशः ॥ १ ॥**

इस प्रकार सूर्य और चन्द्रमाकी गति तथा सभी ग्रहोंके गतिचारकी सारी दिव्य कथाको सुनकर शौनकादि ऋषिगण लोमहर्षणके पुत्र सूतजीसे बोले ॥ १ ॥

ऋषय ऊचुः

भ्रमन्ति कथमेतानि ज्योतींषि रविमण्डले। अव्यूहेनैव सर्वाणि तथा चासंकरेण वा॥ २॥
कश्च भ्रामयते तानि भ्रमन्ति यदि वा स्वयम्। एतद् वेदितुमिच्छामस्ततो निगद सत्तम॥ ३॥

ऋषियोंने पूछा—वक्ताओंमें श्रेष्ठ सूतजी! ये ग्रह, नक्षत्र आदि ज्योतिर्गण तिर्यग्व्यूहमें निबद्ध हो सूर्यमण्डलमें किस प्रकार घूमते हैं? ये सभी परस्पर मिलकर घूमते हैं अथवा पृथक्-पृथक्? इन्हें कोई घुमाता है या ये स्वयं घूमते हैं? हमें इस रहस्यको जाननेकी विशेष उत्कण्ठा है, अतः आप इसका वर्णन कीजिये॥ २-३॥

सूत उवाच

भूतसम्मोहनं ह्येतद् ब्रुवतो मे निबोधत। प्रत्यक्षमपि दृश्यं तत् सम्मोहयति वै प्रजाः॥ ४॥
योऽसौ चतुर्दशर्क्षेषु शिशुमारो व्यवस्थितः। उत्तानपादपुत्रोऽसौ मेढीभूतो ध्रुवो दिवि॥ ५॥
सैष भ्रमन् भ्रामयते चन्द्रादित्यौ ग्रहैः सह। भ्रमन्तमनुसर्पन्ति नक्षत्राणि च चक्रवत्॥ ६॥
ध्रुवस्य मनसा यो वै भ्रमते ज्योतिषां गणः। वातानीकमयैर्बन्धैर्ध्रुवे बद्धः प्रसर्पति॥ ७॥
तेषां भेदाश्च योगश्च तथा कालस्य निश्चयः। अस्तोदयास्तथोत्पाता अयने दक्षिणोत्तरे॥ ८॥
विषुवद्ग्रहवर्णश्च सर्वमेतद् ध्रुवेरितम्। जीमूता नाम ते मेघा यदेभ्यो जीवसम्भवः॥ ९॥
द्वितीय आवहन् वायुर्मेघास्ते त्वभिसंश्रिताः। इतो योजनमात्राच्च अध्यर्धविकृता अपि॥ १०॥
वृष्टिसर्गस्तथा तेषां धारासारः प्रकीर्तितः। पुष्करावर्तका नाम ते मेघाः पक्षसम्भवाः॥ ११॥
शक्रेण पक्षाश्छिन्ना वै पर्वतानां महौजसा। कामगानां समृद्धानां भूतानां नाशमिच्छताम्॥ १२॥
पुष्करा नाम ते पक्षा बृहन्तस्तोयधारिणः। पुष्करावर्तका नाम कारणेनेह शब्दिताः॥ १३॥
नानारूपधराश्चैव महाघोरस्वराश्च ते। कल्पान्तवृष्टिकर्तारः कल्पान्ताग्नेर्नियामकाः॥ १४॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! यह विषय प्राणियोंको मोहमें डाल देनेवाला है; क्योंकि यह प्रत्यक्षरूपसे दृश्य होनेपर भी प्रजाओंको मोहित कर देता है। मैं इसका वर्णन कर रहा हूँ, सुनिये! आकाशमण्डलमें जो यह (चौदह) नक्षत्रोंके मध्यमें स्थित शिशुमार*नामक चक्र है, वही उत्तानपादका पुत्र ध्रुव है, जो (उस चक्रमें) मेंढी†के समान है। वह ध्रुव स्वयं भ्रमण करता हुआ ग्रहोंके साथ सूर्य और चन्द्रमाको भी घुमाता है। नक्षत्रगण भी चक्रकी भाँति घूमते हुए ध्रुवके पीछे-पीछे चलते हैं। जो ज्योतिर्गण वायुमय बन्धनोंद्वारा ध्रुवमें निबद्ध है, वह ध्रुवके मानसिक संकल्पसे ही घूमता है। उन ज्योतिर्गणोंके भेद, योग, कालका निश्चय, अस्त, उदय, उत्पात, उत्तरायण एवं दक्षिणायनमें गमन, विषुवत् रेखापर स्थिति और ग्रहोंके वर्ण आदि सभी कार्य ध्रुवकी प्रेरणासे होते हैं। (भगणके नीचे मेघ हैं।) जिनसे जीवोंकी उत्पत्ति होती है, उन मेघोंको जीमूत कहते हैं। वे मेघ यहाँसे एक योजन दूर आवह नामक दूसरी वायुके आश्रयपर टिके हुए हैं। उनमें कुछ विकार उत्पन्न हो जानेपर वे ही वृष्टि करते हैं, जो महावृष्टि कही जाती है। पूर्वकालमें महान् ओजस्वी इन्द्रने प्राणियोंके कल्याणकी भावनासे स्वच्छन्दचारी एवं समृद्धिशाली पर्वतोंके पंखोंको काट डाला था। उन पंखोंसे उत्पन्न हुए मेघोंको पुष्करावर्तक कहते हैं। पर्वतोंके पंखोंका नाम पुष्कर था, वे बहुत बड़े-बड़े और जलसे भी परिपूर्ण थे, इसी कारण वे मेघ भी पुष्करावर्तक नामसे कहे गये

* शिशुमार (सूँस) एक जलीय जन्तु होता है, जो प्रायः सर्पवत् वृत्ताकार कुण्डल (गेंडुर) मारकर स्थित रहता है। उसके समान स्थितिको 'शिशुमार' चक्र कहते हैं। उसीके समान गोल होनेसे नक्षत्रमण्डलकी उससे उपमा दी गयी है।

† दँवरीके केन्द्रमें स्थित खम्भेको मेंढ़ी कहते हैं। उसके आश्रयपर कई बैल चलकर अन्नकणको दँवते हैं। इस सम्बन्धमें विशेष जानकारीके लिये श्रीमद्भागवत तथा विष्णुपुराण देखना चाहिये।

हैं। ये अनेकों प्रकारके रूप धारण करनेवाले, महान् भयंकर गर्जनासे युक्त, कल्पान्तके समय वृष्टि करनेवाले, कल्पान्तकी अग्निके प्रशामक, अमृतयुक्त और कल्प अर्थात् प्रलयके साधक हैं॥ ४—१४॥

वाय्वाधारा वहन्ते वै सामृताः कल्पसाधकाः। यान्यस्याण्डस्य भिन्नस्य प्राकृतान्यभवंस्तदा॥ १५॥
यस्मिन् ब्रह्मा समुत्पन्नश्चतुर्वक्त्रः स्वयं प्रभुः। तान्येवाण्डकपालानि सर्वे मेघाः प्रकीर्तिताः॥ १६॥
तेषामाप्यायनं धूमः सर्वेषामविशेषतः। तेषां श्रेष्ठश्च पर्जन्यश्चत्वारश्चैव दिग्गजाः॥ १७॥
गजानां पर्वतानां च मेघानां भोगिभिः सह। कुलमेकं द्विधाभूतं योनिरेका जलं स्मृतम्॥ १८॥
पर्जन्यो दिग्गजाश्चैव हेमन्ते शीतसम्भवम्। तुषारवर्षं वर्षन्ति वृद्धा ह्यन्नविवृद्धये॥ १९॥
षष्ठः परिवहो नाम वायुस्तेषां परायणः। योऽसौ बिभर्ति भगवान् गङ्गामाकाशगोचराम्॥ २०॥
दिव्यामृतजलां पुण्यां त्रिपथामिति विश्रुताम्। तस्या विस्पन्दितं तोयं दिग्गजाः पृथुभिः करैः॥ २१॥
शीकरान् सम्प्रमुञ्चन्ति नीहार इति स स्मृतः। दक्षिणेन गिरिर्योऽसौ हेमकूट इति स्मृतः॥ २२॥
उदन् हिमवतः शैलस्योत्तरे चैव दक्षिणे। पुण्ड्रं नाम समाख्यातं नगरं तत्र वै स्मृतम्॥ २३॥
तस्मिन् प्रवर्तते वर्षं तत् तुषारसमुद्भवम्। ततो हिमवतो वायुर्हिमं तत्र समुद्भवम्॥ २४॥
आनयत्यात्मवेगेन सिञ्चमानो महागिरिम्। हिमवन्तमतिक्रम्य वृष्टिशेषं ततः परम्॥ २५॥
इभास्ये च ततः पश्चादिदं भूतविवृद्धये। वर्षद्वयं समाख्यातं सम्यग् वृष्टिविवृद्धये॥ २६॥
मेघाश्चाप्यायनं चैव सर्वमेतत् प्रकीर्तितम्।

वे वायुके आधारपर चलते-फिरते हैं। इस अण्डके विदीर्ण होनेपर उससे जो प्राकृतिक कपाल निकले थे और जिसमें सामर्थ्यशाली स्वयं चतुर्मुख ब्रह्मा उत्पन्न हुए थे, उन्हीं अण्डकपालोंको सभी मेघोके रूपमें बतलाया जाता है। उन सभी मेघोंको समानरूपसे तृप्त करनेवाला धूम है। उनमें पर्जन्य नामक मेघ सबसे श्रेष्ठ है। इसके अतिरिक्त ऐरावत, वामन, अञ्जन आदि चार दिग्गज हैं। हाथी, पर्वत, मेघ और सर्प—इन सबका कुल एक है, जो दो भागोंमें विभक्त हो गया है; परंतु इनकी योनि ( उत्पत्ति स्थान ) एक ही है, जो जल नामसे कही जाती है। पर्जन्य मेघ और चारो वृद्ध दिग्गज हेमन्त ऋतुमें अन्नकी वृद्धिके लिये शीतसे उत्पन्न हुए तुषारकी वर्षा करते हैं। परिवह नामक छठी वायु इनका आश्रय है। वह ऐश्वर्यशाली पवन आकाशगामिनी गङ्गाको, जो दिव्य अमृतरूपी जलसे परिपूर्ण, पुण्यमयी तथा त्रिपथगा नामसे विख्यात हैं, धारण करता है। गङ्गासे निकले हुए जलको दिग्गज अपने मोटे-मोटे शुण्डोंसे फुहारेके रूपमें छोड़ते हैं। उसे नीहार ( कुहासा ) कहते हैं। दक्षिण पार्श्वमें जो पर्वत है, वह हेमकूट नामसे प्रसिद्ध है। वह हिमालय पर्वतके उत्तर और दक्षिण—दोनों दिशाओंमें फैला हुआ है। वहाँ पुण्ड्र नामक एक प्रसिद्ध नगर है। उसी नगरमें वह तुषारसे उत्पन्न हुई वर्षा होती है। तदनन्तर हिमवान् पर्वतसे उद्भूत हुई वायु वहाँ उत्पन्न हुए शीकरोंको अपने साथ ले आती है और बडे वेगसे उस महान् गिरिको सींचती हुई उसका अतिक्रमण करके इभास्य नामक वर्षमें निकल जाती है। तत्पश्चात् प्राणियोंकी वृद्धिके लिये वहाँ शेष वृष्टि होती है। पहले जिन दो वर्षोंका वर्णन किया गया है, उनमें अच्छी तरह वृष्टि होती है। इस प्रकार मैंने मेघों तथा उनसे उत्पन्न हुई सारी वृष्टिका वर्णन कर दिया॥ १५—२६½॥

सूर्य एव तु वृष्टीनां स्रष्टा समुपदिश्यते॥ २७॥
वर्षं घर्मं हिमं रात्रिं संध्ये चैव दिनं तथा। शुभाशुभफलानीह ध्रुवात् सर्वं प्रवर्तते॥ २८॥
ध्रुवेणाधिष्ठिताश्चापः सूर्यो संगृह्य तिष्ठति। सर्वभूतशरीरेषु त्वापो ह्यनुश्रिताश्च याः॥ २९॥
दह्यमानेषु तेष्वेह जङ्गमस्थावरेषु च। धूमभूतास्तु ता ह्यापो निष्क्रमन्तीह सर्वशः॥ ३०॥
तेन चाभ्राणि जायन्ते स्थानमभ्रमयं स्मृतम्। तेजोभिः सर्वलोकेभ्य आदत्ते रश्मिभिर्जलम्॥ ३१॥

समुद्राद् वायुसंयोगाद् वहन्त्यापो गभस्तयः। ततस्त्वृतुवशात्काले परिवर्तन् दिवाकरः ॥ ३२ ॥
नियच्छत्यापो मेघेभ्यः शुक्लाः शुक्लैस्तु रश्मिभिः। अभ्रस्थाः प्रपतन्त्यापो वायुना समुदीरिताः ॥ ३३ ॥
ततो वर्षति षण्मासान् सर्वभूतविवृद्धये। वायुभिः स्तनितं चैव विद्युतस्त्वग्निजाः स्मृताः ॥ ३४ ॥
मेहनाच्च मिहेर्धातोर्मेघत्वं व्यञ्जयन्ति च।
न भ्रश्यन्ते ततो ह्यापस्तस्मादभ्रस्य वै स्थितिः। स्रष्टासौ वृष्टिसर्गस्य ध्रुवेणाधिष्ठितो रविः ॥ ३५ ॥
ध्रुवेणाधिष्ठितो वायुर्वृष्टिं संहरते पुनः। ग्रहान्निवृत्त्या सूर्यात्तु चरते ऋक्षमण्डलम् ॥ ३६ ॥
चारस्यान्ते विशत्यर्कं ध्रुवेण समधिष्ठितम्।

सूर्य ही सब प्रकारकी वृष्टियोंके मूल कारण कहे जाते हैं। इस लोकमें वर्षा, धूप, हिम, रात्रि, दिन, दोनों संध्याएँ और शुभ एवं अशुभ कर्मोके फल ध्रुवसे प्रवर्तित होते हैं। ध्रुवद्वारा अधिष्ठित जलको सूर्य ग्रहण करते हैं। जल सभी प्राणियोंके शरीरोंमें परमाणुरूपसे स्थित है। इसी कारण स्थावर-जङ्गम सभी प्राणियोंके शरीरोंके जलाये जानेपर उनमेंसे वह जल धुएँके रूपमें बाहर निकलता है। उसी धूमसे बादल बनते हैं, इसलिये धूमको अभ्रमय स्थान कहा जाता है। सूर्य अपनी तेजोमयी किरणोंद्वारा सभी लोक ( स्थानो )से जल ग्रहण करते हैं। इसी प्रकार वे ही किरणें वायुके संयोगसे समुद्रसे भी जल खींचती हैं। तदनन्तर सूर्य ऋतुओंके अनुसार समय-समयपर जलको परिवर्तित कर अपनी श्वेत किरणोंद्वारा वह शुद्ध जल मेघोंको देते हैं। तब वायुद्वारा प्रेरित हुआ वह मेघस्थित जल वर्षाके रूपमें भूतलपर गिरता है। इस प्रकार सूर्य सभी प्राणियोंकी समृद्धिके निमित्त छः महीनेतक वर्षा करते हैं। उस समय वायुके आघातसे मेघ-निर्घोष भी होता है। ( बिजली भी चमकती है।) ये बिजलियाँ अग्निसे प्रादुर्भूत बतलायी जाती हैं। **'मिह सेचने'** अर्थात् 'मिह' धातु सेचन अथवा मेहनके अर्थमें प्रयुक्त होती है, इसलिये 'मिह'—धातुसे मेघ शब्द निष्पन्न होता है। इसी प्रकार **'अपो बिभ्रति'** या **'न भ्रश्यन्ते आपो यस्मात्'** जिससे जल नहीं गिरते, उसे अब्भ्र या अभ्र कहते हैं। इस तरह ध्रुवद्वारा अधिकृत सूर्य वृष्टि-सर्गकी सृष्टि करते हैं। पुनः ध्रुवद्वारा नियुक्त वायु उस वृष्टिका संहार करती है। नक्षत्रमण्डल सूर्यमण्डलसे निवृत्त होकर विचरण करता है और जब विचरण समाप्त हो जाता है, तब ध्रुवद्वारा अधिष्ठित सूर्यमें प्रविष्ट हो जाता है ॥ २७—३६½ ॥

अतः सूर्यरथस्यापि सन्निवेशं प्रचक्षते। स्थितेन त्वेकचक्रेण पञ्चारेण त्रिणाभिना ॥ ३७ ॥
हिरण्मयेनाणुना वै अष्टचक्रैकनेमिना। चक्रेण भास्वता सूर्यः स्यन्दनेन प्रसर्पिणा ॥ ३८ ॥
शतयोजनसाहस्रो विस्तारायाम उच्यते। द्विगुणश्च रथोपस्थादीषादण्डः प्रमाणतः ॥ ३९ ॥
स तस्य ब्रह्मणा सृष्टो रथो ह्यर्थवशेन तु। असङ्गः काञ्चनो दिव्यो युक्तः पवनगैर्हयैः ॥ ४० ॥
छन्दोभिर्वाजिरूपैस्तैर्यथाचक्रं समास्थितैः। वारुणस्य रथस्येह लक्षणैः सदृशश्च सः ॥ ४१ ॥
तेनासौ चरति व्योम्नि भास्वाननुदिनं दिवि।
अथाङ्गानि तु सूर्यस्य प्रत्यङ्गानि रथस्य च। संवत्सरस्यावयवैः कल्पितानि यथाक्रमम् ॥ ४२ ॥
अहर्नाभिस्तु सूर्यस्य एकचक्रस्य वै स्मृतः। अराः संवत्सरास्तस्य नेम्यः षड्तवः स्मृताः ॥ ४३ ॥
रात्रिर्वरूथो धर्मश्च ध्वज ऊर्ध्वं व्यवस्थितः। अक्षकोट्योर्युगान्यस्य आर्तवाहाः कलाः स्मृताः ॥ ४४ ॥
तस्य काष्ठा स्मृता घोणा दन्तपङ्क्तिः क्षणास्तु वै। निमेषश्चानुकर्षोऽस्य ईषा चास्य कला स्मृता ॥ ४५ ॥
युगाक्षकोटी ते तस्य अर्थकामावुभौ स्मृतौ।

इसके बाद अब सूर्यके रथकी रचना बतलायी जाती है। उसमें एक पहिया, पाँच अरे ( अरगजे ) और तीन नाभियाँ हैं। उस चक्रकी नेमि ( घेरे ) में स्वर्णमयी आठ छोटी-छोटी पुट्ठियाँ लगी हैं। ऐसे उद्दीप्त एवं शीघ्रगामी रथपर बैठकर सूर्य विचरण करते हैं। उस रथकी लम्बाई एक लाख योजन बतलायी जाती है। उसका ईषादण्ड ( हरसा ) रथके उपस्थ ( मध्यभाग ) से प्रमाणमें दुगुना है। ब्रह्माने किसी मुख्य प्रयोजनवश उस रथका निर्माण किया था। उसका असङ्ग ( वह रस्सी, जिससे घोड़े रथमें बँधे रहते हैं ) दिव्य एवं स्वर्णमय है। उसमें पवनके समान शीघ्रगामी घोड़े जुते हुए हैं। चक्रके अनुकूल चलनेवाले छन्द ही उन घोड़ोंके रूपमें उपस्थित होते हैं। वह रथ वरुणके रथके लक्षणोंसे मिलता-जुलता-सा है। उसी रथसे सूर्य प्रतिदिन गगन-मण्डलमें विचरते हैं। सूर्यके अङ्गों तथा रथके अवयवोंकी समतामें क्रमशः कल्पना की गयी है। दिनको सूर्यके एक पहियेवाले रथकी नाभि कहा जाता हैं। वर्ष उसके अरे और छहों ऋतुएँ उसकी नेमि कहलाती हैं। रात्रि उसका वरूथ ( कवच, बख्तर ) और धूप ऊपर फहरानेवाला ध्वज है। चारों युग इसके धुरेके दोनों छोर हैं और कलाएँ आर्तवाह कही गयी हैं। काष्ठा उसकी नासिका तथा क्षण उसके दाँतोंकी पङ्क्तियाँ हैं। निमेषको इसका अनुकर्ष ( रथका तला ) और कलाको ईषा ( हरसा ) कहते हैं। उनके जुएके दोनों छोर अर्थ और काम कहलाते हैं ॥ ३७—४५½ ॥

सप्ताश्वरूपाश्छन्दांसि वहन्ते वायुरंहसा ॥ ४६ ॥

गायत्री चैव त्रिष्टुप् च जगत्यनुष्टुप्तथैव च। पङ्क्तिश्च बृहती चैव उष्णिगेव तु सप्तमः ॥ ४७ ॥
चक्रमक्षे निषद्धं तु ध्रुवे चाक्षः समर्पितः। सहचक्रो भ्रमत्यक्षः सहाक्षो भ्रमति ध्रुवः ॥ ४८ ॥
अक्षः सहैव चक्रेण भ्रमतेऽसौ ध्रुवेरितः। एवमर्थवशात् तस्य सन्निवेशो रथस्य तु ॥ ४९ ॥
तथा संयोगभागेन सिद्धो वै भास्करो रथः। तेनाऽसौ तरणिर्देवो नभसः सर्पते दिवम् ॥ ५० ॥
युगाक्षकोटी ते तस्य दक्षिणे स्यन्दनस्य तु। भ्रमतो भ्रमतो रश्मी तौ चक्रयुगयोस्तु वै ॥ ५१ ॥
मण्डलानि भ्रमेतेऽस्य खेचरस्य रथस्य तु। कुलालचक्रभ्रमवन्मण्डलं सर्वतोदिशम् ॥ ५२ ॥
युगाक्षकोटी ते तस्य वातोर्मी स्यन्दनस्य तु। संक्रमेते ध्रुवमहो मण्डले सर्वतोदिशम् ॥ ५३ ॥
भ्रमतस्तस्य रश्मी ते मण्डले तूत्तरायणे। वर्धते दक्षिणेष्वत्र भ्रमतो मण्डलानि तु ॥ ५४ ॥
युगाक्षकोटी सम्बद्धौ द्वे रश्मी स्यन्दनस्य ते। ध्रुवेण प्रगृहीतौ तौ रश्मी धारयता रविम् ॥ ५५ ॥
आकृष्येते यदा ते तु ध्रुवेण समधिष्ठिते। तदा सोऽभ्यन्तरे सूर्यो भ्रमते मण्डलानि तु ॥ ५६ ॥
अशीतिमण्डलशतं काष्ठयोरुभयोश्चरन्। ध्रुवेण मुच्यमानेन पुना रश्मियुगेन च ॥ ५७ ॥
तथैव बाह्यतः सूर्यो भ्रमते मण्डलानि तु। उद्वेष्टयन् वै वेगेन मण्डलानि तु गच्छति ॥ ५८ ॥

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे भुवनकोश सूर्याचन्द्रमसोश्चारो नाम पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२५ ॥*

गायत्री, त्रिष्टुप्, जगती, अनुष्टुप्, पङ्क्ति, बृहती और उष्णिक्——ये सातों छन्द सातों घोड़ोंके रूपमें हैं, जो वायु-वेगसे रथको वहन करते हैं। इस रथका चक्र अक्षमें बँधा हुआ है और वह अक्ष ध्रुवसे संलग्न है। इसलिये चक्रके साथ अक्ष और अक्षके साथ ध्रुव घूमता रहता है। इस प्रकार ध्रुवद्वारा प्रेरित अक्ष चक्रके साथ ही घूमता है। किसी मुख्य प्रयोजनवश ब्रह्माने इस रथका निर्माण किया है तथा इस प्रकारके अवयवोंके संयोगसे यह सूर्यका रथ सिद्ध हुआ है। इसी रथसे सूर्यदेव आकाशमण्लमें भ्रमण करते हैं। उस रथके जुए और धुरेके छोर दाहिनी ओरसे घूमते हैं। जब वह रथ आकाशमें मण्डलाकार घूमता है, उस समय उसकी किरणें भी मण्डलाकार घूमती-सी दीख पड़ती हैं। यह मण्डल कुम्हारके चाकको भाँति चारों दिशाओंमें घूमता है। उस रथकी

दोनों युगाक्षकोटि और वातोर्मिके चारों दिशाओंमें मण्डलाकार घूमते समय उस रथकी किरणें बढ़ जाती हैं और दक्षिणायनमें घट जाती हैं। वे दोनों किरणें रथकी युगाक्षकोटिमें बँधी हुई हैं और वे ध्रुवमें निबद्ध हैं। ये सूर्यसे भी सम्बद्ध हैं। ध्रुव जब उन दोनों किरणोंको खींचते हैं, तब सूर्य मण्डलके अन्तर्गत ही भ्रमण करते हैं। उस समय सूर्य दोनों दिशाओंके एक सौ अस्सी मण्डलोंमें चक्कर लगाते हैं। पुनः जब ध्रुव दोनो किरणोंको छोड़ देते हैं, तब सूर्य मण्डलोंके बाह्य भागमें घूमने लगते हैं। उस समय वे मण्डलोको उद्वेष्टित करते हुए बड़े वेगसे चलते हैं ॥ ४७—५८ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके भुवनकोश-वर्णन-प्रसङ्गमें सूर्य-चन्द्रमाकी गति नामक एक सौ पचीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १२५ ॥

# एक सौ छब्बीसवाँ अध्याय

## सूर्य-रथ*पर प्रत्येक मासमें भिन्न-भिन्न देवताओंका अधिरोहण तथा चन्द्रमाकी विचित्र गति

सूत उवाच

स रथोऽधिष्ठितो देवैर्मासि मासि यथाक्रमम्। ततो वहत्यथादित्यं बहुभिर्ऋषिभिः सह ॥ १ ॥
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च ग्रामणीसर्पराक्षसैः। एते वसन्ति वै सूर्ये मासौ द्वौ द्वौ क्रमेण च ॥ २ ॥
धातार्यमा पुलस्त्यश्च पुलहश्च प्रजापतिः। उरगौ वासुकिश्चैव संकीर्णश्चैव तावुभौ ॥ ३ ॥
तुम्बुरुर्नारदश्चैव गन्धर्वौ गायतां वरौ। क्रतुस्थलाप्सराश्चैव तथा वै पुञ्जिकस्थला ॥ ४ ॥
ग्रामण्यौ रथकृत्तस्य रथौजाश्चैव तावुभौ। रक्षो हेतिः प्रहेतिश्च यातुधानावुभौ स्मृतौ ॥ ५ ॥
मधुमाधवयोर्ह्येष गणो वसति भास्करे। वसन् ग्रीष्मे तु द्वौ मासौ मित्रश्च वरुणश्च वै ॥ ६ ॥
ऋषिरत्रिर्वसिष्ठश्च नागौ तक्षकरम्भकौ। मेनका सहजन्या च हाहा हूहूश्च गायकौ ॥ ७ ॥
रथन्तरश्च ग्रामण्यौ रथकृच्चैव तावुभौ। पुरुपादो वधश्चैव यातुधानौ तु तौ स्मृतौ ॥ ८ ॥
एते वसन्ति वै सूर्ये मासयोः शुचिशुक्रयोः। ततः सूर्ये पुनश्चान्या निवसन्ति स्म देवताः ॥ ९ ॥
इन्द्रश्चैव विवस्वांश्च अङ्गिरा भृगुरेव च। एलापत्रस्तथा सर्पः शङ्खपालश्च पन्नगः ॥ १० ॥
विश्वावसुसुषेणौ च प्रातश्चैव रथश्च हि। प्रम्लोचेत्यप्सराश्चैव निम्लोचन्ती च ते उभे ॥ ११ ॥
यातुधानस्तथा हेतिर्व्याघ्रश्चैव तु तावुभौ। नभस्यनभसोरेतैर्वसन्तश्च दिवाकरे ॥ १२ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! सूर्यका वह रथ प्रत्येक मासमें क्रमशः देवताओंद्वारा अधिष्ठित रहता है। इस प्रकार वह बहुत-से ऋषियों, गन्धर्वों, अप्सराओं, ग्रामणियो, सर्पों और राक्षसोंके साथ सूर्यको वहन करता है। ये सभी देवगण दो-दो मासके क्रमसे सूर्यके निकट निवास करते हैं। धाता और अर्यमा दो देव, प्रजापति पुलस्त्य और प्रजापति पुलह दो ऋषि, वासुकि और संकीर्ण दो नाग, गायकोंमें श्रेष्ठ तुम्बुरु और नारद दो गन्धर्व, क्रतुस्थला और पुञ्जिकस्थला दो अप्सराएँ, रथकृत् और रथौजा दो ग्रामणी, हेति और प्रहेति दो राक्षस—इन सबका दल चैत्र और वैशाख मासमें सूर्यके रथपर निवास करता है। ग्रीष्म ऋतुके ज्येष्ठ और आषाढ़ मासमें मित्र और वरुण देवता, अत्रि और वसिष्ठ ऋषि, तक्षक और रम्भक नाग, मेनका और सहजन्या अप्सरा, हाहा और हूहू गन्धर्व, रथन्तर और रथकृत् ग्रामणी, पुरुपाद और वध राक्षस—ये सभी सूर्यके निकट रहते हैं। इसी प्रकार श्रावण और भाद्रपद मासमें इन्द्र और विवस्वान् देवता, अङ्गिरा और भृगु ऋषि, एलापत्र और

* यह विषय भी भागवत स्कन्ध १२, अ० ११, वायुपुराण अध्या० ५२ तथा अन्य विष्णु आदि सभी पुराणोंमें स्वल्पान्तरसे प्राप्त होता है।

शंखपाल नामक नाग, विश्वावसु और सुषेण गन्धर्व, प्रात और रथ नामक ग्रामणी, प्रम्लोचा और निम्लोचन्ती अप्सरा तथा हेतु और व्याघ्र राक्षस—ये सभी सूर्यके रथपर निवास करते हैं ॥ १—१२ ॥

मासौ द्वौ देवताः सूर्ये वसन्ति च शरद्दतौ। पर्जन्यश्चैव पूषा च भरद्वाजः सगौतमः ॥ १३ ॥
चित्रसेनश्च गन्धर्वस्तथा वा सुरुचिश्च यः। विश्वाची च घृताची च उभे ते पुण्यलक्षणे ॥ १४ ॥
नागश्चैरावतश्चैव विश्रुतश्च धनंजयः। सेनजिच्च सुषेणश्च सेनानीर्ग्रामणीस्तथा ॥ १५ ॥
आपो वातश्च द्वावेतौ यातुधानावुभौ स्मृतौ। वसन्ते ते च वै सूर्ये मासयोश्च त्विषोर्जयोः ॥ १६ ॥
हैमन्तिकौ च द्वौ मासौ निवसन्ति दिवाकरे। अंशो भगश्च द्वावेतौ कश्यपश्च क्रतुश्च तौ ॥ १७ ॥
भुजङ्गश्च महापद्मः सर्पः कर्कोटकस्तथा। चित्रसेनश्च गन्धर्वः पूर्णायुश्चैव गायनौ ॥ १८ ॥
अप्सराः पूर्वचित्तिश्च तथैव ह्युर्वशी च या। तक्षावारिष्टनेमिश्च सेनानीर्ग्रामणीश्च तौ ॥ १९ ॥
विद्युत्सूर्यश्च तावुग्रौ यातुधानौ तु तौ स्मृतौ। सहे चैव सहस्ये च वसन्त्येते दिवाकरे ॥ २० ॥
ततस्तु शिशिरे चापि मासयोर्निवसन्ति ते। त्वष्टा विष्णुर्जमदग्निर्विश्वामित्रस्तथैव च ॥ २१ ॥
काद्रवेयौ तथा नागौ कम्बलाश्वतरावुभौ। गन्धर्वौ धृतराष्ट्रश्च सूर्यवर्चाश्च तावुभौ ॥ २२ ॥
तिलोत्तमाप्सराश्चैव देवी रम्भा मनोरमा। ग्रामणी ऋतजिच्चैव सत्यजिच्च महाबलः ॥ २३ ॥
ब्रह्मोपेतश्च वै रक्षो यज्ञोपेतस्तथैव च। इत्येते निवसन्ति स्म द्वौ द्वौ मासौ दिवाकरे ॥ २४ ॥

शरद् ऋतुमें भी दो मासतक देवगण सूर्यके निकट वास करते हैं। पर्जन्य और पूषा देवता, भरद्वाज और गौतम ऋषि, चित्रसेन और सुरुचि गन्धर्व, शुभ लक्षणोंवाली विश्वाची और घृताची अप्सराएँ, ऐरावत और सुप्रसिद्ध धनंजय नाग, सेनजित् और सेनानायक सुषेण ग्रामणी, आप और वात नामक दो राक्षस—ये सभी आश्विन और कार्तिक मासमें सूर्यके रथपर अधिरोहण करते हैं। हेमन्त ऋतुके दो महीने मार्गशीर्ष और पौषमें अंश और भग देवता, कश्यप और क्रतु ऋषि, महापद्म और कर्कोटक नाग, गानविद्यामें निपुण चित्रसेन और पूर्णायु गन्धर्व, पूर्वचित्ति और उर्वशी अप्सरा, तक्षा और अरिष्टनेमि नामक सेनापति एवं ग्रामणी, विद्युत् और सूर्य नामक दो उग्र राक्षस—ये सभी सूर्यके निकट वास करते हैं। तत्पश्चात् शिशिर ऋतुके माघ और फाल्गुन मासोंमें त्वष्टा और विष्णु देवता, जमदग्नि और विश्वामित्र ऋषि, कद्रूके पुत्र कम्बल और अश्वतर नाग, धृतराष्ट्र और सूर्यवर्चा गन्धर्व, तिलोत्तमा और मनोहारिणी रम्भा देवी अप्सरा, महाबली ऋतजित् और सत्यजित् ग्रामणी, ब्रह्मोपेत और यज्ञोपेत राक्षस—ये सभी सूर्यके रथपर अधिरूढ़ होते हैं। इस प्रकार प्रत्येक दो मासके अन्तरसे ये सभी क्रमशः सूर्यके निकट निवास करते हैं ॥ १३—२४ ॥

स्थानाभिमानिनो ह्येते गणा द्वादश सप्तकाः। सूर्यमापादयन्त्येते तेजसा तेज उत्तमम् ॥ २५ ॥
ग्रथितैस्तु वचोभिश्च स्तुवन्ति ऋषयो रविम्। गन्धर्वाप्सरसश्चैव गीतनृत्यैरुपासते ॥ २६ ॥
विद्याग्रामणिनो यक्षाः कुर्वन्त्याभीपुसंग्रहम्। सर्पाः सर्पन्ति वै सूर्ये यातुधानानुयान्ति च ॥ २७ ॥
वालखिल्या नयन्त्यस्तं परिवार्योदयाद् रविम्। एतेषामेव देवानां यथावीर्यं यथातपः ॥ २८ ॥
यथायोगं यथाधर्मं यथातत्त्वं यथाबलम्। तपत्यसौ यथा सूर्यस्तेषां सिद्धिस्तु तेजसा ॥ २९ ॥
भूतानामशुभं सर्वं व्यपोहति स्वतेजसा। मानवानां शुभैर्ह्येतैर्ह्रियते दुरितं तु वै ॥ ३० ॥
दुरितं हि प्रचाराणां व्यपोहन्ति क्वचित् क्वचित्। एते सहैव सूर्येण भ्रमन्ति सानुगा दिवि ॥ ३१ ॥
तपन्तश्च जपन्तश्च ह्लादयन्तश्च वै प्रजाः। गोपायन्ति स्म भूतानि ईहन्ते ह्यनुकम्पया ॥ ३२ ॥
स्थानाभिमानिनां ह्येतत्स्थानं मन्वन्तरेषु वै। अतीतानां गतानां च वर्तन्ते साम्प्रतं च ये ॥ ३३ ॥
एवं वसन्ति वै सूर्ये सप्तकास्ते चतुर्दश। चतुर्दशेषु वर्तन्ते गणा मन्वन्तरेषु वै ॥ ३४ ॥

ग्रीष्मे हिमे च वर्षासु मुञ्चमानो घर्मं हिमं च वर्षं च दिनं निशां च।
गच्छत्यसावनुदिनं परिवृत्य रश्मीन् देवान् पितॄंश्च मनुजांश्च सुतर्पयन् वै॥ ३५॥
शुक्ले तु पूर्णं तदहःक्रमेण तं कृष्णपक्षे विबुधाः पिबन्ति।
पीतं तु सोमं द्विकलावशिष्टं सुवृष्टये रश्मिषु रक्षितं तु॥ ३६॥
स्वधामृतं तत्पितरः पिबन्ति देवाश्च सौम्याश्च तथैव कव्यम्।
सूर्येण गोभिर्हि विवर्धिताभिरद्भिः पुनश्चैव समुच्छ्रिताभिः॥ ३७॥
वृष्ट्याभिवृष्टाभिरथौषधीभिर्मर्त्या अथान्नेन क्षुधं जयन्ति।
तृप्तिश्चाप्यमृतेनार्धमासं सुराणां मासं स्वाहाभिः स्वधया पितॄणाम्॥ ३८॥
अन्नेन जीवन्त्यनिशं मनुष्याः सूर्यः श्रितं तद्धि बिभर्ति गोभिः।

ये बारह सप्तक ( देव, ऋषि, नाग, गन्धर्व, अप्सरा, ग्रामणी और राक्षस ) गण अपने-अपने स्थानके अभिमानी देवता हैं। ये अपने तेजसे सूर्यके तेजको उत्कृष्ट कर देते हैं। वहाँ ऋषिगण स्वरचित वचनों—स्तोत्रोंद्वारा सूर्यका स्तवन करते हैं तथा गन्धर्व और अप्सराएँ नाच-गानके द्वारा सूर्यकी उपासना करती हैं। सूत-विद्यामें निपुण यक्षगण ( सूर्यके रथके अश्वोंकी ) बागडोर सँभालते हैं। सर्प-सूर्यमण्डलमें इधर-उधर दौड़ते तथा राक्षसगण सूर्यका अनुगमन करते हैं। बालखिल्य नामक ऋषि उदयकालसे ही सूर्यको घेरकर अस्ताचलको ले जाते हैं। इन देवताओंका जैसा पराक्रम, तपोबल, योगबल, धर्म, तत्त्व और शारीरिक बल होता है, उसीके अनुसार उनके तेजसे समृद्ध हुए सूर्य तपते हैं। वे अपने तेजसे प्राणियोंके सभी अमङ्गलको दूर कर देते हैं तथा इन्हीं मङ्गलमय उपादानोंद्वारा मनुष्योंके पापका अपहरण करते हैं। ये सहायकगण अपनी ओर अभिमुख होनेवालोंके पापको नष्ट कर देते हैं और अपने अनुचरों-सहित आकाशमण्डलमें सूर्यके साथ ही भ्रमण करते हैं। ये जप-तप करके सभी प्रजाओंको प्रसन्न रखते हुए उनकी रक्षा करते हैं और दयावश सभी प्राणियोंकी शुभ-कामना करते हैं। भूत, भविष्य और वर्तमान कालके इन स्थानाभिमानियोंका यह स्थान प्रत्येक मन्वन्तरमें वर्तमान रहता है। इस प्रकार दो-दोके हिसाबसे उन सातों गणोंके चौदह देवता सूर्यके रथपर निवास करते हैं और चौदहों मन्वन्तरोंतक वर्तमान रहते हैं। इस प्रकार सूर्य ग्रीष्म, हेमन्त और वर्षा ऋतुओंमें क्रमशः अपनी किरणोंको परिवर्तित कर धूप, हिम और जलकी वर्षा करके देवताओं, पितरों और मानवोंको भलीभाँति तृप्त करते हुए प्रतिदिन रात-दिन चलते रहते हैं। जो शुद्ध अमृत उत्तम वृष्टिके लिये सूर्यकी किरणोंमें सुरक्षित रहता है, उसे देवगण प्रत्येक मासमें चन्द्रमामें प्रविष्ट होनेपर शुक्ल एवं कृष्णपक्षमें दिनके क्रमसे काल-क्षयके अनुसार पीते हैं। सभी देवगण तथा पितर कव्यस्वरूप उस अमृत चन्द्रमाका पान करते हैं। मानवगण सूर्यकी किरणोंद्वारा पोषित, जलद्वारा परिवर्धित और वृष्टिद्वारा सिंचित ओषधियों और अन्नसे अपनी क्षुधा शान्त करते हैं। उस स्वाहारूप अमृतसे देवताओंकी तृप्ति पंद्रह दिनतक तथा उस स्वधारूप अमृतसे पितरोंकी तृप्ति एक महीनेतक होती है। मनुष्य अन्नरूप अमृतसे सर्वदा जीवन धारण करते हैं। वह अमृत सूर्यकी किरणोंमें स्थित है, अतः सूर्य अपनी किरणोंद्वारा सबका पालन करते हैं॥ २५—३८॥

इत्येष एकचक्रेण सूर्यस्तूर्णं प्रसर्पति। तत्र तैरक्रमैरश्वैः सर्पतेऽसौ दिनक्षये॥ ३९॥
हरिर्हरिद्भिर्ह्रियते तुरंगमैः पिबत्यथाऽपो हरिभिः सहस्रधा।
ततः प्रमुञ्चत्यथ ताश्च यो हरिः संमुह्यमानो हरिभिस्तुरंगमैः॥ ४०॥

अहोरात्रं रथेनासावेकचक्रेण वै भ्रमन्। सप्तद्वीपसमुद्रांश्च सप्तभिः सप्तभिर्द्रुतम् ॥ ४१ ॥
छन्दोरूपैश्च तैरश्वैर्यतश्चक्रं ततः स्थितिः। कामरूपः सकृद्युक्तैः कामगैस्तैर्मनोजवैः ॥ ४२ ॥
हरितैरव्ययैः पिङ्गैरीश्वरैर्ब्रह्मवादिभिः। वाह्यतोऽनन्तरं चैव मण्डलं दिवसः क्रमात् ॥ ४३ ॥
कल्पादौ सम्प्रयुक्ताश्च वहन्त्याभूतसम्प्लवम्। आवृतो वालखिल्यैश्च भ्रमते राज्यहानि तु ॥ ४४ ॥
ग्रथितैः स्ववचोभिश्च स्तूयमानो महर्षिभिः। सेव्यते गीतनृत्यैश्च गन्धर्वाप्सरसां गणैः ॥ ४५ ॥
पतंगः पतगैरश्वैर्भ्राम्यमाणो दिवस्पतिः। वीथ्याश्रयाणि चरति नक्षत्राणि तथा शशी ॥ ४६ ॥
ह्रासवृद्धी तथैवास्य रश्मयः सूर्यवत् स्मृताः। त्रिचक्रोभयतोऽश्वश्च विज्ञेयः शशिनो रथः ॥ ४७ ॥
अपां गर्भसमुत्पन्नो रथः साश्वः ससारथिः। सहारैस्तैस्त्रिभिश्चक्रैर्युक्तः शुक्लैर्हयोत्तमैः ॥ ४८ ॥
दशभिस्तुरगैर्दिव्यैरसङ्गैस्तन्मनोजवैः। सकृद्युक्ते रथे तस्मिन् वहन्तस्त्वायुगक्षयम् ॥ ४९ ॥
संगृहीता रथे तस्मिञ्छ्वेतश्चक्षुःश्रवाश्च वै। अश्वास्तमेकवर्णास्ते वहन्ते शङ्खवर्चसः ॥ ५० ॥
अजश्च त्रिपथश्चैव वृषो वजी नरो हयः। अंशुमान् सप्तधातुश्च हंसो व्योममृगस्तथा ॥ ५१ ॥
इत्येते नामभिश्चैव दश चन्द्रमसो हयाः। एवं चन्द्रमसं देवं वहन्ति स्मायुगक्षयम् ॥ ५२ ॥
देवैः परिवृतः सोमः पितृभिः सह गच्छति।

इस प्रकार सूर्य अपने एक पहियेवाले रथसे शीघ्रता-पूर्वक गमन करते हैं। दिनके व्यतीत हो जानेपर भी वे उन सात अश्वोंद्वारा चलते ही रहते हैं। हरे रंगवाले घोड़े सूर्यको वहन करते हैं। सूर्य अपनी किरणोंद्वारा हजारों प्रकारसे जल खींचते हैं। पुनः हरे रंगवाले घोड़ोंद्वारा वहन किये जाते हुए वे ही सूर्य उस जलको बरसाते हैं। इस तरह सूर्य अपने एक पहियेवाले रथसे दिनके क्रमानुसार मण्डलके बाहर और भीतर होते हुए सात-सातके क्रमसे सातों समुद्रोंमें दिन-रात वेगपूर्वक घूमते रहते हैं। जहाँ वह चक्र पहुँचता है, वहीं उनकी स्थिति मानी जाती है। उनके रथके अश्व ( श्यामकर्ण समुद्रसे उत्पन्न ) छन्दःस्वरूप, स्वेच्छानुसार रूप धारण करनेवाले, एक ही बार जुते हुए, इच्छानुरूप गमन करनेवाले और मनके समान शीघ्रगामी हैं। उनके शरीरका रंग हरा और पीला है। उन्हें थकावट नहीं होती। वे शक्तिशाली और ब्रह्मवादी हैं। वे कल्पके आरम्भमें रथमें जोते जाते हैं और प्रलयपर्यन्त उस रथको वहन करते है। इस प्रकार बालखिल्य ऋषियोंद्वारा समावृत सूर्य रात-दिन भ्रमण करते रहते हैं। उस समय महर्षिगण स्वरचित वचनोंद्वारा सूर्यकी स्तुति करते है। गन्धर्वों और अप्सराओंका समुदाय नाच-गानद्वारा सूर्यकी सेवा करता है। दिनके स्वामी सूर्य पक्षियोंके समान वेगशाली अश्वोंद्वारा सदा भ्रमण कराये जाते हुए नक्षत्रसम्बन्धिनी वीथियोंका आश्रय लेकर भ्रमण करते हैं। इसी प्रकार चन्द्रमा भी चक्कर लगाते हैं। इनकी भी ह्रास-वृद्धि और किरणें सूर्यके समान ही बतलायी गयी हैं। चन्द्रमाका रथ तीन पहियेका है और उसमें दोनों ओर घोड़े जुते रहते हैं। घोड़े और सारथि, हारसे सुशोभित और तीन पहियोंसे युक्त रथके साथ चन्द्रदेव ( समुद्र मन्थनके समय ) जलके मध्यसे प्रकट हुए थे। उसमें श्वेत रंगवाले तथा दस उत्तम घोड़े जुते हुए थे। वे अश्व दिव्य, अनुपम और मनके समान वेगशाली हैं। वे एक बार उस रथमें जोत दिये जानेपर युगप्रलयपर्यन्त उस रथको वहन करते है। उस रथमें जुते हुए जो ( श्वेतकर्णनामक ) घोड़े चन्द्रमाको वहन करते हैं, उनके नेत्र और कान श्वेत रंगके हैं। वे सभी शङ्खके समान उज्ज्वल एक ही रंगके है। चन्द्रमाके उन दस अश्वोंका नाम अज, त्रिपथ, वृष, वाजी, नर, हय, अंशुमान्, सप्तधातु, हंस और व्योममृग है। इस प्रकार वे अश्व युगप्रलय-पर्यन्त चन्द्रदेवको वहन करते हैं। चन्द्रमा पितरोंसहित देवताओंद्वारा घिरे हुए गमन करते हैं ॥ ३९–५२½ ॥

सोमस्य शुक्लपक्षादौ भास्करे परतः स्थिते ॥ ५३ ॥
आपूर्यते परो भागः सोमस्य तु अहःक्रमात्। ततः पीतक्षयं सोमं युगपद्व्यापयन् रविः ॥ ५४ ॥

पीतं पञ्चदशाहं च रश्मिनैकेन भास्करः। आपूरयन् ददौ तेन भागं भागमहःक्रमात् ॥ ५५ ॥
सुषुम्नाप्यायमानस्य शुक्ले वर्धन्ति वै कलाः। तस्माद्ध्रसन्ति वै कृष्णे शुक्ले ह्याप्याययन्ति च ॥ ५६ ॥
इत्येवं सूर्यवीर्येण चन्द्रस्याप्यायते तनुः। पौर्णमास्यां प्रदृश्येत शुक्लः सम्पूर्णमण्डलः ॥ ५७ ॥
एवमाप्यायते सोमः शुक्लपक्षेष्वहःक्रमात्। ततो द्वितीयाप्रभृति बहुलस्य चतुर्दशी ॥ ५८ ॥
अपां सारमयस्येन्दो रसमात्रात्मकस्य च। पिबन्त्यम्बुमयं देवा मधु सौम्यं तथामृतम् ॥ ५९ ॥
सम्भृतं त्वर्धमासेन ह्यमृतं सूर्यतेजसा। भक्षार्थमागताः सोमं पौर्णमास्यामुपासते ॥ ६० ॥
एकरात्रं सुराः सार्धं पितृभिर्ऋषिभिश्च वै। सोमस्य कृष्णपक्षादौ भास्कराभिमुखस्य वै ॥ ६१ ॥
प्रक्षीयते परो ह्यात्मा पीयमानकलाक्रमात्। त्रयश्च त्रिंशता सार्धं त्रीणि चैव शतानि तु ॥ ६२ ॥
त्रयस्त्रिंशत् सहस्राणि देवाः सोमं पिबन्ति वै। इत्येवं पीयमानस्य कृष्णा वर्धन्ति ताः कलाः ॥ ६३ ॥
क्षीयन्ते च ततः शुक्लाः कृष्णा ह्याप्याययन्ति च।

शुक्लपक्षके प्रारम्भमें सूर्यके परभागमें स्थित होनेपर चन्द्रमाका परभाग दिनके क्रमसे पूर्ण होता है। उस समय ( देवताओंद्वारा अमृत ) पी लेनेसे क्षीण हुए चन्द्रमाको सूर्य एक ही बारमें पूर्ण कर देते है। इस प्रकार पंद्रह दिनोतक देवताओंद्वारा चूसे गये चन्द्रमाके एक-एक भागको सूर्य अपनी एक ही किरणद्वारा दिनके क्रमसे परिपूर्ण करते रहते है । सूर्यकी सुषुम्ना नामक किरणद्वारा परिवर्धित चन्द्रमाकी कलाएँ शुक्लपक्षमें वृद्धिको प्राप्त होती हैं तथा कृष्णपक्षमें क्षीण हो जाती है। पुनः शुक्लपक्षमें वे बढती जाती हैं। इस प्रकार सूर्यके पराक्रमसे चन्द्रमाका शरीर वृद्धिगत होता है और धीरे-धीरे पूर्णिमा तिथिको पूर्ण होकर सम्पूर्ण मण्डल श्वेत वर्णका दिखायी पडता है। इस प्रकार शुक्लपक्षमें दिनके क्रमसे चन्द्रमा वृद्धिको प्राप्त होते है। तदनन्तर जलके सारभूत एवं रसमात्रात्मक चन्द्रमाके मधु-सदृश जलमय अमृतको देवगण कृष्णपक्षकी द्वितीयासे लेकर चतुर्दशी तिथितक पान करते हैं। पंद्रह दिनोंतक सूर्यके तेजसे सञ्चित किये हुए अमृतको खानेके लिये पूर्णिमा तिथिको चन्द्रमाके निकट आये हुए देवगण पितरों और ऋषियोंके साथ एक राततक चन्द्रमाकी उपासना करते हैं। कृष्णपक्षके प्रारम्भमें सूर्यके सम्मुख उपस्थित चन्द्रमाका मन पान की जाती हुई कलाओंके क्रमसे अत्यन्त क्षीण हो जाता है। उस समय तैंतीस हजार तीन सौ तैंतीस देवता चन्द्रमाकी अमृतकलाको पीते* हैं। इस प्रकार पान किये जाते हुए चन्द्रमाकी वे कृष्णपक्षीय कलाएँ ( शुक्लपक्षमें ) बढ़ती हैं और शुक्लपक्षीय कलाएँ ( कृष्णपक्षमें ) घटती हैं। पुनः कृष्णपक्षीय कलाएँ बढ़ती हैं। ( यही शुक्लपक्ष और कृष्णपक्षमें बढने-घटनेका क्रम है। ) ॥ ५२-६३½ ॥

एवं दिनक्रमात् पीते देवैश्चापि निशाकरे ॥ ६४ ॥
पीत्वार्धमासं गच्छन्ति अमावास्यां सुराश्च ते। पितरश्चोपतिष्ठन्ति ह्यमावास्यां निशाकरम् ॥ ६५ ॥
ततः पञ्चदशे भागे किंचिच्छेषे निशाकरे। ततोऽपराह्णे पितरो यदन्यदिवसे पुनः ॥ ६६ ॥
पिबन्ति द्विकलं कालं शिष्टास्तस्य तु याः कलाः। विनिःसृष्टं त्वमावास्यां गभस्तिभ्यः स्वधामृतम् ॥ ६७ ॥
अर्धमाससमाप्तौ तु पीत्वा गच्छन्ति तेऽमृतम्। सौम्या बर्हिषदश्चैव अग्निष्वात्ताश्च ये स्मृताः ॥ ६८ ॥
काव्याश्चैव तु ये प्रोक्ताः पितरः सर्व एव ते। संवत्सरास्तु वै काव्याः पञ्चाब्दा ये द्विजैः स्मृताः॥ ६९ ॥
सौम्यास्तुऋतवो ज्ञेयाः मासा बर्हिषदस्तथा। अग्निष्वात्तास्तथा पक्षः पितृसर्गस्थिता द्विजाः ॥ ७० ॥

* देवताओंद्वारा चन्द्रकला-पानका वर्णन—कालिदासादिके रघुवंश ( ५ । १६ ) के—'पर्यायपीतस्य सुरैर्हिमांशोः' आदिमें बड़े सरस ढगसे किया गया है। हेमाद्रि आदि व्याख्याताओंने इसकी—'प्रथमा पिबते वह्निर्द्वितीयां पिबते रविः' आदिसे व्याख्या भी सुन्दरकी है। पर वस्तुतः कालिदास तथा 'भर्तृ०'के 'क्षयशेषश्चन्द्रः' आदिका मूलाधार मत्स्य पुराणका यह प्रकरण ही दीखता है।

※

पितृभिः पीयमानायां पञ्चदश्यां तु वै कलाम्। यावच्च क्षीयते तस्माद् भागः पञ्चदशस्तु सः ॥ ७१ ॥
अमावास्यां तथा तस्य अन्तरा पूर्यते परः।
वृद्धिक्षयौ वै पक्षादौ षोडश्यां शशिनः स्मृतौ। एवं सूर्यनिमित्ते ते क्षयवृद्धी निशाकरे ॥ ७२ ॥

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे भुवनकोशे सूर्यादिगमनं नाम षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२६ ॥*

इस प्रकार दिनके क्रमसे देवगण पंद्रह दिनतक चन्द्रमाके अमृतका पान करते हैं और अमावास्या तिथिको वे वहाँसे चले जाते हैं। तब पितृगण अमावास्या तिथिमें चन्द्रमाके पास आते हैं। तदनन्तर चन्द्रमाके पंद्रहवें भागके कुछ शेष रहनेपर वे पितर दूसरे दिन अपराह्णके समय उन सभी अवशिष्ट कलाओंको केवल दो कला समयतक ही पान करते हैं। अमावास्यातक पंद्रह दिन पर्यन्त चन्द्रमाकी किरणोंसे निकलते हुए स्वधारूपी अमृतका पानकर पितृगण अमर हो जाते हैं। वे सभी पितर सौम्य, बर्हिषद्, अग्निष्वात्त और काव्य नामसे कहे गये हैं। पाँच वर्षके कार्यकालवाले जो पितर हैं, जिन्हें द्विजगण काव्य कहते हैं, वर्ष हैं। सौम्य नामक पितरोंको पक्ष ऋतु जानना चाहिये। दो बर्हिषद् और अग्निष्वात्तको मास—ये तीनों पितृलोकमें निवास करनेवाले द्विज हैं। पूर्णिमा तिथिको पितरोंद्वारा पान की जाती हुई कलाका जितना अंश क्षीण होता है, वह पंद्रहवाँ भाग है। अमावास्याके बाद चन्द्रमाका रिक्त भाग पूर्ण होता है। चन्द्रमाकी वृद्धि और क्षय दोनों पक्षोंके प्रारम्भमें ही माना गया है, उसे सोलहवीं कला कहते हैं। इस प्रकार चन्द्रमाकी क्षय-वृद्धि सूर्यके निमित्तसे ही होती है ॥ ६४—७२ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके भुवनकोश-वर्णन-प्रसङ्गमे सूर्यादिगमन नामक एक सौ छब्बीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १२६ ॥

# एक सौ सत्ताईसवाँ अध्याय

## ग्रहोंके रथका वर्णन और ध्रुवकी प्रशंसा

सूत उवाच

ताराग्रहाणां वक्ष्यामि स्वर्भानोस्तु रथं पुनः। अथ तेजोमयः शुभ्रः सोमपुत्रस्य वै रथः ॥ १ ॥
युक्तो हयैः पिशङ्गैस्तु दशभिर्वातरंहसैः। श्वेतः पिशङ्गः सारङ्गो नीलः पीतो विलोहितः ॥ २ ॥
कृष्णश्च हरितश्चैव पृषतः पृष्णिरेव च। दशभिस्तु महाभागैरुत्तमैर्वातसम्भवैः ॥ ३ ॥
ततो भौमरथश्चापि ह्यष्टाङ्गः काञ्चनः स्मृतः।
अष्टभिर्लोहितैरश्वैः सध्वजैरग्निसम्भवैः। सर्पतेऽसौ कुमारो वै ऋजुवक्रानुवक्रगः ॥ ४ ॥
अतश्चाङ्गिरसो विद्वान् देवाचार्यो बृहस्पतिः। शोणैरश्वैश्च रौक्मेण स्यन्दनेन विसर्पति ॥ ५ ॥
युक्तेनावाजिभिर्दिव्यैरष्टाभिर्वातरंहसैः। अब्दं वसति यो राशौ सवर्णस्तेन गच्छति ॥ ६ ॥
युक्तेनाष्टाभिरश्वैश्च सध्वजैरग्निसंनिभैः। रथेन क्षिप्रवेगेन भार्गवस्तेन गच्छति ॥ ७ ॥
ततः शनैश्चरोऽप्यश्वैः सबलैर्वातरंहसैः। कार्ष्णायसं समारुह्य स्यन्दनं यात्यसौ शनिः ॥ ८ ॥
स्वर्भानोस्तु यथाष्टाश्वाः कृष्णा वै वातरंहसः। रथं तमोमयं तस्य वहन्ति स सुदंशिताः ॥ ९ ॥
आदित्यनिलयो राहुः सोमं गच्छति पर्वसु। आदित्यमेति सोमाच्च तमसोऽन्तेषु पर्वसु ॥ १० ॥
ततः केतुमतस्त्वश्वा अष्टौ ते वातरंहसः। पलालधूमवर्णाभाः क्षामदेहाः सुदारुणाः ॥ ११ ॥
एते वाहा ग्रहाणां वै मया प्रोक्ता रथैः सह। सर्वे ध्रुवे निबद्धास्ते निबद्धा वातरश्मिभिः ॥ १२ ॥

**सूतजी कहते हैं**—ऋषियो ! अब मैं ( ग्रहकक्षानुसार बुधादि ) ग्रहों, नक्षत्रों और राहुके रथका वर्णन कर रहा हूँ। सोमपुत्र बुधका रथ उज्ज्वल एवं तेजोमय है। उसमें वायुके समान वेगशाली पीले रंगके दस घोड़े जोते जाते हैं। उनके नाम हैं—श्वेत, पिशंग, सारंग, नील, पीत, विलोहित, कृष्ण, हरित, पृषत और पृष्णि। इन्हीं महान् भाग्यशाली, अनुपम एवं वायुसे उत्पन्न दस घोड़ोंसे वह रथ युक्त है। इसके बाद मंगलका रथ सुवर्णनिर्मित बतलाया जाता है। वह रथके सम्पूर्ण आठों अङ्गोंसे संयुक्त है तथा लाल रंगवाले आठ घोड़ोंसे युक्त है। उसपर अग्निसे प्रकट हुआ ध्वज फहराता रहता है। उसपर सवार होकर किशोरावस्थाके मङ्गल कभी सीधी एवं कभी वक्र गतिसे विचरण करते हैं। अङ्गिराके पुत्र देवाचार्य विद्वान् बृहस्पति पीले रंगके तथा वायुके-से वेगशाली आठ दिव्य अश्वोंसे जुते हुए सुवर्णमय रथपर चलते हैं। वे एक राशिपर एक वर्षतक रहते हैं, इसलिये इस रथके द्वारा स्वाधिष्ठित राशिकी दिशाकी ओर ( दोनो गतियों )से अपने वर्ग सहित जाते हैं। शुक्र भी अपने वेगशाली रथपर आरूढ़ होकर भ्रमण करते हैं। उनके रथमें अग्निके समान रंगवाले आठ घोड़े जुते रहते हैं और वह ध्वजाओंसे सुशोभित रहता है। शनैश्चर अपने लोहनिर्मित रथपर सवार होकर चलते हैं। उसमें वायुतुल्य वेगशाली एवं बलवान् घोडे जुते रहते हैं। राहुका रथ तमोमय है। उसे कवच आदिसे सुसज्जित वायुके समान वेगवाले काले रंगके आठ घोड़े खींचते हैं। सूर्यके भवनमें निवास करनेवाला यह राहु पूर्णिमा आदि पर्वोंमें चन्द्रमाके पास चला जाता है और अमावास्या आदि पर्वोंमें चन्द्रमाके पाससे सूर्यके निकट लौट आता है। इसी प्रकार केतुके रथमें भी वायुके समान शीघ्रगामी आठ घोड़े जोते जाते हैं। उनके शरीरकी कान्ति पुआलके धुएँके सदृश है। वे दुबले-पतले शरीरवाले और बड़े भयंकर हैं। ये सभी वायुरूपी रस्सीसे ध्रुवके साथ सम्बद्ध हैं। इस प्रकार मैंने ग्रहोंके रथोंके साथ-साथ घोड़ोंका वर्णन कर दिया ॥ १-१२ ॥

एते वै भ्राम्यमाणास्ते यथायोगं वहन्ति वै। वायव्याभिरदृश्याभिः प्रबद्धा वातरश्मिभिः ॥ १३ ॥
परिभ्रमन्ति तद्बद्धाश्चन्द्रसूर्यग्रहा दिवि। यावत्तमनुपर्येति ध्रुवं वै ज्योतिषां गणः ॥ १४ ॥
यथा नद्युदके नौस्तु उदकेन सहोह्यते।
तथा देवगृहाणि स्युरुह्यन्ते वातरंहसा। तस्माद्यानि प्रगृह्यन्ते व्योम्नि देवगृहा इति ॥ १५ ॥
यावन्त्यश्चैव ताराः स्युस्तावन्तोऽस्य मरीचयः। सर्वा ध्रुवनिबद्धास्ता भ्रमन्त्यो भ्रामयन्ति च ॥ १६ ॥
तैलपीडाकरं चक्रं भ्रमद् भ्रामयते यथा। तथा भ्रमन्ति ज्योतींषि वातबद्धानि सर्वशः ॥ १७ ॥
अलातचक्रवद् यान्ति वातचक्रेरितानि तु। यस्मात् प्रवहते तानि प्रवहस्तेन स स्मृतः ॥ १८ ॥
एवं ध्रुवे नियुक्तोऽसौ भ्रमते ज्योतिषां गणः। एष तारामयः प्रोक्तः शिशुमारे ध्रुवो दिवि ॥ १९ ॥
यदह्ना कुरुते पापं तं दृष्ट्वा निशि मुञ्चति।

वायुरूपी अदृश्य रस्सियोंद्वारा बँधे हुए ये सभी अश्व भ्रमण करते हुए नियमानुसार उन रथोंको खींचते हैं। जिस प्रकार ध्रुवसे बँधे हुए सूर्य, चन्द्र आदि ग्रह गगनमण्डलमें परिभ्रमण करते हैं, उसी प्रकार सम्पूर्ण ज्योतिर्गण ध्रुवके पीछे-पीछे घूमता है। जिस प्रकार नदीके जलमें पड़ी हुई नौका जलके साथ बहती जाती है, उसी तरह देवताओंके गृह भी वायुके वेगसे वहन किये जाते हैं, इसीलिये वे आकाशमण्डलमें देव-गृह नामसे पुकारे जाते हैं। आकाशमण्डलमें जितनी तारकाएँ हैं, उतनी ही

ध्रुवकी किरणें भी हैं। वे सभी तारकाएँ ध्रुवसे संलग्न हैं, इसलिये स्वयं घूमती हुई किरणें उन्हें भी घुमाती हैं। जैसे तेल पेरनेवाला चक्र ( कोल्हू ) स्वयं घूमता है और अपनेसे लगी हुई सभी वस्तुओंको घुमाता है, वैसे ही वायुरूपी रस्सीसे बँधी हुई ज्योतियाँ सब ओर भ्रमण करती हैं। वातचक्रसे प्रेरित होकर घूमती हुई वे ज्योतियाँ अलातचक्र ( जलती हुई बनेठी ) की भाँति प्रतीत होती हैं। चूँकि वायु उन ज्योतियोंको वहन करता है, इसलिये वह 'प्रवह' नामसे प्रसिद्ध है। इस प्रकार ध्रुवसे बँधा हुआ यह ज्योतिश्चक्र भ्रमण करता है। इसी कारण गगनमण्डलमें स्थित शिशुमारचक्रमें ये ध्रुव तारामय अर्थात् ताराओंसे युक्त कहे जाते हैं। दिनमें जो पाप किया जाता है, वह रात्रिमें उस चक्रको देखनेसे नष्ट हो जाता है ॥ १३—१९½ ॥

**शिशुमारशरीरस्था यावत्यस्तारकास्तु ताः ॥ २० ॥**
**वर्षाणि दृष्ट्वा जीवेत तावदेवाधिकानि तु। शिशुमाराकृतिं ज्ञात्वा प्रविभागेन सर्वशः ॥ २१ ॥**
**उत्तानपादस्तस्याथ विज्ञेयः सोत्तरा हनुः। यज्ञोऽधरस्तु विज्ञेयो धर्मो मूर्धानमाश्रितः ॥ २२ ॥**
**हृदि नारायणः साध्या अश्विनौ पूर्वपादयोः। वरुणश्चार्यमा चैव पश्चिमे तस्य सक्थिनी ॥ २३ ॥**
**शिश्ने संवत्सरो ज्ञेयो मित्रश्चापानमाश्रितः। पुच्छेऽग्निश्च महेन्द्रश्च मरीचिः कश्यपो ध्रुवः॥ २४ ॥**
**एष तारामयः स्तम्भो नास्तमेति न चोदयम्। नक्षत्रचन्द्रसूर्याश्च ग्रहास्तारागणैः सह ॥ २५ ॥**
**तन्मुखाभिमुखाः सर्वे चक्रभूता दिवि स्थिताः। ध्रुवेणाधिष्ठिताश्चैव ध्रुवमेव प्रदक्षिणम् ॥ २६ ॥**
**परियान्ति सुरश्रेष्ठं मेढीभूतं ध्रुवं दिवि। आग्नीध्रकाश्यपानां तु तेषां स परमो ध्रुवः ॥ २७ ॥**
**एक एव भ्रमत्येष मेरोरन्तरमूर्धनि। ज्योतिषां चक्रमादाय आकर्षंस्तमधोमुखः ॥ २८ ॥**
**मेरुमालोकयन्नेव प्रतियाति प्रदक्षिणम् ॥ २९ ॥**

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे भुवनकोशे ध्रुवप्रशंसा नाम सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२७ ॥*

शिशुमारचक्रके शरीरमें जितनी तारकाएँ स्थित हैं, उनका दर्शन कर तथा सर्वथा शिशुमारकी आकृतिको जानकर मनुष्य उतने ही अधिक वर्षोंतक जीवित रह सकता है। उत्तानपादको उस शिशुमारचक्रका ऊपरी जबड़ा तथा यज्ञको निचला जबड़ा समझना चाहिये। धर्म उसके मस्तकपर स्थित हैं। हृदयमें नारायण और साध्यगणोंको तथा अगले पैरोंमें अश्विनीकुमारोंको जानना चाहिये। वरुण और अर्यमा उसकी पिछली जाँघें हैं। शिश्न ( जननेन्द्रिय )के स्थानपर संवत्सरको समझिये और गुदास्थानपर मित्र स्थित हैं। उसकी पूँछमें अग्नि, महेन्द्र, मरीचि, कश्यप और ध्रुव स्थित हैं। ताराओंद्वारा निर्मित यह स्तम्भ नक्षत्र, चन्द्रमा, सूर्य, ग्रह और तारागणोंके साथ न अस्त होता है न उदय, अपितु ये सभी आकाशमें चक्रकी तरह उसके मुखकी ओर देखते हुए स्थित हैं। ये ध्रुवसे अधिकृत होकर आकाशस्थित मेढ़ीभूत सुरश्रेष्ठ ध्रुवकी ही प्रदक्षिणा करते हैं। उन आग्नीध्र तथा कश्यपके वंशमें ध्रुव ही सर्वश्रेष्ठ हैं। ये ध्रुव अकेले ही मेरुके अन्तर्वर्ती शिखरपर ज्योतिश्चक्रको साथ लेकर उसे खींचते हुए भ्रमण करते हैं। उस समय उनका मुख नीचेकी ओर रहता है। इस प्रकार वे मेरुको प्रकाशित करते हुए उसकी प्रदक्षिणा करते हैं ॥ २०—२९ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके भुवनकोश-वर्णन-प्रसंगमें ध्रुव-प्रशंसा नामक एक सौ सत्ताईसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १२७ ॥

# एक सौ अट्ठाईसवाँ अध्याय

## देव-गृहों तथा सूर्य-चन्द्रमाकी गतिका वर्णन

ऋषय ऊचुः

**यदेतद् भवता प्रोक्तं श्रुतं सर्वमशेषतः। कथं देवगृहाणि स्युः कथं ज्योतींषि वर्णय ॥ १ ॥**

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! आपने जो यह सारा विषय पूर्णरूपसे वर्णन किया है, उसे तो हमलोगोंने सुना, परंतु देव-गृह कैसे होते हैं? (यह जाननेकी विशेष उत्कण्ठा हो रही है।) अतः आप पुनः (पूर्वकथित) ज्योतिश्चक्रका कुछ और विस्तारसे वर्णन कीजिये ॥ १ ॥

सूत उवाच

**एतत् सर्वं प्रवक्ष्यामि सूर्याचन्द्रमसोर्गतिम्। यथा देवगृहाणि स्युः सूर्याचन्द्रमसोस्तथा ॥ २ ॥**
**अग्नेर्व्युष्टौ रजन्यां वै ब्रह्मणाव्यक्तयोनिना। अव्याकृतमिदं त्वासीन्नैशेन तमसाऽऽवृतम् ॥ ३ ॥**
**चतुर्भूतावशिष्टेऽस्मिन् ब्रह्मणा समधिष्ठिते। स्वयम्भूर्भगवांस्तत्र लोकतत्त्वार्थसाधकः ॥ ४ ॥**
**खद्योतरूपी विचरन्नाविर्भावं व्यचिन्तयत्। ज्ञात्वाग्निं कल्पकालादावपः पृथ्वीं च संश्रिताः ॥ ५ ॥**
**स सम्भृत्य प्रकाशार्थं त्रिधा तुल्योऽभवत् पुनः। पाचको यस्तु लोकेऽस्मिन् पार्थिवः सोऽग्निरुच्यते॥ ६ ॥**
**यश्चासौ तपते सूर्ये शुचिरग्निश्च स स्मृतः। वैद्युतो जाठरः सौम्यो वैद्युतश्चाप्यनिन्धनः ॥ ७ ॥**
**तेजोभिश्चाप्यते कश्चित् कश्चिदेवाप्यनिन्धनः। काष्ठेन्धनस्तु निर्मथ्यः सोऽद्भिः शाम्यति पावकः॥ ८ ॥**
**अर्चिष्मयान् पचनोऽग्निस्तु निष्प्रभः सौम्यलक्षणः। यश्चासौ मण्डले शुक्ले निरूष्मा न प्रकाशते ॥ ९ ॥**
**प्रभा सौरी तु पादेन अस्तं याति दिवाकरे। अग्निमाविशते रात्रौ तस्मादग्निः प्रकाशते ॥ १० ॥**

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! अब मैं जिस प्रकार देव-गृह एवं सूर्य, चन्द्रमा और अग्निके गृह होते हैं तथा जैसी सूर्य और चन्द्रमाकी गति होती है, वह सब बतला रहा हूँ। (ब्रह्माकी) रात्रि व्यतीत होनेपर प्रातःकाल अव्यक्तयोनि ब्रह्माने देखा कि जगत्‌की कोई वस्तु दीख नहीं रही है। सारा जगत् रात्रिके अन्धकारसे आच्छन्न है। (कहीं प्रकाशका चिह्नमात्र भी अवशेष नहीं है।) ब्रह्माद्वारा अधिष्ठित इस जगत्‌में केवल चार पदार्थ अवशिष्ट थे, तब लोकोंके तत्त्वार्थको सिद्ध करनेवाले स्वयम्भू भगवान् ब्रह्मा खद्योत (जुगनू)-के रूपमें विचरण करते हुए प्रकाशको आविर्भूत करनेके लिये विचार करने लगे। (उस समय उन्हें स्मरण हुआ कि) कल्पकालके आदिमें अग्नि-तत्त्व जल और पृथ्वीमें सम्मिलित हो गया था। यह जानकर उन्होंने तीनोंको एकत्र कर प्रकाश करनेके लिये तीन भागोंमें विभक्त कर दिया। इस प्रकार इस लोकमें जो पाचक नामक अग्नि है, उसे पार्थिव अग्नि कहते हैं। जो अग्नि सूर्यमें स्थित होकर ताप पैदा करती है, वह शुचि अग्नि कहलाती है। उदरमें स्थित अग्नि विद्युत्‌से उत्पन्न हुई मानी जाती है। उसे सौम्य कहते हैं। इस वैद्युताग्निका इन्धन जल है। कोई अग्नि अपने तेजसे ही बढ़ती है और कोई बिना इन्धनके भी उद्दीप्त होती है। काष्ठरूपी इन्धनसे जलनेवाली अग्निका नाम निर्मथ्य* है। यह अग्नि जलके संयोगसे शान्त हो जाती है। पचमान अग्नि ज्वालाओंसे संयुक्त रहता है और प्रभाहीन रहना सौम्य अग्निका लक्षण है। जो श्वेत मण्डलमें स्थित रहकर ऊष्मारहित हो प्रकाशित नहीं होती, सूर्यकी वह कान्ति सूर्यके अस्त हो जानेपर अपने चतुर्थांशसे अग्निमें प्रवेश कर जाती है, इसी कारण रातमें अग्निका प्रकाश अधिक होता है ॥ २—१० ॥

* प्रकारान्तरसे इन अग्नियोंका बहुत कुछ उल्लेख अ० ५१ मे भी हो चुका है। यहाँ १२६—२८तकके तीन अध्यायोंमें ग्रहोंके स्वरूप तथा उनके रथ, आयुध आदिका परिचय-प्रदान बहुत सुन्दर रूपमें हुआ है। पहले ९४ वे अध्यायमें भी इन—ग्रहोंका स्वरूपनिरूपण हुआ है।

उदिते तु पुनः सूर्ये ऊष्माग्नेस्तु समाविशत्। पादेन तेजसश्चाग्नेस्तस्मात् संतपते दिवा॥ ११॥
प्राकाश्यं च तथौष्ण्यं च सौर्याग्नेये तु तेजसी। परस्परानुप्रवेशादाप्यायेते दिवानिशम्॥ १२॥
उत्तरे चैव भूम्यर्धे तथा ह्यस्मिंस्तु दक्षिणे। उत्तिष्ठति पुनः सूर्ये रात्रिराविशते ह्यपः॥ १३॥
तस्मात् ताम्रा भवन्त्यापो दिवारात्रिप्रवेशनात्। अस्तं गते पुनः सूर्ये अहो वै प्रविशत्यपः॥ १४॥
तस्मान्नक्तं पुनः शुक्ला ह्यापो दृश्यन्ति भासुराः। एतेन क्रमयोगेन भूम्यर्धे दक्षिणोत्तरे॥ १५॥
उदयास्तमये चात्र ह्यहोरात्रं विशत्यपः। यश्चासौ तपते सूर्यः सोऽपः पिबति रश्मिभिः॥ १६॥
सहस्रपादस्त्वेषोऽग्नी रक्तकुम्भनिभस्तु सः। आदत्ते स तु नाडीनां सहस्रेण समन्ततः॥ १७॥
अपो नदीसमुद्रेभ्यो ह्रदकूपेभ्य एव च। तस्य रश्मिसहस्रेण शीतवर्षोष्णनिःस्रवः॥ १८॥

पुनः सूर्योदय होनेपर अग्निकी ऊष्मा अपने तेजके चतुर्थांशसे सूर्यमें प्रविष्ट हो जाती है, इस कारण दिनमें सूर्य पूर्णरूपसे तपते है। प्रकाशता, उष्णता, सूर्य और अग्निका तेज—इन सबके परस्पर अनुप्रवेश करनेके कारण दिन-रातकी पूर्ति होती है। पृथ्वीके उत्तरवर्ती तथा दक्षिणवर्ती अर्धभागमें सूर्यके उदय होनेपर रात्रि पुनः जलमें प्रवेश कर जाती है। इस प्रकार दिनके समय रात्रिके जलमें प्रवेश करनेके कारण दिनमें जल लाल रंगका दीख पड़ता है। पुनः सूर्यके अस्त हो जानेपर दिन जलमें प्रवेश करता है। इसी कारण जल रातमें उज्ज्वल और चमकीला दिखायी पड़ता है। इसी क्रमसे भूमिके दक्षिणोत्तर अर्धभागमें सूर्यके उदय एवं अस्तके समय दिन और रात क्रमशः जलमें प्रवेश करते हैं। जो ये सूर्य तप रहे हैं, वे अपनी किरणोंद्वारा जलको सोखते है। सूर्यमें स्थित अग्निका रंग लाल रंगके घड़ेके समान है। उसमें हजारो किरणें हैं। वह अपनी सहस्रों नाड़ियोसे नदी, समुद्र, ह्रद और कुएँसे जलको ग्रहण करता है। सूर्यकी उन्हीं हजारो किरणोंसे शीत, वर्षा और गरमीका प्रादुर्भाव होता है॥ ११—१८॥

तासां चतुःशतं नाड्यो वर्षन्ते चित्रमूर्तयः। चन्दनाश्चैव मेध्याश्च केतनाश्चेतनास्तथा॥ १९॥
अमृता जीवनाः सर्वा रश्मयो वृष्टिसर्जनाः।
हिमोद्वहाश्च ताभ्योऽन्या रश्मयस्त्रिशतः स्मृताः। चन्द्रताराग्रहैः सर्वैः पीता भानोर्गभस्तयः॥ २०॥
एता मध्यास्तथान्याश्च ह्लादिन्यो हिमसर्जनाः। शुक्लाश्च ककुभश्चैव गावो विश्वभृतश्च याः॥ २१॥
शुक्लास्ता नामतः सर्वास्त्रिशत्या घर्मसर्जनाः। सम्बिभ्रति हि ताः सर्वा मनुष्यान् देवताः पितॄन्॥ २२॥
मनुष्यानौषधीभिश्च स्वधया च पितॄनपि। अमृतेन सुरान् सर्वान् संततं परितर्पयन्॥ २३॥
वसन्ते चैव ग्रीष्मे च शनैः संतपते त्रिभिः। वर्षासु च शरद्येवं चतुर्भिः सम्प्रवर्षति॥ २४॥
हेमन्ते शिशिरे चैव हिमोत्सर्गस्त्रिभिः पुनः। ओषधीषु बलं धत्ते सुधां च स्वधया पुनः॥ २५॥
सूर्योऽमरत्वममृते त्रयस्त्रिषु नियच्छति। एवं रश्मिसहस्रं तु सौरं लोकार्थसाधकम्॥ २६॥
भिद्यते ऋतुमासाद्य जलशीतोष्णनिःस्रवम्। इत्येवं मण्डलं शुक्रं भास्वरं लोकसंज्ञितम्॥ २७॥
नक्षत्रग्रहसोमानां प्रतिष्ठा योनिरेव च। ऋक्षचन्द्रग्रहाः सर्वे विज्ञेयाः सूर्यसम्भवाः॥ २८॥

उन सहस्रों किरणोंमें विचित्र आकृतिवाली चार सौ नाड़ियाँ जलकी वर्षा करनेवाली हैं। उनमें चन्दना, मेध्या, केतना, चेतना, अमृता और जीवना—ये सभी किरणे विशेषरूपसे वृष्टि करनेवाली है। सूर्यकी तीन सौ किरणे हिमसे उत्पन्न हुई कही जाती हैं। उन्हे चन्द्रमा, तारा और सभी ग्रह पीते रहते हैं। ये मध्य नाड़ियाँ कहलाती हैं। इनके अतिरिक्त अन्य ह्लादिनी आदि नाड़ियाँ हिमकी सृष्टि करनेवाली है। शुक्ला, ककुभ, गौ और विश्वभृत् नामकी जो नाड़ियाँ हैं, वे सभी शुक्ला नामसे कही जाती हैं। इनकी भी संख्या तीन सौ है।

ये धूपको उत्पन्न करनेवाली है । वे सभी मनुष्यों, देवताओं और पितरोंका भरण-पोषण करती हैं । ये किरणें ओषधियों ( एवं अन्नों ) द्वारा सभी मनुष्योंको, स्वधाद्वारा पितरोंको और अमृतके माध्यमसे देवताओंको सदा तृप्त करती रहती हैं । सूर्य वसन्त और ग्रीष्म ऋतुमें शनैः-शनैः अपनी तीन सौ किरणोंसे ताप उत्पन्न करते है । इसी प्रकार वर्षा और शरद्-ऋतुमें चार सौ किरणोंके माध्यमसे वर्षा करते हैं । पुनः हेमन्त और शिशिर ऋतुमें तीन सौ किरणोंद्वारा बर्फ गिराते हैं । यही सूर्य ओषधियोंमें बल, स्वधामें सुधा और अमृतमें अमरत्वका आधान करते हैं अर्थात् तीनों पदार्थोंमें तीन तरहके गुण उत्पन्न करते हैं । इस प्रकार सूर्यकी ये हजारों किरणें लोगोंका प्रयोजन सिद्ध करनेवाली हैं । ऋतुओंके क्रमानुसार जलकी शीतलता और उष्णतामें परिवर्तन होता रहता है । इस प्रकार उद्दीप्त एवं श्वेत वर्णवाला वह लोकसंज्ञक मण्डल नक्षत्र, ग्रह और सोमकी प्रतिष्ठा एवं योनि है । इन सभी चन्द्र, नक्षत्र और ग्रहोंको सूर्यसे उत्पन्न हुआ जानना चाहिये ॥

**सुषुम्ना सूर्यरश्मिर्या क्षीणं शशिनमेधते । हरिकेशः पुरस्तात्तु यो वै नक्षत्रयोनिकृत् ॥ २९ ॥**
**दक्षिणे विश्वकर्मा तु रश्मिराप्याययद् बुधम् । विश्वावसुश्च यः पश्चाच्छुक्रयोनिश्च स स्मृतः ॥ ३० ॥**
**संवर्धनस्तु यो रश्मिः स योनिर्लोहितस्य च । षष्ठस्तु ह्यश्वभू रश्मिर्योनिः सा हि बृहस्पतेः ॥ ३१ ॥**
**शनैश्चरं पुनश्चापि रश्मिराप्यायते सुराट् । न क्षीयन्ते यतस्तानि तस्मान्नक्षत्रता स्मृता ॥ ३२ ॥**
**क्षेत्राण्येतानि वै सूर्यमापतन्ति गभस्तिभिः । क्षेत्राणि तेषामादत्ते सूर्यो नक्षत्रता ततः ॥ ३३ ॥**
**अस्माल्लोकादमुं लोकं तीर्णानां सुकृतात्मनाम् । तारणात्तारका ह्येताः शुक्लत्वाच्चैव शुक्लिकाः ॥ ३४ ॥**
**दिव्यानां पार्थिवानां च वंशानां चैव सर्वशः । तपनस्तेजसो योगादादित्य इति गद्यते ॥ ३५ ॥**
**सुवतिः स्पन्दनार्थे च धातुरेष निगद्यते । सवनात्तेजसोऽपां च तेनासौ सविता स्मृतः ॥ ३६ ॥**
**बह्वर्थश्चन्द इत्येष ह्लादने धातुरुच्यते । शुक्लत्वे ह्यमृतत्वे च शीतत्वेऽपि विमान्यते ॥ ३७ ॥**

सूर्यकी जो सुषुम्ना नामकी किरण है, वह क्षीण हुए चन्द्रमाको पुनः बढाती हैं । पूर्वदिशामें जो हरिकेश नामकी किरण है, वह नक्षत्रोंकी जननी है । दक्षिण दिशामें स्थित विश्वकर्मा नामकी किरण बुधको तृप्त करती है । पश्चिम दिशामें जो विश्वावसु नामक किरण है, उसे शुक्रकी योनि ( उत्पत्तिस्थान ) कहा जाता है । जो संवर्धन किरण है, वह लोहित ( मंगल ) की योनि है । छठी किरणको अश्वभू कहते हैं, वह बृहस्पतिकी योनि है । पुनः सुराट् नामक किरण शनैश्चरकी वृद्धि करती है । चूँकि ये ( चन्द्र, नक्षत्र और ग्रह ) कभी नष्ट नहीं होते, इसीलिये इनकी नक्षत्रता मानी गयी है । उपर्युक्त नक्षत्रोंके क्षेत्र सूर्यपर आकर गिरते है और सूर्य अपनी किरणोंद्वारा उन क्षेत्रोंको ग्रहण करते हैं, इसीसे उनकी नक्षत्रता सिद्ध होती है । इस लोकसे परलोकमें जानेवाले पुण्यात्माओंका उद्धार करनेके कारण ये किरणें तारका नामसे प्रसिद्ध हैं तथा शुक्ल-वर्णकी होनेके कारण शुक्ला भी कही जाती हैं । दिव्य ( स्वर्गीय ) एवं पार्थिव ( भौमिक ) सभी प्रकारके वंशोंके तेजके संयोगसे सम्पन्न होनेके कारण सूर्यको 'तपन' कहा जाता है । 'सवति ( सूते ) अर्थात् 'सु' धातु 'उत्पत्ति अथवा चेतनाभाव'के अर्थमें प्रयुक्त होती है । इसलिये ( भूमि- )जल-तेजके उत्पादक होनेके कारण सूर्य सविता कहलाते हैं । इसी प्रकार 'चदि ह्लादने' यह बह्वर्थक धातु आह्लादित करनेके अर्थमें भी प्रयुक्त होती है । इसका शुक्लत्व, अमृतत्व और शीतत्व आदि अन्य अनेकों अर्थोंमें प्रयोग किया जाता है । ( इसी धातुसे चन्द्र या चन्द्रमा शब्द निष्पन्न हुआ है । )॥ २९—३७ ॥

* निरुक्त, अमरटीका, धातुवृत्ति, उणादि कोश आदिके अनुसार भी षूङ्-प्रसवे-धातुसे सविता शब्द बनता है, जिसका अर्थ है—जगत्‌को उत्पन्न करनेवाला ।

सूर्याचन्द्रमसोर्दिव्ये मण्डले भास्वरे खगे। जलतेजोमये शुक्ले वृत्तकुम्भनिभे शुभे ॥ ३८ ॥
वसन्ति कर्मदेवास्तु स्थानान्येतानि सर्वशः। मन्वन्तरेषु सर्वेषु ऋषिसूर्यग्रहादयः ॥ ३९ ॥
तानि देवगृहाणि स्युः स्थानाख्यानि भवन्ति हि। सौरं सूर्योऽविशत्स्थानं सौम्यं सोमस्तथैव च ॥ ४० ॥
शौक्रं शुक्रोऽविशत्स्थानं षोडशारं प्रभास्वरम्। बृहस्पतिर्बृहत्त्वं च लोहितं चापि लोहितः ॥ ४१ ॥
शनैश्चरोऽविशत् स्थानमेवं शानैश्चरं तथा। बुधोऽपि वै बुधस्थानं भानुं स्वर्भानुरेव च ॥ ४२ ॥
नक्षत्राणि च सर्वाणि नाक्षत्राण्याविशन्ति च। ज्योतींषि सुकृतामेते ज्ञेया देवगृहास्तु वै ॥ ४३ ॥
स्थानान्येतानि तिष्ठन्ति यावदाभूतसम्प्लवम्। मन्वन्तरेषु सर्वेषु देवस्थानानि तानि वै ॥ ४४ ॥
अभिमाने न तिष्ठन्ति तानि देवाः पुनः पुनः। अतीतास्तु सहातीतैर्भाव्या भाव्यैः सुरैः सह ॥ ४५ ॥
वर्तन्ते वर्तमानैश्च सुरैः सार्धं तु स्थानिनः।

सूर्य और चन्द्रमाके दिव्य मण्डल गगनतलमें उद्भासित होते हैं। वे सुन्दर श्वेत रंगवाले, जल और तेजसे सम्पन्न एवं कुम्भ-सदृश गोलाकार हैं। उनमें सभी मन्वन्तरोंके ऋषि एवं सूर्यादि ग्रह कर्मदेवताके रूपसे निवास करते हैं। ये ही उनके स्थान है, इसीसे उन्हे देव-गृह कहा जाता है। वे देव-गृह उन्हीं देवोंके नामसे प्रसिद्ध होते हैं। सूर्य सौर नामक स्थानमें तथा चन्द्रमा सौम्य स्थानमें प्रवेश करते हैं। शुक्र शौक्र स्थानमें प्रवेश करते हैं, जो सोलह अरोंसे युक्त और अत्यन्त कान्तिमान् है। इसी प्रकार बृहस्पति बृहत्त्व स्थानमें, मंगल लोहित स्थानमें, शनैश्चर शानैश्चर स्थानमें, बुध बुधस्थानमें और राहु भानुस्थानमें प्रवेश करते हैं। सभी नक्षत्र नाक्षत्र स्थानमें प्रवेश करते हैं। इस प्रकार इन सभी ज्योतियोंको उन पुण्यात्माओंके देव-गृह जानने चाहिये। ये सभी स्थान प्रलयपर्यन्त स्थित रहते हैं। सभी मन्वन्तरोंमें वे ही देवस्थान होते हैं। सभी देवता पुनःपुनः उन्हीं अपने-अपने स्थानोंमें निवास करते हैं। अतीतकालीन स्थानीय देवता अतीतोंके साथ, भविष्यत्कालीन स्थानीय देवता भावी देवताओंके साथ और वर्तमानकालीन स्थानीय देवता वर्तमान देवताओंके साथ वर्तमान रहते हैं ॥ ३८—४५½ ॥

सूर्यो देवो विवस्वांश्च अष्टमस्त्वदितेः सुतः ॥ ४६ ॥
द्युतिमान् धर्मयुक्तश्च सोमो देवो वसुः स्मृतः। शुक्रो दैत्यस्तु विज्ञेयो भार्गवोऽसुरयाजकः ॥ ४७ ॥
बृहस्पतिर्बृहत्तेजा देवाचार्योऽङ्गिरःसुतः। बुधो मनोहरश्चैव शशिपुत्रस्तु स स्मृतः ॥ ४८ ॥
शनैश्चरो विरूपश्च संज्ञापुत्रो विवस्वतः। अग्निर्विकेश्यां जज्ञे तु युवासौ लोहिताधिपः ॥ ४९ ॥
नक्षत्रनाम्न्यः क्षेत्रेषु दाक्षायण्यस्सुताः स्मृताः। स्वर्भानुः सिंहिकापुत्रो भूतसंतापनोऽसुरः ॥ ५० ॥
चन्द्रार्कग्रहनक्षत्रेष्वभिमानी प्रकीर्तितः। स्थानान्येतानि चोक्तानि स्थानिन्यश्चैव देवताः ॥ ५१ ॥
शुक्रमग्निसमं दिव्यं सहस्रांशोर्विवस्वतः। सहस्रांशुत्विषः स्थानमम्मयं तैजसं तथा ॥ ५२ ॥
आप्यस्थानं मनोज्ञस्य रविरश्मिगृहे स्थितम्। शुक्रः षोडशरश्मिस्तु यस्तु देवो ह्यपोमयः ॥ ५३ ॥
लोहितो नवरश्मिस्तु स्थानमाप्यं तु तस्य वै। बृहद्द्वादशरश्मीकं हरिद्राभं तु वेधसः ॥ ५४ ॥
अष्टरश्मिशनेस्तत्तु कृष्णं वृद्धमयसयम्। स्वर्भानोस्त्वायसं स्थानं भूतसंतापनालयम् ॥ ५५ ॥
सुकृतामाश्रयास्तारा रश्मयस्तु हिरण्मयाः। तारणात्तारकाः ह्येताः शुक्लत्वाच्चैव तारकाः ॥ ५६ ॥

अदितिके आठवें पुत्र विवस्वान् सूर्य देवता माने गये हैं। प्रभाशाली एवं धर्मात्मा चन्द्रदेव वसु कहे गये हैं। भृगुनन्दन शुक्रको, जो असुरोंके पुरोहित हैं, कर्मानुसार दैत्य समझना चाहिये। महर्षि अङ्गिराके पुत्र परम तेजस्वी बृहस्पति देवोंके आचार्य हैं। मनोहर रूपवाले बुध चन्द्रमाके पुत्र हैं। शनैश्चर कुरूप कहे गये हैं। ये सूर्यके संयोगसे उत्पन्न हुए संज्ञाके पुत्र हैं। लाल रंगके अधिपति मंगल नवयुवक ( माने गये ) है। स्वयं अग्निदेव ही

रूपमें विकेशी ( भूमि ) के* गर्भसे उत्पन्न हुए थे। नक्षत्र नामवाली सत्ताईस नक्षत्राभिमानी देवियाँ दाक्षायणीकी कन्या मानी गयी हैं। राहु सिंहिकाका पुत्र है। यह सभी प्राणियोंका कष्ट देनेवाला राक्षस है। इस प्रकार सूर्य, चन्द्र, ग्रह और नक्षत्रोंके अभिमानी देवताओंका वर्णन किया गया। साथ ही उनके स्थान तथा स्थानी देवता भी बतलाये गये। सहस्र किरणधारी सूर्यका स्थान दिव्य, श्वेत वर्णवाला तथा अग्निके समान तेजस्वी है। चन्द्रमाका स्थान तैजस एवं जलमय है। बुधका स्थान जलमय है और वह सूर्यकी किरणरूपी गृहमें स्थित है। शुक्रदेवका स्थान सोलह किरणोंसे युक्त एवं जलमय है। मंगल नौ किरणोंसे युक्त हैं, उनका स्थान जलमय है। बृहस्पतिका स्थान बारह किरणोंसे युक्त है और उसकी कान्ति हल्दीके समान पीली है। शनैश्चरका स्थान आठ किरणोंसे युक्त, प्राचीन, लौहमय एवं काले रंगका है। राहुका स्थान लोहेका बना है, वह प्राणियोंको कष्ट देनेवाला है। ताराएँ पुण्यात्माजनोंका आश्रय स्थान हैं। इनकी किरणें स्वर्णमयी हैं। जीवोंका निस्तार करनेके कारण ये तारका कहलाती हैं और शुक्लवर्ण होनेके कारण इनका शुक्ला भी नाम है॥

नवयोजनसाहस्रो विष्कम्भः सवितुः स्मृतः। मण्डलं त्रिगुणं चास्य विस्तारो भास्करस्य तु॥ ५७॥
द्विगुणः सूर्यविस्ताराद् विस्तारः शशिनः स्मृतः। त्रिगुणं मण्डलं चास्य वैपुल्याच्छशिनः स्मृतम्॥ ५८॥
सर्वोपरि निसृष्टानि मण्डलानि तु तारकाः। योजनार्धप्रमाणानि ताभ्योऽन्यानि गणानि तु॥ ५९॥
तुल्यो भूत्वा तु स्वर्भानुस्तदधस्तात् प्रसर्पति। उद्धृत्य पार्थिवीं छायां निर्मितां मण्डलाकृतिम्॥ ६०॥
ब्रह्मणा निर्मितं स्थानं तृतीयं तु तमोमयम्। आदित्यात् स तु निष्क्रम्य सोमं गच्छति पर्वसु॥ ६१॥
आदित्यमेति सोमाच्च पुनः सौरेषु पर्वसु। स्वभासा तुदते यस्मात्स्वर्भानुरिति स स्मृतः॥ ६२॥
चन्द्रतः षोडशो भागो भार्गवस्य विधीयते। विष्कम्भान्मण्डलाच्चैव योजनानां तु स स्मृतः॥ ६३॥
भार्गवात्पादहीनश्च विज्ञेयो वै बृहस्पतिः। बृहस्पतेः पादहीनौ कुंजसौरावुभौ स्मृतौ॥ ६४॥
विस्तारमण्डलाभ्यां तु पादहीनस्तयोर्बुधः। तारानक्षत्ररूपाणि वपुष्मन्तीह यानि वै॥ ६५॥
बुधेन समरूपाणि विस्तारान्मण्डलात्तु वै। तारानक्षत्ररूपाणि हीनानि तु परस्परम्॥ ६६॥

सूर्यके व्यासका विस्तार नौ हजार योजन है और इनका सम्पूर्ण मण्डल इस ( व्यास )से तिगुना अर्थात् सत्ताईस हजार योजन है। चन्द्रमाका विस्तार सूर्यके विस्तारसे दुगुना बतलाया जाता है। चन्द्रमाका सम्पूर्ण मण्डल विपुलतामें सूर्य-मण्डलसे तिगुना है। सबके ऊपर तारकाओंके मण्डल हैं। उनका विस्तार आधे योजनका बतलाया जाता है। उनसे नीचे अन्य गणोंके स्थान हैं। राहु उनकी तुलनामें समान होते हुए भी उनके नीचेसे भ्रमण करता है। ब्रह्माद्वारा निर्मित वह तीसरा स्थान तमोमय है। उसे पृथ्वीकी छायाको ऊपर उठाकर मण्डलाकार बनाया गया है। राहु पूर्णिमा आदि पर्वोंमें सूर्यमण्डलसे निकलकर चन्द्रमण्डलमें चला जाता है और सूर्य-सम्बन्धी अमावास्या आदि पर्वोंमें पुनः चन्द्रमण्डलसे निकलकर सूर्यमण्डलमें चला आता है। वह अपनी कान्तिसे प्राणियोंको कष्ट पहुँचाता है, इसीलिये उसे स्वर्भानु कहते हैं। व्यास और बाह्य-वृत्त—दोनोंके योजन-परिमाणमें शुक्रका परिमाण चन्द्रमाके सोलहवें भागके बराबर बतलाया जाता है। बृहस्पतिका परिमाण शुक्रके परिमाणसे एक चतुर्थांश कम जानना चाहिये। शनि और मंगल—ये दोनों प्रमाणमें बृहस्पतिसे चतुर्थांश कम बतलाये गये हैं। बुध इन दोनों ग्रहोंसे विस्तार और

* सभी पुराणों तथा मत्स्यपुराणके शिवव्याख्यानोंमें विकेशीको भूमि कहा गया है। उनके पुत्र होनेसे ही मङ्गलको भौम कहा जाता है।

मण्डलमें चौथाई कम हैं। आकाशमण्डलमें तारा, नक्षत्र आदि जितने शरीरधारी हैं, वे सभी विस्तार और मण्डलके हिसाबसे बुधके समकक्ष हैं। तारा और नक्षत्र परस्पर एक-दूसरेसे कम हैं ॥ ५७—६६ ॥

शतानि पञ्च चत्वारि त्रीणि द्वे चैकमेव च। सर्वोपरि विसृष्टानि मण्डलानि तु तारकाः ॥ ६७ ॥
योजनार्धप्रमाणानि तेभ्यो ह्रस्वं न विद्यते। उपरिष्टात्तु ये तेषां ग्रहा ये क्रूरसात्त्विकाः ॥ ६८ ॥
सौरश्चाङ्गिरसो वक्रो विज्ञेया मन्दचारिणः। तेभ्योऽधस्तात्तु चत्वारः पुनश्चान्ये महाग्रहाः ॥ ६९ ॥
सोमः सूर्यो बुधश्चैव भार्गवश्चेति शीघ्रगाः। यावन्ति चैव ऋक्षाणि कोट्यस्तावन्ति तारकाः ॥ ७० ॥
सर्वेषां तु ग्रहाणां वै सूर्योऽधस्तात् प्रसर्पति। विस्तीर्णं मण्डलं कृत्वा तस्योर्ध्वं चरते शशी ॥ ७१ ॥
नक्षत्रमण्डलं चापि सोमादूर्ध्वं प्रसर्पति। नक्षत्रेभ्यो बुधश्चोर्ध्वं बुधाच्चोर्ध्वं तु भार्गवः ॥ ७२ ॥
वक्रस्तु भार्गवादूर्ध्वं वक्रादूर्ध्वं बृहस्पतिः। तस्माच्छनैश्चरश्चोर्ध्वं देवाचार्योपरि स्थितः ॥ ७३ ॥
शनैश्चरात्तथा चोर्ध्वं ज्ञेयं सप्तर्षिमण्डलम्। सप्तर्षिभ्यो ध्रुवश्चोर्ध्वं समस्तं त्रिदिवं ध्रुवे ॥ ७४ ॥
द्विगुणेषु सहस्रेषु योजनानां शतेषु च। ग्रहान्तरमथैकैकमूर्ध्वं नक्षत्रमण्डलात् ॥ ७५ ॥
ताराग्रहान्तराणि स्युरुपर्युपर्यधिष्ठितम्। ग्रहाश्च चन्द्रसूर्यौ च दिवि दिव्येन तेजसा ॥ ७६ ॥
नक्षत्रेषु च युज्यन्ते गच्छन्तो नियतक्रमात्।

इस प्रकार उन सभी ज्योतिर्गणोंका मण्डल पाँच, चार, तीन, दो अथवा एक योजनमें विस्तृत हैं। तारकाओंके मण्डल सबसे ऊपर हैं। उनका प्रमाण आधा योजन है। इनसे कम विस्तारवाला अन्य कोई नहीं है। इनके ऊपर जो क्रूर और सात्त्विक ग्रह स्थित हैं, उन्हें शनैश्चर, बृहस्पति और मंगल समझना चाहिये। ये सभी मन्द गतिवाले हैं। इनके नीचे चन्द्र, सूर्य, बुध और शुक्र—ये चार अन्य महान् ग्रह विचरण करते हैं। ये सभी शीघ्रगामी हैं। जितने नक्षत्र हैं, उतने ही करोड़ तारकाएँ हैं। सूर्य सभी ग्रहोंके निचले भागमें गमन करते हैं। सूर्यके ऊपरी भागमें चन्द्रमा अपने मण्डलको विस्तृत करके चलते हैं। नक्षत्रमण्डल चन्द्रमासे ऊपर भ्रमण करता है। इसी प्रकार नक्षत्रोंसे ऊपर बुध, बुधसे ऊपर शुक्र, शुक्रसे ऊपर मंगल, मंगलसे ऊपर बृहस्पति और देवाचार्य बृहस्पतिके ऊपर शनैश्चर स्थित हैं। शनैश्चरसे ऊपर सप्तर्षि-मण्डलको जानना चाहिये। सप्तर्षियोंसे ऊपर ध्रुव है और ध्रुवसे ऊपर सारा आकाशमण्डल है। नक्षत्रमण्डलसे ऊपर प्रत्येक ग्रह दो लाख योजनोंके अन्तरपर स्थित है। ताराओं और ग्रहोंके अन्तर परस्पर एक-दूसरेके ऊपर स्थित हैं। आकाशमण्डलमें सूर्य, चन्द्रमा और ग्रहगण दिव्य तेजसे युक्त हो निश्चित क्रमानुसार चलते हुए नक्षत्रोंसे मिलते हैं ॥ ६७—७६½ ॥

चन्द्रार्कग्रहनक्षत्रा नीचोच्चगृहमाश्रिताः ॥ ७७ ॥
समागमे च भेदे च पश्यन्ति युगपत्प्रजाः। परस्परं स्थिता ह्येवं युज्यन्ते च परस्परम् ॥ ७८ ॥
असंकरेण विज्ञेयस्तेषां योगस्तु वै बुधैः। इत्येवं संनिवेशो वै पृथिव्या ज्योतिषां च यः ॥ ७९ ॥
द्वीपानामुदधीनां च पर्वतानां तथैव च। वर्षाणां च नदीनां च ये च तेषु वसन्ति वै ॥ ८० ॥
इत्येषोऽर्कवशेनैव संनिवेशस्तु ज्योतिषाम्। आवर्तः सान्तरो मध्ये संक्षिप्तश्च ध्रुवात्तु सः ॥ ८१ ॥
सर्वतस्तेषु विस्तीर्णो वृत्ताकार इवोच्छ्रितः। लोकसंव्यवहारार्थमीश्वरेण विनिर्मितः ॥ ८२ ॥
कल्पादौ बुद्धिपूर्वं तु स्थापितोऽसौ स्वयम्भुवा। इत्येष संनिवेशो वै सर्वस्य ज्योतिरात्मकः ॥ ८३ ॥
विश्वरूपं प्रधानस्य परिणाहोऽस्य यः स्मृतः।
तेषां शक्यं न संख्यातुं याथातथ्येन केनचित्। गतागतं मनुष्येण ज्योतिषां मांसचक्षुषा ॥ ८४ ॥

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे भुवनकोशे देवगृहवर्णनं नामाष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२८ ॥*

चन्द्रमा, सूर्य, ग्रह और नक्षत्र अपने-अपने नीचे-ऊँचे गृहोंमें स्थित होते हैं। इसी क्रमसे इनका समागम और वियोग भी होता है। उस अवसरपर सभी प्राणी इन्हें एक साथ देखते हैं। इस प्रकार स्थित रहकर ये परस्पर संयुक्त होते हैं। विद्वान्‌लोग इनके इस सम्बन्धको अमिश्रित ही मानते हैं। इसी प्रकार पृथ्वी, ज्योतिर्गणों, द्वीप, समुद्र, पर्वत, वर्ष, नदी तथा उनमें निवास करनेवाले प्राणियोंकी स्थिति है। ज्योतिर्गणोंका यह स्थिति-क्रम सूर्यके कारण ही है। ( मण्डलाकार घूमते समय ) उन गणोंके मध्यमें आवर्त-सा दीख पड़ता है। वह बीचमें ध्रुवके आ जानेसे संक्षिप्त हो जाता है। वह चारों ओर ऊँचाईपर गोलाकार फैला रहता है। परमेश्वरने लोकोंकी प्रयोजन-सिद्धिके लिये उसे बनाया है। ब्रह्माने कल्पके आदिमें बहुत सोच-विचारकर इसे स्थापित किया है। इस प्रकार यह सम्पूर्ण ज्योतिर्मण्डलकी स्थिति है। प्रधान ( प्रकृति )का यह विश्वरूप परिणाम अत्यन्त अद्भुत है। कोई भी इसकी यथार्थ गणना नहीं कर सकता। मनुष्य अपने चर्मचक्षुओंसे इन ज्योतिर्गणोंके गमनागमनको नहीं देख सकता ॥ ७७—८४ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके भुवनकोश-वर्णन-प्रसङ्गमें देवगृहवर्णन नामक एक सौ अट्ठाईसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १२८ ॥

# एक सौ उन्तीसवाँ अध्याय

## त्रिपुर-निर्माणका वर्णन

ऋषय ऊचुः

कथं जगाम भगवान् पुरारित्वं महेश्वरः। ददाह च कथं देवस्तन्नो विस्तरतो वद ॥ १ ॥
पृच्छामस्त्वां वयं सर्वे बहुमानात् पुनः पुनः।
त्रिपुरं तद् यथा दुर्गं मयमायाविनिर्मितम्। देवेनैकेषुणा दग्धं तथा नो वद मानद ॥ २ ॥

ऋषियोंने पूछा—सबको मान देनेवाले सूतजी! भगवान् महेश्वर पुरारि ( त्रिपुरके शत्रु ) किस कारण हो गये तथा उन देवाधिदेवने उसे कैसे दग्ध किया? यह आप हमलोगोंको विस्तारपूर्वक बतलाइये। हम सब लोग परम सम्मानपूर्वक आपसे बारंबार पूछ रहे हैं कि मय दानवकी मायाद्वारा विनिर्मित उस त्रिपुर दुर्गको भगवान् शंकरने एक ही बाणसे जिस प्रकार जला दिया था, हमलोगोंसे उस प्रसङ्गका विस्तारसे वर्णन कीजिये ॥ १-२ ॥

सूत उवाच

शृणुध्वं त्रिपुरं* देवो यथा दारितवान् भवः। मयो नाम महामायो मायानां जनकोऽसुरः ॥ ३ ॥
निर्जितः स तु संग्रामे तताप परमं तपः। तपस्यन्तं तु तं विप्रा दैत्यावन्यावनुग्रहात् ॥ ४ ॥
तस्यैव कृत्यमुद्दिश्य तेपतुः परमं तपः। विद्युन्माली च बलवांस्तारकाख्यश्च वीर्यवान् ॥ ५ ॥
मयतेजःसमाक्रान्तौ तेपतुर्मयपार्श्वगौ। लोका इव यथा मूर्तास्त्रयस्त्रय इवाग्नयः ॥ ६ ॥
लोकत्रयं तापयन्तस्ते तेपुर्दानवास्तपः। हेमन्ते जलशय्यासु ग्रीष्मे पञ्चतपे तथा ॥ ७ ॥
वर्षासु च तथाऽऽकाशे क्षपयन्तस्तनूः प्रियाः। सेवानाः फलमूलानि पुष्पाणि च जलानि च ॥ ८ ॥

* यह महत्त्वपूर्ण प्राप्त प्रसङ्ग बहुत कुछ स्कन्द ५। ४३, शिव, सौर पु. २९-३० लिङ्गपु. ७३-४, आदि पुराणोंसे मिलता है। वैसे यह अपेक्षाकृत सर्वाधिक विस्तृत है तथा आगेके नर्मदा-माहात्म्यमे यह प्रसङ्ग इसी ग्रन्थमे पुनः आया है। इसका बीज तै. सं. ६। ३। २। १, शतप. ६। ३। ३। २५ आदिमें है और पुष्पदन्तने भी 'शिवमहिम्नःस्तव' १८-१९ आदिके 'रथः क्षोणी यन्ता'''त्रिपुरतृण,' 'त्रिपुरहर' आदिमें खूब उत्प्रेक्षा की है।

अन्यथाचरिताहाराः पङ्केनाचितवल्कलाः । मग्नाः शैवालपङ्केषु विमलाविमलेषु च ॥ ९ ॥
निर्मांसाश्च ततो जाताः कृशा धमनिसंतताः । तेषां तपःप्रभावेण प्रभावविधुतं यथा ॥ १० ॥
निष्प्रभं तु जगत् सर्वं मन्दमेवाभिभाषितम् । दह्यमानेषु लोकेषु तैस्त्रिभिर्दानवाग्निभिः ॥ ११ ॥
तेषामग्रे जगद्बन्धुः प्रादुर्भूतः पितामहः ।

**सूतजी कहते हैं**—ऋषियो ! भगवान् शंकरने जिस प्रकार त्रिपुरको विदीर्ण किया था ( उसका वर्णन कर रहा हूँ ), सुनिये । मय नामक एक महान् मायावी असुर था । वह विभिन्न प्रकारकी मायाओंका उत्पादक था । वह संग्राममें देवताओंद्वारा पराजित हो गया था, इसलिये घोर तपस्यामें संलग्न हो गया । द्विजवरो ! उसे तपस्या करते देख दो अन्य दैत्य भी अनुग्रहवश उसीके कार्यके उद्देश्यसे उग्र तपस्यामें जुट गये । उनमें एक महाबली विद्युन्माली और दूसरा महापराक्रमी तारक था । ये दोनों मयके तेजसे आकृष्ट होकर उसीके पार्श्वभागमें बैठकर तपस्या कर रहे थे । उस समय तपस्यासे उद्भासित होते हुए वे तीनों ऐसा प्रतीत हो रहे थे, मानो लौकिक रूपमें मूर्तिमान् तीनों अग्नियाँ हों । वे तीनों दानव त्रिलोकीको संतप्त करते हुए तपस्यामें संलग्न थे । वे हेमन्त ऋतुमें जलमें शयन करते, ग्रीष्म ऋतुमें पञ्चाग्नि तापते और वर्षा ऋतुमें आकाशके नीचे खुले मैदानमें खड़े रहते थे । इस प्रकार वे सबको परम प्रिय लगनेवाले अपने शरीरको सुखा रहे थे और मात्र फल, मूल, फूल और जलके आहारपर जीवन व्यतीत कर रहे थे अथवा वे कभी-कभी निराहार भी रह जाते थे । उनके वल्कलोंपर कीचड़ जम गया था और वे स्वयं विमल देहधारी होकर भी गंदी सेवारके कीचड़ोंमें निमग्न रहते थे । इस कारण उनके शरीरका मांस गल गया था । वे इतने दुर्बल हो गये थे कि उनके शरीरकी नसें बाहर उभड़ आयी थीं । उनकी तपस्याके प्रभावसे सारा जगत् निष्प्रभ हो गया—काँप उठा । सर्वत्र उदासी छा गयी । सभीके स्वर मन्द पड़ गये । इस प्रकार उन तीनों दानवरूपी अग्नियोंसे त्रिलोकीको जलते देखकर जगद्बन्धु पितामह ब्रह्मा उनके समक्ष प्रकट हुए ॥ ३–११½ ॥

ततः साहसकर्तारः प्राहुस्ते सहसागतम् ॥ १२ ॥
स्वकं पितामहं दैत्यास्तं वै तुष्टुवुरेव च । अथ तान् दानवान् ब्रह्मा तपसा तपनप्रभान् ॥ १३ ॥
उवाच हर्षपूर्णाक्षो हर्षपूर्णमुखस्तदा । वरदोऽहं हि वो वत्सास्तपस्तोषित आगतः ॥ १४ ॥
व्रियतामीप्सितं यच्च साभिलाषं तदुच्यताम् । इत्येवमुच्यमानं तु प्रतिपन्नं पितामहम् ॥ १५ ॥
विश्वकर्मा मयः प्राह प्रहर्षोत्फुल्ललोचनः । देव दैत्याः पुरा देवैः संग्रामे तारकामये ॥ १६ ॥
निर्जितास्ताडिताश्चैव हताश्चाप्यायुधैरपि । देवैर्वैरानुबन्धाच्च धावन्तो भयवेपिताः ॥ १७ ॥
शरणं नैव जानीमः शर्म वा शरणार्थिनः । सोऽहं तपःप्रभावेण तव भक्त्या तथैव च ॥ १८ ॥
इच्छामि कर्तुं तद् दुर्गं यद् देवैरपि दुस्तरम् । तस्मिंश्च त्रिपुरे दुर्गे मत्कृते कृतिनां वर ॥ १९ ॥
भूम्यग्निजलदुर्गाणां शापानां मुनितेजसाम् । देवप्रहरणानां च देवानां च प्रजापते ॥ २० ॥

तब वे दैत्य अपने पितामहको सहसा सम्मुख उपस्थित देखकर अत्यन्त साहस करके बोले और उनकी स्तुति करने लगे । उस समय ब्रह्माके नेत्र और मुख हर्षसे खिल उठे थे । तब उन्होंने तपस्याके प्रभावसे सूर्यके समान प्रभावशाली उन दानवोंसे कहा—'बच्चो ! मैं तुमलोगोंकी तपस्यासे संतुष्ट होकर तुम्हें वर देनेके लिये आया हूँ । तुमलोगोंकी जो अभिलाषा हो, उसे कहो और अपना अभीष्ट वर माँग लो ।' वर देनेके लिये उत्सुक पितामहको इस प्रकार कहते हुए देखकर असुरोंके शिल्पी मयके नेत्र अत्यन्त हर्षसे उत्फुल्ल हो उठे । तब उसने कहा—'देव ! प्राचीनकालमें घटित हुए तारकामय संग्राममें देवताओंने दैत्योंको पराजित कर

दिया था। उन्होंने अस्त्रोंके प्रहारसे कुछको तो मौतके घाट उतार दिया था और कुछको बुरी तरहसे घायल कर दिया था। उस समय देवताओंके साथ वैर बँध जानेके कारण हमलोग भयसे कम्पित होकर चारों दिशाओंमें भागते फिरे, परंतु हम शरणार्थियोंको यह ज्ञात न हुआ कि हमारे लिये शरणदाता कौन है तथा हमारा कल्याण कैसे होगा। इसलिये मैं अपनी तपस्याके प्रभावसे तथा आपकी भक्तिके बलपर एक ऐसे दुर्गका निर्माण करना चाहता हूँ, जिसका पार करना देवताओंके लिये भी कठिन हो। सुकृती पुरुषोंमें श्रेष्ठ पितामह! मेरेद्वारा निर्मित उस त्रिपुरमें पृथ्वी, जल एवं अग्निसे निर्मित तथा सुरक्षित दुर्गोंका और मुनियोंके प्रभावसे दिये गये शापों, देवताओंके अस्त्रों और देवोंका प्रवेश न हो सके। प्रजापते! यदि आपको अच्छा लगे तो वह त्रिपुर सभीके लिये अलङ्घनीय हो जाय ॥ १२–२०½ ॥

अलङ्घनीयं भवतु त्रिपुरं यदि ते प्रियम्। विश्वकर्मा इतीवोक्तः स तदा विश्वकर्मणा ॥ २१ ॥
उवाच प्रहसन् वाक्यं मयं दैत्यगणाधिपम्। सर्वामरत्वं नैवास्ति असद्वृत्तस्य दानव ॥ २२ ॥
तस्माद् दुर्गविधानं हि तृणादपि विधीयताम्। पितामहवचः श्रुत्वा तदैव दानवो मयः ॥ २३ ॥
प्राञ्जलिः पुनरप्याह ब्रह्माणं पद्मसम्भवम्। यस्तदेकेषुणा दुर्गं सकृन्मुक्तेन निर्दहेत् ॥ २४ ॥
समं स संयुगे हन्यादवध्यं शेषतो भवेत्। एवमस्त्विति चाप्युक्त्वा मयं देवः पितामहः ॥ २५ ॥
स्वप्ने लब्धो यथार्थो वै तत्रैवादर्शनं ययौ। गते पितामहे दैत्या गता मयरविप्रभाः ॥ २६ ॥
वरदानाद् विरेजुस्ते तपसा च महाबलाः। स मयस्तु महाबुद्धिर्दानवो वृषसत्तमः ॥ २७ ॥
दुर्गं व्यवसितः कर्तुमिति चाचिन्तयत् तदा। कथं नाम भवेद् दुर्गं तन्मया त्रिपुरं कृतम् ॥ २८ ॥
वत्स्यते तत्पुरं दिव्यं मत्तो नान्यैर्न संशयः। यथा चैकेषुणा तेन तत्पुरं न हि हन्यते ॥ २९ ॥
देवैस्तथा विधातव्यं मया मतिविचारणम्। विस्तारो योजनशतमेकैकस्य पुरस्य तु ॥ ३० ॥
कार्यस्तेषां च विष्कम्भश्चैकैकशतयोजनम्।

तब असुरोंके विश्वकर्मा ( महाशिल्पी ) मयद्वारा इस प्रकार कहे जानेपर विश्व-स्रष्टा ब्रह्मा दैत्यगणोंके अधीश्वर मयसे हँसते हुए बोले—'दानव! (तुझ-जैसे) असदाचारोंके लिये सर्वामरत्वका विधान नहीं है, अतः तुम तृणसे ही अपने दुर्गका निर्माण करो।' उस समय पितामहकी ऐसी बात सुनकर मय दानवने हाथ जोड़कर पुनः पद्मयोनि ब्रह्मासे कहा—'जो एक ही बारके छोड़े गये एक ही बाणसे उस दुर्गको जला दे, वही युद्धस्थलमें हम सबको मार सके, शेष प्राणियोंसे हमलोग अवध्य हो जायँ।' तदनन्तर मयसे 'एवमस्तु—ऐसा ही हो' कहकर भगवान् ब्रह्मा स्वप्नमें प्राप्त हुए धनकी तरह वहीं अन्तर्हित हो गये। पितामहके चले जानेपर सूर्यके समान प्रभावशाली मय आदि दानव भी अपने स्थानको चले गये। वे महाबली दानव तपस्या तथा वरदानके प्रभावसे अत्यन्त शोभित हो रहे थे। कुछ समयके बाद दानवश्रेष्ठ महाबुद्धिमान् मय दानव दुर्गकी रचना करनेके लिये उद्यत हो विचार करने लगा। मेरेद्वारा निर्मित होनेवाला वह त्रिपुर दुर्ग कैसा बनाया जाय, जिससे उस दिव्य पुरमें निस्संदेह मेरे अतिरिक्त अन्य कोई निवास न कर सके तथा उसके द्वारा छोड़े गये एक बाणसे वह पुर बींधा न जा सके। देवगण उसे नष्ट करनेकी चेष्टा करेंगे ही, किंतु मुझे तो अपनी बुद्धिसे विचार कर लेना चाहिये। उनमें एक-एक पुरका विस्तार सौ योजनका करना है तथा उनके विष्कम्भ ( स्तम्भ या शहतीर ) भी एक-एक सौ योजनके बनाने हैं ॥ २१–३०½ ॥

पुण्ययोगेण निर्माणं पुराणां च भविष्यति ॥ ३१ ॥
पुष्ययोगेण च दिवि समेष्यन्ति परस्परम्। पुष्ययोगेण युक्तानि यस्तान्यासादयिष्यति ॥ ३२ ॥

पुराण्येकप्रहारेण स तानि निहनिष्यति । आयसं तु क्षितितले राजतं तु नभस्तले ॥ ३३ ॥
राजतस्योपरिष्टात् तु सौवर्णं भविता पुरम् ।
एवं त्रिभिः पुरैर्युक्तं त्रिपुरं तद् भविष्यति । शतयोजनविष्कम्भैरन्तरैस्तद् दुरासदम् ॥ ३४ ॥
अट्टालकैर्यन्त्रशतघ्निभिश्च सचक्रशूलोपलकम्पनैश्च ।
द्वारैर्महामन्दरमेरुकल्पैः प्राकारशृङ्गैः सुविराजमानम् ॥ ३५ ॥
सतारकाख्येन मयेन गुप्तं खस्थं च गुप्तं तडिमालिनापि ।
को नाम हन्तुं त्रिपुरं समर्थो मुक्त्वा त्रिनेत्रं भगवन्तमेकम् ॥ ३६ ॥

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे त्रिपुरोपाख्याने एकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२९ ॥*

इन पुरोंका निर्माण पुष्य नक्षत्रके योगमें होगा । इसी पुष्य नक्षत्रके योगमें ये तीनों पुर आकाशमण्डलमें परस्पर मिल जायँगे । जो मनुष्य पुष्य नक्षत्रके योगमें इन तीनों पुरोंको परस्पर मिला हुआ पा लेगा, वही एक बाणके प्रहारसे इन्हें नष्ट कर सकेगा । उनमेंसे एक पुर भूतलपर लौहमय, दूसरा गगनतलमें रजतमय और तीसरा रजतमय पुरसे ऊपर सुवर्णमय होगा । इस प्रकार तीनों पुरोंसे युक्त होनेके कारण वह त्रिपुर नामसे विख्यात होगा । इनके अन्तर्भागमें सौ योजन विस्तारवाले विष्कम्भ (बाधक स्तम्भ) रहेंगे, जिससे यह दूसरोंद्वारा दुष्प्राप्य होगा । वह त्रिपुर अट्टालिकाओं, एक ही बारमें सौ मनुष्योंका वध करनेवाले यन्त्रों, चक्र, त्रिशूल, उपल और ध्वजाओं, मन्दराचल और सुमेरु गिरि-सरीखे द्वारों और शिखर-सदृश परकोटोंसे सुशोभित होगा । उसमें तारक लौहमय पुरकी और मय सुवर्णमय पुरकी रक्षा करेंगे तथा आकाशस्थित रजतमय पुरकी रक्षामें विद्युन्माली नियुक्त रहेगा । ऐसी दशामें एकमात्र भगवान् शंकरको छोड़कर दूसरा कौन इस त्रिपुरका विनाश करनेमें समर्थ हो सकेगा ॥ ३१—३६ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके त्रिपुरोपाख्यानमें एक सौ उन्तीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १२९ ॥

---

# एक सौ तीसवाँ अध्याय

## दानवश्रेष्ठ मयद्वारा त्रिपुरकी रचना

सूत उवाच

इति चिन्तायुतो दैत्यो दिव्योपायप्रभावजम् । चकार त्रिपुरं दुर्गं मनःसंकल्पचारितम् ॥ १ ॥
प्राकारोऽनेन मार्गेण इह चास्तु गोपुरम् । इह चाट्टालकद्वारमिह चाट्टालगोपुरम् ॥ २ ॥
राजमार्ग इतश्चापि विपुलो भवतामिति । रथ्योपरथ्याः चत्वरा इह चत्वरं एव च ॥ ३ ॥
इदमन्तःपुरस्थानं रुद्रायतनमत्र च । चत्वराणि तडागानि वाप्यः कूप्यः सरांसि च ॥ ४ ॥
आरामाश्च सभाश्चात्र उद्यानान्यत्र चा ... निर्गमो दानवानां भवत्वत्र मनोहरः ॥ ५ ॥
इत्येवं मानसं तत्राकल्पयत् ... तत्पुरं सृष्टं त्रिपुरं दिवि ना भुवा ॥ ६ ॥
कार्ष्णायसमयं यत्तु मयेन विहितं ... यपस्तत्र कृतवालाधिपो...
यत्तु पूर्णेन्दुसंकाशं राजतं निर्मितं ... ली प्रयुक्तत्र विद्युन्माली

सुवर्णाधिकृतं यच्च मयेन विहितं पुरम्। स्वयमेव मयस्तत्र गतस्तदधिपः प्रभुः॥ ९॥
तारकस्य पुरं तत्र शतयोजनमन्तरम्। विद्युन्मालिपुरं चापि शतयोजनकेऽन्तरे॥ १०॥
मेरुपर्वतसंकाशं मयस्यापि पुरं महत्।

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! इस प्रकार सोच-विचारकर ( महाशिल्पी )मय दानव दिव्य उपायोंके प्रभावसे बननेवाले तथा मनके संकल्पानुसार चलनेवाले त्रिपुर नामक दुर्गकी रचना करनेको उद्यत हुआ । उसने सोचा कि इस मार्गमें परकोटा बनेगा, यहाँ अथवा वहाँ गोपुर ( नगरका फाटक ) रहेगा, यहाँ अट्टालिका-का दरवाजा तथा यहाँ महलका मुख्य द्वार रखना उचित है । इधर विशाल राजमार्ग होना चाहिये, यहाँ दोनों ओर पगडंडियोंसे युक्त सड़कें और गलियाँ होनी चाहिये, यहाँ चबूतरा रखना ठीक है, यह स्थान अन्तःपुरके योग्य है, यहाँ शिव-मन्दिर रखना अच्छा होगा, यहाँ वट-वृक्षसहित तड़ागों, बावलियों और सरोवरोंका निर्माण उचित होगा । यहाँ बगीचे, सभाभवन और वाटिकाएँ रहेंगी तथा यहाँ दानवोंके निकलनेके लिये मनोहर मार्ग रहेगा । इस प्रकार नगर-रचनामें निपुण मयने केवल मनःसंकल्पमात्रसे उस दिव्य त्रिपुर नगरकी रचना कर डाली थी, ऐसा हमने सुना है । मयने जो काले लोहेका पुर निर्मित किया था, उसका अधिपति तारकासुर हुआ । वह उसपर अपना आधिपत्य जमाकर वहाँ निवास करने लगा । दूसरा जो पूर्णिमाके चन्द्रमाके समान कान्तिमान् रजतमय पुर निर्मित हुआ, उसका स्वामी विद्युन्माली हुआ । यह विद्युत्समूहोंसे युक्त बादलकी तरह जान पड़ता था । मयद्वारा जिस तीसरे स्वर्णमय पुरकी रचना हुई, उसमें सामर्थ्यशाली मय स्वयं गया और उसका अधिपति हुआ । जिस प्रकार तारकासुरके पुरसे विद्युन्मालीका पुर सौ योजनकी दूरीपर था, उसी प्रकार विद्युन्माली और मयके पुरोंमें भी सौ योजनका अन्तर था । मय दानवका विशाल पुर मेरुपर्वतके समान दीख पड़ता था ॥ १—१०½ ॥

पुष्यसंयोगमात्रेण कालेन स मयः पुरा॥ ११॥
कृतवांस्त्रिपुरं दैत्यस्त्रिनेत्रः पुष्पकं यथा। येन येन मयो याति प्रकुर्वाणः पुरं पुरात्॥ १२॥
प्रशस्तास्तत्र तत्रैव वारुण्या मालया स्वयम्। रुक्मरूप्यायसानां च शतशोऽथ सहस्रशः॥ १३॥
रत्नाचितानि शोभन्ते पुराण्यमरविद्विषाम्। प्रासादशतजुष्टानि कूटागारोत्कटानि च॥ १४॥
सर्वेषां कामगानि स्युः सर्वलोकातिगानि च। सोद्यानवापीकूपानि सपद्मसरवन्ति च॥ १५॥
अशोकवनभूतानि कोकिलारुतवन्ति च। चित्रशालविशालानि चतुःशालोत्तमानि च॥ १६॥
सप्ताष्टदशभौमानि सत्कृतानि मयेन च। बहुध्वजपताकानि स्रग्दामालंकृतानि च॥ १७॥
किङ्किणीजालशब्दानि गन्धवन्ति महान्ति च। सुसंयुक्तोपलिप्तानि पुष्पनैवेद्यवन्ति च॥ १८॥
यज्ञधूमान्धकाराणि सम्पूर्णकलशानि च। गगनावरणाभानि हंसपङ्क्तिनिभानि च॥ १९॥
पङ्क्तीकृतानि राजन्ते गृहाणि त्रिपुरे पुरे। मुक्ताकलापैर्लम्बद्भिर्हसन्तीव शशिश्रियम्॥ २०॥

जिस प्रकार पूर्वकालमें त्रिलोचन भगवान् शंकरने पुष्पककी रचना की थी, उसी प्रकार मय दानवने केवल पुष्यनक्षत्रके संयोगसे कालकी व्यवस्था करके त्रिपुरका निर्माण किया । पुरकी रचना करता हुआ मय जिस-जिस मार्गसे एक पुरसे दूसरे पुरमें जाता था, वहाँ-वहाँ वरुणकी दी हुई मालाद्वारा उत्पन्न चमत्कारसे सोना, चाँदी और लोहेके सैकड़ों-हजारों भवन स्वयं ही बनते जाते थे । उन देव-शत्रुओंके पुर रत्नखचित होनेके कारण विशेष शोभा पा रहे थे । वे सैकड़ों महलोंसे युक्त थे । उनमें ऊँचे-ऊँचे कूटागार ( छतके ऊपरकी कोठरियाँ ) बने थे । उनमें सभी लोग स्वच्छन्द विचरण करते थे । वे ( सुन्दरतामें ) सभी लोकोंका अतिक्रमण करनेवाले

थे। उनमें उद्यान, बावली, कुआँ और कमलोंसे युक्त सरोवर शोभा पा रहे थे। उनमें अशोक वृक्षके बहुतेरे वन थे, जिनमें कोयलें कूजती रहती थीं। उनमें बड़ी-बड़ी चित्रशालाएँ और उत्तम अटारियाँ बनी थीं। मयने क्रमशः सात, आठ और दस तल्लेवाले भवनोंका बड़ी सुन्दरताके साथ निर्माण किया था। उनपर बहुसंख्यक ध्वज और पताकाएँ फहरा रही थीं। वे मालाकी लड़ियोंसे अलंकृत थे। उनमें लगी हुई क्षुद्र घण्टिकाओंके शब्द हो रहे थे। वे उत्कृष्ट गन्धयुक्त पदार्थोंसे सुवासित थे। उन्हें समुचितरूपसे उपलिप्त किया गया था। उनमें पुष्प, नैवेद्य आदि पूजन-सामग्री सँजोयी गयी थी और जलपूर्ण कलश स्थापित थे। वे यज्ञजन्य धुएँसे अन्धकारित हो रहे थे। उस त्रिपुर नामक पुरमें आकाश-सरीखे नीले तथा हंसोंकी पङ्क्तिके समान उज्ज्वल भवन कतारोंमें सुशोभित हो रहे थे। उनमें लटकती हुई मोतियोंकी झालरें ऐसी प्रतीत होती थीं, मानो चन्द्रमाकी शोभाका उपहास कर रही हैं॥ ११-२०॥

मल्लिकाजातिपुष्पाद्यैर्गन्धधूपाधिवासितैः। पञ्चेन्द्रियसुखैर्नित्यं समैः सत्पुरुषैरिव॥ २१॥
हैमराजतलौहाद्यमणिरत्नाञ्जनाङ्किताः। प्राकारास्त्रिपुरे तस्मिन् गिरिप्राकारसंनिभाः॥ २२॥
एकैकस्मिन् पुरे तस्मिन् गोपुराणां शतं शतम्। सपताकाध्वजवतां दृश्यन्ते गिरिशृङ्गवत्॥ २३॥
नूपुरारावरम्याणि त्रिपुरे तत्पुराण्यपि। स्वर्गातिरिक्तश्रीकाणि तत्र कन्यापुराणि च॥ २४॥
आरामैश्च विहारैश्च तडागवटचत्वरैः। सरोभिश्च सरिद्भिश्च वनैश्चोपवनैरपि॥ २५॥
दिव्यभोगोपभोगानि नानारत्नयुतानि च।
पुष्पोत्करैश्च सुभगास्त्रिपुरस्योपनिर्गमाः। परिखाशतगम्भीराः कृता मायानिवारणैः॥ २६॥
निशम्य तद्दुर्गविधानमुत्तमं कृतं मयेनाद्भुतवीर्यकर्मणा।
दितेः सुता दैवतराजवैरिणः सहस्रशः प्रापुरनन्तविक्रमाः॥ २७॥
तदा सुरैर्दर्पितवैरिमर्दनैर्जनार्दनैः शैलकरीन्द्रसंनिभैः।
बभूव पूर्णं त्रिपुरं तथा पुरा यथाम्बरं भूरिजलैर्जलप्रदैः॥ २८॥

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे त्रिपुरोपाख्याने त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १३०॥*

वे नित्य मल्लिका, चमेली आदि सुगन्धित पुष्पों तथा गन्ध, धूप आदिसे अधिवासित होनेसे पाँचों इन्द्रियोंके सुखोंसे समन्वित सत्पुरुषोंकी तरह सुशोभित हो रहे थे। उस त्रिपुरमें सोने, चाँदी और लोहेके प्राचीर बने हुए थे, जिनमें मणि, रत्न और अंजन (काले पत्थर) जड़े हुए थे। वे ऐसे प्रतीत होते थे मानो पर्वतोंकी चहारदीवारी हो। उस एक-एक पुरमें सैकड़ों गोपुर बने थे, जिनपर ध्वजा और पताकाएँ फहरा रही थीं। वे पर्वत-शिखरके समान दीख रहे थे। उस त्रिपुरमें नूपुरोंकी झनकार होती थी, जिससे वे अत्यन्त रमणीय लग रहे थे। उन पुरोंका सौन्दर्य स्वर्गसे भी बढ़कर था। उनमें कन्या-पुर भी बने हुए थे। वे बगीचों, विहारस्थलों, तड़ागों, वटवृक्षके नीचे बने चबूतरों, सरोवरों, नदियों, वनों और उपवनोंसे सम्पन्न थे। वे दिव्य भोगकी सामग्रियों और नाना प्रकारके रत्नोंसे परिपूर्ण थे। उस त्रिपुरके बाहर निकलनेवाले मार्गोंपर पुष्प बिखेरे गये थे, जिससे वे बड़े सुन्दर लग रहे थे। उनमें मायाको निवारण करनेवाले उपकरणोंद्वारा सैकड़ों गहरी खाइयाँ बनायी गयी थीं। अद्भुत पराक्रमयुक्त कर्म करनेवाले मयके द्वारा निर्मित उस उत्तम दुर्गकी रचनाका वृत्तान्त सुनकर देवराज इन्द्रके शत्रु अनन्त पराक्रमी हजारों दैत्य वहाँ आ पहुँचे। उस समय वह त्रिपुर गर्वीले शत्रुओंका मान मर्दन करनेवाले, जनताके लिये कष्टदायक तथा पर्वतीय गजेन्द्रोंके समान विशालकाय असुरोंसे उसी प्रकार खचाखच भर गया, जैसे अधिक जलवाले बादलोंसे आकाश आच्छादित हो जाता है॥ २१-२८॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके त्रिपुरोपाख्यानमें एक सौ तीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १३०॥

# एक सौ इकतीसवाँ अध्याय

## त्रिपुरमें दैत्योंका सुखपूर्वक निवास, मयका स्वप्न-दर्शन और दैत्योंका अत्याचार

सूत उवाच

निर्मिते त्रिपुरे दुर्गे मयेनासुरशिल्पिना । तद् दुर्गं दुर्गतां प्राप बद्धवैरैः सुरासुरैः ॥ १ ॥
सकलत्राः सपुत्राश्च शस्त्रवन्तोऽन्तकोपमाः । मयादिष्टानि विविशुर्गृहाणि हृषिताश्च ते ॥ २ ॥
सिंहा वनमिवानेके मकरा इव सागरम् । रोषैश्चैवातिपारुष्यैः शरीरमिव संहतैः ॥ ३ ॥
तद्वद् बलिभिरध्यस्तं तत्पुरं देवतारिभिः । त्रिपुरं संकुलं जातं दैत्यकोटिशताकुलम् ॥ ४ ॥
सुतलादपि निष्पत्य पातालाद् दानवालयात् । उपतस्थुः पयोदाभा ये च गिर्युपजीविनः ॥ ५ ॥
यो यं प्रार्थयते कामं सम्प्राप्तस्त्रिपुराश्रयात् । तस्य तस्य मयस्तत्र मायया विदधाति सः ॥ ६ ॥
सचन्द्रेषु प्रदोषेषु साम्बुजेषु सरःसु च । आरामेषु सचूतेषु तपोधनवनेषु च ॥ ७ ॥
स्वङ्गाश्चन्दनदिग्धाङ्गा मातङ्गाः समदा इव । मृष्टाभरणवस्त्राश्च मृष्टस्रगनुलेपनाः ॥ ८ ॥
प्रियाभिः प्रियकामाभिर्हावभावप्रसूतिभिः । नारीभिः सततं रेमुर्मुदिताश्चैव दानवाः ॥ ९ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो ! इस प्रकार असुरशिल्पी मयने त्रिपुर नामक दुर्गका निर्माण किया, परंतु अन्ततोगत्वा परस्पर बँधे हुए वैरवाले देवताओं और असुरोंके लिये वह दुर्ग दुर्गम हो गया । उस समय वे सभी शस्त्रधारी दैत्य जो यमराजके समान भयंकर थे, मयके आदेशसे अपनी स्त्रियों और पुत्रोंके साथ हर्षपूर्वक उन गृहोंमें प्रविष्ट हुए । जैसे अनेकों सिंह वनको, अनेकों मगर-मच्छ सागरको और क्रोध एवं अत्यन्त कठोरता परस्पर सम्मिलित होकर शरीरको अपने अधिकारमें कर लेते हैं, वैसे ही उन महाबली देव-शत्रुओंद्वारा वह पुर व्याप्त हो गया । इस प्रकार वह त्रिपुर असंख्य ( अरबों ) दैत्योंसे भर गया । उस समय सुतल और पाताल ( दानवोंके निवासस्थान )से निकलकर आये हुए दानव तथा ( देवताओंके भयसे छिपकर ) पर्वतोंपर जीवन-निर्वाह करनेवाले दैत्य भी, जो काले बादलकी-सी कान्तिवाले थे, ( शरणार्थीके रूपमें ) वहाँ उपस्थित हुए । त्रिपुरमें आश्रय लेनेके कारण जो असुर जिस वस्तुकी कामना करता था, उसकी उस कामनाको मय दानव मायाद्वारा पूर्ण कर देता था । जिनके सुडौल शरीरपर चन्दनका अनुलेप लगा था, जो निर्मल आभूरण, वस्त्र, माला और अङ्गरागसे अलंकृत थे तथा मतवाले गजेन्द्र-सरीखे दीख रहे थे, ऐसे दानव चाँदनी रातोंमें एवं सायंकालके समय कमलसे सुशोभित सरोवरोंके तटपर, आमके बगीचों और तपोवनोंमें अपनी पत्नियोंके साथ निरन्तर हर्षपूर्वक विहार करते थे ॥

मयेन निर्मिते स्थाने मोदमाना महासुराः । अर्थे धर्मे च कामे च निदधुस्ते मतीः स्वयम् ॥ १० ॥
तेषां त्रिपुरयुक्तानां त्रिपुरे त्रिदशारिणाम् । व्रजति स्म सुखं कालः स्वर्गस्थानां यथा तथा ॥ ११ ॥
शुश्रूषन्ते पितॄन् पुत्राः पत्न्यश्चापि पतींस्तथा । विमुक्तकलहाश्चापि प्रीतयः प्रचुराभवन् ॥ १२ ॥
नाधर्मस्त्रिपुरस्थानां बाधते वीर्यवानपि । अर्चयन्तो दितेः पुत्रास्त्रिपुरायतने हरम् ॥ १३ ॥
पुण्याहशब्दानुच्चैरुराशीर्वादांश्च वेदगान् । स्वनूपुररवोन्मिश्रान् वेणुवीणारवानपि ॥ १४ ॥
हासश्च वरनारीणां चित्तव्याकुलकारकः । त्रिपुरे दानवेन्द्राणां रमतां श्रूयते सदा ॥ १५ ॥
तेषामर्चयतां देवान् ब्राह्मणांश्च नमस्यताम् । धर्मार्थकामतत्त्वानां महान् कालोऽभ्यवर्तत ॥ १६ ॥
अथालक्ष्मीरसूया च तृड्बुभुक्षे तथैव च । कलिश्च कलहश्चैव त्रिपुरं विविशुः सह ॥ १७ ॥
संध्याकालं प्रविष्टास्ते त्रिपुरं च भयावहाः । समध्यासुः समं घोराः शरीराणि यथाऽऽमयाः ॥ १८ ॥
सर्व एते विशन्तस्तु मयेन त्रिपुरान्तरम् । स्वप्ने भयावहा दृष्टा आविशन्तस्तु दानवान् ॥ १९ ॥

उदिते च सहस्रांशौ शुभभासाकरे रवौ। मयः सभामाविवेश भास्कराभ्यामिवाम्बुदः ॥ २० ॥
मेरुकूटनिभे रम्य आसने स्वर्णमण्डिते। आसीनाः काञ्चनगिरेः शृङ्गे तोयमुचो यथा ॥ २१ ॥
पार्श्वयोस्तारकाख्यश्च विद्युन्माली च दानवः। उपविष्टौ मयस्यान्ते हस्तिनः कलभाविव ॥ २२ ॥

इस प्रकार मयद्वारा निर्मित उस स्थानपर निवास करते हुए वे महासुर आनन्दका उपभोग कर रहे थे। उन्होंने स्वयं ही धर्म, अर्थ और कामके सम्पादनमें अपनी बुद्धि लगायी। त्रिपुरमें निवास करनेवाले उन देव-शत्रुओंका समय ऐसा सुखमय व्यतीत हो रहा था, जैसे स्वर्ग-वासियोंका व्यतीत होता है। वहाँ पुत्र पितृगणोंकी तथा पत्नियाँ पतियोंकी सेवा करती थीं। वे परस्पर कलह नहीं करते थे। उनमें परम प्रेम था। किसी प्रकारका अधर्म प्रबल होनेपर भी त्रिपुर-निवासियोंको बाधा नहीं पहुँचाता था। वे दैत्य शिव-मन्दिरमें शंकरजीकी अर्चना करते हुए वेदोक्त माङ्गलिक शब्दों एवं आशीर्वादोंका उच्चारण करते थे। त्रिपुरमें आनन्द मनानेवाले दानवेन्द्रोंके अपने नूपुरकी झनकारसे मिश्रित वेणु एवं वीणाके शब्द तथा सुन्दरी चित्तको विक्षुब्ध कर देनेवाले नारियोंके हास सदा सुनायी पड़ते थे। इस प्रकार देवताओंकी अर्चना और ब्राह्मणोंको नमस्कार करनेवाले तथा धर्म, अर्थ एवं कामके साधक उन दैत्योंका महान् समय व्यतीत होता गया। तदनन्तर अलक्ष्मी (दरिद्रता), असूया (गुणोंमें दोष निकालना), तृष्णा, बुभुक्षा (भूख), कलि और कलह—ये सब एक साथ मिलकर त्रिपुरमें प्रविष्ट हुए। इन भयदायक दुर्गुणोंने सायंकाल त्रिपुरमें प्रवेश किया था। इन्होंने राक्षसोंपर ऐसा अधिकार जमाया, जैसे भयंकर व्याधियाँ शरीरोंको काबूमें कर लेती हैं। त्रिपुरके भीतर प्रवेश करते हुए इन दुर्गुणोंको मयने स्वप्नमें दानवोंके शरीरमें भयानक रूपसे प्रविष्ट होते हुए देख लिया। तब सहस्र किरणधारी एवं उज्ज्वल प्रकाश करनेवाले सूर्यके उदय होनेपर मयने (तारक और विद्युन्मालीके साथ) दो सूर्योंसे युक्त बादलकी तरह सभाभवनमें प्रवेश किया। वहाँ वे मेरुगिरिके शिखरके समान सुन्दर स्वर्णमण्डित रमणीय आसनपर आसीन हो गये। उस समय वे ऐसे प्रतीत हो रहे थे मानो सुमेरु-गिरिके शिखरपर बादल उमड़ आये हों। मय दानवके निकट एक ओर तारकासुर और दूसरी ओर दानवश्रेष्ठ विद्युन्माली बैठे हुए थे, जो हाथीके बच्चेकी तरह दीख रहे थे ॥ १०—२२ ॥

ततः सुरारयः सर्वेऽशेपकोपा रणाजिरे। उपविष्टा दृढं विद्धा दानवा देवशत्रवः ॥ २३ ॥
तेष्वासीनेषु सर्वेषु सुखासनगतेषु च। मयो मायाविजनक इत्युवाच स दानवान् ॥ २४ ॥
खेचराः खेचराराचा भो भो दाक्षायणीसुताः। निशामयध्वं स्वप्नोऽयं मया दृष्टो भयावहः ॥ २५ ॥
चतस्रः प्रमदास्तत्र त्रयो मर्त्या भयावहाः। कोपानलादीप्तमुखाः प्रविष्टास्त्रिपुरादिनः ॥ २६ ॥
प्रविश्य रुषितास्ते च पुराण्यतुलविक्रमाः। प्रविष्टाः स शरीराणि भूत्वा बहुशरीरिणः ॥ २७ ॥
नगरं त्रिपुरं चेदं तमसा समवस्थितम्। सगृहं सह युष्माभिः सागराम्भसि मज्जितम् ॥ २८ ॥
उलूकं रुचिरा नारी नग्नाऽऽरूढा खरं तथा। पुरुषः सिन्दुतिलकश्चतुरङ्घ्रिस्त्रिलोचनः ॥ २९ ॥
येन सा प्रमदा नुन्ना अहं चैव विबोधितः। ईदृशी प्रमदा दृष्टा मया चातिभयावहा ॥ ३० ॥
एष ईदृशिकः स्वप्नो दृष्टो वै दितिनन्दनाः। दृष्टः कथं हि कष्टाय असुराणां भविष्यति ॥ ३१ ॥
यदि वोऽहं क्षमो राजा यदिदं वेत्थ चेङ्गितम्। निबोधध्वं सुमनसो न चासूयितुमर्हथ ॥ ३२ ॥
कामं चेर्ष्यां च कोपं च असूयां संविहाय च। सत्ये दमे च धर्मे च मुनिवादे च तिष्ठत ॥ ३३ ॥
शान्तयश्च प्रयुज्यन्तां पूज्यतां च महेश्वरः। यदि नामास्य स्वप्नस्य ह्येवं चोपरमो भवेत् ॥ ३४ ॥
कुप्यते नो ध्रुवं रुद्रो देवदेवस्त्रिलोचनः। भविष्याणि च दृश्यन्ते यतो नस्त्रिपुरेऽसुराः ॥ ३५ ॥
कलहं वर्जयन्तश्च अर्जयन्तस्तथाऽऽर्जवम्। स्वप्नोदयं प्रतीक्षध्वं कालोदयमथापि च ॥ ३६ ॥

तत्पश्चात् युद्धस्थलमें अत्यन्त घायल होनेके कारण जिनके क्रोध शेष रह गये थे, वे सभी देवशत्रु दानव वहाँ आकर यथास्थान बैठ गये। इस प्रकार उन सबके सुखपूर्वक आसनपर बैठ जानेके पश्चात् मायाके उत्पादक मयने उन दानवोंसे इस प्रकार कहा—'अरे दाक्षायणी*के पुत्रो! तुमलोग आकाशमें विचरण करनेवाले तथा आकाशचारियोंमें विशेषरूपसे गर्जना करनेवाले हो। मैंने यह एक भयानक स्वप्न देखा है, उसे तुमलोग ध्यानपूर्वक सुनो। मैंने स्वप्नमें चार स्त्रियों और तीन पुरुषोंको पुरमें प्रवेश करते हुए देखा है। उनके रूप भयानक थे तथा मुख क्रोधाग्निसे उद्दीप्त हो रहे थे, जिससे ऐसा लगता था मानो वे त्रिपुरके विनाशक हैं। वे अतुल पराक्रमशाली प्राणी क्रोधसे भरे हुए थे और पुरोंमें प्रवेश करके अनेकों शरीर धारणकर दानवोंके शरीरोंमें भी घुस गये हैं। यह त्रिपुर नगर अन्धकारसे आच्छन्न हो गया है और गृह तथा तुमलोगोंके साथ ही सागरके जलमें डूब गया है। एक सुन्दरी स्त्री नंगी होकर उल्लूकपर सवार थी तथा उसके साथ एक पुरुष था, जिसके ललाटमें लाल तिलक लगा था। उसके चार पैर और तीन नेत्र थे। वह गधेपर चढ़ा हुआ था। उसने उस स्त्रीको प्रेरित किया, तब उसने मुझे नींदसे जगा दिया। इस प्रकारकी अत्यन्त भयावनी नारीको मैंने स्वप्नमें देखा है। दिति-पुत्रो! मैंने इस प्रकारका स्वप्न देखा है और यह भी देखा है कि यह स्वप्न असुरोंके लिये किस प्रकार कष्टदायक होगा। इसलिये यदि तुमलोग हमें अपना उचितरूपसे राजा मानते हो और यह समझते हो कि इनका कथन हितकारक होगा तो मन लगाकर मेरी बात सुनो। तुमलोग किसीकी असूया (झूठी निन्दा) मत करो। काम, क्रोध, ईर्ष्या, असूया आदि दुर्गुणोंको एकदम छोड़कर सत्य, दम, धर्म और मुनिमार्गका आश्रय लो। शान्तिदायक अनुष्ठानोंका प्रयोग करो और महेश्वरकी पूजा करो। सम्भवतः ऐसा करनेसे स्वप्नकी शान्ति हो जाय। असुरो! (ऐसा प्रतीत हो रहा है कि) त्रिनेत्रधारी देवाधिदेव भगवान् रुद्र निश्चय ही हमलोगोंपर कुपित हो गये हैं; क्योंकि हमारे त्रिपुरमें भविष्यमें घटित होनेवाली घटनाएँ अभीसे दीख पड़ रही हैं। अतः तुमलोग कलहका परित्याग तथा सरलताका आश्रय लेकर इस दुःस्वप्नके परिणामस्वरूप आनेवाले कालकी प्रतीक्षा करो' ॥ २३—३६ ॥

श्रुत्वा दाक्षायणीपुत्रा* इत्येवं मयभाषितम्। क्रोधेर्ष्यावस्थया युक्ता दृश्यन्ते च विनाशगाः ॥ ३७ ॥
विनाशमुपपश्यन्तो ह्यलक्ष्म्याव्यापितासुराः। तत्रैव दृष्ट्वा तेऽन्योन्यं संक्रोधापूरितेक्षणाः ॥ ३८ ॥
अथ दैवपरिध्वस्ता दानवास्त्रिपुरालयाः। हित्वा सत्यं च धर्मं च अकार्याण्युपचक्रमुः ॥ ३९ ॥
द्विषन्ति ब्राह्मणान् पुण्यान् न चार्चन्ति हि देवताः। गुरुं चैव न मन्यन्ते ह्यन्योन्यं चापि चुक्रुधुः ॥ ४० ॥
कलहेषु च सज्जन्ते स्वधर्मेषु हसन्ति च। परस्परं च निन्दन्ति अहमित्येव वादिनः ॥ ४१ ॥
उच्चैर्गुरून् प्रभाषन्ते नाभिभाषन्ति पूजिताः। अकस्मात् साश्रुनयना जायन्ते च समुत्सुकाः ॥ ४२ ॥
दधिसक्तून् पयश्चैव कपित्थानि च रात्रिषु। भक्षयन्ति च शेरन्त उच्छिष्टाः संवृतास्तथा ॥ ४३ ॥
मूत्रं कृत्वोपस्पृशन्ति चाकृत्वा पादधावनम्। संविशन्ति च शय्यासु शौचाचारविवर्जिताः ॥ ४४ ॥
संकुचन्ति भयाच्चैव मार्जाराणां यथाऽऽखुकः। भार्यां गत्वा न शुध्यन्ति रहोवृत्तिषु निस्त्रपाः ॥ ४५ ॥
पुरा सुशीला भूत्वा च दुःशीलत्वमुपागताः। देवांस्तपोधनांश्चैव बाधन्ते त्रिपुरालयाः ॥ ४६ ॥
मयेन वार्यमाणापि ते विनाशमुपस्थिताः। विप्रियाण्येव विप्राणां कुर्वाणाः कलहैषिणः ॥ ४७ ॥
वैभ्राजं नन्दनं चैव तथा चैत्ररथं वनम्। अशोकं च वराशोकं सर्वर्तुकमथापि च ॥ ४८ ॥

* दक्षकी कन्या दनुको ही यहाँ दाक्षायणी कहा गया है। सभी दानव कश्यपजीके द्वारा उत्पन्न इन्हीं दनुके पुत्र थे। दैत्यगण दितिके पुत्र थे।

स्व॰ च देवतावासं पूर्वदेववशानुगाः। विध्वंसयन्ति संक्रुद्धास्तपोधनवनानि च ॥ ४९ ॥
विध्वस्तदेवायतनाश्रमं च सम्भग्नदेवद्विजपूजकं तु।
जगद्बभूवामरराजदुष्टैरभिद्रुतं सस्यमिवालिवृन्दैः ॥ ५० ॥

*इति श्रीमात्स्ये महापुराणे त्रिपुरोपाख्याने दुःस्वप्नदर्शनं नामैकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३१ ॥*

इस प्रकार मय दानवका भाषण सुनकर सभी दानव क्रोध और ईर्ष्याके वशीभूत हो गये तथा विनाशकी ओर जाते हुए-से दीखने लगे। अलक्ष्मीद्वारा प्रभावित हुए वे असुर अपने भावी विनाशको संनिकट देखते हुए भी परस्पर एक-दूसरेकी ओर देखकर वहीं क्रोधसे भर गये। उनकी आँखे लाल हो गयीं। तदनन्तर दैव (भाग्य)से परिच्युत हुए त्रिपुरनिवासी दानव सत्य और धर्मका परित्याग कर निन्द्य कर्मोंमें प्रवृत्त हो गये। वे पवित्र ब्राह्मणोंसे द्वेष करने लगे। उन्होंने देवताओंकी अर्चना छोड़ दी। वे गुरुजनोंका मान नहीं करते थे और परस्पर क्रोधपूर्ण व्यवहार करने लगे। वे कलहमें प्रवृत्त होकर अपने धर्मका उपहास करने लगे और 'मैं ही सब कुछ हूँ' ऐसा कहते हुए परस्पर एक-दूसरेकी निन्दा करने लगे। वे गुरुजनोंसे कड़े शब्दोंमें बोलते थे। स्वयं सत्कृत होनेपर भी उन्होंने अपनेसे नीची कोटिवालोंसे बोलना ही छोड़ दिया। उनकी आँखोमें अकस्मात् आँसू उमड़ आते थे और वे उत्कण्ठित-से हो जाते थे। वे रातमें दही, सत्तू, दूध और कैथका फल खाने लगे। जूठे मुह रहकर घिरे हुए स्थानमे शयन करने लगे। उनका शौचाचार ऐसा विनष्ट हो गया कि वे मूत्र-त्याग कर जलका स्पर्श तो करते, परंतु बिना पैर धोये ही बिछौनोंपर शयन करने लगे। वे अकस्मात् भयसे इस प्रकार संकुचित हो जाते थे, जैसे बिलावको देखकर चूहे हो जाते है। उन्होने स्त्री-सहवासके बाद शरीरकी शुद्धि करना छोड़ दिया और गोपनीय कार्योंमे भी निर्लज्ज हो गये। वे त्रिपुरनिवासी दैत्य पहले सुशील थे, पर अब बड़े क्रूर हो गये तथा देवताओं और तपस्वियोंको कष्ट देने लगे। मयके मना करनेपर भी वे विनाशकी ओर बढ़ने लगे। उनके मनमें कलहकी इच्छा जाग उठी, जिससे वे ब्राह्मणोका अपकार ही करते थे। इस प्रकार जो पहले देवताओके वशीभूत थे, वे दानवगण सम्प्रति त्रिपुरका आश्रय पानेसे संक्रुद्ध होकर वैभ्राजके, नन्दन, चैत्ररथ, अशोक, वराशोक, सर्वर्तुक आदि वनों, देवताओके निवास-स्थान स्वर्ग तथा तपस्वियोंके वनोका विध्वंस करने लगे। उस समय देव-मन्दिर और आश्रम नष्ट कर दिये गये। देवताओं और ब्राह्मणोके उपासक मार डाले गये। इस प्रकार देवराज इन्द्रके शत्रुओंद्वारा विध्वस्त किया हुआ जगत् ऐसा लगने लगा, जैसे टिड्डीदलोंद्वारा नष्ट की हुई अन्नकी फसल हो ॥ ३७-५० ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके त्रिपुरोपाख्यानमें दुःस्वप्न-दर्शन नामक एक सौ इकतीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ १३१ ॥

# एक सौ बत्तीसवाँ अध्याय

## त्रिपुरवासी दैत्योंका अत्याचार, देवताओंका ब्रह्माकी शरणमें जाना और ब्रह्मासहित शिवजीके पास जाकर उनकी स्तुति करना

सूत उवाच

अशीलेषु प्रदुष्टेषु दानवेषु दुरात्मसु। लोकेषूत्साद्यमानेषु तपोधनवनेषु च॥ १॥
सिंहनादे व्योमगानां तेषु भीतेषु जन्तुषु। त्रैलोक्ये भयसम्मूढे तमोऽन्धत्वमुपागते॥ २॥
आदित्या वसवः साध्याः पितरो मरुतां गणाः। भीताः शरणमाजग्मुर्ब्रह्माणं प्रपितामहम्॥ ३॥
ते तं स्वर्णोत्पलासीनं ब्रह्माणं समुपागताः। नेमुरूचुश्च सहिताः पञ्चास्यं चतुराननम्॥ ४॥
वरगुप्तास्त्वयैवेह दानवास्त्रिपुरालयाः। बाधन्तेऽस्मान् यथा प्रेष्याननुशाधि ततोऽनघ॥ ५॥
मेघागमे यथा हंसा मृगाः सिंहभयादिव। दानवानां भयात् तद्वद् भ्रमामो हि पितामह॥ ६॥
पुत्राणां नामधेयानि कलत्राणां तथैव च। दानवैर्भ्राम्यमाणानां विस्मृतानि ततोऽनघ॥ ७॥
देववेश्मप्रभङ्गाश्च आश्रमभ्रंशनानि च। दानवैर्लोभमोहान्धैः क्रियन्ते च भ्रमन्ति च॥ ८॥
यदि न त्रायसे लोकं दानवैर्विद्रुतं द्रुतम्। धर्मेणानेन निर्देवं निर्मनुष्याश्रमं जगत्॥ ९॥

**सूतजी कहते हैं—**ऋषियो! त्रिपुरनिवासी दानवोंका शील तो भ्रष्ट ही हो गया था, उनमें दुष्टता भी कूट-कूटकर भर गयी थी। उन दुरात्माओंने लोकों एवं तपोवनोंका विनाश करना आरम्भ किया। वे आकाशमें जाकर सिंहनाद करते, जिसे सुनकर सारे जीव-जन्तु भयभीत हो जाते थे। इस प्रकार जब सारी त्रिलोकी भयके कारण किंकर्तव्यविमूढ़ हो गयी और सर्वत्र अन्धकार-सा छा गया, तब भयसे डरे हुए आदित्य, वसु, साध्य, पितृ-गण और मरुद्गण—ये सभी संगठित होकर प्रपितामह ब्रह्माकी शरणमें पहुँचे। वहाँ पञ्चमुख ब्रह्मा स्वर्णमय कमलासनपर आसीन थे। ये देवगण उनके निकट जाकर उन्हें नमस्कार कर (दानवोंके अत्याचारका) वर्णन करने लगे—'निष्पाप पितामह! त्रिपुरनिवासी दानव आपके ही वरदानसे सुरक्षित होकर हमलोगोंको सेवकोंकी तरह कष्ट दे रहे हैं, अतः आप उन्हें मना कीजिये। पितामह! जैसे बादलोंके उमड़नेपर हंस और सिंहकी दहाड़से मृग भयभीत होकर भागने लगते हैं, उसी प्रकार दानवोंके भयसे हमलोग इधर-उधर लुक-छिप रहे हैं। पापरहित ब्रह्मन्! यहाँतक कि दानवोंद्वारा खदेड़े जानेके कारण हमलोगोंको अपने पुत्रों तथा पत्नियोंके नामतक भूल गये हैं। लोभ एवं मोहसे अंधे हुए दानवगण देवताओंके निवासस्थानोंको तोड़ते-फोड़ते तथा ऋषियोंके आश्रमोंको विध्वस्त करते हुए घूम रहे हैं। यदि आप शीघ्र ही दानवोंद्वारा विध्वंस किये जाते हुए लोककी रक्षा नहीं करेंगे तो सारा जगत् देवता, मनुष्य और आश्रमसे रहित हो जायगा'॥ १—९॥

इत्येवं त्रिदशैरुक्तः पद्मयोनिः पितामहः। प्रत्याह त्रिदशान् सेन्द्रानिन्दुतुल्याननः प्रभुः॥ १०॥
मयस्य यो वरो दत्तो मया मतिमतां वराः। तस्यान्त एष सम्प्राप्तो यः पुरोक्तो मया सुराः॥ ११॥
तच्च तेषामधिष्ठानं त्रिपुरं त्रिदशर्षभाः। एकेषुपातमोक्षेण हन्तव्यं नेषुवृष्टिभिः॥ १२॥
भवतां च न पश्यामि कमप्यत्र सुरर्षभाः। यस्तु चैकप्रहारेण पुरं हन्यात् सदानवम्॥ १३॥
त्रिपुरं नाल्पवीर्येण शक्यं हन्तुं शरेण तु। एकं मुक्त्वा महादेवं महेशानं प्रजापतिम्॥ १४॥
ते यूयं यदि अन्ये च क्रतुविध्वंसकं हरम्। याचामः सहिता देवं त्रिपुरं स हनिष्यति॥ १५॥
कृतः पुराणां विष्कम्भो योजनानां शतं शतम्।

यथा चैकप्रहारेण हन्यते वै भवेन तु। पुष्ययोगेण युक्तानि तानि चैकक्षणेन तु ॥ १६ ॥
ततो देवैश्च सम्प्रोक्तो यास्याम इति दुःखितैः। पितामहश्च तैः सार्धं भवसंसदमागतः ॥ १७ ॥
तं भवं भूतभव्येशं गिरिशं शूलपाणिनम्। पश्यन्ति चोमया सार्धं नन्दिना च महात्मना ॥ १८ ॥
अग्निवर्णमजं देवमग्निकुण्डनिभेक्षणम्। अग्न्यादित्यसहस्राभमग्निवर्णविभूषितम् ॥ १९ ॥
चन्द्रावयवलक्ष्माणं चन्द्रसौम्यतराननम्। आगम्य तमजं देवमथ तं नीललोहितम् ॥ २० ॥
स्तुवन्तो वरदं शम्भुं गोपतिं पार्वतीपतिम् ॥ २१ ॥

जब देवताओंने पद्मयोनि ब्रह्मासे इस प्रकार निवेदन किया, तब चन्द्रमाके समान गौरवर्ण मुखवाले सामर्थ्य-शाली ब्रह्माने इन्द्रादि देवताओंसे कहा—'बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ देवगण! मैंने मयको जो वर दिया था, उसका यह अन्त समय आ पहुँचा है, जिसे मैंने पहले ही उन लोगोंसे कह दिया था। श्रेष्ठ देवताओ! उनका निवासस्थान वह त्रिपुर तो एक ही बाणके प्रहारसे नष्ट हो जानेवाला है। उसपर बाण-वृष्टिकी आवश्यकता नहीं है, किंतु श्रेष्ठ देवगण! मै यहाँ तुमलोगोमेंसे किसी-को भी ऐसा नहीं देख रहा हूँ, जो एक ही बाणके आघातसे दानवोंसहित त्रिपुरको नष्ट कर सके। देवाधि-देव प्रजापति शंकरके अतिरिक्त अन्य कोई अल्प पराक्रमी वीर एक ही बाणसे त्रिपुरका विनाश नहीं कर सकता। इसलिये यदि तुमलोग तथा अन्यान्य देवगण भी एक साथ होकर दक्ष-यज्ञके विध्वंसक भगवान् शंकरके पास चलकर उनसे याचना करें तो वे त्रिपुरका विनाश कर देंगे। इन पुरोंका विष्कम्भ सौ-सौ योजनोंका बना हुआ है, अतः पुष्य नक्षत्रके योगमें जब ये तीनों एक साथ सम्मिलित होंगे, उसी क्षण भगवान् शंकर एक ही बाणके आघातसे इसका विध्वंस कर सकते हैं।' यह सुनकर दुःखित देवताओंने कहा कि 'हमलोग चलेंगे।' तब ब्रह्मा उन्हे साथ लेकर शंकरजीकी सभामें आये। वहाँ उन्होंने देखा कि भूत एवं भविष्यके स्वामी तथा गिरिपर शयन करनेवाले त्रिशूलपाणि शंकर पार्वतीदेवी तथा महात्मा नन्दीके साथ विराजमान हैं। उन अजन्मा महादेवके शरीरका वर्ण अग्निके समान उद्दीप्त था। उनके नेत्र अग्निकुण्डके सदृश लाल थे। उनके शरीरसे सहस्रों अग्नियों और सूर्योंके समान प्रभा छिटक रही थी। वे अग्निके-से रंगवाली विभूतिसे विभूषित थे। उनके ललाटपर बालचन्द्र शोभा पा रहा था और मुख (पूर्णिमाके) चन्द्रमासे भी अधिक सुन्दर दीख रहा था। तब देवगण उन अजन्मा नीललोहित महादेवके निकट गये और पशुपति, पार्वती-प्राणवल्लभ, वरदायक शम्भुकी इस प्रकार स्तुति करने लगे—॥ १०—२१ ॥

देवा ऊचुः

नमो भवाय शर्वाय रुद्राय वरदाय च। पशूनां पतये नित्यमुग्राय च कपर्दिने ॥ २२ ॥
महादेवाय भीमाय त्र्यम्बकाय च शान्तये। ईशानाय भयघ्नाय नमस्त्वन्धकघातिने ॥ २३ ॥
नीलग्रीवाय भीमाय वेधसे वेधसा स्तुते। कुमारशत्रुनिघ्नाय कुमारजनकाय च ॥ २४ ॥
विलोहिताय धूम्राय वराय क्रथनाय च। नित्यं नीलशिखण्डाय शूलिने दिव्यशायिने ॥ २५ ॥
उरगाय त्रिनेत्राय हिरण्यवसुरेतसे। अचिन्त्यायाम्बिकाभर्त्रे सर्वदेवस्तुताय च ॥ २६ ॥
वृषध्वजाय मुण्डाय जटिने ब्रह्मचारिणे। तप्यमानाय सलिले ब्रह्मण्यायाजिताय च ॥ २७ ॥